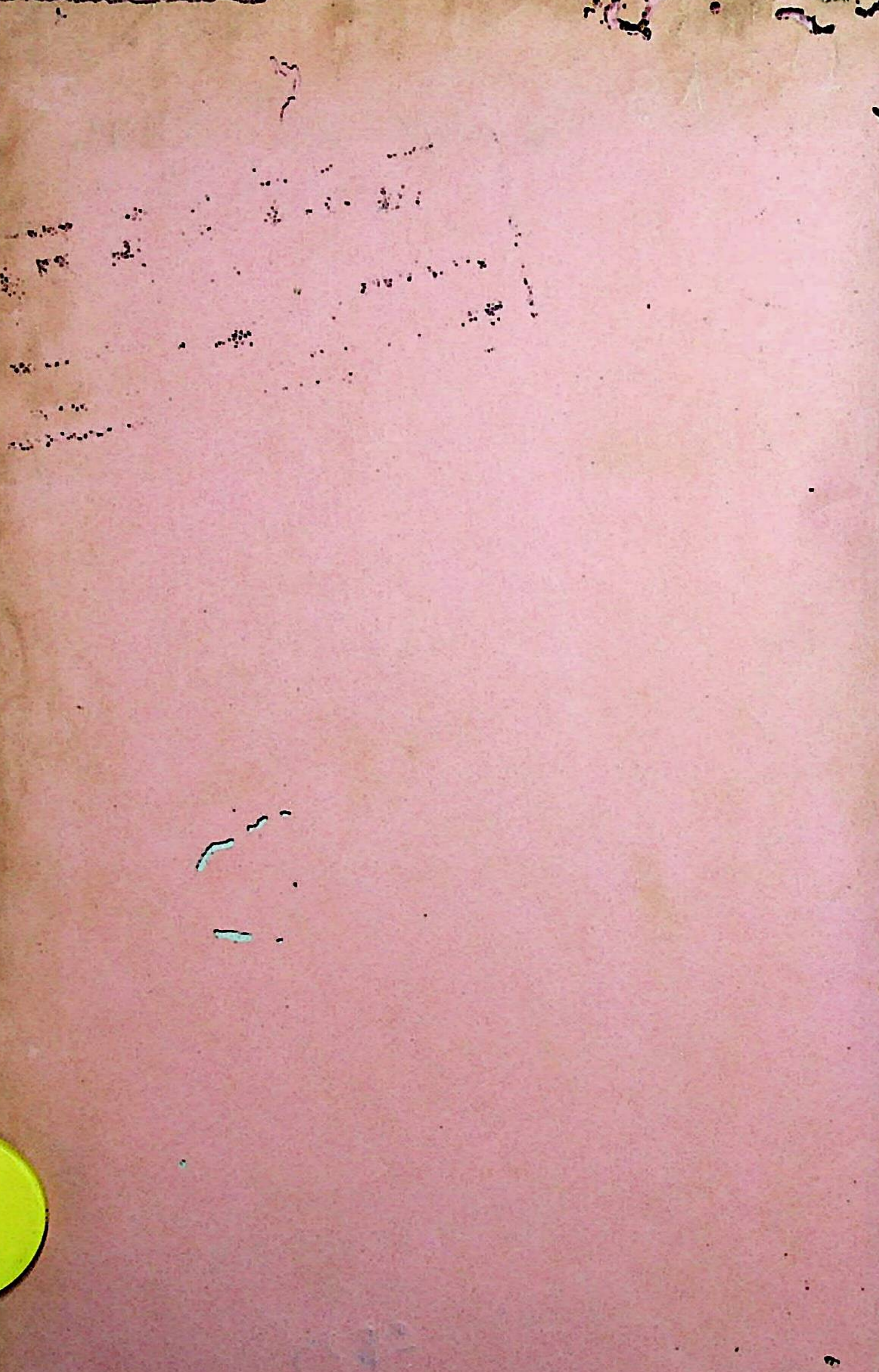
कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।



अक्टूबर

नवनीत

[हिन्दी डाइजेस्ट]

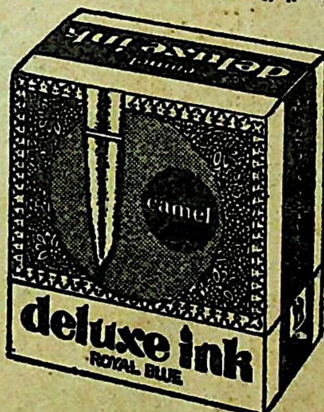


कॅमल स्याही उत्कृष्ट है!
कोई भी लीजिये



कॅमल 'स्पेशल' स्याही।

वाजबी कीमत की झर झर बहने वाली स्याही। हर रोज के इस्तेमाल के लिए सर्वोत्तम। शीघ्र सूखती है। पेन में कचरा नहीं रहने पाता। कॅमल 'स्पेशल' स्याही से लिखते समय पेन को झटका देने की जरूरत नहीं पड़ती। इतनी उत्कृष्ट फिर भी वाजबी कीमत। यही तो कॅमल स्पेशल स्याही की विशेषता है।



कॅमल 'डीलक्स' स्याही।

यह हमारी नयी स्याही है। यदि तुम्हारी पेन कीमती है तो इससे बढ़कर कोई दूसरी स्याही नहीं हो सकती। झरझर बहती, शीघ्र सूखती और लिखते-लिखते आपकी पेन साफ करती जाती है। इतना ही नहीं, 'डीलक्स' स्याही आपके पेन को संपूर्ण संरक्षण देती है। इससे पेन के भीतर क्षरण नहीं होता। कॅमल 'डीलक्स' स्याही को अपने टेबल पर गर्व से रखिये। उसका नूर ही ऐसा है कि आपके टेबल की शोभा बढ़ जायेगी। स्याही का जैसा दर्जा-वैसा ही उसका नूर।



vision 696 hin



नियंत्रण....

...अपने खर्च पर नियंत्रण कीजिए। जब तक आप ऐसा नहीं करेंगे तब तक आपको अपने पैसों से जो लाभ मिलना चाहिए वह नहीं मिलेगा। खर्च पर नियंत्रण का सबसे अच्छा तरीका यह है कि आप नियमित रूप से कुछ पैसा बचाएँ। आज ही देना बेंक में अपना रिकरिंग डिपॉज़िट एकाउण्ट खोल दीजिए... फिर देखिए आपका पैसा किस प्रकार बढ़ता जाता है। आपकी जमा रकम पर ५½% से ७% तक का चक्रवृद्धि व्याज मिलेगा। कुछ ही समय में आपके पास अपनी जरूरतें पूरा करने के लिए पैसा जमा हो जायगा और कठिन समय में आपकी बचाई हुई यह रकम आपके काम आ सकेगी।

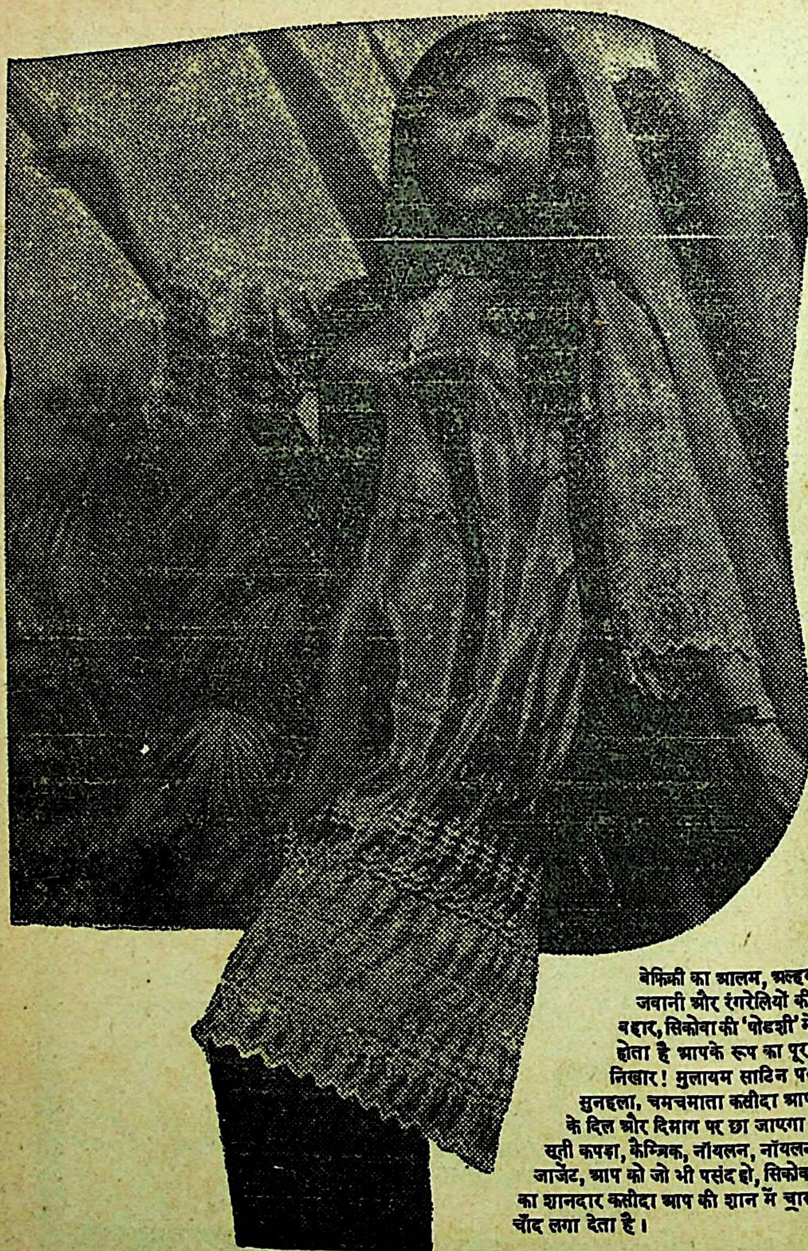


देना बेंक

रजिस्टर्ड ऑफिस: देवकरण नानजी बिल्डिंग्ज़,
१७, हॉर्निमेन सर्कल, फोर्ट, बम्बई-१.

RATAN BATRA

DB/H/141-A



एक छलांग और लगाओ,
प्यारा ग्लुको बिस्कुट पाओ।
फिर हम दोनों मिलकर खायें,
खेलें, कूदें, खुशी मनायें॥

पारले ग्लुको
बिस्कुट



* अनोखा स्वाद
* उत्तम ज़ायका
* कुरमुरा सदाताज़ा
* अद्वितीय पौष्टिकता

इसीलिए तो पारले ग्लुको भारत के सबसे ज़्यादा बिकनेवाले बिस्कुट हैं!

नेस्कैफ़े का
स्वाद ही बताता है कि:

१ यह दक्षिण भारत की सर्वश्रेष्ठ कॉफ़ी के दानों से बनायी गयी १००% शुद्ध कॉफ़ी है।

२ यह 'इंस्टेंट' कॉफ़ी बनानेवाली, दुनिया की सबसे अधिक अनुभवी कंपनी की बनायी हुई है।

३ यह अपनी इच्छानुसार तेज़ या हल्की बनायी जा सकती है:

कम भरा हुआ सपाट भरपूर

और यह किफ़ायती है:
ज़रूरत से ज्यादा कॉफ़ी डालनी नहीं पड़ती और ज़रा सी भी बेकार नहीं जाती क्योंकि फेंकने जैसी कोई तलछट रहती ही नहीं।



NCE—1088H-A3

NESCAFÉ*
नेस्ले उत्पादन

नेस्कैफ़े—वह कॉफ़ी जिसके स्वाद का जवाब नहीं!

*नेस्कैफ़े नेस्ले की इंस्टेंट कॉफ़ी का रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क है।

* गांधी जन्म - शताब्दी *

-: ७ और ५ चुनी हुयी किताबों के 'सेट्स' के रूप में :-

सर्वोदय साहित्य योजना

* गांधी स्मारक निधि, गांधी शांति-प्रतिष्ठान और सर्व सेवा संघ *

– द्वारा प्रसारित –

-: अपील :-

उद्योगपतियों, व्यापारी संस्थाओं, बैंकों, बीमा कंपनियों, सामाजिक संस्थाओं, व्यापारी व औद्योगिक संगठनों, साधन संपन्न एवम् शिक्षित नागरिकों और समस्त जनता से।

निवेदन है कि

वे अपनी-अपनी बुद्धि, संगठन-शक्ति, अनुभव, संपन्नता और व्यापारी दक्षता का साहित्य योजना के सफल प्रचार-प्रसारार्थ योगदान करें और राष्ट्र-पिता का पावन और प्रेरणादायी संदेश समस्त राष्ट्र में घर-घर पहुंचा दें।

-: सैटों में हिन्दी साहित्य :-

सेट नं -२:- (१) आत्मकथा (संक्षिप्त...गांधीजी (२) बापू-था (१९२० से १९४८) (३) गीता-बोध व मंगलप्रभात......,, (४) मेरे सपनों का भारत......गांधीजी (५) तीसरी शक्ति... विनोबा (६) गीता प्रवचन......विनोबा (७) स. से. संघ का पुस्तक.

सैट कीमत : रु. ७.००

सेट नं -१:- सैट नं. २ की पहली पाँच पुस्तकें — सैट किमत : रु. ५.००

सैट नं. २ के २८ सैटों के और सैट नं. १ के ४० सैटों के बैंडलों में आपका थोक आर्डर भिजवाकर कृपया साहित्य की व्यापकतम बिक्री में सहयोग दें। बंडलों के आर्डर पर प्रति सैट ०·५० पैसे रियायत दी जायेगी।

संपर्क करें :-

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

श्री कमलनयन बजाज, ५१, महात्मा गांधी रोड, फोर्ट, बंबई -१

सामुदायिक विकास, पंचायती राज और सहकार पर अखिल भारतीय फोटो-चित्र प्रतियोगिता, 1969

सामुदायिक विकास, पंचायती राज और सहकार पर अखिल भारतीय फोटो-चित्र प्रतियोगिता (गैर-रंगीन) के लिए प्रविष्टियाँ आमंत्रित की जाती हैं। इन फोटो-चित्रों में सामुदायिक विकास, पंचायती राज और सहकार की भावना और तत्सम्बन्धी प्रयासों की झलक मिलनी चाहिए। ये फोटो-चित्र जिन विषयों को प्रस्तुत करेंगे, वे इस प्रकार हैं :— (क) सामुदायिक विकास और सहकार के कार्यक्रमों से किसानों को लाभ; (ख) सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत महिलाओं व बच्चों की देख-भाल; (ग) सर्व महिला पंचायत के कार्य-कलाप; (घ) व्यावहारिक पौष्टिक-आहार कार्यक्रम के अंतर्गत भरण-पोषण; (ङ) पंचायतें और लघु सिंचाई; (च) मार्केटिंग और प्रोसेसिंग सहकारिताओं के कार्य-कलाप; (छ) कार्य-रत उपभोक्ता सहकारितायें; और, (ज) मछली-पालन सहकारितायें।

सफल प्रविष्टियों के लिए नौ पुरस्कार रखे गये हैं जो इस प्रकार हैं :— 400 रुपये का प्रथम पुरस्कार; 300 रुपये का द्वितीय पुरस्कार; 200 रुपये का तृतीय पुरस्कार और, 50-50 रुपये के 6 समाश्वासक पुरस्कार।

निगेटिव के साथ फोटो-चित्र की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिएँ। फोटो-चित्र 25 सें.मी. × 30 से.मी. माप के ग्लॉसी प्रिण्ट पर खींचे गए हों ताकि उनका पुनर्उत्पादन किया जा सके। हर फोटो-चित्र की पीठ पर प्रतियोगी अपना नाम व पता जरूर लिखें। इसके साथ साथ, एक सादे कागज पर हाथ या टाइप से फोटो-चित्रों के शीर्षक व निम्नलिखित विशेष विवरण लिख कर उसे पीठ पर चिपका दें: फोटो-चित्र के स्थान (गांव, विकास खण्ड/पंचायत, जिला तथा राज्य), विषय, फोटो लेने की तारीख इत्यादि। इस प्रतियोगिता में भेजे गये सभी फोटो-चित्र व उनके निगेटिव का उपयोग फोटो-चित्र प्रदर्शनी के लिए किया जाएगा, चाहे उन्हें पुरस्कार मिला हो या न मिला हो। पुरस्कृत फोटो-चित्र व उनके निगेटिव भारत सरकार की सम्पत्ति हो जाएंगे और भारत सरकार को पूरा अधिकार होगा कि वह उनका पुनर्उत्पादन व उपयोग किसी भी रूप में व किसी भी उद्देश्य के लिए कर सके।

फोटो-चित्रों की पैकिंग चोरस कीजिए, ताकि वे मुड़-मुड़ा न जाएं। अगर फोटो-चित्र खो जाते हैं या क्षति-ग्रस्त हो जाते हैं तो उसके लिए भारत सरकार जिम्मेदार नहीं होगी।

किसी भी प्रतियोगी को एक से ज्यादा पुरस्कार नहीं दिया जाएगा, हालांकि कोई भी व्यक्ति एक से ज्यादा प्रविष्टियाँ भेज सकता है। प्रवेश निःशुल्क है।

प्रतियोगिता से सम्बन्धित सभी विवादों में भारत सरकार का निर्णय अन्तिम माना जाएगा। प्रविष्टियाँ निम्नलिखित पते पर भेजें :—

निदेशक (बुनियादी साहित्य)
खाद्य, कृषि, सामुदायिक विकास और सहकार मंत्रालय
(सामुदायिक विकास तथा सहकार विभाग)
कृषि भवन, नई दिल्ली—1

प्रविष्टियाँ भेजने की अन्तिम तारीख : 2 अक्तूबर, 1969



संचालक
श्रीगोपाल नेवटिया

प्रधान संपादक
सत्यकाम विद्यालंकार

संपादक
नारायण दत्त

सहकारी
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

सज्जाकार
ठाकोर राणा

प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया

विज्ञापन-व्यवस्थापक
महेंद्र महेता



नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

वर्ष १८ अक्टूबर १९६९ अंक १०

इस अंक में

१७ जीवन-सत्य-प्रकाश
महात्मा गांधी

१८ मरुभूमि और जल
मकरंद दवे

१९ सांप के प्राण
उमाशंकर जोशी

२० आत्म-निवेदन
मो० क० गांधी

२१ निर्मम प्रेम
जैनेंद्र कुमार

२४ हमारे राष्ट्रपति
जी० एस० भार्गव

३० पुरखों की थाती
डा० मंगलदेव शास्त्री संकलित

३१ एक कहानी
एच० वी० आर० अय्यंगार

३२ बंदी कवि का उन्मुक्त गान
फान न्हुआन

३७ सर्वोदय के सिंहली साधक
चारुमित्रा

४० मेरा धर्म
काका कालेलकर

४६ मैत्री का मजार
प्रतापराय गोपालजी त्रिवेदी

४८	पत्र और परामर्श	....
४९	लोकतंत्र का पावन तीर्थ	अजयकुमार
५२	क्रिकेट उसकी रग-रग में है	सुशीलकुमार दोषी
५६	यहां अमूल्य निधि संचित है	मुगनी अब्बासी
६०	क्या गलती से गोली मारी गयी ?	प्रकाश खन्ना
६४	स्मरणांजलि	ठा० राजबहादुर सिंह
६९	अमिट रेखाएं	नारायण दत्त, जगतप्रसाद सिंह
७१	गिलगित सड़क	सत्यकाम विद्यालंकार
७६	दोपहरी (कविता)	रामदरश मिश्र
७६	खोलो (कविता)	सुखबीर
७७	संदीप्ति	जगदीश लूथरा
८१	कश्मीर में मैंने देखा	सर वाल्टर लारेंस
८६	कितने क्षण जीवन के, कितने मृत्यु के ?	इंदुलाल गांधी
८८	सायंटोलाजी : भीतर की एक झांकी	एलन लेवी
९४	बाबाजान (हिन्दी कहानी)	निर्मला ठाकुर
१०२	पागल इच्छाएं (मराठी कहानी)	विजया राजाध्यक्ष
१०९	फिलफिल (अरबी कहानी)	नजीब महफूज
११३	दादी के मुख से	चंद्रशेखर पांडेय
१४१	नयी दिशाएं, नये आयाम	केजिता
१४५	हम्फ्रो	विलियम जे० लांग
१५३	कलम की कमाई	....
१५४	वहां स्त्रियों का शासन है	ओरियाना फालसी
१६०	ब्रांकूसी और उड़ता विहग	मधुरेशनंदन कुलश्रेष्ठ
१६५	चाचा रामशरन	शशिकांत
१६९	अपनी-अपनी उम्र (जर्मन बोधकथा)	ग्रिम बंधु
१७३	मधुरेण समापयेत्	....

आवरण-चित्र : एम० आर० लाहोटी

चित्रसज्जा : वी० एन० ओके, कमलाक्ष शेणै, ठाकोर राणा।

हमारा पता : नवनीत प्रकाशन, ३४१ तारदेव, बंबई ३४, फोन : ३७२८४७

श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लि०, ३४१ तारदेव, बंबई—३४ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६।४८ खेतवाड़ी बैक रोड, बंबई—४ में मुद्रित।

अक्टूबर
१९६९

नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

संसार के नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान का प्रतिनिधि मासिक

जीवन-सत्य-प्रकाश

कोई अनिर्वचनीय रहस्यमय शक्ति है, जो प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है। मैं उसे अनुभव तो करता हूं, परंतु देख नहीं पाता। वह इंद्रियातीत है। परंतु तर्क द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करना एक सीमा तक संभव है। मैं अस्फुट रूप से यह अवश्य अनुभव करता हूं कि जब कि मेरे चारों ओर की प्रत्येक वस्तु सतत परिवर्तनशील है, सतत मरण-शील है, उस समस्त परिवर्तन के पीछे एक जीवित शक्ति है, जो अपरिवर्ती है, जो सबको समेटे-संजोये रहती है, जो सृजन, संहार और पुनःसृजन करती है। वह अंतर्यामी शक्ति या चेतना ईश्वर है; और चूंकि मैं निरी इंद्रियों द्वारा जिन वस्तुओं को देखता हूं, उनमें से कोई भी न बनी रहेगी, न बनी रह सकती है, इसलिए केवल ईश्वर ही है। और यह शक्ति कल्याणकारी है, या अकल्याणकारी? मैं उसे विशुद्ध-तया कल्याणकारी देखता हूं। क्योंकि मैं देख सकता हूं कि मृत्यु के बीच जीवन डटा रहता है, असत्य के बीच सत्य डटा रहता है; अंधकार के बीच प्रकाश डटा रहता है। इसलिए मैं यह परिणाम निकालता हूं कि ईश्वर जीवन, सत्य और प्रकाश है। वह सर्वेश्वर है।

—महात्मा गांधी

मरुभूमि और जल

समत्व, स्नेह, आदर का अमृत-झरना मरुभूमि को सींच सकता है

मकरंद दवे

महाभारत युद्ध समाप्त हो चुका था। श्रीकृष्ण द्वारका लौट रहे थे। मार्ग में राजस्थान से गुजरते हुए वे उत्तंक मुनि के आश्रम में रुके। मुनि तो मरुभूमि में रहते थे, उन्हें महाभारत युद्ध की कुछ भी खबर न थी। श्रीकृष्ण मध्यस्थता करने गये हैं, इतना-भर उन्होंने सुन रखा था।

अब साक्षात् श्रीकृष्ण को देखकर उन्होंने कहा—"जनार्दन, कौरवों-पांडवों में समझौता हो गया न! बहुत अच्छा हुआ; आपके बीच-बचाव से भाइयों में सुलह हो गयी।" श्रीकृष्ण ने खिन्नता से कहा—"मुनिवर! मेरे प्रयत्न करने पर भी सुलह नहीं हो पायी। भीषण युद्ध हुआ और कौरवों का नाश हो गया।"

यह सुनते ही मुनि उत्तंक के क्रोध का पार न रहा। समर्थ होकर भी श्रीकृष्ण शांति न स्थापित कर सके, यह सुनकर उन्होंने बड़ी तीव्रता से कहा—"वासुदेव, भीषण अनर्थ हुआ यह तो। आपने स्वयं वहां उपस्थित रहते हुए भी यह महाविनाश होने दिया? मैं आपको शाप दूंगा।"



श्रीकृष्ण मुस्कराकर बोले—"मुनिवर! अपने किंचिन्मात्र तप के प्रभाव से कोई मेरा पराभव करे, यह संभव नहीं है। आपने बड़ी निष्ठा से गुरुसेवा की है, और तपोमय जीवन बिताया है, उसके लिए मेरे मन में बहुत मान है। कोई वरदान मांगिये।"

मुनि उत्तंक को अमित तेजस्वी श्रीकृष्ण में विराट् स्वरूप के दर्शन हुए। उन्होंने हाथ जोड़कर गद्गद कंठ से स्तुति की। स्वयं तो निःस्पृह थे, क्या मांगते? परंतु मरुभूमि में पानी का कष्ट था। सो आवश्यकतानुसार पानी मिल जाये, ऐसा वर उन्होंने मांगा। 'तथास्तु' कहकर श्रीकृष्ण द्वारकाधाम को चले गये।

एक बार मुनि मरुभूमि में कहीं जाते हुए मार्ग भटक गये। तेज प्यास लग आयी।

पानी कहीं न मिला। तब उन्होंने श्रीकृष्ण का स्मरण किया। फिर देखा तो सामने एक चांडाल चमड़े की मशक में पानी लिये खड़ा था और मुनि को बुला रहा था–"आइये, मुनिराज! इस पानी से प्यास बुझाइये।"

उत्तंक जैसा महापवित्र मुनि एक चांडाल के हाथ का पानी पिये? उन्होंने चांडाल को झिड़ककर अपने सामने से हटा दिया। उन्हें श्रीकृष्ण पर तीव्र क्रोध भी आया कि क्या वरदान के नाम पर उन्हें यही छल करना था। यह विचार उनके मन में उठा ही था कि श्रीकृष्ण सामने प्रकट हो गये और बोले–"मुनिवर, अपने अहंकार के कारण आप अमृत पान न कर सके। चांडाल के रूप में इंद्र आपको अमृत देने आये थे, पर आपने अपनी पवित्रता के घमंड में उनका तिरस्कार कर जीवन का अमृत खो दिया।"

मुनि उत्तंक के पश्चात्ताप का पार न रहा। पर अब क्या हो सकता था? श्रीकृष्ण ने उन्हें आश्वासन दिया कि जब उन्हें आवश्यकता पड़ेगी, तब मरुभूमि में मेघ बरस जायेंगे। और मरुभूमि में बरसने वाले मेघ 'उत्तंक मेघ' कहलायेंगे।

जाति, कुल अथवा तप की उच्चता के अभिमान में डूबा मन विशाल मरुभूमि की तरह है। दूसरों के प्रति समत्व-भाव, स्नेह और आदर-भाव जीवन-जल का, अमृत का झरना है, जो उस मरुभूमि को सींच सकता है।



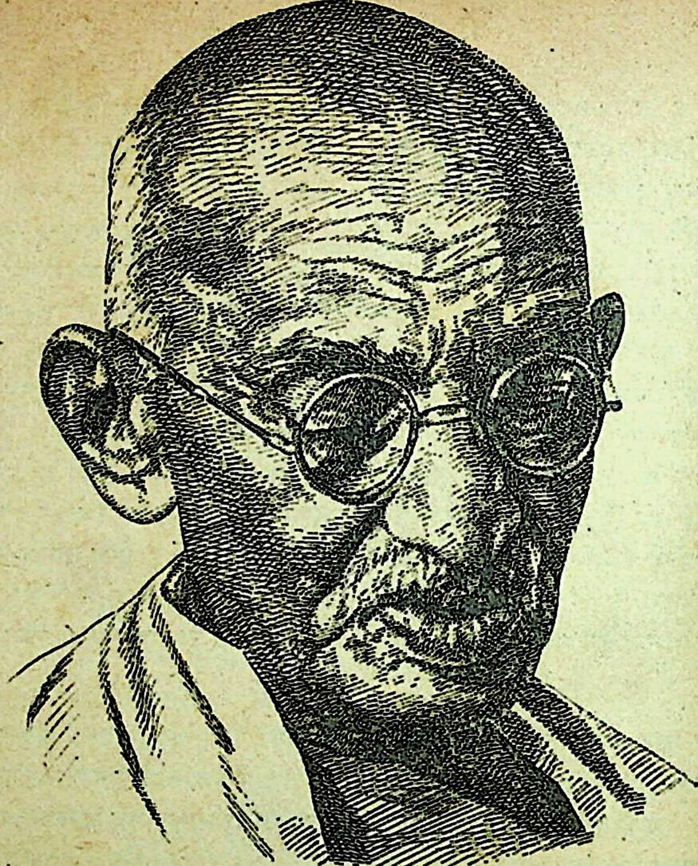
एक बार एक प्रसिद्ध वैद्यराज का किस्सा मेरे मित्र ने सुनाया। वैद्यराज किसी गांव गये हुए थे। वहां कुष्ठ का एक रोगी उन्हें मिला। वैद्यजी ने उसे गुरच और एरंडी का तेल दवा के रूप में बताया और परहेज में बिना नमक की साबुत मूंग खाने की सलाह दी। ईश्वर की कृपा से कुछ दिनों बाद रोगी अच्छा हो गया। लगभग ९-१० साल बाद वैद्यजी उस गांव पुनः लौटे तो उसने उन्हें बताया कि मैं ५-६ साल पहले ही अच्छा हो गया हूं।

फिर उसने २५ रुपये निकालकर उनके सामने रख दिये और बोला –"क्या मैं अभी फीकी मूंग का खाना जारी रखूं?" वैद्यजी के आश्चर्य की सीमा न रही। उन्होंने अपनी जेब से और पचीस रुपये मिलाकर उसे पूरे पचास लौटाते हुए कहा –"तूने मेरे बताये परहेज को आज तक निभाया है। इसलिए तू ही मेरा सच्चा गुरु है–सच्चा धन्वंतरि है। क्योंकि जबर्दस्त श्रद्धा से प्रयोग करके तूने कुष्ठ का उपचार सिद्ध करके दिखा दिया। वैसे मैंने यह उपाय अपने गुरु से सीखा था, पर उन्होंने भी किसी पुस्तक में ही पढ़कर इसे जाना था। उनका यह स्वयंसिद्ध अनुभव नहीं था। तूने मुझे आज अनुभव से सिद्ध ज्ञान कराया है। अब तू ये पैसे ले और जितनी श्रद्धा से तूने आज तक परहेज निभाया है, उतनी ही श्रद्धा से अब से रोज चूरमा खा।"

ऐसे श्रद्धालु शिष्य और शिष्य-वत्सल गुरु हों, तभी सच्चे ज्ञान का उदय होता है। पर वे आज दुर्लभ हैं।

–रविशंकर महाराज





मैं यह दिखाने के प्रयत्न में लगा हुआ हूं कि मैं उतना ही कमजोर इंसान हूं, जितना कि हममें से कोई हो सकता है और मुझमें कोई विलक्षणता न कभी थी, न अब है। मेरा दावा है कि मैं एक सीधा-सादा आदमी हूं, जो दूसरे किसी भी साथी मर्त्य मानव की भांति गलतियां कर सकता है। तो भी मैं स्वीकारता हूं कि मुझमें इतनी नम्रता है कि अपनी गलतियां कबूल करूं और अपने गलत कदम वापस लूं। मैं स्वीकार करता हूं कि ईश्वर में और उसके भलेपन में मेरी अटल श्रद्धा है और सत्य और प्रेम के लिए मुझमें कभी न बुझने वाली आसक्ति है। लेकिन क्या प्रत्येक मनुष्य में भी वह छिपी हुई नहीं है? यदि हमें उन्नति करनी है, तो इतिहास को नहीं दोहराना होगा, बल्कि नया इतिहास बनाना होगा। जब भौतिक जगत् में हम अन्वेषण और आविष्कार कर सकते हैं, तो क्या आत्मिक जगत् में दिवालियापन का एलान करना हमारे लिए लाजमी है? क्या यह असंभव है कि अपवादों की संख्या हम इतनी बढ़ा लें कि वही नियम बन जाये? क्या लाजमी है कि मनुष्य पहले पशु हो और बाद में मनुष्य?

मो॰ क॰ गांधी

निर्मम प्रेम

गांधी-जन्म-शताब्दी के पावन प्रसंग में प्रणति-पूर्वक

जैनेंद्र कुमार

मैंने कहा—"बापू, एक अनुमति चाहता हूं।"

बापू ने ऊपर आंख उठायी और मुझे आधे क्षण देखा।

"यह चाहता हूं कि आपके इस कमरे में दो रोज मेरे लिए रोक-टोक न हो। कुछ मुझे बात करना नहीं है। सिर्फ रहना और देखना चाहता हूं। आपका कुछ हर्ज होता देखूंगा—कोई प्राइवेट बातचीत......"

"प्राइवेट मेरे पास नहीं है। सब खुला है।" कहकर वह हंसे—"यही प्राइवेट मानो कि बाथरूम जाता हूं। हां, लोग कुछ अपने साथ की बातचीत को प्राइवेट मानना चाहते हों, तो बात दूसरी, और वह तुम समझ ही लोगे।"

इस तरह दो रोज बेखटके मैं उनके कमरे में रहा किया और आया-जाया किया। देखा कि उनका हर क्षण एक अनुभव था, ज्वलंत और जागृत! मानो सोते भी सोते न हों, भीतर जगे ही रहते हों। ऐसा नहीं लगता था, जैसे कुछ कर्तव्यनिष्ठों के साथ होता है, कि वे अतिरिक्त कसे हों, दमित और मानो चौकसी पर। तपस्वी का रूप मुझे उनमें नहीं दीखा। या होगा तो भोगी से मिला होगा। अर्थात् हर क्षण मैंने उन्हें हार्दिक पाया।

काम और आराम—ऐसे दो खाने नहीं दीखे। कर्तव्य कर्म मानो उन्हें सहज कर्म भी हो। यह स्थिति अत्यंत विरल है। पर गांधीजी का शरीर-यंत्र जैसे इतना सधा था कि क्या संगीत होगा। चारों ओर की परिस्थिति चाहने के साथ मानो उन्हें शून्य हो जाती थी। चाहने पर कोई उपस्थिति, यहां तक कि भीड़ भी, उन्हें उनकी एकाग्रता से च्युत नहीं कर सकती थी। जैसे वे लिखते हों और अयाचित कितने भी आदमी पास आ बैठें, तो वे लोग अनुभव किये बिना न रहेंगे कि वहां वे नहीं हैं।

आयीं एक महिला। भारत के लिए नयी मालूम होती थीं। मालूम हुआ—प्रतीक्षा करती रही हैं। आयीं तो जैसे प्रीति, प्रसन्नता और भीति से कांप रही थीं। गांधीजी ने कहा—"आओ, आओ! इतनी गुलाबी क्यों हुई जा रही हो। सब ठीक? खत मिला था?"

महिला से सहज उत्तर न बन रहा था। वे इतनी विह्वल और आवेग में थीं। जैसे-

[लेखक की पुस्तक 'अकाल पुरुष' से साभार उद्धृत]

तैसे जताया कि पत्र तो नहीं मिला।

जैसे दुर्घट घटा हो। गांधीजी बोले–"लेकिन वह तो प्रेम-पत्र था! यह न समझना, मैं बुड्ढा हूं।"

महिला का वदन आरक्त हो रहा। उन्होंने कुछ शब्द कहे। शब्द वे क्या थे, शुद्ध आह्लाद का संकोच था।

"सच वह मेरे प्रेम की पत्री थी। लंबी, कई सफे की......लो अब हिन्दुस्तान में हो, तो यहां सेवा करोगी......"

"मैं यहां की भाषा तो नहीं जानती।"

"यह तो अच्छा है। मुंह आप ही बंद रहेगा। जैसे सफाई में लगी हो। किसी ने तुमसे बात की। तुमने ऐसे दो उंगली मुंह के आगे रख लीं और हाथ हिला दिया। वह समझेगा गूंगी है और तुम्हें इससे लाभ होगा। तुम झाड़ू दिये जाओगी।"

कहने के साथ गांधीजी ने मुंह पर अपनी उंगलियां रख ली थीं और हाथ हिला दिये थे और बात का अंत आने तक खिलखिलाकर हंस पड़े थे।

देख सका कि महिला को यह स्वागत बड़ा ही अनोखा लगा, पर उतना ही रुचिकर भी। वे इतनी गद्‌गद थीं कि जैसे वह भाव सारे गात पर छलका आता हो।

सहसा गंभीर होकर बोले–"हम अंतिम होंगे......वहां पहले पिछले हो जायेंगे और पिछले पहले......तुम्हारी इंजील ही है न! यह न समझ लेना, मैं उसका पंडित हूं। बस, 'समंन आन दि माउंट' तक ही जानता हूं। तो अब भारत रहोगी और वह तुम्हारा देश होगा। हम दरिद्र हैं, पर दरिद्र में नारायण वसते हैं।"

बीच-बीच में महिला ने कुछ-कुछ कहा। शब्द वाक्य में सही संयुक्त न हो पाते थे। वे इतनी विभोर थीं।

"तो मेरा प्रेम व्यर्थ नहीं जायेगा। हम दोनों मसीह ईसा की राह पर चलेंगे......"

महिला अपनी नीली-भूरी आंखों से गांधीजी को देखा कीं।

"तो हुआ......अब वह कोना है। बैठो तो एकदम चुप बैठी रहना, बाकी कल।"

गांधीजी ने कहने के साथ उंगली उठाकर कोना बता दिया और एक साथ फिर कागजों में डूब रहे।

क्षण में महिला स्तब्ध हो रहीं। जैसे अनहुई हो आयीं। उठीं और बताये कोने में चुपचुपानी जा बैठीं। बैठी रह-रहकर देखती रहीं इस गांधी को, जो प्रेमी बनता है और उसी से शासन करता है।

इन दो दिनों के अनेक संपर्कों में देख सका कि स्नेह उनमें लबालब है; पर छलकता नहीं, बहता नहीं। वे स्निग्ध हैं निस्संदेह, पर कठोर भी कम नहीं। वे अतिशय दारुण, अतिशय निर्मम भी हैं।

आयी साग-भाजी की डलिया। उसी सवेरे की ताजी साग-भाजी अमुक फार्म से आयी थी। मीरा बहन ने पास लाकर रखी और गांधीजी के माथे पर तेवर आये। मीरा सकपकायीं।

"यह क्या है?"

"देखकर बता दीजिये। और......क्या

वनेगा ?"

"सब मुझसे पूछा जायेगा ?" गांधीजी ने ऐसे कहा, जैसे सर्वथा अंतिम हो—"सीखा न जायेगा ? वक्त फालतू है मेरे पास ?"

कहकर टोकरी को पास खींचा। पालक का पत्ता बीच से मोड़ा, जो हल्की-सी चटख देकर टूट आया। दूसरा दूसरे किनारे से लिया और उसी तरह मोड़कर देखा। कहा—"ऐसे जो टूट जाये, ठीक हैं। मुड़ जायें, वे रहने देना। इतना तुम्हें जानना चाहिये। सब्जी के साथ यही पहचान है। और यों ही. मेरे पास न आ धमका करो।"

मीरा बहन को जरा अवसर न मिला। वे पसीने-पसीने हो गयीं। सफाई दी नहीं जा सकती थी, क्योंकि ली नहीं जा सकती थी।

यह निर्मम व्यवहार हाकिमाना न था, पर उससे भी ऊंची हुकूमत उसमें थी। यह उन दो व्यक्तियों के बीच न था, जिनमें अंतर सामाजिक अथवा इतर श्रेणियों के कारण है। कोई निर्वैयक्तिक विवशता उसमें न थी और मानो दोनों ओर से वह व्यवहार पूरी व्यक्तिगत स्वेच्छा से था, संपूर्णत: प्रेम का था। इसी से सर्वथा अनुल्लंघनीय था और हर प्रकार के बंधन से मुक्त।



एक दिन गांधीजी ने यरवडा जेल में अपने एक साथी से कहा—"आज रात मुझे बड़ी देर तक नींद नहीं आयी। मैं सोने के लिए गया, तो कमरे की पिछली ओर की जाली से कुछ आवाज आ रही थी। मुड़कर देखा, तो सांप का जैसा सिर दिखाई पड़ा।"

"वार्डर बाहर सो रहा था, उसे बुलाना था!"

"सो तो ठीक था, पर उसे बुलाने का मतलब था कि वह दूसरों को बुला लाता और वे सभी मिलकर सांप को मार डालते। इसलिए मैंने सोचा कि सांप को काटना ही हो, तो अंदर आकर मुझे भले ही काट ले, लेकिन वार्डर को बुलाना ठीक नहीं। लेकिन बाद में विचार करने लगा कि अंदर आकर मुझे काटने पर मेरा जो कुछ होना होगा, सो तो होगा ही, पर यदि वह जहरीला होगा और बाहर जाकर वार्डर को भी काट लेगा, तो उस बेचारे की मृत्यु हो जायेगी। मैं विचार में पड़ गया कि इस समय मेरा क्या कर्त्तव्य है ?......मेरे मन में यह मंथन चल रहा था कि आकाश में चंद्रमा कुछ ऊपर चढ़ा और जाली में प्रकाश पड़ने लगा। देखा, तो वह सांप का नहीं कछुए का सिर था। तब मुझे नींद आयी।"

साथी ने कहा कि सांप-जैसे जहरीले प्राणी को मार डालने में क्या बुराई है ?

गांधीजी ने श्रीमद् रामचंद्र के कथन का उल्लेख किया और कहा कि श्रीमद् ने बताया है कि जिस प्रकार हमें अपनी जान प्यारी है, उसी प्रकार इन प्राणियों को भी अपनी जान प्यारी है। इसलिए सच्ची अहिंसा का अर्थ है कि भले हमें जो होना हो सो हो, पर हम उनकी जान न लें।

—उमाशंकर जोशी





जी० एस० भार्गव

हमारे राष्ट्रपति

भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम के अधिकांश सेनापतियों के जीवन में हम यह पाते हैं कि प्रकृति और परिस्थितियां उन पर बहुत कृपालु रही हैं। जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस की भांति या तो वे काफी समृद्धिशाली परिवारों के सपूत थे, जिन्हें फुरसत और विद्या सुलभ थी; अथवा वल्लभभाई पटेल और राजगोपालाचार्य की तरह. राजनीति में उनकी उन्नति का मार्ग इसलिए प्रशस्त हुआ कि महात्मा गांधी ने उनका मूल्य तुरंत पहचान लिया। और इन सबसे बढ़कर, वे नये शहरी मध्यम वर्ग के—या ठीक-ठीक कहें तो बुर्जुआ वर्ग के—सदस्य थे और बंबई, कलकत्ता, मद्रास या अहमदाबाद जैसे महानगर उनके मुख्यकार्य-क्षेत्र थे।

वराहगिरि वेंकट गिरि को महानता के ये सब सीधे साधन दुर्लभ थे। वे पूर्वी समुद्र-तट पर ऐसे पिछड़े कृषि-प्रधान इलाके में जनमे, जो भारत की राजनीतिक धारा से बिलकुल अछूता था। उनकी शिक्षा-दीक्षा हैरो और कैंब्रिज में नहीं, बल्कि उड़ीसा के एक जिले के सदर स्थान बरहामपुर में और उथल-पुथल-भरे आयरलैंड के डबलिन विश्वविद्यालय में हुई।

उन्होंने अपना राजनीतिक जीवन जनता

की आंखों के तारे या रूमानी क्रांतिकारी के रूप में नहीं, बल्कि श्रमिक आंदोलन के कार्यकर्ता के रूप में आरंभ किया, और वह भी ऐसे जमाने में, जब श्रमिक संघटनों में काम करना भारतीय नेताओं में फैशन की बात नहीं थी। इस तरह वे केवल अपने चरित्र-बल और स्वतंत्र मनोवृत्ति के बल पर बहुत नीचे से आरंभ करके इतने उच्च स्थान तक पहुंच सके हैं।

शारीरिक दृष्टि से भी ऐसी ही बात है। यद्यपि गिरि की दमदार काया रोबीली और भली लगती है, मगर वह ऐसी नहीं है कि जिसे देखकर कोई फोटोग्राफर पुलकित हो उठे। उनका भारी-भरकम शरीर उनके व्यक्तित्व को उस बाहरी शालीनता से वंचित कर देता है, जो आज कितने ही राजनीतिज्ञों की सबसे बड़ी संपत्ति है। लेकिन मजबूत और गंजे सिर में से झांकती हुई, भारी पलकों वाली उनकी आंखें बताती हैं कि वे कर्मशील व्यक्ति हैं। परिमार्जित रुचि का दिखावा और शब्द-चातुरी उनके स्वभाव के बाहर की चीजें हैं। वे चलते नहीं, लंबे-लंबे डग भरते हैं।

सत्तर के पार इस उम्र में भी उनकी आवाज में वही दृढ़ता और गूंज बनी हुई है, जिसे लक्ष्य करके राइट-आनरेबल वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री ने कहा था कि चाहे कितनी ही विशाल सभा क्यों न हो, उसमें भाषण देने के लिए उन्हें और गिरि को माइक की आवश्यकता नहीं पड़ती। संक्षेप में, धीमा-धीमा संगीत और मंद-मंद प्रकाश गिरि के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि नहीं है।

वे एकदम सीधे और बेलाग बात करते हैं। यह बेलागपन निर्मम-सा भी लग सकता है। बचपन से ही यह उनके स्वभाव का अंग है, जो उम्र के साथ बढ़ता गया है। १९१६ में बैरिस्टरी पास करके आयरलैंड से घर लौटते समय जहाज पर एक सीलोनी परिवार से उनका साथ हो गया, जो कोलंबो से दक्षिण भारत आ रहा था। परिवार के अध्यक्ष सरकारी नौकर थे, पक्के 'काले साहब'।

बातचीत के दौरान उन्होंने २२ वर्षीय गिरि से पूछा—"घर का क्या हालचाल है?" (उन दिनों अंग्रेज अफसरों की देखा-देखी यहां के लोग भी इंग्लैंड को 'होम' यानी घर कहने लगे थे।) गिरि झल्ला पड़े—"इंग्लैंड आपके बाप-दादों का वतन नहीं है। आपका वतन सीलोन है। अगर आपका मतलब इंग्लैंड से है, तो यह पूछिये कि वहां का क्या हाल है?"

जब गिरि १९४८ में सीलोन में भारत के उच्चायुक्त थे, उन्होंने वहां के तत्कालीन प्रधान मंत्री सर जान कोटलावाला से कहा था कि जब मैं आजादी से पहले केंद्रीय धारा-सभा का सदस्य था, तो मेरा निर्वाचन-क्षेत्र क्षेत्रफल में आपके देश से भी बड़ा था।

जी० एस० भार्गव लिखित तथा पाप्युलर प्रकाशन, बम्बई–३४ द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पुस्तक 'वी० वी० गिरि' से साभार उद्धृत।

ज्यादा हाल का किस्सा लीजिये। मई १९६७ में वे मद्रास में चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य से मिलने गये। कांग्रेस में उन दोनों का निकट संपर्क रहा था और १९३७ के मद्रास मंत्रिमंडल में दोनों साथ थे। यों भी राजाजी गिरि-परिवार के पुराने मित्र हैं। १९४० में अपनी आकस्मिक मृत्यु के कुछ समय पूर्व गिरि के पिता जोगय्य पंतुलु ने राजाजी से कहा था कि मैं गिरि को आपके सुपुर्द कर रहा हूं, आप उसकी देखभाल और मार्गदर्शन करते रहें। सो तीव्र राजनीतिक और वैयक्तिक मतभेदों के बावजूद गिरि राजाजी को आदर और प्रेम से देखते आये हैं।

इसलिए गिरि को यह बात बहुत अखरी कि उपराष्ट्रपति बनने पर राजाजी ने उन्हें बधाई नहीं भेजी। उन्होंने बातचीत की शुरूआत ही इन शब्दों में की कि मुझे जो ५,००० के करीब बधाई के तार मिले, उनमें आपका तार नहीं था। राजाजी ने तुरंत बड़ी मिठास के साथ क्षमा मांग ली। गिरि पैनी, और कभी-कभी चुभती हुई बात कह तो देते हैं, पर वैसे हैं मखमल-से मुलायम। विनम्रता की तो वे मूर्ति हैं।

गिरि का व्यक्तित्व जबर्दस्त पितृभाव की छाया में निर्मित हुआ। पहले उनके नाना डी० वी० रामय्य पंतुलु ने और बाद में पिता ने उनके चरित्र को गढ़ा और गहरा नैतिक रंग दिया। वे ऐसे वातावरण में पले थे, जिसमें शाश्वत नैतिक मूल्यों को सदा ही सांसारिक लाभ से अधिक महत्त्व दिया जाता था।

उनके पिता जोगय्य पंतुलु अपने चाचा द्वारा गोद लिये जाने के कारण काफी बड़ी संपत्ति के उत्तराधिकारी थे। लेकिन जोगय्य पंतुलु को गोद लेने के बाद इन चाचा ने तीसरा विवाह किया, और उनके एक पुत्र हुआ। तुरंत जोगय्य पंतुलु ने सारी संपत्ति चाचा के लड़के के हक में छोड़ दी, हालांकि उन पर बीस व्यक्तियों के विशाल परिवार के पालन-पोषण की जिम्मेदारी थी।

मृत्यु से कुछ दिन पूर्व जोगय्य पंतुलु ने संकल्प किया था कि गिरि तथा उनके भाइयों की शिक्षा-दीक्षा के लिए उन्होंने जो रकमें कर्ज ली थीं, वे सब चुका देनी हैं। यों लेनदार सब रिश्ते-नाते में से ही थे और ये पैसे उन्होंने वापस लेने के लिए नहीं दिये थे। पिता का वचन पूरा करने की जिम्मेदारी गिरि पर आयी और वे अपनी आय में से सबसे पहले कर्ज की किश्तें चुकाते थे।

रुपये-पैसे के मामले में ही नहीं, मानवीय संबंधों में भी गिरि इन्हीं उसूलों पर चलते हैं। राज्यसभा के अध्यक्ष के रूप में वे सदस्यों को अपने विचार व्यक्त करने और प्रतिपक्षी के विचारों को काटने का पूरा अवसर देते थे। लेकिन ज्यों ही देखते कि राज्यसभा-मंच का उपयोग वैयक्तिक आक्षेप करने या राजनीतिक बदला लेने के लिए किया जा रहा है, तो वे बड़ी दृढ़ता से उसे रोकते थे।

श्रमिक नेता के रूप में भी कभी उन्होंने गंदी हथकंडेबाजी में हिस्सा नहीं लिया।

उन्होंने श्रमिक संघटनों को कोरे राजनीतिक उद्देश्यों के लिए उपयोग करने को कभी बढ़ावा नहीं दिया—देश की स्वतंत्रता के लिए भी नहीं। उनकी राय थी कि श्रमिक संघटनों के कार्यकर्ता वैयक्तिक रूप से चाहे तो राजनीतिक कार्यकलाप में भाग लें, लेकिन समूची संस्था के रूप में न लें।

सन १९३०. के नमक सत्याग्रह के दिनों में राजाजी ने गिरि से बड़ी चतुराई से पूछा कि क्या आज इंडिया रेल्वे-मेन्स फेडरेशन के जरिये रेल-कर्मचारियों को सत्याग्रह में सम्मिलित किया जा सकता है ? गिरि उन दिनों फेडरेशन के सर्वमान्य नेता थे। उन्होंने उत्तर दिया कि सारे देश में रेल्वे-हड़ताल आयोजित करना और उसे राजनीतिक रूप देना कठिन तो नहीं होगा; लेकिन इससे आंदोलन अहिंसक नहीं रह पायेगा, क्योंकि फेडरेशन में दूसरे राजनीतिक तत्त्व भी हैं, जो सरकार का तख्ता उलटने के लिए हिंसात्मक कार्रवाई भी करने में विश्वास रखते हैं। राजाजी गिरि की बात से सहमत हो गये और वह विचार छोड़ दिया गया।

किंतु कुछ दिन बाद बंबई में सार्वजनिक सभाओं और प्रदर्शनों पर लगायी गयी पाबंदी को तोड़कर फेडरेशन की जनरल कौंसिल की जो बैठक हुई, उसमें प्रस्ताव पास करके पूर्ण स्वराज्य की मांग की गयी और घोषणा की गयी कि इस उद्देश्य के लिए छेड़े जाने वाले किसी भी संघर्ष को रेल्वे-कर्मचारी पूरा समर्थन देंगे।

यदि गिरि निरे राजनीतिज्ञ होते, तो फेडरेशन की एकता को दाव पर चढ़ा देते, जैसा कि आज गुट या पार्टी की खातिर बहुत-से श्रमिक नेता करते हैं। इस संयत कार्रवाई द्वारा उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर भी यह स्पष्ट कर दिया कि रेल्वे के लाखों संघटित श्रमिक स्वतंत्रता के सवाल पर शेष देश के साथ हैं।

शारीरिक साहस में गिरि जवाहरलालजी की जोड़ के हैं। संकट उन्हें उसी तरह खींचता है, जैसे कि लोहे को चुंबक। १९३७ में वे मद्रास धारासभा के लिए बोब्बिलि से चुनाव लड़ रहे थे। जस्टिस पार्टी के नेता और मद्रास प्रांत के तत्कालीन प्रधान मंत्री राजासाहब बोब्बिलि का निर्वाचन-क्षेत्र भी वही था। चुनाव क्या था, आन का सवाल था। जस्टिस पार्टी ने सब कुछ दाव पर चढ़ा दिया था और उसे ब्रिटिश सरकार का सक्रिय सहयोग प्राप्त था।

मद्रास के तत्कालीन गवर्नर लार्ड वेलिंग्डन ने 'लंदन टाइम्स' के प्रतिनिधि से कहा था, महात्मा गांधी भी राजा बोब्बिलि को उनके इलाके में नहीं हरा सकेंगे। गिरि ने इसका यह जवाब दिया कि राजा साहब को हराने के लिए तो मैं ही काफी हूं, और अपना वचन पूरा करके दिखा दिया।

राजा बोब्बिलि ने पुलिस से साठ-गांठ करके अपने निर्वाचन-क्षेत्र में प्रचार-कार्य करना कांग्रेस के लिए असंभव कर दिया था, विशेषतः अंदरी हिस्सों में। बोब्बिलि में नेहरूजी जिस सभा में भाषण दे रहे थे, उसमें राजा के कर्मचारी हाथी पर बैठकर

नगाड़े बजाने लगे, ताकि लोग नेहरूजी का भाषण न सुन सकें। गुस्से में आकर नेहरूजी हाथियों को भगाने के लिए मंच से कूद पड़े। गिरि उनसे भी आगे लपके। वे अपनी छड़ी इस प्रकार घुमा रहे थे, जैसे वह कोई भयंकर हथियार हो या जादुई छड़ी। राजा के चाकरों को अपने हाथी हटा लेने पड़े।

इसी चुनाव की बात है। पालतेरु गांव के निर्वाचन-केंद्र में राजा साहब के आदमी गुंडागर्दी पर उतर आये। उन्होंने कांग्रेस के चुनाव-एजेंटों की पिटाई कर दी और मतदाताओं को डराना-धमकाना शुरू किया। जब गिरि ने निर्वाचन अधिकारी से शिकायत की, तो उसने अपनी बेबसी प्रकट करते हुए कहा कि गुंडों को बस में लाने के लिए पर्याप्त पुलिस-सिपाही नहीं हैं। अंत में गिरि अपनी छड़ी घुमाते हुए गुंडों पर टूट पड़े और उन्हें भगा दिया।

बाद में जब वे मद्रास के श्रम-मंत्री थे, तो एक बार तिल्लिचेरी (मलबार) में साम्यवादी प्रदर्शनकारियों ने उनका घेराव कर लिया। ये लोग मद्रास में सोली बाटलीवाला के गिरफ्तार किये जाने के विरुद्ध प्रदर्शन कर रहे थे। गिरि ने पुलिस-अंगरक्षकों की मदद लेने से इन्कार कर दिया और प्रदर्शनकारियों से दो टूक शब्दों में कहा कि जो भी हिंसा और अव्यवस्था के लिए उकसायेगा, उससे सख्ती बरती जायेगी।

नैतिक साहस भी गिरि में कम नहीं है। १९३७-३९ में मद्रास में कांग्रेस मंत्रिमंडल में श्रम-मंत्री के रूप में अनेक बार उनकी राजाजी से खटक जाती थी, जो उस समय प्रधान मंत्री थे। एक अवसर पर तो गिरि ने त्यागपत्र देने की भी धमकी दी थी। विशाखपट्टनम् जिले के चित्तिवलस नामक स्थान पर एक जूट-मिल के हड़ताली श्रमिकों पर गोली चलाने से यह मामला उठा था।

गोली चलाने की आज्ञा देने वाले जिला मजिस्ट्रेट सी० डी० क्रोम्बी ने मंत्रिमंडल के इस स्पष्ट आदेश की उपेक्षा कर दी थी कि बल-प्रयोग करने से पूर्व पुलिस को हिंसा की रोकथाम के लिए श्रमिक नेताओं का सहयोग पाने का यत्न करना चाहिये। चित्तिवलस मजदूर यूनियन के अध्यक्ष करुणाकरम् सुब्बाराबु मद्रास विधान-परिषद के कांग्रेसी सदस्य थे। पर उनसे संपर्क नहीं किया गया।

जब विभागीय जांच में क्रोम्बी की गलती सिद्ध हुई, तो राजाजी ने उसे दंडित करने के नाम पर उसका ऊटी तबादला कर दिया। गिरि इस पर चुप नहीं बैठे। गवर्नर लार्ड अस्काईन का भी क्रोम्बी के प्रति प्रेम-भाव था। परंतु जब मंत्रिमंडल की बैठक में गिरि ने यह मामला उठाया, तो गवर्नर यह कहकर साफ बच गये कि "यह तो आपके प्रधान मंत्री ने ही किया है।" मगर गिरि टस-से-मस न हुए। आखिरकार क्रोम्बी का तबादला बल्लारी कर दिया गया। गिरि ने सारा मामला केंद्रीय पब्लिक सर्विस कमिशन के सुपुर्द करवा कर ही छोड़ा।

सन १९४२ में अन्य अनेक राजनीतिक नेताओं के साथ गिरि अमरावती जेल में

रखे गये थे। फिर उन्हें वेल्लोर जेल भेजा जाने लगा। जिस ट्रेन से वे लोग यात्रा कर रहे थे, वह सवेरे नाश्ते के समय विजयवाडा पहुंची।

नेताओं के तबादले को बहुत ही गुप्त रखा गया था। फिर भी अधिकारियों ने यह सोचकर कि गिरि की उपस्थिति का कहीं रेल्वे-कर्मचारियों को पता न लग जाये और उनके प्रति अपनी भक्ति दिखाने के लिए रेल्वे-कर्मचारी प्रदर्शन न करने लगें, ट्रेन प्लैटफार्म के एक छोर पर खड़ी करायी और नजरबंद नेताओं से कहा कि वे तीन फर्लांग पैदल चलकर कैंटीन में आयें। गिरि ने साफ इन्कार कर दिया और अड़ गये कि ट्रेन वापस ले जाकर कैंटीन के सामने खड़ी की जाये। अंत में अधिकारियों को उनकी बात माननी पड़ी।

एक और मौके पर गिरि को पैरोल पर जेल से छोड़ा गया। अधिकारियों ने उनके लिए फर्स्ट क्लास का इंतजाम नहीं कराया था और चाहते थे कि वे इंटर क्लास में यात्रा करें। गिरि ने तुरंत प्रांतीय सरकार के सलाहकार से संपर्क किया और मुंहफट ढंग कहा कि किसी भूतपूर्व मंत्री को इंटर क्लास में यात्रा करने को कहते हुए प्रांतीय सरकार को शर्म आनी चाहिये। तुरंत आदेश जारी कर दिया गया कि फर्स्ट क्लास का एक और डिब्बा उस ट्रेन में जोड़ा जाये और उसमें गिरि के लिए बर्थ की व्यवस्था की जाये।

सन १९२९ में हैदराबाद राज्य रेल्वे के कर्मचारियों ने अपने संघ को सरकारी मान्यता दिलवाने के लिए हड़ताल की। वी०वी० गिरि जानते थे कि संघ को मान्यता मिल जाना ही काफी नहीं है। उन्होंने उसके साथ यह मांग भी जोड़ी कि रेल्वे कर्मचारी का न्यूनतम वेतन १५ रुपये मासिक हो। मंदी के उन दिनों में हैदराबाद में रेल्वे-गैंगमैनों का वेतन ४।। रुपया मासिक था। रेल्वे के एजेंट (आज के हिसाब से जनरल मैनेजर) रोजेनथाल इस मांग से झल्ला उठे। उन्होंने गिरि से कहा कि मजदूरों की ऐसी भरमार है और नौकरियां इतनी कम हैं कि लोग ३ रुपये मासिक पर भी काम करने को तैयार हैं। उनका कहना था कि वेतन खासे अच्छे हैं, उन्हे बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं और उन्होंने गिरि से पूछा—"जब हमें ३ रुपये में आदमी मिलते हों, हम १५ रुपये क्यों दें ?" गिरि को एजेंट का यह रुख बहुत अखरा। उन्होंने तुरंत जवाब दिया—"जब मैं इस रेल्वे के लिए १,००० रुपये मासिक पर एजेंट दिलवा सकता हूं, तो फिर आपको ६,००० रुपये मासिक क्यों दिये जायें ?" बाद में राज्य के प्रधान मंत्री सर अकबर हैदरी ने बीच में पड़कर समझौता कर दिया। गिरि की योग्यता से सर अकबर और निजाम के दरबारी इतने प्रभावित हुए कि गिरि से राज्य की एग्जिक्युटिव कौंसिल में श्रम-सदस्य बनने का प्रस्ताव रखा गया। परंतु गिरि ने प्रस्ताव को तत्काल ठुकरा दिया।



उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ।।

—मेरा कार्य अवश्य ही सिद्ध होगा, ऐसा दृढ़ निश्चय करके मनुष्य को आलस्य छोड़कर उठना चाहिये, जागना चाहिये और प्रसन्नता तथा आशावाद के साथ उन्नति के कार्यों में जुट जाना चाहिये ।

शरीरनिरपेक्षस्य दक्षस्य व्यवसायिनः ।
बुद्धिप्रारब्धकार्यस्य नास्ति किञ्चन दुष्करम् ।।

—जो शरीर की परवाह नहीं करता, जो निपुण और व्यवसायी है, जो बुद्धि-पूर्वक कार्य आरंभ करता है, उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ।

यो यमर्थं प्रार्थयते यदर्थं घटतेऽपि च ।
अवश्यं तदवाप्नोति न चेच्छ्रान्तो निवर्तते ।।

—जो जिस लक्ष्य को चाहता है और जिसके लिए प्रयत्न करता है, उसे वह अवश्य पा लेता है, यदि श्रांत होकर वह बीच में ही उसे छोड़ नहीं देता ।

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थं न क्लीबा न च मानिनः ।
न च लोकरवाद्भीता न च शश्वत्प्रतीक्षिणः ।।

—आलसी लोग अपने इष्ट लक्ष्य को नहीं प्राप्त करते । इसी प्रकार जो डरपोक हैं, अभिमानी हैं, लोकप्रवाद से डरते हैं और सदा केवल प्रतीक्षा करते रहते हैं, वे भी अपने लक्ष्य को नहीं पाते ।

न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति ।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति ।।

—संशय (अर्थात् जोखिम) में अपने को डाले बिना मनुष्य भलाइयों को नहीं देखता। संशय में डालकर यदि जीता है, तो देखता है ।

—डा० मंगलदेव शास्त्री द्वारा संकलित 'सुभाषित-सप्तशती' से



एक कहानी

रिजर्व बैंक आफ इंडिया का अध्यक्ष बनने के कुछ ही महीने बाद १९५७ में मैं जापान गया था। यात्रा का मुख्य उद्देश्य था बैंक आफ जापान को देखना। क्योंकि मैं जानता था कि उस देश के युद्धध्वस्त अर्थ-तंत्र के पुनरुज्जीवन के लिए उसने गजब का काम किया था।

टोकियो से मेरे वापस भारत रवाना होने से पिछले दिन मित्सुई बैंक के अध्यक्ष श्री सातोह मिलने आये। बहुत वर्ष पहले, द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व, वे बंबई में याकोहामा स्पेसी बैंक के मैनेजर रहे थे। इसलिए भारत की समस्याओं में उन्हें विशेष दिलचस्पी थी।

विदा होते समय उन्होंने मुझे हमारी मुलाकात की यादगार के रूप में एक छोटा-सा पार्सल भेंट में दिया। उनकी अनुमति से मैंने वहीं पार्सल खोला और देखा कि उसमें सोनी कार्पोरेशन द्वारा निर्मित एक छोटा-सा ट्रांजिस्टर है। मैंने उनसे पूछा कि मुझे ट्रांजिस्टर रेडियो देने की बात उन्हें क्यों सूझी ?

इस पर उन्होंने मुझे यह कथा सुनायी :

विश्वयुद्ध के कुछ समय बाद, चिथड़े पहने और लंबे बाल बढ़ाये दो युवक टोकियो में उनके बैंक की एक छोटी शाखा के मैनेजर से मिलने आये और लगभग एक लाख रुपये का कर्ज मांगने लगे।

उन्होंने रेडियो-सेटों में वाल्व की जगह जर्मेनियम का उपयोग करने के विषय में कुछ कहा, जो शाखा बैंक के मैनेजर की समझ में नहीं आया। मैनेजर को उनका हुलिया पसंद नहीं आया और उसने उनकी अर्जी अस्वीकार कर दी।

लेकिन मामला किसी तरह श्री सातोह के कानों तक पहुंचा। उन्होंने एक निरीक्षक को आदेश दिया कि वह जाकर उन युवकों के काम की जानकारी प्राप्त करे।

निरीक्षक ने देखा कि वे एक पुराने और खाली गैराज में प्रयोग कर रहे थे। उनके प्रयोगों के तकनीकी पहलू को समझने की क्षमता तो निरीक्षक में नहीं थी, पर उसने रिपोर्ट दी की वे बड़ी ही लगन और मेहनत से काम कर रहे हैं और उन्हें पूरा विश्वास है कि वे संचार-साधनों के क्षेत्र में क्रांति लाने वाले हैं। श्री सातोह ने उन्हें कर्ज दे दिया।

कुछ महीने बाद उन युवकों ने लगभग उतनी ही रकम का एक और कर्ज मांगा, और वह कर्ज भी उन्हें दे दिया गया।

श्री सातोह ने मुझे बताया कि इस प्रकार सोनी कार्पोरेशन की नींव पड़ी, जो कि आज विश्व में इलेक्ट्रानिक और संचार-उपकरणों के सबसे बड़े निर्माताओं में से है।

—एच० वी० आर० अय्यंगार





फान न्हुआन

बंदी कवि का उन्मुक्त गान

जुलाई १९४६, पेरिस। सीन नदी के दायें तट पर एक भव्य राजप्रासाद के स्वागत-कक्ष में एक स्वस्थ और प्रसन्नमुख पत्रकार पंद्रह मिनिट से एक दुबले-पतले आदमी से नोंक-झोंक कर रहा था, जिसके चेहरे पर दुःख और गरीबी की गहरी रेखाएं देखी जा सकती थीं, और जिसके सामने एक छोटे-से फूलदान में लाल गुलाब रखे थे। चारों ओर लगभग एक सौ देशी-विदेशी पत्रकार बैठे थे।

"अध्यक्ष महोदय, आप साम्यवादी हैं न ?" पत्रकार ने पूछा।

"हां।" उस व्यक्ति ने शांत भाव से कहा।

"और आप स्वतंत्रता-संग्राम के सैनिक रहे हैं ?"

"हां।"

"कितने समय तक ?"

"लगभग चालीस वर्ष तक।"

"क्या आप जेल में भी रहे हैं ?"

"हां।"

"किस जेल में ?"

"बहुत-सी जेलों में।"

"लंबे अरसे तक ?"

उस दुबले-पतले व्यक्ति ने सामने बैठे स्वस्थ और प्रसन्नमुख पत्रकार की ओर दो क्षण देखा और हल्का-सा मुस्कराकर कहा—"जेल में समय हमेशा लंबा ही होता है।"

उत्तर अप्रत्याशित था, चुस्त था और प्रांजल फ्रांसीसी भाषा में दिया गया था। वह उलहना था, व्यंग्य था, या विनोद ? जो भी रहा हो, वहां बैठे फ्रांसीसी, अंग्रेज और अमरीकी पत्रकारों को यह देखकर विस्मय हुआ कि बकरीनुमा दाढ़ी वाला यह विद्वान पेरिस और लंदन में भी उसी तरह मुस्करा सकता है, जैसे कि हनोई में, और यह मुस्कान

वर्तमान के उस पार भविष्य को देख सकने वाले एक ज्ञानी पुरुष की मुस्कान है।

* * *

अगस्त, १९४२। दक्षिण पूर्व एशिया। विश्वयुद्ध का दूसरा वर्ष समाप्त होने वाला था। जापानियों ने हिन्द-चीन पर कब्जा कर लिया था। किंतु वियतनाम के ऊपरी इलाकों में स्वतंत्रता-संग्राम का जबर्दस्त मोर्चा कायम हो चुका था।

एक दिन चीन और वियतनाम की सीमा पर च्यांग काई-शेक की पुलिस ने एक व्यक्ति को पकड़ा। इस व्यक्ति के बारे में पुलिस केवल इतना जानती थी कि उसका नाम हो ची-मिन्ह है, वह चुंगकिंग जाना चाहता है और अपने को वियतनामी देशभक्तों का प्रतिनिधि कहता है।

कौन था यह हो ची-मिन्ह?

सन १९२६-२७ के आस-पास न्गुयेन आई-क्वोक नाम का एक वियतनामी देशभक्त पुलिस को चकमा देता हुआ पूर्वी एशिया में घूमा करता था और बाद में उसकी मृत्यु का समाचार छपा था।

मगर यह आदमी भी लगभग उसी उम्र का दिखाई देता था। इसने कपड़े बहुत साधारण पहन रखे थे। लेकिन कुछ छोटी-छोटी बातें स्पष्ट बता देती थीं कि यह व्यक्ति साधारण नहीं है। और हैरानी की बात यह थी कि चुंगकिंग जाकर यह चीनी अधिकारियों से मिलना चाहता था! बस, इसे गिरफ्तार करने के लिए इतना ही काफी था।

पहले उसे त्सिंगसी जेल में रखा गया। फिर उसका एक के बाद एक जेल में तबादला होता रहा।

पौ फटने से पहले, जब तारे अभी धुंधले पड़ रहे होते थे, उसे उठाकर एक जेल से दूसरी जेल पैदल ही रवाना कर दिया जाता। हथकड़ियां और बेड़ियां पहने वह दो सिपाहियों के पीछे-पीछे चल पड़ता। जब रात आसमान से उतरने लगती और पक्षी अपने घोंसलों को लौटने लगते, तब उसे किसी गंदी-सी कोठरी में बंद कर दिया जाता। इस प्रकार चौदह महीनों तक इधर-से-उधर जाते हुए उसने क्वांगसी प्रांत के तेरह जिलों की अठारह जेलों की हवा खायी।

प्रतिदिन तीस-पैंतीस किलोमीटर की पैदल यात्रा, उनींदी रातें, जाड़ा और बुखार। पर इन सबके बावजूद कैदी के मुंह पर से मुस्कान मिटी नहीं। यह मुस्कान इस बात का प्रमाण थी कि जीवन पर, और पाप व मृत्यु को पराजित करने की जीवन की शक्ति पर उसे अडिग आस्था है।

उन दिनों की चीनी जेलें नरक से भी बुरी थीं। उनमें राजनीतिक कैदी, चोर-डाकू और हत्यारे, सिफलिस के रोगी, सब एक साथ रहते थे। उन्हें अपना खाना खुद पकाना पड़ता। नहाने, कपड़े धोने की कोई सुविधा नहीं थी। सभी दाद और खुजली से पीड़ित थे। गंदगी और बीमारियों के उन घरों में, जिन्हें जेलें कहा जाता था, आदमियों के खून पर मच्छर, पिस्सू, जुएं व खटमल पलते थे।

कई बार हमारा कैदी रात के अंधेरे में बैठा-बैठा अपने उन साथी कैदियों को, उनके मासूम चेहरों को देखा करता था। कैदी जमीन पर लेटे हुए हैं, खटमलों की फौजें दीवारों पर से उतर-उतरकर आ रही हैं, मच्छरों की टोलियां भिनभिना रही हैं। बाहर संसार में घमासान युद्ध चल रहा है, जबकि हमारा दुखी और उदास कैदी जेल की कोठरी में बैठा हुआ है—अपने देश से, अपने साथियों से दूर, बहुत दूर।

ऐसे अवसरों पर कभी-कभी कैदी अपनी जेब से एक फटी-पुरानी कापी निकालता और उस दिन की अपनी अनुभूति को लिपिबद्ध करता। और इसके लिए वह चीनी भाषा का ही उपयोग करता, ताकि जेल के वार्डन शक न कर सकें। इस प्रकार लगभग

睡不着
一更…二更…又三更，輾轉徘徊睡不成。
四五更時才合眼，夢魂環繞五尖星。
懷友
昔君送我至江濱，問我歸期指谷新。
現在新田已犁好，他卻系作獄中人，
替難友們寫報告
同舟共濟義難辭，替友編修報告書。
「奉此」「等因」今始學，多多博得感恩詞。

हो ची-मिन्ह की हस्तलिपि

सौ मुक्तकों ने जन्म लिया। इनकी भाषा क्लासिकी चीनी थी, परंतु मुहावरा और भाव नया था। उन्हीं में से कुछ मुक्तक यहां दिये जा रहे हैं :



कविताएं गाना मेरे स्वभाव में नहीं है,
किंतु कारागार में मैं और कर भी क्या सकता हूं ?
बंधन के ये दिन कविताएं गूंथने में बिता दूं—
और इन्हें गा-गाकर मुक्ति का दिन निकट ला दूं।।

खड़े-खड़े पहाड़ और ऊंची चोटियां लांघ चुकने पर,
मैदानों में मुझे खतरे की कल्पना क्योंकर होती ?
पर्वतों में बाघ से पड़ा पाला और मैं बचकर चला आया,
मैदानों में मानुष मिले......उन्होंने मुझे ठूंस दिया जेलों में।।

हर सुबह सूरज दीवार पर से उचककर,
फेंकता है फाटक पर किरणों के बाण—पर फाटक पर पड़ा है ताला।
भीतर जेल की कोठरी अंधकार में डूबी है,
किंतु हमें पता है—बाहर सूरज चमक उठा है।।

दुष्ट दानव की तरह अपना भुक्खड़ मुंह खोले,
निगल जाता है लोहा बंदियों के पैरों को प्रति रात ।
जकड़ लेते हैं जबड़े हर बंदी का दायां पैर,
खुला रहता है बायां—हिलाने, फैलाने को ।।

बंदियों के पास भला सुरा कहां, सुरभित फूल कहां !
किंतु यह सलोनी रात ! ......कैसे मनायें इसका जश्न ?
हवा के गोखे में से मैं गड़ा देता हूं चांद पर आंखें,
और मुस्करा देता है चांद गोखे में से मुझ पर ।।

हमें दिया जाता है बस आधा चिलमची पानी,
चाहे चाय बना लो उससे, या चाहे मुंह धो लो ।
चाय बना ली तो मुंह धोने को पानी नहीं,
मुंह धो लिया तो उस दिन फिर चाय नहीं ।।

बस आधी कटोरी चावल का दलिया दिन में दो बार
दिन-रात पेट में भूख का हाहाकार !
तीन ब्वान के चावल से भला पेट कैसे भरे ?
जब लकड़ी दालचीनी के और चावल मोती के भाव बिकते हों ।।

जाड़े के मौसम का आरसी-सा गोल चांद,
चमचम चांदी-सी किरणें बिछा रहा है धरती पर ।
स्वजनों के बीच जाड़े का सुख भोगने वालो,
जरा याद करो, जेलों में दुख का प्याला पीने वालों को ।।

पति लोहे के सींकचों के इस ओर
पत्नी उस ओर से झांक रही भीतर
कितने निकट परस्पर, केवल इंचों का अंतर !
मगर कितने दूर—जैसे अंबर की ऊंचाई औ' सागर का गह्वर ।
शब्द जो नहीं कहते, कह देतीं आंखें मुखर
हर शब्द से पहले आंखें भर उठती छलछल
देख यह मिलन कौन रह सकता अविचल ।।



पूरब की पीतिमा में घुल गयी गुलाबी,
पुंछी रात्रि की छाया, ऊष्मा जग छायी।
और यात्री के भीतर का कवि
जागा ले अंगड़ाई ।।

यद्यपि, बांध दिये गये हैं मेरे हाथ-पैर कसकर,
किंतु सारे पर्वत पर मैं सुन रहा विहग-स्वर,
भर उठा है वन वसंत-पुष्पों के सौरभ से,
रोक सकता है कौन मुझे इनका सुख लेने से ?
हर लेते हैं ये सुख पथ का कुछ अकेलापन ।।

जाड़े की ठंडी रात—बिना गदेले व कंबल के
घुटने भीतर मोड़े मैं गठरी-सा पड़ा हुआ
कर रहा हूं यत्न सोने का निष्फल, केले के पत्तों पर
थिरकती चांदनी जाड़े की चुभन को बना रही पैनी
खिड़की के पास आकर सप्तर्षि झांक रहे भीतर ।।

उस दिन तुम आये थे नदी-तट तक मेरे संग
पूछा था—"कब लौटोगे ?" मैं बोला—"जब फस्ल पक जाये।"
किंतु फस्ल कब की कट चुकी है, और मैं
सड़ रहा हूं विदेश की जेलों में ।।

सी सहसा गूंजकर जगा देती है घर की याद
सिसकती-सी तान उदासी से नभ में उठती है
टीस-भरी वेदना पहाड़ और नदियां लांघ
हजारों मील का सफर करती है। ऊंची अटारी चढ़कर
कोई किसी की वापसी की राह तकती है।

बड़े चाव से गाते थे गीत पुराने कवि प्रकृति की शोभा के,
बर्फ औ' फूलों के, चांद औ' पवन के, कोहरे, पर्वत व नदियों के।
पर आज हमें रचनी हैं कविताएं जिनमें लोहा हो, फौलाद हो,
कवि को आना चाहिये, आक्रमण का नेतृत्व भी करना ।।

सर्वोदय के सिंहली साधक



चारुमित्रा

"हमने मनुष्य को पृथ्वी से उठाकर चांद पर तो पहुंचा दिया; लेकिन हममें ऐसे कितने लोग हैं, जो मनुष्यों को गंदी बस्तियों से उबार सकते हैं?" यह......पैना प्रश्न श्रीलंका के प्रसिद्ध सर्वोदय-कार्यकर्त्ता श्री टयूडर आर्यरत्न ने दुनिया से पूछा है।

श्री आर्यरत्न का यह प्रश्न एक बुनियादी प्रश्न है। सर्वोदय के आधुनिक द्रष्टा महात्मा गांधी ने भी अपने आपसे और अपने समाज से यही प्रश्न पूछा था और देश के तैंतोस कोटि देवो-देवताओं में एक नया देवता जोड़ दया था—दरिद्रनारायण। श्री आर्यरत्न इसी भगवानदरिद्रनारायण के उपासक हैं।

उनतालीस वर्षीय आर्यरत्न श्रीलंका में सर्वोदय-कार्य के मुख्य आधार-स्तंभ हैं। उनके इस कार्य से प्रभावित होकर हाल में ही उन्हें फिलिप्पोन्स का सुप्रसिद्ध 'मैगासैसे शांति-पुरस्कार' प्रदान किया गया है।

श्री आर्यरत्न श्रीलंका के गांवों में श्रमदान और अन्य रचनात्मक प्रवृत्तियों का संचालन कर रहे हैं। उन्होंने 'शत-ग्राम' योजना तैयार की है, जिसके अंतर्गत सौ गांवों के समूह को आदर्श सर्वोदय-ग्राम बनाने की चेष्टा की जा रही है। उन्हें सर्वोदय-कार्य की मूल प्रेरणा आचार्य विनोबा भावे के भूदान-यज्ञ आंदोलन से प्राप्त हुई है।

वे ग्राम्य-लोकतंत्र में विश्वास करते हैं। उनका कहना है कि जब तक गांवों को उनकी वर्तमान दुर्दशा से उबारा नहीं जाता, तब तक देश का सच्चा विकास संभव नहीं है। शत-ग्राम योजना उन्होंने अक्तूबर १९६२ में आरंभ की थी और उन्हें पक्का भरोसा है कि वह १९७० तक इस योजना को पांच सौ ग्रामों में लागू कर सकेंगे।

'वसुधैव कुटुंबकम्' के आदर्श में निष्ठा रखने वाले श्री आर्यरत्न मानते हैं कि मानव समाज का संघटन परिवार के नमूने पर

किया जाना चाहिये। वे कहा करते हैं कि अच्छे परिवार में चार तत्त्व होते हैं—बांटकर भोगना, दयालुता, रचनात्मक कार्यकलाप और समता। जब तक ये चारों गुण अथवा तत्त्व समाज का मूल आधार नहीं बनेंगे, समाज पूरी तरह मानवीय नहीं बन पायेगा।

और समाज को मानवीय बनाना ही उनके कार्यकलाप का ध्येय है। उन्हीं के शब्दों में "सभी धर्मों और जातियों के लोगों में स्वभावत: बहुत अधिक सज्जनता होती है। इसी सज्जनता को संघटित करने का कार्य हम कर रहे हैं। सभी धर्मों में यह आस्था और आशा निहित है कि संसार के समस्त प्राणी सुखी और प्रसन्न हों।"

और यही सर्वोदय का सारतत्त्व है—सबका संपूर्ण-उदय। भगवान बुद्ध ने जब अपने शिष्यों को 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' प्रव्रजन की दीक्षा दी, तो 'बहु' से उनका प्रयोजन 'सर्व' यानी सबसे ही था। बौद्ध धर्मावलंबी श्री आर्यरत्न, तथागत के दिखाये लोकहित और लोक-संग्रह के मार्ग पर विनम्रतापूर्वक और पूर्ण समर्पण-भाव से चल रहे हैं।

"जो अपना जीवन बलि चढ़ाता है, वही उसे सच्चे अर्थ में प्राप्त करेगा।" इस बाइबल-वाक्य को उन्होंने जीवन का निर्देश-सूत्र बना लिया है। किंतु मनुष्य उस सच्चे जीवन को प्राप्त करने के लिए उत्सुक नहीं दिखाई देता; क्योंकि आज का अर्थ-शास्त्र—पूंजीवादी और साम्यवादी दोनों प्रकार का अर्थशास्त्र—इस धारणा पर आधारित है कि मनुष्य स्वभावत: स्वार्थी जीव है।

सबका समान उदय तभी संभव है, जब मनुष्य के मानस को इस भ्रांति से मुक्त कराया जाये। इसके लिए उनके कथनानुसार—"हमें बुनियादी प्रश्नों पर फिर से विचार करना चाहिये। मनुष्य स्वभावत: स्वार्थी नहीं है। बच्चा दो वर्ष की उम्र तक कभी 'मेरा' शब्द का प्रयोग नहीं करता, वह अपनी निजी चीजों को 'बेबी की चीज' कहता है। 'मेरा' शब्द वह समाज में सीखता है। स्वार्थीपन की आदत वह बाद में ग्रहण करता है। हमें अपनी समाज-व्यवस्था की पुनर्रचना मनुष्य की बुनियादी सज्जनता के आधार पर करनी चाहिये।"

श्रीलंका में सर्वोदय आंदोलन के प्रवर्तक और संचालक टयूडर आर्यरत्न, स्वयं भारत आकर आचार्य विनोबा भावे के साथ पद-यात्रा कर चुके हैं। उनकी पत्नी श्रीमती नीता धर्मचारी सच्चे अर्थों में उनकी सहधर्मिणी हैं और शिक्षिका का पद त्यागकर अपना पूरा समय सर्वोदय कार्य में लगा रही हैं। उनके तीन बच्चे हैं—बेटी समि[illegible] चारिका (१०) तथा दो बेटे—विनय शांति दास (७) और जीव धम्मिका (३)। तीनों को सर्वोदय घुट्टी में पिलाया गया है।

आर्यरत्न पेशे से शिक्षक हैं और कोलंबो के एक प्रसिद्ध हाई स्कूल में अध्यापक हैं। उन्होंने स्नातक-स्तर तक शिक्षा पायी और अध्यापन का प्रशिक्षण भी लिया है। स्कूल के कार्य से बचा हुआ समय तथा पू[illegible]

अवकाश-काल वे सर्वोदय-कार्य में लगाते हैं। स्कूल से मिलने वाले वेतन के सिवा अन्य किसी स्रोत से उन्हें कोई आमदनी नहीं है। यही नहीं, वे अपने वेतन में से भी पैसा बचाकर सर्वोदय-कार्य पर व्यय करते हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि उनका व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन कितना सादा होगा। मैगासैसे पुरस्कार की दस हजार डालर की रकम भी उन्होंने एक स्कूल को दान कर दी है।

धर्म में जीवंत निष्ठा रखने के कारण वे मानते हैं कि धर्म इस प्रकार की कर्म-निष्ठा को जगाने में सहायक हो सकता है। किंतु साथ ही वे कहते हैं—"अब तक धर्म मंदिरों, कोविलों और गिरजाघरों में बंदी रहा है। हमें धर्म को जनता तक ले जाना है और उसे एक गतिशील स्वरूप प्रदान करना है।"

राजनीति में आर्यरत्न को कोई रुचि नहीं है। वह कहते हैं—"राजनीतिज्ञ की सीमा यह है कि वह केवल पांच वर्ष यानी अगले चुनाव तक की योजना तैयार करता है, जबकि जरूरी यह है कि हममें से कुछ लोग तो अधिक लंबे समय यानी जीवन-भर के लिए योजना बनायें।"

गीताकार के शब्दों में श्री आर्यरत्न कहते हैं—"हमें अपने कार्यों की सफलता-असफलता की चिंता न करके निरंतर प्रयत्नशील रहना चाहिये। कर्मण्येवाधिकार-स्ते मा फलेषु कदाचन।"



बुद्धदेव ने अपने शिष्यों से कहा —"मैं तुम्हें एक प्रदेश में किसी विशेष कठिन काम के लिए भेजना चाहता हूं। अगर उस देश के निवासियों ने तुम्हारी बात न सुनी, तो तुम क्या करोगे?"

"भगवन्! हम समझेंगे कि वे लोग बड़े अच्छे हैं। उन्होंने हमारी बात नहीं सुनी, लेकिन हमें गाली तो नहीं दी।" एक शिष्य तत्परता से बोला।

"और अगर उन्होंने तुम्हें गाली दी तो?"

"तो हम समझेंगे कि वे लोग बड़े अच्छे ही हैं। उन्होंने हमें न मारा, न पीटा।" दूसरे शिष्य ने जवाब दिया।

"और अगर मारा-पीटा तो?"

"जान से तो नहीं मार डाला। बड़े भले लोग हैं वे।"

"और अगर जान से मार डाला तो?"

चौथे शिष्य ने फुर्ती से कहा —"तब भी हम तो समझेंगे कि उस प्रदेश के लोग बहुत ही अच्छे हैं, जिन्होंने हमें भगवान का काम करते हुए भगवान के पास पहुंचाया।"

मुस्कराते हुए बुद्धदेव बोले—"जाओ, शिष्यो! तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। अब तुम धर्म-प्रचार कर सकते हो।"

—निर्मला देशपांडे



मेरा धर्म

काका कालेलकर

हिन्दू समाज में सबसे बड़ा वर्ग है सनातनियों का। गांधीजी अपने को सनातनधर्मी ही मानते थे। मैं भी अपने को पूर्ण रूप से सनातनी मानता हूं। सनातन-धर्म है ही बड़ा विशाल, सर्वग्राहक, उदार और मोक्षपरायण। उसने अपने यहां अनेक तरह की साधनाएं मंजूर कर रखी हैं। हरएक व्यक्ति को अपना उपास्य दैवत पसंद करने की पूरी स्वतंत्रता है। जहां कहीं धार्मिकता है, पवित्रता है, संयम और निष्काम सेवा है, सनातन-धर्म ने उसका आदर किया है। मतभेद की कद्र करके अपने घर में विविधता को अवकाश देने वाला इतना उदार धर्म शायद ही दूसरा होगा।

जब किसी ने सनातन-धर्म की व्याख्या लोकमान्य तिलक से पूछी, तब उन्होंने नीचे का श्लोक बना दिया :

प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु साधनानामनित्यता।
उपास्यानामनियम एतद् धर्मस्य लक्षणम्॥

[वेदों को प्रमाण मानना, साधनाओं की अनित्यता, उपास्य देवों का अनियम—यह (सनातन) धर्म का लक्षण है।]

इस व्याख्या में हिन्दू धर्म की उदार[ता] और विविधता-संग्रह-वृत्ति, ये दोनों वि[शे]षताएं स्पष्ट हुई हैं।

अपने को दूसरे से अलग बताने के लि[ए] सनातनियों ने वेदों के बारे में आग्रह रखा सो तो ठीक हुआ। लेकिन प्रामाण्य-बुद्धि का आग्रह रखना जरूरी नहीं था। हम सब वैदिक परंपरा को मानते हैं। अपने सब ज्ञान का और धर्मभावना का उद्गम वेद में देखते हैं। यह है ऐतिहासिक वस्तुस्थिति; इसमें मानने या न मानने की कोई बात नहीं है। प्रामाण्य-बुद्धि का आग्रह न रखते हु[ए] मैं कहूंगा कि सनातनियों के मन में वैदि[क] परंपरा के बारे में सामान्य मौलिक आद[र] रहा, तो बस है।

किसी ग्रंथ में जो कुछ लिखा है, उसे मैं पूर्णतया समझूं या न समझूं, मुझे मान्य कर[ना] ही चाहिये—यह आग्रह जरा विचित्र-सा है। ऐसी ज्यादती किसलिए ?

आद्य ऋषियों ने अपने जमाने के लि[ए]

जो इष्ट था, सो लिखा। उसके बाद दूसरे ऋषि आये। उन्होंने पुरानी बातें विशेष स्पष्ट कीं, गलत धारणाएं दूर कीं, अनुभव से जो बढ़ाने लायक था, बढ़ाया; मुख्य कलेवर वैसा ही रखा और इधर-उधर सुधार करके अपने धर्म को अपने जमाने के अनुकूल बनाया।

इसी तरह श्रुतियों की मदद में स्मृतियां आयीं। इन दोनों का उद्दीपन करने के लिए और धर्म का स्थानिक और कालिक स्वरूप पहचानकर उसे व्यापक बनाने के लिए पुराण-ग्रंथ लिखे गये। उनमें सर्ग (सृष्टि की उत्पत्ति), प्रतिसर्ग, राजवंश, एक के पीछे एक आने वाले मनु, उनके मन्वंतर आदि विस्तार और इतिहास लिखा गया। स्थानीय आदिवासियों के धर्म-विचारों का, उपासना-पद्धतियों का और रस्म-रिवाजों का भी अनादर न करते हुए उनका यत्र-तत्र अनुकूल रूपांतर किया गया।

इस तरह यह सनातन-धर्म युगानुरूप विकास करता आया है। मनु भगवान ने कहा ही है—कृतयुग के (सत्ययुग) धर्म अलग थे, द्वापर-त्रेता के धर्म अलग। समाज जैसे बिगड़ता गया, युगों का ह्रास हुआ, वैसे धर्म बदलने पड़े; कहीं सख्त करने पड़े, कहीं नरम करने पड़े। इसीलिए हमारा सनातन-धर्म प्रगतिशील, विकासक्षम और संतोषदायी बना है।

हम अगर पुरानी बातें ही ले बैठते, तो हम अपने धर्म को 'पुरातन' कहते, 'आदिम' कहते और उसे 'अपरिवर्तनीय' जाहिर करते। पर हमने अपने मर्म को कलानुकूल बनाकर उसे पुरातन यानी 'बासी' होने नहीं दिया। हमारा धर्म हमेशा 'ताजा', 'नित्य-नूतन' है। इसीलिए हम उसे 'सनातन' कहते हैं। 'सदातन' और 'सनातन' एक ही है। प्रगतिशील होने के कारण, बहते पानी के जैसा जो ताजा है, वह है सदा के लिए सनातन।

चंद बातें सत्ययुग में चलती थीं। बाद के लोगों ने देखा कि वे चलाने लायक नहीं हैं। सनातनी होने के कारण, उन्होंने पुरानी बातों की निंदा नहीं की। इतना ही कहा कि उस जमाने के लोग अच्छे थे, उन बातों को संभाल सके। अब कलियुग आ रहा है। इसमें वे पुरानी बातें निभ नहीं सकेंगी। ऐसी दलीलें करके कई पुरानी बातें 'कलिवर्ज्य' घोषित कीं।



इसमें भी खूबी यह कि जो बातें एक जमाने के धर्म-नेताओं ने 'कलिवर्ज्य' कहकर छोड़ दीं, उन्हीं की उपयोगिता नये सिरे से साबित होने पर, फिर से उन्हें चालू करने और उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाने में नये लोगों ने संकोच नहीं किया।

इसका एक ही उदाहरण हम यहां

लेंगे। कहते हैं, वेदों के आदिम काल में संन्यास आश्रम नहीं था। पूर्वमीमांसावादी आज भी संन्यास आश्रम को नहीं मानते। बाद में वह आश्रम आया। वेदांतियों को वह भाया। दो पत्नियों वाले याज्ञवल्क्य ऋषि उत्तरावस्था में संन्यासी हुए थे। संन्यास आश्रम पनपा। लेकिन आगे जाकर बिगड़ गया होगा। तब धर्मनेताओं ने उसे कलिवर्ज्य में डाल दिया।

वही संन्यास आश्रम बौद्ध और जैन संप्रदायों को बहुत कारगर मालूम हुआ। बौद्ध भिक्खुओं और जैन श्रमणों ने धर्म-प्रचार जोरों से चलाया।

अब शंकराचार्य को सनातन-धर्म की बुनियाद संभालते हुए वेदांत का प्रचार करना था। उन्होंने संन्यास आश्रम का जोरों से पुरस्कार किया, संघटन किया। शांकर संप्रदाय में आज दस प्रकार के संन्यासी और उनकी मदद में चार प्रकार के ब्रह्मचारी आश्रम धर्म को निभाते हुए पाये जाते हैं।

इंद्र, वरुण, नासत्यौ आदि वेदकाल के उपास्य देव-देवियों की पूजा अब कहां होती है? उनकी जगह पंचायतन पूजा आ गयी। विष्णु की पूजा में भी राम-कृष्ण आदि अवतारों की पूजा ही प्रधान हुई।

सनातन-धर्म में समय-समय पर सुधार और परिवर्तन होता आया है। वैज्ञानिक लोग जिस तरह प्रयोग करने के बाद जो ताजा, अद्यतन और परिपक्व ज्ञान उन्हें उपलब्ध है, उसी के अनुसार चलते हैं, वैसे ही सनातनी लोग अनुभव-चिंतन के अनुसार जो बातें अद्यतन और सिद्ध हों, उन्हीं जोर देंगे।

पुराने शास्त्रों के बारे में हमारे मन आदर हो, पुराने ऋषियों के अनुभव और सलाह की हम कद्र करें; लेकिन ऐ कभी न मानें कि आंखें मूंदकर, बुद्धि दरवाजा बंद करके उनकी सब बातें मा के लिए हम बंधे हुए हैं।

लोग कहते हैं, प्राचीन ऋषि पवित्र निष्पाप थे, सब कुछ जानते थे, सर्वज्ञ थे भूत, वर्तमान और भविष्य सबका सब उ मालूम था, यानी वे त्रिकालज्ञ थे। पुरा सयाने लोगों ने ऐसी अंधी भक्ति को मंजू नहीं किया था। ऋषियों में भी अपनी-अप अलग रायें होती थीं। एक आदमी ने पूछ है कि कपिल महामुनि अगर सर्वज्ञ थे, तो कणाद महामुनि वैसे नहीं थे, ऐसा कहने के लिए आपके पास सबूत क्या है?—कपिल यदि सर्वज्ञः कणादो नेति कां प्रमा?

आज के सवालों का हल आज की बुद्धि से होना चाहिये। सब शास्त्रों के प्रति आदर लेकिन निर्णय तो अपने अनुभव का यानी 'आत्मदेव' का।

पुराना सब कुछ फेंक देना सनातन-वृत्ति के खिलाफ है। ज्ञान बढ़ा, समाज में परिवर्तन हुआ, दुनिया बदल गयी, तो नयी परिस्थिति में अपनी धर्म-बुद्धि को जो ठीक ल उतना परिवर्तन हम जरूर करेंगे। जैसे बच पन का शरीर ही आज है, लेकिन उस हेरफेर होता आया है, वैसे ही धर्म-शरीर का होना चाहिये। परिवर्तन कभी धीरे

धीरे होगा, कभी तेजी से करना पड़ेगा।

अब यहां सनातनियों की एक कमजोरी जरूर बता दूं। सनातनी लोग पुरानी बातों में बदल नहीं करते सो नहीं; परिवर्तन करेंगे, प्रगति करेंगे, कभी-कभी तेजी से आगे बढ़ेंगे। लेकिन उनका नियम है कि काल-भगवान जितना आगे बढ़ने को कहेगा, उससे एक-दो मंजिल पीछे रहेंगे। इसी में वे अपनी सलामती मानते हैं। फल यह होता है कि प्रगति करने वाले लोगों को काल-भगवान जो बख्शीश देता है, प्रसाद देता है, वह इन्हें नहीं मिलता। सुधार किया, लेकिन पूरा नहीं किया। इस वास्ते लाभ से वंचित रहे। पीछे रहने में सलामती मानी और अपना हित खो बैठे, परास्त के परास्त बने रहे। ऐसी हालत आइंदा नहीं रहनी चाहिये।

परिस्थितिवश लाचार होकर अपने रहन-सहन में हेरफेर सब करते हैं। लेकिन सोच-विचार कर समाज-हित के लिए जो जरूरी साबित हो, उतना परिवर्तन करने की हम हिम्मत करें, तो कहा जायेगा कि हममें चैतन्य है, प्राण है, धर्मतेज है। लाचारी से परिवर्तन करना जड़ता का लक्षण है। वह तो सब करते ही आये हैं। विजयी वही है, जो हिम्मत के साथ, इरादतन आगे बढ़ता है। सच्चा सनातनी जड़ता को छोड़कर प्राणवान ही रहेगा। ['मंगलप्रभात' से]



आप जानते हैं, भगवान श्री आदिशंकराचार्य के जीवन की वह घटना। वे काशी में गंगास्नान के लिए पधार रहे थे। सामने कुत्तों सहित चांडाल खड़ा था। आचार्य ने कहा—"दूरं गच्छं— दूर हट जाओ।" चांडाल ने कहा —"संन्यासि-शिरोमणि ! आप देह को दूर हटाना चाहते हैं या आत्मा को।" आचार्य ने चांडाल के वचन की गंभीरता और तात्त्विकता को धारण किया। शंकराचार्य ने स्वरचित 'मनीषा-पंचक' में स्पष्ट कहा है कि जिसे ब्रह्मात्मैक्यबोध प्राप्त हो गया है, वह चांडाल हो या ब्राह्मण, मेरा गुरु है।

आपने सुना होगा, श्री रामानुज-संप्रदाय के मूलभूत आचार्यों में सभी जाति के महापुरुष रहे हैं। गुरुदेव ने मंत्र-दीक्षा देकर श्री रामानुजाचार्य से कहा —"यह मंत्र किसी और को मत बताना। यह परम कल्याणकारी सर्वोत्तम मंत्र है।" रामानुजाचार्य छत पर चढ़ गये। ऊंचे स्वर से मंत्रोच्चारण करने लगे। गुरुदेव ने पूछा —"यह क्या ?" आचार्य ने कहा —"गुरुदेव ! सुनने वाले प्राणियों का कल्याण हो, मैं अकेले नरक में चला जाऊंगा।"

किसी ने महाप्रभु श्री चैतन्यदेव से यह प्रश्न किया– "आप कौन हैं ?" उन्होंने स्पष्ट कहा —" मैं वर्णाश्रम का अभिमानी नहीं हूं। मैं प्रभु का एक छोटा-सा सेवक हूं।" आपको ज्ञात होगा कि महाप्रभु के संप्रदाय में सभी प्रकार के लोगों का समावेश है। भक्ति संप्रदाय ने अत्यंत उदारता के साथ प्राणियों को कल्याण की दीक्षा दी है। शास्त्रों में-संप्रदाय-निरपेक्ष सर्वलोक-कल्याणकारी धर्म का ही निरूपण हुआ है। —स्वामी अखंडानंदजी



ज्योतिलक्ष्मी के स्वागत में

आलोक की विजय और समृद्धि के संकल्प का ही संक्षिप्त-सा, मिठा-सा नाम है—दीपावली। मानस में आनंद और उजाला भरने वाले साहित्य का सांकेतिक नाम है—नवनीत।

दीपावली के उल्लासमय अवसर पर नवंबर १९६९ में नवनीत अपनी परंपरा के अनुसार रससिक्त और ज्ञान-भरित विशेषांक प्रस्तुत कर रहा है। २७२ पृष्ठों के इस संग्राह्य अंक के विषय-वैविध्य का पूर्वाभास लीजिये :



सांस्कृतिक लेख :

विनोबा, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, जे० कृष्णमूर्ति, विल डयुरेंट, बर्ट्रेंड रसल, कार्ल युंग।

संस्मरण :

सार्थकता के क्षण—इंदिरा गांधी; एक श्रमिक नेता के अनुभव—वी० वी० गिरि; जवाहरलाल की जीवन-साध—मोरारजी देसाई; मेरा बाहरी प्राण—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य; लागूं गुरु के पायं—स्वामी श्रद्धानंद, रविशंकर, राल्फ बुंच; आलोक-स्नान—गुरुदयाल मल्लिक।

समृद्धि के सोपान :

१. बिजली के उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में भारत के अपूर्व पराक्रम का परिचय; २. सहकारिता द्वारा गुजरात के गांवों में लक्ष्मी की अवतारणा कराने वाले अमुल दुग्ध कारखाने की झांकी; ३. भारत में औद्योगिक युग की अवतारणा के लिए जमशेदजी नवरोजजी टाटा की भगीरथ-तपस्या की कथा।

कहानियां :

अमृतलाल नागर (हिन्दी); मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (कन्नड); खदीजा मस्तूर (उर्दू); पास्तोव्स्की (रूसी)।

नवनीत का विशेषांक

पुस्तक-संक्षेप :

अपने को सांवली सरस्वती कहने वाली संस्कृत की कवयित्री वज्जिका के नाटक 'कौमुदी-महोत्सव' का सार।

राजनीति :

राष्ट्रों का निर्माण—क० मा० मुनशी; नयी सामरिक स्थितियां—के० सुब्रह्मण्यम्।

कला :

यामिनी कृष्णमूर्ति, कैथे कोलवित्स और के० सी० एस० पणिक्कर की कलान्साधना का परिचय।

शताब्दी वर्ष :

१. राष्ट्रपिता की जन्म-शताब्दी के संदर्भ में विशिष्ट सामग्री; २. गुरु नानक की पांच सौवीं जयंती के पुण्य-प्रसंग पर नानक-रचित 'बाबर-वाणी'।

इतिहास :

१. विजयनगर साम्राज्य के प्रेरणा-गुरु विद्यारण्य की जीवन-कथा; २. सिंहल को एक राष्ट्र का रूप देने वाले प्रतापी राजा पराक्रमबाहु का इतिहास; ३. माया-संस्कृति के नरदेवता।

कविताएं :

बच्चन, दिनकर, भवानी प्रसाद मिश्र, सोनवलकर।

विज्ञान :

चांद पर और चांद से भी परे; रूपचित्र नहीं, तापचित्र; प्रतिपदार्थ क्या है?; विश्व का जटिलतम टेलिफोन-एक्सचेंज; हरी-भरी क्रांति—डा० स्वामिनाथन्।



२७२ पृष्ठों के अंक का मूल्य केवल २.५० रुपये

पशु-हृदय की झांकी:

मैत्री का मजार

प्रतापराय गोपालजी त्रिवेदी

एक सौ साठ वर्ष पहले कच्छ के सेनापति फतह मुहम्मद के पास शानदार घुड़सवार सेना थी। उसके पास हमेशा बीस हजार चुने हुए घोड़े तैयार रहते थे।

सन १८०८ में जब कच्छ में भयंकर अकाल था और भूखे-प्यासे पशु पानी और चारे की तलाश में इधर-उधर भटक रहे थे, एक दिन लगभग छः माह का एक बछड़ा फतह मुहम्मद के अस्तबल में घुस आया। हिरन जैसा रंग, मस्तक, मुंह और चारों पैर हंस के पंखों की तरह श्वेत। अस्तबल के नौकरों ने कहा, यह तो शंकर भगवान का नंदी है। वे उसे भी घोड़ों के साथ खिलाने-पिलाने लगे। सभी उसकी पीठ सहलाते और वह सभी के हाथ प्यार से चाटा करता। घोड़ों के साथ उसकी गहरी मित्रता हो गयी।

पांच वर्ष के बाद वह साढ़े पांच फुट ऊंचा हो गया। सभी कर्मचारी उसे भी खूब सजा-धजाकर रखते। देखने में सचमुच ही वह पूरा नंदी लगता था।

एक बार सेनापति फतह मुहम्मद ने जामनगर पर आक्रमण करने की ठानी और घोड़ों को मांडवी बंदरगाह पर ले जाने का आदेश दिया। घोड़े अस्तबल से बाहर निकालकर मैदान में खड़े कर दिये; मगर नंदी को अंदर ही छोड़कर अस्तबल का फाटक बंद कर दिया गया। मगर नंदी ने तूफान खड़ा कर दिया। उसने अंदर से टक्कर मार-मारकर फाटक तोड़ डाला और बाहर आकर घोड़ों के बीच खड़ा हो गया। जब बहुत प्रयत्न करने पर भी वह घोड़ों से अलग होने को राजी न हुआ, तो सेनापति ने उसे भी सेना के साथ ले जाने की अनुमति दे दी।

फतह मुहम्मद का तोपखाना बेडीरोजी बंदर पर जमा किया गया। परंतु जामनगर की सेना ने उससे जूझने के बजाय भुज पर हमला कर दिया। इससे फतह मुहम्मद को घेरा उ ाना और तुरंत कच्छ की ओर लौटना पड़ा।

लगभग सारी फौज लौट चुकी थी। केवल आठ घोड़े, एक तोप, नंदी और चार मजदूर रह गये थे। लेकिन तोप समुद्र की रेत में धंस गयी। मजदूर कोशिशें कर-करके थक गये। घोड़ों को जोतकर खींचा गया; पर सब व्यर्थ। तोप को छोड़कर लौटने से कच्छ की नाक कट जाती।

तभी एक मजदूर ने सुझाया कि तोप में इस नंदी को जोत दो और घोड़े इसे दिखाकर आगे बढ़ा दो और फिर घोड़ों को उसके सामने से हांककर ले जाओ। नंदी उनके साथ चलने के लिए पूरी ताकत लगायेगा और तोप बाहर निकल आयेगी।

उपाय को तुरंत आजमाया गया। घोड़ों को दूर जाते देखकर नंदी ने ऐसा जोर लगाया कि तोप दलदल से बाहर निकल आयी। लेकिन साथ ही नंदी की आंखें भी बाहर निकल आयीं। उसका कलेजा फट गया और उसने दम तोड़ दिया।

सैनिकों की आंखें गीली हो गयीं। अश्वपालक खबर पाकर रो पड़े। नंदी की मृत काया को सम्मानपूर्वक समुद्र के किनारे दफनाया गया। फतह मुहम्मद ने उसके ऊपर समाधि चिनवायी और जामनगर के साथ संधि कर ली।



उस दिन समाचार-पत्रों में पढ़ा कि भाई विनोदशंकर व्यास भी इस संसार से चले गये। एक पुरानी घटना आंखों के सामने आ गयी। सन १९२९-३० ई० में काशी विश्वविद्यालय में पढ़ते समय पूज्य प्रसादजी के यहां अक्सर दर्शनार्थ जाता था। एक दिन वहां गया, तो वे अकेले बैठे थे। शाम का वक्त था। भाई विनोदशंकरजी पास की झाड़ियों से फूल चुन रहे थे। मैंने प्रसादजी को अकेला पाकर उनसे 'आंसू' के कुछ अंश सुनाने की प्रार्थना की। प्रसादजी ने मुस्कराकर मुझसे पूछा कि तुम्हें 'आंसू' की कौन-सी पंक्तियां बहुत पसंद हैं? मैंने तुरंत उन्हें निम्नलिखित पंक्तियां सुना दीं:

घन में सुंदर बिजली-सी, बिजली में चपल चमक-सी,
आंखों में काली पुतली, पुतली में श्याम झलक-सी।
प्रतिमा में सजीवता बसी, बस गयी सुछवि आंखों में,
थी एक लकीर हृदय में, जो अलग रही लाखों में।।

प्रसादजी ने मुस्कराकर कहा —"अब मेरे सुनाने के लिए 'आंसू' में रह ही क्या गया है! तुमने तो नवनीत निकाल लिया।" लेकिन मैंने अपना आग्रह नहीं छोड़ा, तो उन्होंने बड़े ही मधुर स्वर में निम्न पंक्तियां सुनायीं:

मत कहो कि यही सफलता, कलियों के लघु जीवन की,
मकरंद-भरी खिल जायें, तोड़ी जायें बेमन की।
यदि दो घड़ियों का जीवन कोमल वृंतों में बीते,
कुछ हानि तुम्हारी है क्या, चुपचाप चू पड़ें जीते।।

उन्होंने इन्हीं पंक्तियों को क्यों चुना, यह रहस्य तब खुला, जब विनोदशंकरजी ने फूल चुनते-चुनते कहा —"कलियों की काफी वकालत हो चुकी। एक तीर से दो निशाने लगाना आप खूब जानते हैं। अधिक कष्ट की आवश्यकता नहीं, मैं आ रहा हूं।" —सुरेश सिंह



पत्र और परामर्श

मेरी पुत्री, जो कालेज में पढ़ती है, बोली कि सितंबर का पुस्तक-संक्षेप बहुत ही सुंदर है। सोचा, कुछ 'गर्म' चीज होगी, जो नये खून की लड़की को भा गयी। उसके कहने पर सरसरी नजर डालने के लिए 'नवनीत' उठाया। जो पढ़ना शुरू किया तो अंतिम पंक्ति तक पढ़ती चली गयी। फिर घर में सबको पढ़ाया। कितनी विवेकपूर्ण बातें कितनी रोचक शैली में कही गयी हैं! इसके चयन के लिए आपको धन्यवाद। —रमादेवी त्रिपाठी, कटक

०००

डा० क्रिश्चियन वर्नार्ड के 'हृदय प्रतिरोपण और जेटवायु-यान' जैसे लेखों से नवनीत की शोभा है। खोज-खोजकर और भी ऐसी चीजें देते रहिये। —नंदकुमार ज० मेहता, सूरत

०००

चंद्र-विजय पर संपादकीय ही लिखकर आपने तो संतोष कर लिया; लेकिन हम यह आशा करते थे कि आप और भी कुछ देंगे। मुझे तो याद है, आपने ऐसी घोषणा भी की थी। लेकिन क्या आपकी घोषणाएं रेडियो की मौसम संबंधी घोषणाओं जैसी ही होती हैं? —हरिशरण बजाज, बीकानेर

०००

सितंबर के नवनीत में 'डाक्टर की आंखों से' लेख पढ़ा। एक बार मन न भरा, फिर दुबारा पढ़ा। इतने नाजुक विषय पर यह लेख अपूर्व है। —ब्रह्मस्वरूप गुप्त, कलकत्ता

०००

अच्छा 'नवनीत' प्राप्त करने के लिए दही ठीक से जमाना आवश्यक होता है। मगर सितंबर में चयन रुचि का न होने की वजह से भूखे रह जाना पड़ा। 'मैंने भी ताजमहल देखा' तो बिलकुल ही स्वादिष्ट नहीं लगा। हां, 'कुंठा के युग में बैकुंठ का मार्ग' ने कुछ क्षुधापूर्ति की। —राय अंजना चंद्रा, वाराणसी

लोकतंत्र का पावन तीर्थ

एक विराट् राष्ट्र के निर्माताओं का विराट् स्मारक

पहाड़ों से पत्थर काटकर प्रस्तरकार उनसे मूर्तियां गढ़ते हैं और उन मूर्तियों को मंदिरों में रखकर पूजते या चौराहों, संग्रहालयों तथा घरों में सजाते हैं। यह सब तो युग-युग से हो रहा है; लेकिन १९२० में अमरीका के एक महान् प्रस्तरकार के मन में एक अनूठी कल्पना आयी। यह प्रस्तरकार था गुत्जन बोरग्लम।

बोरग्लम अमरीका के इडाहो राज्य में पैदा हुआ था, उसके माता-पिता स्पेन से आकर वहां बसे थे। उसने अमरीका और फ्रांस में रहकर मूर्तिकला सीखी और उसमें ऐसी कुशलता प्राप्त की कि सारी दुनिया में उसकी कला-कृतियों की प्रभावशील सादगी की चर्चा होने लगी। परंतु बोरग्लम तो कोई साधारण काम करना चाहता था।

एक दिन वह दक्षिणी डकोटा राज्य की काली पहाड़ियों (ब्लैक हिल्स) के प्रदेश में घूम रहा था। एकाएक उसकी निगाह रशमोर पर्वत-शिखर पर जा टिकी। करीब दस लाख एकड़ में फैले हुए इस चट्टानी, बियावान इलाके में खड़ा यह पर्वत-शिखर जैसे कलाकार से बहुत कुछ कह गया। वर्षा और तूफानी हवाओं ने इस शिखर की चट्टानों में दरारें डाल दी थीं और दूर से ऐसा मालूम पड़ता था, शिखर पर तरह-तरह की मूर्तियां उभर आयी हैं।

हां, बोरग्लम की आंखों में वे मूर्तियां तैरने लगीं। वह उन्हें पहचानने की कोशिश करने लगा और उसके मन की आंख को कुदरत की उस खुराफात में अमरीका के राष्ट्र-निर्माता जार्ज वाशिंग्टन, टामस जेफरसन, अब्राहम लिंकन और थियोडोर रूजवेल्ट की मुखाकृतियों की झलक मिली।

कलाकार कल्पनाकार होता है। वहां कोई मूर्ति न थी, वह सब कलाकार बोरग्लम के मन की कल्पना थी। बोरग्लम जिस किसी से कहता कि रशमोर पर मूर्तियां हैं,

[अजयकुमार द्वारा प्रस्तुत]

वही उस पर हंसता। उसके मित्र उसे पागल समझने लगे। मगर बोरग्लम कलाकार था, यानी आधा पागल, जो अपने मस्तिष्क के आधे हिस्से में कल्पनाओं को जन्म देता है और दूसरे आधे में उन कल्पनाओं को साकार बनाने वाली योजनाओं को। उसने तय कर लिया कि रशमोर पर्वत-शिखर पर उन चारों राष्ट्र-निर्माताओं की प्रतिमाएं गढ़कर उसे एक राष्ट्रीय तीर्थ बना देना है।

बोरग्लम ने १९२२ में इस राष्ट्र-तीर्थ के निर्माण की योजना तैयार कर ली और अगले पांच वर्षों तक वह धन-संग्रह करता रहा। आखिरकार १९२७ में निर्माण का काम शुरू हुआ और बोरग्लम ने रशमोर की चोटी पर अमरीकी झंडा लहरा दिया।



विराट् कल्पना का धनी
गुत्जन बोरग्लम

यह कोई आसान काम न था। पहाड़ी चट्टान की ऊपरी परत को धूप, हवा और पानी ने खराब कर दिया था, इसलिए ऊपरी परत को छीलकर भीतर से स्वच्छ, त्रुटिहीन चट्टान खोज निकालना बड़ा आवश्यक था।

बोरग्लम को सब तैयारी अकेले अपनी कल्पना के आधार पर करनी थी, इससे पहले इस तरह के निर्माण का कोई उदाहरण न था, जिससे वह कुछ सीख सकता। काम धीमे-धीमे चलने लगा। परंतु उसकी चर्चा तेजी से सारे विश्व में फैल गयी। और देश-विदेश से हजारों लोग उसे देखने के लिए आने लगे। तब तक उस क्षेत्र में कोई भी सड़क न थी। जब सरकार ने यह देखा कि रशमोर पर्यटन-स्थल बन गया है, तो १९३५ में वहां सड़कों का जाल बिछा दिया गया। इस समय तक वहां देश-विदेश के लगभग १ लाख ९० हजार दर्शक पहुंच चुके थे।

वाशिंगटन की प्रतिमा तैयार हो चुकी थी और बोरग्लम जेफरसन की प्रतिमा गढ़ रहा था। १९३६ में वह भी बनकर तैयार हो गयी। उसका अनावरण अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डिलानो रूजवेल्ट ने किया। राष्ट्रपति ने उस राष्ट्रतीर्थ को अमरीकी लोकतंत्र का स्थायी स्मारक कहा।

चारों प्रतिमाओं के निर्माण का कार्य अक्टूबर १९४१ में पूरा हुआ, परंतु इससे छः महीने पूर्व ही इसके निर्माता गुत्जन बोरग्लम का देहांत हो चुका था। इस तरह वह अपनी अमर कल्पना की पूर्ण भव्यता को देखने के सुख से वंचित ही रह गया। शेष कार्य उसके बेटे लिंकन बोरग्लम ने पूरा किया, जो शुरू से इस कार्य में उसका सहायक रहा था।

रशमोर का राष्ट्रतीर्थ ६,२०० फुट ऊंचे शिखर पर स्थित है। इसकी प्रत्येक प्रतिमा का चेहरा ६० फुट ऊंचा है। यदि इसी परिमाण में प्रत्येक राष्ट्रपति की पूरी मूर्ति बनायी जाती, तो वह सिर से पैर तक ४६५ फुट ऊंची होती। ये प्रतिमाएं ६० मील दूर से दिखाई पड़ती हैं। प्रत्येक की नाक २० फुट लंबी, मुंह १८ फुट चौड़ा और आंखें ११-११ फुट चौड़ी हैं।

बोरग्लम ने प्रतिमाओं के निर्माण के समय कहा था कि ये कम-से-कम पांच हजार साल तक इसी तरह रहेंगी। लेकिन रशमोर की पहाड़ी को कड़ी धूप, भारी वर्षा और तेज हवाओं का प्रहार झेलते रहना पड़ता है। ये तीनों प्राकृतिक शक्तियां अब भी पहाड़ी के ऊपरी तल को निरंतर काटती-छांटती रहती हैं। और वर्षा तो इन प्रतिमाओं की सबसे बड़ी दुश्मन है। वर्षा-जल दरारों में भर जाता है और जाड़ों में जमकर दरारों को और भी चौड़ा कर देता है। इसलिए यह जरूरी है कि इन प्रतिमाओं की हर साल मरम्मत की जाये।

यह कोई आसान काम नहीं है। रशमोर की पहाड़ी बहुत नुकीली और फिसलन-भरी चट्टानों से पटी पड़ी है। बड़ी ही ऊबड़-खाबड़ चढ़ाई है और चारों तरफ गहरे खड्ड भी हैं। जरा-सा भी पांव फिसलने पर मौत निश्चित है। मूर्तियां तराशते समय बोरग्लम ने चार लाख टन पत्थर काटकर इधर-उधर बिखरा दिया था। यह टूटा पत्थर भी वहीं पड़ा है और मरम्मत करने वाली टोली के लिए खतरा पैदा करता रहता है।

मगर वहां शुरू से ही सुरक्षा की अचूक व्यवस्था है। पिछले ३७ वर्षों में वहां एक भी दुर्घटना नहीं हुई। जिस समय इनका निर्माण हो रहा था, उस समय भी कोई जान नहीं गयी तथा किसी मजदूर को गहरी चोट नहीं आयी।

सफेद ग्रेनाइट की इन प्रतिमाओं की देखभाल, सफाई और मरम्मत वर्ष में एक बार की जाती है। और यह सारा काम शुरू से ही ग्लैन टी० जोन्स के जिम्मे है। प्रतिमाओं के पास जाने और उन पर चढ़ने का अधिकार केवल जोन्स की टोली को है। जब जोन्स रस्सों से लटककर रूजवेल्ट की २० फुट लंबी मूंछों की मरम्मत कर रहा होता है, तो मच्छर-जैसा छोटा लगता है। उसकी टोली में तीन और लोग हैं।

प्रतिमाओं की दरारों में भरने के लिए सफेद सीसे और ग्रेनाइट के पाउडर को अलसी के तेल में मिलाकर इस्तेमाल किया जाता है। पहले इस लेप को दरारों में भरा जाता है, फिर यंत्रों की मदद से रगड़कर इकसार किया जाता है।

जोन्स कहता है कि मेरा काम तो केवल यह है कि मैं इन प्रतिमाओं को बोरग्लम की इच्छा के अनुसार ५,००० वर्ष तक बनाये रखने के लिए कोशिश करूं। जोन्स ने ईमानदारी के साथ यह कोशिश की है, काश उसकी उम्र ५,००० साल हो और तब तक वह इस राष्ट्रतीर्थ का प्रहरी बना रहे।



सुशीलकुमार दोषी



क्रिकेट उसकी रग-रग में समाया है

अधिकांश भारतीय बल्लेबाज अपने स्ट्रोक एक पांव पीछे हटाकर (आफ दि बैक फुट) लगाने को उत्सुक रहते हैं। निस्संदेह ऐसा खेलने से बल्लेबाज अधिक सुरक्षित रहता है। 'फ्रंट फुट' से स्ट्रोक लगाने के लिए सधी आंखें, बिजली-सा फुटवर्क तथा ऊंचा मनोबल चाहिये। अन्यथा विकेट खोने का अंदेशा रहता है। और फिर तेज गोलंदाज की गेंद को पीटने के लिए क्रीज छोड़कर आगे आ जाना और फिर सही स्ट्रोक लगाना तो अत्यंत दुष्कर होता है। इसके लिए गजब का आत्मविश्वास व तकनीकी योग्यता चाहिये। 'फ्रंट फुट' से लगाये स्ट्रोक इसीलिए अधिक आकर्षण का विषय रहते हैं कि वे साहसिक होते हैं।

सौभाग्य से भारत में पटौदी, वाडेकर इंजीनियर, आबिद अली व दुर्रानी ऐसे बल्लेबाज हैं, जिन्होंने अपने खेल में साहसपूर्ण स्ट्रोक का प्रयोग करके क्रिकेट को अधिक रोमांचक व आनंददायी बना दिया है।

तकनीकी दृष्टि से परखा जाये, तो पटौदी का खेल आज के भारतीय खिलाड़ियों में सर्वाधिक परिष्कृत है। यह बात उनकी विभिन्न पारियों से स्पष्ट परिलक्षित होती है। पटौदी को विश्व के सभी आलोचकों ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर का क्रिकेट-खिलाड़ी माना है।

नवाब मंसूर अली पटौदी ने भारतीय क्रिकेट की बागडोर उस समय संभाली, जब भारतीय क्रिकेट अपना आकर्षण, आत्मविश्वास एवं जमावट खो रहा था। भारतीय क्रिकेट का उपनाम नीरस क्रिकेट दिया जाने लगा था। पर पटौदी ने नेतृत्व की बागडोर संभालते ही इस 'आकर्षणहीन' भारतीय क्रिकेट को आकर्षक बना दिया।

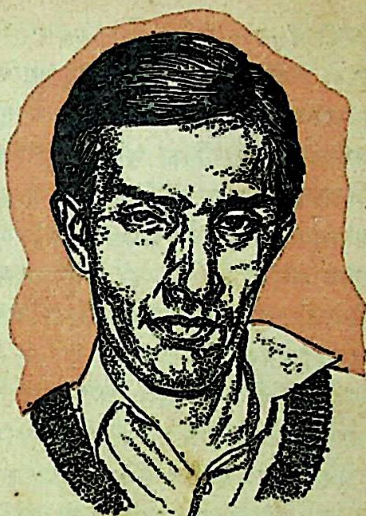
सन १९६४ में आस्ट्रेलियाई क्रिकेट-दल ने भारत का दौरा किया था। इस दल के कप्तान थे प्रसिद्ध आलराउंडर सिंप्सन। सिंप्सन के पास ग्राहम मेकैंजी जैसा अत्यंत तेज व खतरनाक गोलंदाज था। इधर भारतीय दल इस सशक्त आस्ट्रेलियाई दल के मुकाबले फीका व कमजोर दिखाई पड़ता था। फिर भी युवा कप्तान पटौदी के नेतृत्व में हमारे दल का हौसला बढ़ा-चढ़ा था। पटौदी इस समय तक इंग्लैंड व वेस्ट इंडीज के खिलाफ सुंदर प्रदर्शन कर अपने तकनीकी कौशल का परिचय दे चुके थे, फिर भी यह सबके औत्सुक्य का विषय था कि वे

आस्ट्रेलियाई तेज गोलंदाजों के समक्ष कैसा प्रदर्शन कर पाते हैं?

पहले टेस्ट मैच में आस्ट्रेलिया का तेज गोलंदाज ग्राहम मेकैंजी पूरी तेजी से गोलंदाजी कर रहा था। पटौदी के खेल में सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे तेज व स्पिन दोनों किस्म की गेंदों को समान आत्मविश्वास व निपुणता से खेल लेते हैं। मेकैंजी के गेंदों से दूसरे भारतीय बल्लेबाज दहशत खा रहे थे और आगे बढ़कर खेलने का तो साहस ही नहीं बटोर पा रहे थे। खेल केवल सुरक्षात्मक हो चला था तथा गोलंदाजी का बल्ले पर प्रभुत्व जम चुका था।

आप यदि गोलंदाज से डरेंगे, तो उसका आत्मविश्वास बढ़ेगा तथा वह और जोर गोलंदाजी करेगा। मेकैंजी ने जब देखा कि 'हाफ वॉली' जैसे कमजोर गेंदों को भी भारतीय बल्लेबाज सुरक्षात्मक ढंग से खेल रहे हैं, तो उसका हौसला बढ़ा। ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह संपूर्ण भारतीय पारी के लिए खतरा बन जायेगा। पटौदी ने यह सब देखा-भाला और अपना कर्त्तव्य निर्धारित कर लिया। पर जब उनका क्रम आया, तो लोगों को विश्वास नहीं था कि वे जम पायेंगे।

अपने समय के विश्वविख्यात आस्ट्रेलियाई आलराउंडर कीथ मिलर ने कहा है कि तेज गोलंदाज का दिल उस समय टूट जाता है, जब उसके गेंदों को आगे बढ़कर उसके सिर के ऊपर से ही उछालकर सीमा पार पहुंचा दिया जाता है।



अपने समय के सर्वश्रेष्ठ तेज गोलंदाज अनुभवी कीथ मिलर के इस कथन को पटौदी ने अक्षरश: सत्य सिद्ध कर दिया। मेकैंजी के गेंदों को उन्होंने आगे बढ़कर नजदीकी क्षेत्र-रक्षकों के ऊपर उछालकर इस खूबी से पीटा कि मेकैंजी पूरी तरह निरुत्साहित हो गया। कोई 'हाफ वॉली' ऐसी नहीं छूटी, जिसे पटौदी ने 'कवर' या 'मिड विकेट' से सीमा पार नहीं पहुंचाया हो। 'फ्रंट फुट' से उनके साहसपूर्ण स्ट्रोक देखकर आस्ट्रेलियाई तेज गोलंदाजों का साहस जवाब दे गया और पटौदी ने शानदार शतक बनाया।

इस टेस्ट-शृंखला के बाद आस्ट्रेलियाई कप्तान सिम्पसन ने कहा था—"पटौदी का नजदीक के क्षेत्र-रक्षकों के ऊपर से गेंद उछालकर रन बनाना सचमुच ही अनुपम था।"

नजदीकी क्षेत्र-रक्षकों के ऊपर से गेंद उछालकर रन बनाने वाले पुराने भारतीय

खिलाड़ी थे—स्व० कर्नल सी० के० नायडू, मुश्ताक अली, सी० एस० नायडू आदि। उस समय का क्रिकेट अपने-आप में एक आकर्षण था, दर्शकों का भरपूर मनोरंजन करनेवाला आकर्षण। लेकिन बाद में एक ऐसा समय आया, जब गेंद उछालना ही एक अपराध समझा जाने लगा। सुरक्षात्मक बल्लेबाजी पर अधिक ध्यान दिया जाना ही इसका प्रमुख कारण था।

परंतु पटौदी ने भारतीय क्रिकेट में प्रवेश के साथ ही बल्लेबाजी को अधिक उल्लासपूर्ण बना दिया। वास्तव में अगर सुदृढ़ तकनीक तथा भरपूर आत्मविश्वास हो, तो गेंद उछालकर रन बनाना अधिक आसान तथा आकर्षक होता है।

भारत की पिछली इंग्लैंड व आस्ट्रेलिया यात्राओं के दौरान पटौदी ने अपनी बल्लेबाजी की दक्षता से विश्व के तमाम दर्शकों व प्रसिद्ध आलोचकों को चकित कर दिया। इंग्लैंड में पहले टेस्ट की दूसरी पारी में पटौदी ने बहुत ही शानदार शतक बनाया। इससे प्रभावित होकर 'विस्डन' ने उन्हें वर्ष के पांच श्रेष्ठ खिलाड़ियों में स्थान देकर गौरवान्वित किया।

पिछली आस्ट्रेलिया यात्रा के दौरान जब अन्य भारतीय खिलाड़ी असफल होते जा रहे थे, पटौदी एकाकी ही रनों की लड़ाई में जूझ पड़े, जबकि परिस्थितियां सब तरह से भारत के विपरीत थीं। पटौदी की एक शानदार पारी को देखकर 'टायफून' टायजन ने लिखा—"इसके पहले आज तक किसी अपंग 'जीनियस' से इतनी सुंदर पारी टेस्ट क्रिकेट के इतिहास में देखने को नहीं मिली।" पाठकों को ज्ञात होगा कि पटौदी की एक आंख दुर्घटना के कारण खराब है।

मध्यक्रम के ठोस बल्लेबाज पटौदी ने क्रिकेट इंग्लैंड में सीखी। सन १९६१ में उन्हें आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की क्रिकेट-टीम का नेतृत्व सौंपा गया। वे पहले भारतीय थे, जिन्हें यह सम्मान मिला। यहीं उन्होंने यार्क शायर के विरुद्ध दोनों पारियों में शतक बनाकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। यार्क शायर उस समय सब काउंटियों का चैंपियन था और उसमें फ्रेडी ट्रूमन जैसा खिलाड़ी खेला करता था।

सन १९६१-६२ में इंग्लैंड की टीम ने जब भारत का दौरा किया, तो पटौदी को भारतीय टीम में चुन लिया गया। कहा जा सकता है कि उस शृंखला के पांचवें व अंतिम टेस्ट मैच में उनके शानदार शतक ने ही भारत की विजय का मार्ग प्रशस्त किया। टेस्ट मैचों में पटौदी की अधिकतम व्यक्तिगत रन-संख्या २०२ (नाट आउट) है, जो उन्होंने माइक स्मिथ के नेतृत्व में भारत आयी प्रवासी एम० सी० सी० के विरुद्ध बनायी थी।

बल्लेबाजी में वर्तमान भारतीय खिलाड़ियों में पटौदी की कोई जोड़ नहीं। क्षेत्ररक्षण में भी पटौदी को कमाल हासिल है। उनमें गिद्ध की-सी तीव्र दृष्टि तथा बाज-सी चपलता है। उनके आस-पास २० गज तक के गेंद उनसे छूटकर नहीं जा सकते।

आप उन्हें 'कवर' पर खड़ा कर दीजिये या 'मिड विकेट' पर, उन्हें क्षेत्र-रक्षण में अथक परिश्रम करता हुआ पायेंगे। काश, सभी भारतीय खिलाड़ी खेल के इस महत्त्वपूर्ण अंग को इतना ही महत्त्व देते, तो हमारे क्रिकेट का वर्चस्व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर और भी बढ़ा-चढ़ा होता।

क्रिकेट के इतिहास की दो सबसे दु:खद घटनाएं हैं—रणजी व पटौदी की एक-एक आंख का फूटना। रणजी की एक आंख उस समय फूट गयी थी, जब वे शिकार पर गये थे और समीप की एक झाड़ी से किसी ने गलती से उन पर गोली चला दी थी। पटौदी की एक आंख इंग्लैंड में मोटर-दुर्घटना में चली गयी थी।

लेकिन दोनों में इसके बाद बड़ा फर्क आया। रणजी जहां एक आंख जाने के बाद अच्छा क्रिकेट खेल नहीं पाये, वहां पटौदी अभी भी शतक लगाते हैं।

भूतपूर्व प्रसिद्ध आस्ट्रेलियाई खिलाड़ी तथा आज के प्रख्यात आलोचक जैक फिंगल्टन के ये शब्द पटौदी की बल्लेबाजी के वर्चस्व का अच्छा-खासा परिचय देते हैं—"पटौदी एक आंख से ही इतना अच्छा खेल लेते हैं कि मैं आश्चर्य से सोचा करता हूं कि अगर उनकी दोनों आंखें होतीं, तो वे क्या ही गजब के खिलाड़ी होते!"

पटौदी जहां अपने क्रिकेट के लिए विश्व-प्रसिद्ध हैं, वहीं अपनी मिलनसारिता से भी उन्होंने कई दिलों को जीता है। उन्होंने कई मित्र बनाये हैं और उनमें बेहद लोकप्रिय भी हैं। मित्रता की कद्र वे जानते हैं।

आशा है अक्टूबर १९६९ में भारत के दौरे पर आने वाली प्रसिद्ध आस्ट्रेलियाई टीम के विरुद्ध वे हमारी टीम को सशक्त नेतृत्व देंगे।



एक बार बरसात ज्यादा हुई। सारे कब्रिस्तान की मिट्टी कटकर बह गयी, मुर्दों की हड्डी और खोपड़ियां नंगी नजर आने लगीं। बहलूल दाना कुछ खोपड़ियां सामने रखे उनमें कुछ तलाश कर रहे थे।

संयोग से बादशाह की सवारी भी उधर आ निकली। बहलूल को यह अजीब हरकत करते देखा, तो बोले—"बहलूल! भला इन मुर्दा खोपड़ियों में भी क्या तलाश कर रहे हो?"

बहलूल बोले—"बादशाह सलामत! मेरे और आपके दोनों के बाप बुजुर्गवार इस दुनिया से जा चुके हैं। मैं इन खोपड़ियों में ढूंढ़ रहा हूं, मेरे बाप की खोपड़ी कौन-सी है, और आपके अब्बा हुजूर की कौन-सी?" बादशाह कहने लगे—"बहलूल! क्या नादानों की-सी बातें करते हो? कहीं मुर्दा खोपड़ियों में भी कुछ फर्क हुआ करता है, जो तुम उन्हें पहचान लोगे!"

बहलूल बोले—"तो फिर हुजूर! चार दिन की झूठी नमद के लिए बड़े लोग मगरूर होकर गरीबों को क्यों हकीर समझते हैं?" बादशाह शर्मिंदा हुए और उन्होंने उस दिन से अपने बरताव में नरमी अख्तियार कर ली।

—सैलानी

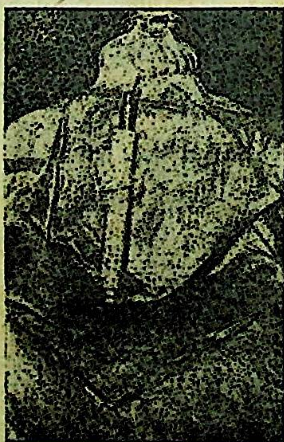


यहां अमूल्य निधि संचित है

मुगनी अब्बासी

काहिरा के हृदय में महान अलअजहर विश्वविद्यालय की मस्जिद से थोड़ी ही दूर एक और मस्जिद है, जो हजरत इमाम अल हुसैन की यादगार है। यह विश्व-विख्यात दरगाह दुनिया-भर के मुसलमानों का तीर्थस्थान है। लंबे-चौड़े आंगन में दायीं तरफ एक बहुत ही सजा हुआ लोहे का दर-वाजा है। यह दरवाजा जिन कमरों में खुलता है, वहां हजरत मुहम्मद की पवित्र यादगार की चीजों का संग्रह है।

यह सच है कि हजरत मुहम्मद ने अपने पीछे "न एक दीनार छोड़ा, न एक दिरहम; न कोई गुलाम छोड़ा, न जरखरीद लौंडी; न उन्होंने अपने पीछे कोई भेड़ छोड़ी, न कोई ऊंट। बस उनका एक सफेद खच्चर था, कुछ हथियार थे, जमीन का एक टुकड़ा था......और यह सब भी उन्होंने गरीबों में बांट दिया था।" हजरत मुहम्मद कहा करते थे कि "हम पैगंबरों का कोई बिरसा नहीं होता। हम अपने पीछे सिर्फ इंसानी हमदर्दी छोड़ जाते हैं।"



ऐतिहासिक असा का एक टुकड़ा

फिर भी हजरत मुहम्मद चंद चीजें छोड़ गये। अपने कपड़े, कुछ घरेलू सामान, कुछ निजी चीजें, जिनमें उनका असा (सोंटा) और तलवार शामिल हैं।

वर्षों तक इन चीजों की प्रामाणिकता के विषय में छान-बीन होती रही है और अब निस्संदेह सिद्ध हो चुका है कि ये पैगंबर के रिश्तेदारों से वारिसों और उनके सहयोगियों को मिलीं। खलीफा उमैया ने इन निजी स्मारकों को हासिल करने के लिए बड़ी-बड़ी रकमें खर्च की थीं और बहुमूल्य तोहफे दिये थे। और जब खिलाफत की बागडोर अब्बासियों के हाथ में आयी, तो उन्हें भी इस काम के लिए काफी जिद्दोजहद करनी पड़ी। अंत में जब उन्हें सफ-

लता प्राप्त हुई, तो उन्होंने पैगंबर के जब्बे और असा को खिलाफत के राजचिन्ह के तौर पर अपना लिया।

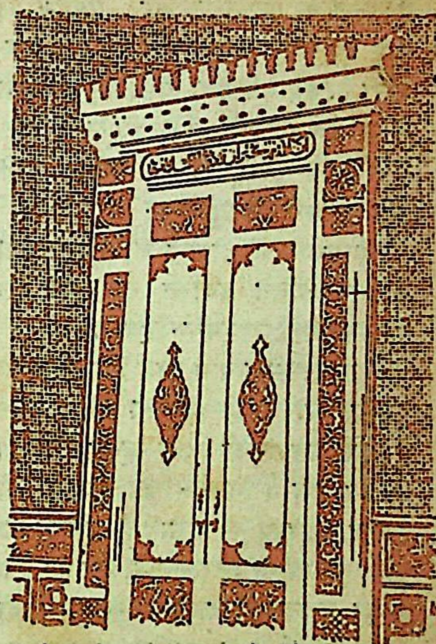
इब्ने कोथैर लिखता है– "खलीफा उत्सव के पहले दिन जब्बे को अपने कंधों पर डालता था और पैगंबर का असा हाथ में लेता था।"

लगभग सभी इतिहासकारों ने इसकी गवाही दी है कि पैगंबर की यादगार की चीजें, जो आज काहिरा में मौजूद हैं, सबसे पहले यम्बर शहर में इब्राहीम के खानदान के पास थीं। कहा जाता है कि पैगंबर के जीवन-काल से ही ये चीजें उनके पूर्वजों के पास थीं।

सातवीं सदी हिजरी में मिस्र का एक मंत्री, जिसका नाम अल साहेब तगल दीन था और जो हन्ना खानदान का था, इन चीजों को मिस्र ले आया। उसने उन्हें रखने के लिए एक गढ़ी बनवायी और उस पर संगीनों का पहरा लगवा दिया। यह गढ़ी आगे चलकर इबादतगाह बन गयी। यह इमारत आज भी नील के किनारे खड़ी है और 'अत्हर अल नबी' के नाम से पुकारी जाती है, जिसका मतलब है–'पैगंबर की यादगार।'

अनेक बार के स्थानांतरण के बाद अंत में सन १३०५ हिजरी में ये चीजें बड़ी शानो-शौकत के साथ सैयदना अल हुसैन की मस्जिद में लगायी गयीं, जहां वे आज तक मौजूद हैं।

इन पवित्र चीजों को रखने के लिए एक



"इस तिजोरी में वे चीजें हैं, जो हजरत मुहम्मद और उनके वारिसों की यादगार हैं।"

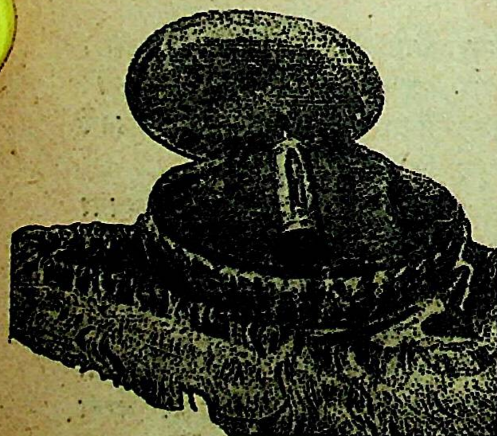
कमरा खास तौर पर बनवाया गया था। उसके बाद १३१० हिजरी में वर्तमान कमरे बनकर तैयार हुए और ये स्मृति चिन्ह उनमें पहुंचा दिये गये।

अगर आप मस्जिद के आंगन में पश्चिमी दरवाजे से दाखिल हों, तो दायीं तरफ मस्जिद के प्रमुख गुंबद के दक्षिण में ये कमरे मिलेंगे। दरवाजा ठोस लकड़ी का है और उस पर पीतल के बेल-बूटे जड़े हुए हैं। दोनों तरफ संगमरमर के खंभे हैं और ऊपर अरबी झूमर लटक रहा है। दरवाजे के सामने दीवार में एक बहुत बड़ी अलमारी बनी हुई

है, जिस पर हाथीदांत और आबनूस का काम है। बाहर सीखचे लगे हुए हैं। अलमारी के किवाड़ के ऊपर हाथीदांत के अक्षरों में यह पंक्ति लिखी हुई है—"खुदा का फरमान है कि तुम दूसरों की अमानत उसके सही हकदारों को पहुंचा दो।"

संगमरमर की दीवारों पर सुंदर अक्षरों में निम्नलिखित इबारत खुदी हुई है: 'बिस्मिल्लाहहिररहमांनिर्रहीम।'

"इस तिजोरी में वे चीजें हैं, जो हजरत मुहम्मद और उनके वारिसों की यादगार हैं (खुदा उन सबको अपनी रहमत में रखे)। इस तिजोरी में निम्नलिखित चीजें हैं, जो हजरत मुहम्मद का प्रसाद है—हजरत का कुर्ता, सुरमेदानी और सलाई, बेंत का एक टुकड़ा, हजरत की दाढ़ी के कुछ बाल, दो कुरान—जिनमें से एक खलीफा उस्मान बिन अफ्फान का लिखा हुआ है और दूसरा सैयदना अली का—(खुदा इन दोनों को अपनी रहमत में रखे)।"



पवित्र बाल

एक चांदी के बक्स में, जिस पर सोने का काम किया हुआ है और हरे रेशम और मखमल का अस्तर है, कपड़े के तीन टुकड़े रखे हुए हैं। ये पैगंबर के कुर्ते के हिस्से हैं। यह सफेद कपड़ा हाथ का बुना हुआ है। उस पर कोई रंग या डिजाइन नहीं है। इनमें से एक अलसी का बना हुआ है और विश्वास किया जाता है कि यह मिस्र के बुनकरों की देन है। मिस्र में इसे कबती अलसी कहते हैं। कबती (काप्टिक) मिस्र का एक कबीला है।

अलमकरिजी कहता है कि कबती (काप्टिक) सरदार अल मोकोवकिस ने अन्य चीजों के साथ एक फरगुल (जब्बा) और कबती कपड़े के बीस टुकड़े पैगंबर साहब को भेजे थे। कबती कपड़े अरबों के लिए नयी चीज नहीं थी।

इस कपड़े को "पैगंबर का कुर्ता" नाम अल गबर्ती का दिया हुआ है। इस कपड़े के कुछ धागे निकालकर मिस्र की प्राचीन वस्तुओं की शोधशाला में उनकी रासायनिक जांच की गयी, जिससे पता चला कि कपड़े के ये टुकड़े निश्चय ही पैगंबर के समय के हैं।

चांदी के एक दूसरे बक्स में पैगंबर के बेंत का एक टुकड़ा है, जो देवदार की लकड़ी का बना हुआ है। यह लकड़ी लेबनान में पायी जाती है। लकड़ी बहुत पुरानी मालूम होती है और उस पर राल चढ़ी हुई है,

जो शायद इसकी हिफाजत के लिए चढ़ायी गयी होगी। अधिकांश भाग पर चांदी मढ़ी हुई है। विद्वानों का विश्वास है कि यह हजरत मुहम्मद के प्रसिद्ध बेंत– "सफेद असा" का ही एक टुकड़ा है।

तीसरी चीज है एक शीशे की नलकी, जिसमें १६ बाल रखे हैं। विश्वास है कि ये हजरत मुहम्मद की दाढ़ी के बाल हैं। इनका रंग हल्की लालिमा लिये हुए भूरा है और लंबाई है लगभग सात सेंटिमीटर। प्रोफेसर सऊद मेहर का कहना है कि उनकी छानबीन से यह प्रमाणित होता है कि ये बाल हजरत मुहम्मद के ही हैं।

अलनवावी लिखता है कि हजरत ने उन लोगों को अपने बाल रखने की इजाजत दे दी थी, जो उनका आशीर्वाद लेने के लिए आते थे। इसलिए यह कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि आज उनके विभिन्न लंबाइयों के बाल मक्का, पाकिस्तान, कश्मीर, दमिश्क त्रिपोली, बेनगाजी और दूसरे स्थानों में पाये जाते हैं।

अब यह बात भी मालूम हो चुकी है कि हजरत मुहम्मद की आदत-सी हो गयी थी कि जब भी वे अपने बाल कटवाते थे, तो कटे हुए बालों के गुच्छे ले जाने की इजाजत वहां पर उपस्थित लोगों को दे दिया करते थे।

प्राचीन काल में सुरमा आंखों को बीमारियों से बचाने के लिए इस्तेमाल होता था, आजकल की तरह केवल शृंगार के लिए नहीं। पवित्र वस्तुओं के इस संग्रह में हजरत मुहम्मद साहब की सुरमेदानी भी शामिल है।

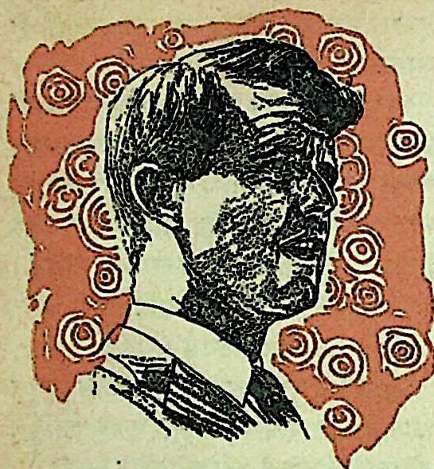
स्मृतिचिह्न के रूप में सुरक्षित रखी गयी चीजों में दो कुरान भी हैं। पहली पांडुलिपि चमड़े के १,०८७ पन्नों पर गहरी कत्थई रोशनाई से सादी कौफी लिपि में लिखी हुई है। इस पर किसी प्रकार की सजावट नहीं है। हर पन्ने की लंबाई ७.५ सेंटिमीटर और चौड़ाई ५.७ सेंटिमीटर है।

दूसरा कुरान आकार में इससे बहुत छोटा है और उसमें चमड़े के ५०४ पन्ने हैं। रोशनाई काली है, जो धुंधली पड़ गयी है। लिपि इसकी भी कौफी है; मगर अक्षर सीधे खड़े हैं। यह भी हर तरह की सजावट से बरी है। इसे खलीफा उस्मान बिन अफ्फान की ही भेंट बताया जाता है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि पहली पांडुलिपि हिजरी सन की पहली सदी के अंत में या दूसरी के आरंभ में लिखी गयी होगी। उनका विचार है कि यह वही कुरान है, जो मिस्र के गवर्नर अल अजीज बिन मरवान के आदेश पर लिखा गया था। (अल अजीज की मृत्यु सन ८६ हिजरी में हुई।) यह कुरान उसकी पौत्री अस्मा के नाम से मशहूर है और मिस्र में प्राप्त सबसे प्राचीन कुरान है।

हजरत मुहम्मद के इन स्मृतिचिन्हों में से हर चीज एक अमूल्य रत्न है और इन सबका एक जगह एकत्र होना सचमुच एक ऐसी निधि है, जिसका रुपये-पैसों में कोई मूल्य नहीं हो सकता।





राबर्ट केनेडी को क्या गलती से गोली मारी गयी ?

एडिथ कंडलिप के एक लेख के आधार पर प्रकाश खन्ना द्वारा प्रस्तुत

सेनेटर राबर्ट केनेडी की हत्या का मुकद्दमा ख़त्म हो गया। लेकिन क्या मुकद्दमे में न्याय हुआ ? क्या हत्या के कारणों की स्पष्ट और सही तस्वीर सामने आयी ? अमरीकी पत्रकार अजीज शिहाब का कहना है– "सच्चाई सामने नहीं आयी और शायद कभी नहीं आयेगी।"

शिहाब यरूशलम में जनमे थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा लंदन और अमरीका में हुई और वे अमरीकी नागरिक हैं। पश्चिम एशिया में वे 'मैनचेस्टर गार्जियन' और 'न्यूयार्क टाइम्स' जैसे प्रतिष्ठित पत्रों के प्रतिनिधि रह चुके हैं। सेनेटर केनेडी के युवा हत्यारे सिरहन बी० सिरहन के विषय में उन्होंने काफी छानबीन की है। अरब होने के कारण उन्हें इसमें सफलता भी मिली है। अपनी खोजों से वे अत्यंत दिलचस्प नतीजों पर पहुंचे हैं। उन्हीं के आधार पर उन्होंने एक पुस्तक लिखी है–'सिरहन'।

उनका मत है कि सेनेटर केनेडी की हत्या होते ही सबने यह धारणा बना ली कि अवश्य इसके पीछे कोई गूढ़ राजनीतिक षड्यंत्र होना चाहिये और समाचार-पत्रों में जब ऐसी बातें छपीं, तो सिरहन ने भी हीरो' और 'शहीद' का दर्जा पाने के लिए सच्चाई को छिपा जाने का निर्णय कर लिया। शिहाब कहते हैं–"सिरहन के वकील भी, जो बहुत बड़े और नामी वकील थे, इन तथ्यों को सबके सामने नहीं लाना चाहते थे ; क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि लोग समझें कि वे एक मामूली-से मामले में पैरवी कर रहे हैं।"

मुकद्दमे के दौरान कहा गया कि सिरहन को अरब होने के नाते इस्रायल और यहूदियों से घृणा थी। जब सेनेटर केनेडी ने एक भाषण में इस्रायल का पक्ष लिया, तो सिरहन को उनसे चिढ़ हो गयी और वह कई दिनों तक उन्हें मार डालने की घात लगाये रहा। इस इरादे में उसका कोई और साथी न था। पर हत्या के दिन वह एक युवती के साथ अम्बेसेडर होटल गया था।

यह लड़की बुंदकीदार कपड़े की पोशाक पहने हुए थी। दोनों होटल की पैन्ट्री में खड़े थे। संयोग से जब केनेडी उधर आये, तो सिरहन ने उन्हें गोली मार दी।

दो युवतियों ने कहा भी कि हत्या के समय वे सिरहन के निकट होटल में उपस्थित थीं; परंतु ज्यादातर समाचार-पत्रों ने इसे महत्त्व नहीं दिया। कुछ अखबारों ने तो किसी युवती की उपस्थिति को भी संदेहास्पद कहा।

सिरहन की डायरी में भी इस्रायल, यहूदियों तथा सेनेटर केनेडी के प्रति उसकी घृणा का उल्लेख है। परंतु शिहाब का कहना है कि अरब होने के कारण सिरहन इस्रायल-विरोधी अवश्य था; लेकिन वह इतना कट्टर अरबवादी नहीं था कि केनेडी की हत्या करने पर उतारू हो जाये।

अपनी पुस्तक 'सिरहन' में शिहाब बताते हैं कि अक्टूबर १९६७ में सिरहन की पहचान एक युवती से हुई। प्रेम के भूखे सिरहन को विश्वास था कि वह युवती उससे विवाह कर लेगी। अरब लोगों में पत्नी अथवा प्रेयसी की चर्चा दूसरों के सामने करना अशिष्ट समझा जाता है; अत: सिरहन ने इस संबंध में कोई विशेष बात अपने माता-पिता या मित्रों-संबंधियों को नहीं लिखी। मगर चूंकि उसे विश्वास था कि युवती के साथ उसका विवाह होगा ही, उसने यरूशलम में अपने एक मित्र को इतना अवश्य लिखा—"मेरी पत्नी तुम्हें नमस्कार कहती है।"

परंतु मार्च १९६८ में इस युवती ने किसी अन्य पुरुष से दिल जोड़ लिया और सिरहन को धता बता दिया। तब सिरहन का संसार बिखर गया। ६ मार्च को उस युवती ने सिरहन से दो टूक बात कह दी और ७ मार्च से सिरहन ने अपने विचार डायरी में लिखने शुरू किये। इस्रायल-विरोधी बातें इन्हीं में सम्मिलित हैं। सिरहन अमरीकी-अरब कांग्रेस की बैठकों में भी गया था। पर एक बार उसने अपनी माता से कहा—"मैं अरबों के आपसी झगड़ों से ऊब गया हूं।" और उसने आइंदा इन बैठकों में न जाने का फैसला किया।

४ जून को उसकी पूर्व प्रेमिका अपने नये मित्र के साथ अम्बेसेडर होटल में जाने वाली थी। सिरहन उससे मिलने वहां गया। वह पिस्तौल साथ ले गया था। वह लड़की तो उसे मिली; परंतु लड़की का नया मित्र भीड़ में इधर-उधर हो गया था। सिरहन लड़की को बातें करने के लिए कहीं एकांत में ले जाना चाहता था और संयोग से वे पैन्ट्री में पहुंच गये।

सेनेटर केनेडी के उधर आने की कोई संभावना नहीं थी। परंतु किसी आकस्मिक कारण से वे उधर आ निकले। उन्हें देखकर उस युवती ने कहा—"वह आया......वह आया।" सिरहन ने समझा कि युवती का प्रेमी आया है और उसने अंधाधुंध गोलियां चला दीं, जिससे केनेडी का देहांत हो गया और कुछ लोग घायल हो गये।

जोर्डन और अमरीका में सिरहन के

अनेक मित्रों तथा संबंधियों से व्यापक पूछ-ताछ करके ही शिहाब उपर्युक्त निर्णय पर पहुंचे हैं।

सवाल यह उठता है कि सिरहन नें, उस युवती ने और जो मित्र यह सारी बात जानते हैं, उन्होंने इस सत्य को प्रकट क्यों नहीं किया।

शिहाब इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं। अमरीका में बसे हुए अरब प्रायः इस अपराध-भावना से ग्रस्त हैं कि जहां अमरीकी यहूदी इस्रायल के लिए इतना कुछ कर रहे हैं, वहां हम लोग अपने देश और उसके निवासियों के लिए कुछ नहीं कर रहे हैं। सिरहन के मामले में अपनी जबान बंद रखकर वे इस धारणा को पुष्ट कर सकते हैं कि कम-से-कम एक अमरीकी अरब ने तो अपने पुरखों के देश के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी।



सिरहन

अमरता का मोह ?

अमरीका में बसे एक अरब वकील ने सिरहन से स्पष्ट शब्दों में कहा कि मुझे असलियत मालूम हो, तब भी मैं कुछ नहीं कहूंगा। जीवन-भर मैंने अपने देश के लिए कुछ नहीं किया है; अब अपना मुंह खोलकर कुछ विगाड़ ही क्यों करूं!

शिहाव के मतानुसार, अरबवंशी अमरीकी नागरिकों ने सोचा कि २१ वर्ष के अरब-इस्रायल संघर्ष में अरबों का पक्ष अब तक संसार के सामने ठीक से प्रस्तुत नहीं किया गया है; अब सिरहन के मुकद्दमे में उसे उभरकर संसार के सामने आने का अवसर मिलेगा और इससे अरब देशों की सहायता होगी। इसी कारण उन्होंने मुंह नहीं खोला।

सिरहन ने स्वयं भी सच्चाई अदालत को नहीं बतायी; क्योंकि उसने सोचा कि हत्या को राजनीतिक रूप मिल जाने से वह इतिहास में अरब देशों का त्राता बन जायेगा, और इससे शायद अरब देशों का कुछ हित भी हो सकेगा। और यह बात सिरहन को तब सूझी, जब उसके यहूदी-विरोधी होने की बात को समाचार-पत्रों ने बखानना शुरू किया। उसने सोचा कि बजाय यह कहने के कि मैंने भ्रमवश और मूर्खतापूर्वक गोलियां चलाकर केनेडी की हत्या कर दी, संसार की दृष्टि में 'हीरो' क्यों न बन जाऊं!

शिहाब ऐसा समझते हैं कि सिरहन के वकीलों ने भी इस भावना का समर्थन किया। वकीलों नें केवल वे अखबारी समाचार और लेख सिरहन को दिखाये, जो उसके पक्ष में प्रकाशित हुए। एक बार अदालत में अपनी डायरी के संबंध में सिरहन झल्ला उठा था, तो उसके वकील एमिल जोला

बर्मन ने उससे कहा था—"क्या एक 'हीरो' को इस तरह आचरण करना चाहिये ?"

वह लड़की भी सामने आकर यह सच्चाई नहीं बता रही है; क्योंकि उसे आशंका है कि कोई उसकी बात का विश्वास नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त, वह समझती है कि सिरहन की जो प्रतिष्ठा बन गयी है, उसे भी इससे धक्का लगेगा। शायद उसके मन में यह भावना भी हो कि मेरे कारण सिरहन यों भी दुःखी हो चुका है, अब सच्चाई बताकर उसे और दुःखी क्यों करूं ?

सिरहन की माता ने भी हत्या को राजनीतिक रूप देना ही पसंद किया। शिहाब बताते हैं, जब एक वकील ने कहा कि मुकद्दमे में हमें इस्रायल का प्रश्न नहीं उठाना चाहिये, तो सिरहन की माता ने उसे झकझोरकर कहा—"वह तो उठाना ही होगा। तुम कहते क्या हो !"

सवाल यह है कि सिरहन की डायरियों में लड़कियों का उल्लेख है या नहीं ? शिहाब कहते हैं कि उन्हें निश्चयपूर्वक ज्ञात नहीं। वैसे अरब लोग लड़कियों के मामले को—चाहे वह पत्नी हो, चाहे मित्र—इतना निजी मानते हैं कि कभी उनके बारे में लिखेंगे नहीं।

मुकद्दमे के दौरान यह प्रकट हुआ था कि डायरी में सिरहन ने राजनीतिक विचार, अपने सपने, लड़कियों के विषय में कपोल-कल्पनाएं और केनेडी-विरोधी बातें लिखी हैं।

शिहाब की एक दलील यह भी है कि अरब लोग बड़े स्वाभिमानी होते हैं और सिरहन सच्चाई को स्वीकार करके अपने स्वाभिमान को कभी चोट नहीं पहुंचायेगा; क्योंकि यदि ये तथ्य प्रकट हो गये, तो अपनी नजरों में वह जो 'हीरो' का पद पा गया है, वह उससे छिन जायेगा।



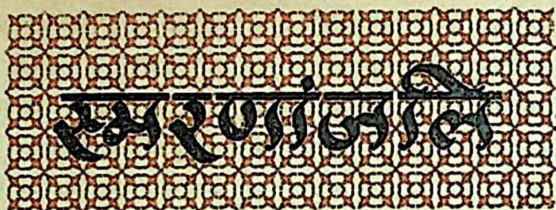
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी उस सम्मेलन में बड़े सुंदर ढंग से अपना लेख वाचन करने उठे, तो बच्चों की भांति हंसते हुए कहने लगे—"मेरा यह ४० पृष्ठों का टंकित लेख आप सबको आतंकित करने के लिए पर्याप्त है। अतः सुविधा के लिए इसके मैंने तीन भाग किये हैं— आरंभ, गप्प और उपसंहार। सभी हंसते-हंसते लोट-पोट हो गये। उसी भाषण में से ये वाक्य मुझे याद आ रहे हैं—"पसीना सुंदर लिखना सिखाता है, पसीना पवित्र होता है, पावक होता है, बहाया व्यर्थ नहीं जाता।"

—स्वरूप नारायण



पश्चिम बंग हिन्दी साहित्य सम्मेलन का द्वितीय अधिवेशन मार्च १९५३ में आसनसोल में हो रहा था। कलकत्ते के दो दलों में निर्वाचन की खींचातानी चल रही थी और दो सदस्यों के बीच चप्पल उठौवल हो गयी। भदंत आनंद कौसल्यायन ने यह दृश्य देखा, तो अपनी सहज विनोदी प्रवृत्ति के अनुरूप कहा—"अरे भाई, तुम्हारा सांस्कृतिक कार्यक्रम तो सात बजे रात को था। उसे इसी समय क्यों शुरू कर दिया ?" —गोपाल प्रसाद 'वंशी'





जिस पीढ़ी की ध्येयनिष्ठ सेवा ने हिन्दी पत्रकारिता को सजा-संवारकर आधुनिक रूप दिया, उसके ये स्मृति-चित्र अनेक पत्र-पत्रिकाओं के यशस्वी पत्रकार ठा० राजबहादुर सिंहजी ने अपने देहावसान से कुछ समय पूर्व 'नवनीत' के लिए विशेष रूप से लिखे थे। 'नवनीत' उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

स्व० राजबहादुर सिंह

हिन्दी के पुराने पत्रकारों पर बहुत नहीं तो थोड़ा कुछ तो लिखा ही जा चुका है। बृहत्त्रयी—बाबूराव विष्णु पराडकर, अंबिकाप्रसाद वाजपेयी और लक्ष्मण नारायण गर्दे के बारे में उनकी शिष्य-मंडली के किसी-न-किसी ने कुछ-न-कुछ लिखा है। इनमें से अंतिम अर्थात् गर्देजी मेरे पत्रकार गुरु थे।

दैनिक 'भारत-मित्र' में उनके संपादकत्व में मैंने पत्रकारिता सीखी—पहले प्रूफ-रीडर का काम, फिर अनुवाद और फीचर-राइटिंग से सहकारी संपादक का काम। टिप्पणियां लिखने का काम तो उन्होंने मुझे जल्दी सौंप दिया था; पर अग्रलेख लिखने की स्वतंत्रता वर्षों तक नहीं दी। उसके बाद तो मैं दूसरे पत्र में चला गया और मेरा वह प्रशिक्षण-क्रम भंग हो गया; क्योंकि सही हो या गलत, उतने ही प्रशिक्षण के बाद मैं समझने लगा था कि मैं परिपूर्ण संपादक बन गया हूं।

आगे बढ़ने की अभिलाषा से मैं 'विश्व-मित्र', 'स्वतंत्र', और 'कलकत्ता-समाचार' में गया; पर अधिक दिन कहीं न टिक सका—हां, इससे एक बड़ा लाभ अवश्य हुआ और वह यह कि उन दिनों के प्रायः सभी बड़े संपादकों और उनके सहकारियों के संपर्क में आ गया। इससे मेरे परिचय का क्षेत्र कुछ विस्तृत हुआ और अनुभव का दायरा भी बढ़ा।

इतने दैनिक और कितने ही साप्ताहिक, मासिक पत्रों में संपादन काल में मुझे जो थोड़े-से पत्रकार विशिष्ट प्रतिभा और सूझ-बूझ के धनी लगे हैं, यहां मैं उन्हीं का संस्मरणात्मक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूंगा।

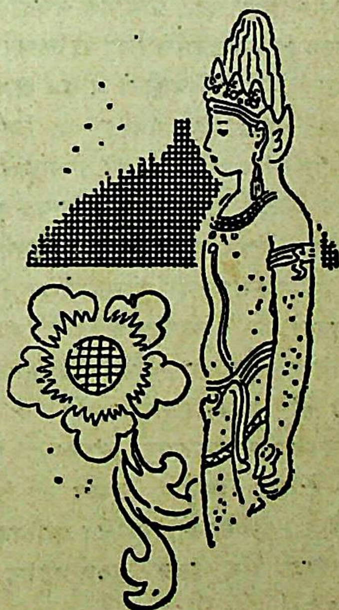
गुरु गर्देजी : सीधे-सादे, पुराने ब्राह्मण

परिवार की परंपरा में पले। धोती, कुर्ता, टोपी, चप्पल के सिवा उनकी नंगाझोरी ली जाती, तो शायद बीड़ी-दियासलाई के सिवा और कुछ न निकलता। बनारसी हिन्दी बोलने में प्रवीण मराठी की छाप के साथ। स्वभाव के मृदुल, सौम्य और पारिवारिक जीवन के अभ्यस्त। संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी का अच्छा ज्ञान। सदा सभी कामों में तत्पर और सहायक। मानवता की साक्षात् मूर्ति, किंतु अर्थबल में सदा संकुचित। उन दिनों के पत्रकारों को न तो अर्थ की प्रचुरता प्राप्त थी, न उनमें वह लालसा ही थी। संपादक होना समाज में प्रतिष्ठा की बात थी। संपादक शब्द सच बात कहने-लिखने का साहसी का पर्यायवाची था।

मेरे गुरुजी संकोचशील थे। सभा सोसायटियों में कम जाते थे। कहीं जाते और कुछ कहना ही पड़ता, तो जैसे दबी जबान और पूरा जोर लगाकर ही बोल पाते थे। लेखक के रूप में किसी भी विषय को लेकर उसे मांजने, चमकाने और पाठक के गले उतारने की कला में परम प्रवीण; पर वाणी से श्रोता के मन में बैठाने में कमजोर गुरुजी पत्रकारिता के कर्त्तव्य से कभी चूके नहीं, दैनिक पत्रों की सेवा छोड़कर काशी के 'श्रीकृष्ण-संदेश' का संपादन करते थे, उन दिनों में भी।

मेरे गुरुजी के साथी और समकालीन पं० अंबिकाप्रसाद वाजपेयी पहले दैनिक 'भारत-मित्र' के ही संपादक थे। पीछे उससे अलग होकर शायद १९२१ में उन्होंने अपना दैनिक 'स्वतंत्र' निकाला, जिसमें लगभग डेढ़ पौने दो साल तक मैंने काम किया। वाजपेयीजी बड़े ही प्रगल्भ वक्ता और प्रखर वैयाकरण थे। लेखनी की ही भांति उनकी जबान भी चलती थी और सभा-सोसायटियों में रंग जमा देते थे। उन दिनों बड़ा बाजार कलकत्ता की कोई ऐसी सभा सफल नहीं समझी जाती थी, जिसमें वाजपेयीजी न आये हों।

वाजपेयीजी 'भारतमित्र' के भारत-विख्यात बालमुकुंद गुप्त के परवर्ती संपादक थे और उनकी लेखनी और बोली में गुप्तजी की शैली का चमत्कार पूर्णतः तो नहीं, अंशतः अवश्य आ गया था। दैनिक 'स्वतंत्र' निकालकर उन्होंने अपनी संपाद-



कीय कीर्ति और बढ़ायी। लिखने का चाव उनमें अंत तक बना रहा।

पराड़करजी एक जन्मजात पत्रकार थे। लिखने से भी अधिक उनमें पढ़ने का चाव था। मुझे उनके साथ अनेक बार पर्यटन करने का अवसर मिला—खासकर राजस्थान का और उसमें भी बीकानेर का। वे सदा कोई-न-कोई नवप्रकाशित अंग्रेजी पुस्तक पढ़ते रहते थे। दैनिक 'आज' का संपादन उन्होंने १९२० में बाबू श्रीप्रकाशजी से अपने हाथ में लिया था।

उनके संपादकीय लेख भाषा और विचार दोनों की ही दृष्टि से इतने गंठे हुए होते थे कि पाठक नित्य उन्हें पढ़े बिना रह नहीं सकते थे। संपादकीय को वे केवल अभिमत बनाने के लिए नहीं, प्रासंगिक सूचनात्मक संकलन का आनंद देने के लिए भी लिखते थे।

उन दिनों के पत्रकारों में पं० झाबरमल्लजी शर्मा पहले पत्रकार थे, जिनकी इतिहास में गहरी रुचि थी। उन्होंने ही पुस्तक लिखने की रुचि मुझ में उत्पन्न की; क्योंकि इतिहास और जीवनी के कितने ही वृत्त वे समय-समय पर सामग्री देकर मुझसे लिखवाते और प्रोत्साहित करते थे। समुद्रवत् विशाल हृदय से उन्होंने शिष्यों को अपनाया और उनकी सहायता की। वे अब भी अपने गांव जसरापुर (राजस्थान) में रहते हैं और रामकृष्ण आश्रम का काम करते हैं। उनकी ब्राह्मणोचित सात्विकता और सेवा-वृत्ति देखकर हृदय गद्गद् हो जाता है।

वास्तव में वे पुरानी पीढ़ी के संपादकों के प्रतीक हैं और उस काल के मिशनरी पत्रकारों में संभवत: वृद्धतम जीवित पत्रकार हैं। उनका संस्कृत और बंगला का ज्ञान असामान्य है। भाषा-शुद्धता उनके लेखन की एक विशेषता है। उनके पास पुरानी पांडुलिपियों का बड़ा अच्छा संकलन है। उनका मस्तिष्क तो जानकारियों का भंडार है ही।

'विश्वमित्र' के बाबू मूलचंद्र अग्रवाल को मैं अपने गुरुजी से भिन्न प्रकार का पत्रकार इसलिए मानता हूं कि उनमें केवल विचार-संपादन और कागज काले करने की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि जोड़-तोड़, समाज-संपर्क और समाचार-रचना के खयाल से भी ऊंची प्रतिभा थी।

उन दिनों तक यह स्थिति आ चुकी थी कि प्रचुर धन के बिना पत्र निकालने की कल्पना करना कठिन था। परंतु बाबू मूलचंद्रजी ने अल्प साधन और बुद्धिबल से ही सुंदर दैनिक निकालकर और उसे अच्छी तरह चलाकर दिखा दिया था। दैनिक 'विश्वमित्र' ही नहीं, उसके साप्ताहिक और मासिक संस्करण भी उन्होंने जिस रूप में निकाले, उनसे उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता।

बाबू मूलचंद्रजी ने श्री मातासेवक पाठक, बाबूराम मिश्र, श्यामसुंदर पांडे आदि ऐसे पत्रकारों की सृष्टि की थी, जो कुछ ही वर्ष पहले तक हिन्दी पत्र-जगत् की सेवा करते रहे हैं।

श्री मातासेवक पाठक 'विश्वमित्र'

सहायक संपादक थे। उन दिनों हिन्दी के दैनिकों में समाचार-संपादक (न्यूज-एडिटर) का पद नहीं होता था। इसलिए सहायक संपादक ही संपादक के आदेशानुसार अग्रलेख, टिप्पणियां आदि लिखने के अतिरिक्त समाचार-संपादन भी करता था। पाठकजी ने लंबे वर्षों तक यह कार्य किया और उसमें नाम पैदा किया। वे इलाहाबाद जिले की हंडिया तहसील के निवासी थे। बड़े ही सजीव, साहसी, सरस, सरल और सत्यपरायण। उनके संपर्क में आने वाला कभी उन्हें भूल नहीं सकता।

पत्रकारिता और राजनीति में लब्ध-प्रतिष्ठ श्री **गणेशशंकर विद्यार्थी** के प्रशिक्षण का श्रेय प्राप्त करने और उनके राजनीतिक विचारों से प्रेरणा प्राप्त करने के लिए मैं कानपुर भी गया था। 'प्रताप'-कार्यालय उन दिनों वास्तव में गुप्त और राजनीतिक हलचलों का केंद्र था, मुझे वह पत्रकारिता के लिए उपयुक्त नहीं जंचा, और नेतागिरी की आकांक्षा मुझ में थी ही नहीं। इसीलिए १९२४-२५ में दिल्ली आकर 'हिन्दू संसार' में काम करने लगा। इस प्रकार विद्यार्थीजी की शिष्य कोटि में अपने को गिनने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला; परंतु उनका सान्निध्य-लाभ अवश्य प्राप्त हो गया था।

पत्रकारिता जगत् में मुझे उस जमाने में एक और प्रतिभाशाली लेखक और संपादक मिले। वे भरतपुर के थे और बाद में दिल्ली से 'विजय' निकलने पर राजगुरु, श्री जगन्नाथदास अधिकारी के साथ हो गये थे। उनका नाम था **पं० निरंजन शर्मा 'अजित'**। वे बाद में साप्ताहिक 'श्रीवेंकटेश्वर समाचार' के संपादक बनकर बंबई गये। उन्हीं के कहने पर मैं भी बंबई पहुंचकर 'श्रीवेंकटेश्वर समाचार' का संपादन करने लगा।

अजितजी हिन्दी के प्रतिभाशाली अनुभवी पत्रकारों में से थे, पर बाद में वे फिल्मों के लिए कहानियां और गाने लिखने लगे थे। इससे उनकी आर्थिक अवस्था तो सुधर गयी, पर उनके अंदर बैठा तेजस्वी पत्रकार मंद पड़ गया।

दिल्ली में मैं 'अर्जुन' के संपादक **पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति** के संपर्क में आया था। जब मैं 'हिन्दू संसार' से एकाएक भरतपुर राज्य की सर्विस में चला गया, तो उनके साथ संपर्क टूट गया था। किंतु रियासत से वापस आने पर वह पुराना संपर्क काम आया और 'अर्जुन' में ही मैं उनके अधीन रामगोपाल विद्यालंकार और सत्यकाम विद्यालंकार के साथ काम करने लगा। पं० कृष्णचंद्र विद्यालंकार, सोमदत्त विद्यालंकार, दीनानाथ सिद्धांतालंकार और अवनींद्रकुमार विद्यालंकार आदि 'अलंकार' मित्रों का परिचय मुझे उसी दौरान में प्राप्त हुआ।

मैनपुरी जिले के **पं० बाबूराम मिश्र** भी उन्हीं दिनों के पत्रकार थे, जिन्होंने अभी कुछ ही वर्ष पूर्व दैनिक 'भारत' (प्रयाग) से लंबी सेवा के पश्चात् अवकाश ग्रहण किया है। मिश्रजी से मेरा संपर्क 'कलकत्ता-समाचार' के ही दिनों से था। फिर दिल्ली के

'हिन्दू संसार' में वर्षों उनके साथ रहने और काम करने का सौभाग्य मिला।

मिश्रजी पत्रकारिता के सिलसिले में जेल भी जा चुके हैं। स्वभाव से विनम्र होकर भी वे इतने निर्भीक और सुदृढ़ हैं कि कोई आसानी से उन्हें अपने विचारों से डिगा नहीं सकता। प्रकृति के सरल, रहन-सहन सादा, आवश्यकताएं अत्यंत सीमित और व्यवहार अतिशय निर्मल। वे आजकल भी स्वांत:सुखाय कुछ-न-कुछ लिखते-पढ़ते रहते हैं। आज भी उनके हास्य-मृदुल और मुखमंडल की झांकी चित्त से उतरती नहीं।

जिस पीढ़ी की मैंने अभी चर्चा की है, उसी में कुछ पत्रकार ऐसे भी थे, जो आपा-धापी, पहुंच और संप्राप्ति की बीमारी से ग्रस्त आधुनिक पत्रकारिता में बहुत चमक नहीं सके। वे स्वयं किसी दैनिक में प्रधान संपादक के पद पर नहीं बैठ सके, किंतु उनके बनाये हुए कितने ही उनके सहकारी मुख्य संपादक बन गये।

उन्नाव के श्री श्यामसुंदर पांडेय इन्हीं में से एक हैं। मुझे कलकत्ता के कुछ मित्रों ने अभी दो वर्ष पहले ही बताया था कि उन्होंने पत्रकारिता से अलग हो, कलकत्ता नगर-निगम में सर्विस कर ली थी। पांडेयजी उन दिनों के हिन्दी पत्रकारों में विशेष रूप में परिगणनीय थे। वे बहुत अच्छी अंग्रेजी भी बोल और लिख सकते थे और पहले वे पुलिस में सब इंस्पेक्टर भी रह चुके थे। पत्र-कारिता के क्षेत्र में ऐसा सर्वतोमुखी व्यक्ति मैंने नहीं देखा।



जब वे दैनिक 'हिन्दू-संसार' दिल्ली काम कर रहे थे, तो एक बार एक इताल होटल मालिक सी० पेज्जा के साथ उन्होंने काम किया था। न जाने कैसे दिनों उनमें ऐसा शौक चर्राया—शाम पोशाक बदलकर अलशेसियन कुत्ते जंजीर पकड़े बाजार में घूमा करते थे। प कार होने की बदौलत हिन्दी साहित्यि की सभा से लेकर ऐंग्लो-इंडियनों की हि टिंग क्लब तक सब कहीं पहुंच जाते थे अपनी उपस्थिति की धाक जमा लेते थे

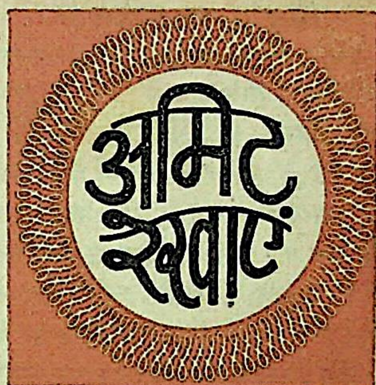
'भारतमित्र' में काम करते हुए कार्तिकेय चरण मुखोपाध्याय से मेरा परि चय हुआ, जो मुझसे पहले से इस क्षेत्र में बंगाली होते हुए भी वे हिन्दी के कुशल प कार और सफल लेखक थे। उनकी कित ही पौराणिक आख्यायिकाएं रामलाल ब एंड कंपनी से पुस्तक रूप में प्रकाशित चुकी थीं और रंगीन चित्रों से मंडित के कारण कितने ही संस्करण बिक चुके

लेकिन इन सबसे बड़ी चीज थी उन मानवीयता, जिसके द्वारा उन्होंने सभी आकर्षित कर लिया था। 'आनंदमठ' प्रथम अनुवादक श्री ईश्वरीप्रसाद शर्मा उनकी बड़ी मित्रता थी और उनके कारण मेरा उनसे परिचय और संपर्क पड़ा। पर उनकी बड़ी अनुकंपा रहती थी और मुझे पढ़ने के लिए कितनी ही पुस्तकें रहते थे और अपनी पढ़ी पुस्तकों का सार सुनाकर लाभान्वित करते रहते थे। मुत पत्रकार थे कार्तिकेय बाबू।

धरती का नमक

अपने काम को ईमानदारी, मुस्तैदी और मुस्कान के साथ करने वाला हर आदमी समाज का गौरवपूर्ण अंग है।......दफ्तर से घर लौटते समय बस में जब भी कंडक्टर नं०...... से मुलाकात हो जाती है, तो यह आस्था कुछ और गहरी हो जाती है।

कंडक्टर नं ०......के पास न वक्त की तंगी रहती है, न मुस्कान की। टिकट के पैसे लेते समय वह हर यात्री से बड़ी मधुरता से कहता है—थैंक यू। यात्री पांच रुपये का नोट बढ़ा दे और उसके पास रेजगारी न हो, तो वह यही कहेगा—जरा ठहरिये। शायद ऊपर की डेक के कंडक्टर के पास हो, लाकर देता हूं। किसी वृद्ध पुरुष या महिला को बस पर चढ़ना या उतरना हो, तो उसका हाथ सदा सहारे के लिए तैयार रहता है। बातें वह जरा नाटकीयता से करता है, पर बड़े प्यारे अंदाज में। अभी जुलाई महीने की बात है। शाम का भीड़-भड़क्के का समय। सारे स्टैंडिंग पैसेंजर दरवाजे के पास ही जमा थे। उसने कई बार उनसे अंदर जाने का आग्रह किया। फिर भी लोग नहीं सरके तो बोला—"साहबान, आदमी लाखों मील दूर चांद पर चला गया है; और आप दो कदम आगे बढ़ने में झिझक रहे हैं।" बस में जोर का कहकहा गूंज उठा। दफ्तरों से तनाव की गठरी लेकर रवाना हुए कई लोग उस दिन हल्के-फुल्के मन से अपने घर पहुंचे होंगे।



इतना ही हंसमुख और कार्यदक्ष है, जिस होटल में मैं शाम का खाना खाता हूं, उसका बेयरा क......। अगर क......के हिस्से की कोई कुर्सी खाली न हो, तो ग्राहक प्रायः बाहर खड़े रहकर प्रतीक्षा कर लेते हैं। चाहे टिप देने वाला ग्राहक हो या न देने वाला ग्राहक, सबकी एक-सी तत्पर सेवा और सबके लिए वही मुस्कान। दो-तीन बार जिसे परोस दिया, उसकी रुचि का उसे ज्ञान हो जाता है, जिसे वह भूलता नहीं। कुछ दिन पूर्व मैं खाना खा रहा था कि वह बोला—"बधाई बाबूजी! आज आपने बड़ी तरक्की कर ली।" मैं कुछ समझ नहीं पाया, तो उसने कहा—"बरसों से देख रहा हूं, आपकी खुराक बस वही दो रोटी। लेकिन आज आपने तीसरी रोटी मंगवायी तो बड़ी खुशी हुई।" और सचमुच उसके चेहरे से खुशी टपक रही थी।

ऐसे ही लोगों के कारण तो दुनिया रहने योग्य जगह है। —नारायण दत्त, बंबई

सिद्धांत या ढकोसला

हमारे दफ्तर के हेडक्लर्क सिद्धांतीजी गुजर गये। बात-बात में "मैं सिद्धांततः इसके विरुद्ध हूं......सिद्धांतवादी होने के नाते मैं......" जैसे वाक्य बोलने के वे आदी थे। हम अफसर वर्ग के लोग उनसे काफी प्रभावित थे। वक्त पर ठीक से काम करा देने की योग्यता उनमें थी। हमारी बहुत-सी घरेलू चिंताओं का निपटारा भी वे कर देते थे—जैसे बच्चों के लिए ट्यूटर तय करना, राशन कार्ड बनवाना आदि। साल में एक या दो बार वे महीने की १५ वीं तारीख को कहते—"अगर सौ रुपये पंद्रह दिन के लिए दे सकें, तो कृपा होगी; पहली को वेतन के साथ लौटा दूंगा।" और पहली को वेतन मिलते ही पैसे लेकर बिलानागा हाजिर हो जाते।

लेकिन दफ्तर के छोटे कर्म[चारी] सिद्धांतीजी से उतने खुश नहीं थे। [मैं] समझता था, मुस्तैदी से काम लेने वाले[को] बुरा तो बनना ही पड़ता है।

, मगर असलियत आज हेडक्लर्क से [पता] चली। दफ्तर के क्लर्कों को ट्यूशन या पा[र्ट] टाइम नौकरी दिलवाते तो, लगभग [एक] तिहाई वेतन वे दलाली के रूप में ले लेते [थे] और अफसरों से वे बारी-बारी से महीने [की] १५ तारीख को जो उधार लेते थे, उसे [दस] प्रतिशत महीने के ब्याज पर जरूरत[मंद] कर्मचारियों को देते थे। यह भी सुना है [कि] एक बूढ़ी विधवा के मकान में वे वर्षों से बि[ना] किराया दिये धींगामुश्ती से रहते थे। सोच[ता] हूं—अभी सिद्धांतीजी के न जाने कौन-कौ[न] से सिद्धांत जानने को मिलने बाकी हैं।

—जगतप्रसाद सिंह, उब[...]



स्टेशन के बाहर खड़ा मैं किसी की प्रतीक्षा कर रहा था। इधर-उधर देखते [हुए] मेरी नजर एक भिखारी पर पड़ी, जो एक तरफ बैठा हुआ भीख के लिए हाथ फैलाए [हुए] था। बहुत बूढ़ा था वह, और निरा हड्डियों का ढांचा प्रतीत हो रहा था। सूखी, उल[झी] हुई दाढ़ी-मूंछों ने उसे बड़ा अजीब बना डाला था। वह अंधा था। फिर मैंने देखा कि उस[ने] अपनी फटी-पुरानी कमीज की जेब को टटोलते हुए उसमें से एक बीड़ी निकाली। उस के हाथ कांप रहे थे। वह बीड़ी को ओंठों में रखने ही वाला था कि वह उसके हाथ [से] छूटकर नीचे गिर पड़ी। वह इधर-उधर हाथ मारता हुआ उसे ढूंढ़ने लगा। प्रयत्न क[रने] पर भी बीड़ी उसके हाथ न लगी। दिल में आया कि बीड़ी उठाकर उसे पकड़ा दूं। [पर] सिक्ख होने के नाते मैं तंबाकू को हाथ नहीं लगा सकता था। मैं कुछ देर उलझन में प[ड़ा] खड़ा रहा।

भिखारी अब निराश हो चुका था। उसके पास शायद और बीड़ी नहीं थी, व[रना] उसे निकालकर सुलगा लेता। उसकी वह लाचारी मुझसे देखी न गयी। मैं धार्मिक संस्का[रों] के बंधन तोड़कर आगे बढ़ा और बीड़ी उठा कर भिखारी को दे दी।

—हरभजन [सिंह]



सुरक्षा के लिए खतरा :

गिलगित सड़क

सत्यकाम विद्यालंकार

सैकड़ों वर्ष पूर्व सातवीं शताब्दी में प्रसिद्ध बौद्ध चीनी यात्री ह्वेन त्सांग ने गिलगित की दुर्गम पहाड़ियों की चर्चा करते हुए कहा था—"पहाड़ों के बीच से गुजरने वाले यहां के तंग रास्ते बहुत ही खतरनाक हैं। दिन-रात उन पर अंधेरा छाया रहता है। किन्हीं स्थलों पर तो गुजरने के लिए यात्रियों को रस्सी या लोहे की जंजीरों का भी सहारा लेना पड़ता है।"

इसके ठीक छः सौ वर्ष बाद मार्को पोलो ने इस प्रदेश की यात्रा का वर्णन करते हुए कहा था—"यह प्रदेश ऐसा मालूम होता है कि इस पर कभी इंसान या जानवर के पैर पड़े ही नहीं हैं।"

सामरिक और व्यापारिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हुए भी आज तक गिलगित के आर्थिक विकास की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। इसका कारण संभवतः यह भी है कि यह समूचा क्षेत्र उंची-ऊंची पर्वतमालाओं और दर्रों से परिपूर्ण है। कई नदी-नाले इसमें से होकर गुजरते हैं। यहां आपको बियाबान जंगल भी मिल जाता है और मरुस्थल भी। हिमाच्छादित पर्वत हैं, तो नितांत शुष्क, निर्जल पहाड़ियां भी।

हो सकता है, यह भी उसके विकास में बाधक रहा हो। परंतु मुख्य कारण यह है कि इस क्षेत्र के आस-पास के देशों में से कोई भी यह नहीं चाहता था कि इसका विकास हो। क्योंकि प्रत्येक की सुरक्षा का इससे संबंध था और प्रत्येक की दृष्टि में सुरक्षा सर्वप्रमुख बात थी।

यदि किसी आक्रांता को उत्तर-पश्चिम दिशा से भारत पर आक्रमण करना हो, तो उसे इन भौगोलिक बाधाओं से पार पाना पड़ता है। पामीर का क्षेत्र भी यहीं है और यह एक ओर अफ़गानिस्तान से जा मिलता है और दूसरी ओर सिक्यांग के क्षेत्रों से। इन दोनों के मध्य काशगर को जाने वाली गिलगित-हुंजा सड़क है। पश्चिम में अफ़गानिस्तान की सीमा और गिलगित-अफल सड़क के मध्य २४ हजार फुट की ऊंचाई वाले पर्वत हैं। पूर्व दिशा में मिनटाका दर्रे और काराकोरम दर्रे के मध्य ३०० मील तक अफल की पहाड़ियां हैं, जो कश्मीर को सिक्यांग से पृथक् करती हैं। अफल के दक्षिण में हिमालय की गगनचुंबी पहाड़ियां

हैं। उनका प्रारंभ दस्त गिलसार से है, जिसकी ऊंचाई २५,८६६ फुट है, और वहां से मोरके (ऊंचाई २८२५० फुट) में से गुजरती हुई यह सलतोरों और उसके आगे तक चली जाती है।

सर्वप्रथम चीनियों ने १९५५ में अक्साईचिन की सड़क बनायी। यह पामीर-काराकोरम के एकाकीपन को समाप्त करने का प्रथम प्रयास था। दूसरा प्रयास गिलगित-सिक्यांग सड़क है। इसका संपूर्ण निर्माण रहस्यमय ढंग से हो रहा है। यह उत्तरी कश्मीर में मीरखुन नामक स्थान से चलकर कश्मीर-सिक्यांग सीमा के फनजेराफ दर्रे तक है। बताया जाता है कि १२ हजार के लगभग चीनियों को उत्तरी कश्मीर में लाया गया है, जो इस सड़क को बना रहे हैं और उन्हें कश्मीर में मीरखुन नामक स्थान पर रखा गया है।

यह नयी सड़क सिक्यांग और तिब्बत की वर्तमान सड़कों में वृद्धि करने के लिए बनाई जा रही है। जहां तक चीनी क्षेत्र का संबंध है, पहले ही दक्षिणी सिक्यांग में फनजेराफ दर्रे और थुम्बी को मिलाने के लिए ११८ मील लंबी सड़क बनायी जा चुकी है।

यह संपूर्ण सड़क पाकिस्तान द्वारा हड़पे गये कश्मीरी क्षेत्र में है और इस प्रकार इससे चीनियों को अपनी सेनाओं की गतिविधियों में सुविधा होगी और वे जब चाहेंगे, तिब्बत से गिलगित तक अपनी सेनाएं ला सकेंगे। यह सड़क युद्धबंदी रेखा के उत्तर में स्थित है।

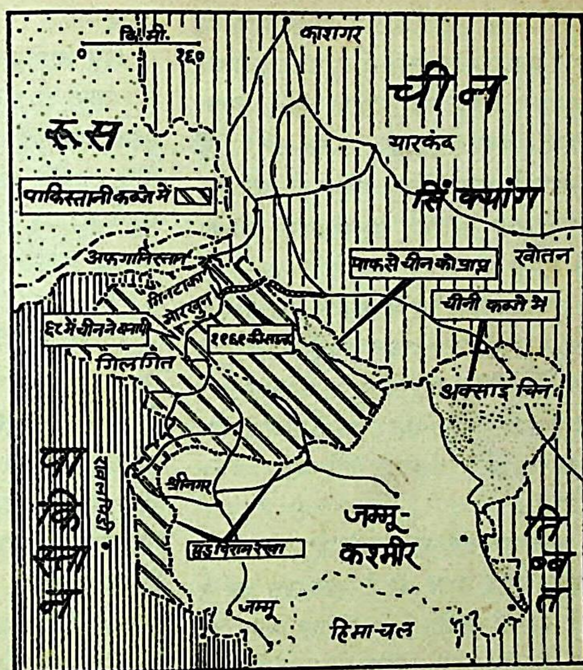
पिछले दिनों नयी दिल्ली में पाकिस्[तान] हाई कमीशन की ओर से एक प्रेस-विज्ञ[प्ति] प्रसारित की गयी, जिसमें बताया गया [कि] स्कर्दू और गिलगित को मिलाने वाली [...] सड़क, जिस पर जीपें बारह मास चल सके[ंगी,] गत वर्ष २८ सितंबर को खोली गयी है। [यह] भी बताया गया कि लगभग आठ वर्ष [से] सैकड़ों मजदूर इस सड़क के निर्माण में [लगे] रहे। और आज तक इस क्षेत्र में के[वल] विमान द्वारा आवागमन हो पाता था।

पाकिस्तान ने दुनिया की आंखों में [धूल] झोंकने के लिए यही कहा है कि यह व्या[पा]रिक मार्ग है। परंतु सभी जानकार [यह] जानते हैं कि इस क्षेत्र में पाकिस्तान [का] व्यापार या तो है ही नहीं, और यदि है [तो] नाम मात्र का है।

एक सैनिक विशेषज्ञ ने ठीक ही कहा [है] कि यह मानना कि यह सड़क केवल व्या[पा]रिक आवश्यकताओं के लिए बनायी गयी [है,] कठिन ही है। क्योंकि चीन के बड़े औ[द्यो]गिक क्षेत्र तो इस ओर हैं ही नहीं, और [यहां] जो आबादी है वह निर्धन है। इसलिए क[ौन] मानेगा कि इतना खर्च केवल व्यापारि[क] मार्ग बनाने के लिए किया गया है। सत्[य] यह है कि सड़क चीन से पश्चिमी पाकि[स्तान] को सैनिक सामग्री भेजने के लिए एक [...] और नजदीकी मार्ग खोल देगी।

गिलगित-सिक्यांग सड़क काफी पु[रानी] सड़क है और एक समय इसे रेशम-पथ [कहा] जाता था; क्योंकि इसी मार्ग से चीन [से] रेशम आया करता था।

पांच देश अर्थात् चीन, सोवियत रूस, तिब्बत, अफगानिस्तान और भारत उत्तरी कश्मीर में पामीर के क्षेत्र में आकर मिलते हैं। पामीर गिलगित से लगभग २०० मील की दूरी पर है। अंग्रेज गिलगित के सामरिक महत्त्व को भली भांति जानते थे। इसलिए उन्होंने सैनिक छावनी गिलगित में स्थापित की। रूस के कुचक्रों का सामना करने के लिए पामीर के समीप इस स्थान को अपनी सैनिक गतिविधियों का केंद्र बनाना उन्हें आवश्यक प्रतीत हुआ। रूस की इस क्षेत्र में दीर्घकाल से दिलचस्पी चल रही है। चीन को तो हाल ही में इस क्षेत्र में रुचि हुई है।



गिलगित ऐसा क्षेत्र है, जहां से कई राष्ट्रों के निवासी गुजरते हैं। भारतीय, पाकिस्तानी, चीनी, तिब्बती, पश्चिम एशिया और मध्य एशिया के लोग विचार-विनिमय, व्यापार और अन्य कई बातों के लिए यहां एकत्रित होते हैं। आज तक व्यापार वर्ष-भर नहीं होता था और जो होता था, बड़ी सड़क के साथ ही होता था। इस सड़क पर चार बड़ी छावनियां थीं। स्कर्दू और गिलगित की छावनियां कश्मीर में तथा यारकन्द और काशगर की सिक्यांग में थी।

श्रीनगर से चलकर भारतीय व्यापारी गिलगित जाते थे और वहां से वे सिक्यांग भी हो आते थे। वहां जाने के लिए वे या तो दर्रा किल्की अथवा दर्रा मिनटाका से होकर गुजरते थे। परंतु साधारणतः दर्रा मिनटाका को ही पसंद करते थे। इन दर्रों से यारकंद और काशगर को भी सड़कें जाती थीं।

लेह से भी एक सड़क काराकोरम होकर जाती थी। यह सड़क १८,००० फुट की

ऊंचाई पर थी। इस बात के बावजूद कि यह दूसरी सड़क की तुलना में अधिक ऊंची थी, यातायात इसी पर अधिक था। इसका कारण संभवतः यह भी था कि उत्तर पूर्वी कश्मीर में अक्साईचिन स्थित है, जो हमवार क्षेत्र है, इसलिए इसमें यात्रा अपेक्षाकृत सुगम थी।

दूसरा कारण यह भी था कि इस मार्ग से चीन, भारत और तिब्बत की ही व्यापारिक रुचि थी और उनके लिए लेह आसान था। लेह से काशगर का अंतर ५२० मील है और गिलगित और काशगर का अंतर ४०० मील है।

पाकिस्तान ने भी अपनी ओर गिलगित-पामीर सड़क बना ली है और उस पर से जीपें आ-जा सकती हैं। अब इसे मिनटाका तक ले जाने का प्रयास हो रहा है। यह न केवल चीन को ही पाकिस्तान से मिलाती है, अपितु कश्मीर के भीतर के कई प्रमुख ठिकाने भी इसके द्वारा पाकिस्तान से मिल जाते हैं। इसमें से एक स्कर्दू भी है।

जहां तक चीनी क्षेत्र का संबंध है, एक ऐसी सड़क तैयार की जा रही है, जिस पर से ३ टन के ट्रक गुजर सकते हैं और यह काशगर से स्कर्दू, मिनटाका तक पूर्ण कर ली गयी है। यह सड़क तिब्बत से सिक्यांग तक जाने वाली सड़क पर काराकोरम से भी जाकर मिल जायेगी। पाकिस्तानी क्षेत्र में जो सड़क बनायी जा रही है, उसे भी इतना मजबूत कर दिया जायेगा कि उस पर भी तीन-तीन टन के ट्रक बड़ी आसानी से गुजर सकेंगे।

लेह जाते हुए मार्ग में कारगिल [illegible] है। स्कर्दू कारगिल से केवल ६० मील [illegible] गिलगित-स्कर्दू सड़क को तैयार करके [illegible] तीय कश्मीर को दूसरी ओर से [illegible] करने का यह पाकिस्तानी योजना का [illegible] भाग है। दूसरा भाग अक्साईचिन से [illegible] ने तैयार कर लिया है।

इस सबके सैनिक परिणाम भारत के [illegible] नितांत महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। जब चीनि[illegible] ने नेपाल में कोदारी राजमार्ग बना[illegible] तो उन्होंने यही कहा कि यह नेपाल [illegible] चीन के बीच व्यापार बढ़ाने के लिए बना[illegible] गयी है। परंतु आज स्थिति यह है कि नेपा[illegible] शिकायत करते हैं कि उन्हें इस सड़क [illegible] गुजरने की भी अनुमति नहीं है। गिल[illegible] को भी व्यापारिक सड़क बताया जा [illegible] है। कहा जा रहा है कि उस पर से के[illegible] ट्रकें ही जायेंगी, परंतु उस पर टैंक और [illegible] तोपें भी जा सकेंगी।

अब गिलगित के जन-जीवन की भी [illegible] झांकी ले लें। २७,००० वर्गमील [illegible] फल के इस प्रदेश की कुल जनसं[illegible] १,८०,००० है। कुछ शिया मुस्लिम [illegible] भी यह दावा करते हैं कि उनके पूर्वज [illegible] दर महान् के बहादुर यूनानी सैनिक [illegible] इसके अतिरिक्त शेष सभी निवासी [illegible] जाति के हैं, जिनके पूर्वज हिन्दू रहे हैं [illegible] ये दर्म्यानी कद के और देखने में बहुत [illegible] होते हैं। पुरुष आलसी बहुत हैं। ये [illegible] कोई काम नहीं करते और फालतू गप्पें [illegible]

ही सारा दिन गुजार देते हैं। उनकी स्त्रियां खूबसूरत होती हैं, लेकिन बहुत अधिक काम करने से, खेत और घर दोनों की देखभाल करने से, छोटी उम्र में ही शादी हो जाने से और घटिया खुराक लेने से, उनका सारा सौंदर्य समय से पूर्व ही नष्ट हो जाता है। साधारणतः वे परदा नहीं करती हैं, लेकिन किसी अजनबी को देखकर मुंह दूसरी तरफ जरूर फेर लेती हैं और कभी-कभी तो भाग खड़ी होती हैं।

पुरुष ऊनी कमीज और शलवार पहनते हैं। सिर को ढकने के लिए ऊनी कपड़े को लपेटकर उसकी टोपी बनाकर पहन लेते हैं, जिसे वे रंगीन पंखों से सजा देते हैं। औरतें काले या लाल रंग का ढीला लबादा पहनती हैं और इसे वे तभी उतारती है, जब इसके चिथड़े-चिथड़े हो जाते हैं।

विवाह की रस्म को पूरा करने के लिए थोड़ा लेन-देन जरूरी समझा जाता है। बच्चे पैदा करने में वे संयम से काम नहीं लेते हैं। हर आदमी उतने बच्चे पैदा करता है, जितना वह कर सकता है।

गिलगित के लोग संगीत और नृत्य के बहुत शौकीन होते हैं। कोई भी उत्सव तब तक पूरा नहीं होता, जब तक संगीत और नृत्य का कार्यक्रम न हो।

पोलो उनका राष्ट्रीय खेल है। कहा जाता है कि भारत में पोलो का प्रचलन सर्वप्रथम यहीं पर हुआ था। सन १८९१ में ब्रिटेन के एक राजनीतिक अधिकारी कर्नल ए० जी० ड्यूरंड ने यह खेल यहां शुरू किया था। अन्य देशों में खेले जाने वाले पोलो से यहां का पोलो थोड़ा-सा भिन्न है।

यहां के लोग घुड़सवारी और शिकार के बहुत शौकीन होते हैं। इसका कारण भी प्राकृतिक है। यहां के जंगलों में अनेक तरह के पशु और पक्षी सहज ही में प्राप्त हो जाते हैं। यहां बहने वाले सभी झरनों में मछलियों की बहुतायत है।

प्रकृति का यह सहज और सरल जीवन अब धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। गिलगित-सिक्यांग सड़क के पूरा हो जाने के बाद तो इस क्षेत्र का नक्शा ही बदल जायेगा।



कंप्यूटर द्वारा रिजर्वेशन

ब्रिटेन की हवाई-कंपनी बी० ओ० ए० सी० के अमरीका, कनाडा, यूरोप और ब्रिटेन स्थित सभी रिजर्वेशन कार्यालयों में कंप्यूटर लगा दिये हैं। रिजर्वेशन क्लर्क लंदन के संबद्ध अधिकारी से हवाई जहाज में विशेष दिनों के लिए सीटों के बारे में पूछ सकता है। तीन सैकेंड के भीतर एक टेलिविजन जैसे पर्दे पर संभावित उड़ानों, सीटों की संख्या, हवाई जहाज की किस्म तथा उड़ान के समय के बारे में सूचना प्राप्त हो जाती है। अगर यात्री बुकिंग कराना चाहे तो रिजर्वेशन के बारे में लंदन को सूचना भेजी जा सकती है और वहां से परदे पर ही इसकी पुष्टि कर दी जाती है।



दोपहरी

बीतती नहीं है
ठहर गयी मुझ में दोपहरी

बार बार
बीच में उभरता है
गुलमोहर एक, एक अमलतास
कहां कहां से लौटी
पी जाती उसे एक और प्यास
मैं हूं अब—
कटा हुआ खेत
एक बंद नदी
एक भरा गांव
एक चौराहा शहरी

उठ उठकर
अपने में ही वापस आ जाता
चक्रवात
हांफ रहा कुत्ते-सा थका-थका
शिखरों से टूटा प्यासा प्रपात
चील-सी टिहाकर अपनी ही आवाज
डूब जाती अपने में है गहरी

—रामदरश मिश्र

खोलो

खिड़कियां खुलती हैं
फूल झांकते हैं
दिन के बियाबान को।
खिड़कियों में उगे हुए फूल
रंग, बहार और महक
सोयी आंखों वाले चेहरे
देखते हैं आसमान को।

चारदीवारी का घेरा
धूप और प्रकाश का अभाव
कौन पानी दे
प्यार के रेगिस्तान को।

खिड़कियां नहीं, दरवाजे खोलो
बाहर निकलो
देखो खिलते हुए, महकते हुए
चारों ओर फैले कुल जहान को।

—सुखबीर

संदीप्ति

जगदीश लूथरा

अंधेरे में भी दिखाई देने वाला घड़ी का डायल, टिनोपाल की कृपा से लकदक चमकते उजले कपड़े, टेलिविजन पर उभरते और गुम होते चित्र, पत्थरों की टकराहट से उत्पन्न होती हुई चमक, उत्तरी ध्रुव क्षेत्र की मेरुप्रभा, कैल्साईट (कैलशियम कारबोनेट) खनिज की लालिमा, फ्लोरस्पार की नीलिमा और टचूब लाइट की रोशनी—क्या इन सबमें कोई साम्य है ?

हां, इन सबमें प्रकृति की एक मूलभूत क्रिया चलती है । वह है —ऊर्जा का प्रकाश में बदलना । इस सामान्य, किंतु जटिल-सी प्रक्रिया में पहले पदार्थ किसी विशेष ऊर्जा का अवशोषण करता है । फलस्वरूप उस पदार्थ के कुछ परमाणु उत्तेजित हो जाते हैं । जब ये उत्तेजित परमाणु अपनी पूर्व अवस्था में वापस आते हैं, तो अवशोषण की हुई ऊर्जा को प्रकाश के रूप में बाहर फेंकते हैं । इसे 'संदीप्ति' कहते हैं ।

यह आवश्यक नहीं है कि जितनी ऊर्जा अवशोषित की गयी थी, वह सबकी सब प्रकाश में बदल जाये । कितनी ऊर्जा प्रकाश में रूपांतरित होगी, यह पदार्थ में स्थित अशुद्धियों और विकारों पर निर्भर होता है । अशुद्धियों और विकारों की मात्रा को नियंत्रित करके इस क्षमता को घटाया-बढ़ाया भी जा सकता है ।

कुछ अशुद्धियां ऐसी भी होती हैं, जिनके रहते रूपांतरण की क्रिया हो ही नहीं सकती। उन्हें 'विष' कहा जाता है । इन्हीं विषों की कृपा से संसार में कभी अंधेरा हो पाता है; नहीं तो हमारे आस-पास संदीप्ति की क्रिया इतने बड़े पैमाने पर हो रही है कि सारा संसार दिन-रात जगमगाता ही रहे ।

प्रश्न उठता है कि कुछ ही पदार्थ क्यों संदीप्तिशील हैं, सब क्यों नहीं । संदीप्तिशील पदार्थों में कुछ विशेष प्रकार के परमाण्वीय स्थल अथवा केंद्र होते हैं, जो ऊर्जा का अवशोषण करके उसे इलेक्ट्रान-संक्रमण द्वारा विद्युत-चुंबकीय विकिरण के रूप में

[हिन्दी विज्ञान-साहित्य परिषद्, बंबई द्वारा प्रेषित]

बाहर छोड़ते हैं; जो आंखों से दिखाई देता है।

अभी तक इन केंद्रों के आचरण और गुण-धर्मों के बारे में पूरी बातें ज्ञात नहीं हैं। पिछले सौ साल से जिंक सलफाइड के स्फटिकों पर अनुसंधान हो रहा है; परंतु इस सरल-से यौगिक के भी संदीप्ति-केंद्रों की संरचना इतनी सूक्ष्म है कि उसका पूरा-पूरा ज्ञान अभी नहीं मिल पाया है।

संदीप्ति पदार्थ का जन्मजात गुण नहीं है। संदीप्ति-केंद्रों से युक्त पदार्थ भी अतिरिक्त ऊर्जा मिलने पर ही संदीप्तिशील बनते हैं। यह अतिरिक्त ऊर्जा उन्हें मिलती है पराबैंगनी न्यूकलीय विकिरणों से, विद्युत्-रासायनिक क्रियाओं या घर्षण क्रियाओं से। कुछ संदीप्तिशील पदार्थ ऐसे हैं कि अतिरिक्त ऊर्जा देने वाले स्रोत को हटा दें, तो वे संदीप्ति खो बैठते हैं। इस क्रिया को विज्ञान की भाषा में स्फुरदीप्ति कहते हैं।

परंतु कुछ पदार्थ ऐसे भी होते हैं, जिनमें अतिरिक्त ऊर्जास्रोत को हटाने के बाद भी महीनों, सालों तक संदीप्ति बनी रहती है। इसे उत्तरदीप्ति कहते हैं। जिन पदार्थों में यह गुण हो, उन्हें उत्तरदीप्तिशील पदार्थ या 'फास्फर' कहते हैं। जितने समय तक फास्फर में उत्तरदीप्ति बनी रहती है, वह उसका उत्तरदीप्ति-काल है।

आदर्श फास्फर वह है, जिसमें हम अपनी इच्छा के अनुसार उत्तरदीप्ति-काल प्राप्त कर सकें। फास्फर का उपयोग काफी हद तक उसके उत्तरदीप्ति-काल की लंबाई पर निर्भर होता है। राडार की आर० सी० ट्यूब में उपयोग में आने वाले फास्फ[illegible] यह काल कुछ सेकेंड का होना चाहिये, टेलिविजन में प्रयोग में आने वाले फास्फ[illegible] कुछ मिलीसेकेंड का। अभीष्ट काल के [illegible] संदीप्ति एकदम लुप्त हो जानी चाहि[illegible] इसलिए फिलिप्स और जनरल इलेक्ट्रि[illegible] आदि विश्वविख्यात प्रयोगशालाओं [illegible] फास्फर पर काफी अनुसंधान हो रहा [illegible]

बिना तापक्रम को बढ़ाये ऊर्जा को प्रक[illegible] में रूपांतरित करना संदीप्ति प्रक्रिया [illegible] एक विशेष गुण है। ट्यूबलाइट का प्रका[illegible] संदीप्ति प्रक्रिया का चमत्कार है, [illegible] साधारण बल्ब का प्रकाश तापक्रिया [illegible]

ट्यूबलाइट की भीतरी दीवार पर हे[illegible] जन फास्फेट का लेप होता है। इस लेप [illegible] मैंगनीज और एन्टीमनी अशुद्धियां हो[illegible] हैं। ट्यूब में पारे की भाप कम दाब पर [illegible] होती है और दोनों सिरों पर इलेक्ट्रोड [illegible] हैं। जब हम स्विच को 'आन' करते हैं, [illegible] पारे की भाप में विद्युत्-विसर्जन से प[illegible] बैंगनी किरण उत्पन्न होती है और लेप [illegible] उपस्थित मैंगनीज उसे अवशोषित क[illegible] लेती है।

जब मैंगनीज के उत्तेजित परमाणु अप[illegible] सामान्य अवस्था में वापस आते हैं, तो [illegible] अवशोषित ऊर्जा के कुछ अंश को [illegible] प्रकाश में बदल देते हैं और बाकी को एं[illegible] मनी के परमाणु को दे देते हैं। एंटीमनी [illegible] परमाणु उस ऊर्जा को पीले रंग में बदल [illegible] हैं। ट्यूब लाइट में मैंगनीज और एन्टीम[illegible] की मात्रा को नियंत्रित करके उसके प्रका[illegible]

के रंग गर्माहट और शीतलता अपनी इच्छानुसार प्राप्त कर सकते हैं।

साधारण बल्ब से निकलने वाले प्रकाश के साथ बहुत-सा ताप उत्सर्जित होता है। यह ताप अवरक्त (इन्फ्रारेड) किरणों के रूप में होता है, जो आंखों से दिखाई नहीं देतीं। इसलिए साधारण बल्ब में ऊर्जा को दृश्य-प्रकाश में रूपांतरित करने की क्षमता ट्यूबलाइट के मुकाबले में काफी कम होती है।

हमने ऊपर देखा था कि कुछ पदार्थ अतिरिक्त ऊर्जा के स्रोत के हटते ही संदीप्ति खो बैठते हैं और इस क्रिया को स्फुरदीप्ति कहा जाता है। ऐसे स्फुरदीप्तिशील पेंट का उपयोग किसी विशेष रंग वाले प्रकाश की मात्रा बढ़ाने के लिए किया जाता है।

साधारण प्रकाश, जिसे हम उजला प्रकाश कहते हैं, असल में सात रंगों के मेल से बना होता है। यदि कोई चीज हमें लाल दिखाई देती है, तो उसका अर्थ यह कि वह चीज अपने ऊपर पड़ने वाले प्रकाश में से केवल लाल किरणों को लौटाती है और बाकी सबको पी जाती है। साधारण पेंट में यही होता है। लेकिन स्फुरदीप्तिशाली पेंट में यह गुण होता है कि वह सब रंगों वाली किरणों को किसी एक रंग में बदल देती है, जिससे उस रंग की तीव्रता बढ़ जाती है। इसलिए ऐसी पेंट का उपयोग प्रचार-कार्य, वायुयान और खतरे के निशानों आदि में किया जाता है।

टिनोपाल भी इसी प्रकार का कार्य करता है। वह भी एक स्फुरदीप्तिशील घोल है। धुला हुआ सफेद कपड़ा इसीलिए पीला-सा दिखता है कि वह नीले-जामनी प्रकाश को पी जाता है और पीले को बाहर छोड़ता है। टिनोपाल का मुख्य गुण यह है कि वह सूर्य की किरणों में व्याप्त पराबैंगनी (अल्ट्रावायलेट) किरणों का अवशोषण करके उन्हें नीले-जामनी रंग में बदल देता है। इस प्रकार वह कपड़े में नीले रंग की कमी की पूर्ति करता है और कपड़े उजले और सफेद दिखते हैं।

स्फुरदीप्तिशील घोलों का उपयोग, बर्तनों, नलियों इत्यादि में सूक्ष्म छिद्रों का पता लगाने के लिए भी किया जाता है। यदि हम नली में स्फुरदीप्तिशील घोल को दाब के साथ प्रवाहित करें, तो वह घोल सूक्ष्म छिद्रों से रिसकर नली की बाहरी सतह पर आ जायेगा और बाहरी सतह पर पराबैंगनी (अल्ट्रावायलेट) प्रकाश डालने पर नली चमकने लगेगी।

संदीप्ति का गुण जड़ द्रव्यों में ही नहीं, जीवधारियों में भी पाया जाता है। जुगनूं, फुंगी, मधुरिका और बहुत-से समुद्री जीवधारी अपने शरीर में एंजाइमी आक्सीकरण की प्रक्रिया में मुक्त होने वाली ऊर्जा को प्रकाश में बदल देते हैं।

मादा जुगंनू का पेट जब भरा होता है, तब वह नर जुगनू को अपने पास बुलाने के लिए प्रकाश-सिग्नल भेजती है—टिमटिम, टिमटिम। मादा जुगनू में जब यौन उत्तेजना होती है, तो उसके शरीर में एक खास जैव-रासायनिक प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

इसमें भाग लेते हैं—रासायनिक लूसीफिरिन, लूसीफेरस एंजाइम और ए० टी०पी० नामक यौगिक। इस एंजाइमी आक्सीकरण में जो रासायनिक ऊर्जा मुक्त होती है, वह प्रकाश में बदल जाती है।

न्यूक्लीय विकिरणों की मात्रा को मापने के लिए ताप-संदीप्ति नामक विधि का उपयोग किया जाता है। इसमें पदार्थ को गर्म करके संदीप्ति प्राप्त की जाती है। इस विधि से पुराने बर्तनों और खनिजों की आयु इत्यादि का सही-सही हिसाब भी लगाया जा सकता है।

दबाव, प्रघात इत्यादि से भी ताप-संदीप्ति पैदा हो सकती है। जिस स्थल पर न्यूक्लीय विस्फोट हुआ हो, वहां की चट्टा[ने] ताप-संदीप्तिशील हो जायेंगी। उन[का] विश्लेषण करके हम वहां पर हुए परमा[णु] विस्फोट के बारे में जानकारी पा सकते है[ं]।

इस प्रकार संदीप्ति-क्रिया का उपयो[ग] मानव ही नहीं कर रहा है, प्रकृति भी कद[म]-कदम पर उसका लाभ उठा रही है। इ[स] प्रक्रिया में हाथ बंटाने वाली अशुद्धियों के केंद्रों के बारे में विज्ञान काफी कुछ जा[न] गया है। इसका भविष्य में हम कित[ना] अधिक लाभ उठा पायेंगे, यह इस पर निर्भ[र] है कि क्या हम अपनी आवश्यकता के अनु[]सार नये संदीप्तिशील पदार्थों का निर्मा[ण] कर सकेंगे।



पुलिस के सिपाहियों, दरबानों और सैनिकों के पैरों की रक्तवाहिनियां बहुधा फ[ूल] जाती हैं और कष्ट देती हैं। इन्हें चिकित्साशास्त्र की भाषा में 'वेरिकोज़ वेन्स' कहा जा[ता] है। आपरेशन द्वारा इन्हें कई बार निकाल दिया जाता है। वैज्ञानिकों ने अब यह देखा कि काटकर निकाली हुई ये रक्तवाहिनियां यदि फेंक न दी जायें, अपितु रोगी के शरी[र] में ही जमा कर दी जायें, तो भविष्य में रोगी की किसी रक्तवाहिनी के खराब होने प[र] उसकी जगह इस्तेमाल की जा सकती हैं। रोचेस्टर (अमरीका) में कुछ शल्य-चिकित्स[कों] ने एक कुत्ते पर पहले-पहल यह प्रयोग किया।

यों आजकल जब शरीर से कोई बड़ी रक्तवाहिनी काटकर निकालनी पड़ती है, [तो] उसकी जगह कृत्रिम रेशे की बुनी हुई नलियां लगा दी जाती हैं। परंतु रोचेस्टर विश्व[]विद्यालय के डा० मैक्रेनाल्ड्स और उसके सहायकों का कहना है कि रोगी के अपने [ही] शरीर की रक्तवाहिनियां सबसे अच्छी रहती हैं। उनका यह भी कहना है कि शरीर [से] निकाली गयी 'वेरिकोज' रक्तवाहिनियों को जमा करने का सर्वोत्तम स्थान है, जांघ [का] ऊपरी भाग। मैकरेनाल्ड्स ने सचमुच 'वेरिकोजवेन' के आपरेशन के बाद उन रक्त[]वाहिनियों को साफ करके रोगी की जांघ में रखकर सी दिया। पांच महीने बाद उ[न्हें] निकालकर देखा गया, तो वे बिलकुल ठीक हालत में थीं।



कश्मीर में मैंने देखा

सत्तर साल पहले के एक ईमानदार अंग्रेज अफसर के अनुभव

सर वाल्टर लारेन्स

दिल्ली के लाल किले में दीवाने-खास की एक दीवार पर लिखा हुआ है :

अगर फिरदौस बर रूए जमीनस्त,
हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त।

मैंने भी ये पंक्तियां पढ़ी थीं और तभी से मेरे मन में कश्मीर जाने की धुन सवार थी। आखिर एक दिन कश्मीर से बुलावा आ गया। रवाना होने से पहले लार्ड विलियम ब्रसफोर्ड ने मुझे सावधान किया—"कश्मीर तो जाओ, मगर वहां का रसोइया मत रखना।"

शिमला में भी एक घनिष्ठ मित्र ने मुझे आगाह कर दिया था—"अगर तुम वहां जाकर रियासत के काम में दखल दोगे, तो मुसीबत में पड़ जाओगे।" फिर भी मैंने ब्रिटिश सरकार की हिदायत पर, लगान की दर कायम करने के लिए वहां जाना मंजूर कर लिया।

कश्मीर का इतिहास बड़ा विचित्र रहा है। जम्मू-कश्मीर रियासत का क्षेत्रफल लगभग उतना ही है, जितना ग्रेट ब्रिटेन का। १८ वीं सदी के मध्य में काबुल के शाह दुर्रानी ने हमला करके कश्मीर पर कब्जा कर लिया था। १९ वीं सदी के शुरू में सिक्ख राजाओं ने कश्मीर को काबुली दुर्रानियों से जीत लिया। सिक्ख राजा भी बहुत उदार नहीं थे; लेकिन वे काबुली भेड़ियों से, जिन्होंने कश्मीर के गरीब निवासियों पर असीम अत्याचार किये थे, काफी अच्छे थे।

सन १८५० में ईस्ट इंडिया कंपनी ने सिक्ख फौज को पराजित कर डोगरा राजपूतों के प्रमुख गुलाबसिंह को कश्मीर की मिल्कियत ५ लाख रुपयों में सौंप दी। डोगरा लोग 'मियां राजपूत' कहलाते थे। नेपाली गुरखों की तरह डोगरा फौजी भी बड़े हिम्मती और बहादुर होते हैं।

गुलाबसिंह ने कश्मीर को खरीद लेने के बाद वहां बड़ी योग्यता से राज्य-प्रबंध किया। अपराधियों को सख्त सजा देने के लिए वे मशहूर थे। शायद इसीलिए अपने कश्मीर-निवास के छः वर्षों में मैंने किसी गांव में चोरी या डाके आदि अपराधों की कोई घटना घटित होते नहीं सुनी।

महाराज गुलाबसिंह की दंड-व्यवस्था का एक नमूना मुझे एक प्रत्यक्षदर्शी ने बताया। उसने बताया कि वे प्रतिवर्ष एक बार सारी रियासत का खुद दौरा करते थे। एक दिन जब वे श्रीनगर से कुछ दूर नदी के किनारे

का निरीक्षण करने गये, तो उन्होंने देखा कि कुछ मजदूर नदी पर पुल बना रहे हैं।

ये मजदूर ऐसे कैदियों में से थे, जो पांच वर्ष की सजा जेल में काट चुके थे। उनमें से एक मजदूर बड़ी मेहनत और होशियारी से अपना काम कर रहा था। महाराज उसके काम से खुश हो गये, उसे बुलाया और उसकी तारीफ की। उसने भी महाराज का रुख देखकर दरख्वास्त की कि मुझे अगर बरी कर दिया जाये, तो मैं और भी मेहनत से यह खिदमत कर सकूंगा।

सरसरी तौर पर 'हां' कहने के बाद महाराज ने उससे पूछा—"तुम्हें किस अपराध में कैद हुई थी?"

"छोटी-सी बात थी महाराज!" अपराधी ने जवाब दिया।

पास खड़े जेलर ने आगे बढ़कर खुलासा किया—"महाराज, अपराध यह था कि इसने एक छोटी-सी लड़की को मारकर उसके गले से गहना चुरा लिया था।"

"ओह! तो यह बात है!" महाराज ने यह कहते हुए कलम और स्याही मंगवायी और हुक्म जारी किया—"अपराधी के कपड़े उतारकर उसे जमीन पर लिटा दिया जाये और उसके हाथ-पैर चार खूंटों से बांध दिये जायें।"

अपराधी बांध दिया गया। तब महाराज ने खुद कलम से उसके शरीर पर तीन लकीरें खींचीं और कहा—"इसे इन स्थानों पर आरे से चीर दिया जाये।"

आज्ञा पूरी की गयी और अपराधी के शरीर के चार टुकड़े हो गये। फिर महाराज की आज्ञा के अनुसार चारों हिस्से रियासत की चार दिशाओं के केंद्रीय स्थानों में इस हिदायत के साथ भेज दिये गये कि ऐसी चोरी को छोटी बात न समझा जाये और ऐसे अपराधों के लिए मौत से कम की सजा न दी जाये।

कहते हैं, वर्षों तक किसी की चोरी करने की हिम्मत नहीं हुई।

महाराज गुलाबसिंह ने अपने शासन-काल में कश्मीर की आर्थिक उन्नति करके ब्रिटिश सरकार का पूरा पावना दे दिया। लेकिन १८५७ में उनकी मृत्यु के बाद राज्य की आर्थिक अवस्था बिगड़ गयी। उनके पुत्र रणवीरसिंह बहुत सज्जन तथा उदार राजा थे। उनकी सज्जनता का लाभ उठाकर शासन के निचले अधिकारियों और ब्राह्मण पंडितों ने अपढ़ व गरीब किसानों को मनमाने ढंग से लूटा। लगान वसूल करने और उसे खजाने में दाखिल करने का काम इन्हीं पंडितों का था। वे वसूली करके रकम खजाने में जमा नहीं करते थे, खुद हजम कर जाते थे। नतीजा यह हुआ कि खजाना खाली हो गया।

रणवीरसिंह बहुत ही नरम राजा थे। कठोरता उनके स्वभाव में न थी। मैं उनसे एक बार लाहौर में १८८१ के दरबार के समय मिला था। मैं कह सकता हूं कि उन जैसा सुंदर पुरुष मैंने आज तक नहीं देखा। दयालु वे इतने थे कि मीरांकदल और हब्बा-कदल के पुलों के बीच मछली का शिकार

करने पर उन्होंने रोक लगा दी थी।

सन १८८५ में राजा रणवीरसिंह की अकाल मृत्यु हो गयी। उनके बाद उनके पुत्र राजा प्रतापसिंह जब गद्दी पर बैठे, तो राज्य का खजाना खाली था। किसानों से लगान वसूल करने की कोई सुनिश्चित व्यवस्था नहीं थी। राज्य की ऐसी दुरवस्था तथा कुछ अन्य कारणों से ब्रिटिश सरकार ने उन्हें गद्दी से उतारकर उनके भाई राजा अमरसिंह को गद्दी सौंप दी।

लेकिन छः महीने अपदस्थ रहने के बाद राजा प्रतापसिंह फिर गद्दीनशीन हुए और इसी समय उन्होंने मुझे भूमि-लगान की व्यवस्था करने के लिए लैंडसेटलमेंट आफिसर नियुक्त किया।

मेरे सामने बड़ी कठिनाइयां थीं। शासन का कोई भी अधिकारी मुझे सहयोग देने के लिए तैयार नहीं था। स्टाफ की नियुक्ति भी मुझे पंजाब से करनी पड़ी। मैंने तंबू लेकर गांवों में जाने की योजना बना ली। मगर मैं जहां भी पहुंचता, वहां के कश्मीरी अधिकारी गांव वालों को डरा-धमकाकर मेरे पास आने से रोक देते। गरीब कश्मीरी किसान पटवारियों के डर से अपनी जमीन का कोई हिसाब नहीं देते थे। और हिसाब के बिना मैं लगान की कोई दर निश्चित नहीं कर पाता था। इतनी कठिनाइयों के बावजूद मैंने अपना काम जारी रखा।

एक और मुसीबत यह आ गयी कि छः महीने तक न तो मुझे, और न मेरे स्टाफ को राज्य के खजाने से कोई वेतन दिया



महाराज गुलाबसिंह

एक समकालीन चित्र की अनुकृति

गया। जब मैं वेतन लेने श्रीनगर में खजांची के पास गया, तो वह कहने लगा—"खजाने में रुपया नहीं है, आप चाहें, तो उतनी कीमत के सिंघाड़े लेकर और बेचकर वेतन वसूल कर लीजिये।" मैंने इन्कार कर दिया, तो उसने सरसों लेकर वेतन वसूल करने की बात कही।

मैं झुंझला गया और मैंने तुरंत राजा प्रतापसिंह से मिलकर फैसला करा लेने का निश्चय किया। नाव पर बैठकर मैं उसी समय डल झील के टापू में पहुंचा। वहीं राजा साहब नावों की प्रतियोगिता देख रहे थे। वे मुझे देखकर कुछ सकपकाये; क्योंकि उनके आमोद-प्रमोद के बीच मैं विघ्नस्वरूप आ गया था। लेकिन वे बहुत चतुर और व्यवहारकुशल व्यक्ति थे। अभी-अभी उन्हें फिर से गद्दी पर बैठाया गया था; इसलिए

एक अंग्रेज अफसर को नाराज करना उन्होंने उचित न समझा। दूसरे दिन मुझे वेतन मिल गया।

मैंने अपना काम पूरी लगन से शुरू कर दिया; किंतु शासनाधिकारियों ने, जिनमें डोगरा अधिकारी भी शामिल थे, मेरे मार्ग में अनेक बार बाधाएं डालीं। डोगरा परिवार के एक व्यक्ति कर्नल नत्था ने गांवों में जाकर धमकाना शुरू किया कि जो लोग अपनी जमीनों को रजिस्टर करायेंगे, उनकी जमीनें छीन ली जायेंगी। कुछ किसानों को उसने इसी तरह बदखल करके गिलगित भेज भी दिया।

मैंने कर्नल नत्था के विरुद्ध राज्य के प्रधान मंत्री को तार दिया और दरख्वास्त की कि कर्नल नत्था को सरकारी नौकरी से अलग कर दिया जाये, अथवा मेरा त्यागपत्र स्वीकार किया जाये। मुझे बताया गया कि कर्नल नत्था राजा के चचेरे भाई हैं, इसलिए उनकी बर्खास्तगी के लिए आग्रह न किया जाये। किंतु मैं अपने हठ पर कायम रहा और मेरी जीत हुई।

इस रस्साकशी से मेरा काम आसान हो गया। अब मैं जहां भी जाता, किसान मेरे पास खुशी-खुशी आते और अपने दिल की बात कह देते।

मेरा नाम 'बंदोबस्त साहब' पड़ गया था। कश्मीरी किसानों में मेरी लोकप्रियता देखकर शासनाधिकारियों को जलन होना स्वाभाविक था। रोज नयी अफवाहें उड़ने लगीं। मुझे परेशान करने की कई तजवीजें की गयीं। एक दिन मैंने देखा कि एक [illegible] पंडित सिर के बल उलटा खड़ा है। चा[illegible] ओर भीड़ थी। मैंने अपने अर्दली को कहा- "इसे मेरे पास लाओ।"

पास आने पर मैंने पंडित से पूछा-"तु[illegible] सिर के बल उलटे क्यों खड़े थे?"

उसने जवाब दिया-"साहब! आप[illegible] आने से मेरी जमीन का सारा बंदोब[illegible] इतना उलट-पुलट हो गया है कि मुझे खु[illegible] ही पता नहीं चलता कि मैं उलटा खड़ा [illegible] कि सीधा!"

मुझे उसके उत्तर पर हंसी आ गयी[illegible] बाकी लोग भी हंसे और वह पंडित खुद [illegible] जोर से हंस पड़ा। यह सच भी था कि मे[illegible] कार्य ने खुशामदखोर पंडित-पुजारियों [illegible] सब काम उलट-पुलट कर दिया था। [illegible] उनकी नाराजगी की परवाह किये बि[illegible] किसानों को खेत जोतने-बोने और लगा[illegible] की उचित रकम खजाने में जमा करने [illegible] प्रेरणा देता रहा।

मेरे प्रयत्नों से बेगार-प्रथा भी बंद ह[illegible] गयी। इससे हर किसान को मजदूरी मिल[illegible] लगी और वह लगान का पैसा खजाने में जम[illegible] करने लगा।

उन्हीं दिनों वहां मुस्लिम किसानों [illegible] धर्मगुरु मुल्ला सतारबट सोनमर्ग की ए[illegible] गुफा में रहता था। मशहूर था कि खुद मह[illegible] राज प्रतापसिंह ने कई बार उससे मिल[illegible] की कोशिश की थी, लेकिन उसने इन्कार कर दिया था।

एक बार मैं कार्यवश सोनमर्ग [illegible]

घाटी में गया, तो मुसलमान खुद मुझे उसके पास ले गये। मुस्लिम पीर ने मेरा शुक्रिया अदा करते हुए कहा—"आप बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। आपने किसानों को गुलामी से आजाद करवा दिया। इनकी जिंदगी अब पहले से बहुत आसान हो गयी है। लेकिन अब आप इतनी आसान न कर दें कि ये निहायत सुस्त हो जायें।"

मुझे संतोष था कि मेरे काम से कश्मीर के गरीब किसान खुश थे। पूरी रियासत के नक्शे बनाकर मैंने लगान-दर कायम करने की व्यवस्था भी कर दी थी। मैं कश्मीर की स्टेट कौंसिल की नौकरी में था। कौंसिल के अध्यक्ष खुद राजा प्रतापसिंह थे। वे भी मेरे काम से नाखुश नहीं थे। फिर भी मेरा दुर्भाग्य था कि मैं कश्मीर को खुशहाल न बना सका।

अचानक उन्हीं दिनों मुझे लंदन से सेटलमेंट आफिसर बनने की आफर आ गयी और मैं राजा साहब तथा स्टेट कौंसिल के सदस्यों से विदा लेकर लंदन के लिए रवाना हो गया।

अंत में एक बात और लिख दूं। उन दिनों स्टेट कौंसिल के सदस्य भी बड़े विचित्र स्वभाव के हुआ करते थे। एक हिन्दू कौंसिलर ने बतलाया कि उनके पास ब्राह्मी लिपि के कुछ पुराने ताम्रपत्र थे, जो साधारण पंडितों से पढ़े नहीं जा रहे थे। उन्हें पढ़ने के लिए उन्होंने एक विचित्र उपाय किया। आठ साल के एक ब्राह्मण लड़के को उन्होंने खरीद लिया। (लड़कों की खरीद-फरोख्त का चलन उन दिनों कश्मीर में बहुत था।) लड़के को एक अंधेरी कोठरी में बंद कर दिया गया। पिछले आठ वर्ष से बेचारा उसी अंधेरी कोठरी में कैद था।

कौंसिलर साहब को पूरा विश्वास था कि दो वर्ष और अंधेरी कोठरी में रखने के बाद जब उसे उजाले में लाया जायेगा, तब उसकी आंखों में ताम्रपत्र पर खुदे अक्षरों को पढ़ने की शक्ति आ जायेगी।

मुझे उनके अंधविश्वास पर हंसी आयी; लेकिन स्टेट कौंसिल की नौकरी में होने के कारण मैं जाहिरा तौर पर हंस न सका। मुझे यह सोचकर दुःख हुआ कि जिस रियासत की कौंसिल में ऐसे मूर्ख अधिकारी हैं, उसका भविष्य क्या होगा!

स्टेट कौंसिल में हिन्दू-मुसलमान दोनों थे। वे आपस में एक-दूसरे पर कीचड़ भी उछाल लेते थे और महाराज की खुशामद में एक-दूसरे को मात करने की कोशिश भी करते थे। कौंसिल की बैठक में गाली-गलौज भी हो जाती। लेकिन कश्मीर की प्रजा मेरे कार्यकाल में हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिक उपद्रवों से मुक्त रही। दोनों संप्रदायों के लोग स्नेह से रहते थे। यह एक बात बड़ी आशाजनक थी।



सरकार का असली काम यह होना चाहिये कि वह लोगों के लिए अच्छा काम करना सरल और बुरा काम करना कठिन बना दे। —ग्लैडस्टन



कितने क्षण जीवन के कितने मृत्यु के?

इंदुलाल गांधी

जिंदगी जैसे-जैसे आगे बढ़ती जाती है, उसका मूल्यांक चढ़ता जाता है। चढ़ते-चढ़ते एक अंक ऐसा आता है, जो जीवन के सीमा-स्तंभ का सूचक होता है। इस अंक से ऊपर जो जीवन हम जीते हैं, वही सच्चा जीना है। इसके नीचे का जीवन महज सांस लेना है।

जीवन में आने वाले हर दिवस का हिसाब रखते जाइये। 'जीवित' दिन के आगे धन का चिन्ह (+) बनाइये और 'मृत' दिन के आगे ऋण का चिन्ह (−) बनाइये। जीवित दिन आपको 'जीवित' क्यों लगा और मृत दिन 'मृत' क्यों लगा, इस पर अच्छी तरह विचार कीजिये। इस प्रकार के विश्लेषण से जीवन के सत्य का पता चलेगा।

मुझे ग्यारह जीवन-स्थितियां ऐसी लगीं, जिनमें अनुभव होता है कि मैं सचमुच जी रहा हूं; और पांच स्थितियां ऐसी प्रतीत हुईं, जिनमें लगता है कि केवल सांस-भर ले रहा हूं। मैं मुख्य जीवन-दशाओं की बात कर रहा हूं। गौण दशाएं दर्जनों हैं, जिन्हें मैं बारीकी से जांच नहीं पाया हूं।

मैं जी रहा हूं—यह अनुभव मुझे करानेवाली ग्यारह दशाएं ये हैं :

१. जब मैं कोई सृजन कर रहा होता हूं तो लगता है कि निश्चय ही मैं जी रहा हूं, जैसे कविता या लेख लिखते समय, मित्र क स्केच बनाते समय, अर्थशास्त्र की को गुत्थी सुलझाते समय अथवा नयी पुस्तक से अपनी अलमारी भरते समय।

२. सचमुच ही कला मुझे नयी चेतना प्रदान करती है। सुंदर उपन्यास, कविता और चित्र, सरस नाट्य-अभिनय और फिल्में, सुंदर मकान और पुल—इन सभी में मुझे रचयिता का प्राणांश उतरता हुआ दिखाई देता है।

३. पर्वत, समुद्र और नक्षत्र मुझमें नव-जीवन भरते हैं। जब इन सबको देखता-समझता हूं, तो ऐसा लगता है कि श्वास-क्रिया मेरी जीवन-स्थिति से बहुत नीचे कहीं रह गयी है।

४. प्रेम बहुत ही सूक्ष्म और प्राणवान चीज है। वह ग़जब का प्रकाश सबमें भरता है, दृष्टि में तीव्र उलट-फेर कर देता है। इसमें माता-पिता के प्रेम, पति-पत्नी के प्रेम, मित्र के प्रेम, वात्सल्य, सहृदयता और सम-भाव, दया आदि का समावेश हो जाता है।

५. जब कोई मजेदार वार्तालाप या मजे-दार चर्चा मुझे गुदगुदाती है, तब मुझे लगता

है कि मैं जी रहा हूं। विचार-व्यापार में एक ऐसा संजीवन-दायक संवेदन होता है कि कहते नहीं बनता।

६. जब मैं किसी भयपूर्ण परिस्थिति में होता हूं, तो लगता कि सचमुच मैं जी रहा हूं—जैसे सीधी चढ़ाई या पर्वत-शिखर पर चढ़ते समय।

७. जब किसी प्रसंग में आंतरिक शोक उत्पन्न होता है, तो लगता है कि मैं बहुत ऊंचाई पर जी रहा हूं।

८. जब खेल खेल रहा होता हूं, तो मैं जी रहा होता हूं। विशेष करके तैरते, सैर करते या पैदल यात्रा करते समय।

९. तेज भूख लगने पर भोजन करते समय, अथवा गर्मी में झुलसने या थकावट झेलने के बाद झरने का शीतल जल ओंठों से लगाते समय।

१०. दिन-भर खूब काम कर लेने अथवा सैर-सपाटे में दिन बिताने के बाद जब मीठी नींद ले रहा होता हूं, तब।

११. दिल खोलकर खिलखिलाकर हंसते समय।

अब इनसे विरुद्ध पांच स्थितियां भी बता दूं:

१. जब मन मारकर कोई बेगार का काम कर रहा होता हूं—जैसे लंबा हिसाब जोड़ना, बर्तन मांजना, पत्रों के उत्तर देना, पैसों का लेन-देन, हजामत करना, कपड़ा-लत्ता पहनना-उतारना और ठीक जगह रखना, शहर में बस या रेल के लिए भाग-दौड़ करना, खरीदारी करना—ऐसे समयों



पर लगता है कि मैं धौंकनी की तरह सांस खींच और छोड़-भर रहा हूं।

२. जब नाते-रिश्ते से न्योता आये और भोजन या जलपान में शामिल होना पड़े, अथवा गंवारों की बातें सुननी पड़ें।

३. जब तृप्ति हो जाने पर भी खाना खाना पड़े, पेय पीना पड़े अथवा जबर्दस्ती सोना पड़े।

४. जब पुराने मकानों के खंडहर, पुराना फर्नीचर, पुराने कपड़े आदि जीर्ण-शीर्ण चीजें हमारे जीवन से चिपकी रहें।

५. गंदगी और भोंडापन मुझे थका डालते हैं। और जब क्रोध से भर उठता हूं, तो लगता है, जंगल में भटक गया हूं।

मैंने हिसाब लगाकर देखा है कि सप्ताह के १६८ घंटों में कुल ४० घंटे (यानी २५ प्रतिशत) जीने के घंटे होते हैं। मैं मानता हूं कि अगर मैं जीवन की आवश्यकताओं की चक्की में पिस न रहा होता, तो अभी एक दिन में जितना जी पाता हूं, उससे दुगुना जरूर जी लेता। मगर वह सौभाग्य कहां?

['वैष्णवजन' से साभार]



यदि किसी संपन्न समाज में बुद्धिवाद के प्रहार से धर्म-परंपरा तो शिथिल होने लगे, परंतु उसका स्थान लेने के लिए विवेक उदित न हो, तो अध्यात्म की भूख लोगों को नितांत संदिग्ध राहों की ओर ढकेल सकती है। सायंटोलाजी इसका चौंकाने वाला उदाहरण है। अमरीका और ब्रिटेन में आत्मोन्नति और मानसिक स्वास्थ्य के साधन के रूप में पांव पसारते हुए इस खर्चीले पंथ का चित्र अमरीकी पत्रकार **एलन लेवी** ने यहां प्रस्तुत किया है।

सायंटोलाजी
भीतर की झांकी

मैंने कुछ लोगों से सुना था कि 'सायंटोलाजी' एक नये प्रकार की मनोरोग-चिकित्सा है, जो मनुष्य को श्रेष्ठतर मनुष्य बनाने का दावा करती है, और एक तरह से झूठ को पकड़ने का साधन भी है। सायंटोलाजी के भक्तों की दृष्टि में सायंटोलाजी एक महान सत्य है और एक नयी सत्यता की अग्रदूत है, जिसमें मनुष्य अपराधों, युद्धों और मानसिक विकृतियों से मुक्ति पा जायेगा।

सहज ही सायंटोलाजी में मेरी दिलचस्पी हुई। उसके संबंध में मैंने बहुत कुछ पढ़ा, और अंत में स्वयं इस नूतन मानस-चिकित्सा का अनुभव प्राप्त करने का निर्णय किया। इस निर्णय ने ही मुझे न्यूयार्क से इंग्लैंड पहुंचाया, जहां सायंटोलाजी के प्रवर्तक एल० रोन हबर्ड की बहुत बड़ी कोठी है। यह कोठी सायंटोलाजी का मुख्य केंद्र है।

पहले हबर्ड अपने मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान को 'डायनेटिक्स' कहता था और १९५० में उसने इस पर एक पुस्तक लिखी थी, जिसकी संसार-भर में बड़ी चर्चा हुई थी। हजारों-लाखों लोग डायनेटिक्स की ओर आकृष्ट हुए और उसके द्वारा अपने मानसिक विकारों का इलाज कराने लगे। हबर्ड का मत है कि साधारण बुखार से लेकर कई प्रकार की पुरानी खारिश, दमा, कैंसर आदि विभिन्न बीमारियां डायनेटिक्स द्वारा दूर की जा सकती हैं। बाद में हबर्ड ने अपनी 'विद्या' को सायंटोलाजी का नाम दिया। शीघ्र ही सायंटोलाजी ने 'धर्म' का रूप धारण कर लिया और वह उस तरह काफी हद तक किसी तरह की कानूनी पकड़ से बच गयी। क्योंकि शुरू-शुरू में हबर्ड के कुछ मरीज पागल हो गये थे और उसके खिलाफ कानूनी कार्रवाइयां हुई थीं।

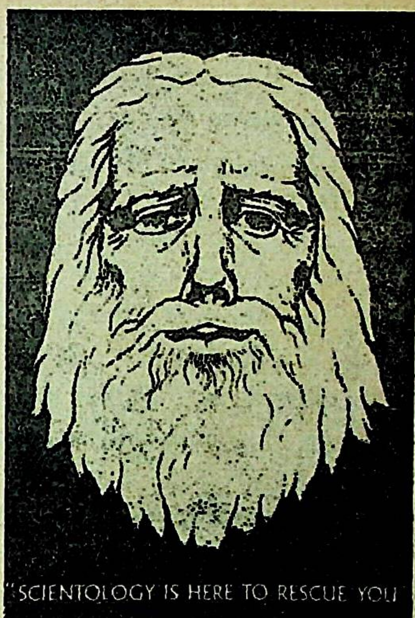
चिकित्सा-विधि के नाते सायंटोलाजी बहुत महंगी है। प्रारंभिक चिकित्सा पर ही लगभग ५ हजार रुपये खर्च आते हैं, जबकि पूर्ण चिकित्सा का खर्च १ लाख १२।। हजार रुपये तक पहुंच जाता है।

सबसे पहले मैं न्यूयार्क की 'सायंटोलाजी के गिरजे' में गया, जो बहुत बढ़िया नाचघर भी है। पहले यहां होटल था, जिसे बाद में 'नाचघर-गिरजे' का रूप दिया गया। मैं जब वहां पहुंचा, तो बहुत-से युवक-युवतियां और कुछ अधेड़ उम्र के व्यक्ति उपस्थित थे। सभी के चेहरों पर मैंने गैरदुनियावी मुस्कराहट देखी, जो उन चेहरों पर ऊपर से चिपकायी गयी लगती थी।

शुरू की तीन रातें मैंने सायंटोलाजी का विषय-प्रवेश कराने वाले भाषण सुने। उनके लिए कोई शुल्क नहीं देना पड़ा। फिर मुझे 'ई-मीटर' नामक एक यंत्र के सामने ले जाया गया, जो नाचघर के पीछे, एक छोटे-से कमरे में मेज पर रखा हुआ था। टीन के दो छोटे डिब्बे तारों द्वारा इस यंत्र से जुड़े हुए थे। मुझसे कहा गया कि दोनों हाथों में इन डिब्बों को पकड़ो।

"क्या यही झूठ पकड़ने वाला यंत्र है?" मैंने सामने बैठे व्यक्ति से पूछा।

वह बोला—"नहीं, हम इसे सच्चाई बताने वाला यंत्र कहते हैं......अब मैं आपसे कुछ सवाल पूछूंगा। हर सवाल दो-दो बार पूछा जायेगा, ताकि उसे समझने में आपको कोई उलझन न हो। सवाल का जवाब देना या न देना आपकी मर्जी पर है। 'ई-मीटर' की सूई आपकी प्रतिक्रिया बतायेगी।



सायंटोलाजी का एक विज्ञापन, जो पश्चिम की अनेक छिछली पत्रिकाओं के पन्नों में से झांकता हुआ आपको मिलेगा। दाढ़ी-मूंछ को महर्षित्व का लक्षण मानने वाले भोले लोगों को बनाने का प्रयत्न इसमें स्पष्ट देखा जा सकता है।

मुझसे ये सवाल पूछे गये—क्या आपने कभी कोई अपराध किया है? क्या आप नशा करते हैं? हमारी सूचना के विपरीत आपने पिछले चौबीस घंटों में शराब या किसी मादक द्रव्य का सेवन तो नहीं किया? क्या कल रात आपको अच्छी नींद आयी? अपनी पत्नी से आपका संबंध कैसा है?......

मैं जवाब देता गया और ई-मीटर की सूई मेरी बातों की सच्चाई बताती रही।

फिर एक सवाल पूछा गया —" सायंटोलाजी से आप क्या पाना चाहते हैं ?"

"यही चाहता हूं कि पहले से ज्यादा अच्छी तरह श्रम कर सकूं, पत्रकारिता से हटकर कोई और काम कर सकूं—जैसे, नाटक-लिखना—पहले से अच्छा पति और पिता बन सकूं।" मैंने कहा।

"ठीक! परंतु आपको कैसे विश्वास होगा कि सायंटोलाजी ने इसमें आपको सहायता दी है?"

"अगर मैं एक साल के भीतर ही कोई सफल नाटक लिख डालूं।" मेरे मुंह से सहसा निकल गया, जिस पर स्वयं मुझे हैरानी हुई।

"धन्यवाद! परंतु यह सूई बता रही है कि आप इस विषय में अभी कुछ और कहना चाहते हैं।"

मैंने कहा—"हां, मुझे अंदर-ही-अंदर बड़ी जुगुप्सा-सी अनुभव हो रही है, जैसे मुझसे पूछा गया हो कि शैतान के हाथ अपनी आत्मा बेचने की तुम क्या कीमत लोगे ?"

"ठीक! ......आपका मन 'साफ' हो गया। अब यह बताइये, क्या आप का ऐसे किसी व्यक्ति से संबंध है, जो सायंटोलाजी को क्षति पहुंचाना चाहता है ?"

मुझे दो व्यक्तियों के नाम याद आये, जिन्होंने मुझे सायंटोलाजी का निजी अनुभव प्राप्त करके लेख लिखने के लिए कहा था। अपना नाम भी याद आया, क्योंकि मैं सिर्फ लेख लिखने के लिए यह सब कर रहा था। मैं सोच ही रहा था कि इन तीनों में से कौन-सा नाम पहले बताऊं कि मेरे मुंह से अपनी पत्नी का नाम निकल पड़ा। वह नहीं चाहती थी कि मैं इस फेर में पड़कर अपना समय बरबाद करूं।

ई-मीटर की सूई ने बताया कि मेरा मन 'साफ' हो गया है।

कुछ देर में मैं इतना सावधान और सं[illegible] हो चुका था कि ई-मीटर को धोखा दे सकता था। ई-मीटर की सूई मन की भावनाओं का भी संकेत देने लगती थी, तो मैं कोई और बात सोचने लग जाता, ताकि मेरे मन के असली भाव का पता न लग सके।

अंत में मुझसे प्रश्न किया गया—"इस बैठक से आपको क्या लाभ पहुंचा ?"

"मैं आपके बारे में कुछ अधिक जान पाया हूं।" मैंने तनिक व्यंग्यपूर्वक कहा।

बाहर आने पर रजिस्ट्रार ने पूछा—"इस बैठक के बाद क्या आप अपने मन की शुद्धि के लिए अगला कदम उठाना चाहते हैं?"

इस एक बैठक से ही मैं जान गया था कि यह अनुभव आसान नहीं होगा। फिर भी मैंने 'हां' में जवाब दिया और रजिस्ट्रार को बताया कि मुझे कुछ दिन बाद लंदन जाना पड़ रहा है।

"ठीक है," रजिस्ट्रार ने कहा—"तब आप हमारे लंदन-केंद्र में मानस-चिकित्सा जारी रख सकते हैं।"

लंदन जाने से पहले मैं सायंटोलाजी के जनक एल० रोन हबर्ड के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त कर चुका था। वह सन १९१

में जनमा। उसका पिता नौसेना में कमांडर था। चौदह वर्ष की आयु में अपने पिता के साथ सुदूर पूर्व के देशों का भ्रमण करते हुए एल० रोन हुवर्ड ने लामा साधुओं के संग कुछ समय तक अध्ययन किया। फिर अमरीका लौटने पर वह वैज्ञानिक कहानियां व उपन्यास लिखने लगा, जो बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए। फिल्मों के लिए भी उसने कहानियां लिखीं। द्वितीय विश्वयुद्ध में उसने नौसेना में काम किया।

हुवर्ड का कहना है कि उसने लगभग दो सौ महान सत्यों का पता लगाया है। भारत और चीन में वह बहुत-से साधुओं और सिद्धों से मिल चुका है और उनके अलौकिक चमत्कार देखे हैं। उसने 'परमाणु दर्शनशास्त्र' द्वारा उन चमत्कारों की असलियत का पता लगाने की कोशिश की है।

लंदन में सायंटोलाजी के केंद्र में पहुंचते ही मुझे डेविड डनलप नामक व्यक्ति के पास भेजा गया। उसने कहा—"आपका इलाज हम चौथे ग्रेड से शुरू करेंगे, जो कि एक तरह से बीच की अवस्था है। इस ग्रेड के बाद तीन ग्रेड और हैं, जिन्हें पार करने पर आदमी का मन एकदम 'साफ' हो जाता है। हम रोज सुबह नौ बजे इलाज शुरू करेंगे, और पांच बजे ख़त्म करेंगे। बीच में खानपान के लिए एक घंटे की छुट्टी होगी।"

मैंने ई-मीटर के साथ जुड़े हुए डिब्बे दोनों हाथों में पकड़ लिये और सामने बैठे हुए डेविड ने कहा—"कोई बात याद कीजिये।"

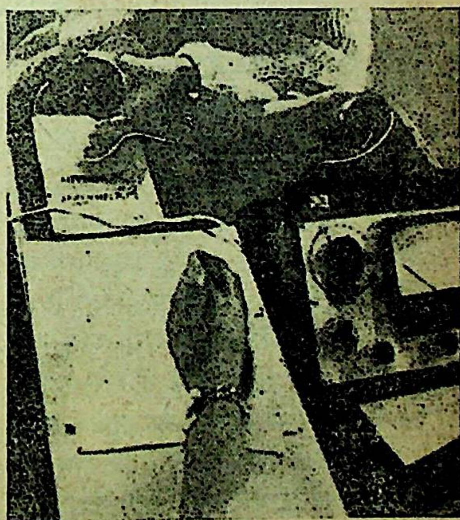
"यहां आने के लिए हवाई जहाज में चढ़ने से पहले मैंने अपनी पत्नी को फोन किया था।"

"ठीक! कोई और बात याद कीजिये।"

मैंने हवाई जहाज की कुछ बातें बतायीं।

"ठीक! अब इसके साथ जुड़ी हुई कोई और बात बताइये।"

मेरे पिता की चार महीने पहले कैन्सर से मृत्यु हुई थी। मैंने उसका जिक्र किया। फिर बताया कि उन्हें कैन्सर था, और मुझे आठ महीने पहले ही इसका पता लग चुका था। लेकिन जैसे उसके भी बहुत पहले से मुझे उनकी मृत्यु का आभास हो गया था। शायद यही कारण था कि तीन साल पहले मैंने एक पुस्तक खरीदी थी—'मरने का अम-



ई-मीटर के दोनों डिब्बों को इस तरह दोनों हाथों में पकड़कर उत्तर देना पड़ता है।



सेंट हिल की कोठी सायंटोलाजी का प्रधान मठ तो है, लेकिन महंत हबर्ड अब वहां पर नहीं रहते। वे विराजते हैं अपने ३२० फुट लंबे निजी जहाज में। यहां वे अपनी ज्येष्ठ पुत्री डायना के साथ ऊपरी डेक पर खड़े हैं।

रीकी ढंग'। पर मैं उसे पढ़ नहीं पाया था।

'कुछ देर के बाद डेविड ने मुझे डिब्बे छोड़ देने को कहा। उस समय ई-मीटर की सूई बिलकुल स्थिर थी। इसका अर्थ पूछने पर डेविड ने बताया—"जब यह एक जगह रुक जाये, तो इसका मतलब है कि अमुक समस्या के बारे में आपका मन 'साफ' हो गया है।"

अगली कई बैठकों में दूसरी समस्याओं का जिक्र हुआ और डेविड ने मुझे बताया कि उनके बारे में भी मेरा मन साफ हो गया है। इन बैठकों में भी मैं धीरे-धीरे शून्य ग्रेड से शुरू करके चौथे ग्रेड तक पहुंच गया।

अगली एक बैठक में मुझसे कहा गया कि किसी ऐसी घटना का जिक्र करो, जिसके कारण किसी से तुम्हारा संबंध टूटा हो। मुझे अपनी पत्नी के साथ हुआ सबसे पहल झगड़ा याद आ गया।

"कब हुआ था वह झगड़ा?" डेविड ने पूछा। मैंने कुछ देर सोचा और कहा—"स १९५८ के शुरू में। उस दिन इतवार था।"

"ठीक। अब तारीख का पता लगायें। महीना कौन-सा था? जनवरी? फरवरी?"

"मेरा खयाल है, मार्च।"

"हां, मार्च था वह।" डेविड ने ई-मीटर की ओर देखकर कहा—"अब बताइये, तारीख कौन-सी थी? पहली से दसवीं के बीच? या ग्यारहवीं से बीसवीं के बीच? ई-मीटर बता रहा है कि वह ग्यारहवीं से बीसवीं के बीच की तारीख रही होगी।"

"कैलेंडर देख लिया जाये।" मैंने कहा।

"नहीं," डेविड कुछ तीव्रता से बोला—"सब कुछ यह मीटर बता देगा। क्या वह ग्यारहवीं से पंद्रहवीं के बीच की कोई तारीख थी? या सोलह? सत्रह? अठारह? उन्नीस? बीस? सूई पंद्रह, सत्रह, और अठारह की ओर संकेत कर रही है।"

"हां, मुझे याद आया," मैंने कहा—"वह तारीख सत्रह होगी। हर कोई जानता है कि सत्रह तारीख को संत पैट्रिक का दिन होता है। अठारह के बारे में मुझे शक है।"

"तब वह तारीख अठारह ही होनी चाहिये। देखें, ई-मीटर क्या बताता है?"

मैंने पंद्रह से बीस तक गिना, तो मीटर ने 'अठारह' की ओर संकेत किया।

"ई-मीटर कभी गलती नहीं कर सकता।" डेविड बड़े विश्वास के साथ बोला।

मानस-चिकित्सा के दौरान में मैंने महसूस किया कि मैं अपने आपसे घृणा करने लगा था और हर समय मेरे मन में संघर्ष मचा रहता है। कभी मुझे अपने पिता की मृत्यु का खयाल आता, और मैं सोचता कि उनकी मृत्यु इसीलिए हुई कि मैं चौदह साल से मन-ही-मन उसकी कामना करता रहा था।

लेकिन तभी मन के एक कोने में से आवाज उठती कि नहीं, पिताजी की मृत्यु इसलिए हुई कि वे बूढ़े हो गये थे। और उन्हें कैन्सर हो गया था। उनकी मौत मेरे चाहने से हर्गिज नहीं हुई।......फिर भी अपराध-भावना ज्यों की त्यों बनी रहती थी। इसी प्रकार और भी कई घटनाओं की स्मृति ने मुझे अपनी नजरों में बहुत गिरा दिया।

मैं गया था पत्रकार के नाते सायंटोलाजी का अनुभव प्राप्त करने और मैं अपनी मानसिक शांति खो बैठा था। इससे पहले मुझे साल में औसतन तीन-चार बार हल्का-सा सिरदर्द हुआ करता था। लेकिन अब मुझे रोज ३-४ बार सख्त सिरदर्द होने लगा। जब भी मैं १८ मार्च १९५८ के इतवार को अपनी पत्नी के साथ हुए उस झगड़े के बारे में सोचता, एकाएक सिरदर्द शुरू हो जाता।

मुझे लगा कि उस झगड़े के साथ कोई ऐसी बात जुड़ी हुई है, जो याद न आने के कारण सिरदर्द पैदा करती है। मैं जितना ही सोचता, सिरदर्द बढ़ जाता। और अंत में मैं सोचने में असमर्थ हो जाता और मुझे प्रतीत होने लगता कि सायंटोलाजी ही मुझे इनसे छुटकारा दिला सकती है।

मेरे इलाज का चौथा ग्रेड पूरा होने पर एक दिन रजिस्ट्रार ने मुझे बुलाया और कहा कि पांचवें से आठवें ग्रेड तक के इलाज के लिए मुझे २३,६२५ रुपये और देने होंगे और रहने का खर्च अलग। सुनकर मुझे हैरानी हुई। मैंने बताया कि शुरू में जो बात हुई थी, उसके अनुसार तो मुझे सिर्फ २,९१५ रुपये देने हैं। लेकिन रजिस्ट्रार ने रेट-कार्ड दिखाकर मुझसे २३,६२५ रुपये पेशगी मांगे। मुझे बहुत गुस्सा आया; पर लाचार था। इतनी बड़ी रकम देने को मैं तैयार नहीं था।

वहां से लौटकर मैंने नाश्ता किया और पुस्तकों की एक दुकान की ओर चल दिया। दुकानदार ने कहा—"पिछले इतवार से ही मौसम बड़ा सुहावना है।"

इतवार का नाम सुनते ही मेरा सिरदर्द शुरू हो गया। तभी मुझे एक खयाल आया और मैंने आगे बढ़कर दुकानदार से पूछा—"आपके यहां जंतरी होगी?"

"नहीं......क्यों?"

मैं उसका जवाब दिये बिना ही मुड़ा और टैक्सी लेकर पुस्तकों की एक बड़ी दुकान में पहुंचा। वहां मैंने जंतरी खरीदी, और उसमें देखा कि १८ मार्च १९५८ को कौन-सा दिन था। देखकर मैं हैरान रह गया। १८ मार्च १९५८ को इतवार नहीं, मंगलवार था।

हमेशा सच्चाई बताने वाला 'ई-मीटर' गलत साबित हुआ। सायंटोलाजी से छुटकारा पाकर मैंने सुख की सांस ली।



आबाजान

निर्मला ठाकुर

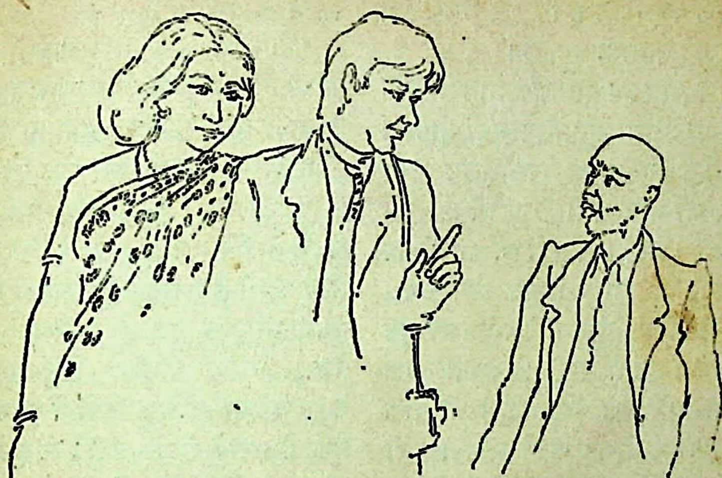
"यह यहां का बहुत मशहूर बाग है," उसने मेहराब के पास ही बताया। "बोटैनिकल गार्डन" ...... मैंने कहा। "यह तो अंग्रेजी नाम है मेमसाहब ! बाग कहने में ज्यादा आराम है।"

भेड़ के नर्म रोएं-सा गुदगुदा लुढ़कता मैदान। यत्न से उगायी और संवारी गयी रेशम-सी चिकनी, खूब हरी-हरी घास पर तीसरे पहर की गुनगुनी सुनहरी धूप अस्त-व्यस्त आराम की मुद्रा में लेटी हुई-सी। किस्म-किस्म के पेड़, ऊंचे-ऊंचे, जिनके नाम हमने उनके तनों पर लगे पत्तरों से याद करने की कोशिश की थी। वह बतलाता जा रहा था—"यह पेड़ जापान से मंगवाया गया है......यह चीन से......और ये......!"

घूमते-घूमते फार्मल फ्लावर गार्डन, टॉप गार्डन सब देख-दाखकर हम फिर घास पर आ बैठे। ऊटी की पहाड़ी हवा में सुगंध परत-दर-परत जमी हुई-सी लगती है। सबसे ऊपरी परत यूकेलिप्टस की है, जिसकी तीखी सुगंध के चलते कभी-कभी सांस रुकने-सी लगती है। सरसब्ज मैदान को आड़ी-तिरछी काटती छरहरी सीमेंट की पगडंडियां। घास में दुबके तरह-तरह के गुलाबी, नीले और पीले पहाड़ी फूल।

"यहां तो कई फिल्मों की शूटिंग हुई है। आपने कोई देखी है ?" मैंने उससे पूछा। "हां मेमसाहब, बहुत सारी फिल्मों की शूटिंग होती है। आये दिन कोई-न-कोई पार्टी जमी ही रहती है। सबके नाम तो हमें याद नहीं। हां, हाल ही में शायद कोई 'दिल्लगी' फिल्म की शूटिंग हुई थी..." उसने बात बंद की। "इतने लोग आते रहते हैं यहां कि इन लोगों में अब कोई कौतूहल नहीं बच गया है," सहयात्रियों में से एक ने अंग्रेजी में कहा—"हां, ऊटी बेहद लाउड होती जा रही है।"

कालेज की लड़कियों का एक दल आज फार्मल गार्डन में निहायत इनफार्मल ढंग से चहचहा रहा है। उन्हीं के साथ आ



चित्र : कमलाक्ष शेणै

रसोइय ने किनारे स्टोव जलाकर चाय की बड़ी-सी पतीली चढ़ा दी थी। चाय की सुगंध लगते ही चाय पीने की तलब उंगली पकड़कर बाग के बाहर खींचने लगी।

...... "बाबाजान, एक चाय आप अपने लिए भी ले लीजिये," इन्होंने कहा। "तो इन बुजुर्गसूरत गाइड का नाम भी उसी कायदे का है—बाबाजान!" मैंने हंसकर कहा और बाबाजान की तरफ उसकी नजर बचाकर देख लिया। छोटा-सा, दुबला-पतला साधारण आदमी। सांवला रंग और छोटी-छोटी आंखें। पाजामा और कमीज के ऊपर पुराना काला कोट। लेकिन उसकी बातचीत और उसका अदब-कायदा उसे साधारण नहीं रहने दे रहा था।

"कितना मांगता है?" किसी ने पूछा। रेस्ट-हाउस में रुकते ही दो-तीन गाइडनुमा सूरतों ने हमें हमेशा की तरह घेर लिया था। हम लोग सामान रखवाने चल दिये थे और ये रुक गये, गाइड तय करने। एक छोकरा गाड़ी धो देने और सारा कुछ दिखाने का लुभावना प्रस्ताव बार-बार रख रहा था। "उसी लड़के को क्यों नहीं लिया? तेज था......" किसी ने कहा। "वह लड़का आठ रुपये मांग रहा था और उससे नीचे उतरने को कतई तैयार नहीं था। इस बुजुर्ग ने कहा, 'आपकी जो मर्जी हो। जो दे देंगे, वही ले लूंगा।' आदमी शरीफ और साफ दीखता है।"

"अजी घाघ होगा। यह भी इन लोगों की एक 'ट्रिक' होती है। सोचता होगा, हम लोग इसकी बातों में आ गये हैं। आठ तो दे ही मरेंगे और ऊपर से एक-दो रुपये बख्शीश के।" इनको बुरा लग गया—" भई, मैंने

साफ-साफ कह दिया है कि हम पांच रुपये देंगे और वह मान भी गया है।"

चाय के बाद तय पाया कि शाम हो गयी है, लेक पर जाना मुनासिब नहीं होगा। बाजार होते हुए वापस रेस्ट-हाउस चला जाये। छोटी-बड़ी सजीली दुकानें। ऊंची-नीची डगर। ऊटी में पहाड़ों की शांति और एकांत नहीं रह गया है। खूब लोग-बाग। हरी सब्जियों की दुकान देख-देखकर हम चकरा गये। इतनी सारी! अपनी तरफ की सब्जी-भाजी का स्वाद जीभ की नोक को गुदगुदाकर बेजार करने लगा। "जी करता है, सब्जी खरीदकर अपने ढंग से खुद ही पकाते और खाते......" किसी महिला ने कहा। "मजा आ जाता......।" सबों ने एक स्वर से स्वीकारा।

बाबाजान ने धीरे-से हिचकते हुए कहा—"अगर आप लोगों को कोई एतराज न हो, तो बेगम पका दे सकती हैं। वे जानती हैं।" मैंने चौंककर उसकी तरफ देखा। यह भी एक 'ट्रिक' है? या इसकी आदत में शुमार है? या......? हम हथियारों से लैस चलते हैं, हथियारों का सामना करना आता है हमें। निहत्थों के साथ क्या किया जाये, यह हम लोग नहीं जानते। "......बेकार उनको तकलीफ हो जायेगी बाबाजान। रेस्ट-हाउस में अच्छा खाना मिल ही जाता है......" इन्होंने कमजोरी दिखायी। रेस्ट-हाउस के गेट तक आया वह कुछ बुदबुदाया, शायद "शबाखैर।" मैंने मन में कहा 'शबाखैर', और अपने को समझाया कि उसने सुन लिया होगा।

पहाड़ की सुबह, जब बादलों के सा[illegible] हवा घनी और ठंडी होकर नीचे उतर आ[illegible] है। चोटी और घाटी पर जमी गाढ़ी मलाई[illegible] सी धुंध, रात-भर की जमी ओस पेड़ के प[illegible] से चिपकी रहती है और धीरे-धीरे हवा [illegible] चलने से नीचे गुजरने वालों के सिर पर [illegible] से चू पड़ती है। सुबह-सुबह खिले फूलों [illegible] सुगंध भी कुछ जुदा होती है—कुछ ज्याद[illegible] तेज......ज्यादा मीठी। दोड्डु-बेट्टा चोट[illegible] से हमने देखा—नीचे घाटियों में सूरज निक[illegible] चुका है। नीले रंग के चंदोवे में सूर्य-किर[illegible] की लाल-पीली किनारी लगने लगी है। कितना खुला, कितना विस्तृत लग रहा [illegible] संसार! पहाड़ की ढाल पर पीले फूलों [illegible] सेज बिछी है। पहाड़ पर बांध लेने का [illegible] एक आग्रह वातावरण में रहता है, [illegible] ठुकराकर ही हम उतर पाये।

लौटते वक्त बाबाजान ने कार रुकवायी—"मेमसाहब लोगों को चाय बगान दिखा[illegible] है।" चाव से दिखाया—"यही है चाय बगान[illegible] बीच-बीच में ऊंचे पेड़ लगाते हैं। ये पे[illegible] पानी रोकते हैं, छांव देते हैं।" झुक[illegible] कर पत्ती दिखायी—"दो पत्ती, एक कली।" थोड़ा आगे बढ़ने पर उसने उंगली उठायी—"यह सिनकोना है, जिससे कुनैन बनत[illegible] है। यहां तो बहुत-सी जड़ी-बूटियां मिलत[illegible] हैं साहब! लेकिन अब उनके जानका[illegible] नहीं रह गये हैं। जब हुनर ही नहीं रहा, त[illegible] इन चीजों की क्या कद्र हो!" उसने बुद[illegible] बुदाते हुए बात पूरी की। ओंठों में बुदबुदा[illegible]

की उसे आदत थी......और ऐसा करते वक्त वह शाइर लगता था।

"अब कहां......लेक पर ?" "गोल्फ कोर्स वगैरह देखते चलेंगे," बाबाजान ने सुझाया। जब हम लेक पर पहुंचे, तो सूरज बीच आसमान में आने से थोड़ा-सा ही रह गया था। यह दो भुजाओं वाली खूबसूरत झील नवीना रूपसी-सी हवा के हल्के झोंकों पर ताल देती अपने ही आईने में अपने को देखती बड़ी प्यारी लग रही थी। काफी देर हम नाव पर घूमते रहे। किसी ने कहा—"कोडै की झील इससे बड़ी थी और ज्यादा साफ भी। पानी हरे पन्ने-सा चमकता था।" बाबाजान सिकुड़ गया—"यह भी वैसी ही साफ और खूबसूरत थी। पीछे इतने लोग आने लगे कि......" उसने हमें नाखुश नहीं करना चाहा।

बैंक से चेक भुनाने थे। पुरुष वर्ग बैंक के अंदर गया, तो बाबाजान हमारी गाड़ी के आस-पास चक्कर लगाने लगा। थोड़ी देर बाद झिझकता हुआ वह हमारे करीब आ रहा—"मैं पूछना चाहता था कि आपके बच्चे......?" हम सभी हंस पड़ीं—"घर पर छोड़ आयी हैं सबों को। लंबे सफर में बच्चों को तकलीफ हो जाती, और उनकी तकलीफ से हमें तकलीफ हो जाती।" वह खामोश सिर हिलाने लगा—"ठीक फ़रमाया, बिलकुल ठीक!" मैंने पूछा—"और आपके बच्चे बाबाजान ? कितने बच्चे हैं आपके ?" वह उदास हो गया—"सात बच्चे थे। अब दो हैं। लड़का आठवीं जमात में पढ़ता है। एक छोटी बच्ची है।"

"आप यह गाइड का काम कब से कर रहे हैं ?" वह और भी बेजार हुआ। धीमे-धीमे कहने लगा—"यह तो हार-थककर शुरू किया है। साइकल-मरम्मत की दुकान थी। बढ़ाकर मोटर-मरम्मत का गैराज बना लिया। वालिद गुजर गये थे। दो छोटे भाइयों को पढ़ाया-लिखाया भी। उन्हीं दोनों ने......। एक फिल्मों में चला गया। अच्छा गुजर करता है। दूसरा मेरे साथ ही रहता था। बीच में मेरी सेहत अचानक खराब हो गयी, तो उसने दुकान ही बैठा दी। बच्चे को पढ़ाना था। मैं यहां आ गया। और कुछ करने की ताकत बची तो थी नहीं, यही काम करने लगा। कुछ ब्रोकर का काम भी कर लेता हूं। यही मकान-वकान दिलवाने का। किसी तरह गुजर हो जाता है। छोटे भाई ने फिर दुकान खड़ी कर ली। अब तो रईस है। खुदा भला करे उसका। या अल्लाह ......!" उसने अपने चेहरे पर हाथ फेरा।

मैंने बात बदलने की गरज से कहा—"बाबाजान, ऊटी तो लोग साल भर आते रहते हैं। फिर गाइड मनमाने पैसे भी वसूल करते हैं। खासी कमाई होती होगी और आप कहते हैं कि......" उसकी आंखों में कब के बुझे अंगार जल उठे—"फरेब देने के लिए पत्थर का कलेजा दरकार है मेमसाहब! जो खुद जमाने का सताया है, वह जमाने को क्या सता सकेगा ? हां, यह बात और है कि आज फरेब का ईमान है, उसको सभी समझते हैं। फर्ज का कोई ईमान नहीं......।"

ऊटी से मैसूर। कोई सौ मील। लेकिन आपको लगे कि यह हजार हो जाये, लाख हो जाये। वाबाजान ने ठीक ही कहा था— "ऐसा मालूम पड़ेगा मेमसाहब, कि रास्ता सीधा जन्नत को जाता है।" याद आने पर मैंने इनसे पूछा कि वावाजान को कितने पसे दिये? "छ: रुपये। एक ज्यादा दिया अपनी तरफ से। उसने मांगा नहीं था।" "दस दे देते तो भी ठीक था। आदमी अच्छा था।" किसी ने कहा। ये मुस्कराये।

जल्दी ही नीलगिरि मोड़-मोड़ पर अपनी खूबसूरती के अनमोल खजाने लुटाता कभी दायें से तो कभी बायें से हमें बांधने लगा। छोटे-बड़े शिखर हरीतिमा से आपादमस्तक आच्छादित। अधबूढ़े, जवान और तरुण वृक्ष सजीली भंगिमा लिये हवा के हल्के झोंके से चौंक पड़ते। इन्हीं पेड़ों में दुबकी कोई नीली आंखों-सी झील कभी हमें बहुत नीचे झांकने को विवश कर देती। कभी चारों ओर खड़े पेड़ों की परछाईं से घिरा छोटा-सा ताल चिकनी हरियाली में जड़े नगीने की तरह चमक उठता। गहन वन-प्रदेश आते ही हिरनों के झुंड मिलते। कोई दल का नायक बांकी चितवन साधे टहनियों से उलझे सींग लिये हमारी गति-विधियों को चुनौती देता-सा काली आंखों से घूरता खड़ा रह जाता। हम गुजर जाते, लेकिन वे काली आंखें दूर-दूर तक हमारा पीछा करतीं।

मैसूर में उस बड़े होटल के द्वार पर ही कृष्णन् ने हमें पकड़ लिया। ठिगने कद का जवान आदमी। फुर्तीला। "बीस से नीचे काम नहीं चलेगा सा'ब!" अपने कद को पूरा तानने की कोशिश की उसने—"हम ऐसा-वैसा गाइड नहीं है। सब दिखायेगा, सब समझायेगा। तुम हमारा काम देखो सा'ब, तब दाम दो......।" हां, यह हमारी दुनिया का आदमी है, इसे समझना आसान है—मैंने सोचा था। बहुत कहा-सुनी के बाद पंद्रह रुपये पर तय पाया। मैसूर और बेंगलूर यात्रियों और पर्यटकों के शहर हैं। हमें आश्चर्य नहीं हुआ। उसने डेढ़ दिन का प्रोग्राम बना दिया। सचमुच तेज आदमी। लेकिन उसकी तेजी की तुर्शी का जायका भी बहुत जल्द ही मिल गया।

चामुंडी पहाड़, मैसूर के महल, वृंदा-वन गार्डेन्स पहुंचा देना भर उसका काम था। "दायें घूमो सा'ब, बायें घूमो और अब सिधा......" वह फौजी अफसर की भंगिमा से गरजदार आवाज में निर्देश देता। ठिकाने पर पहुंचने के बाद ही उसे गुम हो जाने का कमाल हासिल था। हम हैरत करते! कभी-कभी खीझ में मजाक भी कर लेते— "हम सब समझायेगा सा'ब......हम कोई ऐसा-वैसा गाइड नहीं है।" कुछ भी कहो, पत्थर पर पानी! उस पर कोई असर नहीं। बहुत असुविधा होती।

मैंने उसके ठौर-ठिकाने पूछे। "धनु-ष्कोडि में घर था। बाढ़ में चला गया सब। तभी इधर आया। मां है, भाई है।" "शादी बनाया?" मैंने उसी के लहजे में पूछा। पहली बार तनी हुई कमान ढीली पड़ी,

शरमा गया—"अभी नहीं बनाया मेमसाहब! रुपया जमाता है। अब बनायेगा।" नया पौधा। इसे बहुत आगे बढ़ना है......और आगे बढ़ने के लिए जिंदगी को जालिम होना ही पड़ता है।......

श्रीरंगपट्टण। टीपू के सपनों का शानदार शहर। हम ईंट-ईंट को पढ़ लेना चाहते थे। मकबरे ...... महल ...... लड़ाई का मैदान। कृष्णन् कुछ समझा नहीं पाता। ऊपर-ऊपर की कह देता था। कोई जानकारी थी भी नहीं उसे। और हम थे कि समूचे इतिहास को पी जाना चाहते थे। चुल्लू-भर से क्या प्यास बुझती! बहुत गुस्सा आता।

आखिर में दरिया-दौलत--अर्थात् समर पैलेस। हमारी पूछ-ताछ से कृष्णन् बेहद घबरा गया था। उसने कब सोचा था कि हम लोग इतनी बातें जानना चाहेंगे! इसलिए इस बार उसने गेट पर ही कह दिया—"अंदर गाइड होगा मेमसाहब! प्राइवेट गाइड अंदर जाने नहीं सकता।"

चिलचिलाती दोपहरी में जब हम अंदर गये, तो सचमुच भरपूर ठंडक से बड़ी राहत महसूस हुई। महल का गाइड जानकार और हमदर्द आदमी था। उसने दिलचस्पी लेकर बहुत कुछ बताया—"दीवारों पर बाहरी गर्मी का असर न हो, इसलिए कपड़े मढ़े गये थे। उसके ऊपर लाख का काम। उस पर बेल-बूटे। फ्रांस का रंग। गुलबर्गा का कारीगर। यह दीवाने-खास......यह दीवाने-आम। यहां बेगमें बैठती थीं। टीपू की तस्वीर। ये उसके बेटे......अंग्रेजों को बतौर जमानत दे दिये गये थे।" तस्वीर के दुःख ने हाथ बढ़ाकर हमें छू लिया। किसी ने पूछा—"यहां प्रायवेट गाइड नहीं आ सकते?" "क्यों नहीं," उसने जवाब दिया। हमें लगा, जैसे उन तस्वीरों में से किसी ने एक खोखला ठहाका लगाया हो।

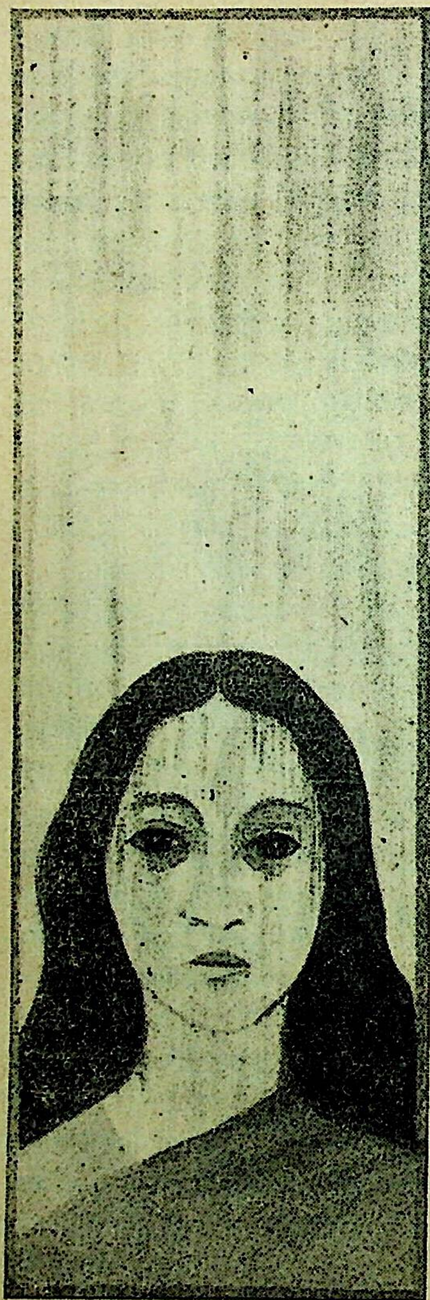
जब मैसूर से विदा हुए, तो उस खूबसूरत ऐतिहासिक शहर की ममता उदासी बनकर हमारे दिलों से लिपट गयी। मैंने परिहास किया—"कृष्णन् को पंद्रह रुपये देने का अफसोस हो रहा है?" इन्होंने धीरे-से कहा—"नहीं तो। हां, बाबाजान को पंद्रह रुपये नहीं देने का बहुत अफसोस हो रहा है।" बहुत देर तक कोई कुछ नहीं बोला। क्या बोलते? फरेब के ईमान को हम समझते थे। लेकिन फर्ज का ईमान......?



एक दिन जेल के पते पर एक आदमी के नाम एक पत्र आया। किंतु उस नाम का कोई कैदी जेल में नहीं था। जेलर ने सोचा, शायद गलती से यहां आ गया है। इतने में उसकी नजर बायीं ओर लिखे शब्दों पर पड़ी। लिखा था—"यदि इस नाम का कैदी अभी तक आपकी जेल में न आया हो, तो कृपया यह पत्र अपने पास रख लीजिये और जब वह आ जाये, तब उसे दे दीजिये। यदि वह अभी तक जेल में आया न हो, तो अब उसके आने का समय हो गया है।"

—बी० जे० कापड़ी





दो बांहों के बीच का खोखलापन, दो पा[illegible] के बीच का खोखलापन ...... प्रता[illegible] अकेलापन......और उस अकेलेपन पर सवा[illegible] भूत-जैसी स्मृतियां ...... वह दूर वा[illegible] क्षितिज......और उसके उस पार क्या[illegible]

वह हतबुद्धि हो चुकी थी । नियति [illegible] कैसी विडंबना ! अनजाने ही अंत[illegible] तक गहरा घाव—खून से भरा, भीगा हु[illegible] घाव । सारी जिंदगी ही खून से लथपथ [illegible] गयी । पर खून इन नसों में क्यों नहीं है[illegible] उनसे खून क्यों नहीं निकलता ? दु:ख क[illegible] नहीं फूटता ? पहाड़-सा दु:ख--ऐसा दु[illegible] जिसकी भयावह परछाईं से सारी जिं[illegible] के आगे स्याह अंधेरा छा जाये । उस दु[illegible] की फांस हंसते-हंसते लगा ली होती; जन[illegible] भर उसी फांस पर लटकी रहती ...... [illegible] उसकी जिंदगी पर उजाड़ नियति ने अप[illegible] प्रतिबिंब डाला ही नहीं ।

क्यों......आखिर क्यों......? ......पि[illegible] दो-तीन दिन से उसके मन में यही प्र[illegible] चक्कर काट रहा था । वह उस प्रश्न के उ[illegible] के लिए परेशान थी । उसका मन इसी प्र[illegible] के इर्द-गिर्द घूमता रहता था । और उत्तर[illegible] कहां था उत्तर ? इस आसमान के खुले[illegible] में ? या कि दु:ख के पहाड़ के उस ओर[illegible] वहां कैसे पहुंचा जा सकता है ? वह स्थि[illegible] शायद दु:ख ही ला सकती थी । पर [illegible] क्षण तो आया ही नहीं । सुख से लंगड़ा[illegible]

चित्र : कमलाक्ष [illegible]

मराठी से अनुवाद : विजय बापट

पागल इच्छाएं

• विजया राजाध्यक्ष •

फिसलती जिंदगी......प्राणों में दुःख तो उभरा ही नहीं।

सुबह उठकर उसने अनमने भाव से बाहर की ओर देखा। सृष्टि का वही जाना-पहचाना रूप। वही आसमान, वही धूप ओढ़े हुए जमीन, वही पहाड़, वही धीमी गति से बहने वाला पानी, वही झूमने वाले पेड़, एक ही जगह ठहरी हुई दिशाएं।

धूप चढ़ रही थी और वह वैसी ही बैठी हुई थी--शून्य, निढाल। पर इस खालीपन का मतलब दुःख नहीं। उसका मन बार-बार यही कहे जा रहा था--इस शून्यता के चक्कर में न आओ......। वह सब कुछ जानती थी, और इसीलिए कोई प्रतिकार नहीं करती थी। दुबली, कमजोर। पर कमजोरी, असहायता तो अभी-अभी के लिए लिए थी--क्षणिक। घर में रोज की तरह काम-काज चल रहे थे। पिछले दो दिनों से दबे स्वर अब ऊंचे हो गये थे। बंद की गयी खिड़कियां खुल गयी थीं। अंदर उजाला था और उस उजाले के साथ चेतना वापस आ गयी थी।

उसकी मां उसके करीब आकर खड़ी हो गयी। उसने कदम पहचान लिये, पर ऊपर न देखा। मां की सूखी आंखें देखने की उसकी इच्छा न थी। पर अभी कल ही क्या इन सूखी आंखों से फूटते आंसू उसने देखे नहीं थे? पर उसकी आंखें सिर्फ सूखी थीं। उसकी बांझ आंखों में तो आंसुओं के अंकुर जैसे फूटे ही नहीं।

"उठोगी नहीं अब?" उसकी मां धीमे स्वर में बोली।

"हूं।" उसने भी धीमे से कहा। उसे पड़े रहने का अधिकार भी क्या था? वह घायल थोड़े ही थी? उसके पंख टूटे न थे। वह धीरे-से उठी और आईने के सामने जा खड़ी हुई। आईने में अपना प्रतिबिंब वह तीन दिन बाद देख रही थी। बिखरे हुए बाल, मैले-कुचैले वस्त्र और ...... और सफेद ललाट, सूना गला ......! उसे लगा, अब उसे रोना आ जायेगा। तीन दिन पूर्व ललाट पर बिंदिया थी, गले में मंगलसूत्र था। वह मंगलसूत्र पिछले तीन सालों तक उसका सहारा था, भरोसा था, और अचानक वह बिखर गया था।

सभी बातें याद आने लगीं उसे। मंगल-

सूत्र के बिखरे हुए मनकों की तरह पिछले सालों की वह हंसी-खुशी-भरी जिंदगी। अमीर मां-बाप की इकलौती बेटी। किसी बात की कमी नहीं। हर दिन सुख से बीतेगा, ऐसा विश्वास। अठारह-उन्नीस साल की उम्र। शादी का खयाल घर के किसी को आता ही न था, और उसकी आंखों में भी कोई सपना नहीं फूटा था। ठीक ऐसे ही समय जगदीश उसका हाथ मांगने आया। जगदीश भी काफी अमीर था। काफी ऊंचे ओहदे पर काम करता था। मां-बाप नहीं थे। सिर्फ एक बड़ी बहन थी। मगर वह भी अपना घर बसा चुकी थी। जगदीश के सिर पर किसी तरह की जिम्मेदारी नहीं थी। रिश्ते-नाते भी नहीं थे।

मां बोली—"नहीं हैं, तो न सही। आजाद जिंदगी सुखी रहती है।" और शादी तय हो गयी। अनजाने ही उसे अच्छा-खासा पति मिल गया। वह सुख से पूरी तरह भीग गयी। तीन साल तक वह सुख प्रवहमान रहा।......सामने के आईने में उसे अपनी जगह जगदीश के ही असंख्य प्रतिबिंब दिखाई दे रहे थे।......उसके इर्द-गिर्द रहने वाला जगदीश, उसे पास खींचने वाला जगदीश, उसे आत्मसात् कर लेने वाला जगदीश...... उसे मैके भेजते समय आकुल-व्याकुल हो जाने वाला जगदीश......उसकी आंखों में खो जाने वाला जगदीश......। वह भी तो इसी तरह खो गयी थी।

उसने आईने में बिखरे जगदीश के प्रतिबिंब की ओर देखकर फिर एक बार मन एकाग्र करने का यत्न किया। अब बचे हैं प्रतिबिंब—आईने से अलग होते ही बि[illegible] जाने वाले प्रतिबिंब—आंखों से ओझल हो[illegible] वाले प्रतिबिंब। जगदीश के अस्तित्व [illegible] यह आभास......मगर जगदीश है कहां ......वह तो बिना कहे, जाने कहां [illegible] गया?......

शाम को लगभग छः बजे आफिस [illegible] लौटा थका-थका हुआ-सा। चाय पीते स[illegible] उसका अवसन्न चेहरा देखकर भी उस[illegible] पूछा—"चलिये, घूमने चलते हैं?"

"आज बड़ी थकान-सी लगती है। [illegible] तुम्हारी इच्छा है, तो चलो......"

रास्ते में वह कदम खींचते हुए चल [illegible] था। और बीच में ही चक्कर खा गया।

"क्या हुआ?" उसने घबराकर पूछा

वह कुछ न बोला। कांपने लगा। [illegible] टैक्सी की तलाश......डाक्टर को फो[illegible] ......उसे देखने के बाद डाक्टर का उ[illegible] चेहरा......इंजेक्शन की सूई उबालने [illegible] लिए जलते स्टोव की आवाज......द[illegible] इयों की अजीब गंध......धीरे-धीरे इ[illegible] ट्ठा होने वाले लोग......और उससे दू[illegible] दूर जाता हुआ जगदीश।......आखिरी [illegible] उसे सिर्फ एक जम्हाई-सी आयी। [illegible] सो गया।

उसकी वह निश्चल देह......उस [illegible] सजे हुए फूल......उस कमरे में सुगंध बि[illegible] रती अगरबत्तियां।......साक्षात् मृत्यु [illegible] इर्द-गिर्द निर्मित प्रसन्न वातावरण।

उसे याद आया, जगदीश को ले [illegible]

वक्त मामीजी उसका हाथ पकड़कर वहां तक लायी थीं। उसने स्थिर दृष्टि से उस चेतनाशून्य देह की ओर देखा। यह है मेरा जगदीश?......हां, यह तुम्हारा ही जगदीश है! देखो, कैसे बिना बोले ही जा रहा है! हम कहां हैं, उसे पता नहीं है। कुछ समय बाद अग्नि की लपटें उसके चेहरे को, शरीर को जला देंगी; पर वह कुछ न कहेगा। उसकी राख बन जायेगी;......और......और अजीब बात यह है कि उसे रोना क्यों नहीं आ रहा? वह सोच रही थी, मृत्यु की विभीषिका देखकर तो दु:ख जरूर फूट पड़ेगा; वह धरती पर लोट जायेगी। पर वह तो खड़ी थी। और अंदर तूफान मचा हुआ था—कैसी विपरीत नियति? बिजली की कौंध से आसमान का एक हिस्सा पल-भर झमक गया था, पर टूटा नहीं था; बिजली ने मिट्टी को आहत किया था, पर मिट्टी के पेट का अंकुर वैसा-का-वैसा ही था। बादलों की उमड़-घुमड़, तूफान के बाद भी पेड़ गिरे न थे। सृष्टि सपाट थी—बिना दरार वाली सृष्टि। ये दरारें कैसी होती हैं? पांव कैसे उलझते हैं? कांटे कैसे गड़ जाते हैं?...... अब ये सवाल बचे ही रहने वाले थे। उनके उत्तरों का क्षण चुक गया था, ठीक जगदीश जैसा।

वह कई बार कहा करती थी—"दु:ख क्या होता है, मुझे तो मालूम ही नहीं।"

"तो हो क्या गया......खुशी ही मनाओ!" दूसरे लोग कहते थे।

धूप तपने लगी थी। बाहर के कमरे में कोई आया था उससे मिलने, समवदना प्रकट करने......उस आदमी से बातें करते वक्त मां की आवाज सुनाई दे रही थी:

"अब ठीक है न? संभल गयी है न?"

"हां, धीरे-धीरे संभल जायेगी......"

"कुछ दिन उसे अकेली मत छोड़िये।"

"मैंने भी यही सोचा है।"

"वैसे बड़ी धीरज वाली है। बेचारी की उम्र ही क्या है? शादी हुए अभी तीन ही साल तो बीते थे।......दूसरी कोई होती, तो तांडव खड़ा कर देती। पर बेचारी ने चुपचाप सब सह लिया......"

"हां, बचपन से तो लाड़-प्यार में पली थी......"

"शायद इसीलिए अचानक का यह आघात सहन न हुआ होगा......सुन्न हो गयी होगी......"

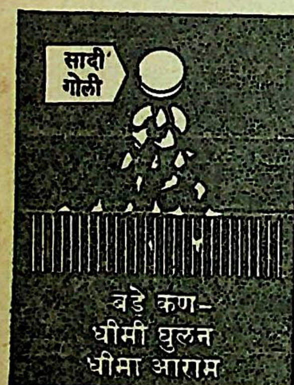
"कुछ ऐसा ही लगता है।"

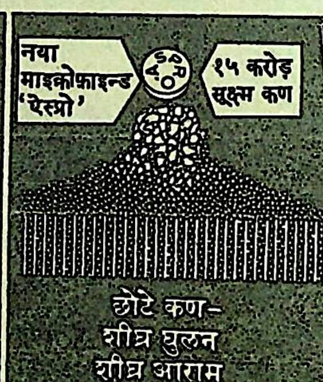
ऐसे जाने कितने वाक्य उड़कर उसके कानों तक आते थे। उसकी चुप्पी के लगाये गये अलग-अलग अर्थ—दु:ख कभी देखा नहीं, धीरज वाली, अचानक का आघात...... पागल हो जायेगी......

पर वह तो जैसे इन सब बातों से उदासीन खड़ी है। सहज ही बिंदिया पोंछ ली, मंगलसूत्र निकालकर रख दिया। लोग कहते हैं, वैधव्य का एक अलग ही अर्थ है, पर उसे तो कोई भी अर्थ समझ में नहीं आता।

उसे अभी मां-बाप का सहारा है, आर्थिक निश्चिंतता है। ससुराल में किसी के न होने की वजह से टीका-टिप्पणी करने वाला भी

सिर्फ़ 'ऐस्प्रो' ही माइक्रोफ़ाइन्ड है दर्द को जल्दी खींच निकालने के लिये







इन शिकायतों के लिये नया माइक्रोफ़ाइन्ड 'ऐस्प्रो' लीजिये – दर्द • सिरदर्द • शरीर के दर्द • फ़्लू • सर्दी-जुकाम • जोड़ों के दर्द • गले की ख़राश • दांत का दर्द।

खुराक : प्रौढ़ : दो गोलियां; ज़रूरत पड़ने पर दुबारा ली जा सकती हैं। बच्चे : एक गोली या अपने डाक्टर की सलाह के अनुसार।

आजके उपलब्ध दर्द विनाशकों में नया माइक्रोफ़ाइन्ड 'ऐस्प्रो' अत्यंत आधुनिक है।



नया माइक्रोफ़ाइन्ड 'ऐस्प्रो' जल्द ही दर्द को खींच निकालता है

निकोलस उत्पादन

AG.38 HIN

कोई नहीं है। कोई संतान भी नहीं है, इसलिए उसकी जिम्मेदारी भी टल गयी। उसे सहसा अपनी एक सहेली की याद आ गयी ......पहले गर्भ के वक्त ही पति की मृत्यु हो गयी थी। घर की गरीब। अभी-अभी ही तो जिंदगी थोड़ी स्थिर हो पायी थी। सुख की हल्की-सी हवा लगी ही थी कि तूफान भहरा पड़ा। नौकरी कर रही थी, पेट के बच्चे के लिए क्या-क्या कष्ट नहीं झेल रही थी! उसके दु:ख बासी हुए ही न थे। अभी भी उनमें तेजी थी।

और मेरा दु:ख शायद जगदीश की चिता के साथ ही बुझ गया है। कहीं कोई दरार है ही नहीं। कल की चिंता की जरूरत ही नहीं। कल क्या? अधिक-से-अधिक यही कि फिर मां के घर आकर रहना। एक अर्थ में वही पहले की जिंदगी शुरू कर देना। बीच के इस दृश्य का जिंदगी के कथानक से क्या संबंध है? अगर इस दृश्य को छोड़ भी दिया जाये, तो कुछ बिगड़ेगा क्या? नियति ने धूमिल अक्षरों में लिखा और पोंछ दिया, यही न? कोरा कागज। नये अक्षर लिखते वक्त मिटे हुए अक्षरों का स्मरण तक न हो, इतना कोरा।

नये अक्षर? हां। वह हड़बड़ा गयी और सोचने लगी—अंदर-ही-अंदर मन के तहखाने में सोचने लगी—गहरा तहखाना, बिना अंधेरे का। वहां अरविंद उसकी राह देख रहा था। उसे अपने भाग्य पर अचरज हुआ। जगदीश जैसा दिलदार पति—मुझ पर प्राण देने वाला। शादी का नयापन खत्म न हुआ। कोई शिकायत नहीं, कोई झगड़ा नहीं...... और फिर भी यह अरविंद क्यों मिला? उसके बारे में धूमिल ही सही, पर आकर्षण क्यों? ...... तीन महीने पहले ही की तो बात है। क्यों हुई, इसका कोई उत्तर न था। अंकुर फूटा अवश्य, पर अभी ही यह अंकुर क्यों फूटा? जगदीश के चले जाने पर फूटता तो......तो भी चल सकता था। कुछ काल तो जिंदगी में खोखलापन रहता। दो बांहों के बीच का खोखलापन, दो पाटों के बीच का खोखलापन......प्रताड़ित अकेलापन......वह तितिक्षा......उस अकेलेपन पर सवार भूत-जैसी स्मृतियां......वह दूर वाला क्षितिज......और उसके उधर क्या? प्रलय! इस प्रलय के दर्शन के वक्त अरविंद मिलता तो? प्रलय होने के पूर्व ही आने वाली नये युग की गवाही......भाग्य की इस करुणा से वह हतबुद्धि हो गयी थी। क्यों ऐसी करुणा? क्यों ये सुख? किस जनम के पाप खड़े हो गये हैं?

शाम हो चली थी। दिन के प्रहर कैसे एक के बीच से एक फूटते गये! आसमान के रंग कैसे एक से एक निर्माण हो रहे थे! सपाट सृष्टि। वह बेरोक-टोक आगे बढ़ने वाली थी। उसे दिशाओं का सहारा था। काल के चक्र घूमते रहने वाले थे ...... उसे गंतव्य मालूम था।...... प्रलय होने वाला था; पर नया मनु उसके पहले ही निर्मित हो गया था......यह सृष्टि कितनी निश्चित! क्या वह सृष्टि का एक निश्चित चक्र स्वीकार कर सकेगी?



फिलफिल

एक अरबी कथा **नजीब महफूज** की सशक्त लेखनी से

'कैफे अनबसात' में यद्यपि बहुत-सी चीजें ध्यान को आकृष्ट करती थीं, किंतु उनमें सबसे अधिक आकर्षक था बारह वर्षीय 'फिलफिल'। बहुत ही दिलचस्प लड़का था। उसका असली नाम ता-संकर था, लेकिन हर आदमी उसे 'फिलफिल' ही कहता था। वह नारजील और जोज (तंबाकू-जैसी वस्तु) पीने वालों के लिए अंगारे लाया करता था और पौ फटने से लेकर आधी रात तक अपने काम में मग्न रहता था।

ये उपनाम यों ही प्रसिद्ध नहीं हो जाते, बल्कि इनमें और व्यक्तित्व में गहन संबंध अवश्य होता है। इसीलिए जो भी इस लड़के को देखता और यह उपनाम सुनता, वह नाम रखने वाले को दाद दिये बिना न रहता। अरबी में फिलफिल काली मिर्च को कहते हैं। और ता-संकर का नन्हा गोल-मटोल-सा गठा हुआ काला बदन बिलकुल काली मिर्च की तरह दिखाई देता था। जो भी उसका नाम लेता, वह मधुमक्खी की तरह उड़ता हुआ उसके पास पहुंच जाता। उसका सारा दिन और लगभग आधी रात इसी तरह ग्राहकों की सेवा में दौड़ते हुए बीत जाती। इस सारे समय में उसके शरीर को जरा भी आराम न मिलता और न ही उसकी आवाज बंद होती।

'कैफे अनबसात' में काम शुरू किये उसे एक वर्ष पूरा हो गया था। उसे रोजाना एक रुपया मिलता और उसके अलावा वह नारजील के कुछ कश भी लगा लेता। उसे हर रोज चाय की दो प्यालियां भी मिल जातीं—एक सुबह और एक दोपहर के खाने के बाद। इस तरह वह बिलकुल प्रसन्न और आश्वस्त था। क्योंकि एक तो उसकी जीविका भी निकल आती और दूसरे वह बड़े आदमियों की तरह ठाट से नारजील और जोज के कश भी लगाया करता।

फिर भी, यह एक हकीकत थी कि वह अपनी अवस्था पर इतना संतुष्ट नहीं था कि उसी से आश्वस्त होकर भविष्य को बिलकुल विस्मृत कर देता। वह इसी कैफे में ही अपने भविष्य के सपने देखा करता था।

वह हर रोज यही सपना देखा करता था कि बहुत जल्दी वह समय आ जायेगा, जब उसका मालिक उस पर भरोसा करेगा। जोज और नारजील का सारा सामान उसके सुपुर्द किया जायेगा और वह गद्दी पर सिर ऊंचा करके यों बैठेगा, जैसे कैफे का मालिक बैठा हो। उसी दिन के लिए तो वह ये अनु-

भव प्राप्त कर रहा था। इन महत्त्वाकांक्षाओं ने उसकी कल्पनाओं में एक सुंदर और खुशगवार भविष्य की तस्वीरें खींच रखी थीं। उसे अपना भविष्य रुई के गाले की तरह नर्म और मुलायम दिखाई दे रहा था।

'कैफे अनवसात' पर फिलफिल यों छाया हुआ था, जैसे वह उसकी आत्मा हो। वह उसके चप्पे-चप्पे से परिचित था और स्थायी ग्राहक तो फिलफिल के बिना 'कैफे अनवसात' की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। फिर भी एक चीज उस कैफे में ऐसी थी, जिसकी हकीकत पता करने का फिलफिल को बड़ा शौक था; और वह चीज थी विद्यार्थियों की एक छोटी-सी टोली।

ये लोग छुट्टी होते ही कैफे में आते और एक अलग-थलग कोने में बैठ जाते। मशीन की तरह कैफे के वातावरण में गति आ जाती और फिर चाय की एक-एक प्याली हरएक के सामने होती। वे चाय की चुस्कियों के साथ-साथ शतरंज खेलने में मग्न हो जाते। जब वे चाय और शतरंज से निपटते, तो एक विद्यार्थी अखबार निकालकर पढ़ने लगता और बाकी बड़ी शांति से खबरें सुनने लगते। खबरों के समाप्त होते ही किसी-न-किसी बात पर बड़ी गर्मागर्म बहस छिड़ जाती। और फिलफिल उनके मोटे-मोटे और समझ में न आने वाले शब्दों को कैफे की बास-भरी हवा से टकराते हुए सुनता और मन-ही-मन सोचा करता कि ये लोग आखिर कहते क्या हैं?

आखिर वह शाम भी आ गयी, जब फिलफिल ने उनकी बहस को ध्यान से [illegible] और उसके एक-एक शब्द को समझ [illegible] सच तो यह है कि वह इन बातों पर बड़ा [illegible] हुआ। इस बार अखबार पढ़ने वाले ने [illegible] खबर पढ़ी, जिसमें बताया गया था कि [illegible] तरह पुलिस ने एक बड़े सरकारी अ[illegible] को रिश्वत लेते हुए गिरफ्तार किया। [illegible] की तरह बहस शुरू हुई और एक महा[illegible] जोश में आकर कहने लगे—"यह तो [illegible] एक आदमी है, जो न्याय के पंजे में आया [illegible] लेकिन अभी सैकड़ों ऐसे हैं, जिन्हें इस [illegible] जेल में होना चाहिये था। मगर वे इस[illegible] जेल से बाहर हैं कि कानून का पंजा [illegible] कारण उन तक पहुंच नहीं सकता।"

ये बातें यद्यपि फिलफिल के लिए अने[illegible] थीं, किंतु उसके मस्तिष्क में कुछ ऐसा [illegible] इसलिए वह इनका अर्थ भी समझ ग[illegible]

इसके बाद तो जैसे भर्त्सना और [illegible] का तूफान आ गया।

एक विद्यार्थी कह रहा था—"उदाह[illegible] के रूप में अमुक आदमी को लीजिये। [illegible] आप जानते हैं कि उसने दौलत किस त[illegible] कमायी?" और तब उसने इस तरह ब[illegible] करना शुरू कर दिया, जैसे वह उस व्य[illegible] का प्राइवेट सेक्रेटरी या परामर्शदाता [illegible] और जैसे अमुक महाशय ने चोरी, धो[illegible] और फरेब की सारी करतूतें उसी के प[illegible] मर्श से की हों। तब तो हरएक ने कि[illegible] न-किसी बड़े आदमी का उदाहरण पेश कि[illegible] और ऐसे भयानक रहस्यों का उद्घा[illegible] किया, जैसे वह दूसरे साथियों के ब[illegible]

अक्टू[illegible]



चित्र : कमलाक्ष शेणै

हुए उदाहरणों को मात देना चाहता हो।

लंबी बहस होती रही और अंत में एक विद्यार्थी ने कहा– "दोस्तो, यह एक ऐसा मुल्क है, जिसमें चोरी को खुल्लमखुल्ला जायज बना दिया गया है।"

फिलफिल विस्मय से आंखें फाड़े इस बहस को सुन रहा था। वह सभी बातें समझ रहा था; क्योंकि इस बहस में न किसी विचित्र भाषा का उपयोग हो रहा था, और न साहित्यिक उपमाओं और प्रतीकों का। जब उसने वह अंतिम वाक्य सुना, तो उसकी खुशी की सीमा न रही। तो यह चोरों और डाकुओं का देश है। फिलफिल भी तो चोर था! वह भी तो आंख बचाकर मालिक के पैसे उड़ा लेता था और कभी-कभी छिपकर नारजील के कश भी लगा लेता था।

बल्कि फिलफिल ने तो चोरी की कोख से जन्म लिया था। वह चोरी की गोद में पला और चोरी ही के घुटनों पर खेला था। उसकी मां फुरसत के क्षण ऐसे ही कामों में बिताती थी–कभी पड़ोसन का वर्तन चुरा लिया, तो कभी रेहड़ी वाले से थोड़ी-सी सब्जी उड़ा ली। उसका बाप भी इसी किस्म की जिंदगी बिताया करता था। वह सदा लांड्री वालों की ताक में रहता। जब भी बाल्कनियों में या पिछली ओर के आंगनों में कपड़े सूखने के लिए डाले जाते,

वह उनमें से कुछ उड़ा लेता। इन कामों में वह खूब माहिर था। वह मजदूरी करता, तो भी चोरी से काम लेता। काम लेने वाले की आंख हटी, तो बैठ गया। गारे की टोकरी उठाकर इस तरह चलता, जैसे किसी खूबसूरत बाग में चहलकदमी कर रहा हो, या जैसे कोई बीमारी की मारी हुई चींटी तिनकों से अटक-अटककर चल रही हो। विद्यार्थी बहस करके चले गये; लेकिन फिलफिल तो उन्हीं की बहस के बारे में सोचता रहा।

रात को देर से जब वह घर लौटा, तो उसने देखा कि मां जाग रही है। वह बहुत उदास और दुःखी दिखाई दे रही थी। बच्चे उसके इर्द-गिर्द बैठे हुए रो रहे थे। फिलफिल को धक्का-सा लगा। और इससे पहले कि वह कुछ कहता, उसकी मां ने सिसकियां लेते हुए और आंसुओं में डूबी हुई आवाज में कहा—"पुलिस तुम्हारे बाप को पकड़ ले गयी है।"

वाक्य बड़ा संक्षिप्त था और फिलफिल इससे कोई अर्थ नहीं निकाल सका। वह पूछने वाला ही था कि उसकी बड़ी बहन ने स्पष्टीकरण कर दिया —"पिताजी को कपड़े चुराने के अपराध में गिरफ्तार किया गया है और शायद अब उन्हें महीनों या सालों जेल में रहना पड़े!"

यों बहुत दिनों से फिलफिल ने अपने बाप को नहीं देखा था, क्योंकि वह रात को प्रायः उस समय आता, जब फिलफिल सो चुका होता और मुंहअंधेरे बाप के जागने से पहले ही फिलफिल को अपने का[म] पर जाना पड़ता। लेकिन फिर भी उ[सके] जेल जाने पर फिलफिल को सदमा [हुआ]। कमरे का वातावरण भी उदास [था] इसलिए उसकी आंखों से आंसू बहने ल[गे]।

वह थोड़ी देर तक रोता रहा, फिर [उसे] विद्यार्थियों की बहस याद आ गयी और [वह] उसी तरह आवेश में आकर कहने ल[गा]: "मां! यह मुल्क तो चोरों और डाकुओं [का] मुल्क है। यहां तो अदालत की कुर्सियों [पर] बैठने वाले कानून के संरक्षक, क्लर्क, [अफ]सर, सबके सब चोर हैं। फिर वे मेरे [बाप] को क्यों पकड़ ले गये? यहां तो चोरी [की] आम इजाजत है!"

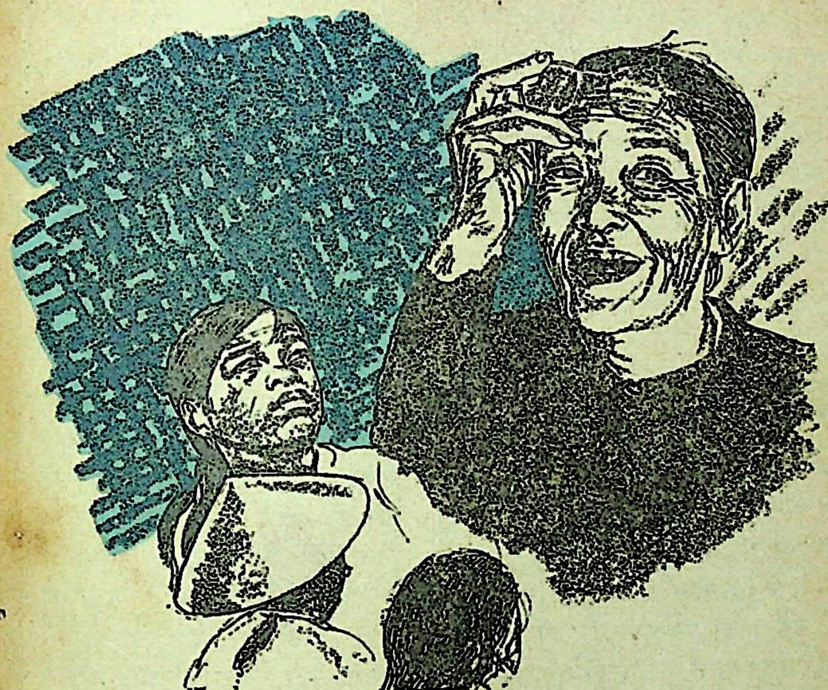
उसने वह सब कुछ कह दिया, जो उ[सके] छोटे-से मस्तिष्क में सुरक्षित था। वह [अभी] और भी कुछ कहता कि उसकी मां उस[पर] बरस पड़ी। बड़े क्रोध में भरकर उसने [उसे] चुप रहने को कहा और उसके दायें [गाल] पर जोर से थप्पड़ मारा।

अगले दिन सुबह फिलफिल ताज[ा] होकर जागा। कल की सारी बातें उसे [भूल] चुकी थीं। सारी बहसें और सभी आ[वेश]पूर्ण शब्द इस तरह उसके मस्तिष्क से [निकल] गये थे, जैसे वह आज ही पैदा हुआ हो। 'कैफे अनबसात' की ओर तेजी से च[लता] हुआ वह प्रसन्न था। रात की सारी उ[दासी] और मां के थप्पड़ का दर्द नींद ने काफूर [कर] दिया था। उसे अब कोई दुःख न था, क्यों[कि] उसके बाप का जेल जाना कोई पहला [अव]सर तो न था!

अनुवादक : सु[...]



विशेषतया बाल-पाठकों के लिए :



दादी के मुख से

सब देशों के बच्चे इस बात में एक हैं कि उन्हें कहानियों से बेहद लगाव होता है। इसीलिए रात का खाना खाने के बाद सब कहीं बच्चे अपनी दादी के पास घिर आते हैं और कहते हैं—"दादी अम्मा, कहानी सुनाओ।" और कहानी शुरू हो जाती है—"बहुत पहले की बात है....." आवश्यक नहीं कि हर बार नयी कहानी ही सुनायी जाये। हर बार पुरानी कहानी नयी बन जाती है और नया रस देती है। यहां पर वियतनामी दादियों के किस्सा-कोष से कुछ सरस लोककथाएं प्रस्तुत की जा रही हैं। इनके कहने वाले हैं—चंद्रशेखर पांडेय; और साथ के चित्रों के रचयिता हैं—ठाकोर राणा।

पान, सुपारी, चूना



बहुत पहले की बात है। तब राजा हुंग चतुर्थ का राज चल रहा था। तान और लांग नाम के दो भाई रहते थे। तान बड़ा था और लांग छोटा। परंतु दोनों एक समान सुंदर व बुद्धिमान थे और एक ही गुरु लू के शिष्य थे। दोनों में बहुत गहरा प्रेम था।

गुरु लू की एक पुत्री थी, जो अपने रूप और मधुर वाणी के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी। संयोग की बात, उस लड़की और बड़े भाई तान का प्यार हो गया। गुरु लू को जब इस बात का पता चला, तो उसने बड़ी प्रसन्नता से दोनों का विवाह कर दिया। बड़े भाई के इस सौभाग्य पर लांग फूला न समाया। बड़ी धूमधाम से शादी हुई और तीनों सुख से रहने लगे।

धीरे-धीरे तान और उसकी पत्नी, दोनों अपने आप में ही मस्त रहने लगे। लांग की याद अब उन्हें बहुत कम आती थी। लांग को लगा कि उसकी उपेक्षा हो रही है। बाद में तो तान और उसकी पत्नी जरा-जरा-सी बात पर लांग को डांटने झिड़कने भी ल

लांग ने सोचा कि अब मुझे यहां से जाना चाहिये। उसे अपने भाई से ऐसे हार की आशा न थी। और एक दि बिना किसी को बताये घर से निकल

लांग ने किसी गांव या शहर की बल्कि विकट वन की राह पकड़ी। चलता रहा, चलता रहा। भूख के उसका पेट दुखने लगा, थकान के मारे पैरों से लहू बहने लगा। फिर भी वह नहीं, आगे बढ़ता ही गया। अंत में वह नदी के किनारे पहुंचा। वहां बैठकर अपने भाई की याद में रोने लगा और रोते वहीं मर गया।

यह देखकर देवताओं ने उसे एक सफेद चट्टान में बदल दिया, जो चारों बहुत दूर से ही दिखाई दे जाती थी। अपनी कलकल ध्वनि में उसका य करने लगी।

इधर, दो-एक दिन तो लांग की

परिस्थिति की ओर तान का ध्यान ही नहीं गया; पर तीसरे दिन उसे अपने भाई की याद आयी और वह उसे खोजने लगा। लांग घर में नहीं मिला, तो उसे इधर-उधर ढूंढ़ा। जब वह कहीं दिखाई नहीं पड़ा, तब तान ने समझ लिया कि मेरे व्यवहार से नाराज होकर शायद वह घर छोड़कर चला गया है।

तान बड़ा दुखी हुआ। अपने छोटे भाई को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उसने भी उसी घोर वन में प्रवेश किया। वह चलता रहा और पागलों की तरह लांग का नाम जोर-जोर से पुकारता रहा। अंत में वह भी नदी-किनारे पहुंचा, उस सफेद चट्टान के ऊपर चढ़ गया और रो-रोकर वहीं प्राण दे दिये।

देवताओं ने यह देखा और उसे एक सीधा-पतला सुपारी का पेड़ बना दिया, जिसके पत्ते खुले पंखे के समान थे। नदी उसका भी यशगान करने लगी।

तान जब घर से निकला था, तब उसकी पत्नी सो रही थी। जगने पर अपने पति को घर में न पाकर वह व्याकुल हो गयी। बाल बिखेरे, आंखों में आंसू भरे वह तान को खोजने निकली। गांव में वह नहीं मिला, तो उसने भी उसी घने वन की ओर कदम बढ़ाये और रोती-पुकारती उसी नदी के किनारे जा पहुंची, जहां एक ऊंची, सफेद चट्टान थी और चट्टान पर एक सीधा-पतला पेड़ खड़ा था। वह चट्टान पर चढ़ गयी और उसी पेड़ के नीचे बैठकर रोती रही और रोते-रोते वहीं मर गयी।

देवताओं ने उसे भी देखा और उसे हरे पत्तों वाली पान की बेल बना दिया। नदी अपनी कलकल ध्वनि से उन तीनों का गुण गाने लगी।

वर्षों बाद एक बूढ़ा आदमी वहां आया। उसने नदी से उस तीनों की कहानी सुनी। उन दो भाइयों के लगाव और पति-पत्नी के प्रेम को अमर बनाने के लिए उसने वहां एक मंदिर बनवा दिया।

कुछ समय के बाद उस देश में भयंकर सूखा पड़ा। नदी की कलकल ध्वनि बंद हो गयी। कुएं-तालाब सूख गये। घास-पत्ते पीले पड़ गये, फिर सूखकर भूरे हो गये। केवल वह सुपारी का सीधा-पतला पेड़ और पान की बेल हरी थी।

यह आश्चर्यजनक बात दूर-दूर तक फैल गयी। स्वयं राजा हुंग एकता और प्रेम के उस मंदिर के दर्शन करने के लिए आया। राजा ने अपने सेवकों को बुलाया और पेड़ के कुछ फल और बेल के पत्ते लाने का हुक्म दिया।

पहले उसने एक पत्ता मुंह में रखकर चबाया, फिर सुपारी मुंह में डाली और दोनों को साथ चबाने लगा। सुगंधपूर्ण स्वाद से उसका मुंह भर गया। बाद में मुंह का रस उसने उस चट्टान के एक टुकड़े पर थूक दिया उसने देखा कि रस रक्त की तरह एकदम लाल हो गया।

उसके दरबारियों ने तीनों को मिलाकर चबाया। और तब से आज तक पान चबाने की प्रथा चली आ रही है।

मच्छर का जन्म



बहुत दिन पहले नाक-ताम नाम का एक किसान था। उसकी पत्नी न्हान-दीप बड़ी सुंदर और मिठबोली थी। उनके पास कुछ खेत थे और शहतूत का एक बाग था। नाक-ताम खेतों में धान उगाता था और न्हान-दीप शहतूत के बाग में रेशम के कीड़े पालती थी। दोनों के दिन बड़े आनंद और सुख में बीत रहे थे।

पर एक दिन अचानक न्हान-दीप की मृत्यु हो गयी। पति नाक-ताम के दुःख का पार न था। वह बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोने लगा। पत्नी के प्यार में वह इतना पागल था कि सबके बहुत कहने पर भी उसने न्हान-दीप को दफनाया नहीं। एक नाव में उसकी लाश का बक्सा रखकर नदी में वह इधर-उधर भटकने लगा।

नाव चलाते-चलाते एक सवेरे नाक-ताम एक हरी-भरी पहाड़ी के नीचे पहुंचा। वहां की हवा में बड़ी मीठी सुगंध भरी थी। थोड़ी देर के लिए वह अपना दुखड़ा भूल गया और किनारे उतरकर पहाड़ी पर चढ़ने लगा। जैसे ही वह चोटी पर पहुंचा, वहां उसे एक बहुत-बहुत बूढ़ा आदमी दिखाई पड़ा, जो एक डंडे का सहारा लिये खड़ा था। यद्यपि बूढ़े के चेहरे पर झुर्रियां थीं, परंतु उसकी मुस्कान में सूरज का-सा प्रकाश था और उसकी आंखें बच्चे की आंखों के समान चमक रही थीं।

उसकी पलकें देखकर नाक-ताम ने पहचान लिया कि वह दवाओं का देवता जिनी है, जो उड़ने वाले थीन-थाई पर्वत पर चढ़कर सारे संसार की यात्रा करता रहता है। वह बूढ़े के चरणों में लोट गया।

जिनी ने नाक-ताम पर प्रसन्न होकर कहा—"मैंने अपना पर्वत यहां तुम्हारे लिए ही रोका है, क्योंकि मैं तुम्हारे गुणों को जानता हूं। तुम चाहो तो मेरे शिष्य बनकर बहुत कुछ सीख सकते हो।"

किंतु नाक-ताम तो अपनी पत्नी के प्रेम में दीवाना था। उसे और कुछ नहीं चाहिये था। बस, उसकी एक ही इच्छा थी कि न्हान-दीप फिर जिंदा हो जाये और दोनों

फिर उसी तरह मेहनत करते हुए दिन बितायें। इसलिए उसने जिनी से अपनी पत्नी को जिला देने की प्रार्थना की।

दवाओं के देवता जिनी ने भी समझ लिया कि यह प्रेम में अंधा हो गया है, कोई और बात नहीं सुनेगा। इसलिए उसने कहा—"ठीक है, अगर तुम संसार के मायाजाल में ही फंसे रहना चाहते हो, तो मैं क्या कर सकता हूं! किंतु एक दिन तुम पछताओगे।" फिर उसने नाक-ताम को एक रहस्यपूर्ण क्रिया बतायी और कहा—"यह क्रिया करके अपनी उंगली काटकर तीन बूंद खून न्हान-दीप पर गिरा देना।"

नाक-ताम दौड़कर नदी-किनारे पहुंचा और जिनी की बतायी हुई क्रिया करके अपनी उंगली का तीन बूंद खून न्हान-दीप पर गिरा दिया। उसी क्षण धीरे-से न्हान-दीप ने आंखें खोल दीं, मानो सोते से जगी हो। नाक-ताम की खुशी का ठिकाना न था। बड़े प्यार से उसने सारी आपबीती सुनायी और फिर दोनों उसी नाव पर घर की ओर चल पड़े।

कई दिनों की यात्रा के बाद एक सवेरे नाक-ताम नाव को किनारे बांधकर खाने का सामान लाने पास की बस्ती में गया। उस बीच एक दूसरी नाव वहां आयी, जो खूब सजी हुई थी। यह नाव एक रईस व्यापारी की थी। व्यापारी ने न्हान-दीप को देखा, तो देखता ही रह गया। इतनी सुंदर स्त्री उसने पहले नहीं देखी थी।

व्यापारी ने न्हान-दीप को अपनी नाव में आकर चाय पीने का निमंत्रण दिया। वह चली गयी। वह चाय पी ही रही थी कि व्यापारी ने नाव खुलवा दी। पर नाव चलती देखकर भी न्हान-दीप ने कुछ नहीं कहा। बात यह थी कि वह स्वभाव से बड़ी विलासिनी थी और ठाट-बाट से रहना पसंद करती थी, हालांकि अपनी इस कमजोरी को उसने नाक-ताम पर कभी प्रकट नहीं होने दिया था।

उधर जब खाने का सामान लेकर नाक-ताम नदी-किनारे पर लौटा, तो न्हान-दीप का कहीं पता न था। वह पागलों की तरह उसे खोजने लगा। आखिर एक महीने बाद उसे व्यापारी की नाव दिखाई दी, जिसमें न्हान-दीप बड़े मजे में बैठी थी।

नाक-ताम उसके पास अपनी नाव ले गया और उसने बड़े प्यार से उसे बुलाया। इस पर न्हान-दीप ने, जो धन-वैभव का सुख भोग चुकी थी, कहा—"जाओ और कोयला खाओ।" यह बात उसने बड़ी मधुरता से कही। नाक-ताम को काठ मार गया। उसने कल्पना भी नहीं की थी कि न्हान-दीप इतनी बेवफा हो जायेगी।

कुछ दुःख और कुछ क्षोभ के साथ उसने कहा—"जाओ, मैं तुम्हें आजाद करता हूं। जहां तुम्हारी इच्छा हो, जाओ। किंतु यह मत भूलना कि तुम्हें दुबारा जिंदगी देने वाला मैं ही हूं।"

इस पर न्हान-दीप को भी क्रोध आ गया और वह बोली—"तुमने मुझे तीन बूंद खून ही तो दिया है। यह लो अपना तीन बूंद खून—

ऐसा कहकर उसने अपनी उंगली काट ली और तीन बूंद खून गिरा दिया।

परंतु यह क्या? जैसे ही तीन बूंद खून निकलकर गिरा, वैसे ही न्हान-दीप हवा में लोप होने लगी और धीरे-धीरे एक छोटा-सा मच्छर बन गयी। अब वह बहुत पछतायी और अपनी पतली आवाज में नाक-ताम... माफी मांगने लगी। मगर अब पछताने... क्या हो सकता था!

बस तभी से रोज रातको मच्छर आद... के कान के पास भनभनाकर माफी मां... हैं और तीन बूंद खून की भीख मांगते हैं।

रसोईघर के देवता

वियतनाम में ऐसी मान्यता है कि रसोई-घर के तीन देवता ताओ-क्वान प्रत्येक घर के रसोईघर में मौजूद रहते हैं। वे सब कुछ देखते रहते हैं और साल के अंत में, बारहवें महीने के तेईसवें दिन, देवराज 'नाक-होआंग' के पास जाते हैं।

उनकी विदाई के उपलक्ष्य में उस दिन वियतनाम में खूब अच्छी-अच्छी चीजें खाने को बनती हैं, खूब पटाखे छोड़े जाते हैं, खूब रोशनी होती है और लोग अच्छे-अच्छे क... पहनकर उत्सव मनाते हैं।



यह सब इस आशा से किया जाता है... ताओ क्वान स्वर्ग जाकर देवताओं के रा... नाक-होआंग के आगे इन्हें भला बतायें... इनका अगला साल सुख से बीते।

ताओ-क्वान रसोईघर के देवता कैसे ब... उसकी कथा इस प्रकार है:

बहुत-बहुत पहले एक घने जंगल में ए... लकड़हारा अपनी पत्नी के साथ रहता था... वे दोनों बहुत ही गरीब थे। रोज उन्हें... चिंता रहती थी कि अगले वक्त का भोज... कहां से मिलेगा? इसलिए हर बार वे ब... दुःखी मन से खाना खाते थे।

दुःख और चिंता से छुटकारा पाने के लि... लकड़हारा ताड़ी पीने लगा, जो उसे जं... में मुफ्त मिल जाती थी। वह दिन-दिन भ... नशे में चूर रहने लगा। रात को ज... झोंपड़ी में आता था, तो अपनी पत्नी ... वह खूब डांटता-फटकारता था, गालि... देता था, मारता था और घर की चीं...

तोड़ता-फोड़ता था।

कुछ दिनों के बाद जब उस स्त्री से ज्यादा मार न सही गयी, तब वह बेचारी एक रात उस घने वन के और भीतरी भाग में चुपचाप भाग गयी। वह दुखियारी कई दिनों तक भूखी-प्यासी भटकती रही। उसके पैरों से खून बहने लगा। आखिर वह एक दिन एक शिकारी की झोंपड़ी में पहुंच गयी।

शिकारी बड़ा भला था। उसने उसे खाना खिलाया और झोंपड़ी में आराम करने की अनुमति दे दी।

दूसरे दिन से वह स्त्री शिकारी के घर का काम-काज करने लगी। दोनों साथ-साथ मेहनत करते थे। एक-दूसरे की मदद से दोनों सुखी जीवन बिताने लगे। कुछ दिनों में दोनों ने विवाह कर लिया। उनका एक नया घर भी बन गया।

एक दिन, जब नया साल बिलकुल पास था, किसी ने उनके घर का द्वार खटखटाया। उस समय शिकारी घर पर नहीं था। स्त्री ने द्वार खोला। सामने एक भिखारी खड़ा था, उसने कुछ खाने को मांगा। दयालु स्त्री ने भीतर से लाकर कुछ रोटियां दीं।

रोटी देते समय स्त्री की निगाह भिखारी के चेहरे पर पड़ी और उसने पहचान लिया कि भिखारी और कोई नहीं, उसी का पहला पति है। उसके कपड़े फटे-चीथड़े थे, दाढ़ी बढ़ी हुई और बाल बिखरे हुए थे।

इस बुरी हालत में अपने पहले पति को देखकर उसके मन में प्रेम और दया की लहर उमड़ पड़ी। उसने उसे भीतर बुला लिया और घर में खाने की जो भी चीजें थीं, उसे परोस दीं।

भिखारी अभी खा ही रहा था कि शिकारी के आने की आहट उस स्त्री को मिली। उसने सोचा कि जब उसे यह पता चलेगा कि यह आदमी मेरा पहला पति है, तब न जाने वह क्या सोचेगा! अपनी सुख-भरी गृहस्थी उसे धूल में लोटती हुई दिखाई देने लगी।

जल्दबाजी में उसे और कुछ नहीं सूझा। उसने भिखारी को सारी स्थिति समझाकर उसे रसोईघर में पड़े सूखी घास के ढेर में छिपा दिया।

किंतु उस दिन शिकारी एक बहुत उम्दा शिकार लाया था, जिसे वह उसी समय भून-कर खाना चाहता था। उसे लकड़हारे के छिपने का तो पता था नहीं, इसलिए उसने सूखी घास के ढेर में आग लगा दी और शिकार भूनने लगा।

भिखारी के मन में पहले तो यह विचार आया कि वह चिल्ला पड़े। कभी-कभी तुच्छ आदमी भी बहुत बड़ा काम कर दिखाता है। लकड़हारे ने सोचा कि भेद खुल जाने पर शिकारी मेरे साथ-साथ इस भली औरत को भी मार डालेगा। इसलिए वह आग की लपटों में झुलसता रहा, जलता रहा, पर उसने उफ तक नहीं की।

उस स्त्री के हृदय में उथल-पुथल मची हुई थी। न भेद खोलने में कल्याण था, न छिपाने में। पर जब उसने देखा कि उसका पहला पति उसे बचाने के लिए अपने आपको

आप आई कि बहार आई



टाटा टेक्सटाइल्स के प्रिन्ट्स से बने कपड़े पहनने के बाद आप किसी बहार से कम थोड़े ही हैं। रंग-बिरंगे डिजाइनों और मोहक रंगो में मिलने वाले टेरीन/कॉटन के ये प्रिन्ट्स न मुड़ते हैं न सिकुड़ते हैं। इनकी बनी कमीज पहनकर आप एक आनन्ददायक गुदगुदी महसूस करेंगी। इनसे मैचिंग करीब ६० शेड्स में मिलने वाले पॉपलिन तथा २×२ के सलवार पहनिए और हर जगह वाहवाही लूटिये। अपना मनपसन्द धारियों वाला, पट्टियों वाला, बिन्दुओं वाला, छपाई वाला और आलीशान सादे रंगो वाला जैसा भी कपड़ा चाहें चुन लीजिये।

TATA *Textiles* टाटा टेक्सटाइल्स **के प्रिन्ट**

भस्म कर रहा है, तो उससे नहीं रहा गया और वह भी जलती हुई आग में कूद पड़ी।

शिकारी ने दौड़कर उसे पकड़ने की कोशिश की; पर वह कामयाब नहीं हुआ। तब उसने सोचा कि जरूर मुझसे कोई ऐसा काम हो गया है, जिसके कारण मेरी पत्नी ने जलकर प्राण त्याग दिये। अंत में उसने सोचा कि ऐसी जिंदगी में क्या रखा है? ग्लानि के मारे वह भी शांतिपूर्वक अग्नि में प्रवेश कर गया।

थोड़ी देर में तीनों को भस्म करके आग इस तरह शांत हो गयी, जैसे कोई विशेष बात नहीं हुई।

लोगों को जब इन तीनों की कहानी मालूम हुई, तो इनके हृदय की महानता के सामने सबके सिर आदर से झुक गये और सबने तीनों को 'रसोईघर के देवता' की पदवी दी और उन्हें पूजने लगे।

स्वर्ग का चाचा

लाखों-करोड़ों वर्ष पहले की बात है। उस समय स्वर्ग धरती से बहुत दूर नहीं था और सभी पशु-पक्षी आदमी की तरह बोलते थे। ऐसे समय एक भयंकर अकाल पड़ा। उस साल पानी बिलकुल नहीं बरसा। सूर्य-देव खूब तप रहे थे। नदी-तालाब, कुएं-नाले सबके-सब सूख गये। बहुत-से प्राणी प्यास से मर गये और अनगिनत पेड़-पौधे गर्मी से मुरझा गये।

किसी तालाब के किनारे एक बहुत बड़ा मेंढक रहता था। वह भी दिनों-दिन सूख रहा था। उसने विचार किया कि जब मरना ही है, तब कुछ करके मरना चाहिये। उसने स्वर्ग जाकर धरती की दुर्दशा का समाचार देने का निश्चय किया। सोचा, शायद स्वर्ग के लोग कुछ मदद करें। इसलिए बड़े साहस के साथ वह अकेला ही स्वर्ग की ओर चल पड़ा।

मेंढक थोड़ी ही दूर गया था कि उसे बहुत-सी मधुमक्खियां मिलीं। वे भूख से बेचैन होकर इधर-उधर चक्कर काट रही थीं। पानी के बिना फूल कहां और फूलों के बिना शहद कहां! जब मेंढक ने उन्हें बताया कि पानी बरसाने की कोशिश में वह स्वर्ग जा रहा है, तो बहुत-सी मधुमक्खियां भी उसके साथ हो गयीं।

कुछ दूर जाने पर उन्हें एक मुर्गा मिला। फसल न होने से दाने तो थे ही नहीं, कीड़े



भी नहीं थे, जिनसे वह पेट भरता। मेंढक और मधुमक्खियों को उसे अपने साथ मिलाने में देर नहीं लगी।

ये सब जैसे ही आगे बढ़े कि इन्हें एक शेर मिला, जो बहुत झुंझलाया हुआ था। शेर की समझ में नहीं आ रहा था कि अगर अकाल से इसी तरह जानवर धड़ाधड़ मरते रहे, तो उसका क्या होगा! इन सबको स्वर्ग जाता देखकर शेर भी साथ हो गया। पूरा दल आगे बढ़ा।

कई दिनों की कठिन यात्रा के बाद यह दल स्वर्ग के राजा के महल में पहुंचा। फाटक पर पहुंचकर मेंढक बोला—"तुम सब लोग तब तक यहीं ठहरो, जब तक कि मैं न बुलाऊं।" और खुद फुदकता हुआ महल के भीतर गया। एक के बाद एक करके वह कई कमरे और दालान पार कर गया; मगर उसे कहीं कोई न दीखा। सब कमरे और दालान सूने पड़े थे, यहां तक कि शानदार सजावट वाला राज दरबार भी।

तभी भीतर के किसी कमरे से उसे हंसने की आवाज सुनाई पड़ी। वह उसी आवाज के सहारे की ओर चला। धीरे-धीरे वह वहां पहुंच गया, जहां स्वर्ग के राजा इंद्र देवों और परियों के साथ चौपड़ खेल रहे थे।

यह देखकर मेंढक को क्रोध आ गया। उसने मन में सोचा कि वहां धरती पर पानी बिना हम मर रहे हैं, और यहां इंद्र चौपड़ खेलने में मस्त हैं। वह बड़ी जोर से उछला और सब खिलाड़ियों के बीच में धम्-से बिसात पर कूद पड़ा। सब भौचक्के रह गये। सबकी हंसी गायब हो गयी। गरजकर इंद्र ने कहा—"रे ढीठ मेंढक! तूने हमारी पवित्र सभा को गंदा करने का साहस कैसे किया?"

किंतु मेंढक तो धरती पर मौत देख चुका था, इसलिए वह डरा नहीं। उसने कहना शुरू किया—"महाराज!......" लेकिन वह इतना ही कह पाया था कि इंद्र के इशारे पर कुछ रक्षक आगे बढ़े और मेंढक को उठाकर जलते पत्थरों पर फेंकने के लिए ले चले।

मेंढक ने मधुमक्खियों को पुकारा। वे उड़कर आयीं और रक्षकों से चिपट गयीं। रक्षक मेंढक को वहीं छोड़कर भागे। जब वे इंद्र के पास रोते हुए पहुंचे, तो मक्खियों के काटने से उनके मुंह इस तरह सूजे हुए थे कि वे पहचाने नहीं जाते थे। इंद्र ने झल्लाकर मेघगर्जन के देवता को बुलाया और मेंढक को दुरुस्त करने के लिए कहा। लेकिन मुर्गा उससे कहीं ज्यादा तगड़ा था। इंद्र ने उसकी सहायता के लिए कुत्तों के सरदार को भेजा था, मगर शेर ने उसकी पूरी खबर ली।

अब इंद्रदेव की अक्ल कुछ ठिकाने आयी और उनकी आंखों में आने वालों के लिए कुछ आदर का भाव दिखाई पड़ा। मेंढक ने अपनी बात फिर शुरू की। इस बार उसने इंद्र को 'महाराज' के बजाय केवल 'राजन्' संबोधित किया और कहा—"मैं और मेरे ये मित्र आपके पास यही निवेदन करने आये हैं कि धरती पर महीनों से पानी नहीं बरसा। तालाब और कुएं ही क्या बड़ी-बड़ी नदियां भी सूख गयी हैं। पशु-

पक्षी, मनुष्य भूख-प्यास से मर रहे हैं। पेड़-पौधे सूख रहे हैं। हम धरती वाले वर्षा चाहते हैं।"

इंद्रदेव पर मेंढक के व्यक्तित्व का बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने बड़े अदब से कहा— "चाचाजी, हम वादा करते हैं कि इस मामले पर शीघ्र विचार करेंगे।" इंद्र ने जलविभाग के मंत्री से मामले की जांच करने को कहा। जांच हुई और रिपोर्ट इंद्र के पास पहुंची। पता चला कि सचमुच उस सारे साल पृथ्वी पर वर्षा हुई नहीं थी। इंद्र ने मेघों को तुरंत वर्षा करने का आदेश दिया और मूसलाधार वर्षा हुई।

चूंकि इंद्र ने मेंढक को 'चाचा' कहा था, वियतनाम के लोग अभी भी उसे चाचा कहते हैं। और जब कभी वे मेंढक की आवाज सुनते हैं, तो वे समझ जाते हैं कि बस अब अवश्य ही बरसात होने वाली है।

चँद्रलोक का आदमी

कुओई बहुत ही गरीब चरवाहा था। वह बस्ती के सबसे धनी आदमी के यहां नौकर था। पशुओं की रखवाली करना, उन्हें चारा-पानी देना, जंगल से लकड़ी लाना और मालिक के लिए भोजन बनाना—ये सारे काम अकेला कुओई करता था। इसके बदले में उसे खाने को रोटी, तन ढकने को एक कपड़ा और काम का उत्साह बनाये रखने के लिए रोज एक-आध थप्पड़ या घूंसा मिलता था।



एक दिन कुओई जब जंगल में लकड़ियां इकट्ठी कर रहा था, तब उसने शेर के एक छोटे बच्चे को फुदकते हुए अपनी ओर आते देखा। उसे बच्चा प्यारा लगा और उसने उसे गोद में उठा लिया। उसी समय उसे शेरनी की भयंकर गर्जना सुनाई दी। शेरनी अपने बच्चे की बराबर निगरानी कर रही थी।

कुओई ने देखा, तो उसकी जान सूख गयी। गोद का बच्चा झट-से उसने धरती पर फेंक दिया और जल्दी से एक पेड़ पर चढ़कर छिप गया। उसने बच्चे को इतनी जोर से फेंका था कि बेचारा अधमरा हो गया—न हिलता था, न डुलता था।

पेड़ पर बैठे-बैठे कुओई ने एक अचंभा

देखा । शेरनी आयी और अपने बच्चे को बेहोश पाकर जल्दी से पास के झरने पर गयी । वहां बरगद-जैसे पत्तों वाले एक पेड़ से कुछ पत्ते तोड़कर उसने दांतों से कुचला, फिर आकर बच्चे के मस्तक पर लेप दिया । देखते-देखते वह बच्चा इस तरह उठ बैठा, जैसे कुछ हुआ ही न हो ।

शेरनी अपने बच्चे को लेकर जब वन में चली गयी, तो कुओई पेड़ पर से उतरा और सीधे झरने के पास उसी पेड़ पर पहुंचा । उसने थोड़ी-सी पत्तियां तोड़ीं और अपने घर की ओर चल दिया । रास्ते में उसे एक मरा हुआ कुत्ता दिखाई पड़ा । उसने पत्तियों को उसी तरह चबाया, जैसे शेरनी को चबाते देखा था । फिर कुत्ते के माथे पर लगा दिया । कुछ ही क्षणों में कुत्ता जिंदा हो गया और एक ओर भाग गया ।

कुओई ने सोचा, इस पेड़ की पत्तियों में तो मरे को जिलाने का गुण है ! वह उलटे पांव फिर जंगल की ओर भागा । पेड़ बहुत बड़ा नहीं था । उसने जड़ सहित उसे उखाड़ लिया और घर लाकर अपने आंगन के बीच में रोप दिया । अपनी औरत से उसने कहा– "खबरदार, इस पेड़ पर कूड़ा-कचरा या गंदा पानी हर्गिज मत छोड़ना । अगर ऐसा करेगी, तो यह पेड़ आकाश में उड़ जायेगा ।" दूसरी बात उसने अपनी औरत को डराने के लिए यों ही हंसी में कह दी थी ।

किंतु कुओई की औरत निपट फूहड़ औरत थी । जिस पेड़ पर कूड़ा डालने को कुओई ने मना किया था, उसी पर उसने



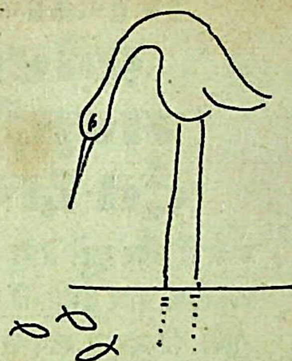
फेंक दिया । पर यह क्या ? हंसी में क
हुई बात सच होने लगी । पेड़ अपने
धरती से उखड़कर ऊपर उठने लगा ।

कुओई ने देखा, तो वह पागलों की त
चिल्लाकर दौड़ा । ऊपर उठते हुए पेड़
एक जड़ उसके हाथों में आ गयी । उसने
जोर लगाकर पेड़ को उड़ने से रोकना चाह
पर उस बेचारे का वजन ही कितना था,
पेड़ रुकता ! वह भी पेड़ के साथ आकाश
उड़ता चला गया ।

उड़ते-उड़ते दोनों एक विचित्र औ
शांत लोक में पहुंच गये । यह चंद्रलोक था
कुओई ने पेड़ उसी लोक में रोप दिया औ
उसके नीचे बैठकर इंतजार करने लगा

पूर्णमासी के पूरे चंद्रमा की ओर ध्या
से देखा जाये, तो लगता है कि आज भी वह
पेड़ के नीचे एक अकेला आदमी बैठा कि
का इंतजार कर रहा है ।

बगले का रंग



बहुत पहले जब संसार अभी बना ही था, तब सभी पक्षियों का रंग सफेद था। उनके दो दल थे। एक दल में वे पक्षी थे, जो दूसरे पक्षियों को मारकर खा जाते थे, और दूसरा दल उन बेचारों का था, जो कि मारे जाते थे। सबका रंग सफेद होने के कारण छोटे और भोले-भाले पक्षी पहचान नहीं पाते थे कि हमारी ओर आने वाला पक्षी हमें खाने वाला है या हमारी ही जाति का है। खाने वाले पक्षी इसका लाभ उठाकर धड़ाधड़ दूसरों को चट कर रहे थे।

मारे जाने वाले पक्षी जब इस अत्याचार से तंग आ गये, तब उन्होंने स्वर्ग जाकर विधाता को अपना दुखड़ा सुनाया और दुष्ट पक्षियों की शिकायत की। यह सुनकर विधाता को बड़ा दुःख हुआ। वे समझते थे कि उनका बनाया हुआ संसार ठीक-ठीक चल रहा है और वहां कोई किसी को नहीं सताता होगा। उन्होंने तुरंत पक्षी-विभाग के मंत्री को बुलवाया और इस मामले की जांच करने के लिए धरती पर भेजा।

स्वर्ग के मंत्री ने धरती पर सब कुछ अपनी आंखों से देखा और स्वर्ग लौटकर विधाता को रिपोर्ट दी कि फरियादी पक्षियों की शिकायत बिलकुल ठीक है। उसने यह सुझाव भी रखा कि सब पक्षियों का रंग अलग-अलग कर दिया जाये। विधाता ने इसकी आज्ञा दे दी।

स्वर्ग का मंत्री फिर धरती पर आया और उसने तमाम पक्षियों को एक खास दिन, एक खास जगह पर इकठ्ठा होने का हुक्म दिया, जिससे हर एक को अलग-अलग रंग दिया जा सके। मारकर खाने वाले पक्षियों को यह बात पसंद तो नहीं आयी, किंतु उनमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि स्वर्ग के मंत्री का हुक्म टाल सकें।

निश्चित जगह पर, निश्चित समय पर सारे पक्षी जमा हो गये। मंत्री की आज्ञा से हर पक्षी को उसके गुणों और कामों के अनुसार अलग-अलग रंग दिया जाने लगा। जब

नियमित उपयोग से फ़ोरहन्स टूथपेस्ट मसूढ़ों के कष्ट और दंत-क्षय को रोकता है

जवानों और बूढ़ों द्वारा अपने आप भेजे गये प्रमाणपत्रों में मसूढ़ों की तकलीफ़ और दांतों की ख़राबी को रोकने के लिए फ़ोरहन्स टूथपेस्ट के गुणों की समान रूप से प्रशंसा की गयी है। ये प्रमाणपत्र जेफ़्री मैनर्स एण्ड कंपनी लि. के किसी भी कार्यालय में देखे जा सकते हैं।

"मैं दाँतों के रोगों से पीड़ित था...मैंने आपका फ़ोरहन्स इस्तेमाल किया।...अब मैं उनमें से किसी भी रोग से पीड़ित नहीं हूँ। लगभग २०-२५ आदमी फ़ोरहन्स इस्तेमाल करने लगे हैं और मेरे परिवार में तो फ़ोरहन्स सभी को बेहद प्रिय है।

—उदयशंकर तिवारी, पटना

आपके वैज्ञानिक ढंग से तैयार किये फ़ोरहन्स टूथपेस्ट ने, जिसे मैं पिछले दस साल से इस्तेमाल कर रहा हूँ, मसूढ़ों की सारी तकलीफ़ों को दूर कर दिया। अब हमारे परिवार के सभी लोग नियमित रूप से फोरहन्स टूथपेस्ट से दाँत साफ़ करते हैं।

—एस. एम. लाल, नयी दिल्ली

दांतों की समुचित देखभाल के लिए फ़ोरहन्स टूथपेस्ट और रेशे-मसरवाला फ़ोरहन्स टूथब्रश हर रोज़ रात में और सवेरे इस्तेमाल कीजिए...और अपने दांत के डाक्टर से नियमित मिलते रहिए।



मुफ़्त "दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा" संबंधी रंगीन पुस्तिका

यह पुस्तिका हिन्दी और अंग्रेजी में मिलती है। इसे मँगवाने के लिए इस कूपन के साथ १० पैसे के टिकट (डाक-खर्च के वास्ते) इस पते पर भेजिए: मैनर्स डेन्टल एडवाइज़री ब्यूरो, पोस्ट बैग नं. १००३१, बम्बई-१.

नाम ________________ आयु ______

पता ________________________

भाषा: ______________________ 06

फ़ोरहन्स

एक दाँतों के डाक्टर द्वारा निर्मित टूथपेस्ट

65F-15

सबको रंग मिल गया और सभा उठने को थी, तब बगला वहां पहुंचा। उसे इतनी देर से आया देख मंत्री की भौंहों में बल पड़ गये। क्रोध में भरकर उसने पूछा—"तू अब तक कहां था? इतनी देर कैसे हुई?"

बगला सकपकाते हुए बोला—"हुजूर, मेरी आंख लग गयी थी।" मगर मंत्री को विश्वास नहीं हुआ। वह गरजकर बोला—"झूठ मत बोल! ठीक-ठीक बता, क्या करता था अब तक?" बगला डर के मारे थरथर कांपने लगा और रोते हुए बोला—"सच बात तो यह है सरकार कि मैं केकड़ों की चोरी कर रहा था। छिप-छिपकर धोखे से उन्हें चुग रहा था।"

यह सुनते ही सभा में सन्नाटा छा गया। क्रोध के मारे मंत्री का चेहरा काला पड़ गया। वह चिल्ला पड़ा—"क्या कहा, चोरी कर रहा था? तुझे पता नहीं कि चोरी करना अपराध है? जब विधाता ने तेरा पेट भरने के लिए इतनी सारी चीजें पहले से ही पैदा कर रखी हैं, तब तू चोरी क्यों करता है?"

बगला कोई जवाब न दे सका। उसकी गर्दन झुक गयी। स्वर्ग के मंत्री ने क्रोधपूर्वक अपना फैसला सुनाया—"तो तुझे कोई रंग नहीं दिया जायेगा। तू सफेद ही रहेगा, जिससे तू सबको आसानी से दिखाई पड़े और चोरी न कर सके।"

बस, तभी से बगले के पंख सफेद हैं। किंतु क्या उसने चोरी और छल-कपट छोड़ दिया? इसका उत्तर तो केकड़े दे सकते हैं।

आकाशगंगा का पुल

वर्ष के सातवें महीने को वियतनाम 'नू' महीना कहते हैं। इस महीने वहां घनघोर वर्षा होती है, जिसे नू-वर्षा कहते हैं। इस महीने की एक और विशेषता यह है कि इसमें कौवे बिलकुल नहीं दिखाई देते। जो दिखाई भी देते हैं, उनके सिर के पर बिलकुल झड़ चुके होते हैं और वे गंजे होते हैं।

इसके पीछे एक मनोरंजक कहानी है।

देवलोक के राजा की अनेक लड़कियां थीं। उनमें एक का नाम था चुक-नू। वह परम सुंदरी थी। किंतु सुंदर होने के साथ-साथ वह मेहनती भी बहुत थी। आकाशगंगा के किनारे उसने अपना करघा लगा रखा था और दिन-भर बैठी-बैठी वह अच्छे-



अच्छे कपड़े बुना करती थी। यहां तक कि स्वर्ग में जितनी परियां थीं, सबके कपड़े वही बुनती थी। इस कठिन परिश्रम में वह बिलकुल थकती नहीं थी, बल्कि परियों के लिए कपड़ा बुनते हुए बहुत मीठे स्वर में गाती रहती थी।

उसी आकाशगंगा के किनारे देवलोक के राजा के पशुओं को चराने के लिए नू-लैंग नाम का देवता भी रोज आया करता था। नू-लैंग भी बड़ा खूबसूरत था। वह प्रतिदिन कपड़ा बुनती हुई सुदरी चुक-नू को प्यार से निहारा करता था और घंटों बैठकर उसका मधुर संगीत सुना करता था।

संयोग से एक दिन चुक-नू ने भी नू-लैंग को देख लिया और उसे वह अच्छा लगा। अब तो अपना-अपना काम करते हुए दोनों एक-दूसरे को प्यार से देखा करते थे।

धीरे-धीरे जब यह बात देवलोक के राजा को मालूम हुई, तब वह क्रुद्ध नहीं हुआ, बल्कि उसने दोनों को विवाह करने की अनुमति दे दी। लेकिन इस शर्त पर कि दोनों पहले की तरह अपना-अपना काम ठीक से करते रहेंगे। दोनों ने चट-से वादा किया और पट से उनका विवाह हो गया। दोनों के दिन सुख से बीतने लगे।

पर वादा करना जितना आसान है, उतना ही मुश्किल उसे निभाना है। कुछ दिनों तक तो चुक-नू और नू-लैंग अपना-अपना काम मन लगाकर करते रहे, लेकिन बाद में लापरवाही करने लगे और आकाशगंगा के किनारे मौज से टहलने में ही समय बिताने लगे।

चुक-नू के करघे में जगह-जगह मकड़ी के जाले तन गये। राजा के पशु मनमाना इधर-उधर घूमने लगे; क्योंकि उनकी रखवाली करने वाले नू-लैंग को चुक-नू से अलग होने की इच्छा ही नहीं होती थी।

देवलोक के राजा को जैसे उनके प्रेम का पता चल गया था, वैसे उनकी लापरवाही का भी पता चल गया। उसे बड़ा क्रोध आया। उसने दोनों को बुलाया और यह सजा सुनायी कि अब तुम दोनों कभी न मिल सकोगे, एक आकाशगंगा के इस पार और दूसरा उस पार रहेगा।

सजा सुनकर दोनों की आंखें खुलीं और वे रोने-गिड़गिड़ाने लगे। आखिर देवलोक के राजा का दिल पसीजा और उसने कहा—"अच्छी बात है, तुम लोग साल में केवल एक बार मिल सकोगे और मिलने का वह समय होगा वर्ष का सातवां महीना। किंतु यह मत भूलना कि अलग-अलग किनारों पर रहते हुए तुम दोनों को अपना पहले वाला काम चालू रखना पड़ेगा।"

देवलोक के राजा के शाप से चुक-नू और नू-लैंग आकाशगंगा के अलग-अलग किनारे पर हो गये। दोनों बड़े दुःखी थे; पर कोई चारा न था। अपना-अपना काम करते हुए वे सातवें महीने के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

उधर देवलोक के राजा ने सोचा कि मैंने दोनों को मिलने के लिए कह तो दिया है, पर वे आकाशगंगा को पार कैसे करेंगे?

धारा इतनी तेज है कि उसमें नाव चल नहीं सकती। पर मैं जो कुछ कह दूं, वह अवश्य पूरा होता है। इसलिए दोनों का मिलना भी नहीं रोका जा सकता।

बहुत सोचकर देवलोक के राजा ने आकाशगंगा पर पुल बनाने के लिए धरती से बहुत बड़ी संख्या में कुशल बढ़ई बुलवाये। बढ़ई बड़ी खुशी से देवलोक को चले। जो अवसर वर्षों के जप-तप से भी नहीं मिलता, वह अनायास उन्हें मिल गया था। जब वे वहां पहुंचे, तो देवलोक के राजा ने उन्हें सब कुछ समझाकर आज्ञा दी कि सातवां महीना लगने के पहले पुल बन जाना चाहिये। बढ़ई "जो आज्ञा" कहकर पुल बनाने के लिए चले और आकाशगंगा के किनारे आकर उन्होंने नाप-जोख शुरू की।

पहले कुछ दिनों तक तो बढ़इयों का मन काम में लगा; लेकिन धीरे-धीरे धरती की आदत के अनुसार उन्होंने काम में ढील डाल दी। वे घंटों बैठे गप-शप किया करते थे, खाते-पीते थे। वे वहां की सुंदर परियों को छेड़ने भी लगे। देवताओं को यह बात बुरी लगी और उन्होंने अपने राजा से शिकायत की।

देवलोक का राजा स्वयं वह देखने आया कि पुल कितना बन गया। किंतु वहां तो पुल का नाम-निशान भी नहीं था। उसने बढ़इयों को खूब डांटा। डर के मारे बढ़ई जल्दी-जल्दी काम करने लगे। किंतु बहुत अधिक समय तो वे पहले ही गंवा चुके थे। सातवां महीना आ पहुंचा; मगर पुल आधा भी नहीं बन पाया था।



देवलोक का राजा क्रोध से आग-बबूला होकर बोला—"जाओ, तुम सब कौवे बन जाओ और एक-दूसरे से सिर मिलाकर आकाशगंगा के इस किनारे से उस किनारे तक छा जाओ। तुम लोगों के सिरों पर चलकर चुक-नू और नू-लैंग मिलेंगे। तुम्हारे सिर के खुरदरे बाल उनके पांव में गड़ें नहीं, इसलिए सिर के बाल झड़ जायेंगे। और सिर्फ इसी साल नहीं, हर साल सातवें महीने आकर तुम्हें अपने सिरों से पुल बनाना होगा।"

देवलोक के राजा की आज्ञा को कौन टाल सकता है! तब से आज तक हर साल के सातवें महीने में कौवे जाकर आकाशगंगा पर पुल बनाते हैं और चुक-नू तथा नू-लैंग मिलते हैं। जब वे दोनों मिलते हैं, तो खुशी के मारे रोते हैं, और बिछुड़ते हैं तो दुःख के मारे रोते हैं।

उन दोनों के बहुत रोने से ही सातवें महीने इतनी अधिक वर्षा होती है।

अजगर राजकुमार

एक राजा था, जो अपनी बुद्धिमानी और न्याय के लिए चारों तरफ मशहूर था। बहुत बड़ा राजपाट होने पर भी राजा मन से सुखी नहीं था, क्योंकि उसके कोई संतान नहीं थी। साधु-फकीर, वैद्य-हकीम जगह-जगह से आये। बड़ी-बड़ी कोशिशें की गयीं, लेकिन रानी को कोई बच्चा न हुआ।

मंत्री और दरबारियों ने राजा से कई बार कहा कि आप दूसरी शादी कर लीजिये; लेकिन राजा ने हर बार यही कहा कि ऐसा नहीं हो सकता। अपनी दुःख-सुख की संगिनी रानी को राजा किसी प्रकार छोड़ने को तैयार नहीं था। लेकिन उसे इस बात का अफसोस जरूर था कि जब मैं धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन कर रहा हूं, भगवान मुझे एक संतान क्यों नहीं देता!

एक रात राजा इन्हीं विचारों में खोया हुआ धीरे-धीरे बगीचे में टहल रहा था। अचानक घास में उसे फुफकार सुनाई पड़ी। उसने दृष्टि नीचे की, तो देखा कि उसके पांव के पास ही नीले सांपों का एक पूरा परिवार घूम रहा है। राजा के मुंह से अपने आप निकल पड़ा—"संतानहीन राजा होने से बच्चों वाला सांप होना अच्छा है।" तभी एक नीला सांप धीरे-धीरे राजा की ओर आया और उसने राजा के पैर छुए, फिर तेजी से रानी के महल की ओर भाग गया।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद रानी गर्भवती हो गयी। समय पर रानी के बच्चा पैदा हुआ। लेकिन न वह राजकुमार था न राजकुमारी, बल्कि छोटा-सा सांप था। सब लोग अचंभे में आ गये। सांप का वह बच्चा बड़ी तेजी से बढ़ रहा था, यहां तक कि तीन ही दिन में वह एक अजगर हो गया। पहले तो सबको आश्चर्य ही हुआ था, लेकिन अब सब भयभीत हो गये। राजा ने अजगर को ताले के भीतर बंद करा दिया, फिर यह राजधानी छोड़कर दूसरे शहर में बसाने का निश्चय किया। राज-परिवार के जाने की तैयारियां शुरू हो गयीं।

जैसे ही राजा दूसरे शहर जाने के लिए संगमरमर की सीढ़ियों से नीचे उतरने लगा, अजगर ने इतने जोर की फुफकार छोड़ी कि महल के खिड़की-दरवाजे हिल गये। अजगर अपनी कोठरी में बड़ी तेजी से चक्कर लगाने और दीवार पर सिर पटकने लगा।



यह देखकर राजा न जा सका। आखिर वह उसका बेटा था! राजा कोठरी के पास आया और सीकचों के बीच से देखने लगा। अजगर शांत हो गया। लेकिन थोड़ी देर में जाने के लिए राजा ने पीठ फेरी कि वह फिर बेचैनी से फुफकार छोड़ने लगा।

राजा ने अच्छा-से-अच्छा भोजन भीतर ले जाने की आज्ञा दी। पर अजगर ने भोजन छुआ भी नहीं। ऐसा लगता था, मानो उसकी आंखें किसी और ही चीज को खोज रही थीं।

तब एक बहुत बूढ़े और अनुभवी दरबारी को अपने दादा की कही हुई बात याद आयी कि अजगर जवान लड़की के मांस से बड़े संतुष्ट होते हैं। उसने डरते-डरते यह बात राजा से कही। राजा ने बिगड़कर कहा—"नहीं, अजगर चाहे मेरा बेटा ही हो, उसके लिए मेरी प्यारी प्रजा की किसी एक लड़की का बलिदान नहीं दिया जा सकता।"

परिणाम यह हुआ कि अजगर लगातार रात-दिन सिर पटकता और फुफकारता रहा। उस दिन से राजमहल का कोई आदमी एक रात भी नहीं सो सका।

एक रात को चिंता में डूबा हुआ राजा उसी बाग में टहल रहा था। अचानक उसने उसी सांपों वाली जगह से एक बूढ़े आदमी को प्रकट होते हुए देखा। बूढ़े के सफेद बाल हवा में उड़ रहे थे और वह एक लाठी के सहारे चल रहा था। राजा के पास आकर वह बोला—"तुम अपने राज में डोंडी पिटवा दो कि एक अजगर को खिलाने के लिए तुम्हें एक जवान लड़की की जरूरत है।" जब राजा ने नम्रतापूर्वक इस बात का विरोध किया, तब बूढ़े ने बड़ी रोबीली आवाज में कहा—"जैसा कहा जाता है, वैसा करो। परिणाम की चिंता मत करो।"

बुद्धिमान राजा फौरन ताड़ गया कि यह आदमी इस संसार का नहीं है। अतः उसने बात मान ली और राज भर में डुग्गी पिटवा दी कि अजगर को खिलाने के लिए एक जवान लड़की की जरूरत है। कई दिन हो गये; लेकिन कोई तैयार न हुई।

किंतु संसार में कुछ भी असंभव नहीं है। एक ऐसी जवान लड़की भी निकल आयी, जो अजगर के मुंह में जाने को तैयार थी। उसका नाम बाच नुआंग था। उसकी मां बचपन में ही मर गयी थी और उसके पिता ने दूसरी शादी कर ली थी। उसकी सौतेली मां को कोई संतान न हुई। इस झुंझलाहट को वह बाच नुआंग पर उतारती थी। वह उसे नौकरों की तरह सवेरे ४ बजे से रात के १२ बजे तक घर के कामकाज में लगाये रखती थी।

बाच नुआंग ने राजा की घोषणा सुनी, तो सोचा कि ऐसी जिंदगी जीने से तो राजा के लिए मर जाना अच्छा है। वह चुपचाप राजधानी की ओर चल पड़ी। रास्ते में उसे वही बूढ़ा मिला, जिसके सफेद बाल हवा में उड़ रहे थे और जो लाठी के सहारे चल रहा था। बूढ़े ने लड़की से कहा—"डरना नहीं मेरी बच्ची! मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा। लो, यह चादर ओढ़कर अजगर के सामने

जाना।" यह कहकर बूढ़े ने उसे एक सफेद चादर दी, जिसे लेकर लड़की आगे बढ़ी और बूढ़ा वहीं गायब हो गया।

सिपाहियों ने जब वाच नु आंग के आने की बात राजा को बतायी, तो उसने दुःखी मन से उसका स्वागत किया। बाच नु आंग ने सुगंधित जल में स्नान किया, अच्छे कपड़े पहने और बूढ़े की दी हुई सफेद चादर ओढ़-कर अजगर के पास चली। उसकी सुंदरता देखकर सभी की आंखों में आंसू आ गये।

वाच नु आंग शांतभाव से धीरे-धीरे उस कोठरी में चली गयी, जहां अजगर जोर-जोर से फुफकार छोड़ रहा था। उसके जाते ही अजगर की सिसकारी बंद हो गयी। बाहर खड़े लोगों ने दुःखी मन से सोचा कि अजगर लड़की को निगल रहा है।

किंतु थोड़ी देर में वाच नु आंग एक राजकुमार का हाथ पकड़े बाहर निक राजकुमार सकुचाया हुआ था, उसके श पर पूरे वस्त्र नहीं थे। वाच नु आं चादर का जो आधा भाग फाड़कर दे था, उसीसे उसने शरीर को ढक रखा

वाच नु आंग ने सबको बताया कि प्रवेश करते ही अजगर शांत हो गया धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ा। जैसे ही मुंह वाच नु आंग के पैरों से छू गया, वै अजगर की देह सिकुड़ने लगी और एक राजकुमार के रूप में बदल गयी।

हर्ष के मारे राजा रो पड़ा। सारे में खुशी का समुद्र उमड़ पड़ा। फिर पूछना था, बड़ी धूमधाम से राजा ने का विवाह कर दिया।

★

यह भी बहुत समय पहले की कहानी है। एक था बंदर, एक था खरगोश। में गहरी दोस्ती थी। बंदर रोज पेड़ पर से मीठे-मीठे फल तोड़कर खरगोश को खिला पेड़ के पास रहने वाली बकरी खरगोश को मीठे फल खाते देखकर ईर्ष्या से जलती एक दिन उसने बंदर के कान भरे—"भाई, तुम तो रोज खरगोश को नाश्ता कराते पर क्या उसने भी कभी तुम्हें अपने यहां खाना खाने बुलाया है?" बंदर बोला— कहती हो बकरी बहन!" और अगले दिन उसने खरगोश से कहा कि मैं कल तुम्हारे जीमने आऊंगा। अगले दिन जब बंदर उसके घर पहुंचा, तो खरगोश ने कहा—"मैं ख परोस रहा हूं, तुम जाकर हाथ धो आओ।" बंदर हाथ धोकर नदी पर से वापस लगा, तो दो पैरों से चलने का आदी न होने से थक गया और हाथ जमीन पर टिका दि हाथ गंदे हो गये। वह उन्हें धोने गया, पर लौटते हुए फिर वही बात। अंत में थककर खरगोश से कहा—"भाई, मुझसे हाथ नहीं धोये जायेंगे।" खरगोश बोला—"तो मैं खाना परोसूंगा।" और बंदर को भूखा ही लौटा दिया। अगले दिन निश्चित समय पर खर फल खाने पहुंचा, तो बंदर ने कहा—"भाई खरगोश, फल मैंने तोड़कर वृक्ष पर रखे ऊपर आकर खा लो।" और उस दिन से उनकी दोस्ती टूट गयी।

★





केजिता

नयी दिशाएं, नये आयाम

जमीन का आदमी चांद को छूकर वापस आ गया है। ४ अक्टूबर ५७ से अंतरिक्ष युग आरंभ हुआ और २०-२१ जुलाई ६९ की रात्रि को उसका पहला अध्याय समाप्त हो गया। शंका-भरी एक अजीब-सी जिज्ञासा देखते-देखते हवा हो गयी। मगर एक बड़ा-सा सवाल सभी के सामने सांप के फन-सा फैल गया—इस सबका नतीजा क्या होगा? चांद को छू लेने से हमें क्या मिलेगा?

क्या मिलेगा? यह सवाल जरा दूर का है। मगर अंतरिक्ष-अभियान संबंधी कार्यक्रमों से सीधे जो लाभ हमें कुछ-कुछ मिलने शुरू हो गये हैं और जिनका आगे जाकर और भी विकास होने की संभावनाएं हैं, वे भी अपने आपमें क्या कम हैं!

मौसम :

आगे का मौसम कैसा होगा, इसका अगर सही-सही अनुमान लगाया जा सके, तो अनेक दुर्घटनाएं होने से रोकी जा सकती हैं।

अमरीका द्वारा छोड़े गये मौसम-उपग्रह प्रतिदिन संपूर्ण पृथ्वी के मेघ-आवरण (क्लाउड कवर) के फोटोग्राफ लेते हैं, जो संसार के प्रत्येक देश को प्राप्य हैं। इस उपग्रह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके जरिये पृथ्वी के उस दो तिहाई हिस्से के बाबत भी आंकड़े मिल जाते हैं, जो सागरों-महासागरों से आच्छादित है और जिस पर कोई आबादी नहीं है। यह अंतरिक्ष-अभियान से ही संभव हो सका है।

शीघ्र ही ऐसे मौसम-उपग्रह छोड़े जाने वाले हैं, जो मौसम का अध्ययन उर्ध्वाधरीय और पार्श्वीय, दोनों प्रकार से कर सकेंगे। उच्च क्षमता वाले कंप्यूटरों की सहायता से तब यह भी संभव हो जायेगा कि लगभग दो हफ्ते बाद तक के मौसम का ठीक-ठीक पूर्वानुमान किया जा सके। यह एक बड़ी सुविधा होगी।

आटोमैटिक चित्रण-प्रेषण तंत्र द्वारा आज लगभग बावन देश अमरीकी मौसम-उपग्रह से लाभ उठाते हैं। जिस समय उपग्रह उनके ऊपर से गुजरता है, ये देश बारी-बारी से 'मेघावरण' के फोटो लेते जाते हैं, जिनका मौसम के पूर्वानुमान के लिए काफी महत्त्व है।

संचार :

दूर-दूर तक फैले विभिन्न देशों के बीच सुगम और द्रुत संचार-साधन के विना अव काम नहीं चल सकता । समाचार, सूचनाएं, चित्र और आंकड़े आदि का आदान-प्रदान विश्व-समाज का अभिन्न अंग है। संचार-उपग्रहों ने इस क्षेत्र को एक नया आयाम प्रदान किया है, इसमें दो मत नहीं हो सकते ।

इन्टेलास्ट (इंटरनेशनल टेलि-कम्युनिकेशन्स सैटेलाइट कन्सर्टियम) के लगभग तरेसठ सदस्य, जिनमें पूर्वी एशिया, अफ्रीका, दक्षिण अमरीका और यूरोप के अनेक देश सम्मिलित हैं, आजकल संचार-उपग्रहों के माध्यम से आपस में टेलिविजन चित्रों, टेलिफोन समाचारों और आंकड़ों का आदान-प्रदान सुगमता से और जल्दी कर लेते हैं । यह अंतरिक्ष-अभियान के कारण ही संभव हो सका है। आजकल ऐसे चार उपग्रह कार्यरत हैं ।

आकाश में लगभग ३२।। हजार किलोमीटर ऊपर स्थित होने के कारण एक संचार-उपग्रह पृथ्वी के लगभग एक तिहाई भाग को आपस में जोड़ सकता है और यही वजह है कि संचार-उपग्रह के जरिये बहुत अधिक सूचनाओं का आदान-प्रदान शीघ्रता से संभव हो गया है ।

भारत और अन्य कई उन्नतिशील देश इस बात पर विचार और प्रयत्न कर रहे हैं कि स्वदेशवर्ती उपग्रह (डोमेस्टिक सैटेलाइट) द्वारा टेलिविजन के माध्यम से शिक्षण-कार्यों के लिए एक विशाल तंत्र की स्थापना की जाये । आने वाले कुछ वर्षों में भारत में ऐसी व्यवस्था हो जायेगी, ऐसी आशा है ।

भू-संपदा :

१९७० के बाद अमरीका अपना 'इरोस' (अर्थ रिसोर्सेज आब्जर्वेशन सैटेलाइट) नामक उपग्रह छोड़ने के लिए तैयारी कर रहा है । पृथ्वी पर छायी या छिपी प्राकृतिक संपदा का ठीक-ठीक अनुमान अभी तक किसी को नहीं है । हमारी पृथ्वी पर कुल मिलाकर क्या-क्या संपदाएं कितनी मात्रा में और कहां-कहां विद्यमान हैं, इसका हिसाब किया ही जाना चाहिये । अंतरिक्ष-विज्ञान का इस प्रकार अपनी किस्म का यह पहला प्रयोग होगा ।

इस काम के लिए विशेष रूप से संवेदनशील उपकरण तैयार किये जा रहे हैं जिनसे युक्त एक उपग्रह एक साल से भी कम समय में पूरी पृथ्वी के नक्शे बना सकेगा।

भू-सर्वेक्षण के अतिरिक्त यह उपग्रह वनों में लगने वाली आग की पहले से घोषणा कर सकेगा, किसी विशेष फसल से कितनी उपज होने की संभावना है, इसका अनुमान दे सकेगा, कीट-पतंगों का कोई आक्रमण होने वाला हो, तो उसकी सूचना दे सकेगा, मछलियों के बड़े-बड़े गढ़ कौन-कौन से हैं, यह बता सकेगा । और भी न जाने कितने महत्त्वपूर्ण काम, जिनके लिए हमारे पास समुचित साधन नहीं थे, हमारे नियंत्रण में आ जायेंगे ।

जैवचिकित्सा :

अंतरिक्ष-अभियान को सफल बनाने के लिए टेक्नोलाजी का जो विकास हुआ, उसके आधार पर चिकित्सा-जगत् में भी अनेक परिवर्तन आते जा रहे हैं, और आगे भी आने वाले हैं। कुछ दिलचस्प नमूने प्रस्तुत हैं :

अमरीका के अंतरिक्ष और वायुयान प्रतिष्ठान 'नासा' ने एक ऐसे स्विच का विकास किया है, जिसे शरीर के किसी अंग को बिना हिलाये-डुलाये केवल आंख की मामूली-सी गति के सहारे संचालित किया जा सकता है।

इसकी सहायता से अब कोई भी मरीज मोटरयुक्त पहिया-कुर्सी सिर्फ आंख के जरा-से इशारे से बखूबी चाहे जहां और चाहे जैसे चला-फिरा सकता है। इतना ही नहीं, इस स्विच का उपयोग पुस्तक के पृष्ठ को पलटने, बत्ती जलाने और बुझाने तथा ऐसे ही अनेक उपकरणों के चलाने में भी बखूबी किया जा सकता है।

एक सेंटीमीटर के एक हजारवें भाग जितनी पतली अल्युमिनियम की चादर अतिरोध (सुपर इन्सुलेशन) के लिए खास तौर पर अंतरिक्ष-यानों के लिए तैयार की गयी थी। अब वह मरीजों के लिए तैयार किये जाने वाले कंबलों में इस्तेमाल की जाने लगी है। इस नये पदार्थ में उष्मा-परावर्तन की अत्यधिक क्षमता है। इसके सहारे पूरे बड़े कंबल को इतना मुलायम तक बनाया जा सकता है कि उसे मोड़कर पैंट की जेब में रूमाल की तरह रखा जा सके।

> **बुद्ध और चंद्रमा**
>
> यद्यपि आदमी का चंद्रमा पर पहुंचना अपने आपमें एक बड़ी बात है, तथापि हमें यह नहीं भुलाना चाहिये कि बुद्ध जैसे व्यक्ति ने मनुष्य की जीवन-मृत्यु संबंधी दुविधा का सुलझाव खोजकर और मनुष्य को अपनी मुक्ति अपने भीतर और अपने परिवेश में खोजना सिखाकर मानव-जाति का और विज्ञान का शायद कहीं अधिक बड़ा उपकार किया था।
>
> —प्रो० सत्येंद्रनाथ बोस

अंतरिक्ष-रोगों के निदान के लिए एक इतना छोटा बल्ब तैयार किया गया है, जो सूई के छेद में से आर-पार हो सके। इसकी रोशनी काफी तेज और चमकदार होती है। पेट आदि की आंतरिक गड़बड़ियों को इसके सहारे सीधे आंखों से देखा जा सकता है।

विज्ञान :

अंतरिक्ष-अभियान से ब्रह्मांड संबंधी अनेक बातों का पता चला है। ये बातें शायद अंतरिक्ष-अभियान के अभाव में काफी समय तक पता न चलतीं। दो उदाहरण लें :

१. 'वान एलन रेडिएशन बेल्ट' ऐसी ही एक नवीनतम खोज है। यह पृथ्वी के चारों तरफ विद्युत् कणों का एक गोलाकार आवरण है, जो भूमध्य-रेखा पर काफी घना

है और मानव के लिए खतरनाक तक सिद्ध हो सकता है।

२. सूर्य से उसके बाहर की ओर प्लाज्मा की आंधी हमेशा चलती रहती है, जो पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र से टकराती है।

चांद के टुकड़े :

सामने वाली खिड़की में रहने वाले किसी एक चांद के टुकड़े की सूचना हमारा रेडियो न जाने हफ्ते में कितनी बार जोर-जोर से चिल्लाकर दे जाता है। मगर अमरीका की ह्यूस्टन प्रयोगशाला में रखे चांद के टुकड़े जब अपना रहस्य उद्घाटन करना शुरू करेंगे, तब हम जान जायेंगे, हमारी पृथ्वी कितनी पुरानी है, चांद कितना पुराना है और हमारे सौर-मंडल की उम्र कितनी है। यह तो लगभग तय हो ही चुका है कि चांद पर किसी भी रूप में जीव के अस्तित्व का होना संभव नहीं लगता।



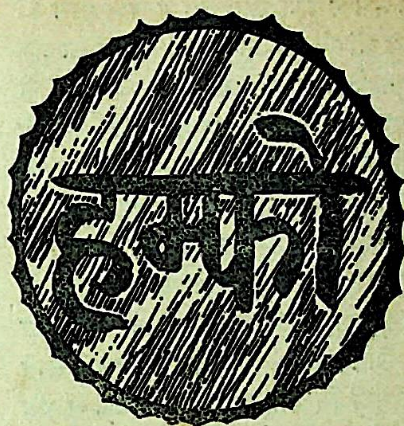
चंद्रमा पर लेजर : लाभ और खतरे

चंद्र-यात्रियों ने चंद्रमा पर १८ इंच वर्ग का जो लेजर-परावर्तक स्थापित किया है, वह तीन साल तक कार्य करता रहेगा। कैलिफोर्निया की वेधशाला से धरती पर लेजर-पुंज फेंका जायेगा और वह इस परावर्तक से टकराकर वापस उसी स्थल पर आ जायेगा। संसार की बहुत-सी वेधशालाएं इस परावर्तक का उपयोग कर सकती हैं। इसकी सहायता से १. पृथ्वी और चंद्रमा के बीच की दूरी का ठीक अंदाजा (६ इंच तक का) लगाया जा सकेगा; २. चंद्रमा की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति में कोई हेरफेर हो, तो उसे मापा जा सकेगा; ३. महाद्वीपों के चलन (कांटिनेंटल ड्रिफ्ट) का अध्ययन किया जा सकेगा; ४. पृथ्वी पर होने वाले भूकंपों की पूर्व सूचना पाने में इसका उपयोग किया जा सकेगा।

लेजर का उपयोग अभी तक विज्ञान और उद्योगतंत्र में ही हो रहा था; परंतु अब संसार के कुछ देश ऐसे लेजर-उपकरण बनाने में जुटे हुए हैं, जिनसे मनुष्यों तथा टैंकों आदि युद्धोपकरणों का विध्वंस किया जा सकेगा।

इसके लिए संसार की बहुत-सी प्रयोगशालाओं में ऊपरी वायु-मंडल से लेजर-पुंज की तीव्रता के तनूकरण (एटेन्युएशन) पर शोध-कार्य हो रहा है। क्योंकि चंद्रमा का किसी सामरिक कार्य के लिए प्रयोग न करने की अंतर्राष्ट्रीय संधि हुई है, इसलिए लेजर के तनूकरण के प्रयोग को शुद्ध वैज्ञानिक प्रयोग कहकर बचने की कोशिश की जा सकती है। परंतु यह बात याद रखनी चाहिये कि कोई देश चंद्रमा पर से शक्तिशाली लेजर-पुंज धरती पर भेजकर किसी भी स्थल पर तबाही मचा सकता है। परंतु लेजर-पुंज के द्वारा चंद्रमा से पृथ्वी पर ऊर्जा लाने की संभावना पर भी विज्ञानी विचार कर रहे हैं। चंद्रमा पर पड़ने वाली सूर्य-किरणों से बिजली उत्पादन करके उसे लेजर-पुंज के रूप में यदि पृथ्वी पर भेजा जाये, तो यहां पर उसे फिर ऊर्जा में बदला जा सकेगा। —जगदीश लू[illegible]





विलियम जे॰ लांग की पुस्तक 'हाउ एनिमल्स टाक' के दो अध्यायों से संचित

हम्फो शब्द किसी भी भाषा के शब्दकोश में नहीं है। मैंने इसे अफ्रीका की म्वेरू झील के जंगली जाति के लोगों से सुना। हम्फो शब्द का प्रयोग वे पशु-पक्षियों के ऐसे स्वाभाविक ज्ञान के अर्थ में करते हैं, जो साधारणतः इंद्रियगत नहीं होता। इसे एक प्रकार का अतींद्रिय प्रत्यक्ष भी कह सकते हैं।

प्रकृति को साधारणतः जड़ कहा जाता है। किंतु मेरा अनुभव है कि प्रकृति में असाधारण चेतना होती है। वन-उपवन के वृक्षों, शाखाओं और फूलों में प्रतिक्षण नये प्राणों का संचरण होता रहता है। सूर्य की किरणों के स्पर्श से वन के अंग-अंग में जो हर्षोल्लास भर जाता है, वह नयी कोंपलों के खिलने और कलियों में नये रंगों के भरने से बाहर फूट पड़ता है।

ऐसी प्राणवंत और चैतन्यमय प्रकृति के अंग बनकर रहने वाले आरण्ये पशुओं में भी वही चैतन्यमयता और प्राणवत्ता भरी रहती है। वे सदा चौकस रहते हैं। उनकी अनुभूति बड़ी पैनी होती है। प्राकृतिक घटनाओं का पूर्वाभास उन्हें सहज ही मिल जाता है। इसी को अफ्रीका के लोग 'हम्फो' कहते हैं। पशुओं में यह हम्फो मनुष्यों से अधिक होता है।

पशुओं की ज्ञानेंद्रियां मनुष्य से अधिक तीव्र होती हैं। भेड़िये की नाक मीलों दूर की गंध लेती है। हिरन के कान कोसों दूर की आहट से खड़े हो जाते हैं। गिद्ध योजनों दूर से मांस-पिंड को देख लेता है। पशु की प्रतिक्रिया भी तुरंत होती है। वह अत्यंत संवेदनशील होता है। इसी शक्ति के बल पर ही वह आत्मरक्षा कर पाता है। मनुष्य की संवेदनशक्ति अस्वाभाविक जीवन के कारण नष्ट हो जाती है।

मैंने पशुओं के जीवन का अध्ययन करने में वर्षों बिताये हैं। पशुओं में पूर्वाभास के कई प्रसंग मुझे याद हैं। एक बार मैंने देखा

कि बर्फ से ढंकी पहाड़ियों में जहां घास की नयी कोंपलें उग आयी थीं, हिरनों का झुंड बहुत तेजी से घास खा रहा था। यों भी हिरन सदा चौकन्ना रहता है और तेजी से आहार करता है। उस दिन मैंने देखा कि वे और भी वेग से पेट भर रहे थे, मानो कई दिन के भूखे हों। लेकिन दरअसल बात कुछ और ही थी। उन्हें यह आभास हो गया था कि कुछ ही घंटों में बर्फानी तूफान आने वाला है, जिससे तीन-चार दिन तक घास खाने को नहीं मिलेगी, सभी स्थान बर्फ से ढंक जायेंगे। इसी पूर्वबोध के कारण वे जल्दी-जल्दी तीन दिन का राशन अपने पेट में भर रहे थे।

बर्फीली जगहों में रहने वाले रीछ भी जान जाते हैं कि कब उनकी गुफा के द्वार बर्फ से ढंक जायेंगे। इसलिए उन दिनों गुफा में जाने से पहले दो-तीन दिनों का आहार वे इकट्ठा कर लेते हैं।

मैंने देखा है कि उत्तरी कनाडा में झील की मछलियां यह जान लेती हैं कि कब झील के ऊपर की सतह दो-तीन फुट मोटी बर्फ की चादर से ढंक जायेगी और कब झील की तह में दक्षिण से आने वाली गर्म [illegible] बहेगी, जिससे बर्फ पिघल जायेगी।



अफ्रीका के जंगलों में घूमते हुए [illegible] बार मैंने देखा कि कुछ दूरी पर [illegible] हिरन बड़ी शांति से घास-पात चर रहे [illegible] फिर अचानक ही वे सभी अगले घुटनों [illegible] बल झुक गये। इसके एक क्षण बाद [illegible] अपने पैरों के नीचे धरती हिलने का [illegible] हुआ। लेकिन हिरनों को तो पहले ही [illegible] बोध हो चुका था कि वह एक हल्का [illegible] भूचाल का धक्का है।

एक दिन मैं कनाडा के समुद्री तट [illegible] बैठा जल-जंतुओं की प्रकृति का निरी[illegible] कर रहा था। दरअसल यह मेरे जीवन [illegible] व्यसन बन गया है कि जहां जाता हूं, व[illegible] पशु-पक्षियों या जीव-जंतुओं की च[illegible] का अध्ययन करता हूं। जहां मैं बैठा [illegible] वहीं पास में कुछ मजदूर क्रेन द्वारा [illegible] जहाज से माल उतार रहे थे।

मेरे पास एक कुत्ता बैठा ऊंघ रहा [illegible] थोड़ी देर बाद अचानक ही उसने [illegible] उठायी, चारों ओर देखा और लंगड़ा[illegible] हुआ दस-बारह गज दूर जा बैठा। उ[illegible] हरकत उस समय मेरी सम[illegible] नहीं आयी। लेकिन बाद में [illegible] क्रेन की रस्सी टूटी और कई [illegible] भारी लौह-खंड टूटकर [illegible] स्थान पर गिरा, जहां वह [illegible] पहले बैठा था, तो मैं समझ [illegible] कि कुत्ते को दुर्घटना का पूर्वा[illegible] हो गया था।

हुम्फो या पूर्वबोध की यह क्षमता मैंने कुछ ऐसे अफ्रीकी आदिवासियों में भी देखी है, जो आज की सभ्यता से दूर वन्य-जीवन बिताते हैं। शिकार पर जाते हुए मैं अपने साथ दो-तीन ऐसे ही अफ्रीकी लड़कों को रख लेता था। वे मेरे पथ-प्रदर्शक का काम करते थे।

एक दिन मैंने घने जंगल में खेमा गाड़ रखा था। चारों ओर निबिड़ अंधकार का राज्य था। खेमे से कुछ दूर पर आग जलाकर हम अंदर सुरक्षित सो रहे थे। आधी रात को अफ्रीकी नौकर ने चिल्लाना शुरू किया—"साहब ! उठिये बाहर चलिये।" उसकी आवाज भय से कांप रही थी।

मैंने कहा—"बाहर इतनी सर्दी है, रात का समय है, बाहर क्यों चलें ?"

कांपता-कांपता वह कहता जा रहा था—"नहीं साहब, चलिये बाहर।"

"मगर क्यों ?" मैंने पूछा।

"मुझे नहीं मालूम क्यों और कैसे, मगर यहां बड़ा खतरा है।" कहते-कहते वह बांह से पकड़कर मुझे बाहर खींच लाया। जैसे ही हम बाहर आये, वैसे ही हमारे तंबू का भारी शहतीर चरमराकर नीचे गिर पड़ा। दो क्षण की भी देरी हो जाती, तो हम तीनों उसके नीचे दबकर मर जाते।

इस रहस्य का मुझे आज तक कोई उत्तर नहीं मिला कि शहतीर के गिरने का पूर्वाभास मेरे नौकर को कैसे हुआ ? लेकिन इस घटना तथा अन्य अनेक घटनाओं ने मुझे विश्वास दिला दिया है कि पूर्वाभास की यह क्षमता पशुओं के अतिरिक्त कुछ मनुष्यों में भी होती है। लेकिन यह होती उन्हीं में है, जो छल-कपट की दुनिया से दूर प्रकृति के निकट रहते हैं।

पूर्वाभास के अतिरिक्त मैंने देखा है कि पशुओं में टेलिपैथी अर्थात् इंद्रियों या बाह्य साधनों की सहायता के बिना संदेश देने या ग्रहण करने की शक्ति भी किसी हद तक होती है। भाषा द्वारा वे अपनी बात नहीं कह सकते, लेकिन केवल इसी रहस्य-शक्ति द्वारा वे अपनी बात दूसरों तक पहुंचा लेते हैं।

आस्ट्रेलिया के जंगलों में घूमते हुए मैंने अनुभव किया कि भेड़ियों में मीलों दूर बैठे अपने साथी के पास संदेश भेजने की शक्ति होती है। एक दफा मैं एक भेड़िये का पीछा कर रहा था। भेड़िया लंगड़ा था। मैं चाहता तो एक ही गोली में उसे ठंडा कर देता; लेकिन मैं यह जानने के लिए उसके पीछे चल पड़ा कि वह किधर जाता है।

लगभग तीन मील जाने के बाद भेड़िया ऐसी जगह पहुंचा, जहां एक हिरन का शव पड़ा था। मांस का मुख्य भाग समाप्त हो चुका था, केवल कुछ बोटियां हड्डियों के साथ लगी हुई थीं। लंगड़े भेड़िये ने उस अवशिष्ट मांस से अपनी उदर-पूर्ति की और फिर वह अपनी पुरानी जगह लौट आया।

दूसरे दिन भी वह लंगड़ा भेड़िया दूसरी दिशा में उसी तरह चल पड़ा। उसका पीछा करने पर मैंने फिर पाया कि पहले दिन की तरह उस दिन भी उसे अपने साथियों के मारे हुए हिरन का शव उदर-पूर्ति के लिए

मिल गया।

मेरे लिए यह रहस्य ही बना रहा कि लंगड़े भेड़िये को अपने साथियों द्वारा मारे गये हिरन की दिशा का ज्ञान कैसे हो जाता है? वह विना रास्ता भूले सीधा उसी स्थान पर पहुंचता था, जहां मृत हिरन का शव पड़ा होता था। मैंने उसे किसी दिन रास्ता भटकते नहीं देखा।

पास के जंगलों में रहने वाले वन्य मनुष्यों से पूछने पर मुझे इसका समाधान मिल गया। मैं भी उनके इस विश्वास का समर्थक बन गया कि भेड़ियों का दल अपनी रहस्यमयी त्राटक-शक्ति से अपने पिछड़े हुए लंगड़े साथी को यह संदेश भेज देते थे कि उन्होंने शिकार पा लिया है और अब वहां आकर वह अवशिष्ट मांस द्वारा पेट भर ले। शिकार मारने के बाद वे जान-बूझकर उसका कुछ मांस साथी के लिए छोड़ जाते थे।

वन्य पशुओं में ही नहीं, पालतू पशुओं में भी दूसरे के मन की बात पहचानने की बड़ी पैनी बुद्धि होती है। मेरा पालतू कुत्ता अनायास समझ जाता था कि मैं किस दिन शिकार पर जाने वाला हूं। कभी-कभी अचानक ही मेरे मन में शिकार की इच्छा पैदा हो जाती थी। मैं उसका कोई आभास किसी को नहीं देता था। लेकिन मैं देखता कि शिकार पर जाने की पोशाक पहनने से पहले ही मेरा कुत्ता बिलकुल वही चेष्टाएं करने लगता था, जो वह शिकार पर जाते समय प्रायः किया करता था। उसकी आंखों में चमक आ जाती, पैर चंचल हो जाते और वह आंगन में चारों ओर तेजी से चक्कर लगाने लगता।

यह पूर्वाभास केवल उसी को नहीं होता था, वल्कि मेरे अस्तवल में खड़े घोड़े भी खुशी में हिनहिनाने लगते और खुरों से जमीन खोदना शुरू कर देते। सारे वातावरण में खुशी की लहर दौड़ जाती थी।

स्वभावतः कुत्ते को शिकार पसंद होता है और घोड़े को खुली हवा में तेजी से दौड़ने का शौक होता है। शिकार वाले दिन दोनों का व्यसन पूरा होता है, इसलिए दोनों खुशी से फूले नहीं समाते।

पशुओं की कोई ऐसी भाषा नहीं है, जिसे मनुष्य समझ सकें; न मनुष्यों के पास ऐसी भाषा है, जिससे वे अपनी बात पशुओं को समझा सकें; फिर भी कुछ मनुष्यों में ऐसी स्वाभाविक क्षमता होती है, जिससे पशु उनके बस में आ जाते हैं।

एक दिन मैं एक बग्घी में जा रहा था। लगाम मेरे साथी के हाथ में थी। उसने थोड़ी देर के लिए लगाम मेरे हाथ में पकड़ा दी और स्वयं उतर गया। मेरे हाथ में लगाम आते ही घोड़ा बिगड़ गया। वह पिछले दोनों पैर गाड़ी पर झटकने लगा और अगले दोनों पैरों पर खड़े होकर अपना गुस्सा जाहिर करने लगा।

मैंने घबराकर अपने साथी को पुकारा। वह तुरंत आ गया और उसने बताया कि यह घोड़ा उसके सिवा किसी की लगाम कबूल नहीं करता। उसने यह भी बताया कि छः महीने पहले उसने इसे पास के गांव



वन्य जीवों के सहचर वनवासी मानवों में भी कुछ हम्फो पाया जाता है।

से बहुत सस्ते में खरीदा था। सस्ते में इसलिए कि गांव के लोग इस घोड़े से तंग आ चुके थे। कई बार यह घोड़ा गाड़ियों को पत्थरों पर घसीटकर तोड़ चुका था।

गांव वालों का कहना था कि घोड़े का दिमाग खराब है, वह कई बार खुदकुशी की भी कोशिश कर चुका है। लेकिन उन्होंने यह सब बात मेरे मित्र को तब बतायी, जब वह घोड़े के दाम दे चुका था। शायद उसे सावधान करने के लिए ही उन्होंने घोड़े की खतरनाक आदतों के बारे में बताया होगा। लेकिन जब घोड़े की लगाम मेरे मित्र के हाथ में आते ही घोड़े का स्वभाव बदल गया, तब उन्हें बेहद आश्चर्य हुआ। घोड़ा अत्यंत आज्ञाकारी और नम्र बन गया।

कुछ दिन बाद मैंने देखा कि बाजार में एक घोड़ागाड़ी उलटी पड़ी है, सईस घोड़े को चाबुक-पर-चाबुक मार रहा है। लगाम भी उसने इतने जोर से खींच रखी थी कि घोड़े के मुंह से खून बह निकला था। चारों ओर भीड़ जमा हो गयी थी। इतने में मेरा बग्घी वाला साथी भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ा। उसने सईस के हाथ से चाबुक छीन ली और सईस को यह कहते हुए परे हटाया कि "घोड़े का खून कर दोगे क्या?" फिर उसने घोड़े की सुम पकड़कर उसकी गर्दन झुकायी, प्यार से उसे थपथपाया, उसके मुंह पर अपना गाल रखकर कान में जाने क्या कहा कि घोड़ा बहुत सुशील और शांत बनकर खड़ा हो गया।

मैंने समझा कि इस मनुष्य को शायद सभी पशुओं को वश में करने की सिद्धि प्राप्त है। यही सोचकर एक दिन मैंने उसे अपने पास बुलाया। मैंने अपने घर के साथ ही छोटा-सा चिड़ियाघर बना रखा है। उसमें एक भेड़िया मेरा बड़ा ही दोस्त बन गया था। भेड़िये का दोस्त बनना वैसे विलक्षण बात थी, फिर भी न जाने क्यों वह मुझसे स्नेह करने लगा था।

मैंने अपने साथी से कहा कि वह भी मेरे साथ भेड़िये के जंगले में चले। पर उसने भेड़िये के पास जाने से इन्कार कर दिया।

वह बोला—"मुझे तो कुत्ते के भी पास जाने से डर लगता है, मैं भेड़िये के पास कैसे जाऊंगा?"

तब मुझे ज्ञात हुआ कि जो आदमी एक पशु को वश में कर सकता है, वह सभी पर अपना जादू नहीं चला सकता। मेरे मित्र का मंत्र घोड़े तक ही सीमित था और मेरा सिर्फ

भेड़िये तक।

कुछ लोग छोटे पशु-पक्षियों के बहुत जल्दी मित्र बन जाते हैं। जब मैं फ्रांस में था, तो रोज एक बगीचे में देखता था कि कि एक आदमी वहां आकर विचित्र बोली बोलता है, जिसे सुनकर आस-पास की दर्जनों गिलहरियां उसके गिर्द जमा हो जाती हैं। कोई उसके कंधों पर बैठती, कोई सिर पर चढ़ जाती और कुछ उसके कोट की जेबों में घुस जातीं। यह तमाशा देखकर आस-पास बहुत लोग जमा हो जाते और जमीन पर पड़े उसके हैट में पैसों का ढेर लग जाता। उसने इसे आमदनी का जरिया ही बना लिया था।

कभी-कभी वह किसी गिलहरी को डांटते हुए कहता—"बिस्मार्क! तू यहां फ्रांस में कहां आ गयी?" तब वह गिलहरी जरा दूर हटकर बैठ जाती। वह उसकी ओर बढ़ता, गिलहरी वृक्ष पर चढ़ती, तो वह भी वृक्ष पर चढ़कर उसका पीछा करता। कुछ देर तक यही खेल चलता। फिर पीछा करते-करते जब वह थक जाती, तो गिलहरी उसकी जेब में आ बैठती।

आस-पास के पक्षियों से भी वह इसी प्रकार खेला करता। एक बार मैं और वह जंगल में जा रहे थे। पास के एक वृक्ष के कोटर में एक कठफोड़वा बैठा था। हमें देखकर उसने अपना मुंह अंदर छिपा लिया। वह बोला—"कहो तो इसे मैं बाहर बुलाऊं?"

वृक्ष के दूसरी ओर उसने तीन बार दस्तक दी। कठफोड़वे ने मुंह बाहर निकाला। बाद में मैंने भी उसी की तरह तने को खटखटाया, लेकिन मेरी खटखट पर कठफोड़वा बाहर नहीं निकला। दुबारा उसने ही जब फिर खटखटाया, तभी वह बाहर निकला और मुझे सामने देखते ही अंदर घुस गया।

इन सब घटनाओं से मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि पशु-पक्षियों में मनुष्य की अपेक्षा अधिक संवेदनशीलता होती है। वे किसी के भी हाव-भाव की पहचान बड़ी सूक्ष्मता से कर लेते हैं। सदा-सचेतन प्रकृति के निकट रहने के कारण उनकी प्राकृतिक शक्तियां बड़ी पैनी होती हैं।

इसके अतिरिक्त, उनकी कोई-न-कोई सांकेतिक भाषा है, इस भाषा को बहुत कम लोग पहचान सकते हैं। पर जो उसे पहचान जाते हैं, वे फिर उन के सहज मित्र बन जाते हैं।



हैनोवर (जर्मनी) में मेरे एक मित्र छोटा-सा कहवाघर चलाते थे। रोज वे गौरैयों के लिए डबल रोटी के टुकड़े डाला करते थे। उन्होंने देखा कि एक गौरैया लंगड़ी होने के कारण ठीक से फुदक नहीं पाती। लेकिन उन्हें यह देखकर बड़ा विस्मय हुआ कि दूसरी सब गौरैयां, उस लंगड़ी गौरैया के आस-पास के टुकड़ों को नहीं छूती थीं, ताकि वह निर्विघ्न अपना पेट भर सके।

— अल्बर्ट श्वाइत्जर



कलम की कमाई

महान निर्धन लेखकों के उदाहरण इतिहास में आसानी से मिल जायेंगे। नौ वर्ष की मेहनत और चार उपन्यासों के प्रकाशन के बाद १८५६ के अंत में एंटनी ट्रोलोप ने ४१ वर्ष की उम्र में पाया कि लेखन से उसने कुल २० पौंड ३ शिलिंग और ९ डाइम कमाये थे। उसने कहा था—"असल में पारिश्रमिक की दृष्टि से पत्थर फोड़ना अधिक अच्छा रहता।" टामस हार्डी को अपने पहले उपन्यास पर १५ पौंड का घाटा उठाना पड़ा। उसने अपने द्वितीय नाटक 'अंडर दि ग्रीन वुड ट्री' का कापी राइट ३० पौंड में बेचा था।

'बुक राइटर्स : हू आर दे ?' (१९६६) नामक पुस्तक में रिचार्ड फिंडलेटर ने १९६५ में लेखकों के संघ द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण का उल्लेख किया है। उस सर्वेक्षण से प्रकट हुआ कि ब्रिटिश लेखकों में हर छ के पीछे केवल एक की आमदनी २० पौंड प्रति सप्ताह थी। दस के पीछे एक की १० से २० पौंड के बीच, और लगभग दो तिहाई की आमदनी ६ पौंड प्रति सप्ताह से भी कम थी। लेखकों में से लगभग आधे लोग गुजारे के लिए दूसरा काम भी करते थे।

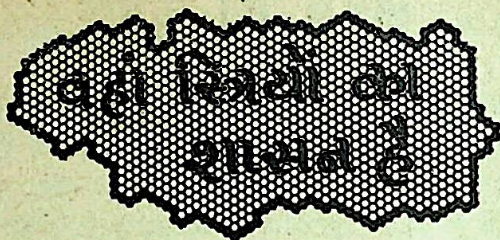
पिछली शताब्दी में, जब प्राय: प्रत्येक उपन्यास तीन खंडों में होता था और उसकी कीमत ३१॥ शिलिंग होती थी, तीन हजार प्रतियों की बिक्री से भी लेखकों को खासी आमदनी हो जाती थी। १८११ में जेन आस्टिन का पहला उपन्यास 'सेन्स एंड सेन्सिबिलिटी' छपा; एक हजार प्रतियां बिकीं और लेखिका को १४० पौंड मिले, जो आज के १,४०० पौंड के बराबर थे।

सन १८४४ में डिजराइली का 'कोनिंग्सबाई' और 'सिबिल' छपे। उसका राजनीतिक जीवन शुरू ही हुआ था और उसके प्रधान मंत्री बनने में अभी बीस साल बाकी थे। दोनों पुस्तकों की ३-३ हजार प्रतियां बिकीं और उसे एक-एक हजार पौंड मिले, जो आज के दस हजार पौंड के बराबर थे। आज यदि उपन्यास की कीमत २५ शिलिंग रखी जाये और रायल्टी १० प्रतिशत हो, तो तीन हजार प्रतियों के संस्करण पर लेखक ३७५ पौंड की ही आशा कर सकता है।

उन्नीसवीं सदी का मध्य और उत्तरार्ध अंग्रेजी लेखकों के लिए शायद सबसे अधिक समृद्धि का समय था। तब मुनाफे में लेखक और प्रकाशक का हिस्सा लगभग आधा-आधा होता था। जिस लेखक का नाम-धाम हो जाये, वह खासा मालदार बन सकता था।

हार्डी के प्रथम उपन्यास की कुल ३७७ प्रतियां बिकीं। लेकिन ज्यों ही कुछ हजार कापियां बिकने लगीं, वे मालदार हो गये। शुरू के दस बुरे वर्षों के बाद अगले बीस वर्षों में ट्रोलोप ने ६८,९५९ पौंड १७॥ शिलिंग कमाये।





मलय के एक मातृमूलक कबीले का आंखों देखा वर्णन।

ओरियाना फालसी

मैं अपने साथी, डुइलियो के साथ कार में बैठी हुई मलय के रबर के वृक्षों के जंगल में से गुजर रही थी। मैं मलय के एक जंगली हिस्से में मातृमूलक समाज की झांकी देखने निकली थी। मुझे बताया गया था कि कुआला लंपुर से जंगल की ओर जाने वाली सड़क से मुड़कर जाने से मैं मातृमूलक समाज की उस विचित्र दुनिया में पहुंच सकूंगी। जंगल में स्तब्धता छायी हुई थी। रास्ते में मैं ड्राइवर मिंगसेन से उस समाज के बारे में बातें करने लगी, जहां स्त्री शासन करती है और पुरुष की ठीक वही स्थिति है, जो हमारे सभ्य समाज में स्त्री की है।

बातों के दौरान मिंगसेन ने बताया—"एक बार मेरे एक दोस्त ने कुआला लंपुर में एक औरत से शादी की। उस औरत ने उसके साथ बलात्कार किया था। वसे वह देखने में बुरी नहीं थी, और पांच खेतों की मालकिन थी। सो मेरे दोस्त ने उससे शादी कर ली। कुछ अरसे के बाद दोनों में अनबन हो गयी और औरत ने तलाक ले लिया। उसने मेरे दोस्त की सारी कमाई और खेतों पर हक जमा लिया और उसे अपने मायके भेज दिया। अब वह रिक्शा चलाता है।"

मिंगसेन ने जिस स्त्री की कहानी सुनायी, वह मातृमूलक समाज की स्त्री थी। वैसे यह कहानी सुनाते समय उसे भी बड़ा अटपटा-सा लग रहा था; क्योंकि उसके खुद दो पत्नियां और दो उपपत्नियां थीं और सारी जमीन-जायदाद पर उसी का हक था।

समाज की प्रारंभिक अवस्था में सत्ता पुरुष के बजाय स्त्री की मानी जाती थी। परिवार में वही मुखिया होती थी और घर-बार और जायदाद पर उसी का हक समझा जाता था। उसके मरने पर उसकी बेटी परिवार की मुखिया बनती थी। उस जमाने में पुरुष शिकार या लड़ाई पर चले जाते थे। स्त्रियां ही खेतों की देखभाल करती थीं और वे उनकी मालकिन बन जाती थीं।

आर्थिक सत्ता के साथ-साथ सामाजिक

सत्ता भी हाथ में आ जाती है। आज भी संसार के कई इलाकों में स्त्री के हाथों में यह सत्ता देखी जा सकती है। ऐसे ही एक समाज की झांकी देखने के लिए मैं मलय के एक इलाके, नेग्री सेम्बीलन की ओर जा रही थी, जहां लगभग छः सदी पहले सुमात्रा के मातृमूलक समाज की स्त्रियां विजेताओं के रूप में आयी थीं और वहां के जंगल पर अधिकार जमाकर बैठ गयी थीं। बाद में उन्होंने वहां खेती-बाड़ी शुरू की और केले और नारियल के बाग लगाये।

हम पूछताछ करते हुए आगे बढ़ते गये। कार का रास्ता खत्म हो गया, तो हम पैदल चल पड़े। रास्ते में हमें मुहम्मद रजा नाम का एक आदमी मिला, जो हमारा मार्ग-दर्शन करने को तैयार हो गया।

काफी आगे जाने पर जंगल में से हमें एक बाग दिखाई दिया। फिर बाग के बीच में दिखाई दिया एक घर, जो लकड़ी का बना हुआ था और खंभों पर धरती से दस फुट ऊपर उठा हुआ था। शायद जंगली जानवरों और बाढ़ के पानी से सुरक्षित रहने के लिए ही ऐसा घर बनाया गया था।

जब हम घर के निकट पहुंचे, तो एक खिड़की में से सिलाई-मशीन और ग्रामोफोन की आवाज सुनाई दी। तभी हमारी नजर कुछ स्त्रियों पर पड़ी। उन स्त्रियों ने भी हमें देखा, तो वे एक-दूसरे को आवाजें देती हुई एक जगह इकट्ठी हो गयीं। घर में से आने वाली सिलाई-मशीन और ग्रामोफोन की आवाज भी बंद हो गयी। मुहम्मद रजा ने मलय भाषा में उन्हें हमारे आने का प्रयोजन बताया।

स्त्रियों ने काफी चटक रंगों के कपड़े पहन रखे थे। उनके कद छोटे थे, शरीर इकहरे और चेहरे गोल भूरे-सुनहरे। वे सब अपनी आयु के क्रम से एक पंक्ति में खड़ी हो गयीं। सबसे बूढ़ी स्त्री सौ साल से ज्यादा की लगती थी। उसके साथ वाली स्त्री लगभग सत्तर साल की, तीसरी स्त्री पचास की, और चौथी लगभग तीस की लगती थी। उनके बाद छोटी-छोटी लड़कियां थीं।

मुहम्मद रजा के कुछ कहने पर उन्होंने हमें ऊपर घर में चलने का न्योता दिया। हम सीढ़ी चढ़कर घर में दाखिल हुए। घर साफ-सुथरा और खुला हुआ था। फर्श पर ताड़ के पत्तों की चटाई बिछी हुई थी। एक तरफ सिलाई-मशीन पड़ी थी, और उसके पास ही एक ग्रामोफोन रखा हुआ था। ग्रामोफोन बहुत पुराने ढंग का था, लेकिन सिलाई-मशीन नयी थी।

मैं कुछ हैरानी से ग्रामोफोन और मशीन



चित्र : ठाकोर राणा

की ओर देख ही रही थी कि सबसे कम उम्र की स्त्री ने, जिसका नाम जमीला था, मुझे बताया—"ये दोनों चीजें मेरा पति शादी के समय दहेज में लेकर आया था।"

"तुम्हारा पति कहां है?" मुहम्मद रजा ने पूछा।

"अपने मायके।" जमीला ने बताया।

"मायके का मतलब?"

"अपनी मां के घर। वह यहां काम नहीं करता था। आसान-से-आसान काम करना भी उसे नहीं रुचता था। यहां तक कि लकड़ी काटना या चावल पकाना भी उसे नहीं आता था। सो मैंने उसे घर से निकाल दिया। जमाना बदल गया है, आखिर मर्द कब तक निकम्मे बने रहेंगे?"

"और बाकी स्त्रियों के पति कहां हैं?" (वहां किसी मर्द की शक्ल दिखाई नहीं दे रही थी। सिर्फ बच्चे थे, जो उनके अस्तित्व का आभास दिला रहे थे।)

"अपने मायके, या शहर में काम करने गये हुए हैं।" जमीला ने कहा। उसे मेरे प्रश्न पर हैरानी हुई थी।

"क्या वे यहां नहीं आते?"

"आते क्यों नहीं! हफ्ते या महीने में एक बार आते हैं। यानी जब हम चाहें, वे आ जाते हैं। भला उन्हें हर समय अपने कदमों में बैठाये रखने का क्या फायदा है?"

जमीला अपने को आधुनिक स्त्री समझती थी। वह पढ़-लिख सकती थी और बहुत अच्छी तरह जानती थी कि इटली (जहां से मैं आयी थी) यूरोप में है, और मलय से वह बहुत दूर है। पढ़ना-लिखना उसकी मां ने उसे सिखाया था। एक बार वह कोई परीक्षा देने के लिए कुआला लंपुर भी गयी थी।



"क्या कुआला लंपुर आपको पसंद आया?"

"कोई खास नहीं। सच पूछिये तो मैं देहात में रहना पसंद करती हूं।"

हम जब बातें कर रहे थे, तो सबसे बूढ़ी स्त्री, जिसका नाम नोपहि था, हमारे सामने बैठी हुई थी और बाकी स्त्रियां उसके गिर्द खड़ी ताड़ के पत्तों से चटाई बुन रही थीं। नोपहि ने अपने से छोटी स्त्री को, जिसका नाम हव्वा था, घर की मुखिया नियुक्त किया था।

जब मैंने हव्वा से पूछा कि उनके समाज में घर-परिवार पर स्त्रियों का अधिकार किस कारण है, तो उसने हैरानी से कहा—"तो क्या आपके यूरोप में स्त्रियों का अपने परिवार पर अधिकार नहीं है?"

मैंने कहा—"नहीं, यूरोप में पुरुषों का अधिकार है।"

"अजीब बात है!"

मैंने समझाते हुए कहा—"हमारे समाज में परिवार का स्वामी पुरुष होता है, और उसी के नाम से उसका वंश चलता है।"

"यानी कि शादी होने पर लड़की को पति का नाम धारण करना पड़ता है?"

"हां।"

"लेकिन हमारे यहां इससे उलटा है। वंश का नाम मां के नाम से चलता है। पति को पत्नी का हुक्म मानना पड़ता है। क्या आपके यहां पति अपनी पत्नी के हुक्म के मुताबिक नहीं चलता ?"

"नहीं।"

यह सुनते ही सभी स्त्रियां खिलखिलाकर हंस पड़ीं। वे सब हंसती ही जा रही थीं कि सबसे बूढ़ी स्त्री ने अपनी हंसी रोकते हुए सबको चुप हो जाने के लिए कहा। फिर मेरी ओर घूमकर पूछा–"आपके देश में शादी का प्रस्ताव कौन रखता है–लड़की या लड़का ?"

"लड़का।......अगर लड़की शादी का प्रस्ताव रखे, तो यह बात सामाजिक दृष्टि से बुरी समझी जाती है।"

"अगर कोई स्त्री किसी पुरुष से बलात्कार कर बैठे, तो क्या होता है ?"

"हमारे यहां ऐसा कुछ होता है, तो पुरुष की ओर से होता है।"

यह सुनते ही नोपहि ने हव्वा की ओर देखा, हव्वा ने जिन्हा की ओर, जिन्हा ने जमीला की ओर, और फिर सबने ऐसी हैरानी से मेरी ओर देखा, जैसे मैंने कोई पागलों-जैसी बात कह दी हो।

"तो क्या वहां लड़की लड़के के यहां रहने जाती है ?" नोपहि ने पूछा।

"बेशक।"

इस बार फिर उन्होंने पहले के क्रम से एक-दूसरे की ओर देखा, फिर और भी अधिक हैरानी से भरकर सब मेरी ओ[illegible] देखने लगीं।

एक क्षण चुप रहकर नोपहि ने [illegible] लहजे में कहा–"जब यह धरती धरती [illegible] कहलाती थी, बल्कि संसार की नाभि [illegible] लाती थी; और आसमान आसमान [illegible] कहलाता था, बल्कि संसार की छतरी [illegible] लाता था; और धरती एक रकाबी जि[illegible] छोटी थी, और आसमान सूरज की [illegible] जितना छोटा था–उस जमाने में पु[illegible] गुलाम था और स्त्री स्वामिनी थी। [illegible] धरती धरती कहलाने लगी, और आसम[illegible] आसमान कहलाने लगा, और स्त्री ने पु[illegible] को अपने बराबर का दर्जा दे दिया। [illegible] अभी भी धरती पर स्त्री का हक उसी त[illegible] है, जिस तरह उसका हक अपने बच्चों [illegible] है, और उन चीजों पर है, जो उसका [illegible] अपने साथ दहेज में लाता है।"

"इसकी बातों की ओर ध्यान न दीजि[illegible]" हव्वा ने कहा–"यह बूढ़ी हो गयी है, [illegible] इसके विचार पुराने पड़ गये हैं।"

वे सब बहुत खुश नजर आ रही थीं [illegible] लेकिन जब रबर के वृक्षों के बारे में [illegible] होने लगी, तो उनके चेहरों पर उदासी [illegible] छाया उभर आयी। जमीला ने बताया [illegible] "ये गोरे लोग जंगल खरीदकर उसमें र[illegible] के पेड़ लगाते जा रहे हैं। एक दिन [illegible] आयेगा, जब हमें यहां से किसी और इला[illegible] की खोज में जाना पड़ेगा। और अगर स्त्रि[illegible] में अपने पैरों पर खड़े होने की हिम्मत न[illegible] होगी, तो हमारे बेटों की शादियां [illegible]

होंगी ? उन्हें ऐसी लड़कियों से शादी करनी पड़ेगी, जिनके पास कोई जमीन नहीं होगी। मुझे तो अपने बेटे, जूनोस का भविष्य बुरा दिखाई दे रहा है।"

उसका बेटा, जूनोस परिवार में अकेला पुरुष था। "ईश्वर ने बेचारे जूनोस को लड़का बनाकर पैदा किया है।" हव्वा ने और भी उदास होकर कहा—"और पुरुषों के लिए इस दुनिया में जीना कितना मुश्किल है! सो मैं जूनोस को कोई ऐसा काम सिखाना चाहती हूं, जिससे वह खुद कमा-कर अपने दहेज के लायक पैसे इकट्ठा कर ले और किसी ऐसी लड़की से शादी कर सके, जो थोड़ी-बहुत जमीन की मालकिन हो। उसे काम सिखाने के लिए मैं अब तक अपने तीन दांत खर्च कर चुकी हूं।"

"क्या ?"

"तीन दांत!" हव्वा के चेहरे पर खुशी की आभा दौड़ गयी और उसने अपना मुंह खोलकर दिखाया। उसके सारे दांतों में सोना भरा था। केवल तीन दांत बिना सोने के नजर आ रहे थे और इनमें दिल की शक्ल के खाली निशान दिखाई दे रहे थे।

"मेरे दांत मेरा खजाना हैं," हव्वा ने उन्हें उंगली से टकोरते हुए कहा—"मेरी बेटियों के पास जमीन है; लेकिन मेरे बेटे के पास मेरे दांत हैं। जब भी मुझे पैसों की जरूरत होती है, मैं कुआला लंपुर जाती हूं और दांत का सोना निकलवा लेती हूं। सोना निकालते समय पीड़ा तो होती है, पर क्या किया जाये? इस एक दांत के सोने से मैं जूनोस के लिए कुआला लंपुर में मिलने वाली सबसे अधिक महंगी ऐनक खरीदकर लायी थी।

हम लौटकर कुआला लंपुर आये। वहां एक अफसर ने बताया—"नेग्री सेम्बीलान के ये परिवार अब खत्म होते जा रहे हैं। अब वहां सिर्फ दस बस्तियां बाकी रह गयी हैं, जो शायद कुछ अरसे के बाद अपना अस्तित्व खो बैठेंगी। सरकार इन परिवारों को सभ्य सामाजिक ढांचे में ढालने का प्रयत्न कर रही है; क्योंकि स्वतंत्र मलय में अभी भी ऐसी जंगली स्त्रियों का बना रहना शोभा नहीं देता। जरा सोचिये तो, ये स्त्रियां चुनावों में अपना वोट तक नहीं देतीं! वे समझती हैं कि इस प्रकार सत्ता अहंकारी पुरुषों के हाथ में आ जायेगी और उन्हें पुरुषों के सामने झुकना पड़ेगा।"



पुरुषों में ज्यादा-से-ज्यादा जमीन-आसमान का फर्क होता है; मगर औरतों में तो स्वर्ग-नरक का अंतर होता है।

—टेनिसन

औरतों के नाक-नक्श में हमारे कानूनों से ज्यादा ताकत है; उनके आंसुओं में हमारे तर्क से ज्यादा बल है।

—सेविल

स्त्री कुरूप हो सकती है, अनघड़, दुष्ट, अज्ञानी, बुद्धू और बेवकूफ हो सकती है, किंतु उपहासास्पद वह कभी नहीं होती।

—लुई डेस्नोयर्स



ब्रांकूसी और उड़ता विहग

मथुरेशनंदन कुलश्रेष्ठ

चित्रकला, मूर्तिकला और साहित्य के माध्यम से जब इस सदी के कलाकार ने अपने जटिल अनुभवों और मन:स्थितियों को व्यक्त करने का प्रयास किया, तो परंपरागत शिल्प और शैलियां अपर्याप्त सिद्ध हुईं। और तब कलाकार के मन का सर्जनात्मक आवेग प्राचीन शैलियों के कगारों को तोड़कर नवीन रूपों की रचना करता हुआ फूट पड़ा। कलाकार ने अपनी अनुभूतियों के अनुरूप अभिव्यक्ति की। नयी और क्रांतिकारी प्रणालियों का अनुसंधान किया। इस अनुसंधान में वह विरूपण, कायांतरण और सरलीकरण की पद्धतियों का प्रयोग करते-करते अमूर्त कला तक पहुंचा। बार्बरा हेप्वर्थ, पेव्सनर और जैकब्स आदि आधुनिक मूर्तिकारों ने मूर्तिकला को अनुकरण तत्त्व से पूर्णत: विहीन और सर्वथा विशुद्ध रूप में प्रस्तुत किया।

'बर्ड इन स्पेस' मूर्तिकला की एक ऐसी ही कृति है। वह अपने समय की एक ऐतिहासिक कृति मानी जाती है। उसका रचनाकार था रुमानिया का मूर्तिकार ब्रांकूसी। दस-बारह वर्षों के कठोर परिश्रम के उपरांत उसने १९१९ में उसकी रचना की और १९४० तक उसने उसके लगभग २२ प्रतिरूपों का निर्माण किया।

उन २२ प्रतिकृतियों में रंगों और मा[illegible] के अनेक विधि-परिवर्तन मिलते हैं। [illegible] प्रतिकृतियों का लगभग १९ प्रदर्शनि[illegible] प्रदर्शन किया गया और आज वे वि[illegible] विभिन्न संग्रहालयों में संगृहीत हैं। [illegible] कार के जीवन-काल में तो वह कृति [illegible] का विषय रही ही, उसके उपरांत भी [illegible] आधुनिक मूर्तिकला के मर्मज्ञों के लिए [illegible] र्षण का केंद्र रही है।

मानव-भावनाओं की अभिव्यक्ति [illegible] लिए ब्रांकूसी ने ऐसे विशुद्ध कला-रू[illegible] अनुसंधान किया, जो सामयिकता [illegible] सीमाओं का बंधन तोड़कर शाश्वतता [illegible] पृष्ठभूमि पर आधारित हों। वह प्राकृ[illegible] सौंदर्य के ऐसे सारतत्त्व का सृजन क[illegible] चाहता था, जो वस्तु के बाह्य विस्तार से [illegible] अपने शाश्वत रूप में आकर्षक और प्र[illegible] में सार्वभौमिक होता है।

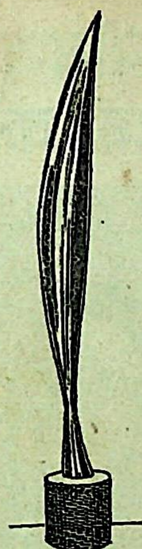
उसके लिए शरीर गौण था, प्रभाव [illegible] प्रमुख था। प्लेटो की तरह उसका भी [illegible] विश्वास था कि यथार्थ वस्तुओं के अस्ति[illegible] के पीछे एक अलौकिक सार-तत्त्व विद्य[illegible] रहता है। उसका विश्वास था कि ई[illegible] स्वर्ग तथा शैतान जिन भावनाओं का प्र[illegible]

निधित्व करते हैं, वे वस्तुतः जीवन में ही उपस्थित रहती हैं। ये उसके रुमानियाई कृषक-जीवन के संस्कार थे और उसकी मूर्ति-कला में भी उनकी छाप स्पष्ट है।

उसने अपनी कृतियों में रुमानिया के कृषक-जीवन की आध्यात्मिक आशाओं को व्यक्त करने वाले प्रकृति और मानव के संबंधों को अभिव्यक्ति दी; ब्रह्मांड की एक विशिष्ट व्याख्या प्रस्तुत कर प्रज्ञा के सत्य-स्वरूप को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया। क्योंकि एक ओर तो उसका संबंध रुमानिया के ग्राम-जीवन से था और दूसरी ओर वह आधुनिक जीवन जी रहा था; अतः उसने लोक-कला के प्राचीन अनुभवों को आधुनिक मूर्तिकला के जीवंत संदर्भ में प्रस्तुत किया।

अपनी प्रत्येक कृति में उसने सुदूर भूत-काल की उपलब्धियों और भविष्यत् के प्रति अपनी दिव्यदृष्टि का समाहार किया है। इसी कारण उसकी कला देश और काल की सीमाओं को तोड़कर एक ऐसी पूर्णता तक पहुंच गयी है, जो शाश्वतता की प्रतीक है।

ब्रांकूसी के अनुसार, आज के जीवन की मूलभूत विशेषता है—गति। आज का मानव गति और अवकाश के मध्य संघर्ष करता हुआ अपने लिए मार्ग बनाता चलता है। अभिव्यक्ति का माध्यम ऐसे ही रूप हो सकते हैं और होने चाहिये, जो कलाकार के युग की विशेषता का प्रतिनिधित्व कर सकें। अतः कलाकार ब्रांकूसी ने अपने युग की



उड़ता विहग
कलाकृति : ओफे

सबसे बड़ी विशेषता 'गति' को ही कृतिबद्ध किया है।

अपनी कृति 'सील' (एक मछली) के संबंध में उसने लिखा है—"जब आप किसी मछली को देखते हैं, तो आप उसके शल्कों (स्केल) की बात नहीं सोचते, उसकी गति की बात सोचते हैं—उसका उतराना, पानी में उसकी चमकती हुई देह का उचकना। अपनी कृति में मैंने बिलकुल यही कुछ अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। अगर मैं मछली का शल्क, उसकी आंखें आदि बनाऊंगा, तो मैं उनमें उनकी गति भी निरूपित करूंगा, एक यथार्थ रूप दूंगा। मैं उसकी जीवन-गति को अपनी कृति में प्रतिबिंबित करना चाहता हूं।"

'बर्ड इन स्पेस' भी गति को ही कला में

पालन पोषण सही कीजिए;
बच्चों को बोर्नविटा दीजिए!



बढ़ने और पढ़ने वाले बच्चों के लिए हर दिन के भोजन से मिलने वाली शक्ति काफ़ी नहीं होती। वे जितनी शक्ति रोज प्राप्त करते हैं उतनी पढ़ने और खेलकूद में खर्च कर डालते हैं। बच्चों में बराबर शक्ति बनाए रखने के लिए उन्हें हर दिन बोर्नविटा देना चाहिए। बोर्नविटा से बच्चे स्वस्थ तथा उत्साह पूर्ण रहते हैं।

स्वादिष्ट और पौष्टिक बोर्नविटा कोको, दूध, माल्ट और शक्कर का सन्तुलित मिश्रण है।

शक्ति, उत्साह और स्वाद के लिए— कैडबरिज़ बोर्नविटा!

आबद्ध करने का एक अद्भुत प्रयास है। यह उसकी सर्वश्रेष्ठ कृतियों की केंद्र-बिंदु है। यह एक ऐसे लंबे, तिरछे और असमरूप दीर्घवृत्त के आकार की कृति है, जिसका अंतिम नुकीला बिंदु एक चिड़िया की चोंच को रूपायित करता है।

यों तो यह चिड़िया के सही आकार की मूर्ति नहीं है, वल्कि एक आकाशगामी चिड़िया का आभास प्रस्तुत करती है। उसमें न पंखों की योजना है, न रोओं की। उसकी अत्यंत चमकदार सतह से परावर्तित होने वाला प्रकाश चिड़िया के मेरुदंड का हल्का आभास उत्पन्न करता है। और उसकी चमक और उससे परावर्तित होने वाला पवित्र प्रकाश ही इस कृति की सफलता का रहस्य है। यह प्रकाश की ही अप्रतिम शक्ति है, जो एक चिड़िया की आकाश में उड़ान भरने की ऐसी व्यंजना प्रस्तुत करता है कि दर्शक को प्रतीत होने लगता है, जैसे वह स्वयं उड़ने लगा है।

चिड़िया की ऊर्ध्व गति आदि काल से चली आयी मानव-मन की इस प्यास की प्रतीक है कि वह इस दुनिया से छुटकारा पाकर आकाशगामी होना चाहता है, अविनश्वर परम सत्ता के साथ एकरूप होना चाहता है।

'बर्ड इन स्पेस' नाम बड़ा ही चमत्कारी और बहुत आकर्षक है; परंतु इस कृति का वास्तविक सौंदर्य इसमें है कि वह चिड़िया का नितांत सरलीकृत रूप है और उसकी सतह का निर्माण एक चरम विकसित शिल्प द्वारा किया गया है। वह गहनतम अनुभूति की सरलतम अभिव्यक्ति है। सादगी ने उसकी भावना-संपत्ति और प्रज्ञा-संपत्ति को समाप्त नहीं किया, वरन् और अधिक गहन कर दिया है।

ब्रांकूसी कहा करता था कि किसी भी प्रकार की रचना करना कठिन नहीं है; कठिन है उसे रचने की मन:स्थिति प्राप्त करना। यह बात उसकी सभी कृतियों से ध्वनित भी होती है। जब वह धातु या लकड़ी या पत्थर की किसी कृति का निर्माण कर रहा होता था, तो उस लकड़ी, धातु या पत्थर के खंड के साथ एकरूप हो जाता था; उसी की जिंदगी जीता था। 'बर्ड इन स्पेस' इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है।

ब्रांकूसी ने चिड़िया की उड़ान की अवधि और उससे उत्पन्न शारीरिक संवेदनाओं की वास्तविक अनुभूति प्राप्त की। इसी कारण वह चिड़िया के सार-तत्त्व गति और शारीरिक अस्तित्व—दोनों को एक चमकदार धातु में समाविष्ट कर पाया।

विभिन्न पदार्थों से बनी हुई 'बर्ड इन स्पेस' की विभिन्न प्रतिकृतियां इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं कि ब्रांकूसी निरंतर बीस वर्षों तक अपने साध्य के साथ तद्रूप होने के लिए संघर्ष करता रहा। उसकी यह रचना इस बात का भी प्रतीक है कि आधुनिक मूर्तिकला अनुभूति के उन स्तरों का उद्घाटन करने चल पड़ी है, जो परंपरावाद की कठिन नियम-शृंखला के कारण अब तक अप्रकाशित थे।



चाचा रामशरन

शशिकांत

चचा रामशरन हमारे छोटे-से शहर के प्रकाश-स्तंभ हैं। जहां और कोई वस्तु दर्शनीय व आकर्षक नहीं है, वहां यह शख्सियत एक तिलस्म से कम नहीं है। शहर के सबसे आखिरी मुहल्ले में गली के छोर पर उनका मकान है, जिसमें गहरे आंगन के बाद वाली दालान में अपनी शतरंजी बिछाये वे इस अंदाज से बैठते हैं कि निगाहों की बंदूक सड़क पर ही निशाना साधा करती है।

दुबला शरीर, कोकिलवर्णी रंग, गुफा के अंदर लाल गोले-सी दमकती आंखें जिन पर सुनहरे फ्रेम का चश्मा, मुख पर छः इंच व्यास वाली परमानेंट मुस्कान, लान की तराशी हुई दूब जैसे गंगा-जमुनी बाल, और सफाचट दाढ़ी-मूंछ—यह उनका हुलिया है।

शहर की सड़क पर इस हुलिया के आदमी को अगर आप रेशमी कमीज (जिसके बटन गले तक बंद हों), सफेद धोती और पंप जूतों की वर्दी में धनुषाकार चलता-फिरता देखें, तो समझ लें कि वे चचा रामशरन ही हैं। हां, सड़क पर इधर-उधर देखते हुए वे हाथों का सिग्नल भी देते रहते हैं, जो उनके परिचय के क्षितिज का द्योतक है। जहां-कहीं यह सिग्नल रुक गया, चचा की गाड़ी वहीं ठप!

चचा आयुर्वेद के प्रकांड पंडित हैं। रोगी को देखकर निदान करने वाले तो बहुत-से चिकित्सक मिलेंगे, पर चचा रोगी का मकान देखकर ही उसे अच्छा कर सकते हैं, निदान की कौन कहे! वैसे यह धंधा इन्होंने थोड़े ही दिनों से शुरू किया है—यह बात वे अक्सर बताते हैं।

पहले वे घंटाघर के पास शुद्ध दूध और उससे भी शुद्ध मलाई और रबड़ी की दुकान किया करते थे। जिसने भी उन दिनों एक एक बार इनकी दुकान का दूध पिया, वह फिर और कहीं नहीं गया। हां, यह जरूर है कि अगर उसने घर पर दूध देने वाला कोई जानवर पाला भी, तो उसका दूध उसे फीका लगने लगा। और जैसा कि बुजुर्ग लोग कहते हैं, शहर में यह मशहूर था कि भैंस-गाय पालकर क्या होगा, चचा की दुकान का ग्राहक बन जाया जाये। 'चचा' का अर्थ ही 'शुद्ध दूध' हो गया था। और चचा ने शहर की गाय-भैंसों को 'आउट आफ मार्केट' कर दिया था।

शुद्ध दूध का इस कदर प्रचार व प्रसार हो गया था कि थोड़े ही दिनों में उनकी

दुकान पर दूध पीने वाले सभी ग्राहक पहल-वान हो गये थे ! फिर पहलवानों की आदत के मुताबिक, चचा को धीरे-धीरे पैसे मिलने बंद हो गये । लोग दूध पीते, चचा के चरण छूते और अपनी राह लगते ! पर यह जरूर कहते कि चचा की बदौलत सेहत बन रही है । आखिर में नतीजा वही हुआ, जो होना था—शहर की सेहत तो बनी, पर उनकी दुकान की सेहत इस कदर बिगड़ी कि अंत में दुकान स्वर्गीय ही हो गयी ।

अब क्या हो ! चचा बेकार हो गये । सेहत के वे इस कदर कायल हो चुके थे कि काम वही कर सकते थे, जिसका सेहत से सीधा संबंध हो ! नतीजा यह हुआ कि दवाखाना खुल गया और रातों-रात ऐसा हुआ कि 'दूध वाले चचा' बन गये 'दवा वाले चचा' ।

जाने कौन-कौन-सी भस्में, रस, आसव, अरिष्ट, चूरन और चटनी की पूंजी लेकर चचा शहर के रोगों से युद्ध करने बैठ गये । मगर शहर ऐसा नालायक कि जहां दूध के मामले में चचा गाय-भैंस के पर्यायवाची बन गये थे, दवा के मामले में भी मुफ्त दवा लेने वालों के अलावा किसी ने उधर रुख नहीं किया ।

जो लोग दवा के लिए आते भी, चचा उनका वह 'इंटेरोगेशन' करते, घर-परिवार, ससुराल, ननसाल, बचपन और जवानी की घटनाएं इस कदर खोद-खोदकर पूछते कि मरीज को पसीना आ जाता और साथ आये आदमी को बुखार चढ़ने लगता ! आंखों में आंखें डालकर चचा ऐसा घूरते कि के होश फाख्ता होने लगते । फिर कहते—"अरे भाई, जब दीपक में तेल नहीं, तो प्रकाश कहां से होगा !" बीमार अपने अच्छे होने की सारी वहीं छोड़ जाता ।

उन्हें ऐसा कमाल हासिल था कि मरीज नहीं भी आया होता, तो दवा आये व्यक्ति का ही एक्स-रे करले और उसी से मरीज के मर्ज का लगा लेते ! कुल मिलाकर हालत गयी कि मरीज चचा के शिकंजे में बहुत ही कम आ पाता । अगर रोग जाता, तो ठीक ही था—वरना वह उनसे अपना क्रिया-कर्म कराने के बजाय, डाक्टर या वैद्य ढूंढ़ लेता ।

मेरे जैसे विद्यार्थी तो उस गली 'भुतही गली' समझते और लाख काम होने पर भी उधर से निकलने हिम्मत न करते । एक बार हमारे साहब वहां जाकर फंस गये । उनकी ऐसी खराब हुई कि आज पंद्रह साल भी वे उधर जाने का नाम नहीं लेते ।

चचा का दवाखाना चलता अब मगर वही लोग वहां जाते हैं, जो बहुत दूध-रबड़ी खाकर अपनी सेहत खराब चुके हैं ।

चचा की हांबी है पालिटिक्स । अपनी गुफा में बैठे-बैठे 'राधे बेटा', बेटा' को आवाज देते रहते हैं । वे दुनिया राजनीति पर नजर रखते हैं । राष्ट्र

उतनी जानकारी नहीं होगी, जितनी चचा को है। हिटलर के बारे में सही-सही खबर उन्हीं को है। बुलानिन का पूरा अता-पता वे बता सकते हैं। सुभाष बाबू की तो उनके नाम चिट्ठियां ही आती थीं! महात्मा गांधी को जब एक बार आंत्र-शोथ हो गया था, तो मोतीलाल नेहरू के कहने पर चचा ने ही उनकी दवा की थी! नेहरूजी को तो उन्होंने गोद में खिलाया था। और जाने कौन-कौन-सी राजनीतिक हस्तियां गाढ़े समय में चचा से राय ले चुकी हैं।

चीन के हमले के समय जब बाकी लोग जवानों के लिए धन और खून दे रहे थे, चचा झींख रहे थे कि उन्होंने तो नेहरूजी से आजादी के पहले ही कहा था कि चीन का विश्वास कभी मत करना। काश, उस समय यह सीख मान ली गयी होती, तो यह दिन क्यों देखना पड़ता!

चुनाव के बारे में उनके दो टूक विचार हैं कि वोट मांगने से कहीं शासन चलता है? शासन के लिए योग्य व्यक्ति चाहिये, और योग्य व्यक्ति चुनाव लड़ने की कौन कहे, वोट देने तक नहीं जाते! और यह सच भी है कि आज तक चचा ने कभी किसी को वोट नहीं दिया।

इन सब कारणों से चचा देश के लिए बड़े दुःखी रहते हैं! दिन-रात उन्हें यही चिंता रहती है कि देश का क्या होगा? कैसे देश उन्नति करेगा? सुना है कि नेताजी सुभाष बोस का प्रण था कि वे देश के पराधीन रहते शादी नहीं करेंगे। हमारे चचा इस मामले में उनसे कई कदम आगे हैं। उनका प्रण है कि जब तक देश का कल्याण नहीं होता, उन्नति नहीं होती, वे पिता नहीं बनेंगे। और इसीलिए, हालांकि शादी उन्होंने पांच-पांच की, पर वे पिता नहीं बने।

इसी उम्मीद में वे अब भी जिंदा हैं कि शायद निकट भविष्य में देश का कल्याण हो जाये, उन्नति हो जाये और तब वे संतान का सुख देखकर इस फानी दुनिया से किनाराकशी करें!



स्त्री रोगी को देखने आये हुए डाक्टर ने कमरे से बाहर आकर उसके पति से कहा— जरा पेचकस हो तो दीजिये। पति ने पेचकस ला दिया। थोड़ी देर बाद डाक्टर ने छेनी-हथौड़े की मांग की। पति घबराकर पूछने लगा—"क्या हो गया है डाक्टर साहब मेरी पत्नी को?" डाक्टर बोला —"पता नहीं, अभी तो मेरी बैग नहीं खुल रही है।"



एक धोबी ने एक वकील पर धुलाई के बकाया ३० रुपये का दावा करते हुए मुकद्दमा दायर किया। जज ने धोबी को बड़े जोर से डांटा—"क्या बकवास करते हो? इस वकील ने कभी धुले हुए कपड़े पहने हैं?" वकील ने तुरंत बकाया ३० रुपये के साथ-साथ धोबी को मुकद्दमे का खर्चा भी चुका दिया।



अपनी-अपनी उम्र

ग्रिम बंधु

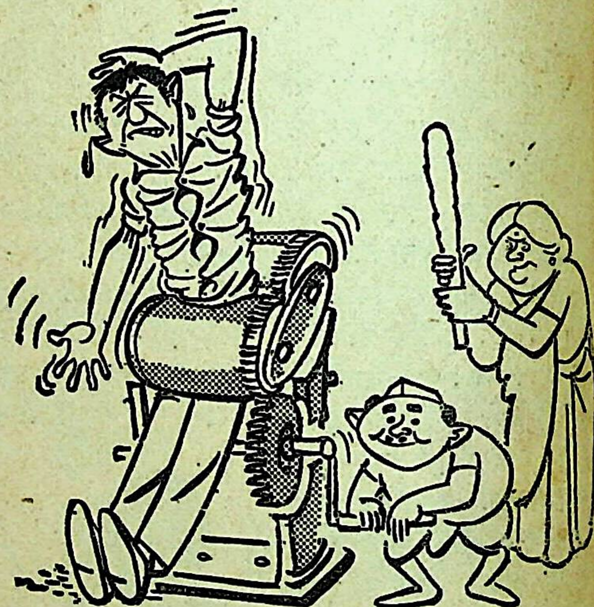
जब परमात्मा सारी दुनिया बना चुका और प्राणियों की आयु निश्चित करने लगा, तब गधा वहां आ पहुंचा और पूछने लगा—"देव, मुझे कितने साल जीना होगा?" परमात्मा ने जवाब दिया—"तीस साल, तू राजी है ?" गधे ने कहा—"नहीं जी, यह तो बहुत लंबा समय है। मेरे कष्टमय जीवन का विचार तो कीजिये ! सुबह से शाम तक मुझे बोझा ढोना पड़ेगा। मुझे अनाज के बोरे चक्की पर ले जाने पड़ेंगे, ताकि दूसरों को रोटी मिले। बदले में मुझे चाबुक और डंडे की फटकार मिलेगी। इतनी लंबी उम्र में से कुछ कम कर दीजिये।" परमात्मा ने दया करके उसे अठारह साल की उम्र बख्श दी।

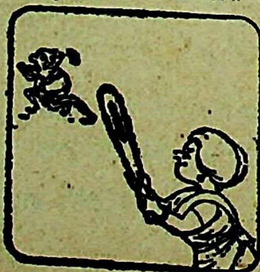
गधा संतुष्ट होकर चला गया और कुत्ता आया। "तुझे कितना जीना है ?" परमात्मा ने पूछा—"गधे को तो तीस साल ज्यादा मालूम हुए, तुझे इतने पसंद हैं ?" कुत्ते ने कहा—"प्रभु, यह तो आपकी मर्जी है। पर सोचिये तो सही कि मुझे कितना दौड़ना पड़ेगा ! मेरी टांगें इतना कैसे सहेंगी और जब भौंकने लायक आवाज नहीं रह जायेगी और काटने के दांत भी गिर जायेंगे, तब मेरे पास एक कोने से दूसरे कोने तक दौड़ते रहने और कुरकुराने के अलावा क्या बाकी रहेगा ?" परमात्मा को उसकी बात ठीक लगी और उसे बारह साल बख्श दिये।

अब बंदर की बारी आयी। परमात्मा ने कहा—"तुझे तो तीस साल की उम्र पसंद होगी ही ? तुझे तो गधे और कुत्ते की तरह काम नहीं करना पड़ेगा और तू तो हमेशा खुश ही रहता है।" बंदर बोला—"प्रभो, आपको ऐसा लगता जरूर है, पर बात कुछ



बाल-साहित्य के अमर स्रष्टा
याकोब और विल्हेल्म ग्रिम





ौर ही है। जब दलिया होता है, तो मेरे पास चम्मच नहीं होता। मुझे हमेशा ऐसी शक्लें बनानी पड़ती हैं कि लोग हंसें। और बदले में वे मुझे एक-आध सेब देते हैं, जो खट्टा निकलता है। इस मजाक के पीछे भी कितना दर्द छिपा रहता है। तीस साल मेरे लिए बहुत ज्यादा हैं।" इस पर परमात्मा को दया आ गयी और उसने बंदर को दस साल दे दिये।

अंत में आदमी की बारी आयी। वह खुश, ताजा और स्वस्थ था। परमात्मा ने उससे कहा—"तू तीस साल जियेगा ? तुझे पसंद है ?" आदमी बोला—"कितना कम समय ! जैसे-तैसे मैं अपना घर बनाऊंगा, चूल्हे में आग जलाऊंगा, पेड़ लगाऊंगा, उनमें फूल-फल लगेंगे, इतने में तो मेरी मौत आ जायेगी। हे प्रभु, मेरी उम्र बढ़ा दो !"

परमात्मा ने कहा—"मैं तुझे गधे के अठारह साल देता हूं !"

"पर यह तो काफी नहीं है।"

"तो मैं तुझे कुत्ते के बारह साल और देता हूं।"

"अब भी बहुत कम है।"

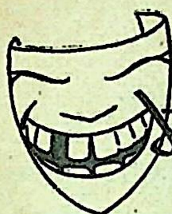
"अच्छा तो तुझे बंदर के दस साल और देता हूं। बस, और ज्यादा कुछ न मिलेगा।"

आदमी चला तो गया, पर उसे संतोष न हुआ। इसी से आदमी सत्तर साल जीता है। उसके पहले तीस साल मानवी वर्ष हैं, ये जल्द ही गुजर जाते हैं। उस अवधि में वह तंदुरुस्त होता है, खुश रहता है, शौक से काम करता है और अपने जीवन से प्रसन्न रहता है। इसके बाद गधे के अठारह वर्ष आते हैं, तब उसके सिर तमाम जिम्मेदारियों का बोझ आ पड़ता है। उसे नून-तेल-लकड़ी की फिक्र करनी पड़ती है, जिससे औरों का पोषण हो। इस सेवा के बदले उसे लातें और गालियां मिलती हैं। फिर कुत्ते के बारह साल आते हैं, तब वह एक कोने में पड़ा कुरकुराता रहता है। खाने को उसके पास दांत नहीं होते। और जब यह समय गुजर जाता है, तब बंदर के दस साल आकर उसका अंत ला देते हैं। उसका दिमाग कमजोर हो जाता है, वह बेवकूफी के काम करने लगता है और बच्चों की हंसी का पात्र बन जाता है।



एडवोकेट जनरल साहब बहस के दौरान 'बार लाइब्रेरी' से लायी हुई एक किताब में से कोई हवाला दे रहे थे। जज साहब ने हवाला खुद देखने के लिए एडवोकेट जनरल से किताब मांगी। और जब वे पन्ने उलट रहे थे, तभी उनकी नजर किताब के पन्ने पर बड़ी शान से चलते हुए एक खटमल पर पड़ी। "यह क्या ?" जज ने ताज्जुब में भरकर पूछा—"आपकी किताब में खटमल ? फिर ओंठों-ही-ओंठों में मुस्कराते हुए कहा—"एडवोकेट जनरल साहब, क्या आपकी बार-लाइब्रेरी में खटमल रहते हैं ?" एडवोकेट जनरल ने बिजली की-सी तेजी से जवाब दिया—"जी हुजूर, और कुछ तो इतने चतुर हैं कि जज की कुर्सी तक पहुंच जाते हैं ?"





मधुरेण समापयेत्

छुट्टी के दिन एक वकील के पास सुबह-सुबह ही एक आदमी बड़ा घबड़ाया-सा आया और बोला—"मेरे शरीर की सारी नसें फटी जा रही हैं, मैं बड़ी बेचैनी अनुभव कर रहा हूं।"

"तो मैं क्या कर सकता हूं ? किसी डाक्टर के पास जाओ, मैं तो वकील हूं।"

"तभी तो आपके पास आया हूं, मुझे तलाक चाहिये।"

* * *

वकील एक गवाह से जिरह कर रहा था। उसने पूछा—"अब यह बताओ, क्या यह सच नहीं है कि तुम्हारे परिवार में खानदानी पागलपन के लक्षण मिलते हैं ?"

गवाह ने बिना पलक झपकाये फौरन उत्तर दिया—"जी हां, जी हां, आप बिलकुल सही फरमा रहे हैं। मेरे दादा अचानक इंजीनियरिंग की पढ़ाई छोड़कर वकील बन बैठे थे।"

* * *

नामी वकील डा० सी० पी० रामस्वामी अय्यर ने हाईकोर्ट के जज का पद अस्वीकार करते हुए कहा—"मैं थोड़ी देर तक खुद बकवास करना ज्यादा पसंद करूंगा, बजाय इसके कि सारे दिन दूसरों की बकवास सुनता रहूं।"

* * *

बचाव-पक्ष का वकील एक ऐसी लड़की से जिरह कर रहा था, जिसकी खूबसूरती की चर्चा सारी अदालत में थी। वकील ने प्रश्न किया—"सोमवार की रात को तुम कहां थीं ?"

लड़की के ओंठों पर एक मीठी-सी मुस्कराहट आयी, फिर धीमे-से बोली—"एक मित्र के साथ मोटर में घूम रही थी।"

"और मंगलवार की रात को ?"

"मोटर चलाना सीख रही थी।"

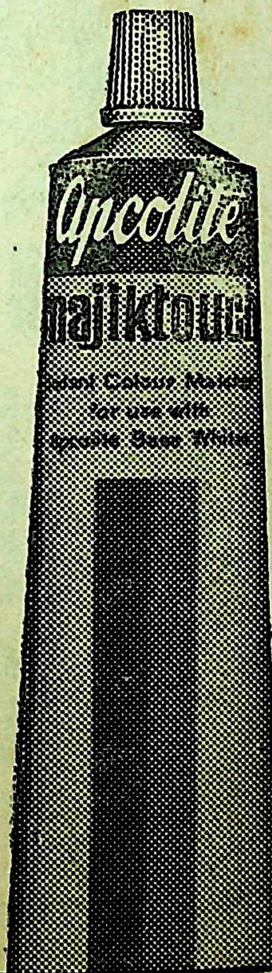
बचाव-पक्ष के वकील ने इस बार कठघरे के करीब जाकर रहस्यमय ढंग से मुस्कराते हुए पूछा—"और आज रात को तुम्हारा क्या प्रोग्राम है ?"

सरकारी वकील अपनी कुर्सी से उछल पड़ा। "हुजूर," उसने प्रतिवाद किया—"मुझे इस सवाल पर आपत्ति है।"

"क्यों ?" जज ने बड़े धैर्य से पूछा।

सरकारी वकील ने सीना फुलाते हुए कहा—"क्योंकि यह सवाल मैं पहले ही पूछ चुका हूं।"





Apcolite

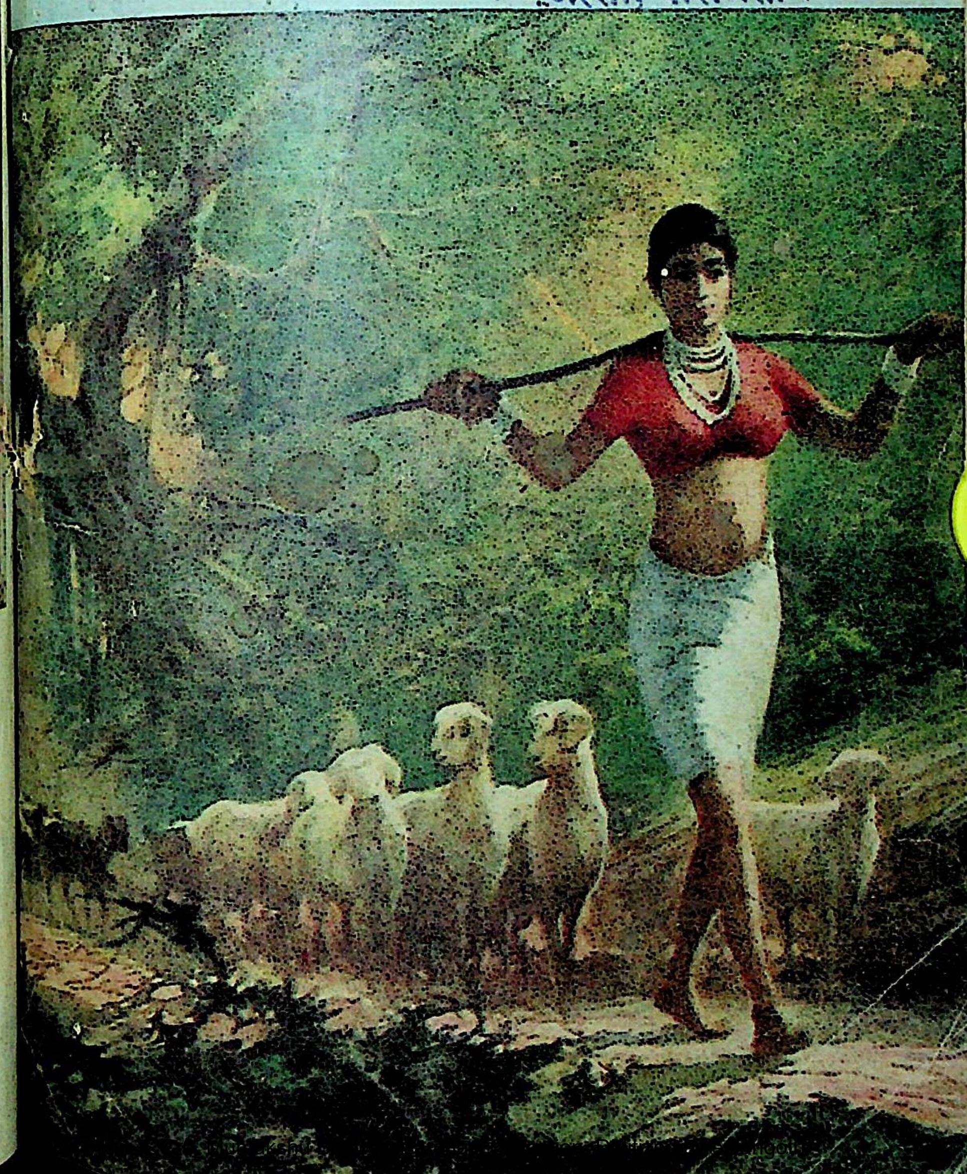




नवनीत

[हिन्दी डाइजेस्ट]

मई १९६९



पालन पोषण सही कीजिए; बच्चों को बोर्नविटा दीजिए!





वढ़ने और पढ़ने वाले वच्चों के लिए हर दिन के भोजन से मिलने वाली शक्ति काफ़ी नहीं होती। वे जितनी शक्ति रोज प्राप्त करते हैं उतनी पढ़ने और खेलकूद में खर्च कर डालते हैं।

वच्चों में वरावर शक्ति वनाए रखने के लिए उन्हें हर दिन वोर्नविटा देना चाहिए। वोर्नविटा से वच्चे स्वस्थ तथा उत्साह पूर्ण रहते हैं।

स्वादिष्ट और पौष्टिक वोर्नविटा कोको, दूध, माल्ट और शक्कर का सन्तुलित मिश्रण है।

शक्ति, उत्साह और स्वाद के लिए— *कॅड़बरिज* वोर्नविटा!

पाठकों से

अक्टूबर १९६६ में हमने विवश होकर 'नवनीत' का मूल्य बढ़ाया था। पिछले दो वर्षों में न्यूजप्रिंट की कीमतें और डाक की दरें इतनी बढ़ गयी हैं कि 'नवनीत' के मूल्य में पुनः थोड़ी वृद्धि करना आवश्यक हो गया है। स्थायी ग्राहकों को भेजी जाने वाली प्रतियों पर डाक का खर्च काफी ज्यादा पड़ता है। इसलिए 'नवनीत' का मूल्य जून १९६९ के अंक से इस प्रकार कर दिया गया है :

एक प्रति का मूल्य	रु० १.३०
एक वर्ष का चंदा	रु० १४.००
दो वर्ष का चंदा	रु० २५.००
तीन वर्ष का चंदा	रु० ३५.००

हमें विश्वास है कि आप इस अत्यल्प मूल्यवृद्धि को सहृदयतापूर्वक स्वीकार करेंगे और 'नवनीत' को अपना स्नेहपूर्ण संरक्षण पूर्ववत् देते रहेंगे।

— संचालक, नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट



संचालक
श्रीगोपाल नेवटिया
प्रधान संपादक
सत्यकाम विद्यालंकार
संपादक
नारायण दत्त
सहकारी
परमेश श्रीवास्तव
गिरिजाशंकर त्रिवेदी
सज्जाकार
ठाकोर राणा
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया
विज्ञापन-व्यवस्थापक
महेंद्र महेता



नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

वर्ष १८ मई १९६९ अंक ५

इस अंक में

१७ सच्चा संत
दादा धर्माधिकारी
१८ अग्नि-परीक्षा
संतदास
२० प्रभु भंजन भवभीर
स्वामी श्रद्धानंद
२१ पुरखों की थाती
महाभारत से
२२ नींव के पत्थर
ड्वाइट आइजनहोवर
२४ आंशिक आत्मनिवेदन
डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
२९ विश्वव्यापी रीडर्स डाइजेस्ट
सुखबीर
३९ स्वरों की सम्राज्ञी
र० शौरिराजन्
४० मधुर मार्ग
सुब्बुलक्ष्मी
४३ पंखों वाले इंस्पेक्टर
येव्गेनी मुस्लिन
४५ परमाणु बम हम भी बना सकते हैं
प्रो० सुब्रह्मण्यन् स्वामी
४८ पत्र और परामर्श
... ...

४९	घर में ही चिड़िया-घर	अजय कुमार
५३	मां !...मेरी मां !	विवेकानंद, अवनींद्रनाथ ठाकुर
५६	कवि और शब्द	उमाशंकर जोशी
५७	खोज-खबर	मलय
६०	बाटिक : विश्व को भारत की देन	ज्योतिरिंद्र राय
६५	विश्व की सबसे तीव्रगामी रेल	हिस्टारिकस
६८	वायुयान के पंखों पर हनीमून	नारायणदत्त श्रीमाली
७४	ग्रह-नक्षत्रों का आराधक	सुधा निवसरकर
७७	अमिट रेखाएं	वर्मा, त्रिवेदी, 'सलिल', दवे
८०	मेरा सबसे बड़ा दर्शक	डैनी के
८१	अंतिम देवता	कमलाकांत हीरक
८२	कितना छोटा ! कितना बड़ा !	फ्रिट्ज जिलेश
८४	क्या पक रहा है विज्ञान की पाकशाला में ?	बसंतकुमार मुखोपाध्याय
८८	हमारे प्राचीन वाद्य	डा० गोकुलचंद्र जैन
९३	झूठ पकड़ने की मशीन	डा० डी० के० गुप्त
९८	रिहर्सल (तमिल कहानी)	र० शौरिराजन्
१०७	लाटरी (इंडोनेशियाई कहानी)	मुख्तार ल्यूबिस
११३	हाथी की जन्मकथा	रामेश बेदी
१२०	बीता युद्ध, जीता एक सैनिक	सर विलियम स्लिम
१३६	कानशान विला की मालकिन	वांग क्वांग्-सी
१५७	परिचित शब्द, अपरिचित अर्थ	डा० शिवनंदन कपूर
१६०	बुखार की गर्मी, ठंडा दिमाग	थियोडोर अर्विन
१६८	सार-सरोवर	... ...

इस अंक का मुखपृष्ठ : एस० एस० शेख

चित्रसज्जा : तेयोकुनी, पिकासो, लिपचिट्स, जैडकाइन, वियर्डस्ले, सर्ले, सेलोन, वनशान, ओके, शेणै, कल्पना, जसानी, मटानी, गोस्वामी।

श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लि०, ३४१ तारदेव, बंबई-३४ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६।४८ खेतवाड़ी बैक रोड, बंबई-४ में मुद्रित।

मई
१९६९

नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

संसार के नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान का प्रतिनिधि मासिक

सच्चा संत

एक राजा ने विज्ञापन किया कि मुझे गुरु चाहिये। योग्यता यह रखी कि जिसका कंपाउंड सबसे बड़ा होगा, वही मेरा गुरु होगा। बहुत-से साधु-संन्यासी, महात्मा आये; बड़े-बड़े ज्ञानी और जटाधारी पधारे। चेहरे देखकर राजा ने उनमें से पांच को पसंद किया और उसने उनसे कहा कि नगर के बाहर जो मैदान है, आप लोग एक सप्ताह में वहां पर अपना-अपना कंपाउंड बनवा लें। जितनी भी ईंट, पत्थर, सीमेंट चाहिये, मिलेगी। जिसका कंपाउंड सबसे बड़ा होगा, वही मेरा गुरु बनेगा। प्रत्येक ने अपनी शक्ति और बुद्धि के अनुसार जमीन नाप ली। तेजी से काम शुरू हो गया। परंतु उनमें से एक चुप-चाप जाकर पेड़ के नीचे बैठ गया। राजा ने पूछा—"क्या आपको कंपाउंड नहीं बनवाना है?" उत्तर मिला—"मेरे कंपाउंड की दीवारें तो वहां हैं, जहां धरती-आकाश मिलते हैं।" राजा ने उसे अपना गुरु बना लिया। जिसका कोई कंपाउंड नहीं, वही सच्चा संत है। —दादा धर्माधिकारी

अग्नि-परीक्षा

संतदास

आलंदी में संत ज्ञानेश्वर की कंदरा में निवृत्तिनाथ, सोपान, ज्ञानेश्वर, मुक्ताबाई, गोरा, चोखामेला और नामदेव आदि संत भक्ति एवं ज्ञान की चर्चा के सुख-संवाद में लीन थे। इनमें संत गोरा सबसे वयोवृद्ध थे। व्यवसाय से वे कुम्हार थे।

चर्चा के बीच ज्ञानेश्वर ने विनोद में गोरा से कहा—"चाचा ! घड़ों की आपको अच्छी पहचान है। सो यहां जितने घड़े जमा हैं, उन्हें जरा टकोरकर परखिये और बताइये कि उनमें कोई कच्चा तो नहीं !"

"अच्छी बात है," कहकर गोरा ने अपनी थापी उठा ली और लगे वहां बैठे सभी संतों के सिर पर एक-एक करके प्रहार करने। सभी के सिर पर काफी जोर का वार पड़ा; पर किसी ने भी चूं तक न की। एक ही अपवाद थे; और वे थे नामदेव। जब उनके सिर पर थापी पड़ी, तो उनके मुंह से 'हाय' निकली और वे किंचित् रोष में बोले—"चाचा, आप यह सब क्या कर रहे हैं ? कितनी जोर से मार दिया आपने मुझे ! क्या अतिथि-सत्कार की यही रीति है ?"

नामदेव के रोष-भरे उद्गार सुनकर सभी संत मुस्करा दिये और मुक्ताबाई बोलीं—"गोरा चाचा, यह घड़ा कच्चा दिखता है!" और उनकी बात पर सबकी हंसी फूट पड़ी।

नामदेव क्रोध में तमतमा उठे और व[illegible] से उठकर सीधे पंढरपुर चले आये और मं[illegible] भगवान पांडुरंग के पास जाकर सारी ब[illegible] कह सुनायी।

भगवान पांडुरंग ने उत्तर दिया—"नाम[illegible] देव ! मुक्ताबाई ने गलत तो नहीं कहा है[illegible]

"गलत नहीं कहा है ?" नामदेव ने [illegible] तुनककर पूछा—"हे देव, मैं आपकी इ[illegible] भक्ति करता हूं कि आप मुझसे बातचीत तक करते हैं। तो भी क्या मैं ईश्वरीय ज्ञा[illegible] के मामले में 'कच्चा घड़ा' ही हूं ?"

"हां नामदेव ! कोई मनुष्य चाहे कि[illegible] ही बड़ा भक्त हो, योगी हो, चाहे [illegible] कितनी ही सिद्धियां प्राप्त हों, चाहे उ[illegible] इष्टदेव उससे प्रत्यक्ष बातें करता हो, [illegible] भी उतने मात्र से वह कभी भी सच्चा ज्ञा[illegible] नहीं सिद्ध होता।"

"क्या कहते हैं प्रभो ! फिर मुझे [illegible] ज्ञान की प्राप्ति के लिए क्या करना होगा[illegible]

"उसके लिए सच्चे गुरु की शरण [illegible] जाकर उसका अनुग्रह प्राप्त करना होगा[illegible]

"अच्छा ! ऐसा सद्गुरु मुझे कहां मि[illegible]

आप ही किसी ऐसे सद्गुरु से मेरी भेंट करा दीजिये !"

"अच्छी बात है। मैं जहां कहूं, वहां तुम जाओ। आंवढया नागनाथ नामक गांव में विसोवा खेचर नाम का एक परम ज्ञानी पुरुष रहता है। जाकर उससे मिलो। वह तुम्हें ज्ञान का अनुभव करायेगा।"

पांडुरंग के कथनानुसार नामदेव आंवढया नागनाथ पहुंचे। पूछ-ताछ करने पर पता चला कि विसोवा खेचर गांव के शिवालय में है। नामदेव वहां गये और एक वहुत आश्चर्यजनक दृश्य देखा।

मंदिर के गर्भगृह में कुष्ठ से गलित देह वाला एक वृद्ध पुरुष सोया पड़ा था। उसने अपने दोनों पैर शिवजी की पिंडी पर रख दिये थे। पैरों में से उसने जूते भी नहीं निकाले थे।



संत नामदेव

"ये हैं मेरे गुरु? ये तो शिवजी की पिंडी पर जूते समेत पैर रखकर मस्त पड़े हैं?" यह सोचते हुए नामदेव आगे बढ़े और उस वृद्ध से बोले—"महाराज! आप शिवजी की पिंडी पर पैर रखकर क्यों सो रहे हैं? पैर दूसरी ओर कर लीजिये न!"

वृद्ध ने आंखें खोलकर नामदेव को देखा और कहा—"अरे भाई, मेरे हाथ-पैर एकदम थक गये हैं। पैरों को हिलाने-डुलाने की भी शक्ति शेष नहीं रह गयी है। तुम्हीं कृपा करके मेरे पैर उठाकर जरा शिव-पिंडी से परे रख दो।"

नामदेव ने उसके कथनानुसार दोनों पैर पकड़कर वगल में कर दिये। पर आश्चर्य! उन्होंने देखा कि वृद्ध के पैरों के नीचे शिवजी की एक और पिंडी है। उन्होंने वृद्ध के पैरों को पुन: सरकाया, तो वहां उन्हें तीसरी पिंडी दृष्टिगोचर हुई। नामदेव ने वड़ी कोशिश की; किंतु वे जहां भी वृद्ध के पैर रखते, नीचे शिवजी की पिंडी दिखाई देती।

नामदेव इससे चौंके और इस प्रकरण की विलक्षणता देखकर उस वृद्ध के चरण पकड़ लिये। वह वृद्ध ही विसोवा खेचर थे। उन्होंने नामदेव पर अनुग्रह किया और उपदेश दिया कि ईश्वर किसी एक सगुण मूर्ति में ही नहीं रहता, वह तो अखिल विश्व में व्याप्त है; समस्त चराचर जगत् ईश्वरस्वरूप है।

इस उपदेश के अनंतर सर्वभूत परमेश्वरमय है, यह भाव नामदेव की रग-रग में समा गया। एक दिन नामदेव भोजन कर रहे थे। इतने में एक कुत्ता आया और उनकी पत्तल में से रोटी लेकर भाग निकला। पर नामदेव को तो कुत्ता कुत्ता नहीं, 'ईश्वर' दिख रहा था। वे घी की कटोरी हाथ में लिये

वह चिल्लाते हुए उसके पीछे दौड़े–"अरे, वह सूखी रोटी तुम कैसे खाओगे? प्रभो, यह घी लो और इसमें डूबोकर खाओ!"

इस प्रकार नामदेव पूर्णावस्था को प्राप्त संत बने। विट्ठल की भक्ति वे पूर्ववत् करते रहे; परंतु विट्ठल केवल एक मूर्ति में ही सीमित नहीं है, सकल विश्व विट्ठल का व्यक्त रूप है, यह भाव उनके रोम-रोम से फूटने लगा। सगुण मूर्ति की उनकी प्रीति इतनी व्यापक और अथाह बन गयी कि समस्त विश्व को प्रेमालिंगन में बांधने लगे।

नामदेव ने बाद में भारत-यात्रा की। भ्रमण करते-करते वे पंजाब गये और वहां लगभग बीस वर्ष रहे। सिक्ख धर्म पर उनका काफी प्रभाव पड़ा। 'गुरु ग्रंथसाहब' में उनके ६१ पद्य हैं। सिक्खों में एक 'नामदेव सिक्ख' संप्रदाय है, जिसके अनुयायी अपने को 'नामवंसी' कहते हैं। अनुवाद : त्रिवे



प्रभु भंजन भवभीर

पिताजी दिन-भर पुलिस अफसर का कर्तव्य-पालन करते हुए अपराधियों को गिर-फ्तार करते और पुलिस डायरी तैयार करने के पीछे, रात को अपराधी और फरि-यादी, थानेदार और जमादार, सिपाही और खलासी सबको एक आसन पर बैठाकर तुलसी रामायण की कथा सुनाते थे। और कभी-कभी यह कथा मुकद्दमा साफ करने का साधन भी बन जाती थी।

एक रात पिताजी बलिया में अपने नित्य-नियम के अनुसार रामायण की कथा कह रहे थे। मेरी उपस्थिति में, पुलिस वालों और मुहल्ले वालों के अतिरिक्त एक बड़े मुकद्दमे की आसामियां भी बैठी हुई थीं। प्रसंग भगवान रामचंद्रजी की क्षमा का छिड़ गया और पिताजी ने सिद्ध किया कि यदि मनुष्य अपने पाप को स्वीकार कर ले, तो उससे बढ़कर कोई प्रायश्चित्त नहीं। भगवान शरणागत को कभी नहीं त्यागते। अकस्मात्, पकड़े हुए अभियुक्तों में से एक लंबा, दृढ़ांग पुरुष दोनों हाथ बांध, पिताजी के सामने यह कहता हुआ साष्टांग लेट गया :

स्रवन सुजन सुन आयो प्रभु भंजन भवभीर।
त्राहि-त्राहि आरत-हरन सरन-सुखद रघुबीर॥

पिताजी ने खड़े होकर उसे भूमि पर से उठा लिया और कहा–"मुझ मनुष्य के सिर पाप क्यों चढ़ाते हो!" उत्तर मिला–"भगवान, 'रामतें अधिक राम कर दासा।' मैं आपकी शरण में आया हूं। सारी कहानी सुन लो।" उसने फिर चोरी और खून दोनों को मान लिया और जब उसका 'इकबाल' लिखकर उसके हस्ताक्षर कराये गये, उसके मुख की कांति वर्णन की सीमा को उल्लंघन कर गयी थी।

—स्वामी भजना



पुरखों की थाती

वरं कूपशताद् वापी वरं वापीशतात् ऋतुः ।
वरं ऋतुशतात् पुत्रः सत्यं पुत्रशताद् वरम् ।।

—सौ कुंओं से एक बावड़ी अच्छी; सौ बावड़ियों से एक यज्ञ अच्छा; सौ यज्ञों से एक पुत्र अच्छा; और सौ पुत्रों से सत्य अच्छा ।

अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ।।

—तराजू के एक पलड़े पर हजार अश्वमेधों को और दूसरे पलड़े पर सत्य को रखकर तोला जाये, तो सत्य हजार अश्वमेधों से भी भारी निकलेगा ।

सर्ववेदाधिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ।
सत्यं च वचनं राजन् समं वा स्यात् न वा समम् ।।

—समस्त वेदों का अध्ययन और समस्त पुण्यतीर्थों का स्नान, एक सत्य-वचन के बराबर है, या शायद उसके भी बराबर नहीं है ।

नास्ति सत्यसमो धर्मो न सत्याद् विद्यते परम् ।
नहि तीव्रवरं किञ्चिद् अनृतादिह विद्यते ।।

—सत्य के बराबर धर्म नहीं, सत्य से बढ़कर श्रेष्ठ कुछ नहीं; और असत्य से बढ़कर घोर कुछ नहीं ।

राजन् सत्यं परं ब्रह्म सत्यं च समयः परः ।
मा त्याक्षीः समयं राजन् सत्यं संगतमस्तु ते ।।

—हे राजन्, सत्य तो परब्रह्म है, सत्य शुभ घड़ी है । शुभ घड़ी को मत छोड़ो । सत्य तुम्हारा साथी हो ।

—महाभारत के शकुंतलोपाख्यान से



नींव के पत्थर

स्वर्गीय ड्वाइट डी० आइजनहोवर

व्यक्ति का कर्म-जीवन मानो एक मकान है—आजीवन रहने का घर, जो उसके कर्मों और वचनों, भूलों और उपलब्धियों से निरंतर वर्षों तक वनता रहता है। फिर एक दिन ऐसा आता है, जब आखिरी पत्थर वड़ी मजवूती से जड़ दिया जाता है और उस घर का मालिक चिर-विश्राम के लिए वहां लेट जाता है।

यह मकान कच्चा नहीं, वल्कि मजवूत हो; तुच्छ नहीं, वल्कि भव्य हो; निकम्मा नहीं, वल्कि उपयोगी हो—इसके लिए आवश्यक है कि इसकी नींव पक्की हो और ठोस जमीन पर हो।

मुझे वाइवल का वह दो घरों वाला दृष्टांत याद आ जाता है। एक घर वालू की नींव पर वना था, दूसरा घर मजवूत चट्टान पर। जव इन घरों को आंधी और वाढ़ के थपेड़े लगे, तो वालू की नींव पर वना घर तो ढह और वह गया, मगर चट्टान की नींव पर वना घर तूफान और लहरों के थपेड़ों के वीच भी डटा रहा।

जीवन की चट्टानी नींव की रीढ़ है चरित्र—एक ऐसा शव्द, जिसकी परिभाषा करना वहुत कठिन है।

चरित्र के कुछ तत्त्वों का स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न मैं करूंगा :

पहली चीज है—सत्यनिष्ठा, और उसे स्थायी और उजागर रखने की तत्परता। मई

नींव का दूसरा पत्थर है—महत्त्वाकांक्षा । और मैं महत्त्वाकांक्षा की तुलना भोजन में पड़े नमक से करता हूं । नमक बहुत कम हुआ, तो भोजन में आनंद और स्वाद नहीं आता; बहुत ज्यादा पड़ गया, तो भोजन गले नहीं उतरता ।

फिर आती है—परिश्रम करने की क्षमता । और इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि अपने काम से प्यार करने वाला और अपने कर्तव्य का पालन करने वाला व्यक्ति सुखी और रचनात्मक दृष्टि वाला जीव होता है ।

नींव का एक और पत्थर है—वफादारी । इसके बिना कोई गहरी मित्रता नहीं पा सकता । और अगर जीवन का घर मित्रों से सूना हो, तो वह घर नहीं, महज दरो-दीवार का ढांचा होगा । राष्ट्र के प्रति वफादारी ही देशभक्ति है ।

और अगली चीज है—समझदारी, अर्थात् तथ्यों को सही परिप्रेक्ष्य में देखने और संकट के बीच भी शांतिपूर्वक तथ्यों का सही मूल्यांकन करने की क्षमता ।

और भी कई छोटे-बड़े पत्थर चरित्र की नींव में हैं, जिनका आपस में गहरा संबंध है, जैसे—नैतिक बुद्धि, शराफत और आत्मसम्मान ।

और अंतत: आवश्यक है—नैतिक साहस, अर्थात् जिसे आप अपने अध्ययन, चिंतन और व्यावहारिक बुद्धि के आधार पर उचित मान चुके हों, उसके लिए अड़ने और लड़ने की तत्परता । नैतिक साहस में आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास तो शामिल हैं; पर हेकड़ी, बहुमन्यता और दंभ नहीं ।

अनुवाद : प० श्रीवास्तव



मास-भविष्य

इस्रायल आज चीन के अलावा सबसे अधिक युद्धोत्सुक देश है; पर उसने दो जनरलों की उपेक्षा करके ७१ वर्षीया **गोल्डा मेयर** को प्रधान मंत्री चुना है । विश्व की इस विशिष्ट राजनीतिज्ञ नारी का परिचय जून ६९ के नवनीत में पढ़िये ।

महाकवि भास के लघु नाटक **मध्यम-व्यायोग** का कथासार तथा अर्विन शा की सशक्त व्यंग्यकथा **'हरे रंग की स्त्री'** भी इस अंक में पढ़ें ।

क्या भूकंपों का नदी-बांधों से कोई संबंध है ? **'भूकंप और बांध'** में इस विषय की महत्वपूर्ण जानकारी दी गयी है ।

अन्य विशिष्ट लेख : सुमेरु-दर्शन—स्वामी रामतीर्थ; कविता का प्रथम उन्मेष—पाब्लो नेरूदा; कूटनीति के बिना ही—श्रीमन्नारायण; भारत के असली अल्पसंख्यक—श्रीप्रकाश; चुनौतियों को चुनौती—गोविंद रत्नाकर; लड़ाई के बीच पढ़ाई—एरिक एरिक्सन ।



आंशिक आत्मनिवेदन

डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

किसी भी आदमी की रामकहानी, अगर वह सच्चाई से लिखी गयी हो,तो उसमें दूसरों कों अवश्य दिलचस्पी होती है। रंग-मंच चाहे कितना छोटा हो, भूमिका चाहे कितनी नगण्य हो, फिर भी व्यक्ति के भाग्य को गढ़ने वाले संयोगों और परिस्थितियों का तथा मानवीय आकांक्षाओं और आदर्शों का घात-प्रतिघात साथी मानवों को अवश्य ही कुछ-न-कुछ दिलचस्प लगता है।

परंतु आत्मवृत्तात्मक लेखन सबसे नाजुक लेखन होता है। हम अपने कर्म और कुकर्म सबके सामने स्वीकार नहीं करना चाहते। हम अपनी विफलताओं की अपेक्षा अपनी सफलताएं, अपनी हानि से बढ़कर उपलब्धियां दूसरों को दिखाना पसंद करते हैं।

रावर्ट ब्राउनिंग ने कहा है कि क्षुद्र-से-क्षुद्र मानव के जीवन के भी दो पहलू होते हैं—एक, दुनिया को दिखाने के लिए; दूसरा, अपनी प्रेयसी के सामने प्रस्तुत करने के लिए। हमारे दो मुखड़े होते हैं—एक सामान्य जीवन में, दूसरा दुनिया के लिए अपने बारे में लिखते समय। हमारे बारे में दूसरों की जो कल्पना है, उसके सहारे हम एक काल्पनिक जीवन जीना चाहते हैं। जो कुछ हम नहीं हैं, वैसा अपने को दिखाने का प्रयत्न हम करते हैं।

* * *

कुछ लोग बहुत जल्दी ही निर्णय कर लेते हैं कि उन्हें क्या बनना है और उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए जीवन के आरंभिक वर्षों से ही आयोजन शुरू कर देते हैं। वे यह पता लगा लेते हैं कि जीवन में वे क्या करना चाहते हैं, और पूरी शक्ति लगाकर उसके लिए प्रयत्न करते हैं। परंतु मैं यह नहीं कह सकता कि दर्शनशास्त्र का अध्येता मैं इसलिए बना कि बचपन से ही मैंने दर्शन की आराधना का व्रत ले लिया था। ऐसी बात नहीं कि मैं दर्शनशास्त्री बने बिना नहीं रह सकता था।

डिल्दी ने कहा है—"जीवन एक रहस्य-मई

मय पट है, संयोग, भाग्य और चरित्र के तंतुओं से बुना हुआ पट।" दर्शनशास्त्र मेरे अध्ययन का विषय जो बना—क्या यह मेरे भाग्य का अंग था? क्या यह मेरे चरित्र का परिणाम था? या निरा संयोग था?

जब सत्रह साल की उम्र में मैं मद्रास क्रिश्चियन कालेज का छात्र था और इसका निर्णय नहीं कर पा रहा था कि गणित, भौतिकी, जीवशास्त्र, दर्शन और इतिहास इन पांच ऐच्छिक विषयों में से कौन-सा चुनूं, तो मेरे एक रिश्तेदार ने, जो उसी साल स्नातक हुए थे, दर्शनशास्त्र की अपनी पाठ्य पुस्तकें मुझे दे दीं—जी० एफ० स्टाउट की मैन्युअल आफ साइकोलाजी, जे० वेल्टन की 'लाजिक' (दो खंड) और जे० एस० मैकेन्जी की 'मैन्युअल आफ एथिक्स'। और इस घटना ने मेरी भावी अभिरुचि का निर्णय कर दिया।

यों देखें तो यह निरा संयोग था। लेकिन जब मैं संयोगों की उस शृंखला पर दृष्टि डालता हूं, जिसने मेरे जीवन को गढ़ा और संवारा है, तो मुझे विश्वास होने लगता है कि जीवन में जो कुछ आपाततः दिखाई देता है, उससे अधिक गहरी कोई चीज अवश्य है। जीवन भौतिक कार्य-कारणों की शृंखला मात्र नहीं है। संयोग वास्तविकता की बाहरी सतह तो प्रतीत होती है; लेकिन भीतर गहराई में दूसरी शक्तियां सक्रिय रहती हैं। यदि ब्रह्मांड सप्राण है, यदि वह आत्मिक रूप से जीवित है, तो कोई भी वस्तु नितांत आकस्मिक नहीं हो सकती।



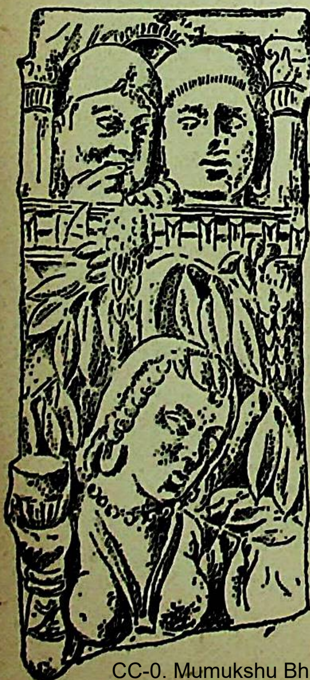
जब दर्शनशास्त्र का अध्ययन मेरे जीवन का कार्य बन गया, तो मैं ऐसे क्षेत्र में पहुंच गया, जिसने इन सब वर्षों में मुझे बौद्धिक और आत्मिक पोषण दिया है। दार्शनिक की मेरी कल्पना कुछ अंशों में मार्क्स की कल्पना के समान है। मार्क्स ने अपने सुविख्यात 'थीसिस आन फ्यूएरबाख' में घोषित किया है कि अब तक दर्शनशास्त्र जीवन की व्याख्या करने में लगा रहा; अब समय आ गया है कि वह जीवन को बदलने में लग जाये। दर्शनशास्त्र सृजनात्मक कार्य करने के लिए प्रतिबद्ध है। यद्यपि एक दृष्टि से दर्शनशास्त्र आत्मा की एकाकी तीर्थयात्रा है; किंतु दूसरे अर्थ में वह जीवन का स्वभावसिद्ध कार्य भी है।

जीवन के प्रथम आठ वर्ष (१८८८–१८९६) मैंने दक्षिण भारत के एक छोटे-से कस्बे तिरुत्तणी में बिताये, जो एक प्रमुख तीर्थस्थान है। मेरे माता-पिता परंपरागत अर्थों में धार्मिक व्यक्ति थे। बारह वर्ष तक

मेरी पढ़ाई ईसाई मिशनरी स्कूलों में हुई। इस प्रकार मेरा पालन-पोषण ऐसे वातावरण में हुआ, जिसमें अदृश्य सत्ता एक जीवंत वास्तविकता थी। विज्ञान अथवा इतिहास के बजाय धर्म के नुक्ते से दर्शन के प्रश्नों को देखने की मेरी प्रवृत्ति इसी आरंभिक शिक्षा के कारण बनी। दर्शनशास्त्र को मैं तर्क और ज्ञान-मीमांसा तक ही सीमित नहीं रख पाया।

जो खतरा शेष सब पेशों में है, वह दर्शनशास्त्र में भी है। और वह खतरा यह है कि आलस्य और जड़ता के कारण, बंधे-बंधाये ढर्रे पर सोचने के कारण, हम समस्याओं के बने-बनाये समाधानों को स्वीकार कर लेते हैं और अपना काम यंत्रवत् करने लगते हैं। जब हम बने-बनाये सिद्धांतों को अपना लेते हैं और किसी एक चिंतन-प्रणाली को सर्वथा परिपूर्ण मानने लगते हैं, तो सच्ची जिज्ञासा-वृत्ति खो बैठते हैं। प्रचलित मान्यताओं के प्रति बेचैनी की भावना के बिना सच्ची दार्शनिक अवस्था हो ही नहीं सकती। यदि हम संदेह करने की शक्ति गंवा बैठे हैं, तो हम कभी दार्शनिक चिंतन की मनःस्थिति में पहुंच ही नहीं सकते। ह्वाइटहेड का यह कथन कि "जीवन, ब्रह्मांड की पुनरावर्तनशील यांत्रिकता के विरुद्ध आक्रमण है," दार्शनिक जीवन के बारे में भी सत्य है।

आनंदोत्सव
भरहुत का शिल्प



जब हम किसी भी तत्त्वज्ञानी को पूर्ण मान लेते हैं और उसकी पुस्तक को वेदवत् मानते हैं, उसके उपदेशों को सिद्धांत और भाष्य समेत परिपूर्ण धर्म मान लेते हैं, तो इस तरह हम एक संप्रदाय की आस्तिक-मंडली के सदस्य तो हो जाते हैं, मगर उस गुरु के विचारों का विवेचनात्मक ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक खुला दिमाग हमारे पास नहीं रह जाता।

सच्चे गुरु हमें नयी-नयी परिस्थितियों में स्वतंत्रतापूर्वक सोचने में सहायता देते हैं। यदि हम प्रश्न नहीं उठाते, आलोचना नहीं करते, तो हम अपने गुरुओं के योग्य शिष्य नहीं रह जायेंगे। सच्चा गुरु भगवद्गीता के श्रीकृष्ण की भांति होता है, जो अर्जुन को स्वयं सोचने और अपनी इच्छा के अनुसार चलने की सलाह देते हैं—यथा इच्छसि तथा कुरु।

तथापि मानव के मन को ऐसे सनातन सत्यों की कामना रहती है, जो अटल नियमों पर आश्रित हों और जिन पर विवाद करने और जिन्हें बदलने या सुधारने की आवश्यकता नहीं हो। हमारी यह प्रबल कामना होती है कि जीवन का कोई अचल नियम हो और

स्वर्ग का कोई पक्का मार्गदर्शक हो। संशय से ग्रस्त, थके-हारे मानस को आधिकारिक धर्म राहत और सोद्देश्यता की अनुभूति देता है। लेकिन आप्तवचन के प्रति अत्यंत भक्तिभाव रखने वालों से हम बौद्धिक आलोचना की आशा नहीं कर सकते।

यों भी मानव-जीवन में परंपरा का ठीक वही स्थान है, जो पशु-जीवन में सहजवृत्ति (इंस्टिंक्ट) का है। हम सभी अपनी परंपराओं में जनमे हैं। कुछ अंश तक परंपराएं अपरिहार्य हैं। अपने सांस्कृतिक पुरखों को चुनने की हमें उतनी ही कम स्वतंत्रता है, जितनी कि अपने शारीरिक पुरखों को चुनने की। जब तक आदमी परंपरा के अनुसार जीता है और सहज ही उसका पालन करता है, वह आस्था का, आस्तिकता का जीवन जीता है। दर्शन की आवश्यकता तो तब होती है, जब परंपरा में आस्था डिग जाये।

परंपरा के विषय में अमरीकी अधिक सौभाग्यशाली हैं; क्योंकि न उनके पुरखे हैं, न प्राचीन पुण्यभूमि है। गेटे ने एक छोटी कविता 'अमेरिका डू हैस्ट एस बेसर' में कहा है-"हमारे बूढ़े महाद्वीप की अपेक्षा तुम अधिक भाग्यशाली हो। तुम्हारे यहां टूटे महल नहीं है; खोखली स्मृतियां और व्यर्थ के झगड़े तुम्हें नहीं सताते।" लेकिन भारत की परंपरा बड़ी ही लंबी है; और मैं उसी में पला। इसलिए उसके प्रति शुरू से ही मेरा पक्षपात था।

ईसाई मिशनरी संस्थाओं के अध्यापकों



गांधीजी के साथ

ने इस श्रद्धा से मुझे मुक्त कराकर उस प्राथमिक स्थिति में पहुंचा दिया, जिसमें समस्त दर्शन का जन्म होता है। ये लोग दर्शन के अध्यापक, टीकाकार, व्याख्याकार थे और ईसाई चिंतन और जीवन के पक्षधर थे, लेकिन सच्चे अर्थों में सत्य-शोधक नहीं थे। भारतीय चिंतन की आलोचनाओं द्वारा उन्होंने मेरी श्रद्धा को विचलित कर दिया और परंपरा के जिन खंभों का मैंने सहारा ले रखा था, उन्हें हिला दिया।

यों तो हिन्दू धर्म जिन सैद्धांतिक आग्रहों से विमुक्त अनुभूतियों को और जिस मानसिक अनुशासन को सत्य-शोधन का अनिवार्य साधन मानता है, वे कठोर तर्कशुद्ध रीति से प्रतिपादित किये गये हैं; और हिन्दू धर्म के गहरे अंतर्दर्शन, आधारभूत ध्येय और चिंतन-पद्धति आज भी हमारे लिए अर्थवान् हैं। फिर भी अपने सुदीर्घ इतिहास में हिन्दू धर्म ने अनेक मनमाने और कोरे काल्पनिक सिद्धांत बटोर लिये हैं, और हिन्दू धर्म आत्मा के स्वतंत्र जीवन को अवरुद्ध

करने वाले बंधनों से भरा पड़ा है।

यों भी हम एक ऐसे युग में जी रहे हैं, जिसमें हम समस्त विश्व के चिंतन के उत्तराधिकारी बन गये हैं। धर्मों एवं दर्शनों के बारे में हमने पर्याप्त ऐतिहासिक ज्ञान जुटा लिया है। हम जानते हैं कि हमसे पहले भी अनगिनत जातियों ने विश्व की प्रकृति और अस्तित्व के स्वरूप के विषय में सवाल उठाये हैं और ऐसे उत्तर दिये हैं, जिन्हें वे अंतिम और निरपेक्ष मानती थीं। यदि हम ईमानदार हैं, तो ऐसी निरपेक्षताओं की बहुलता ही हमें यह नहीं मानने देगी कि केवल हमारी निरपेक्षता सत्य है, शेष सब असत्य हैं। इन परस्पर-विरोधी और स्पर्धाशील निरपेक्षताओं से पाला पड़ने पर हम या तो परंपरावादी बन जाते हैं, या संदेहवादी। इस तरह मैं हिन्दू धर्म का विवेचनात्मक अध्ययन करने के लिए विवश हो गया।

* * *

मैंने अपना पेशेवर जीवन अप्रैल १९०९ में मद्रास के प्रेसिडेंसी कालेज में दर्शन के अध्यापक के रूप में आरंभ किया। अगले सात वर्ष में वहां काम करता रहा। इस अरसे में मैंने हिन्दू धर्म के प्रमाण-ग्रंथ उपनिषद्, भगवद्गीता एवं ब्रह्मसूत्र पर शंकर, रामानुज, मध्व और निंबार्क आदि प्रधान आचार्यों के भाष्य, बुद्ध के संवाद तथा हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्मों के शास्त्र-ग्रंथ पढ़े। पाश्चात्य विचारकों में से प्लेटो, प्लाटिनस और कांट तथा ब्रैडली एवं बर्गसां के लेखन ने मुझे बहुत प्रभावित किया।

अपने समय के महान भारतीय रवींद्रनाथ और गांधी के साथ लगभग तीस वर्ष तक मेरे बहुत मैत्रीपूर्ण संबंध रहे; और मैं जानता हूं कि उनका मेरे लिए कितना जबर्दस्त महत्त्व था।

यद्यपि मैं प्राचीन और अर्वाचीन, पौरस्त्य और पाश्चात्य चिंतकों के विचारों का प्रशंसक हूं, तथापि मैं नहीं कह सकता कि मैं किसी का पूर्ण अनुयायी हूं और किसी के उपदेशों को पूर्णतया स्वीकार करता हूं। मेरा यह आशय नहीं कि मैंने दूसरों से सीखने से इन्कार किया है, या दूसरों से मैं प्रभावित नहीं हुआ हूं। जिन्हें मैंने पढ़ा है, उनकी बुद्धि ने मुझे बहुत प्रेरित किया है। परंतु मेरा चिंतन किसी परंपरागत पद्धति का अनुगामी नहीं है। क्योंकि मेरे चिंतन का स्रोत दूसरा ही था और वह मेरे अनुभवों की उपज था, जो कि कोरे स्वाध्याय और अध्ययन से प्राप्त होने वाली वस्तु से भिन्न है। वह मेरे अपने आत्मिक अनुभव से उपजा है, निरी तर्कप्रतिष्ठित उपपत्तियों से नहीं।

* * *

प्रत्येक व्याख्याकार अपनी पीढ़ी को रुचता है। उसकी बुद्धिमत्ता इसी में है कि वह आने वाली पीढ़ी को अपना व्याख्याकार चुनने के लिए छोड़ दे। यदि वह अपनी पीढ़ी में चिंतन को जीवंत रखता है, कुछ अंश तक अपने परिवर्तियों की सहायता करता है, और अपने युग की आकांक्षाओं का यथाशक्ति उत्तर देने का यत्न करता है, तो वह कृतकृत्य है।



महाद्वीपों को व्याप लेने वाली एक वामन पत्रिका

विश्वव्यापी रीडर्स डाइजेस्ट

'रीडर्स डाइजेस्ट' आज संसार में सबसे ज्यादा छपने वाली पत्रिका है, जिसकी हर महीने चौदह भाषाओं में, २ करोड़ ८० लाख प्रतियां छपती हैं। इसके लगभग तीस संस्करण निकलते हैं, जिनमें एक-एक संस्करण स्कूल और कालेज के विद्यार्थियों के लिए होता है, और पांच संस्करण नेत्रहीनों के लिए पांच भाषाओं में 'ब्रेल' पद्धति में छपे होते हैं। पत्रिका सौ से ज्यादा देशों में जाती है, जिनमें से बीस देशों में यह सबसे ज्यादा विकने वाली पत्रिका मानी जाती है।

इस छोटी-सी पुस्तकाकार पत्रिका ने पत्रिका-प्रकाशन के इतिहास में करिश्मा कर दिखाया है। आखिर इतनी बड़ी सफलता का कारण क्या है? क्यों यह इतनी लोकप्रिय हुई है?

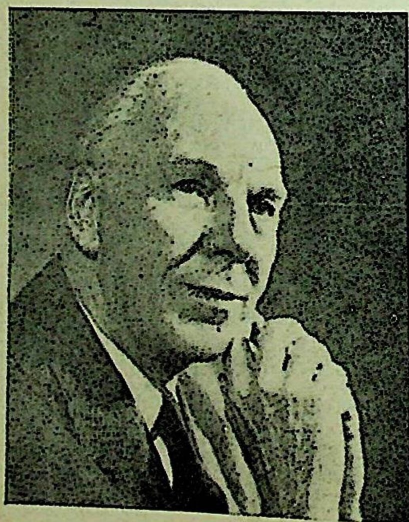
'रीडर्स डाइजेस्ट' डीविट वैलेस नामक व्यक्ति के दिमाग का करिश्मा है, जिसने सन १९२२ में किसी से चार हजार डालर उधार लेकर इसका प्रकाशन शुरू किया था। 'डाइजेस्ट' निकालना वैलेस की बिलकुल नयी सूझ थी। लेकिन उसकी सबसे बड़ी प्रतिभा इस बात में थी कि वह सामान्य लोगों की पसंद से पूरी तरह परिचित था। उसे पता था कि लोग कैसी चीजें पढ़ने में

यह लेख कारमन कागल के लेख 'दि जायंट लिटल मैगजीन (स्पैन, फरवरी ६९) तथा जेम्स प्लेस्टेड वुड की पुस्तक 'आफ लास्टिंग इंटेरेस्ट' के आधार पर श्री सुखबीर ने तैयार किया है।

दिलचस्पी रखते हैं। उसने औसत पाठक को सामने रखकर पत्रिका निकालने के बारे में सोचा था।

आज भी 'डाइजेस्ट' के संपादकीय विभाग के कर्मचारी कहा करते हैं कि जो रचना वैलेस को पसंद आती है, वह दो करोड़ अस्सी लाख पाठकों को भी पसंद आयेगी। पत्रिका की इतनी बड़ी लोकप्रियता का रहस्य उस संपादकीय दृष्टिकोण में है, जिसमें आज भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

वर्षों से कुछ विषय पत्रिका में एक ही रूप में चलते आ रहे हैं—मानवीय दिलचस्पी वाले विषय—स्त्रियां, हास्य, प्रेरणा, साहसिक कारनामे, विज्ञान, नैतिकता, राजनीति, आत्मसुधार। वैलेस ने पहले ही अंक में यह घोषणा की थी कि 'डाइजेस्ट' में ऐसी रचनाएं नहीं छापी जायेंगी, जो थोड़े-से ही पाठकों को अपील करती हैं।



संस्थापक डीविट वैलेस

संपादकीय नीति के अतिरिक्त 'डाइजेस्ट' की दूसरी चीजों में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। न उसका आकार बदला है, न रंग-रूप, और न पहले पैंतीस वर्षों में उसकी कीमत ही घटायी या बढ़ायी गयी। इसका खास फायदा हुआ है। पाठकों को वह अपनी जानी-पहचानी पत्रिका लगती रही है। नया अंक आने पर पाठकों को पता होता है कि कौन-सा विषय कहां मिलेगा। 'डाइजेस्ट' पढ़ने की उन्हें जैसे आदत पड़ गयी है; और आदतें आसानी से छूटती नहीं हैं।

डीविट वैलेस की एक बुनियादी सूझ यह थी कि आज तेज रफ्तार वाली दुनिया में लोग लंबे-चौड़े लेख पढ़ना नहीं चाहते। किसी विषय पर वे संक्षेप में जरूरी जानकारी पा लेना चाहते हैं। सो उसने शुरू में खुद अपने हाथ से लेखों की काट-छांट करके उन्हें संक्षिप्त रूप में लिखा। बाद में, रचनाओं का संक्षेप करना 'रीडर्स डाइजेस्ट' की विशेष कला बन गया।

यह काम इतनी मेहनत, सूक्ष्मता और कुशलता से किया जाता है कि एच० एल० मेन्केन जैसे कड़ी नजर रखने वाले अमरीकी आलोचक ने कहा है—"अभी तक मैंने 'डाइजेस्ट' में कोई ऐसा लेख नहीं देखा है, जो संक्षिप्त करने के कारण खराब हो गया हो, पर मैं ऐसे दर्जनों लेख बता सकता हूं, जो संक्षिप्त होने से ही पहले की अपेक्षा कहीं

अधिक सुंदर बन गये !"

रचना को संक्षिप्त करते समय यह भी देखा जाता है कि उसकी भाषा इतनी स्पष्ट और चुस्त हो कि उसे साधारण पाठक भी आसानी से समझ ले। न वाक्य बहुत लंबे हों, न पैराग्राफ बहुत बड़े हों। पढ़ते समय पाठक को दिमाग पर जोर न डालना पड़े। लेखों के शीर्षक छोटे, चुस्त और दिलचस्प हों, और उनके नीचे लेख के विषय में जो एक-दो पंक्तियों की भूमिका दी जाये, वह इतनी औत्सुक्यवर्धक हो कि पाठक लेख पढ़ने के लिए लालायित हो उठे।

सन १९३३ से वैलेस ने 'डाइजेस्ट' में मौलिक लेख भी देने शुरू किये, जो लेखकों से विशेष रूप से लिखवाये जाते थे। इस तरह वह अपने मनपसंद विषयों पर ऐसे लेख तैयार करवा कर पाठकों तक पहुंचाता था, जो आम पत्रिकाओं में नहीं मिलते थे। अगले साल से प्रत्येक अंक में एक पुस्तक का सार-संक्षेप देना शुरू किया गया, जिसे पाठकों ने बहुत पसंद किया। इस प्रकार संसार की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें संक्षिप्त रूप में पाठकों तक पहुंचने लगीं।

इन्हीं दिनों वैलेस को एक नयी बात सूझी। वह मौलिक लेख लिखवाकर उन्हें अपनी ओर से पहले दूसरी पत्रिकाओं को भेजता, और उनमें छप जाने के बाद उन्हें संक्षिप्त करके 'डाइजेस्ट' में छापता। आज 'रीडर्स डाइजेस्ट' में छपने वाली लगभग सत्तर प्रतिशत रचनाएं इसी प्रकार की होती हैं।

सन १९३० में 'डाइजेस्ट' में हास्य और अन्य दिलचस्प विषयों के स्थायी स्तंभों का समावेश किया गया। इन स्तंभों के लिए खास तौर पर पाठकों से छोटी-छोटी रचनाएं मांगी जाने लगीं। इससे पत्रिका की लोकप्रियता और बढ़ी। शुरू में ऐसी प्रत्येक रचना पर दस डालर पारिश्रमिक दिया जाता था, जो कुछ अरसे के बाद सौ डालर कर दिया गया। लंबी रचनाओं पर साढ़े सात हजार डालर तक दिये जाते हैं। हर महीने लगभग पैंतीस हजार छोटी-बड़ी रचनाएं पाठकों की ओर से 'डाइजेस्ट' को प्राप्त होती हैं।

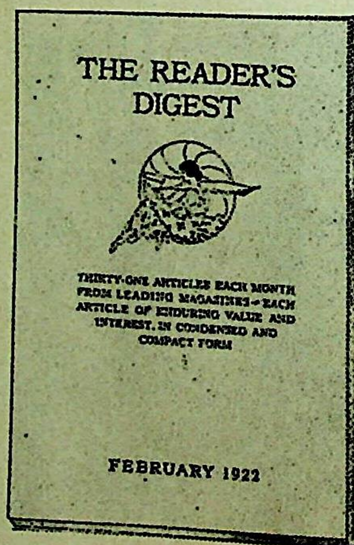
'डाइजेस्ट' की लोकप्रियता दिनों-दिन बढ़ने का एक कारण शायद यह भी है कि जीवन के बारे में उसकी एक विशेष दृष्टि है। उसमें वही चीजें दी जाती हैं, जो पाठकों के मन में जीवन के प्रति विश्वास पैदा करती हैं, उन्हें आशावादी बनाती हैं और साहस-पूर्वक जीने की प्रेरणा देती हैं।

और 'डाइजेस्ट' की आवाज कितनी बुलंद और प्रभावशाली है, इसका अनुमान उसमें छपे दो लेखों के प्रभाव से लगाया जा सकता है।

अगस्त १९३५ में उसमें एक मौलिक लेख छपा था—'......और अचानक मौत'। इस लेख में बताया गया था कि अमरीका में लापरवाही से मोटर चलाने से होने वाली दुर्घटनाओं में किस प्रकार हजारों लोगों की जानें जाती हैं। इन दुर्घटनाओं का बड़ा भयानक वर्णन किया गया था। लेख छपते

ही अमरीका-भर में उसकी चर्चा होने लगी। देश की लगभग प्रत्येक पत्रिका ने उसे उद्धृत किया, रेडियो-प्रोग्रामों में उस पर बहसें हुईं और उसके आधार पर एक फिल्म तक बनी। इन सबसे बढ़कर, उसका असर मोटर-उद्योग पर पड़ा। अमरीकी मोटर-उद्योग ने दुर्घटनाओं से बचने के तरीकों और उस दृष्टि से मोटरों में आवश्यक सुधार कराने की ओर पूरा-पूरा ध्यान दिया।

इसी प्रकार, अप्रैल १९४७ के अंक में एक नये प्रकार के गोंद के बारे में लेख छपा था। लेख छपने से पहले गोंद की बिक्री हर महीने नौ हजार डालर की थी। लेख छपने के कुछ ही अरसे के बाद उसकी बिक्री ८० हजार डालर तक होने लगी।


THE READER'S DIGEST

THIRTY-ONE ARTICLES EACH MONTH FROM LEADING MAGAZINES—EACH ARTICLE OF ENDURING VALUE AND INTEREST, IN CONDENSED AND COMPACT FORM

FEBRUARY 1922

'डाइजेस्ट' का प्रथम अंक

'डाइजेस्ट' में तब तक कोई रचना नहीं छापी जाती, जब तक उसकी प्रामाणिकता की जांच न कर ली जाये। 'डाइजेस्ट' का एक खोज विभाग है, जो यह पता लगाता है कि रचना में कोई गलत या झूठी बात तो नहीं लिखी गयी है। इस विभाग में प्रत्येक विषय के ज्ञानकोशों और अन्य प्रामाणिक पुस्तकों का बहुत बढ़िया संग्रह है। खोज-विभाग के कर्मचारी उन व्यक्तियों से मिलते हैं, उन स्थानों पर जाते हैं, जिनका लेख में जिक्र होता है, और पता लगाते हैं कि लेखक ने कोई गलत बात तो नहीं लिख दी।

उदाहरणार्थ, फ्रांस के एक लेखक ने 'बोफियेर' नामक चरवाहे के बारे में एक लेख भेजा था। लेख में उसने बताया था कि किस तरह उस चरवाहे ने एक वीरान इलाके में शौकिया तौर पर वृक्ष लगाने शुरू किये थे। लेखक उससे प्रथम विश्वयुद्ध के शुरू में मिला था, और फिर द्वितीय विश्व-युद्ध के भी मिला और उसने उसका दस हजार वृक्षों का जंगल देखा था। उस जंगल की बदौलत वह वीरान इलाका हरा-भरा बन गया था और वहां पानी का अभाव नहीं रहा था। इससे वहां के 'वेरगोन्स' नामक गांव के लोगों की रूखी-सूखी और वीरान जिंदगियों में खुशी भर गयी थी।

लेख बहुत दिलचस्प था। तो भी 'डाइजेस्ट' के पेरिस दफ्तर से एक कर्मचारी लेख की प्रामाणिकता का पता लगाने के लिए 'वेरगोन्स' गांव में गया, और वहां के लोगों से चरवाहे के बारे में पूछ-ताछ की।

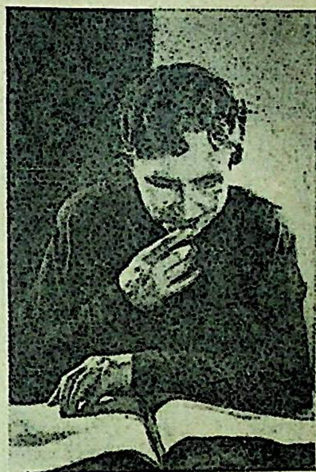
किसी से उसके बारे में कुछ पता न लग सका।

आखिर काफी लंबी खोजबीन करने के बाद पता लगा कि बोफियेर नाम का कोई व्यक्ति वहां न कभी रहा था, न कभी जनमा था। और जंगल लगाने की बात तो सरासर झूठ थी। लेखक ने काल्पनिक बातें लिखकर भेज दी थीं। बहुत बढ़िया और दिलचस्प होने पर भी वह लेख नहीं छप सका।

पाठकों के इतने बड़े दायरे तक पहुंचने वाली पत्रिका विज्ञापनों के लिए कितना अच्छा साधन हो सकती है, इसका अंदाज हर किसी को शुरू से ही था। लेकिन हैरानी की बात थी कि शुरू से ही कुछ कारणों से वैलेस पत्रिका में विज्ञापन छापने के पक्ष में नहीं था। उसे पूरा यकीन था कि विज्ञापनों के बिना भी पत्रिका आर्थिक दृष्टि से सफल बनायी जा सकती है, बशर्ते उसकी बिक्री खूब बढ़ायी जाये।

तेंतीस वर्षों तक उसने कोई विज्ञापन नहीं छापा। लेकिन फिर खर्च इतने बढ़ गये कि पत्रिका को पुरानी कीमत में बेचना घाटे का सौदा हो गया। छपाई का खर्च ही १७० प्रतिशत बढ़ गया था। पत्रिका के पृष्ठ भी पहले से तीन गुना ज्यादा कर दिये गये थे। साथियों ने विज्ञापन छापने के लिए वैलेस पर जोर डालना शुरू किया। पर वैलेस काफी अरसे तक अड़ा रहा।

आखिर उसने पाठकों की राय ली कि क्या वे पुरानी कीमत (२५ सेंट) में विज्ञापन-युक्त 'डाइजेस्ट' चाहते हैं, अथवा बढ़ी हुई कीमत (३५ सेंट) में विज्ञापन-विमुक्त 'डाइजेस्ट'? यह राय कनाडा के पाठकों से ली गयी थी। ८० प्रतिशत पाठकों ने विज्ञापन छापने के हक में राय दी। फिर भी वैलेस विज्ञापन छापने को तैयार नहीं हुआ। खर्च बढ़ता गया, घाटा होता रहा, और वैलेस के साथी उस पर जोर डालते रहे।



हेलन केलर
ब्रेल लिपि का रीडर्स डाइजेस्ट पढ़ते हुए

अंत में १९५४ में संयुक्त राज्य अमरीका के पाठकों से राय ली गयी। इस बार ८१ प्रतिशत पाठकों ने विज्ञापन छापने के हक में राय दी। सो फैसला हुआ कि एक साल के लिए प्रत्येक अंक में ज्यादा-से-ज्यादा ३२ पृष्ठ विज्ञापन छापे जायें; लेकिन उनमें शराब, सिगरेट आदि के विज्ञापन बिलकुल न हों। यह भी तय किया गया कि

इन विज्ञापनों के लिए पत्रिका में ३२ पन्ने बढ़ा दिये जायें, ताकि पाठकों को पहले जितनी ही पाठ्यसामग्री मिलती रहे।

जब विज्ञापन कंपनियों को इसके बारे में पता लगा, तो उन्होंने 'डाइजेस्ट' में ज्यादा-से-ज्यादा पृष्ठ हासिल करने की कोशिश की। किसी ने नहीं पूछा कि विज्ञापन की दर क्या है। उस समय एक सादे पृष्ठ के विज्ञापन की दर २६।। हजार डालर थी और रंगीन पृष्ठ की ३१ हजार डालर। विज्ञापन छापने के लिए इतने ऊंचे दाम शायद ही किसी और अमरीकी पत्रिका ने मांगे होंगे।

दो हफ्तों में ही १,१०७ पृष्ठों के विज्ञापनों के आर्डर मिल गये, जिन्हें छापकर 'डाइजेस्ट' १ करोड़ १० लाख डालर प्राप्त कर सकता था। लेकिन वैलेस ने तो एक अंक में ३२ पृष्ठ से ज्यादा विज्ञापन न छापने की कसम खा रखी थी, सो उन विज्ञापनों में से विशेष दृष्टिकोण से चुनाव किया गया।

अगले साल फैसला किया गया कि ३२ पृष्ठों के बजाय, पत्रिका के २० प्रतिशत पृष्ठ विज्ञापनों के लिए सुरक्षित रखे जायें। (दूसरी पत्रिकाएं ४७ प्रतिशत पृष्ठ विज्ञापनों के लिए देती थीं।)

'डाइजेस्ट' के पाठकों का दायरा इतना बड़ा होने का मूल कारण तो उसकी सामग्री के चयन का संपादकीय कौशल है; लेकिन इसका काफी श्रेय विक्री-व्यवस्था को भी है। यह व्यवस्था वैलेस ने १९२२ में ही सोची थी। जब वह किसी भी प्रकाशक को 'डाइजेस्ट' निकालने के लिए तैयार नहीं कर पाया, तो उसने अपने निजी पत्रों के द्वारा पाठकों से संबंध स्थापित किया। आज भी यह तरीका बिक्री बढ़ाने का सर्वोत्तम उपाय सिद्ध हो रहा है।

समय-समय पर पत्रिका में पाठकों से स्वयं चंदादार बनने और दूसरों को चंदादार बनाकर रियायतें और उपहार प्राप्त करने तथा 'डाइजेस्ट' की ओर से प्रकाशित होने वाली पुस्तकें रियायती कीमत पर प्राप्त करने की जो अपीलें की जाती हैं, वे कभी निष्फल नहीं जातीं। हर साल पत्रिका की बिक्री बढ़ती रही है।

वैलेस अब ७९ वर्ष का हो चुका है। पिछले चार वर्षों से वह पत्रिका के संपादन का काम छोड़ चुका है, और हफ्ते में दो-तीन दिन एक घंटे के लिए दफ्तर में आता है। लेकिन आज भी उसकी राय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समझी जाती है।

'डाइजेस्ट' का भारतीय संस्करण बंबई में छपता है। वह १९५४ में ४० हजार प्रतियों से शुरू हुआ था और आज उसकी १ लाख ५० हजार प्रतियां हर महीने छपती हैं।

'डाइजेस्ट' में हर महीने एक या दो पुस्तकों के संक्षेप तो छपते ही थे, १९५० में वैलेस ने 'संक्षिप्त पुस्तक क्लब' की योजना शुरू करके पाठकों को पुस्तकाकार पुस्तक-संक्षेप देने शुरू किये। हर तीन महीनों के बाद वह चार या पांच पुस्तकों के संक्षेपों का लगभग साढ़े पांच सौ पृष्ठों का संग्रह निकालने लगा। यह योजना उसने पाठकों के सामने रखी

रखी और उन्हें 'संक्षिप्त पुस्तक क्लव' के सदस्य बनने का निमंत्रण दिया।

जब चार पुस्तकों के सार-संक्षेप से युक्त पहली जिल्द छपी, तब तक बुक क्लव के १ लाख ८३ हजार सदस्य बन चुके थे। एक साल पूरा होने से पहले ही 'क्लव' की सदस्य-संख्या ५ लाख को पार कर गयी और चार साल के वाद, सदस्यों की संख्या २५ लाख तक पहुंच गयी। अर्थात् 'क्लव' की ओर से जो भी पुस्तक छपती है, उसकी कम-से-कम पच्चीस लाख प्रतियों की विक्री की पहले से गारंटी होती है।

'संक्षिप्त पुस्तक क्लव' के लिए अलग संपादकीय विभाग है, जिसमें हर साल लगभग चार हजार पुस्तकें पढ़ी जाती हैं। संक्षिप्त करने के लिए चुनी गयी पुस्तक तीन या चार संपादकों के हाथों से गुजरती है। ये उसे इस ढंग से संक्षिप्त करते हैं कि पुस्तक की सभी मूल विशेषताएं कायम रहती हैं। अंत में वह मुख्य संपादक राल्फ हेंडर्सन की नजर से गुजरती है। पूरा संतोष हो जाने पर वह उसके छापने की स्वीकृति देता है। इस विभाग में लगभग पंद्रह संपादक हैं और पांच सौ से अधिक क्लर्क।

'संक्षिप्त पुस्तक क्लव' की योजना पहले साल में ही इतनी लोकप्रिय हो गयी कि अगले साल से फ्रांसीसी, इतालवी, जर्मन, स्वीडिश, डच, स्पेनी और पुर्तगाली भाषाओं में भी संक्षिप्त पुस्तक-संग्रह निकलने लगे। संग्रह के लिए चुनी गयी प्रत्येक पुस्तक पर लेखक को दस हजार से लेकर एक लाख डालर तक (आज की मुद्रा-विनिमय दर से ७५ हजार से ७॥ लाख रुपये तक) पारिश्रमिक दिया जाता है।

इस प्रकार लेखक एक साथ लाखों पाठकों तक पहुंचता है। इसके अलावा यह भी संभावना रहती है कि शायद उसकी पुस्तक फिल्म या टेलिविजन के लिए खासी बड़ी कीमत पर खरीद ली जाये। कई पुस्तकें, जो शुरू में बहुत कम विकती हैं, 'संक्षिप्त पुस्तक-संग्रह' में छपने पर वहुत वड़ी संख्या में विकने लगती हैं।

निःसंदेह 'रीडर्स डाइजेस्ट' ने प्रकाशन के इतिहास में करिश्मा कर दिखाया है।



जो मनुष्य ज्ञान-विज्ञान की तह में पहुंचने के लिए पढ़ता है, उसके लिए पुस्तकें और पढ़ाई जीने के तख्तों की तरह हैं, जिन पर से होकर वह ऊपर चढ़ता है। जो सीढ़ी वह चढ़ चुकता है, उसे पीछे छोड़ देता है। लेकिन अधिकांश मनुष्य, जो अपने दिमाग को तथ्यों से भरने के लिए ही पढ़ते हैं, जीने के तख्तों का उपयोग ऊपर चढ़ने के लिए नहीं करते, वल्कि उन्हें उखाड़कर अपने कंधों पर रख लेते हैं, ताकि उन्हें उठाये-उठाये फिर सकें और वोझ ढोने का आनंद ले सकें। ये लोग नीचे ही रह जाते हैं; क्योंकि जो चीज उन्हें ढोने के लिए वनी थी, उसे वे स्वयं ढोने लगते हैं।

—शोपनहावर





स्वरों की सम्राज्ञी

र० शौरिराजन्

गत वर्ष मद्रास की संगीत विद्वत्-सभा के वार्षिक संगीत-महोत्सव में एक विलक्षण दृश्य उपस्थित हुआ। सभा के ४२ वर्ष के जीवन में पहली वार एक महिला को महोत्सव का अध्यक्ष बनाया गया। यह असाधारण सम्मान पाने वाली महिला थीं श्रीमती एम० एस० सुब्बुलक्ष्मी, जो जीवन में अन्य भी अनेक अपूर्व सम्मान प्राप्त कर चुकी हैं।

एम० एस० सुब्बुलक्ष्मी को संक्षेपप्रिय दाक्षिणात्य 'एम० एस०' के नाम से अधिक जानते हैं। संगीत 'एम० एस०' की जीवनी है, और संजीवनी भी। वे संगीत की विरासत लेकर जनमीं, संगीत के बीच पलीं-खेलीं और संगीतमय होकर जी रही हैं।

तमिलनाडु के सांस्कृतिक केंद्र, पांड्य राजाओं की प्राचीन राजधानी तथा भगवती मीनाक्षी की पुण्यनिवास-भूमि मदुरै में उनका जन्म हुआ। उनकी माता श्रीमती षण्मुख-वडिवु अपने समय की मानी हुईं वीणा-वादिका थीं। बालिका 'कुंजम्मा' (यह सुब्बु-लक्ष्मी का लाड़ का नाम था) की प्रथम संगीत-गुरु भी वही थीं। बेटी को उन्होंने गायन और वीणा-वादन का अभ्यास बचपन से ही कराया। बाद में कर्नाटक संगीत का प्रौढ़-पाठ सुप्रसिद्ध संगीताचार्य श्रीनिवास अय्यंगार से पढ़वाया।

परंतु सुब्बुलक्ष्मी की कला के विकास में सबसे बड़ा प्रभाव पड़ा घर के वातावरण का। माता षण्मुखवडिवु स्वयं ही प्रसिद्ध कलाकार थीं और जो भी श्रेष्ठ गायक या वादक मदुरै आता, उसे आग्रहपूर्वक अपने घर बुलाकर उसका आतिथ्य करती थीं। ऐसे अवसरों पर नगर के सभी माने हुए संगीत-रसज्ञ और संगीतकार एकत्र होते थे। विज्ञ-जनों की इन गोष्ठियों में कलाधर अपनी समस्त कला उड़ेल देते थे। बालिका सुब्बुलक्ष्मी के चित्त-संस्कार और रुचि-परिष्कार में इन रसगोष्ठियों का बड़ा हाथ था।

दस वर्ष की अवस्था से ही वे अपनी माता के साथ सार्वजनिक संगीत-कार्यक्रमों में आने-जाने लगीं; सोलह साल की अवस्था से स्वतंत्र रूप से कार्यक्रम देने लगीं। अपनी असाधारण स्वर-संपदा की धाक श्रोताओं पर जमाने में उन्हें अधिक समय नहीं लगा। लगभग बीस साल की अवस्था में ही उन्हें तमिल जनता ने 'कोकिलगानम् सुब्बुलक्ष्मी' कहना शुरू कर दिया।

कंठस्वर के वैविध्य-वैशिष्ट्य के वर्णन में समर्थ शब्दों के अभाव से पीड़ित इस आम्र-बहुल देश में 'कोकिलकंठ' स्वरमाधुरी का चरम प्रतीक है। इस अर्थ में सुब्बुलक्ष्मी को 'कोकिलगानम्' कहना गलत नहीं था। किंतु जैसा कि एक संगीत-मर्मज्ञ ने लिखा है, उनके कंठस्वर का सबसे परिपूर्ण उपमान है—शहनाई। वही स्वरपूर्णता, वही श्रुतिशुद्धता, वही थिरकन और वही मोहकता एवं मांगलिकता।

पिछले तीस वर्षों में यदि उनके स्वर में कोई परिवर्तन आया है, तो वह है—परिपक्वता, मार्दव और स्निग्धता। कंठध्वनि अधिक सुचिक्कण और प्रवाही हो गयी है, एवं रसभाव की अधिक समर्थ वाहक बन गयी है।

सुब्बुलक्ष्मी के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था—विवाह। सन १९४० में बाईस वर्ष की इस जनप्रिय गायिका ने उत्साही समाज-सेवक एवं खादी-प्रचारक श्री टी० सदाशिवम् को अपना पति वरण किया। हीरे को कुशल जौहरी मिल गया। इस दांपत्य-सूत्र ने सुब्बुलक्ष्मी के गृह-जीवन को ही नहीं संवारा, बल्कि उनके कला-जीवन को भी निखारा। आज वे वैभव और विश्रुति के जिस शिखर पर आसीन हैं, वहां तक पहुंचने के लिए उन्हें प्रेरित और प्रोत्साहित करने वाले उनके पति ही हैं।

सदाशिवम् स्वयं कर्नाटक संगीत के रसज्ञ

हैं । पत्नी के लिए उनमें ममता ही नहीं महत्त्वाकांक्षा भी थी, और उसे साधने की व्यवहार-कुशलता भी थी । उन्होंने सुब्बुलक्ष्मी के संगीत-ज्ञान को व्यापक एवं गहरा, तथा उनकी प्रतिभा को प्रखर और प्रांजल बनाने के लिए कर्नाटक संगीत के दो महाचार्य एवं सुविख्यात गायक मुशिरि सुब्रह्मण्य अय्यर और शेम्मंगुडि श्रीनिवास अय्यर से उन्हें विशेष शिक्षा दिलवायी ।

माता से वीणा-वादन का जो ज्ञान प्राप्त किया था, वह उनके कला-विकास में विशेष सहायक हुआ । महर्षि भरत के काल से ही भारतीय गायन पर वीणा का गहरा प्रभाव रहा है, जो कि कर्नाटक संगीत में आज भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है ।

कर्नाटक संगीत के आचार्यों का यह मत है कि परिष्कृत राग-ज्ञान और शुद्ध स्वर-साधना के लिए वीणा-वादन का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है । अपने समय की सबसे महान वीणावादिका श्रीमती धनम्माल् से भी सुब्बुलक्ष्मी को प्रोत्साहन मिलता रहा । (स्व० धनम्माल् आज की महान भरत-नाट्य-नर्तकी श्रीमती टी० बालसरस्वती की नानी थीं ।)

सुब्बुलक्ष्मी के गले की स्वरशुद्धता और रससिक्तता श्रोताओं के आनंद और ज्ञा- ओं के विस्मय का विषय है । तीन दशकों भी अधिक समय तक गले की मिठास और मृदुता बनी रहे और बराबर बढ़ती रहे, क्या यह मात्र दैवीय वरदान हो सकता है? स्वयं सुब्बुलक्ष्मी का कहना है–"मैं इस बारे में विशेष कुछ कह नहीं सकती । संभव है, आरंभिक दिनों की मेरी स्वर-साधना का इसमें कुछ हाथ रहा हो ।"



माता षण्मुखवडिवु
[स्केच : कल्पना]

और साधना का वर्णन उन्हीं के शब्दों में सुनिए: "मैं प्रतिदिन सवेरे अपने स्वर को तानपूरे के स्वर के साथ एकतान करने के लिए कई घंटे तक स्वराभ्यास करती थी । अभ्यास की दूसरी बैठक में मैं तानपूरे के बिना ही गाती थी । तीसरी बैठक में पहले आलाप आरंभ करती, फिर तानपूरा छेड़ा जाता । मेरा स्वर और तानपूरे का स्वर पूरी तरह समस्वर हो जाते थे ।"

उत्तर भारतीय श्रोताओं के समक्ष का पहला बड़ा अवसर सुब्बुलक्ष्मी को 19.. में विक्रम द्विसहस्राब्दी उत्सव के सिलसिले में बंबई में आयोजित अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में मिला । उनके कोमल कंठ, परिष्कृत और अचूक रागज्ञान, कला-प्रतिभा और स्वर-साधना ने हिन्दुस्तानी संगीत

रसज्ञों को ही नहीं, आचार्यों को भी मुग्ध कर लिया।

किंतु उत्तर भारत के कोने-कोने में उनका नाम पहुंचाया, उनके पति सदाशिवम् द्वारा निर्मित फिल्म 'मीरा' ने, जिसमें उन्होंने प्रेमयोगिनी संत की भूमिका बड़ी तन्मयता और भक्ति के साथ अभिनीत की थी।

यह चलचित्र तमिल और हिन्दी दोनों में बना था और दोनों का निर्देशन उस समय के नामी निर्देशक एलिस आर० डंकन ने किया था। यों सुब्बुलक्ष्मी इससे पूर्व भी तीन तमिल फिल्मों में अभिनय कर चुकी थीं—प्रेमचंद के उपन्यास पर आधारित 'सेवासदन', पौराणिक चलचित्र 'सावित्री' तथा 'शकुंतला' में।

मीरा के रूप में सुब्बुलक्ष्मी के भावपूर्ण अभिनय की प्रशंसा करते हुए श्रीमती सरोजिनी नायडू ने कहा था :

"उत्तर भारतवासियों से मैं सुब्बुलक्ष्मी का परिचय कराना चाहती हूं.........मैं चाहती हूं, मेरे ये जीवित शब्द संसार के कोने-कोने में पहुंचें, जिससे लोग जान सकें कि किस प्रकार भारत की एक महान महिला कलाकार ने अपने गानों से लाखों-लाखों नर-नारियों के हृदयों को आप्लावित किया है।

"मुझे विश्वास है कि इस अत्यंत प्रतिभाशालिनी गायिका की मोहक आवाज को जो भी सुनेगा, उसके हृदय में वही भावना-तरंगें उठेंगी, जो मेरे हृदय में उठ रही हैं। बहुतों को शायद यह ज्ञात नहीं है कि सुब्बुलक्ष्मी का सुरीला कंठ कितने सत्कार्यों में सहायक हुआ है........."



स्वर-साधना
[टी० ए० राणा]

सत्कार्यों की सहायिका के रूप में श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी की सेवा स्तुत्य है। किसी भी जनसेवा-कार्य के लिए धन-संग्रह कराने में वे अपना संगीत-कार्यक्रम देने में कृपणता नहीं करतीं। गांधी स्मारक निधि, कस्तूरबा निधि जैसी राष्ट्रीय निधियों से लेकर शिक्षणालयों और अस्पतालों तक अनेक सार्वजनिक संस्थाएं उनकी इस उदारता से लाभान्वित हुई हैं। अंदाज है कि इस प्रकार वे लगभग ५० लाख रुपये एकत्र करवा चुकी हैं।

दिल्ली में रामकृष्ण मिशन की सहायता के लिए आयोजित ऐसे ही एक संगीत-कार्यक्रम में अध्यक्ष-पद से बोलते हुए श्री जवाहरलाल नेहरू ने सुब्बुलक्ष्मी को संबोधित करके कहा था—"आप सम्राज्ञी हैं, संगीत की। मैं निरा प्रधान मंत्री भला आपके सामने क्या चीज हूं!"

सन १९६३ में वे एडिनबरो के विश्व-संगीत-समारोह में कर्नाटक संगीत की प्रतिनिधि गायिका के रूप में भाग लेने पहली बार यूरोप गयीं। इस यात्रा में उन्होंने यूरोप के अनेक महानगरों के ऐसे संगीत-मंचों पर से गाया, जिन पर अब तक किसी भारतीय

गायिका को अपनी कला प्रस्तुत करने का अवसर नहीं मिला था। आयोजकों को संशय था कि क्या पाश्चात्य संगीत-प्रेमी और समीक्षक भारतीय गायन में रुचि ले पायेंगे। किंतु पहली सभा में ही सुब्बुलक्ष्मी ने सबको मुग्ध कर लिया।

लंदन 'टाइम्स' के संगीत-विमर्शक ने लिखा —"इस भारतीय गायिका का गायन बहुत चित्ताकर्षक और भावनाओं को तरंगित करने वाला है। उनका कंठ इतना मधुर और सधा हुआ है कि उसमें अलौकिक नाद-प्रवाह द्वारा श्रोताओं को आत्मविस्मृत कर देने की क्षमता है।"

लंदन के ही एक और पत्रकार ने लिखा— "प्राय: ऐसा माना जाता है कि परायी संगीत पद्धति के वाद्य संगीत की अपेक्षा गायन को समझ पाना अधिक कठिन होता है। परंतु यह धारणा सदा सच नहीं निकलती श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी कर्नाटक संगीत के सौंदर्य एवं वारीकियों की परिचयदात्री के रूप में अद्वितीय हैं।"

यूरोप से लौटते समय काहिरा में उनका एक विशेष संगीत-कार्यक्रम हुआ। यहीं उनकी भेंट विख्यात अरब गायिका उम खलथुम से हुई। दो संगीत-सम्राज्ञियों का यह अपूर्व मिलन था।

मधुर मार्ग

संगीत सीखने के लिए भक्ति और श्रद्धा से परिपूर्ण स्वच्छ चित्त नितांत आवश्यक है। यह संगीत-विद्या मधुर मार्ग से मोक्ष एवं भगवत्-साक्षात्कार प्राप्त कराने वाली है। आत्मानंद के साथ श्रोताओं को भी आनंद देने की शक्ति संगीत में है। संगीत-कलानिधि सुब्बुलक्ष्मी

सन १९६७ की शरद् ऋतु में श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी राष्ट्रसंघ के निमंत्रण पर फिर पश्चिम गयीं। इस बार उन्होंने अपने पति के साथ अमरीका की ४० दिन की यात्रा की। २६ अक्टूबर को उन्होंने न्यूयार्क में राष्ट्रसंघ के सभा-भवन में विश्व के समस्त राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के समक्ष कर्नाटक संगीत के महान वाग्गेयकारों की कृतियां और कतिपय भजन प्रस्तुत किये।

इस अवसर के लिए उन्होंने दो विशेष गीतों का अभ्यास किया था। एक था कांची के कामकोटिपीठ के अधिपति श्री शंकराचार्य का निम्नलिखित संस्कृत पद्यबंध :

> मैत्रीं भजताऽखिल-
> हृज्जेत्रीम्
> आत्मवदेव परानपि
> पश्यत।
> युद्धं त्यजत स्पर्धां त्यजत
> त्यजत परेष्वक्रममाक्रमणम्।
> जननी पृथिवी कामदुघाऽस्ते
> जनको देवस्सकलदयालुः।
> दाम्यत, दत्त, दयध्वं जनताः
> श्रेयो भूयात् सकलजनानाम्॥

—हे विश्व के निवासियो, सबके हृदयों को जीतने वाली मैत्री को तुम अपनाओ। परायों को भी अपने समान समझो। युद्ध और स्पर्धा छोड़ दो और छोड़ दो दूसरों पर अन्यायपूर्ण आक्रमण करना। पृथ्वी माता

कामधेनु हैं; परम पिता परमेश्वर सब पर समान रूप से दया करता है; आत्मदमन करो,दान करो और सब पर दया करो,जिससे समस्त जनों (राष्ट्रों) का कल्याण हो।"

दूसरा गीत अंग्रेजी में था और राजाजी द्वारा रचित था। पहली पंक्ति के बोल थे—"मे दि लार्ड फरगिव आवर सिन्स।" शायद अंग्रेजी के शब्दों को कर्नाटक संगीत के स्वरों में गूंथने का यह पहला ही अर्थपूर्ण प्रयत्न था।

यह स्वाभाविक ही था कि अमरीकी पत्रों में उन पर लेख छपें, टेलिविजन पर कार्यक्रम हों, उनके गायन के रेकार्ड तैयार किये जायें। राष्ट्रसंघ के फिल्म-विभाग ने उन पर एक छोटी फिल्म भी बनायी। इस कला-दिग्विजय में संगीत-कार्यक्रमों से जो भी आय हुई, उसे सुब्बुलक्ष्मी ने अमरीका की जनसेवा-संस्थाओं को समर्पित कर दिया। भारत लेना ही नहीं, देना भी जानता है—इसका यह सुंदर प्रमाण था।



पति टी० सदाशिवम्
[स्केच : कल्पना]

सफलता के शिखर पर पहुंचकर भी उन्होंने संगीताध्ययन बंद नहीं किया है। विभिन्न भाषाओं के गीतों के अर्थसहित शुद्ध उच्चारण वे बड़ी सावधानी से सीखती हैं। हिन्दी की वे बड़ी हिमायती हैं और पहले वर्धा के श्री शंकरन् से और बाद में मद्रास के विख्यात हिन्दीसेवी श्री रा० वीलिनाथन् से उन्होंने हिन्दी सीखी। तमिल और हिन्दी के अलावा वे तेलुगु, कन्नड और बंगला के गीत भी गाती हैं। श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी से उन्होंने ठुमरियां सीखी हैं और दिलीप कुमार राय से हिन्दुस्तानी संगीत का ज्ञान पाया है। दिलीप चंद्र वेदी ने भी उन्हें कुछ गाने सिखाये थे।

सुब्बुलक्ष्मी स्वभावतः भक्तिपरायण हैं। तिरुपति के भगवान वेंकटेश की स्तुति में रचित चालीस श्लोकों के 'श्री-वेंकटेशसुप्रभात' स्तोत्र का श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी का रेकार्ड आकाशवाणी के दक्षिण भारतीय केंद्रों से प्रायः ही प्रसारित होता रहता है।

संस्कृत के उच्चारण की स्फुटता, स्वर की अविश्रांत-अस्खलित विशुद्धता तथा भावपूर्णता की दृष्टि से इस रेकार्ड को चमत्कार कहना होगा। इस रेकार्ड से प्राप्त ६० हजार रुपये की रायल्टी उन्होंने तिरुपति की वेदपाठशाला को दान कर दी है।

संस्कृत की एक कहावत "दूरतः पर्वतो रम्यः" (पहाड़ दूर से ही सुंदर होते हैं), बहुधा कलाकारों पर भी लागू होती है। पर सुब्बुलक्ष्मी निकट से भी रम्यदर्शना हैं। उनका सौम्य-सुघड़ मुख-मंडल, चमकीली

भावपूर्ण आंखें और शालीन भाव-भंगिमा आंतरिक शांति और सौजन्य को प्रतिबिंबित करती हैं। उनकी वेशभूषा में हिन्दू कुलवधू की संयत सुरुचि है। स्वभाव उनका सात्विक, सौम्य और निरहंकार है।

नारी और कलाकार के रूप में जीवन में जो कुछ स्पृहणीय हो सकता है, वह सब उन्हें उपलब्ध है—इतिहास में अमर रहने वाला स्वर-माधुर्य, प्रतिभा, धन, सम्मान, अनुरूप-अनुरक्त पति, सुखमय शांत गृह-जीवन। इनके अतिरिक्त एक और बड़ी संपदा उन्होंने अपनी गुणगारिमा से अर्जित की है। वह है—गुरुजनों का आशीर्वाद।

कांची के कामकोटिपीठ के जगद्गुरु श्री शंकराचार्य का विशेष कृपा-प्रसाद उन्हें उपलब्ध है। राजाजी का इस दंपति पर बड़ा वात्सल्य है, और सुब्बुलक्ष्मी एवं सदाशिवम् का भी राजाजी के प्रति वही व्यवहार है, जो कि कुलपितामह के प्रति आदर्श संतान का होता है।

गांधीजी का भी सुब्बुलक्ष्मी को विशेष आशीर्वाद प्राप्त था। अपने अंतिम जन्म-दिन पर गांधीजी ने सुब्बुलक्ष्मी से मीरा का पद "हरि तुम हरो जन की भीर" विशेष रूप से रेकार्ड करवाकर सुना था। इस मार्मिक प्रसंग का वर्णन श्री सदाशिवम् नवनीत में कर चुके हैं।

सुख-संपदा-सम्मान भाग्य की, या परमेश्वर की अहेतुकी कृपा हो सकते हैं, अथवा पुरुषार्थ का न्यायोचित फल भी; परंतु इन्हें संभालने और पचाने के लिए संस्कारिता अपेक्षित है। और श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी संस्कारिता की धनी हैं।

आज वे जीवन के उस चरण में हैं, ज[illegible] कलाकार की साधना और तपस्या [illegible] रूपों से फलित होती है। वे संगीत नाट[illegible] अकादेमी का राष्ट्रीय पुरस्कार पा चुकी हैं। राष्ट्रपति ने उन्हें 'पद्मभूषण' पदक से [illegible]वान्वित किया है। मद्रास संगीत विद्वत्[illegible] के वार्षिक संगीतोत्सव का अध्यक्ष-पद त[illegible] 'संगीत-कलानिधि' की पदवी वे पा चुकी हैं, जो आज के युग में कर्नाटक संगीत [illegible] कलाधर को मिल सकने वाला सबसे [illegible] सम्मान है।

किंतु इस पूर्णकाम कलाकार की [illegible] कामना अभी शेष है। कर्नाटक संगीत [illegible] त्रिमूर्ति त्यागराज, मुत्तुस्वामि दीक्षि[illegible] और श्यामाशास्त्री ने अपनी साधना[illegible] तिरुवारूरु (जिला तंजाऊर) में [illegible] मकानों में नादोपासनामय जीवन बिता[illegible] था, उन्हें वे खरीदकर राष्ट्रीय निधि के [illegible] में सुरक्षित करना चाहती हैं।

यदि कामना की निःस्वार्थता एवं सात्वि[illegible]कता उसके पूर्ण होने की गारंटी है, तो श्री[illegible] सुब्बुलक्ष्मी को उदास होने की आव[illegible]कता नहीं। उनके सामने पिछली पीढ़ी [illegible] गायिका स्वर्गीय नागरत्नम्मा का उदाहर[illegible] है, जो तिरुवैयारु में संत त्यागराज [illegible] समाधि-मंदिर बनवाकर जीवन के अंति[illegible] दिनों में कृतकृत्यता अनुभव कर पायीं। अभी तो धन्यताओं से भरा सुदीर्घ जीव[illegible] सुब्बुलक्ष्मी के सामने है।



पंखोंवाले इंस्पेक्टर

ऐन्तोनी मुस्लिन

कारखाने में वनने वाले पुर्जों में से दोष-पूर्ण पुर्जों को ढूंढ़ निकालना आसान नहीं होता है.। इसके लिए प्रत्येक क्षण सचेत रहने वाले और तेज नजर वाले इंस्पेक्टरों की जरूरत होती है । और जव पुर्जे वहुत छोटे आकार के हों, तव तेज-से-तेज नजर वाले इंस्पेक्टर से भी किसी मौके पर भूल हो सकती है, और कोई दोषपूर्ण पुर्जा उसकी नजर से वचकर निकल सकता है ।

कई वार मामूली-सी खरोंच जैसे नुक्स के कारण पुर्जे को रद्द कर देना जरूरी हो जाता है; क्योंकि उसका यह छोटा-सा दोष किसी मशीन में वहुत बड़ी खरावी पैदा कर सकता है। यद्यपि आजकल ऐसी मशीनें बन चुकी हैं, जो मनुष्य की आंख या दिमाग का काम करती हैं, फिर भी अभी ये मशीनें इतनी पूर्णता नहीं प्राप्त कर पायी हैं कि वे प्रत्येक दोषपूर्ण पुर्जे को विलानागा ढूंढ़ निकालें ।

तो क्या दोषपूर्ण पूर्जों को ढूंढ़ने का काम मनुष्य की आंख को ही करना होगा ?

मास्को के एक कारखाने के प्रमुख सहायक इंजीनियर अनातोली वाइकोव ने एक वार कबूतरों के वारे में एक लेख पढ़ा, जिसमें वताया गया था कि उन्हें आंखों देखी हुई हर चीज वखूबी याद रहती है और वे चीजों के आकार, रंगों आदि में सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अंतर को भी पहचान सकते हैं। वाइकोव को वचपन से ही कबूतरों में दिलचस्पी थी, सो लेख पढ़कर कबूतरों के बारे में और अधिक जानने की उनकी उत्कंठा जाग उठी । उसे खयाल आया कि कबूतर तो सदियों से मनुष्य के संदेशवाहक का काम करते आये हैं। शायद वे इससे भी महत्त्वपूर्ण काम कर सकें । कारखानों में बने पुर्जों में से त्रुटि-पूर्ण पुर्जों को खोज निकालने में शायद वे सहायक हो सकें ।

सो बाइकोव ने दो कबूतरों को त्रुटिपूर्ण पुर्जों को पहचानने की ट्रेनिंग देना आरंभ किया । इस काम में अपने दो सहयोगी इंजीनियरों से भी उसे सहायता मिली ।

सबसे पहले उन कबूतरों को यह सिखाया गया कि जब भी वे किसी दोषपूर्ण पुर्जे को देखकर एक विशेष स्थान पर चोंच मारेंगे, तो बदले में उन्हें अनाज का एक दाना मिलेगा। साथ ही ऐसी व्यवस्था भी की गयी कि चोंच मारने पर दोषपूर्ण पुर्जा एक डिब्बे

में गिरकर अन्य पुर्जों से अलग हो जायें।

कबूतरों को यह शिक्षा देने में कई तरह की कठिनाइयां आयीं; लेकिन वाइकोव और उसके साथियों ने हिम्मत नहीं हारी। एक कबूतर जोर से चोंच मारता था, तो दूसरा धीमे-से। एक अचानक तेज रोशनी देखकर घबरा उठता था, तो दूसरा दाना उठाता ही नहीं था।

परंतु लगातार प्रशिक्षण देने से धीरे-धीरे कबूतर विभिन्न पुर्जों को पहचानने लगे। फिर भी कई बार वे पुर्जे के त्रुटिपूर्ण न होने पर भी चोंच मार देते थे। वाइकोव ने सोचा कि शायद वे दाना पाने के लालच में ऐसा करते हैं। पर बाद में पता चला कि वे दाने के लालची नहीं थे, बल्कि पुर्जों पर लगे उंगलियों के निशान देखकर उन्हें दोषपूर्ण समझ लेते थे। सो ऐसा प्रबंध किया गया कि पुर्जे पर किसी तरह के निशान न पड़ने पायें, और कबूतर बिना किसी गलती के अपना काम बखूबी करने लगें।

कुछ दिन बाद उस जोड़े ने जब बच्चों को जन्म दिया, तो एक नयी कठिनाई खड़ी हो गयी। अपने बच्चों की देखभाल कबूतर-दंपति को अधिक महत्त्वपूर्ण काम लगा और उन्होंने इंस्पेक्टरों के रूप में काम करने से साफ इन्कार कर दिया। पर बच्चों के बड़े हो जाने पर वे फिर काम करने लगे। जब उनका काम पूर्ण रूप से संतोषजनक सिद्ध हुआ, तो उसी प्रकार और बहुत-से कबूतरों को शिक्षा दी जाने लगी।

अब तो एक-एक प्रशिक्षित कबूतर-इंस्पेक्टर एक घंटे में तीन से चार हजार पुर्जों तक की छानबीन करने लगा। बिना थकावट या उकताहट के वे लगातार कई घंटों तक काम करते थे।

इंस्पेक्टर के काम की बुनियादी बातें प्रथम तीन-चार दिनों में सिखा दी जा सकती हैं। अगले दो या तीन हफ्तों में वह इतना दक्ष हो जाता है कि इस काम में आदमी और मशीन को भी मात दे सकता है।

वाइकोव का कथन है—"ये पूर्ण रूप से विश्वसनीय 'पंखों वाले इंस्पेक्टर' पुर्जों की छानबीन करने में अपना सानी नहीं रखते और न निकट भविष्य में इसकी कोई संभावना दिखाई देती है कि कोई उनका मुकाबला कर सकेगा। हमारे प्रयोगों के बहुत संतोषप्रद नतीजे निकले हैं। कबूतरों से इंस्पेक्टरों का काम लेने से कारखानों को आर्थिक बचत तो होगी ही, वे त्रुटिहीन तथा उच्च स्तर की चीजों का उत्पादन भी कर सकेंगे।"

संभव है कि निकट भविष्य में ही समाचार-पत्रों में "कबूतर-इंस्पेक्टरों की आवश्यकता है" के विज्ञापन छपने लगें और कबूतरों को भी इंटरव्यू के लिए बुलाया जाने लगे।

परमाणु बम
हम भी बना सकते हैं

प्रो० सुब्रम्हण्यन् स्वामी

परमाणु अस्त्रों के तीन उपयोग हैं—प्रतिरक्षा, आक्रमण और अपनी शक्ति की धाक जमाना। चीन के संभावित हमले से आत्मरक्षा हमारे राष्ट्र का घोषित उद्देश्य है। इसका मतलब यह है कि हमारे अंदर वह क्षमता हो, जिससे हम चीन को यह बता सकें कि अगर हम पर आक्रमण किया, तो उसे बहुत बड़ी क्षति उठानी पड़ेगी। यह क्षमता देश में भी कायम की जा सकती है और देश से बाहर भी। इसके लिए रूस या अमरीका से समझौता किया जा सकता है।

लेकिन इस तरह के समझौते में यह आश्वासन मिलना जरूरी है कि हम पर जब कोई आक्रमण हो, तो समझौता करने वाला देश हमारी रक्षा करने के लिए स्वतः ही उत्तरदायी हो जायेगा। लेकिन इस बात की क्या गारंटी है कि संकट के समय में समझौते वाला देश हमारी रक्षा करेगा ही? अतः हमें आत्मनिर्भर होना होगा और वह क्षमता देश में ही कायम करनी होगी।

लेखक हारवर्ड विश्वविद्यालय, अमरीका में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक हैं।

चीन भारत पर दो परिस्थितियों में ही परमाणु-अस्त्रों से आक्रमण कर सकता है—एक तो तब, जबकि चीन हारने लगे और उसके पास बचाव का कोई तरीका न रह जाये; दूसरे, उस पर रूस या अमरीका हमला करे, तो वह अपने बचाव के लिए भारत पर परमाणु बम फेंकने की धमकी दे। ये दोनों स्थितियां असंभव नहीं हैं। फिर ऐसी विषमतापूर्ण सौदेबाजी की चालें चीन की रक्षानीति का एक अंग भी हैं।

अगर चीन परमाणु बम गिराकर हमारे बीस लाख आदमी मार डाले, तो क्या बड़ी शक्तियां चीन के विरुद्ध उचित कदम उठायेंगी? इसके लिए मैं अमरीका के चीनी मामलों के दो अधिकारियों की राय उद्धृत कर रहा हूं—"अमरीका भारत को चीन के हमले से बचाने का वचन दे और चीन परमाणु-अस्त्रों से हमला करे, तब भी अमरीका को पहले यह निर्णय करना पड़ेगा कि भारत पर चीन ने जानबूझकर हमला किया

अनुवाद : अनन्त बंवर

या यह अपने सिर पर आये संभावित आक्रमण से वचाव का प्रयास था ?" (ड्वाइट पार्किंस और मार्टन हलपेरीन की पुस्तक 'कम्युनिस्ट चाइना एंड आर्म्स कंट्रोल', हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस–१९६५, पृष्ठ–७३)

इसके अलावा मैंने व्यक्तिगत वार्तालापों में अनेक अमरीकियों से यह प्रश्न पूछा और मेरे सामने हर बार यह स्पष्ट हुआ कि अमरीका दस हजार मील दूर से इस तरह के उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर सकेगा। फिर मेरे एक प्रोफेसर मित्र का कहना है कि वियतनाम युद्ध खत्म हो जाने के वाद वीस-पच्चीस साल तक यूरोप और लैटिन अमरीकी देशों के अलावा अमरीका के लिए किसी और जगह के युद्ध में भाग ले पाना असंभव है। अगर किसी अमरीकी प्रेसिडेंट ने ऐसा किया भी, तो वह आगामी चुनाव में जीत नहीं सकेगा। रूस के साथ भी कुछ ऐसी ही सीमाएं हैं।

अतः हमारी प्रतिरक्षा इसी बात में निहित है कि हम परमाणु-अस्त्र और उन्हें छोड़ने के उपकरण आदि वनाने में आत्मनिर्भर वनें। इसके लिए १० या १५ परमाणु बम और मिसायलों की जरूरत है। इनके अड्डे गुप्त होने चाहिये और मिसायलों को ले जाने वाले पैड चलनशील होने चाहियें। हम जो स्थान प्रत्याक्रमण के लिए चुनें, उनके सामरिक महत्त्व के वारे में अच्छी जानकारी होनी चाहिये।

यह तर्क गलत है कि चीन की सीमा से दिल्ली २५० मील दूर है, जवकि पीकिंग हम से तीन हजार मील दूर है; इसलि[illegible] पीकिंग तक मार करना हमारे लिए मुश्कि[illegible] है। यह तर्क द्वितीय विश्वयुद्ध के समय [illegible] है, जवकि केवल राजधानियों पर वमवा[illegible] की जाती थी। आज वमवारी राजधानि[illegible] पर नहीं, बल्कि औद्योगिक, वैज्ञानिक [illegible] सामरिक महत्त्व के स्थलों पर की जाती है[illegible] ताकि शत्रुदेश की आर्थिक और सामरि[illegible] क्षमताएं नष्ट हों। यही नीति सन ६[illegible] चीन ने हमारे साथ अपनायी और [illegible] नीति हमने भी सन ६५ में पाकिस्तान [illegible] साथ अपनायी। इस दृष्टि से हमारी [illegible] मारक सीमा में चीन के अनेक महत्त्व[illegible] स्थान आ जाते हैं, जैसे–सिक्यांग। प्रति[illegible] की नीति में केवल अपना बचाव ही न[illegible] बल्कि शत्रुदेश को अधिक-से-अधिक [illegible] पहुंचाना भी शामिल है।

अब सवाल आता है आर्थिक लागत [illegible] क्या हम इतनी धनराशि इस पर व्यय [illegible] सकते हैं? वैसे इस सवाल का कोई मत[illegible] नहीं है। क्योंकि अगर खर्च की ही बात है[illegible] तो हमारी तीनों सशस्त्र सेनाओं के लि[illegible] ८००करोड़ का प्रतिरक्षा-बजट किस तरह [illegible] उचित ठहरता है ?

परमाणु-अस्त्रों का खर्च हमारे लि[illegible] साध्य है। बम बनाने और छोड़ने के साध[illegible] पर अलग-अलग अनुमानित व्यय इस प्र[illegible] आयेगा। डा० भाभा के अनुसार एक [illegible] पर औसत व्यय १८ लाख रुपये आता है[illegible] कई विशेषज्ञों की राय में यह व्यय ठीक है[illegible] यह लागत, परमाणु संस्थानों पर जि[illegible]

खर्च हो चुका है, उसके अतिरिक्त है। इस तरह सौ बमों का खर्च १,८०० लाख रुपये बैठता है। १,५०० नाटीकल माइल लिक्विड फ्यूएल्ड मिसायल का खर्च निम्नलिखित तालिका के अनुसार यों है :

विकास पर व्यय	६१ लाख रु०
डिजाइन, परीक्षण-व्यय	२७० लाख रु०
प्रोपेलेंट यंत्र	३ लाख रु०
वाहन (वेहिकल)	६० लाख रु०
देख-रेख	५ लाख रु०
रि-एंट्रीवाडी	५ लाख रु०
डिप्लायमेंट (मोर्चे पर पहुंचाने में)	२० लाख रु०
कुलव्यय प्रति मिसायल	४२४ लाख रु०

बम और मिसायल पूरी तरह से भारत में बन सकते हैं, और दोनों को सौ-सौ की संख्या में बनाने का कुल खर्च ४४२ करोड़ (बम १८ करोड़ + मिसायल ४२४ करोड़) आता है। इसका अर्थ यह है कि वर्तमान प्रतिरक्षा-बजट के १० प्रतिशत से कम खर्च (८१ करोड़ रु०) पर पंचवर्षीय योजना में एक कारगर प्रतिरक्षा-साधन प्राप्त कर सकते हैं। यह ८१ करोड़ रुपया १८,००० करोड़ रुपये से अधिक की वार्षिक आय वाले भारत जैसे देश के लिए ऐसी कोई बड़ी रकम नहीं है।

इस परमाणु प्रतिरक्षा-योजना से १,३०० इंजीनियर और ५०० वैज्ञानिकों को रोजगार मिल सकता है।

यह तर्क गलत है कि भारत के पास परमाणु अस्त्र होने से पड़ोसी राष्ट्र, विशेषतः पाकिस्तान को भारत से डर लगने लगेगा और वह भी इन्हें प्राप्त करने की कोशिश करेगा। पाकिस्तान तो स्वयं पिछले कई वर्षों से परमाणु-अस्त्र बनाने की जी-तोड़ कोशिशें कर रहा है। इस समय एशिया में शक्ति-संतुलन के लिए भारत को परमाणु-अस्त्रों से सुसज्जित करना बहुत जरूरी है।

परमाणु-अस्त्र आज शक्ति का प्रतीक है। संयुक्त राष्ट्र में सुरक्षा-परिषद् का वर्तमान स्वरूप भी इसी पर आधारित है। भारत परमाणु-अस्त्र बना ले, तो वह भी एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में कश्मीर के मामले पर परिषद् के अन्यान्य सदस्यों को भी प्रभावित कर सकता है।

('द इकनामिक टाइम्स' से साभार)

प्रतिरक्षा

हमारे देश जैसा कोई देश, जो बहुत विशाल है और जिसकी प्रतिरक्षा की उपेक्षा की जाती रही है, युद्ध की विभीषिकाओं का लंबा-चौड़ा वर्णन करके, या सर्वदा अपनी शांतिप्रियता का प्रदर्शन करके, अथवा अन्य देशों के युद्धाक्रांत लोगों की उपेक्षा करके युद्ध को नहीं टाल सकता। आज की स्थिति में युद्ध की रोकथाम आक्रांता के विरुद्ध प्रतिरोधक शस्त्रास्त्र जमा करके ही कीजा सकती है। —विंस्टन चर्चिल



पत्र और परामर्श

सत्तर वर्ष तथा उससे ऊपर के पाठकों पर रहम करके कम-से-कम आधा अंक तो बड़े टाइप में ही छपने दीजिये। मेरा ७७ वां वर्ष चल रहा है और मैं ज्यादा पढ़ नहीं पाता। फिर भी 'नवनीत' अवश्य देख लेता हूं। अत्यंत उपयोगी सामग्री उसमें मिल जाती है। 'यह मोह छोड़िये' (अप्रैल ६९) पढ़कर मैंने सब पुरानी दवाइयों को फेंक दिया। 'नवनीत' जब निकलने वाला था, मुझे याद किया गया था; परंतु मैं इतना बढ़िया न निकाल पाता। —बनारसीदास चतुर्वेदी, फीरोजाबाद

०००

डा० खुराना संबंधी मेरे लेख में हुई भूलों की ओर मेरा और 'नवनीत' के पाठकों का ध्यान आकृष्ट करके डा० अनिल सद्‌गोपाल ने जो सराहनीय कार्य किया है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। मैं समझता हूं, 'नवनीत' ही क्या, किसी भी सम्मानित पत्रिका के लिए ऐसे विज्ञ और जागरूक पाठकों के सहयोग की सख्त आवश्यकता रहती है। मैं तो डा० सद्‌गोपाल का विशेषत: आभारी हूं। —चंदन, दिल्ली

०००

यह सोलह आने सच है कि 'नवनीत' घर के किशोर सदस्यों से लेकर वयोवृद्ध व्यक्तियों तक के लिए रुचिकर पत्रिका है। इसमें प्रत्येक आयु के व्यक्ति के लिए कुछ न कुछ अवश्य रहता है। यदि आप इसे पाक्षिक कर सकें, तो अति उत्तम होगा।

—मधूलिका श्रीवास्तव, भोपाल

०००

मुझे लगभग तीन साल से 'नवनीत' का व्यसन लग गया है, जो छुड़ाये नहीं छूटता, असाध्य ही होता जा रहा है। यह विवेक करना कठिन हो जाता है कि कौन-सा अंक विशेष उपयोगी है, कौन-सा कम। एक-एक पृष्ठ मूल्यवान होता है।

—वैद्य भैरूंलाल सेन, भीलवाड़ा



घर में ही चिड़ियाघर

अजय कुमार

यह बात सुनने में बहुत आश्चर्यजनक लगती है कि लोग अपने घर के पिछवाड़े उद्यानों और बागों में चिड़ियाघर खोल लें और उनमें जंगल के खूंख्वार पशु-पक्षियों को पालें। परंतु ब्रिटेन में ऐसा होता है। इस समय वहां सैकड़ों निजी चिड़ियाघर खुले हुए हैं, और हर साल ऐसे ६ नये चिड़ियाघर खुल जाते हैं, जिनमें तरह-तरह के जलचर, थलचर और नभचर पाले जाते हैं। पशु-पक्षियों को पालना यों सामान्यतया शौक माना जाता है, लेकिन वास्तव में उसके लिए साहस, वन और उनकी प्रवृत्तियों का अच्छा-खासा अध्ययन आवश्यक है। जब तक पशु अपने वातावरण में पूरी तरह स्वाभाविकता महसूस न करें, तब तक उन्हें पाला नहीं जा सकता।

पशु-पक्षी-पालन का अर्थ यह नहीं है कि हम उन्हें पिंजरे में बंद रखकर उनको खुराक दें और जिंदा रखे रहें, या नर और मादा को एक साथ रखकर संतोष मान लें। प्रत्येक पशु की प्रवृत्ति और प्रकृति अलग-अलग होती है और उसका अध्ययन अपने आप में एक पूर्ण विज्ञान है। पशु भी आदमी की तरह अपने आपको स्वतंत्र महसूस करना चाहते

हैं और उसके साथ ही आवश्यक एकांत भी।

नीरेफौक के ग्रेट विचिंग्हम में फिलिप बेयरे ने ऐसा ही एक प्राकृतिक चिड़िया-घर अपने साठ एकड़ के उद्यान में बनाने की कोशिश की है। फिलिप का यह चिड़िया-घर यूरोप के प्रख्यात निजी चिड़ियाघरों में से एक है। फिलिप ने इसकी नींव १९६२ में रखी थी। ब्रिटिश नौसेना से रिटायर



सबसे बड़ा यूरोपीय गिद्ध ग्रिफोन

होकर उसने अपने फार्म पर टर्की मुर्गी-पालन का धंधा शुरू किया। लेकिन ३ साल बाद ही उसके पक्षियों में बीमारी फैल गयी और सरकार के आदेश पर उन्हें मरवा डाला गया। सरकार ने फिलिप को मुआ-वजे में ७५ हजार पौंड दिये। यह धन हाथ में आते ही फिलिप ने पशु-पक्षी इकट्ठे करने का निश्चय किया और साल-भर के भीतर ही उसने अच्छा-खासा चिड़ियाघर तै[यार] कर लिया।

फिलिप के सामने मुख्य समस्या थी [कि] चिड़ियाघर पर खर्च करने के लिए [धन] धन कहां से आये। उसकी पत्नी पैट ने [यह] सुझाव दिया कि चिड़ियाघर दर्शकों के लि[ए] खोल दिया जाये और टिकट लगा दि[या] जाये। पर फिलिप को इस रीति से क[माई] की आशा न थी। १९६३ में जिस स[मय] उसने अपना चिड़ियाघर जनता के लि[ए] खोला, तो अपने परिवार के लोगों के [साथ] शर्त लगायी कि मेरा चिड़ियाघर देखने [के] लिए ११ से अधिक लोग नहीं आयें[गे।] लेकिन पहले ही दिन ३५७ दर्शकों को [आया] देखकर वह चकित रह गया। और अ[गले] रविवार को तो दर्शकों की संख्या १,५[००] तक पहुंच गयी।

फिलिप ने चिड़ियाघर देखने और घू[मने] के लिए प्रति व्यक्ति ४ पेंस का टिकट [लगा] दिया है। अब उसका चिड़ियाघर पूरे [साल] खुला रहता है और साल-भर में कोई [...] लाख लोग उसे देखने आते हैं। ये द[र्शक] शेफील्ड, बर्मिंग्हम और लंदन तक से आ[ते] हैं। इस आकर्षण का मुख्य कारण यह है [कि] फिलिप ने अपने चिड़ियाघर में पशु-पक्षि[यों] को पिंजरों या छोटे-छोटे बाड़ों में नहीं र[खा] है। उसने उनके लिए लंबे-चौड़े और प्रा[कृ]तिक बाड़े बनवाये हैं, जिनमें दर्शक पशु[ओं] को निकट से देख सकते हैं तथा उनके और पशुओं के बीच लोहे के जंगले बाधक [नहीं] बनते। पशु ही नहीं, दर्शकों को भी [...]

देखना अच्छा नहीं लगता।

फिलिप ने अपने चिड़ियाघर में तरह-तरह के जीव-जंतु पाल रखे हैं—जंगली सूअर, बिडाल, हिरन, मलाया का भालू, फ़ारमोसा के गरुड़, ओटर, खरगोश, गरुड़-उल्लू आदि। विडाल के लिए उसने ४ हज़ार पौंड की लागत से एक प्राकृतिक बाड़ा बनवाया, जिसके चारों ओर अठारह फ़ुट ऊंची दीवार है। विडाल आम तौर पर २० फ़ुट की ऊंचाई तक कूद सकता है। मगर फिलिप ने दीवार की ऊपरी ढलान इतनी चिकनी बनवाई है कि यदि कभी विडाल ने छलांग लगायी भी, तो वह दीवार पर से फिसल जायेगा। दर्शक इस दीवार पर पीछे से चढ़कर विडाल को देखते हैं।

फिलिप अपने पशु-पक्षियों के बीच बड़ी निर्भयता से घूमता है, लोमड़ियों को गोद में उठा लेता है और भेड़ियों की नाक सहलाता रहता है। उसे जंगली सूअर की थूंथन पर हाथ फेरने में तनिक भी डर नहीं लगता। वह डरता है तो बस जंगली भैंसे से। उसकी इस निर्भयता का मूल आधार उसका आत्मविश्वास है, या पशुओं का प्रेम पहचानने की शक्ति? इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है।

मलाया का भालू फिलिप के चिड़ियाघर का सबसे अधिक आकर्षक पशु है। कुछ दिनों तक तो फिलिप की पत्नी पैट उसे साथ लिये-लिये फिरी। लेकिन एक दिन जब उसने इस भालू—पूह को नींद से जगाने के लिए अपने पांव के पंजे से उसका पेट गुदगुदाया, तो उसने लपककर पैट का पांव मुंह में भर लिया और उसकी पिंडली का मांस नोच डाला। उस दिन से पैट ने पूह को साथ रखना बंद कर दिया। पशु तो आखिर पशु ही है।

फिलिप का चिड़ियाघर कई दृष्टियों से बेजोड़ है। इतिहास में पहली बार उसके चिड़ियाघर के ओटरों ने बच्चे दिये। इतना ही नहीं, इंग्लैंड के भूरे खरगोश, रो नामक हिरन और उत्तर ध्रुव के भालू ने भी दुनिया में पहली बार उसी के चिड़ियाघर में बच्चे दिये। उसका दावा है कि यदि पशु-पक्षियों को आवश्यक मात्रा में एकांत दिया जाये, तो वे चिड़ियाघर में भी बच्चे पैदा कर सकते हैं।



यूरोपीय लिंक्स

फिलिप के इस कारनामे का समाचार जब लंदन के सरकारी चिड़ियाघर के संचालक को मिला, तो उसने फिलिप को अपने ची-ची मादा पंडे की कहानी सुनायी। उसने बताया कि हमने रूस से एन-एन नामक नर

पंडा मंगाकर अपने यहां रखा है, लेकिन वे दोनों बच्चे पैदा करने के लिए राजी नहीं हुए हैं।

फिलिप कहता है कि पंडों के व्यवहार को समझना बहुत कठिन होता है। उसने सुझाव दिया है कि एन-एन और ची-ची के रखवालों को चाहिये कि वे ठीक उसी समय उन्हें अलग-अलग न करें, जब वे दोनों अपने प्रेम के चरम उत्कर्ष पर पहुंचकर आपस में नोंक-झोंक कर रहे हों। उन्हें दीर्घकाल तक साथ रखा जाना चाहिये।

फिलिप एंग्लिया-टेलिविजन कंपनी में प्राकृतिक इतिहास के विशेषज्ञ के रूप में काम करता है। उसने पशुओं के जीवन से संबंधित अनेक फिल्मों में भी काम किया है। उसकी सबसे अधिक सफल फिल्म 'वि... इन दी रीड्स' है। फिलिप दुर्लभ जाति... पशु-पक्षियों की नस्ल बढ़ाकर उनको ... होने से बचा रहा है। पिछले दिनों उसने यूरो... पीय नस्ल के तीन जोड़े गरुड़ स्वीडन की सर... कार को वहां के जंगलों में छोड़ने के लि... भेंट किये हैं।

अब उसने अपने आस-पास के ... चिड़ियाघरों का एक संघ बना लिया है ... सदैव इस बात की चेष्टा करता रहता है ... पशु-पक्षियों के साथ अच्छा व्यवहार कि... जाये, उन्हें प्राकृतिक वातावरण में र... जाये और आने वाले हजारों दर्शकों त... पड़ोसी बस्तियों की उचित सुरक्षा की पूरी... पूरी व्यवस्था की जाये।

पागलखानों के विरोध में

अमरीका के प्रसिद्ध मानस-चिकित्सक डा० रोनाल्ड लैंग ने आधुनिक मानस-चिकित्सा-पद्धति की उपयोगिता एवं आवश्यकता पर संदेह प्रकट करते हुए कहा है कि वह सर्वथा प्रभावहीन ही नहीं, अपितु क्रूर भी है। उनकी राय में मानस-चिकित्सकों द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्न रोगी को अपनी नजरों में गिराते हैं और आज के पागलखाने चिकित्सालय नहीं, कैदखाने हैं, जहां रोगी से उसके सब नागरिक अधिकार छीन लिये जाते हैं।

डा० लैंग ने आज के प्रचलित उन्माद रोग के लिए समाज को दोषी ठहराते हुए लिखा है—"मनुष्य स्वभाव से निरंतर आत्मपीड़क रहा है। उसकी आत्मविनाशोन्मुख प्रकृति ही उसे मानव-संहारकारी युद्धों के लिए विवश करती रही है। बचपन से ही मनुष्य में आत्म-पीड़ा की प्रवृत्तियां सिर उठाने लगती हैं। माता-पिता स्वयं अपनी संतान के विकास में ही बाधक नहीं बनते, बल्कि अपनी इच्छाओं को उस पर थोप करके उसके व्यक्तित्व पर कुठाराघात करते रहते हैं। बालक जब स्कूल में जाता है, तो उसके शिक्षक इस विनाश-कार्य को अपने हाथ में ले लेते हैं। परिणामत: १५ वर्ष की आयु तक बालक का मन इतना विक्षिप्त हो चुका होता है कि वह इस दीवानी दुनिया में स्वस्थ और संतुलित व्यवहार करने योग्य नहीं रहता।"

—डाय...



अंतिम इच्छा

— स्वामी विवेकानंद

इस जगत् में अगर मैं किसी से प्यार करता हूं, तो वह है मेरी मां। मेरी मां—जिसने अपनी तमाम सांसारिक यंत्रणाओं के बीच भी मेरे प्रति स्नेहमयी-ममतामयी बनी रहकर मुझे संपूर्ण मानव-जाति को प्यार करना सिखाया।

उसका सारा जीवन कष्टमय रहा है। मेरा मंझला भाई भी जब से घर छोड़कर निकला है, मां का हृदय विदीर्ण हो गया है। मेरा सबसे छोटा भाई इस योग्य नहीं दिखता कि वह घर चलाने लायक कुछ संतोषजनक उपार्जन कर सके। और अपने सबसे प्यारे बेटे को, जिसे वह अपना एकमात्र भरोसा समझती थी, ईश्वर और मानव-जाति की सेवा में अर्पित कर दिया।



मैंने अपनी मां का समुचित ध्यान नहीं रखा। अब मेरी एक ही अंतिम इच्छा है कि मैं शेष समय मां के साथ रहकर उसकी सेवा-शुश्रूषा में लगाऊं। इससे निश्चय ही मेरे और मां के अंतिम दिन सहजता में बीतेंगे।

श्री शंकराचार्य को भी ठीक यही करना पड़ा था। अपने जीवन के अंतिम दिनों में वे मां के पास लौट गये थे। मैं भी जीवन के शेष दिन मां के साथ उसकी सेवा में गुजारना चाहता हूं। [जयपुर के महाराज अजित सिंह को लिखे एक पत्र का अंश]

०००

मृत्यु के बाद भी रक्षा

— अवनींद्रनाथ ठाकुर

एक बार मेरे सीने में अचानक जोर का दर्द शुरू हुआ। दर्द इतना असह्य था कि तड़पता-तड़पता मैं बेहोश हो गया। कई डाक्टर आये और चिकित्सा की। दर्द भी अजीब

था। सुबह सब ठीक, पर शाम होते ही शुरू हो जाता था। सो शाम आते ही दर्द का भय सताने लगता, जैसे कि सिगनल हो चुका है, अब गाड़ी आने ही वाली है।

पर एक दिन तो सुबह से ही दर्द शुरू हो गया। मैं छोटे बच्चों की तरह चिल्लाने लगा—"मैं मर जाऊंगा, मर जाऊंगा।" लगता था कि अब अंतिम समय आ पहुंचा है। डाक्टरों ने मर्फिया के तीन-तीन इंजेक्शन दिये—एक सुबह, एक दोपहर और एक रात दस बजे। मैं डाक्टरों के आगे गिड़गिड़ाया कि चाहे कुछ भी करें, पर ऐसा कर दें कि मुझे नींद आ जाये। पर डाक्टर भी परेशान थे। दिन में तीन-तीन मर्फिया के इंजेक्शन!

अपने कमरे में से एक-एक को मैंने विदा कर दिया और कहा कि आज मैं एकदम अकेला रहना चाहता हूं। सारा मकान निस्तब्ध था। आंखें खोले मैं बिस्तर पर पड़ा था। लग रहा था कि मर्फिया का असर धीरे-धीरे हो रहा है। फिर मैंने देखा, तो लगा कि मेरे चारों ओर की मच्छरदानी हिलती-हिलती खिसक गयी है। चारों ओर की दीवारें भी हिलती हुई दिखाई देने लगीं। ऐसा लगा कि चाहूं, तो इन दीवारों से पार निकल जाऊं। इसी तरह प्रभात-वेला आ पहुंची।



जाक लिपाचट्सी की एक कांस्य मूर्ति

मैं अभी देख ही रहा था, तभी एक हाथ मच्छरदानी के ऊपर से नीचे आया। देखते ही मैंने उसे पहचान लिया, वह मां का हाथ था। मैं जड़वत् पड़ा रहा। जैसे मां कह रही थी—"कहां दर्द हो रहा है बेटा?......यहां?......यहां?......यहां ना?" और उस हाथ ने ठीक उसी स्थान का स्पर्श किया, जहां असह्य पीड़ा हो रही थी। सारा शरीर जैसे चौंक उठा! चारों ओर देखा, पर कहीं कोई न था। और मेरा दर्द? मेरी पीड़ा? मैंने करवट बदली और उठ बैठा।

इधर-उधर देखा, पर मेरी पीड़ा—मेरा दर्द जैसे छूमंतर हो गया! अभी तो मैं जड़वत् पड़ा था—जरा भी हिलने-डुलने की शक्ति मुझमें न थी। और अब मैं बिस्तर पर स्वयं उठ बैठा था! क्या कहूं? मैं मन-ही-मन अवाक् बन गया।

कुछ देर बिस्तर पर बैठा-बैठा सोचता रहा। फिर बाहर निकला। अब मैं एकदम स्वस्थ था। बीमारी का कहीं नामोनिशान नहीं। पास में सोये नौकर को जगाकर कहा—

"किसी को बुलाने की जरूरत नहीं, चुपचाप एक गिलास ठंडा पानी ले आ।" वह ठंडा पानी ले आया। मैंने हाथ-मुंह धोया। ताजा होकर उससे कहा–"अब तू जाकर एक कप बढ़िया चाय और दो टोस्ट अच्छी तरह सेंककर मक्खन चुपड़कर ले आ। बाहर के बरामदे में मैं चित्र बना रहा हूंगा, वहीं आ जाना। और देख, हुक्का भी भर लाना।"

नौकर ने मेरे आदेश का पालन किया। सुबह पांच बजे बड़े भाई साहब ने ऊपर से उतरते हुए जीने से ही मुझे देखा, तो अवाक् रह गये! बोले–"यह क्या? तुम यहां आकर बैठे हो?" मैंने कहा–"अब अच्छा हो गया हूं, भैया!" कुछ समय बाद बाकी लोगों ने भी आकर घेर लिया।

फिर डाक्टर भी आ गये। मुझे बरामदे में प्रसन्नचित्त बैठा देखकर वे चौंक गये। मैंने कहा–"अब आपकी जरूरत नहीं रह गयी।" ['जोड़ासांकोर धेरे' से]



अमीर देश, गरीब देश

गरीब देशों से अमीर देश कितना लाभ उठा रहे हैं, इसका अनुमान लगाना हो, तो लंदन की एक व्यापारिक कंपनी द्वारा अफ्रीकी व्यापार से अर्जित लाभ का यह मोटा-मोटा हिसाब देख लीजिये, जो 'न्यूजवीक' में छपा है।

"पिछले वर्ष नाइजीरिया के उपद्रवों से पेट्रोल व्यापार द्वारा होने वाली २५ करोड़ डालर की सालाना आय का अंत हो गया था। इस बीच तांजानिया की राष्ट्रीयकरण नीति से भी विदेशी व्यापार का द्वार दीर्घ काल के लिए बंद हो गया। फिर भी लंदन की लन्रोह लिमिटेड (लंदन एंड रोडेशिया लिमिटेड) ने ३० सितंबर १९६८ को समाप्त होने वाले आर्थिक वर्ष में १.२ करोड़ डालर का लाभ कमाया है, जबकि १९६१ में लाभ की राशि ४ लाख डालर ही थी। इस वर्ष उक्त कंपनी को २४ करोड़ डालर के व्यापार पर २.४ करोड़ लाभ होने का अंदाजा है। कंपनी के चेयरमैन ने बताया है कि जिन हिस्सेदारों ने १९६१ में १०० पौंड का शेयर खरीदा था, आज उनका शेयर १,१०० पौंड कीमत का है।

नये साल में लन्रोह लिमिटेड कंपनी अफ्रीका के कांगो राज्य में ५६० मील रेल बनाने का ठेका लेने की योजना बना रही है। यह काम ३६ करोड़ डालर की लागत से होने वाला है।

कंपनी के अफ्रीकावासी प्रतिनिधि ने स्थिति की समीक्षा करते हुए कहा है:

"समुन्नत राष्ट्रों की समृद्धि पिछड़े देशों के विकास पर ही निर्भर करती है। अमीर देश यदि गरीब देशों से विमुख हो जायेंगे, तो उनका भी ह्रास प्रारंभ हो जायेगा। विकासोन्मुख देशों के पास खनिज पदार्थों का अनमोल खजाना है। उनसे व्यापारिक आदान-प्रदान बनाये रखने की नीति ही हमारे लिए श्रेयस्कर है।"



कवि और शब्द

उमाशंकर जोशी

यह हुआ कैसे कि मैं, उत्तर-पूर्व गुजरात के एक गांव का युवक, 'अग्निशिखा के मुकुल-सा' 'शब्द' से मोहित हो गया ? यह प्रश्न मैंने अनेक बार अपने से पूछा है; किंतु आज भी मुझे उत्तर की प्रतीक्षा है। मुझे जिस बात का पूर्ण निश्चय है, वह यह है कि कवि के रूप में विकास पाने का अर्थ है—बृहत् और बृहत्तर सामाजिक परिवेश से अपने आपको संपृक्त करना।

'शब्द' के प्रति मेरे आकर्षण का कारण क्या यह था कि मेरे माता-पिता और गांव के मेरे आस-पास के आदमी अपनी जिह्वा पर 'शब्द' के स्वाद के रसिया थे ? कम से कम मुझे तो उन सबके बारे में ऐसा ही लगता था।

लेकिन इससे बहुत पहले कि मुझे इस स्थिति का बोध हो, 'शब्द' मुझे वहां ले गया, जहां मानव-जीवन का कितना कुछ अभिव्यक्ति के लिए आतुर रहता है। इसने वस्तुओं और प्राणियों के साथ मेरी गहरी परिचिति स्थापित कर दी।

'शब्द' वह कुंजी थी, जिसकी सहायता से सब कुछ मेरे सामने अपने को खुला करता था। अंततः यह शब्द ही था, जिसने अतीत में जो भी सार्थक था, उसे मेरे लिए सजीव वर्तमान बना दिया, और अदृष्ट भविष्य की सागर-यात्रा के पथ को अंकित कर दिया, और मुझे निजी अंतरंगता की ऋद्धि से मंडित कर दिया।

कविता शब्द-निर्मिति है और सृजनात्मक शब्द के माध्यम से किसी कवि-आत्मा के गहरे स्पंदन पाठकों की चेतनता में आनंद का रूप लेकर अनूदित हो जाते हैं, या कहें कि स्वयं पाठकों का चिदानंद हो जाते हैं।

कवि तो एक तीर्थयात्री है, शब्द जिसका पथप्रदर्शक है। नहीं, इससे कहीं अधिक है वह। शब्द ही वह तत्त्व है, जिसके द्वारा-मात्र जिसके द्वारा ही—कवि अस्तित्ववान है। और फिर वह कभी इस अनुभूति तक पहुंचता है, जहां शब्द और कर्म का अंतर कम होते-होते दोनों एक छोर के बिंदु पर मिलते हैं। शब्द स्वयं ही कर्म हो जाता है।

ऋग्वेद का समस्त-पद 'कवि-क्रतु' मुझे बहुत रुचता है। कवि वह है, जो उस पार देखता है, जो उस अपरंपारीय परिदृश्य का गान करता है। क्रतु ही कर्त्ता है, अर्थात् कर्मठ व्यक्ति। इस अर्थ में कवि-क्रतु है गायक-कर्त्ता—वह जिसका कर्म ही गान है। कल रवींद्रनाथ ऐसे थे। आज ओक्टाविओ पाज ऐसे हैं।



मलय



खोज-खबर

अंधरे को सब कछु दरसाई

समुद्र-तट पर एक अंधा आदमी खड़ा है और बच्चों के रेत के घरौंदे बनाते-बिगाड़ते तथा लहरों को जमीन पर पछाड़ खाते और टूटते देख रहा है और मंद-मंद मुस्करा रहा है......यह कोरी कल्पना नहीं है। 'कार्टिकल' दृष्टि के वैज्ञानिक प्रयोगों ने इसको अब संभाव्य बना दिया है। आज न सही, मगर भविष्य में अंधों के देखने-पढ़ने के दृश्य हमें देखने को मिलेंगे।

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के डा० जी० एस० ब्रिडले और डा० डब्ल्यू० एस० लेविन ने एक पूर्ण अंध महिला की खोपड़ी के नीचे इलेक्ट्रोडों की एक परत बिछाकर उसके मस्तिष्क के दृष्टि-खंड से इलेक्ट्रोडों का सीधा संबंध जोड़ दिया। जब इलेक्ट्रोडों में बिजली छोड़ी गयी, तो औरत को रोशनी देखने का संवेदन हुआ। दृष्टि का संवेदन उत्पन्न करने के लिए वैज्ञानिकों ने अस्सी इलेक्ट्रोड लगाये थे और खोपड़ी पर लगाये हुए सिलिकोन रबर से ढंके तारों से उनमें बिजली पहुंचायी थी।

यह वैद्युतिक दृष्टि अंधों की किस हद तक सहायता कर सकेगी, इसकी जांच केम्ब्रिज के वैज्ञानिक कर रहे हैं। उन्होंने पाया है कि अलग-अलग शक्ति और फ्रीक्वेन्सी की बिजली भेजने से अंध महिला को दृष्टि-क्षेत्र के विविध भागों में प्रकाश का संवेदन हुआ। वह औरत एक इंच के दसवें भाग जितनी दूरी पर लगाये गये दो इलेक्ट्रोडों के उत्तेजित किये जाने पर स्पष्ट अलग-अलग प्रकार के दृश्य-संवेदन अनुभव कर सकी। इससे दोनों डाक्टरों ने यह अनुमान किया है कि यदि मस्तिष्क में ६०० इलेक्ट्रोड लगाकर उन्हें साधारण पेज-स्कैनिंग उपकरण से उत्तेजित किया जाये, तो अंधे आदमी छपी पुस्तक पढ़ सकेंगे।

यह तो दूर की बात हुई। अभी अंधों की सबसे बड़ी आवश्यकता है—विश्वसनीय और कम खर्चीला मार्गदर्शक यंत्र, जो उन्हें रास्ते

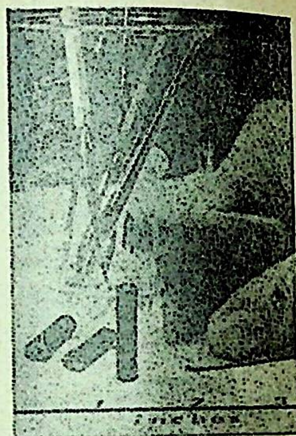
में आने वाले पेड़, खंभे, धरती पर रखी दूसरी चीजों से आगाह कर सके। मेक्सिको की नेशनल यूनिवर्सिटी के डा० अरमांदो देल कैंपो ने मस्तिष्क को ऐसी सूचना देने की विधि आविष्कार की है।

प्रकाश के प्रति संवेदनशील कई वस्तुओं के संयोजन से उन्होंने ऐसी व्यवस्था की है, जिससे दृश्य वस्तुओं के बिंब विद्युत्-संकेतों में बदल जाते हैं और पांचवीं क्रेनियल तंत्रिका के रास्ते मस्तिष्क में पहुंचते हैं। अभी तो इससे सफेद, स्लेटी या काले रंगों की ही अनुभूति होती है, मगर चमकीली दीप्तिमान वस्तुएं साफ अलग दिख जाती हैं।

बहरो सुनें :

हाल में अमरीका में बीस बहरे आदमियों ने ट्रंक-काल पर आपस में बातचीत की। इसके लिए उन्होंने जिस उपकरण का उपयोग किया, उसका नाम है—'पिक्चर-फोन'। विचार पुराना ही है, टेलिफोन के साथ टेलिविजन भी जोड़ दिया गया है, जिससे वह ध्वनि और चित्र दोनों को वहन करता है। बहरों ने ए० टी० एंड टी० कंपनी के बनाये इस उपकरण पर एक-दूसरे की बातें मजे से सुनी-समझीं, क्योंकि पिक्चरफोन उनकी आवाजों को ही नहीं, उनके इशारों, ओंठों के चलन और उंगलियों की संकेत-लिपि को भी दूसरों तक पहुंचाता है। यदि यह यंत्र बड़े पैमाने पर बने और जरूरतमंदों तक पहुंचे, तो बहरों की सचमुच ही बन आयेगी।

कहावत है—"सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय।" किंतु विज्ञान के ये प्रयत्न निर्बलों की सहायता करने की उसकी लगन के प्रमाण हैं।



पोलियेस्टर से बनायी गयी ये कृत्रिम रक्तवाहिनियां रक्तवाहिनी संबंधी बीमारियों के शल्योपचार में सहायक होंगी।

सूई में निवास :

अभ्रंकष अट्टालिकाओं (स्काइस्क्रेपरों) के अभाव में भारत के महानगर कई दशकों से हीन-भावना से ग्रस्त थे। अब ज़ब कि बंबई, दिल्ली आदि में अट्ठाईस-तीस मंजिल के मकानों का निर्माण हो रहा है, तो हमारे शहरी आत्माभिमान को फिर से बल मिला है। लेकिन यह अभिमान ज्यादा दिन तक शायद नहीं टिक पायेगा।

लंदन के वास्तुशिल्पी विलेम फ्रिशमन का कहना है कि अगले तीस बरसों में दो मील ऊंची इमारतें बनाना संभव होगा। इनमें ८०० से लेकर ९०० तक मंजिलें होंगी।

मई

मगर चौड़ाई होगी केवल १,००० फुट। आकाश को बींधती हुई इन सूइयों में से एक-एक में ३ लाख आदमी रह सकेंगे।

हंगरी में जनमे वास्तुशिल्पी विलेम फ्रिशमन का कहना है कि अमरीका के भयानक तेजी से फैलते हुए नगरों के लिए ही नहीं, बल्कि भारत जैसे जनसंकुल देश के लिए भी ये सूइयां वरदान सिद्ध होंगी। अमरीका की बात अमरीकी जानें। यहां तो यदि अगली तीन पंचवर्षीय योजनाओं के बाद भी प्रत्येक परिवार को आठ फुट ऊंचा एक कमरे वाला पक्का मकान सिर छिपाने को नसीब हो जाये, तो बहुत बड़ी बात होगी।

रद्दी से रुपया नहीं, राकेट :

अमरीका के राकेट रिसर्च कार्पोरेशन ने हाल में एक नये इंजन का प्रदर्शन किया, जिसे उसने नासा के लिए विकसित किया है। यह मानेक्स-डब्ल्यू नामक ईंधन से चलेगा। मानेक्स-डब्ल्यू के मुख्य घटक हैं अंतरिक्ष-यान के यात्रियों का मल-मूत्र, यान में उत्पन्न होने वाला कार्बन डाइआक्साइड, मुंह-हाथ धोने के बाद का पानी, बचा-खुचा भोजन और कूड़ा-करकट। इनके साथ अल्युमिनियम का चूर्ण और अमोनियम नाइट्रेट मिला दिया जाता है। जलते समय यह ईंधन नारंगी रंग की लौ देता है। मानेक्स-डब्ल्यू का उपयोग करने वाली राकेट-मोटर की जांच कारखाने में हो चुकी है।

नये तत्त्व की भनक :

वैज्ञानिकों को एक नये तत्त्व के अस्तित्व का सुराग मिला है और कैलिफोर्निया (अमरीका) की लारेन्स रेडिएशन लैबोरेटरी के विज्ञानी उसका पता लगाने में जुटे हुए हैं। अत्यंत ऊंचाई पर उड़ते हुए एक ब्रह्मांड-किरण-खोजी गुब्बारे को ब्रह्मांड-किरणों में इसके अस्तित्व का संकेत मिला। ऐसा माना जाता है कि यह नया दीर्घजीवी तत्त्व प्लाटिनम से संबंधित है, मगर उससे भारी है। यदि इसे प्राप्त किया जा सका, तो संभव है कि उससे ऐसे अनेक अज्ञात तत्त्वों का पता चल जाये, जिनका अस्तित्व सुदूर ब्रह्मांड में संभव है।

अब प्लास्टिक के दिल :

हृदय-प्रतिरोपण की धूम के बाद अब बनावटी हृदय भी लगाया जा चुका है। हाउस्टन (टेक्सास, अमरीका) के सेंट लूक एपिस्कोपल अस्पताल में सर्जन डेन्टन ए० कूली ने रोगी हेस्कल कार्प का हृदय निकालकर उसे प्लास्टिक-निर्मित हृदय लगाया, सात दिन उस पर जी लेने के बाद सौभाग्यशाली कार्प को एक ४० वर्षीय महिला का असली हृदय मिल गया। इससे पूर्व ही डा० कूली ने लास एंजल्स में हृदय-चिकित्सकों के एक सम्मेलन में कहा था कि प्रतिरोपण के लिए उपयुक्त मानव-हृदय मिलने तक रोगी को जिलाये रखने में कृत्रिम हृदय सहायक होगा। डा० कूली ने यह भी बताया कि शरीर दो प्रकार से हृदय का नियंत्रण करता है—१.स्नायुतंत्र द्वारा और २. रसायनों द्वारा। इसीलिए महाधमनी से जुड़ते ही प्रतिरोपित हृदय काम शुरू कर देता है, हालांकि मस्तिष्क से उसका कोई संबंध अभी नहीं जुड़ा होता।



बाटिक विश्व को भारत की एक देन

ज्योतिरिंद्र राय

'बाटिक' इंदोनेशियाई भाषा का शब्द है। जावा-बाली द्वीपसमूह में प्रचलित, पिघले हुए मोम के सहारे कपड़े पर रंगीन चित्रमुद्रण-प्रणाली को बाटिक कहा जाता है।

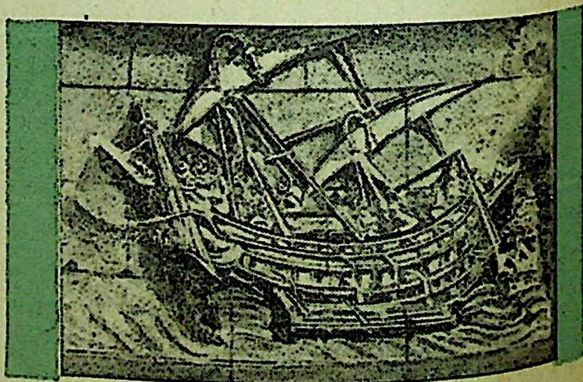
इतिहासकारों का विश्वास है कि प्रायः दो हजार वर्ष पूर्व इसी भारत-भूमि में बाटिक कला का जन्म हुआ था। बाद में जब भारतीय सभ्यता और संस्कृति एशिया के विभिन्न देशों में फैली, तो उसके साथ बाटिक कला भी उन देशों में गयी। किंतु कालक्रम में किन परिस्थितियों में यह कला भारत से विलुप्त हो गयी और इंदोनेशिया में जाकर स्थायी रूप से प्रतिष्ठित हो गयी, इसका कोई भी उत्तर इतिहास स्पष्ट रूप से नहीं देता।

दूसरी ओर पाश्चात्य इतिहासकारों का कहना है कि बाटिक मध्य पूर्व की कला-संपदा का अंग है। मिस्र में प्राप्त कुछ ममियों से लिपटे हुए वस्त्रों पर अंकित रंगीन चित्र बाटिक शैली में हैं और पाश्चात्य इतिहासकार इन्हें प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

किंतु बाटिक के वर्तमान केंद्रस्थल इंदोनेशिया में आज भी जो प्राचीन बाटिक चित्र-शैली प्रचलित है, उसमें मिस्र की अनुकृति का कोई निदर्शन नहीं मिलता, बल्कि उसमें हर जगह भारतवर्ष की विशिष्ट शिल्प-धारा की अनुकृति ही दिखाई पड़ती है।

इंदोनेशिया के मंदिरों के वास्तुशिल्प में भी भारतीय धर्म और संस्कृति की स्पष्ट छाप है। इसके अलावा आंध्र प्रदेश के 'कलमकारी' शिल्प और गुजरात-राजस्थान के ग्रामांचलों में प्रचलित वर्ण-प्रतिरोधक अंकन-शैली में और इंदोनेशिया की बाटिक शैली के प्रयोग-कौशल में निस्संदेह मूलगत सादृश्य है।

भारतीय जलपोत—बोरोबुदुर मंदिर



कुछ ही दिनों पहले कच्छ के कुछ अंश को पाकिस्तान में विलय करते समय वहां एक अनुन्नत आदिम संप्रदाय का पता चला। देखा गया कि प्रकृति की गोद में सहज-सरल जीवन-यापन करनेवाले ये आदिवासी दैन-दिन काम में आने वाले अपने कपड़ों को बाटिक शैली की वर्ण-प्रतिरोधक पद्धति से रंगते-सजाते हैं।

किंतु मोम के बदले वे चावल का मांड़ इस्तेमाल करते हैं। कभी-कभी यह मांड़ गेहूं से भी बना लिया जाता है। इसके अलावा गोबर के साथ एक प्रकार की मिट्टी मिला-कर मांड़ बनाने की पद्धति भी उनमें प्रच-लित है। इस मांड़ के सहारे कपड़ों पर जो चित्र बनाये जाते हैं, वे उतने परिमार्जित तो नहीं होते; मगर अंकन-पद्धति बाटिक की ही है। वैसे ये लोग मोम का व्यवहार भी करना जानते हैं।

ऐतिहासिक विवरणों से यह पता चलता है कि सन ७८ ई० में एक भारतीय नरेश ने गुजरात से जाकर जावा में उपनिवेश बसाया था और तभी से उस द्वीपसमूह में हिन्दू राजवंश का उद्भव हुआ। वैसे जावा और वाली द्वीपसमूह के साथ चीन और भारतवर्ष का वाणिज्य-संपर्क इससे बहुत पहले हो चुका था।

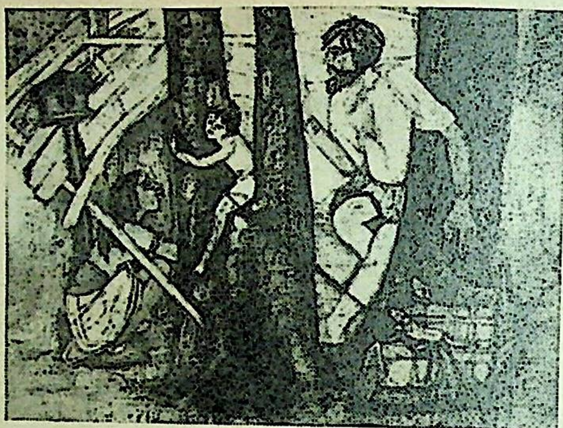
दूसरी शताब्दी में दक्षिण भारत के राजाओं की मुद्रा पर जो दो मस्तूल वाले जहाज की प्रतिकृति अंकित रहती थी, ठीक वैसी ही प्रतिकृति जावा द्वीप के विख्यात प्राचीन मंदिर बोरोबुदुर के प्राचीर पर अंकित मिलती है। और इससे लगता है कि दो हजार वर्ष पूर्व भी इंदोनेशिया के साथ भारत का संपर्क बड़ा घनिष्ठ था। इस वाणिज्य-संबंध के सहारे इंदोनेशियाई द्वीप-



तोता : मालिनी जसानी

समूहों में भारतीय संस्कृति और कला का जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

फिर अरबी मुसलमान, पुर्तगाली और सबसे अंत में डच व्यवसायी इन द्वीपसमूहों में आये। सत्रहवीं शताब्दी में इन्हीं डच व्यवसायियों और पर्यटकों ने पहले-पहल हालैंड और बाद में यूरोप के अन्यान्य देशों में बाटिक का प्रचार किया।



विस्मृत नागरिक : सरयू जसानी

अरबी मुसलमान व्यवसायियों ने तो बाद में अपना प्रभुत्व इतना बढ़ा लिया कि हिन्दू राजाओं को हराकर मुसलमान राजतंत्र स्थापित कर लिया; लेकिन मुसलमान विजेताओं ने हिन्दू धर्मावलंबियों के आचार-व्यवहार को नष्ट नहीं किया, बल्कि उसके प्रति श्रद्धा और सहानुभूति दिखायी।

पुर्तगाली और डच साम्राज्य-काल में भी हिन्दू संस्कृति की धारा यहां अबाध बहती रही। इसलिए कहा जा सकता है कि हिन्दू संस्कृति की छाया में इंदोनेशिया का बाटिक शिल्प आज भी भारतीय संस्कृति की पताका फहरा रहा है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले तक इंदोनेशिया के नर-नारी पोशाक और गृहसज्जा में व्यवहृत होने वाले कपड़ों में बाटिक कला का ही प्रयोग करते थे। मगर आज औद्योगिकता की मोहिनी माया में इंदोनेशिया भी पूरी तरह आविष्ट है

एक समय था, ... बाटिक इंदोनेशिया ... राष्ट्रीय गौरव सम... जाता था। सारे इं... समूहों में बाटिकने कुटी... उद्योग का स्थान ले लि... था। यहां तक कि वधू ... चयन भी उसके बाटि... ज्ञान के आधार पर कि... जाता था। जब यूरोप ... बाटिक वस्त्रों का प्रवे... हुआ, तो प्रचुर परिमाण ... इंदोनेशिया का बाटिक निर्यात किया ... और जावा-बाली द्वीपपुंजों के कारीग... ने खूब धन कमाया।

किंतु कपड़ों की छपाई का काम करने वाले यूरोप के व्यवसायियों को इसमें संतो... नहीं हुआ और उन्होंने जर्मनी में बाटि... शैली की एक आधुनिक मुद्रण-पद्धति ... प्रवर्तन किया।

बाटिक कला की विशेषता यह है कि प्रत्ये... चित्र का रंग तूलिका की एक ही टान ... अंकित स्पष्ट और सुथरी रेखाओं से पूरा न... हो जाता, बल्कि मकड़ी के जाले-जैसी टूटी-फूटी रेखाओं में चारों ओर बिखरा रहता है।

कपड़े पर तूलिका द्वारा मोम की त... डाली जाती है और उस तह के कट-फट जाने पर जो सूक्ष्म गड्ढे बनते हैं, उनमें जब विभि... रंग भरे जाते हैं, तो मकड़ी के जाले-जै... रेखाएं उभर आती हैं। ब्लाक प्रिंटिंग ...

माध्यम से रंगों की यह सहज, सुंदर और स्वतंत्र गति लाना संभव नहीं है।

जर्मनी के मुद्रित बाटिक में हस्तकला द्वारा तैयार किये गये बाटिक-जैसी सूक्ष्मता और सुंदरता तो नहीं आ पायी, मगर वह यंत्र-मुद्रित होने के कारण बाजार में अपेक्षाकृत बहुत सस्ते दामों पर बिकने लगा। फिर यह नकली बाटिक भारत और इंदोनेशियाई द्वीपपुंजों में भी आ धमका। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले भारत की प्रसिद्ध अंग्रेज व्यवसायी-कंपनी व्हाइटवे लेडला ने अपनी कलकत्ता, दिल्ली और बंबई की दुकानों में यह जर्मन बाटिक प्रचुर मात्रा में बेचा था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इंदोनेशिया में भी लोगों ने बाटिक-मुद्रण का काम शुरू किया; क्योंकि इंदोनेशियावासी बाटिक



राग यमन : तरला मटानी



ज्योतिरिंद्र राय
बाटिक को समर्पित जीवन

को राष्ट्रीय संपदा समझते थे और यह नहीं चाहते थे कि उनकी इस संपदा पर यूरोप का एकाधिकार हो जाये। किंतु हस्तकला के रूप में बाटिक की स्वतंत्र प्रणाली में जिस मौलिक शिल्प-सृष्टि का उत्कर्ष हुआ था, वह यंत्र-मुद्रित बाटिक में निष्प्रभ हो गयी।

सन १९२७ में कविगुरु रवींद्रनाथ ठाकुर ने जावा-बाली द्वीपपुंजों का भ्रमण किया था। वहां के राज-परिवारों, विशिष्ट नागरिकों और विभिन्न संस्थाओं से उन्हें जो उपहार मिले, उनमें सूक्ष्म बाटिक कारीगरी से युक्त वस्त्र विशेष उल्लेखनीय थे। भारत लौटकर कविगुरु ने बाटिक शिल्प का प्रवर्तन करना चाहा था। उनकी पुत्रवधू प्रतिमा देवी ने फ्रांस-यात्रा के दौरान पेरिस के एक कलाकार से बाटिककला की शिक्षा ली और लगभग १९३० में उन्होंने

शांतिनिकेतन के शिल्प-प्रतिष्ठान श्रीनिकेतन में वाटिक शिल्प की प्रतिष्ठा की।

सारी दुनिया में वाटिक वस्त्र-छपाई एक तकनीक के रूप में पिछले दो हजार वर्षों से प्रसिद्ध रही है; किंतु आज कुछ भारतीय कलाकारों ने इसे ललित कला के रूप में अपनाया है। वाटिक के क्षेत्र में किये गये इस नये आंदोलन को निश्चय ही 'अभिनव वाटिक स्कूल' की संज्ञा दी जा सकती है, जिसमें कुछ थोड़े-से कलाकार चुपचाप अपना योग दे रहे हैं।

वाटिक स्कूल के कलाकारों ने इस क्षेत्र में बहुत प्रगति की है। उनके रंग और रेखाओं के मिश्रण और संयोजन में अपूर्व वैशिष्ट्य झलकता है। रंगों की गूढ़ता, विषय की रागात्मकता तथा संयोजन की नाटकीयता ही किसी कलाकृति को विशिष्ट रचनात्मकता से गौरवान्वित करती हैं।

अभी तक इन विशेषताओं को चित्रित करने के लिए रंग तथा तैल को ही माध्यम बनाया जाता रहा है; लेकिन बंबई के 'स्कूल आफ वाटिक पेंटिंग' द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों के वाटिक-चित्रों को देखकर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वाटिक शिल्प द्वारा भी विशिष्ट कोटि का प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। और इस तरह ललित कला के क्षेत्र में हो रहे नये प्रयोगों और नये आयामों में वाटिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रहा है।

अभी बाटिक कला का विकास आरंभ ही हुआ है। इसके लिए अनेक संभावनाओं को खोज निकालना अभी शेष है। और यह तभी हो सकता है, जब योग्य कलाकार पूर्ण निष्ठा के साथ इस कार्य के लिए आगे आयें।

पश्चिमी देशों में, विशेषत: अमरीका के कला-प्रेमियों ने बाटिक कला में विशेष दिलचस्पी ली है। पिछले दिनों बंबई और कलकत्ता में आयोजित प्रदर्शनियों में विदेशियों ने कई बाटिक चित्र खरीदे। भारत सरकार की 'व्यापारिक मेले तथा प्रदर्शनी कौंसिल' द्वारा भी कुछ बाटिक चित्र विभिन्न विश्व-मेलों में भेजे गये थे।

यह बड़े संतोष और सुख की बात है कि अनेक उच्चकोटि के रंग तथा तैलचित्रों को उतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी, जितनी बाटिक चित्रों को।

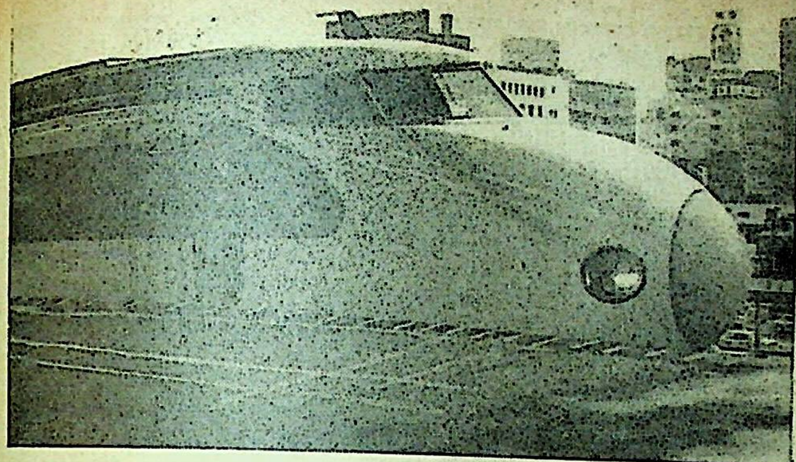
वस्तुत: बाटिक कला में भारतीय जीवन और चिंतन को व्यक्त करने की क्षमता है और मुझे विश्वास है कि कलाकारों की भावी पीढ़ी इसका स्वागत करेगी।



चित्रकार सोभासिंह बड़े हंसमुख व्यक्ति हैं। वे हर समय, हर किसी को हंसा सकते हैं। एक लड़की उनसे चित्रकला सीख रही थी। एक दिन सोभासिंह ने उससे कहा—"जरा आर्टिस्टों की तरह (अर्थात् जरा अंदाज से) चला करो।"

"लेकिन मैं अभी पूरी आर्टिस्ट कहां बनी हूं?" लड़की ने कहा। "तो क्या सांप का बच्चा सांप नहीं होता?" सोभासिंह ने झट से उत्तर दिया। —हरबीरसिंह भं...





विश्व की सबसे तीव्रगामी रेल

हिस्टारिक्स

हमारे देश की बात और है, अन्यथा जब से जेट वायुयानों का प्रादुर्भाव हुआ है, संसार-भर में रेलों में, विशेषतया प्रमुख मार्गों पर ऊंचे दर्जे के यात्रियों की संख्या घटती जा रही है, और वायु-यात्रा करने-वालों की संख्या बढ़ रही है। अमरीका में पर्याप्त यात्री न मिलने के कारण रेलों का अस्तित्व बनाये रखना भी दूभर हो चला है। और ब्रिटेन में रेलों को तो इस कदर हानि उठानी पड़ रही है कि सरकार द्वारा नियुक्त एक अर्थशास्त्री ने कुछ समय पहले सलाह दी थी कि अगले २० वर्षों के दरम्यान ७५ प्र० श० लाइनें समाप्त कर दी जायें।

भारत में वे दिन आने में अभी कई दशक लगेंगे, जब हवाई जहाज रेलों के लिए ऐसा सिरदर्द पैदा कर देंगे। परंतु सारे ही संसार में आज यात्रियों को आकृष्ट करने के लिए रेलों की रफ्तार बढ़ाने की कोशिश की जा रही है। इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर भारतीय रेल्वे बोर्ड ने दिल्ली तथा राज्यों की राजधानियों के बीच १२० किलोमीटर प्रति-घंटा की रफ्तार वाली 'राजधानी एक्सप्रेस' रेलगाड़ियां चलाने का निश्चय किया है, जिसमें कलकत्ता और दिल्ली के बीच एक ऐसी गाड़ी दौड़नी शुरू भी हो गयी है।

आज भारत में तेज से तेज रेलगाड़ी १०५ कि० मी० प्रतिघंटा की रफ्तार से चलती है, जबकि अमरीका की सबसे तेज रेलगाड़ी की रफ्तार १४० कि० मी० प्रतिघंटा है और रफ्तार को बढ़ाकर १८० कि० मी० प्रति-

घंटा करने का प्रयत्न चल रहा है।

इस मामले में बाजी जापान ने जीत ली है। उसने टोक्यो और ओसाका के बीच २०० कि० मी० प्रतिघंटा की चाल वाली एक नयी ट्रेन टोक्योडो एक्सप्रेस चला दी है। ५१० कि० मी० लंबी यह सुपर एक्सप्रेस प्रणाली लगभग ४१४ करोड़ रुपये की लागत से बनी है और इसके लिए विश्व-बैंक से ६० करोड़ रुपयों का कर्ज मिला है। अनेक देशों के रेल-विशेषज्ञ इस ट्रेन की व्यवस्था का अध्ययन करने जापान आते हैं।

इतनी खर्चीली योजना बनाते समय यात्रियों को आकृष्ट करने के उपायों का ही विचार नहीं किया गया, बल्कि पूरा-पूरा ध्यान किया गया। वस्तुतः इस नयी टोक्योडो लाइन को व्यापारिक दृष्टि से सफल बनाने के लिए जापान के राष्ट्रीय रेल्वे बोर्ड ने प्रारंभ में जो विस्तृत जांच करायी, वह अनुकरणीय है।

टोक्यो और ओसाका को जोड़नेवाली यह रेल जिस इलाके में से गुजरती है, वह देश के उत्तर-पूर्वी भाग को दक्षिण-पश्चिमी भाग से जोड़ता है और टोक्यो, योकोहामा, नागोया, क्योटो, ओसाका और कोबे आदि बड़े नगर इस पर पड़ते हैं।

यह ५१० कि० मी० लंबी लाइन जापान के १२ जिलों में से होकर गुजरती है। राष्ट्र की ४३ प्रतिशत जनसंख्या इन १२ जिलों में बसी हुई है। इनकी आय जापान की कुल राष्ट्रीय आय का ४३ प्र०श०है और राष्ट्र के कुल औद्योगिक उत्पादन का ६९ प्र० श० का उत्पादन इनमें होता है। जापान सरकार ने १९५६ में ही यह अंदाज कर लिया था कि टोक्योडो नामक इस लाइन पर १९७० तक यात्रियों की संख्या २.८ गुना और माल की ढलाई १.९ गुना बढ़ जायेगी और परंपरागत तरीके से इतना बोझ उठाना रेल्वे के लिए संभव न होगा।

इस प्रकार एक नयी तेज एक्सप्रेस लाइन की आवश्यकता महसूस हुई और जापान की रेल-मार्ग जांच समिति ने टोक्यो और ओसाका के बीच नयी टोक्योडो एक्सप्रेस लाइन बनाने का फैसला किया। इसका अंतिम उद्देश्य इन दोनों नगरों के बीच यात्रा-काल ६॥ घंटे से घटाकर ३ घंटे करना था।

नयी लाइन पर कोई लेबल-क्रासिंग नहीं है। परंतु ४३ मील जितनी सुरंगें और ३५ मील जितने पुल हैं। इसका निर्माण १९५९ में शुरू हुआ और १९६२ में पहली बार गाड़ी चलाकर लाइन की जांच की गयी। मार्च १९६२ में २४० कि० मी० प्रतिघंटा की रफ्तार वाली एक रेलगाड़ी दूरस्थ नियंत्रण क्रिया (रिमोट कंट्रोल आपरेशन) द्वारा चलाकर देखी गयी और १ अक्टूबर १९६४ को अर्थात् टोक्यो ओलम्पिक खेलों के शुरू होने के ठीक पहले, औसतन २०० कि० मी० घंटे की चाल से दौड़ने वाली गाड़ियां नियमित रूप से चलने लगीं और नयी टोक्योडो लाइन यातायात के लिए खुल गयी।

टोक्योडो एक्सप्रेस में यात्री पूरी सुरक्षा और आराम से यात्रा कर सकें, इसके लिए

मई

जो सावधानियां बरती गयी हैं, वे अनुकरणीय हैं। सुरंग में तीव्र गति से दो गाड़ियों के एक-दूसरी के पास से गुजरते समय उत्पन्न होने वाले भयंकर शोर से यात्रियों को बचाने के लिए गाड़ियों के डिब्बे वात-निरोधित (एयर-टाइट) बनाये गये हैं। गाड़ियों के अंदर कोई इश्तिहार नहीं मिलेगा। पटरियां बिछाते समय इस मार्ग की भौगोलिक प्रकृति और तूफानों, बाढ़ों, भूस्खलनों तथा रास्ते पर चट्टानों के गिरने-जैसी प्राकृतिक दुर्घटना के इतिहास का विस्तृत अध्ययन करके उनके निवारण के लिए आवश्यक सावधानियां बरती गयीं।

इस सुपर एक्सप्रेस लाइन पर चलनेवाली प्रत्येक गाड़ी में कुल १२ डिब्बे होते हैं—२ प्रथम श्रेणी के, जिनमें १३२ यात्री बैठ सकते हैं, और १० दूसरी श्रेणी के, जिनमें ८५५ यात्री बैठ सकते हैं। दूसरी श्रेणी के दो डिब्बों के आधे भाग में जलपान-विभाग हैं। प्रथम श्रेणी के यात्रियों के लिए एक बुफे की व्यवस्था है।

डिब्बों में सभी महत्त्वपूर्ण अंग दुहरे लगाये गये हैं, ताकि एक के 'फेल' होते ही, उसके साथ लगा दूसरा अंग तुरंत काम संभाल ले और गाड़ी को नुक्सान न पहुंचे।

गाड़ी की चाल क्षेत्रानुसार निर्धारित की गयी है और ऐसी स्वचालित आटोमेटिक व्यवस्था की गयी है कि यदि किसी गाड़ी की गति बढ़ जाती है, तो इलेक्ट्रोनिक उपाय उसे अभीष्ट गति पर ले आते हैं। टोक्यो स्टेशन पर लगा केंद्रीय यातायात नियंत्रण फलक नये टोक्योडो पथ पर चल रही प्रत्येक गाड़ी की गति की पूरी-पूरी जानकारी रखता है। मार्ग में हवा की रफ्तार के घटने या बढ़ने से भी गाड़ी के कार्यक्रम में गड़बड़ न हो सके, इसके लिए लाइन के साथ २४ एनिमोमीटर लगाये गये हैं, जिनकी सम्मिलित रिपोर्ट केंद्रीय यातायात नियंत्रण फलक को पहुंचती रहती है। फलक पर बैठा संदेश-प्रेषक गाड़ी पर कड़ी नजर रखता है और संबंधित मोटरमैन को रेडियो टेलिफोन द्वारा हिदायतें देता रहता है!

योजना यह है कि कुछ समय बाद नये टोक्योडो पथ पर चलने वाली गाड़ियों की गति बढ़ाकर २४० कि० मी० प्रतिघंटा कर दी जाये।

टोक्योडो के उदाहरण से प्रेरित होकर अमरीका के वाणिज्य विभाग ने न्यूयार्क और अन्य नगरों के बीच जेट इंजन-चालित तीन टर्बो ट्रेनें चलाने का आदेश दिया है। युनाइटेड एयर क्राफ्ट कार्पोरेशन द्वारा डिजाइन की गयी इन गाड़ियों की रफ्तार २५० कि० मी० प्रतिघंटा होगी।

विशेषज्ञों ने हिसाब लगाया है कि वर्तमान रेल-व्यवस्था में भी विश्व के अनेक भागों में २०० कि० मी० प्रतिघंटा की रफ्तार से रेलें चलायी जा सकती हैं; परंतु इसके लिए आजकल प्रचलित जोड़ वाली पटरियों के स्थान पर 'वेल्ड' की हुई पटरियां लगानी पड़ेंगी। और अंततः औसतन ३२० कि० मी० प्रतिघंटे चलने वाली गाड़ियां विश्वभर में आम चीज हो जायेंगी।



वायुयान के पंखों पर हनीमून

डा० नारायणदत्त श्रीमाली

अल्हड़ युवक लेक्लेयर नीली आंखों और भूरे वालों वाली सुंदरी डोरा के कंधों को दोनों हाथों से पकड़कर मुस्कराते हुए बोला—"डोरा ! हमारा हनीमून संसार का आश्चर्य होगा । शीघ्र ही में इसका प्रबंध करूंगा । इस समय तो 'वेग' मेरी प्रतीक्षा कर रहा है।" और डोरा के गुलाबी ओंठों से अपने ओंठ आहिस्ते से छुआकर लेक्लेयर कार से विमान-स्थल की ओर भाग चला ।

डोरा मुस्करा दी, वह आज अत्यंत प्रसन्न थी । वह स्वयं एक कुशल वायुयान-चालक थी । उसने 'पाम' की वायुयान प्रतिस्पर्धा में प्रथम आकर विश्व के समाचार-पत्रों के प्रथम पृष्ठों पर स्थान पाया था । परंतु वह जानती थी कि लेक्लेयर महान है । वायुयान चलाने की दक्षता में वह उससे कहीं बढ़ा-चढ़ा है। वायुयान पर वह जैसी कलाबाजियां दिखा सकता है, वैसी शायद संसार का कोई हवा-बाज नहीं दिखा सकता ।

शायद इसीलिए लेक्लेयर उसके दिल में बैठ गया था । वह मन-ही-मन उससे प्रेम करने लगी थी । और आज ...... आज जब दोनों एक हो गये हैं, तो डोरा को ऐसा लग रहा था, मानो वह आकाश के शून्य में तैर रही है, उसके सारे अभाव पूरे हो गये हैं। उसकी झोली खुशियों से भर गयी है।

वस्तुत: लेक्लेयर अमरीका का सर्वोत्कृष्ट चालक था । वायुयान चाहे कितनी ही ऊंचाई

भी

पर हो, वह उसे छः या सात 'डाइवों' में धरती के समानांतर ले आता था। उसकी आकांक्षा थी कि एक ऐसा कीर्तिमान स्थापित करूं, जिसे विश्व का कोई भी विमान-चालक तोड़ न सके। और इसे पूरा करने में उसने जान की वाजी लगा दी थी।

इसी बीच उसके जीवन में डोरा आयी। उसे इतनी फुरसत ही कहां थी कि वह प्रेम के चक्कर में पड़े; परंतु जब उसने पहली बार डोरा को देखा, तो उसे लगा कि मानो एक अद्भुत सुगंध उसके नथुनों में भर गयी है, उसके तन-मन में रच गयी है—और वह डोरा की ओर खिंचता चला गया।

फिर भी वह अपने प्रिय वायुयान 'वेग' को न भुला सका, और अदालत में विवाह के रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने के तुरंत बाद ही वह 'वेग' से लिपटने को आतुर-सा दौड़ पड़ा। उसे ऐसा करते देखकर डोरा मुस्करा पड़ी थी।

लेक्लेयर ने हनीमून मनाने का बड़ा विचित्र तरीका खोजा। उसने इसके लिए १६ जून की तारीख निश्चित की, जो कि डोरा का जन्म दिन था। पर जब उसने अपनी योजना और हनीमून मनाने का तरीका डोरा को बताया, तो वह सन्न रह गयी। एक अज्ञात आशंका से उसका दिल धड़क उठा। बोली—"नहीं! लेक्लेयर, इतना बड़ा खतरा उठाना ठीक नहीं।" पर लेक्लेयर की आंखों में दृढ़ता देखकर वह चुप रह गयी।

शेफर लेक्लेयर का घनिष्ठ मित्र था। वह अमरीका की सबसे अधिक विकने वाली पत्रिका 'फ्लेम' का संपादक था। लेक्लेयर ने एक दिन 'डी-पैरा' होटल में चाय पीते समय अपने मित्र को हनीमून मनाने की योजना बतायी। शेफर ने उसे समझाने की कोशिश की, तो लेक्लेयर ने चाय का आधा प्याला मेज पर पटक दिया और शेफर की आंखों में आंखें डालकर बोला—"शेफर! मैं करूंगा, और ऐसा ही करूंगा। १६ जून को तुम खुद देख लेना।" और दनदनाता हुआ वह होटल से निकल गया।

शेफर चिंतित-सा वहीं बैठा रहा। उसके दिमाग में एक ही बात घूम रही थी— 'क्या लेक्लेयर को इतना बड़ा खतरा मोल लेना चाहिये? यह हनीमून कितना खतरनाक है!' और वह चिंतित हो उठा। परंतु वह जानता था कि लेक्लेयर मानेगा नहीं। एक बार वह जो निश्चय कर ले, उससे उसे डिगाना किसी के बस की बात नहीं—स्वयं उसके बस की भी नहीं।

शेफर ने देखा कि चाय का प्याला ठंडा हो चुका है; पर अब वह निर्णय पर पहुंच चुका था। बिल चुकाकर वह होटल से बाहर निकल आया।

* * *

अगले सप्ताह के 'फ्लेम' में लेक्लेयर और डोरा के चित्रों के साथ उनके भावी हनी-मून का पूरा विवरण था। लेक्लेयर और डोरा की आंखों में निश्चय का सागर लहरा रहा था। 'फ्लेम' का निकलना था कि अम-रीका में हलचल मच गयी। एक ही दिन में लेक्लेयर और डोरा की कहानी समुद्र की

सीमा लांघकर पूरे विश्व में चर्चा का विषय वन गयी ।

लेक्लेयर को शेफर पर वड़ा गुस्सा आ रहा था । हनीमून तो उसका निजी मामला था, उसे सार्वजनिक वनाने का शेफर को क्या अधिकार था ? वह क्रोध में आगवबूला वना 'फ्लेम' के कार्यालय पहुंचा, तो पता चला कि उसका संपादक मित्र कुछ ही मिनिट पहले वहां से खिसक चुका है ।

वह घर लौटा, तो उसके घर के सामने डाक विभाग की दो गाड़ियां पत्रों से लदी खड़ी थीं । उसे आश्चर्य हुआ कि इन्हें उसके घर के सामने रोककर मार्ग क्यों बंद कर दिया गया है ? पूछने पर एक डाक-कर्मचारी ने नम्रता से जवाव दिया—"श्रीमन्, यह आपकी आज की डाक है, कृपया उतरवाने का प्रबंध कीजिये ।"

हतप्रभ-सा शेफर घर में प्रविष्ट हुआ, तो अंदर डोरा हक्की-वक्की-सी बैठी थी । कुछ ही मिनिट पहले संवाददाता उसे काफी तंग कर चुके थे । यह सव देख लेक्लेयर एकदम झुंझला उठा और दो वार उसने 'फ्लेम' के कार्यालय को फोन किया । पर शेफर इस प्रकार गायव हो गया था, मानो वह अमरीका में ही न हो ।

शाम को उसे गृहमंत्री के सचिव का तार मिला, जिसमें उससे मंत्रालय आकर गृहमंत्री से मिलने की प्रार्थना की गयी थी । दूसरे दिन निश्चित समय पर वह मंत्रालय गया, तो गृहमंत्री अत्यंत प्रेम से मिले । वातों-ही-वातों में गृहमंत्री ने 'फ्लेम' का जिक्र छेड़ दिया, और पूछा कि क्या यह सच [illegible] है ? पर लेक्लेयर चुप रहा ।

गृहमंत्री ने कहा— "मिस्टर लेक्लेयर [illegible] जानते हैं, आप क्या करने जा रहे हैं [illegible] हनीमून नहीं, सीधा आत्महत्या का [illegible] है । इस विचार को मन से निकाल [illegible] ही आपका हित है ।"

लेक्लेयर केवल मुस्करा दिया, [illegible] नहीं । उसने चुपचाप एक पेस्ट्री का [illegible] उठाकर मुंह में रख लिया । गृहमंत्री [illegible] लेक्लेयर की चुप्पी से वल मिला । वे [illegible] "तो मैं यह विश्वास करूं कि आपने [illegible] विचार को छोड़ दिया है ?"

लेक्लेयर ने उत्तर दिया—"नहीं श्रीमन् [illegible] आपसे मिलने के बाद तो मेरा संकल्प [illegible] पक्का हो गया है ।" और वह कुर्सी से [illegible] कर खड़ा हो गया । गृहमंत्री भी उठे [illegible] और बेमने-से हाथ मिलाकर अंदर चले [illegible]

बाहर निकलकर लेक्लेयर ने देखा [illegible] संवाददाताओं और प्रेस-प्रतिनिधियों [illegible] विशाल भीड़ उसका इंतजार कर रही [illegible] वह घवरा उठा । सैकड़ों फ्लैश-बल्ब [illegible] पर दमक पड़े । संवाददाताओं के प्रश्नों [illegible] बौछार से वह हड़बड़ा गया । किसी प्र[illegible] उनसे पिंड छुड़ाकर वह अपनी कार में [illegible] बैठा और घर की ओर भाग खड़ा हुआ ।

परंतु घर के बाहर भी यही हाल [illegible] उसे देखने को आतुर हजारों स्त्री-पुरुष [illegible] से घर के बाहर खड़े थे । डोरा घर के अं[illegible] कैद थी, और वह बाहर । चुपचाप उ[illegible] वहीं से कार मोड़ी और 'डी-पैरा' होटल [illegible]

आ बैठा। उसे रह-रहकर शेफर पर गुस्सा आ रहा था और इसी गुस्से में उसने चाय के चार-पांच कप पी डाले।

* * *

जून १५ की शाम को अमरीका के प्रसिद्ध क्लब एयरो ने लेक्लेयर तथा डोरा को सम्मानार्थ आमंत्रित किया। एयरो के डायरेक्टर मिस्टर रोल अपने जमाने के प्रसिद्ध वायुयान-चालक रहे थे, और कई रेकार्ड स्थापित कर चुके थे, जिनसे विश्व में अमरीका की प्रतिष्ठा बढ़ी थी। द्वितीय विश्वयुद्ध में मिस्टर रोल ने जो भूमिका अदा की थी, वह इतिहास के पन्नों में आज भी सुरक्षित है।

मिस्टर रोल ने लेक्लेयर का हाथ अपने हाथ में लेकर ऊंची आवाज में कहा :

"वस्तुत: मुझे जीवन में कई वीर पुरुषों से हाथ मिलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है; परंतु लेक्लेयर का हाथ जितना गर्म और दृढ़ है, वैसा हाथ मैंने और कहीं नहीं पाया। हमें ऐसे ही पुरुषों और स्त्रियों की आवश्यकता है, जो खतरों से खेल सकें! खेल ही नहीं सकें, उनका आनंद भी उठा सकें। लेक्लेयर और डोरा ऐसे ही पुरुषों और स्त्रियों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। मैं इनकी सफलता की हृदय से कामना करता हूं।"

रोल के संक्षिप्त भाषण के बाद उपस्थित सदस्यों ने हर्षध्वनि करके लेक्लेयर की सफलता की कामना की।

* * *

१६ जून को बड़े सवेरे ही अमरीकी स्त्री-पुरुषों के दल-के-दल राम्बूल विमान-स्थल की ओर जा रहे थे। देशी और विदेशी संवाददाताओं की बड़ी भीड़ एक तरफ खड़ी थी। न चाहते हुए भी भीड़ को नियंत्रण में रखने के लिए सरकार को सुरक्षा का पूरा प्रबंध करना पड़ा था। विश्व की कई टेलिविजन संस्थाएं इस दृश्य को ज्यों-का-त्यों अपने देशवासियों को दिखाने के लिए आतुर हो रही थीं।

ठीक समय पर लेक्लेयर तथा डोरा मुस्कराहट बिखेरते हुए राम्बूल विमान-स्थल पर पहुंच गये। ९ बजकर ३५ मिनिट का समय निर्धारित था। राम्बूल पर दो छोटे वायुयान एक तरफ उड़ने के लिए तैयार खड़े थे और उनके पास ही कर्नल टेड और मिस्टर सेरियस भी चालक की पोशाक में तैयार थे।

लेक्लेयर और डोरा को संवाददाताओं ने घेर लिया। पर प्रश्नों के उत्तर हां-ना या चुप्पी से देता हुआ लेक्लेयर तुरंत उस घेरे से बाहर निकल गया। उसने चारों तरफ घूमकर देखा, तो अथाह जन-समूह लहराता दिखाई दे रहा था, जो इस निराले हनीमून को देखने के लिए उमड़ पड़ा था। लेक्लेयर के ओंठों पर मुस्कराहट खेल गयी।

तभी भीड़ को चीरता हुआ शेफर आता दिखाई दिया। एक बार तो लेक्लेयर को ऐसा गुस्सा आया कि उसका सिर फोड़ दे; परंतु दूसरे ही क्षण वह अपने दोस्त पर मुस्करा पड़ा। शेफर आते ही लेक्लेयर से लिपट गया और बोला—"यार! रश्क होता है तेरी इस कीर्ति पर! काश, मेरा भी हनीमून



युगल : प्रेमचंद गोस्वामी

इतना सुंदर होता !" और 'चीयर्स' कहता हुआ वह भीड़ में खो गया।

* * *

ठीक ९ बजकर १५ मिनिट पर लेक्लेयर और डोरा अपने-अपने वायुयानों में जा बैठे। कर्नल टेड और मिस्टर सेरियस ने भी अपनी-अपनी जगहें संभाल लीं। दूसरे ही क्षण एक के पीछे दूसरे वायुयान ने धरती छोड़ दी।

पूरा जन-समुदाय ऊपर उड़ते वायुयानों को देख रहा था। संसार-भर की आंखें टेलिविजन के परदे पर लगी हुई थीं। दोनों वायुयान काफी ऊंचाई पर उड़ रहे थे; पर राम्बूल के इर्द-गिर्द ही मंडरा रहे थे।

वायुयान कुछ नीचे आ गये। धड़कते हृदय से लोगों ने देखा कि नीचे वाले वा- यान की एक विशेष खिड़की से डोरा निक- और शरीर का संतुलन करती हुई, वा- यान के पंख पर जा खड़ी हुई। वायु- बहुत धीरे-धीरे उड़ रहे थे। हवा जरूरत कुछ ज्यादा तेज थी। फिर भी डोरा अपने आप पर नियंत्रण रखे हुए वायुयान के पं- पर खड़ी थी।

लोगों को लग रहा था, जैसे उनके हृद- चलते-चलते रुक गये हैं। जरा-सा पांव फि- कि डोरा ....और आगे की स्थिति प- सोचना ही असंभव था।

निचले वायुयान के लगभग ४५ फु- ऊपर ही दूसरा वायुयान मंथर गति से उ- रहा था। चालकों की जरा-सी चूक से दो- वायुयानों में आग लग सकती थी। पंखों क- जरा-सी रगड़ डोरा के लिए.....और फि- ......उफ् !

एकाएक लोगों ने देखा कि ऊपर वाले वायुयान की विशेष खिड़की खुली और लेक्लेयर मुस्कराता हुआ निकलकर अपने वायुयान के पंख पर जा खड़ा हुआ। दोनों वायुयानों के बीच की दूरी ४-४।। फुट अधिक न होगी। एकाएक हवा कुछ तेज हो गयी; पर लेक्लेयर विचलित नहीं हुआ। उसने पंख के एक 'हुक' में अपने पैर अड़ा दिये और नीचे की ओर झूल गया। कैसा का रोमांचक दृश्य था वह ! मामूली-सी असावधानी कहर ढा सकती थी।

उलटा झूलते हुए लेक्लेयर ने नीचे के वायुयान के पंख पर खड़ी डोरा को अपने

बांहों में भर लिया......और उसके गुलाबी अधरों पर अपने ओंठ रखता हुआ बोला—"डोरा!"

"हूं......।

"कैसा लग रहा है?"

"बहुत अच्छा! बहुत-बहुत अच्छा!"

लाखों-करोड़ों आंखें इस हनीमून को धड़कते हृदय से देख रही थीं। कितनी रोमांचक स्थिति थी! कितना खतरनाक दृश्य था वह!

एकाएक लेक्लेयर ने डोरा को अपनी बांहों में कसकर जरा ऊपर उठा लिया। डोरा के पांव नीचे के वायुयान के पंख से ऊपर उठ चुके थे और वायुयान खिसककर दूर चक्कर लगा रहा था। डोरा पृथ्वी और आकाश के बीच लेक्लेयर के हाथों में झूल रही थी। उसका सीना लेक्लेयर के हृदय के पास धड़क रहा था और ओंठ लेक्लेयर के ओंठों से सटे हुए थे।

धीरे-धीरे लेक्लेयर डोरा को ऊपर उठाता गया। अद्‌भुत संतुलन, साहस और धैर्य से उसने डोरा को अपने वायुयान के पंख पर चढ़ा लिया। दो के भार से वायुयान एक तरफ को जरा तिरछा हुआ, परंतु तुरंत संभलकर पूर्वस्थिति में आ गया।

धीरे-धीरे लेक्लेयर सीधा हुआ और वायुयान के पंख पर हाथ फंसाकर खड़ा हो गया। अब डोरा और लेक्लेयर दोनों वायुयान के पंख पर खड़े थे, सटे हुए...... एकाकार......

पहले डोरा संभलकर पग रखती हुई उस वायुयान की विशेष खिड़की से अंदर गयी। उसके बाद लेक्लेयर। फिर वायुयान ने हवा में एक जबर्दस्त गुलांट लगाकर अपने आनंद का प्रदर्शन किया। उपस्थित जन-समूह उसकी इस कलाबाजी से आनंद और उत्तेजना में झूम उठा।

धीरे-धीरे वायुयान नीचे उतरने लगा, और ज्यों ही उसने धरती का स्पर्श किया कि लेक्लेयर और डोरा के हाथों में अमरीका के राष्ट्रपति का तार था, जिसमें उन्होंने उनकी सफलता पर अपनी ओर से तथा समस्त अमरीका की ओर से बधाई दी थी।

उपस्थित जनता की हर्षध्वनि से आकाश गूंज उठा। फ्लैश-बल्बों की चकाचौंध में लेक्लेयर और डोरा हाथों में हाथ डाले प्रसन्नता से मुस्करा रहे थे......मुस्कराते हुए आगे बढ़ रहे थे।



विवाह-विच्छेद के कारण

राज्यसभा में विवाह-विच्छेद विधेयक पर बहस चल रही थी। सुंदरय्या ने संशोधन प्रस्ताव रखा—"विवाह-विच्छेद के कारणों में 'पागल' शब्द के स्थान पर 'जिसका दिमाग ठीक न हो' कर दिया जाये।" डा० राधाकृष्णन् ने, जो उस समय उपराष्ट्रपति एवं राज्यसभा के सभापति थे, कहा—"पर ऐसा तो हम सभी का है—कम-से-कम अपनी पत्नी की राय में।"

—रमेश खुराना 'स्वप्न'



ग्रह-नक्षत्रों का आराधक

टालेमी के सिद्धांत भले गलत सि
हो चुके हों; मगर उसकी बुद्धि
आगे आज भी संसार नतशिर है

सुधा निवसरकर

समय था ईसा की दूसरी शताब्दी। स्थान था मिस्र की महानगरी सिकंदरिया का सार्वजनिक पुस्तकालय। एक युवक प्रतिदिन प्रातः पुस्तकालय का द्वार खुलने के साथ अंदर आकर बैठ जाता था और तब तक पुस्तकों में डूबा रहता था, जब तक पुस्तकालय का द्वार बंद होने का समय न हो जाये। उसके अध्ययन के मुख्य विषय थे—ज्योतिष, भूगोल और गणित। संसार इस ज्ञान-पिपासु को टालेमी के नाम से जानता है।

टालेमी का पूरा नाम था—क्लाडियस टालेमियस। वह मिस्र में जनमा एक यूनानी था। उसके आरंभिक जीवन के विषय में अधिक पता नहीं है; लेकिन निश्चय ही ज्ञान-पिपासा ही उसे उस युग के सबसे बड़े विद्याकेंद्र सिकंदरिया में खींच लायी थी। सिकंदरिया में रहते हुए टालेमी ने वहां उपलब्ध समस्त ज्योतिष ग्रंथ पढ़ डाले। उसने पाया कि प्राचीन ज्योतिषियों के सिद्धांतों में परस्पर काफी विरोध है और उनकी अनेक बातें सही भी नहीं मालूम पड़तीं। बहुत सोच-विचार के बाद वह इस परिणाम पहुंचा कि ब्रह्मांड-रचना की समस्याएं और तर्कशास्त्र द्वारा ही हल हो सकतीं

एरिस्टार्कस ने २३० ई० पू० में यह था कि सूर्य ब्रह्मांड का केंद्र है। किंतु बात को सिद्ध करने के लिए आवश्यक करण तब तक विकसित न हुए थे। प्रा विद्वानों ने उसके सिद्धांत की उपेक्षा क्योंकि यह मत उस समय की दार्श कल्पना से मेल नहीं खाता था। उस का दर्शनशास्त्र यह मानता था कि का निवास-स्थान पृथ्वी स्थिर है और ताओं के निवास-स्थान ग्रह-नक्षत्र ई विचर रहे हैं।

ब्रह्मांड-रचना के अन्य कई सिद्धां अलग-अलग विद्वानों ने प्रस्तुत किये। ज्योतिषियों का मत था कि पृथ्वी ब्र का केंद्र है और चंद्रमा, सूर्य तथा अन्य उसके चारों ओर एककेंद्रिक वृत्तों में नि श्चित कक्षाओं में घूमते हैं। लेकिन देखा गया कि इस सिद्धांत की मदद से

की सही भविष्यवाणी नहीं हो पाती थी कि अमुक समय आकाश में अमुक ग्रह कहां पर होगा ?

पर्गा के अपोलोनियस (२०० ई० पू०) और नीसिया के हिप्पार्कस ने भी पृथ्वी को ब्रह्मांड का केंद्र माना था। मगर उनकी मान्यता थी कि शेष ग्रह पृथ्वी के चारों ओर उत्केंद्र (एक्सेंट्रिक) कक्षाओं में अधिचक्रों (एपिसाइकल्स) में घूमते हैं। टालेमी ने उनके सिद्धांत को अंगीकार किया और गणित की सहायता से उन उत्केंद्र वृत्तों और अधिचक्रों के व्यवहारोपयोगी मानचित्र बनाये, जिनके आधार पर ग्रहों व नक्षत्रों के स्थानों की ठीक-ठीक भविष्यवाणी करने में उसे अद्‌भुत सफलता मिली।

टालेमी का यह गणितीय पराक्रम विशेष रूप से विस्मयकारी इसलिए है कि उसने यह मानकर सब गणनाएं की थीं कि आकाशीय पिंड पूर्णवृत्त में परिभ्रमण करते हैं। बाद में केप्लर ने यह सिद्ध किया कि उनकी कक्षाएं दीर्घ-वृत्त होती हैं।

टालेमी ने अपने 'ज्योतिष-महानिबंध' अथवा 'अलमागेस्ट' नामक ग्रंथ में पृथ्वी के ब्रह्मांड का केंद्र होने का सिद्धांत तथा ग्रहों की गति की अपनी गणनाएं प्रतिपादित की हैं। इस ग्रंथ में उसने कहा है कि आकाश गोलाकार है और गोल पिंड की तरह अपने अक्ष पर घूमता है। पृथ्वी भी गोलाकार है। वह ब्रह्मांड का केंद्र है और अडिग है।

टालेमी का यह सिद्धांत १,४०० वर्ष तक माना जाता रहा। बाद में कोपर्निकस



सौर मंडल—टालेमी निर्मित नक्शा

तथा अन्य ज्योतिषियों ने उसे गलत सिद्ध किया और यह भी दिखाया कि सूर्य ब्रह्मांड का केंद्र है। फिर भी टालेमी के सिद्धांत ने ग्रहों और नक्षत्रों के आपसी संबंधों की व्याख्या प्रस्तुत की, आकाशीय पिंडों की अवस्थिति की भविष्यवाणी करने में ज्योतिषियों की सहायता की और नाविकों को प्रामाणिक भौगोलिक मानचित्र दिया।

'अलमागेस्ट' में टालेमी ने दिखाया कि किस प्रकार त्रिकोणमिति (ट्रिग्नामेट्री) ज्योतिष के लिए उपयोगी है। उसने वृत्त को ३६० समान भागों या अंशों में विभक्त माना और उसका मिनिटों व सेकेंडों में पुनर्विभाजन किया। उसने गणना करके 'पाई' का मूल्य ३.१४१६ बताया। वास्तव में टालेमी तथा हिप्पार्कस ने ही समतल तथा

गोलीय त्रिकोणमिति की नींव डाली।

टालेमी का एक और अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य था–१०२८ नक्षत्रों का सुनिश्चित पंजीकरण, जिसके लिए उसने बड़ा श्रम किया। इससे पहले लगभग ६०० नक्षत्रों की ही जानकारी ज्योतिषियों को थी। उसका एक और ग्रंथ था–'आप्टिक्स', जिसका अधिकांश भाग अप्राप्य है। ऐसा माना जाता है कि विभिन्न घनत्वों वाले माध्यमों में से गुजरने वाली किरणों के प्रत्यावर्तन के नियम स्थिर करने का यह पहला वैज्ञानिक प्रयास था।

टालेमी ने भूगोलज्ञ के रूप में अपने समय की दुनिया का बड़ा उपकार किया। टायर के निवासी मैरीनस की खोजों के आधार पर उसने एक भौगोलिक प्रबंध लिखा। प्राचीन यूनानियों द्वारा कल्पित अक्षांश और देशांतर रेखाओं के आधार पर उसने अपने ... के सभी ज्ञात स्थानों को नक्शे पर ... किया। इनमें ब्रिटेन से लेकर अरब ... भारत तक उस युग के सभी ज्ञात देश ... गये थे। पृथ्वी के परिमाण की गलत ... के कारण उसके नक्शे में कुछ भूलें ... हैं; फिर भी उसके नक्शे नाविकों, ... गरों के लिए अत्यंत मूल्यवान सिद्ध हुए।

टालेमी अंतिम महान यूनानी ज्योति... शास्त्री था। अगले १,४०० वर्ष तक ... सिद्धांतों का एकछत्र साम्राज्य रहा। ... मान्यताएं अध्ययन, वैज्ञानिक उपकरणों ... विशेषत: आधुनिक दूरबीनों द्वारा ... सिद्ध की जा चुकी हैं। पर वैज्ञानिक ... करणों के अभाव में केवल तर्क और ... द्वारा इतनी गणनाएं कर डालना ... असाधारण बुद्धिशक्ति का प्रमाण है।



हम इब्राहीम को इसी प्रकार आकाशों एवं पृथ्वी का अपना आधिपत्य दिखाने लगे, जिससे वह विश्वास करने वालों में से हो जाये।

फिर जब उस पर रात्रि ने अंधकार फैलाया, तो उसने एक तारा देखा। बोला– "यह है मेरा प्रभु!" फिर जब वह अस्त हो गया, तो बोला–"मैं डूबने वालों को पसंद नहीं करता।"

फिर जब चमकता हुआ चंद्रमा देखा, तो कहा–"यह है मेरा प्रभु!" फिर जब वह लुप्त हो गया, तो कहा–"यदि मेरा प्रभु मुझे मार्ग न दिखाये, तो निश्चय ही मैं भ्रमितों में से हो जाऊंगा।"

फिर जब उसने दीप्तिमान सूर्य को देखा, तो कहने लगा–"यह है मेरा प्रभु! ... सबसे प्रचंड है।" फिर जब वह अस्तंगत हुआ, तो बोल उठा–"हे मेरे लोगो! जिन्हें ... (ईश्वर का) भागीदार ठहराते हो, उनसे मैं मुक्त हूं।"

निश्चय ही मैंने एकाग्र हो अपना मुख उसी की ओर मोड़ दिया है, जिसने आकाश एवं भूमि बनायी है, और मैं विभक्तों में से नहीं हूं।

–कुरान ६.७५-...





पागल पिल्ला

साहस ही जीवन है—यह कथन भले ही कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण हो; पर जीवन को सही तरह, पूरी तरह साहस के विना नहीं जिया जा सकता। एक छोटी-सी घटना याद आती है।

हमारे घर कुत्ते का एक पिल्ला पल रहा था। एक रात, किसी बड़े लावारिस कुत्ते ने उस पर हमला कर दिया। पिल्ले की चीख-पुकार सुनकर हम लोग उठे। डंडा मार-कर मैंने उस हमलावर कुत्ते को भगा दिया। मगर उसने पिल्ले को काट लिया था। औषधोपचार के बावजूद कुछ दिन बाद पिल्ला बीमार पड़ा। लक्षण पागलपन के प्रतीत हुए।

बड़ी मुश्किल से अस्पताल ले गये। डाक्टर ने देखकर कहा—९५ प्रतिशत पागल-पन है, आपकी तसल्ली के लिए चाहें तो एक दिन यहां रखकर देख लें। पिल्ले की यातना देखते हुए उसे चौबीस घंटे और तड़पाने को मन नहीं माना। विष (विसं-त्रक दवा) देने की अनुमति दे दी। मगर विष देने का वार्ड सौ गज दूर था। पिल्ले को वहां तक ले जाना था। कंपाउंडर हाथ लगाने से डरते थे। मैं चेन पकड़कर खींचकर ले जाने लगा। मगर मेरे सोलह-सत्रह साल के छोटे भाई ने कंपाउंडर और डाक्टर के मना करते हुए भी लपककर उसे गोद में उठा लिया। वार्ड में भी इंजेक्शन लगने तक उसे गोद में उठाये रहा।

पागलपन के बावजूद पिल्ला दुम हिलाता रहा और आखिरी नींद सोने से पहले उसने जो कृतज्ञता-भरी दृष्टि भाई पर डाली, वह मेरे मन में सदा के लिए बस गयी है। मैंने अनुभव किया कि मुझसे बहुत छोटा मेरा भाई मुझसे अधिक पूरा और सही जीवन जी रहा है। मुझे रश्क-भरी खुशी हुई।

—सत्यानंद वर्मा

०००

गुरु और गोविंद

मुंशी रामसेवक श्रीवास्तव छठी कक्षा में मेरे वर्ग-शिक्षक थे। मानीटर होने के कारण कक्षा में मेरा खूब रौब चलता था। एक दिन मुंशीजी ने बहीखाते का एक सवाल दिया और कहा—"बीस मिनिट में हल करके सभी अपनी-अपनी कापियां मुझ दे दें।"

मैंने दस मिनिट में ही प्रश्न हल कर डाला। पर मेरे पीछे बैठा सिद्धराज सिंह पेंसिल से मेरी पीठ कुरेद कर फुसफुसाया—"कापी टेढ़ी कर, मैं भी लिख लूं ......मेरी तो समझ में आता ही नहीं ......आज तो

अंडा मिलेगा......मार पड़ेगी सो अलग से।"

दयावश मैंने कापी सरका दी। पर आगे बैठे लड़के ने मेरी यह हरकत देख ली और मुंशीजी को बता दिया। पास आकर मुंशीजी ने पूछा, तो सिद्धराज ने सारा दोष मेरे मत्थे मढ़ दिया। मुंशीजी ने क्रोध से तड़ातड़ कई बेंत मेरी पीठ पर जड़ दिये।

मुझे मुंशीजी की मार का उतना दुःख नहीं था, जितना पहली बार स्कूल में पिटने का। छुट्टी की घंटी बजते ही किताबें समेटकर मैं घर की ओर चल पड़ा, पर तभी पीछे से मंगल चपरासी ने आवाज दी कि तुम्हें मुंशी जी बुला रहे हैं।

मंगल के पीछे-पीछे मुंशीजी के कमरे में पहुंचा, तो वे बड़े उदास-से खाट पर बैठे थे। मुझे सीने से लगाकर बोले—"गिरिजाशंकर, मुझे बहुत दुःख है कि तुम्हें मार खानी पड़ी। मैं जानता हूं कि तुमने अच्छी नीयत से ही यह काम किया था। पर किसी कमजोर विद्यार्थी को इस तरह नकल कराना, उसके भविष्य को बिगाड़ना है। मैंने नसीहत देने के लिए ही तुम पर हाथ उठाया है।"

मेरी आंखों से मुंशीजी के प्रति रोष आंसू बनकर झर पड़ा और अपनी गलती महसूस हुई। आज जब सोचता हूं, तो कबीर के 'गुरु और गोविंद' वाले आर्षवचन की सार्थकता साफ मालूम पड़ती है।

—गिरिजाशंकर त्रिवेदी

०००

अध्यापकीय सार्थकता

गत वर्ष घर से आते समय मैं आसनसोल उतरा। एक युवती ने पैर छूकर प्रणाम किया। मैं पहचान नहीं सका। उसने बताया—"सर, मैं सन १९६२ में आपकी छात्रा रह चुकी हूं।" मैं फिर भी पहचान नहीं पाया, तो उसने बताया—"विवाह के बाद ही मुझे वैधव्य का अभिशाप मिला। मैं बी० ए० फेल थी। ससुराल वालों के तानों से तंग आकर मैंने एक दिन आत्महत्या का निश्चय किया। कुछ लिखकर रख जाने के लिए मैं कागज खोज रही थी कि मुझे अपनी छात्रावस्था की एक कापी मिली। प्रसाद की 'ध्रुवस्वामिनी' पढ़ाते समय आपने लिखाया था—'आत्महत्या सबसे बड़ा पाप है, जो कायर करते हैं।' बस, मैं संभल गयी। मैं भैया के पास आ गयी। मैंने बी० ए०, और



व्यथाव्यग्र : पिकासो

गई

डिप-इन-एड० की परीक्षा पास की और अब विद्यालय-निरीक्षिका हूं ।"

अपनी शिष्या के मुंह से यह सुनकर मुझे अपने अध्यापकीय जीवन की सार्थकता की गहरी प्रतीति हुई ।

—डा० बच्चन पाठक 'सलिल'

०००

यह ढकोसला क्यों ?

गर्मी की छुट्टियों में हम आबू गये, तो वहां से तीन मील दूर स्थित गोमुखगंगा भी देखने गये, जो बड़ी मनोहारी एवं शांत जगह है। यात्रियों की सुविधा के लिए वहां के पुजारीजी एक रसोईघर भी चलाते हैं; पर उनका अपना रसोईघर अलग है, जिसके साथ एक बड़ा-सा कटहल का पेड़ है ।

हमारे साथ आये हुए एक ब्राह्मण परिवार का छोटा लड़का कटहल की बतिया देखने पुजारीजी के रसोईघर की तरफ बढ़ गया। पीछे-पीछे उसका पिता भी उस रसोईघर के दरवाजे पर पहुंचा। नैष्ठिक आचार-विचार के पुजारीजी ने आपत्ति की, तो लड़के के पिता ने व्यंग्य किया—"साधु-संत होकर भी आप ऐसे भेदभावों को पाले हुए हैं, मैं तो सभी को समान मानता हूं!"

पुजारीजी ने बड़ी शांति से इसका उत्तर दिया—"मेरे लिए भी सभी समान हैं, पर स्वच्छता और धर्म के मामले में सभी मेरी तरह हों, यह नहीं मानता ।"

इस पर वे सज्जन रोष-भरी आवाज में बोले—"पर हम तो ब्राह्मण हैं, फिर आपको आपत्ति नहीं होनी चाहिये ।"

तब पुजारीजी ने जो कहा, वह सदा याद रहेगा । बोले—"अभी तो आपने कहा कि आप जात-पांत नहीं मानते । फिर अपने को ब्राह्मण क्यों मानते हैं ? मेहतर के रूप में अपना परिचय क्यों नहीं देते ? औरों से अपनी जाति को ऊंचा मानने का यह मोह क्यों ? आजकल तो यह कहना एक फैशन-सा हो गया है—मैं तो जात-पांत नहीं मानता। पर मौका आने पर कोई भी अपने को 'छोटी जाति' का बताने को तैयार नहीं होता।"

—दर्शना दवे



आश्रमवासी कुष्ठरोगी परचुरे शास्त्री की सेवा-शुश्रूषा बापू स्वयं किया करते थे। एक दिन पंडित सुंदरलाल ने कुष्ठ की अचूक औषधि बतायी। काला सांप पकड़कर मिट्टी की हंडिया में बंद करो। उसे आग पर चढ़ा दो। सांप भस्म हो जायेगा। उस भस्म को शहद के साथ चाटो। बापू ने शास्त्रीजी से पूछा—"कहिये, आपके लिए यह दवा तैयार की जाये ? आप इसका सेवन करने के लिए तैयार हैं ? कोई आपत्ति तो नहीं ?" शास्त्रीजी का कंठ अवरुद्ध हो गया। बोले—"बापू, क्यों ठिठोली करते हैं ? मुझे ही आप क्यों नहीं भस्म कर देते ? निरपराध सर्प को क्यों भस्म किया जाये ? पिछले जन्म के पापों का फल मैं भुगत रहा हूं। इस जन्म में भी जीवहत्या का पाप किया, तो अगले जन्म में मेरा क्या हाल होगा ?"

—मिलनी टंडन 'रसिकप्रिया'





डैनी के

मेरा सबसे बड़ा दर्शक

मुझे आज तक पता नहीं चल पाया है कि मैं किस तरह इतना लोकप्रिय बन बैठा! किस सौभाग्य से जीवन में मुझे इतना अच्छा परिवार और इतने अच्छे मित्र मिले हैं! लेकिन जीवन और काम के बारे में एक महत्त्वपूर्ण बात मैं अवश्य जानता हूं।

मेरी लड़की डेना अब बड़ी हो रही है और मुझसे तरह-तरह के प्रश्न पूछती रहती है। जब वह मुझसे पूछती है कि सुख और सफलता की खोज करने वाले व्यक्ति को कौन-सी चीज सबसे अधिक सहायता पहुंचा सकती है, तो मैं कहता हूं—"डेना बेटी, तुम जो भी काम करो, उस काम से भरपूर प्यार अवश्य करो।"

जिन दिनों विदूषक का अभिनय करना मैंने पेशा बना लिया, उन दिनों मैंने बहुत बुरे दिन भी देखे। मगर अपने काम के प्रति मेरा जो गहरा प्यार था, उसने मुझे भूख और यंत्रणा को सहने की शक्ति दी।

एक बार मुझे दर्शकों ने स्टेज पर नाचने के लिए कहा। मैं पहले ही काफी थक चुका था, मगर दर्शकों का प्यार-भरा अनुरोध मैं नहीं टाल सका। अगर दर्शक मुझे पसंद करते हैं और मैं उन्हें पसंद करता हूं, तो हम दोनों एक नैतिक रुक्के से बंधे रहते हैं। मैं नाचता रहा। पैर जवाब दे रहे थे, मगर मैं स्टेज छोड़ना नहीं चाहता था। दर्शकों को भी यह एहसास होना चाहिये कि मैं जो कुछ भी करता हूं, उससे कितना प्यार करता हूं!

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि स्टेज पर अभिनय करते वक्त मैं यह भूल जाता हूं कि दर्शकों को घर भी जाना है। फिर जब होश आता है, तो मैं लज्जा से भर उठता हूं। दर्शकों के सामने झुकता हूं, उनसे क्षमा मांगता हूं और कहता हूं—"भाई, वास्तव में अपनी कला का सबसे बड़ा दर्शक मैं ही हूं। मैं अपने प्रदर्शन पर स्वयं इतना मुग्ध हो जाता हूं कि मुझे यह याद ही नहीं रहता कि आप लोगों को घर भी जाना है।"



अंतिम देवता

लाखों-करोड़ों हाथ एक साथ आकाश की ओर उठे हुए दीख रहे थे। लाखों कंठों की ध्वनियां पूरे सौर-मंडल में गूंज रही थीं। चारों ओर हाहाकार, अंधकार, निराशा के घने बादल छितराये हुए थे। उसी समय आकाश में कौंधती हुई बिजली के समान, श्रेष्ठ अलंकारों से शोभित, एक दैवीय पुरुष प्रकट होकर बोला—"अब कौन-सी कमी रह गयी है? अब क्या चाहते हो?"

एक साथ सभी बोल उठे—"प्रभु! हम सबका मार्गदर्शन करने वाला कोई नहीं। हम पथभ्रष्ट होते जा रहे हैं, कोई किसी का कहना नहीं मानता। किसी देवता को भेजिये!" और उस परम शक्तिमान पुरुष ने, कोमल शरीर, मनोहर रूप वाले एक पुरुष को पृथ्वी पर भेजा। सब लोगों ने उसका फूल-मालाओं से स्वागत किया। उस पर जल चढ़ाया, चरणों को चूमा, अपनी-अपनी बातें कहीं। किंतु हाय, यह क्या? फूल-मालाओं के भार से दबकर वह मृत्यु की गोद में सो गया।

फिर लोगों ने उस परम शक्तिमान को कातर स्वर से पुकारा और सारी घटना कह सुनायी। उन्होंने फिर एक दूसरे सुकुमार एवं कोमल पुरुष को भेजा। उसका भी वही हाल हुआ। इसी प्रकार उस परम शक्तिमान पुरुष ने तीन बार ऐसा ही किया।

अंत में चौथी बार उन्होंने ऊपर से एक पत्थर का टुकड़ा पटकते हुए कहा—"मूर्खो! आज से इस पर चाहे जितनी फूल-मालाएं और कितना ही जल चढ़ाओ, चूमो, सिर पटको और शिकायतें करो—यह कभी मरने वाला नहीं। सब कुछ युग-युग तक चुपचाप सहता रहेगा।"

—*कमलाकांत हीरक*

कितना छोटा ! कितना बड़ा !

फ्रिट्ज जिलेश

परमाणु ऊर्जा के आविष्कार ने बहुतों के मन में परमाणु की दुनिया के रहस्य जानने की इच्छा जगायी है। लेकिन ब्रह्मांड के इन सबसे नन्हे घटकों का विश्लेषण करना उतना ही कठिन है, जितना कि स्वयं ब्रह्मांड का विश्लेषण करना। परमाणु की संरचना के संबंध में अभी तक वैज्ञानिकों में ही विवाद चल रहा है। इन विवादों में वे भौतिक-शास्त्र की अत्यंत समुन्नत शाखाओं की जटिलतम परिकल्पनाओं का उपयोग करते हैं, जिन्हें तुलनाओं या नक्शों के द्वारा भी सामान्य आदमियों को समझाना बहुत कठिन है।

लेकिन परमाणु की दुनिया की एक चीज ऐसी है, जो सामान्य से सामान्य मनुष्य की बुद्धि को भी चमत्कृत कर सकती है। वह है उनका संख्यागत संबंध। हम कह सकते हैं कि हम मीटर (या गज) से नापी जाने वाली दुनिया में जीते हैं। किलोमीटरों में नापने योग्य दूरियों की कल्पना करना भी मानव-मस्तिष्क के लिए काफी कष्टसाध्य हो जाती है।

लेकिन परमाणु और ब्रह्मांड दोनों में ऐसी दूरियां और विस्तार हैं, जिन्हें समझने में हमारी कल्पना-शक्ति बिलकुल असमर्थ हो जाती है। मस्तिष्क चकराने लगता है कि किसे छोटा कहें, किसे बड़ा ? आइये, विज्ञान की इन चकरा देने वाली कुछ संख्याओं पर नजर डालें, जो अगले पृष्ठ की तालिका में दी गयी हैं।

संख्याओं के इस व्यापक अंतर को सहज ही ग्रहण कर पाना हमारी मानसिक कल्पना के बूते के बाहर है। इन्हें अपनी समझ के दायरे में लाने के लिए हमें इस विशाल पैमाने को तीन भागों में बांटकर उन पर अलग-अलग विचार करना होगा। मापने की जिन सबसे छोटी इकाइयों से हम परिचित हैं, और जिन्हें हमारी आंखें पहचान सकती हैं, उनमें से एक है १/१० मिलीमीटर, जो बाल की चौड़ाई के बराबर है। आइये, इसे आधार बनाकर कुछ तुलनाएं करके देखें :

अगर परमाणु के नाभिक का व्यास १/१० मि० मी० हो, तो परमाणु एक खासी बड़ी कोठी जितना होगा; बैक्टीरिया की लंबाई लंदन से बर्लिन के बीच की दूरी जितनी होगी; अमीबा इतना लंबा होगा कि उसे भूमध्य-रेखा पर पूरे दो बार लपेटा जा सकेगा;

मई

परमाणु के नाभिक का व्यास	०.०००,०००,०००,००१ मि. मी.
परमाणु का व्यास	०.०००,०००१ मि. मी.
बैक्टीरिया की लंबाई	०.०१ मि. मी.
अमीबा की लंबाई	०.८ मि. मी.
आदमी की ऊंचाई (कद)	१७५०.० मि. मी.
पृथ्वी का व्यास	१३,००० कि. मी.
सूर्य का व्यास	१,३९०,००० कि. मी.
एंटारेस तारे का व्यास	६००,०००,००० कि. मी.
वेगनर तारापुंज के एप्सिलान तारे का व्यास	४,०००,०००,००० कि. मी.
सौर मंडल का व्यास	११,८००,०००,०००,००० कि. मी.
आकाशगंगा का व्यास	९००,०००,०००,०००,०००,००० कि. मी.
ब्रह्मांड का व्यास (सैद्धांतिक अनुमान)	१,०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००,००० कि. मी.

आदमी इतना कद्दावर होगा कि पृथ्वी पर वह खड़ा हो, तो सूरज उसकी ठोडी को छू रहा होगा ; और पृथ्वी इतनी विशाल होगी कि प्रकाश की रफ्तार से चलते हुए वायुयान को उत्तर ध्रुव से दक्षिण ध्रुव की दूरी तै करने में २ वर्ष लग जायेंगे।

अब उलटी कल्पना कीजिये। अगर पृथ्वी का व्यास १/१० मि० मी० हो, तो सूर्य मटर के दाने के बराबर होगा; एंटारेस तारा एक साधारण कोठरी के बराबर होगा; वेगनर तारापुंज का एप्सिलान तारा छः मंजिले मकान जितना बड़ा होगा; सौर-मंडल का विस्तार फुटबाल के मैदान के बराबर होगा।

लेकिन सौर-मंडल का व्यास अगर केवल १/१० हो, तो आकाशगंगा लगभग एवरेस्ट जितनी बड़ी होगी और ब्रह्मांड इतना विशाल होगा कि उसके व्यास पर हमारी पृथ्वी जितने बड़े ६४० गेंद अंटाये जा सकेंगे।

ब्रह्मांड का व्यास परमाणु के व्यास से 'सेप्टिलियन' गुना बड़ा है। (१ के बाद ४२ शून्य रखें, तो वह १ सेप्टिलियन होता है।) और इन संख्यात्मक परिमाणों का मध्यमान क्या है? क्या वह भी इसी प्रकार अतिविशाल संख्याओं में होगा?

नहीं। सौभाग्य से परमाणु के व्यास और ब्रह्मांड के व्यास का मध्यमान ऐसी इकाई में है, जिसे मानव-मन समझ सकता है। यह ऐसा पिंड होगा, जिसका व्यास १,००० किलोमीटर होगा।

['इस्रायल न्यूस लेटर' से]



क्या पक रहा है विज्ञान की पाकशाला में

• बसंतकुमार मुखोपाध्याय

जनसंख्या-वृद्धि के फलस्वरूप खाद्याभाव आज विश्वव्यापी समस्या बन गया है। विश्व के अनेक देश अभी आयातित अन्न या सहायता में प्राप्त अन्न से गुजारा करते हैं। लेकिन अर्थशास्त्रियों ने जनसंख्या-वृद्धि का अनुपात देखकर यह आशंका प्रकट की है कि अन्य देशों को खाद्य-सहायता देने वाले देशों में भी खाद्याभाव की समस्या पैदा होने वाली है।

और भी अधिक चिंता की बात तो यह है कि भावी पीढ़ी को स्वस्थ-समर्थ वनाने के लिए अन्न के अलावा जो दूध, फल, मछली, मांस इत्यादि पुष्टिकर खाद्य जरूरी हैं, वे भी कालक्रम में दुर्लभ हो जायेंगे।

इसीलिए वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रयोगों द्वारा प्रकृति से ही खाद्याभाव की पूर्ति करने का संकल्प किया है, जिससे अधिक-से-अधिक पुष्टिकर खाद्य प्राप्त हो सके।

मनुष्य सहज ही अपने खान-पान में परिवर्तन करना नहीं चाहता। जिस देश में जैसा खानपान प्रचलित रहता है, उसे तत्काल तो वदला नहीं जा सकता; मगर धीरे-धीरे नये खाद्य पदार्थों में रुचि पैदा की जा सकती है, और वाद में यही रुचि अभ्यास में बदल सकती है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए ही वैज्ञानिक अपना काम कर रहे हैं।

अव तक आविष्कृत नये खाद्य पदार्थों में न सिर्फ प्रचलित खाद्य पदार्थों के सारे गुण मौजूद हैं, वल्कि उनका रंग, गंध, स्वाद सब कुछ प्रचलित खाद्य पदार्थों-जैसा ही बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस तरह के कृत्रिम खाद्य पदार्थों में प्रमुख है, 'प्लांट-मिल्क' अर्थात् पेड़-पौधों से तैयार किया गया दूध। वकिंगहमशायर का व्यावसायिक प्रतिष्ठान 'टिथे फार्म' इस दूध की बिक्री जोर-शोर से कर रहा है। सन १९५६ में इस कृत्रिम दूध-उत्पादन की योजना शुरू की गयी थी और सन १९६१ में वह पूरी हुई। गाय या भैंस के दूध में जितने भी गुण होते हैं, वे सब इस दूध में मिलते हैं, यहां तक कि इसका रंग भी सफेद होता है।

गेहूं, जौ, मकई, सरसों इत्यादि के पत्तों के रस से इस दूध का उत्पादन किया जाता है। प्रचुर मात्रा में इन पौधों के पत्ते जमा किये जाते हैं, फिर मशीन से उनका रस निकाला जाता है और फिर उसे खौला-

कर उसमें से प्रोटीन निकाला जाता है। रासायनिक शोधन-क्रिया द्वारा इस प्रोटीन को सुखाकर दूध बनाया जाता है। इस रासायनिक प्रक्रिया के फलस्वरूप दूध का रंग भी साफ-सफेद हो जाता है।

गाय-भैंस जिन पेड़-पौधों के पत्ते खाती हैं, अब तक उसी से यह दूध तैयार किया जाता रहा है, मगर निकट भविष्य में अन्यान्य पेड़-पौधों के पत्तों पर भी प्रयोग किया जायेगा।

हमारे देश में कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्राध्यापक स्वर्गीय डा० वीरेशचंद्र गुहा ने घास से प्रोटीन निकालने में सफलता प्राप्त की थी। संभवत: उनकी अकाल मृत्यु के कारण ही इस योजना को हमारे देश में आगे नहीं बढ़ाया जा सका। वैसे सोयाबीन और मूंगफली से दूध निकालने की विधि तो हमारे यहां भी सफल हो चुकी है।

मांस और मछली दोनों ही प्रोटीन-भरे खाद्य हैं; किंतु प्राय: सभी देशों में अन्यान्य खाद्य पदार्थों की तुलना में मांस और मछली की कीमतें बहुत अधिक हैं। इसीलिए अमरीका के वैज्ञानिकों ने कृत्रिम मांस-मछली बनाने का प्रयास किया है। अब तो अमरीका के बहुत-से खाद्य-प्रतिष्ठान कृत्रिम मांस और मछली बाजार में बेच भी रहे हैं।

ये न सिर्फ असली मांस-मछली की तरह पुष्टिकर होते हैं, बल्कि इनका रंग, स्वाद, गंध सब कुछ असली चीज-जैसा लगता है। असली मांस की जैसी बनावट (टेक्स्चर) होती है, उसे कृत्रिम मांस में उतारने में वैज्ञानिक बड़े प्रयत्नों के बाद सफल हुए हैं। बकरा, भेड़ और मुर्गी के मांस को चबाने और चूसने में जो स्वाद मिलता है, ठीक वैसा ही स्वाद इस कृत्रिम मांस में भी मिलता है; हालांकि यह मांस संपूर्णतया अनाज से ही बनाया जाता है। और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्राकृतिक मांस-मछली से कृत्रिम मांस-मछली काफी सस्ती पड़ती है।

अमरीकी वैज्ञानिकों ने इसके लिए मुख्यत: तीन तरह की पद्धतियां अपनायी हैं—१. शस्यों की प्रोटीन-समृद्धि में वृद्धि, २. एमिनोएसिड-समन्वित शस्य, ३. मनुष्य-निर्मित प्रोटीनयुक्त खाद्य।

अमरीका का परड्यू विश्वविद्यालय एक ऐसा मक्का उपजाने में सफल हुआ है, जिसमें साधारण मक्के की तुलना में दुगुना प्रोटीन होता है। इसमें लाइसिन नाम का एमिनोएसिड भी होता है, जो पशु-प्राणियों के मांस में पाये जाने वाले प्रोटीन की विशेषता है।

परीक्षण के तौर पर पशुओं को यह मक्का खिलाकर देखा गया। परिणाम आश्चर्यजनक रहा। साधारण मक्का खाने पर सात दिन में जितना वजन बढ़ता है, उससे तीन गुना ज्यादा भार-वृद्धि यह नया मक्का खाने पर सात ही दिन में हो जाती है।

ग्वाटेमाला में कई तरह के शस्य, रूई के बीज, सोयाबीन का मैदा और खमीर के मिश्रण से 'इनकैपेरिना' नाम का एक प्रोटीनयुक्त पुष्टिकर खाद्य बनाया गया है, जिसमें कैलशियम कार्बोनेट और विटामिन 'ए' भी मिलाये गये हैं। प्रोटीन के अभाव से होने

वाले रोगों के निवारण में 'इनकैपेरिना' ने अद्भुत लाभ दिखाया है।

इंडोनेशिया में भी ऐसा एक पुष्टिकर खाद्य पदार्थ तैयार किया गया है। नाम है 'सारिडेली'। इसे मटर, साबूदाना, सोयाबीन और दुग्धचूर्ण से तैयार किया गया है।

प्रोटीन-समन्वित खाद्य द्रव्यों में सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है—खमीर। इसे चीनी अथवा गुड़ की गाद से काफी कम खर्च में और कम समय में प्रचुर परिमाण में तैयार किया जा सकता है। पौष्टिकता की दृष्टि से खमीर की तुलना मांस से की जा सकती है।

खमीर की एक विशेषता और है कि वह सूरज की रोशनी, पानी, मिट्टी और अधिक परिश्रम के बिना ही प्रचुर मात्रा में पैदा हो सकता है। उसे विभिन्न प्रकार के शोरबों और आइसक्रीम में मिलाकर इन व्यंजनों को अधिक पुष्टिकर बनाया जाता है।

हाल के परीक्षणों में देखा गया है कि कार्बोहाइड्रेट-युक्त गुड़ अथवा चीनी की गाद के अलावा हाइड्रोकार्बन अथवा पेट्रोलियम से भी खमीर पैदा किया जा सकता है। चीनी और गुड़ की गाद में खमीर के बनने में जितना समय लगता है, उतने समय में पेट्रोलियम में दुगुना खमीर बनता है।

इस तरह पेट्रोलियम से बने खमीर में ५० प्रतिशत से भी अधिक प्रोटीन, एमिनोएसिड और विटामिन 'बी' मिलते हैं।

इसकी सबसे अधिक उपयोगिता इस कारण है कि इसमें लाइसिन रहता है, जो शरीर के लिए अत्यंत पुष्टिकर माना जाता है। इस खमीर को साफ-सुथरा करके सुखा लेने के बाद चूर्ण रूप में अथवा छोटे-छोटे टुकड़ों में परिणत किया जाता है।

पहले यह आशंका प्रकट की गयी थी कि पेट्रोलियम से बनाया गया खमीर दुर्गंधपूर्ण होगा और खाद्य के रूप में इसका उपयोग नहीं हो सकेगा। किंतु पर्याप्त परिशोधन के बाद यह देखा गया कि इसमें न तो दुर्गंध होती है और न इसकी पौष्टिकता ही कम होती है। विभिन्न खाद्य पदार्थों के साथ सहज ही इसका व्यवहार किया जा सकता है। साधारणतः मांस-मछली के 'सास' में खमीर का उपयोग अधिक होता है।

पेट्रोलियम पृथ्वी पर बहुत मात्रा में प्राप्य है, और वैज्ञानिकों का कहना है कि अगर खाद्याभाव-पूर्ति की दिशा में खमीर-उत्पादन के लिए उसका थोड़ा-सा अंश भी काम में लाया जाये, तो आशातीत सफलता मिलेगी। पेट्रोलियम से बने खमीर से प्रति वर्ष दो करोड़ टन प्रोटीन मिल सकेगा।

अब रासायनिक पद्धति द्वारा काठ से चीनी बनाने की संभावना भी नजर आने लगी है। कई तरह के कीड़े-मकोड़ों के पाकाशय में एक प्रकार के जीवाणु होते हैं, जिनके सहारे कीड़े काठ को हजम कर लेते हैं।

अगर प्रयोगशाला में प्रचुर मात्रा में ऐसे जीवाणु पैदा किये जा सकें, तो काठ के चूरे से खाद्य प्राप्त होने की पर्याप्त संभावना है। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि यह खाद्य न सिर्फ पशु-पक्षियों के लिए, बल्कि मनुष्यों के लिए भी उपयोगी होगा।





डा० गोकुलचंद्र जैन

हमारे प्राचीन वाद्य

सोमदेव-कृत 'यशस्तिलक' (९५९ ई०) में वाद्यों के विषय में बहुमूल्य और प्रचुर सामग्री है। उसमें वाद्यों के लिए सामान्य शब्द 'आतोद्य' आया है। सोमदेव ने लिखा है कि नंदिगण आतोद्य के द्वारा सरस्वती का पूजन करते थे। नाटचशास्त्र तथा अमरकोश में भी चार प्रकार के वाद्यों के लिए सम्मिलित शब्द आतोद्य ही दिया है।

घन, सुषिर, तत और अवनद्ध—ये चार प्रकार के वाद्य हैं। जो वाद्य एक-दूसरे में टकोर लगाकर बजाये जाते हैं, वे 'घन' कहलाते हैं; जैसे घंटा आदि। जो वाद्य वायु के दबाव से बजाये जाते हैं, वे 'सुषिर' कहलाते हैं; जैसे वेणु आदि। जो वाद्य तंतु (तार या तांत) पर आघात करके बजाये जाते हैं, वे 'तत' कहलाते हैं; जैसे वीणा आदि। जो चमड़े से मढ़े होते हैं, वे 'अवनद्ध' कहलाते हैं; जैसे मृदंग आदि।

यशस्तिलक में विभिन्न प्रसंगों में तेईस प्रकार के वादित्रों का उल्लेख है :

शंख, काहला, दुंदुभि, पुष्कर, [illegible] आनक, भम्भा, ताल, करटा, [illegible] डमरुक, रुंजा, घंटा, वेणु, वीणा, [illegible] वल्लकी, पणव, मृदंग, भेरी, तूर, [illegible] डिंडिम।

इनमें प्रथम सोलह का उल्लेख यु[illegible] प्रसंग में एक साथ भी हुआ है, [illegible] विषय में विशेष विवरण इस रूप में है:

१. शंख : यशस्तिलक में शंख का उल्[illegible] कई बार हुआ है। युद्ध के प्रसंग में सोम[illegible] ने लिखा है कि शंख बजे, तो दसों दि[illegible] मुखरित हो उठीं।

शंख की सर्वश्रेष्ठ जाति पांचजन्य मा[illegible] जाती है। भगवद्गीता के अनुसार श्रीकृ[illegible] के हाथ में पांचजन्य शंख रहता था। सो[illegible] देव ने इन दोनों तथ्यों का उल्लेख किया है[illegible]

संगीतशास्त्र में शंख की गणना सु[illegible] वाद्यों में की जाती है। वाद्यों में शंख ही ए[illegible] है, जो पूर्णतया प्रकृति द्वारा निर्मित है [illegible] अपने मौलिक रूप में भी वादन-योग्य हो[illegible]

[इस लेख के साथ की समस्त शिल्पानुकृतियां ओके द्वारा आंकित हैं]

है। 'संगीतपारिजात' में लिखा है कि वाद्योपयोगी शंख का पेट बारह अंगुल का होता है तथा मुख-विवर बेर के बराबर। वादन-सुविधा के लिए शंख के मुख-विवर पर धातु का कलश भी लगाया जाता है। भारतवर्ष में शंख का प्रयोग प्राचीन काल से चला आया है और आज भी मंगल-कार्यों के अवसर पर शंख फूंकने का रिवाज है।

साधारणतया शंख से एक ही स्वर निकलता है; किंतु इससे भी राग-रागिनियां उत्पन्न की जा सकती हैं। श्री चुन्नीलाल शेष ने अपने एक लेख में लिखा है कि मैसूर राज्य के राजगायक स्वर्गीय पंडित प्रभुदयाल ने कांकरौली-नरेश गोस्वामी श्री व्रजभूषणजी महाराज के सम्मुख इस वाद्य का प्रदर्शन किया था और उससे सब राग-रागिनियां निकालकर सुनायी थीं। इस शंख के पेट का परिमाण बारह अंगुल के ही लगभग था। मुख-विवर पर मोम से स्वर्ण-कलश चिपकाया हुआ था। मुख और स्वर्ण-कलश के बीच मकड़ी के जाले की झिल्ली लगी थी।

२. काहला : यशस्तिलक में एक प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है, जब काहलाएं बजने लगीं, तब उनके नाद की प्रतिध्वनि से दिशाएं, पर्वत तथा गुफाएं शब्दायमान हो उठीं।

काहला तीन हाथ लंबा, छिद्रयुक्त तथा धतूरे के फूल जैसे मुंह वाला सुषिर वाद्य है। यह सोना, चांदी या पीतल का बनाया जाता है तथा इसके बजाने से 'हा-हू' शब्द होते हैं। उड़ीसा में अब भी इस वाद्य का प्रचलन है।

३. दुंदुभि : यह एक युद्ध-वाद्य है। युद्ध के प्रसंग में लिखा है कि जब दुंदुभि बजने लगी, उसकी ध्वनि से समुद्र क्षुब्ध हो उठे। यशोधर के जन्म के समय भी दुंदुभि बजने का उल्लेख है।

दुंदुभि अवनद्ध वाद्य है। यह एक मुंह वाला होता है तथा मुंह पर चमड़ा मढ़कर बनाया जाता है और डंडे से पीटकर बजाया जाता है। विशेषत: मंगल और विजय के अवसर पर दुंदुभि बजाने का प्रचलन वेदकाल से ही रहा है।

४. पुष्कर : यशस्तिलक में उल्लेख है कि युद्ध में सुर-सुंदरियों के कानों को कष्ट देने वाले पुष्कर बजे। श्रुतसागर ने पुष्कर का अर्थ एक स्थान पर मर्दल और एक स्थान पर मृदंग किया है। अवनद्ध वाद्यों के लिए पुष्कर का सामान्य अर्थ में प्रयोग होता है।

५. ढक्का : यशस्तिलक में ढक्का का उल्लेख युद्ध के प्रसंग में हुआ है। ढक्काएं



मदुरै मीनाक्षी मंदिर का एक मूर्तिपुंज

पीटी जाने लगीं, तो सेना के हाथियों के बच्चे डर गये। श्रुतसागर ने ढक्का का अर्थ ढोल किया है।

ढक्का या ढोल एक अवनद्ध वाद्य है। प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ काशिका-वृत्ति में भी अवनद्ध वाद्यों में इसका उल्लेख है। यह लकड़ी का बना वर्तुलाकार वाद्य है, जिसके दोनों मुंहों पर चमड़ा मढ़ा रहता है। आज-कल भी ढक्का या ढोल का प्रचलन है। बड़े ढोल डंडे से पीटकर बजाये जाते हैं, छोटे हाथ से भी बजाये जाते हैं। छोटे ढोल को ढोलकी या ढुलकिया कहा जाता है।

६. आनक : आनक का यशस्तिलक में कई बार उल्लेख है। श्रुतसागर ने आनक का अर्थ पटह किया है। आनक एक मुंह वाला अवनद्ध वाद्य है, जिसके बजाने से मेघ या समुद्र के गर्जन के समान भयानक आवाज होती है। महाभारत में आनक का कई बार उल्लेख है। आनक की तुलना आज-कल के नौबत या नगाड़े से हो सकती है।

७. भम्भा : यशस्तिलक में भम्भा का दो बार उल्लेख है। एक प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि जंभाई लेती हुई भुजंग-भामिनियों में खलबली मचाने वाली एक साथ कई भम्भाएं बजीं।



बेलूर मंदिर की प्रस्तर-मूर्ति

श्रुतसागर ने स्पष्ट शब्दों में इसे मुंग... वाद्य कहा है। वास्तव में, सर्पों को जगाने, रिझाने में अभी तक सुषिर वाद्यों का ही प्रयोग देखा जाता है। इसलिए सोमदेव के उल्लेख और श्रुतसागर की व्याख्या से भम्भा को सुषिर-वाद्य मानना चाहिये। किंतु 'राय पसेणियसुत्त' के उल्लेखों के आधार पर विचार करने से ज्ञात होता है कि यह एक अवनद्ध वाद्य ही था।

८. ताल : सोमदेव ने युद्ध के प्रसंग में लिखा है कि डरे हुए हाथियों ने कान फड़फड़ाये, तो तालों की आवाज दुगुनी हो गयी। घनवाद्यों में ताल का सर्व प्रथम उल्लेख किया जाता है। यह वाद्य छः अंगुल व्यास का, गोल कांसे का बना हुआ, बीच में दो अंगुल गहरा होता है। मध्य में छेद होता है, जिसमें एक डोरी द्वारा यह जुड़ा रहता है और दोनों हाथों से पकड़ कर बजाया जाता है। ताल की ध्वनि बहुत देर तक गूंजती है।

९. करटा : यशस्तिलक में करटा का भी उल्लेख युद्ध के प्रसंग में ही है। सोमदेव ने लिखा है कि रणवीरों को उत्साहित करने वाली करटाएं बजीं। करटा का अर्थ श्रुतसागर ने वादित्र-विशेष करके छोड़ दिया है। करटा एक प्रकार का अवनद्ध वाद्य है

यह असन वृक्ष की लकड़ी का बनाया जाता है। दो मुंह का बनता है। दोनों ओर चौदह अंगुल वर्तुलाकार चमड़े से मढ़ा जाता है। यह कमर में बांधकर अथवा कंधे पर लटकाकर दोनों हाथों से बजाया जाता है।

१०. **त्रिवला :** यशस्तिलक में त्रिवला का दो बार उल्लेख है। युद्ध के प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि समर-देवता की छाती फुलाने वाली त्रिवलाएं विलंबित लय में बज रही थीं।

त्रिविली को 'संगीत-रत्नाकर' में अवनद्ध वाद्यों में गिनाया है। त्रिवला और त्रिविली एक ही वाद्य ज्ञात होता है। यह दोनों ओर चमड़े से मढ़ा तथा मध्य में मुष्टिग्राह्य होता है। सूत की डोरियों से इसमें कसाव लाया जाता है। इसके मुंह सात अंगुल के होते हैं और दोनों ओर हाथों से बजाया जाता है। यह डमरुक से मिलता-जुलता प्रकार है।

११. **डमरुक :** सोमदेव ने लिखा है कि निरंतर बज रहे डमरुओं की ध्वनि सुनते-सुनते युद्ध में राक्षसियां जंभाई लेने लगीं।

डमरुक का प्रचलन आज भी है और इसे डमरू कहा जाता है। डमरू दोनों ओर चमड़े से मढ़ा हुआ काठ का वाद्य है, जो बीच में पकड़ने के लिए पतला रहता है। बजाने के लिए दोनों ओर रस्सी में एक-एक छोटी लकड़ी बंधी रहती है। डमरू को बीच में पकड़कर हिला-हिलाकर बजाते हैं।

१२. **रुंजा :** रुंजा का यशस्तिलक में केवल एक बार उल्लेख है। युद्ध के प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि रुंजाओं की बहुत देर तक की गूंज से वीर लक्ष्मी के गृह-निकुंज जर्जर हो गये।



प्राचीन उड़ीसा शिल्प

रुंजा की गणना अवनद्ध वाद्यों में की जाती है। यह काठ अथवा धातु का १८ अंगुल लंबा तथा ११ अंगुल के दो मुंहवाला वाद्य है। मुंह पर कोमल चमड़ा मढ़ा जाता है तथा दोनों ओर के मुखों का चमड़ा डोरी से कसा हुआ होता है, जिसमें छल्ले या कड़े पड़े रहते हैं। इसके दायें मुख को एक टेढ़े बांस से रगड़कर तथा बायें को एक लकड़ी से पीटकर बजाया जाता है।

१३. **घंटा :** घंटा का उल्लेख भी युद्ध के ही प्रसंग में है। सोमदेव ने लिखा है कि शत्रुकटकों की चेष्टाओं को लूटने वाले जय-घंटे बजे। घंटा एक प्रकार का घनवाद्य है। इसका प्रचलन अब भी है। विजय या युद्ध के अवसर पर जो घंटा बजाया जाता था, उसे जयघंटा कहते थे। घंटे छोटे-बड़े अनेक प्रकार के बनते हैं।

१४. **वेणु :** यह एक सुषिर वाद्य है, जो



बांस में छिद्र करके बनाया जाता है। बांस का बनने के कारण ही इसे वणु कहा गया। वेणु का उल्लेख प्राचीन साहित्यमें बहुत मिलता है। आज भी इसका प्रचलन है और इसे बांसुरी कहा जाता है।

१५. वीणा : संगीतशास्त्र में ततवाद्यों के लिए वीणा नाम का सामान्य प्रयोग होता है। सोमदेव ने भी सामान्य अर्थ में प्रयोग किया है। वीणा तार तथा बजाने के प्रकार-भेद से अनेक प्रकार की होती है। 'संगीत-रत्नाकर' में दस भेद आये हैं।

१६. झल्लरी : झल्लरी का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख है। किंतु इन उल्लेखों से इसके विषय में विशेष जानकारी नहीं मिलती। भरत ने झल्लरी का उल्लेख किया है। 'संगीतरत्नाकर' में झल्लरी को अवनद्ध वाद्यों में गिनाया है। यह एक ओर चमड़े से मढ़ा हुआ वाद्य है, जो बायें हाथ में पकड़-कर दायें हाथ से बजाया जाता है। इसके बहुत छोटे आकार को 'भाण' कहते हैं।

१७. वल्लकी : यशस्तिलक में वल्लकी का एक बार उल्लेख है; पर विशेष विव-रण नहीं है। 'वल्लकी' लौकी शब्द का मूल रूप प्रतीत होता है। गोल लौकी या तूंबी लगाकर बनायी गयी विशेष वीणा को वल्लकी कहा जाता था।

१८. पणव : यह एक प्रकार का छोटा ढोल है। भरत ने अवनद्ध वाद्यों में इसका उल्लेख किया है। बाद में इसका लो... गया लगता है। 'संगीतरत्नाकर' ... 'संगीतराज' में इसका उल्लेख नहीं है।

१९. मृदंग : भरत ने इसे पुष्कर-... गिनाया है। इसका खोल मिट्टी का बनता... इसीलिए इसका नाम मृदंग पड़ा। इसके दो... मुंह चमड़े से मढ़े जाते हैं। मृदंग को ... होकर गले में डालकर अथवा बैठकर ... रखकर हाथों से बजाते हैं। बंगाल में ... जिसे 'खोल' (चांदखोल) कहा जाता ... उसी से मृदंग की पहचान करनी चाहि...

२०. भेरी : यह मृदंग की जाति का ... हाथ लंबा, दो मुंह वाला धातु-निर्मित ... है। मुख का व्यास एक हाथ का होता है। दोनों मुंह चमड़े से मढ़े होकर डोरियों से ... रहते हैं और उनमें कांसे के कड़े पड़े रहते...

२१. तूर्य या तूर : यशस्तिलक में ... लिए तूर्य और तूर दो शब्द आये हैं। ... धर के राज्याभिषेक के समय तूर्य ब... गये। तूर एक प्रकार का सुषिर वाद्य है। आजकल इसे तुरही कहा जाता है। तुर... के अनेक रूप देखने में आते हैं। दो हाथ... चार हाथ तक की तुरही बनती है।

२२. पटह : यह एक प्रकार का ... नद्ध वाद्य है। 'संगीतपारिजात' में इसे ढो... कहा है। 'संगीतरत्नाकर' में इसके ... पटह और देशी-पटह दो भेद आये हैं ... दोनों का ही विस्तृत विवेचन किया गया है।

२३. डिंडिम : डिंडिम डमरू की ... का वाद्य है। आजकल इसे 'डिमडि...' कहते हैं। ['परिषद्-पत्रिका' से साभार]



झूठ पकड़ने की मशीन

डा० डी० के० गुप्त

हमारे देश में अपराध के संबंध में सच-झूठ का पता लगाने का एक रोचक तरीका कुछ आदिवासी जातियों में प्रचलित है। संदिग्ध व्यक्ति को एक मुट्ठी चावल मुंह में चबाकर थूकना पड़ता है। यदि थूका हुआ चावल अत्यंत सूखा हुआ, तो वह व्यक्ति अपराधी घोषित कर दिया जाता है। क्योंकि घबराहट के कारण अपराधी का गला सूखने लगता है और मुंह में सामान्यतया बहने-वाली लार की मात्रा कम हो जाती है। जिसका अंतःकरण स्वच्छ है, उसे भय नहीं होगा और उसके मुंह से निकला हुआ चावल अपेक्षाकृत अधिक गीला होगा। इससे कुछ मिलते-जुलते सिद्धांत के आधार पर ही 'लाइ-डिटेक्टर' यानी झूठ पकड़ने की मशीन का निर्माण किया गया है।

मनुष्य-शरीर में ऐसी अनेक क्रियाएं होती हैं, जिन पर सामान्यतया आदमी का कोई नियंत्रण नहीं होता। दिल की धड़कन, नाड़ी की गति, पसीना आना, श्वास-प्रक्रिया, भय के कारण गला सूखना, रक्तचाप आदि ऐसी ही क्रियाएं हैं। परंतु विशेष मानसिक या शारीरिक कारणों से इन क्रियाओं में घट-बढ़ भी होती है। कामोत्तेजना, भय आदि के कारण अथवा शारीरिक श्रम करने पर भी दिल की धड़कन बढ़ जाती है। यदि कोई आदमी चाहे कि बैठे-बैठे उसके दिल की धड़-कन घट या बढ़ जाये, तो यह असंभव है।

मनोवैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि जब आदमी झूठ बोलता है, तो उसकी मानसिक स्थिति पूर्णतया स्वाभाविक नहीं रहती। झूठ पकड़े जाने का डर उसे लगा रहता है और वह मानसिक तनाव में रहता है। अतः जब अपराधी किसी प्रश्न के उत्तर में झूठ बोलता है, तब उसकी शारीरिक अवस्था में कुछ परिवर्तन होते हैं। पूछ-ताछ के दौरान संदिग्ध व्यक्ति के रक्तचाप, दिल की धड़-कन आदि लगातार मापे जाते रहें, तो जान बूझकर किसी प्रश्न का गलत उत्तर देते समय मानसिक उत्तेजना के कारण उस व्यक्ति की शारीरिक क्रियाओं में अंतर आ जायेगा, जिसे यंत्र में देखा जा सकता है। यही 'लाइ-डिटेक्टर' का सिद्धांत है।



असत्य की ऐसी शारीरिक अभिव्यक्ति का परिज्ञान नया नहीं है। दसवीं शताब्दी में बुखारा के प्रसिद्ध चिकित्सक

और दार्शनिक अबू अली इब्न सिना (सुप्रसिद्ध अबू अविसेना) ने नाड़ी-परीक्षा द्वारा मन का हाल जानने का विस्तारपूर्वक वर्णन किया था। उसकी राय थी कि जिस व्यक्ति की परीक्षा करनी हो, उसकी नाड़ी पकड़कर उससे प्रश्न पूछने चाहिये, अथवा उसके सामने उस विषय पर बात करनी चाहिये, जिसके संबंध में उसके मन का हाल जानना है। जिस विषय की चर्चा के दौरान उस व्यक्ति की नाड़ी की गति बहुत बढ़ जाये, अस्थिर हो जाये, उसका उस व्यक्ति से विशेष संबंध होगा।

कहा जाता है, एक बार बुखारा के युवराज की भूख-प्यास जाती रही और उसकी आंखों से नींद उड़ गयी। बड़े-बड़े चिकित्सक भी रोग का निदान नहीं कर पाये। इब्न सिना ने तुरंत भांप लिया कि राजकुमार प्रेमरोग में फंसा है। उसने राजकुमार की नाड़ी पकड़ी और एक सेवक को नगर की तमाम गलियों का नाम बोलने को कहा। जब इस गली-सहस्रनाम का पाठ समाप्त हो गया, तो उसने एक निश्चित गली में रहने वालों के विषय में विशेष पूछताछ की। अंत में उसने राजा को बता दिया कि राजकुमार अमुक गली में रहने वाली अमुक लड़की के प्रेम में पागल है।

'लाइ-डिटेक्टर' में प्रायः रक्तचाप, श्वास-प्रक्रिया तथा हृदय की धड़कन मापी जाती है। जिस व्यक्ति से पूछ-ताछ करनी होती है, उसे आरामदेह कुर्सी पर बैठाकर उसकी बांह में ब्लड प्रेशर मापने के यंत्र की रबर लपेट दी जाती है। श्वास-प्रक्रिया मापने के लिए न्यूमोग्राफ नामक यंत्र का उपयोग होता है।

इस यंत्र में रबर की एक नली होती है जो आदमी के सीने पर कसकर लपेट दी जाती है। सांस खींचते और छोड़ते समय नली भी खिचती और सिकुड़ती है। इन दोनों यंत्रों के पाठों को एक इलेक्ट्रानिक उपकरण की सहायता से ग्राफ-पेपर पर अंकित किया जाता है।

संदिग्ध व्यक्ति से अनेक प्रश्न पूछे जाते हैं और वह उनका उत्तर देता है। प्रत्येक पूछ-ताछ के लिए सावधानीपूर्वक कई प्रश्न तैयार किये जाते हैं। ये मुख्यतया तीन प्रकार के होते हैं :

१. बिना किसी विशेष महत्व के प्रश्न, जैसे—तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारी आयु क्या है? तुम कहां पैदा हुए थे? तुम्हारे कितने भाई-बहन हैं? आदि।

२. अपराध से संबंधित प्रश्न, जैसे—क्या चोरी तुमने की है? चोरी तुमने अकेले की थी या अन्य साथियों के साथ? आदि।

३. कुछ विशिष्ट प्रश्न, जिन्हें केवल वास्तविक अपराधी ही जान सकता है। जैसे—तुमने धन कहां छिपाया है? तुमने जब चोरी की, उस समय अलमारी खुली थी अथवा बंद थी? आदि।

पूछते समय सभी प्रकार के प्रश्न मिलाजुलाकर पूछे जाते हैं। जिन प्रश्नों के उत्तर में वह जान-बूझकर झूठ बोलता है, वहां उसकी मानसिक उत्तेजना के कारण उसके सां

रक्तचाप अथवा श्वास-प्रक्रिया में अंतर पाया जाता है।

इस उपकरण के उपयोग अथवा उसकी प्रामाणिकता के संबंध में कुछ सहज और तर्कसंगत शंकाएं हो सकती हैं।

पहली शंका यह हो सकती है कि क्या निरपराध व्यक्ति भी पूछ-ताछ के दौरान मानसिक तनाव की स्थिति में नहीं होता? वास्तव में निरपराध व्यक्ति भी पूछ-ताछ के दौरान मानसिक तनाव की स्थिति में तो अवश्य होता है, परंतु उसका यह तनाव सभी प्रश्नों के उत्तर देते समय एक-सा रहेगा। अपराध से संबंधित किसी विशेष प्रश्न के पूछे जाने पर उसका तनाव अधिक नहीं बढ़ेगा। अपराधी की मानसिक उत्तेजना ऐसे प्रश्न पूछे जाने पर अधिक बढ़ जायेगी।

दूसरी शंका हो सकती है कि यदि अत्यंत मंजे हुए अपराधी या किसी ऐसे व्यक्ति से पूछ-ताछ की जाये, जिसे 'लाइ-डिटेक्टर' की कार्य-विधि का पूर्णतया ज्ञान हो, तो क्या उसे भी ऐसी घबराहट होगी? इसका उत्तर है, "हां।" ये क्रियाएं इतनी प्राकृतिक हैं कि इन्हें पूर्णतया दबाना संभव नहीं है।

एक मनोवैज्ञानिक ने अपने एक परम मित्र और सहयोगी मनोवैज्ञानिक को परीक्षण के लिए 'लाइ-डिटेक्टर' से जोड़कर उसे ताश के दस पत्ते दिखाये और कोई एक पत्ता मन में चुन लेने के लिए कहा। बाद में उसने उसे दसों पत्ते एक-एक करके दिखाये और हर पत्ता दिखाते समय पूछा—क्या तुमने यह पत्ता चुना था? इस सहयोगी को परीक्षक ने स्वयं ही यह आदेश दे रखा था कि तुम प्रत्येक बार जवाब में 'नहीं' कहना। बाद में परीक्षक ने ग्राफ-पेपर पर देखकर तुरंत पता लगा लिया कि किस पत्ते को दिखाने पर वह झूठ बोला था।

यद्यपि जिस व्यक्ति से पूछताछ की जा रही थी, वह परीक्षक का सहयोगी था तथा 'लाइ-डिटेक्टर' की प्रणाली से पूर्णतया परिचित था और खेल खेल में झूठ बोल रहा था; फिर भी सही पत्ता ज्ञात हो गया।

तीसरी शंका यह हो सकती है कि जिस व्यक्ति से पूछ-ताछ की जा रही है, वह पूर्णतया असहयोग करे और किसी भी प्रश्न का उत्तर न दे, तब क्या होगा? पहली बात तो यह है कि परीक्षण करने वाला अपराधी का अपराध सिद्ध करने को जितना आतुर है, उतना ही वह निरपराधी को दंडित होने से बचाने के लिए भी प्रयत्नशील है।

यदि कोई संदिग्ध व्यक्ति यह परीक्षण न करवाना चाहे, तो उससे संदेह और पक्का ही होगा तथा यातना द्वारा अपराध स्वीकार कराया जायेगा। अतः हर स्थिति में, चाहे वह अपराधी हो अथवा नहीं, यही अधिक अच्छा है कि वह इस परीक्षण में सहयोग दे। परंतु यदि वह जवाब न भी दे, तो भी प्रश्न तो सुनता ही है और इससे उसकी उत्तेजना बढ़ जाती है।

एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी की हत्या करके लाश गायब कर दी थी। लाश मिल नहीं रही थी, अतः अपराध भी सिद्ध नहीं हो रहा था। यह व्यक्ति सदैव यही कहता

था कि मेरी पत्नी मुझे छोड़कर भाग गयी है। उसे 'लाइ-डिटेक्टर' पर बैठाकर अधिकारियों ने उसके सामने उस शहर का एक बड़ा-सा मानचित्र फैला दिया। वे पेंसिल से मानचित्र के किसी एक भाग की ओर संकेत करते थे और उससे हर बार यही पूछते थे-"क्या तुमने लाश यहां छियायी है ?"

यद्यपि उसने कभी भी कोई जवाव नहीं दिया, परंतु जैसे-जैसे पेंसिल उस स्थान के निकट आती थी, जहां लाश छिपायी गयी थी, उसका रक्तचाप बढ़ने लगता था और जैसे-जैसे पेंसिल उस स्थान से दूर जाने लगती थी, उसका रक्तचाप घटने लगता था। इस प्रकार उसके असहयोग के वावजूद, केवल रक्तचाप की सहायता से अधिकारियों ने लाश छिपाने का स्थान ज्ञात कर लिया और लाश खोद निकाली।

अव यह प्रश्न उठता है कि इस 'लाइ-डिटेक्टर' की प्रामाणिकता क्या है और यह कितना उपयोगी सिद्ध हो सकता है ?

जव अपराधी को यह पता चल जाता है कि उसका सामना ऐसी मशीन से हो रहा है, जिसे धोखा दिया ही नहीं जा सकता और उसके झूठ वोलने पर भी मशीन सब कुछ सही पता लगा लेगी, तो प्राय: वह हार मान लेता है और अपना अपराध स्वीकार कर लेता है। अगर वह अपना अपराध स्वीकार न भी करे, तब भी उसे मशीन से प्राप्त ग्राफ दिखाकर बताया जा सकता है कि तुम इन-इन प्रश्नों के उत्तर में झूठ बोले हो, अत: तुम्हीं अपराधी हो। ऐसी स्थिति में भी वह अपना अपराध स्वीकार कर लेगा।

इसके अतिरिक्त अपराध से संबंधित प्रश्नों को भिन्न-भिन्न महत्त्वहीन प्रश्नों के साथ मिलाकर पूछ-ताछ की क्रिया दो या तीन बार दोहरायी जाती है। हर बार यदि अपराध से संबंधित प्रश्नों के उत्तर देते समय वह अधिक उत्तेजित होता है, तो वह निश्चय ही अपराधी है।

फिर यह भी पाया गया है कि निरपराध व्यक्ति हर प्रश्न का उत्तर तुरंत और धड़ल्ले से देता है, जबकि अपराधी प्रत्येक प्रश्न के उत्तर देने से पहले, चाहे उसे 'ना' अथवा 'हां' ही कहना हो, हिचकिचाता है और सोच-सोचकर बोलता है। उत्तर देने में यह देर भी अपराध सिद्ध करती है। यह इस वात की ओर संकेत करता है कि उसे अपनी झूठी बात को सही सिद्ध करने के लिए पूरी कहानी गढ़नी पड़ रही है।

जब अपराधी अपना अपराध स्वीकार कर लेता है, तब वह सामान्य स्थिति में आ जाता है और उत्तेजना समाप्त हो जाती है। यह बात भी यंत्र में देखी जा सकती है। अपराध को स्वीकार कर लेने के बाद अपराधी से यदि पहले के सभी प्रश्न दोबारा पूछे जायें, तो वह पूर्णतया उत्तेजनारहित होकर उनका उत्तर देगा। यह अंतर भी 'लाइ-डिटेक्टर' में पता चल जाता है।

यदि कोई निरपराधी किसी कारणवश अपने सिर पर अपराध लेना चाहता है, तो 'लाइ-डिटेक्टर' ठीक-ठीक विश्लेषण करके उसे दंडित होने से बचाता भी है।



रिहर्सल

र० शौरिराजन्

बड़ी बेचैनी से हम सवेरा होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। रात-भर की इस घुटन से छुटकारा मिलेगा, सुस्ती दूर होगी, बोरियत खत्म होगी। हम, यानी मैं और मेरे जैसे विरले बुद्धू ही तेज दौड़ती हुई उस रेलगाड़ी में भी बेचैन थे।

वैसे रात के उस धुंधलके में भी स्टेशन पर गाड़ी के रुकते ही हमारे डिब्बे के सामने रसिक-मंडली जुट जाती थी। उसमें नौजवानों की संख्या ज्यादा होती थी, या ढलती उम्र के लोगों की, यह कहना कठिन था। मैं या मेरे जैसे बुद्धू उस मंडली में क्यों नहीं सम्मिलित हो पाते थे? एक मनचले ने ताना भी कसा–"देखो तो इनकी हिपोक्रेसी! बड़े ऋष्यशृंग बने बैठे हैं!"

उसके उलहने को अनसुना करके मैं नयी कविता (या अकविता ही सही) के लिए शब्द टटोल रहा था–"उद्दाम-कामना, उदित-यौवना, उदीयमाना, गदराती रूपसियां-[illegible] एक्स्ट्रास! ......"

दामिनी और पूंगोडी को आज र[illegible] मंडली के घूरने से गुदगुदी नहीं हो रही[illegible] उलटे उनकी आंखों में घृणा थी। शेष रू[illegible] सियां चितवन के करतब दिखाने में आ[illegible] पा रही थीं।

दामिनी ने पूंगोडी के कान के पास मुं[illegible] ले जाकर कहा– "उन निगोड़ियों की [illegible] तभी खिलती हैं, जब मक्खियां उन पर भि[illegible] भिनाने लगती हैं। देखो तो उन गिद्धों के पु[illegible] पर ये कमीनियां किस तरह रंग बदलती हैं[illegible] छिः छिः!"

"जरा धीरे बोलो। गला तो ऐसा पा[illegible] है, जैसे मिल का भोंपू हो। सुन लेंगी तो ऐ[illegible] गालियां बकेंगी कि सबके सामने इज्जत उ[illegible] जायेगी। फिर हमपेशा होकर ऐसी नफ[illegible] करना ठीक भी नहीं है।"



"झूठ तो नहीं बोल रही हूं। छिपकर सौ बुरे काम कर लो। मगर सफर में तो शरीफ बनना ही पड़ता है। यहां किसे पता है कि कौन किस स्तर का है।"

"बस-बस, ढिंढोरा पीटने की जरूरत नहीं। लोग सुन लेंगे तो......" पूंगोडी कुछ आतंकित-सी थी।

दामिनी बोली—"तेरे जैसी डरपोक लड़की को इस लाइन में नहीं आना चाहिये था।" उसके स्वर में उपेक्षा भरी थी। "यों भी अपनी मर्जी के मुताबिक काम-धंधा सबकी किस्मत में तो लिखा होता नहीं।"

डिब्बे में यात्री ऊंघ रहे थे। ये दोनों बाकी सबसे जरा हटकर एक कोने में बैठी हुई थीं। उनकी बातचीत की अस्पष्ट ध्वनि यात्रियों के कानों में पड़ रही थी। लेकिन वे सब पहले ही समझ चुके थे कि ये कमसिनें कौन हैं और कैसी हैं।

रात के साढ़े आठ बजे गाड़ी मद्रास के एग्मोर स्टेशन से छूटी थी। जब स्टूडियो में सूचना दी गयी कि आउट-डोर शूटिंग के लिए तंजाऊर जाना होगा, तो बाकी सब तो खुश हुईं कि चलो प्रदर्शन करने का अच्छा मौका मिलेगा, किंतु पूंगोडी मुहर्रमी चेहरा बनाकर बैठ गयी। जाने से इन्कार वह कर नहीं सकती थी। पहली ही बार जरा अच्छा रोल मिला था—हिरोइन की प्रमुख सहेली का। जाने से ना करने का मतलब था, मुश्किल से चढ़ी हुई सीढ़ी पर से खुद लुढ़ककर गिरना। वह मन मसोसकर रह गयी।

उनकी फिल्म कंपनी खास दमदार नहीं थी। पाई-पाई की बचत की जाती थी। थर्ड क्लास में रिजर्वेशन कराया गया था। पूरा डिब्बा भी नहीं लिया गया था—मिला नहीं, या खर्च बचाने के लिए लिया नहीं, कौन जाने। एक डिब्बे में एक्स्ट्रास, दूसरे में

कैमरामैन, टेक्नीशियन वगैरह। हीरो, हीरोइन, डाइरेक्टर और प्रोडयूसर मजे से कार में आने वाले थे।

एग्मोर में जब ये उपतारिकाएं डिब्बे में आकर बैठीं, तो मानो थर्ड क्लास के धुंधले बिजली के बल्ब जरा तेज हो गये। बूढ़ों की भौंहें तन गयीं। तरुणों के मन में गुदगुदी हुई। चलो, नींद का अभाव नैनों को खलेगा नहीं। शायद किसी से एक-आध बात करने का मौका मिल भी जाये।

सारे वामा-दल में एक दामिनी ही थी, जिसे आकर्षक कहा जा सकता था। उभरते अंग, कसी हुई काया—खासी माडल-गर्ल बन सकती थी। चितवन भी चपल थी और स्वर मधुर। पूंगोडी जरा लजीली, सांवली और दबी-दबी-सी आवाज वाली।

सामने के बेंच पर एक नवदंपति बैठे थे। युवती की गोद में एक चुलबुला बच्चा खेल रहा था। दामिनी ने आंखों-ही-आंखों में उससे दोस्ती गांठ ली थी। वह उसकी ओर हाथ फैलाकर उछल रहा था, उसकी गोद में जाने के लिए। मगर मां उसे कसकर रोके हुए थी। उसका बच्चा किसी सिनेमा वाली की गोद में जाये, उसके द्वारा चूमा-पुचकारा जाये—यह कल्पना भी उसके लिए सह्य नहीं थी। वह दामिनी को सीधे मुंह देखने में भी अपना अपमान समझती थी।

जब वह अपने पति के साथ डिब्बे में आयी, तो बहुत प्रसन्न थी। यही उसकी पहली संतान थी। उम्र में वह अभी बीस के इस पार ही होगी। गेहुंआ रंग था। सुंदर नहीं थी। पर माता बन जाने का गर्व उसके कं[illegible] से छलकता था और इस गर्व ने उसे आकर्[illegible] बना दिया था।

डिब्बे में आते ही उसका पति दामि[illegible] की ओर आकृष्ट हो गया था। स्वस्थ, गोरा-[illegible] चिट्टा वदन, रसिक मन, आंखों में [illegible] सी एक अनबुझी प्यास। उसकी आंखें [illegible] रहकर दामिनी के शरीर पर ठहर जा[illegible] थीं—ठहरती नहीं, एक अंग से दूसरे अंग [illegible] फिसलती जाती थीं। मुझे कालिदास [illegible] उक्ति स्मरण हो आयी—कामी स्वतां पश्य[illegible] मेरी लूली लालसा को बैसाखी का सहा[illegible] मिल गया।

दामिनी उस चुलबुले बच्चे पर फ़ि[illegible] थी। बच्चे की मुस्कराहट में, किलकारी [illegible] उछाल में एक मिठास थी, जिसमें दामि[illegible] अपनी हीन भावना को भूल गयी। [illegible] बच्चा उसे देखकर खिल-सा उठा। दामि[illegible] पुलकित हो गयी। युवक ने समझा [illegible] मुझे ही देखकर मुस्करा रही है। उस[illegible] पत्नी ने मुंह फेर लिया।

"क्या नाम है मुन्ने का?"

"............"

"बहनजी!"

मगर फिर भी बहनजी चुप। सो युव[illegible] ने ही उत्तर दिया—"चंद्रन्!"

दामिनी ने चंद्रन् की ओर हाथ बढ़ाये[illegible] बच्चा तो पहले ही उतावला था। मगर [illegible] ने उसे जाने नहीं दिया।

"बेकार कष्ट न कीजिये। बच्चा [illegible] ठीक है।"

दामिनी का मुंह उतर गया। मगर बच्चे की मुस्कान ऐसी थी कि वह ज्यादा देर तक उदास न रह पायी।

"अजी, बचारी इतना चाहती हैं, दे न दो थोड़ी देर के लिए उनके हाथ में।" युवक ने उदारता दिखायी।

पर पत्नी ने आंखें तरेरकर ऐसे देखा कि युवक फिर न बोला। पति पर उसका यह रुआब देखकर दामिनी को प्रसन्नता-सी हुई। मातृत्व की अहंता और नारीत्व का दर्प—दोनों में अन्योन्याश्रय है।

बच्चा अब भी दामिनी को देखकर किलक रहा था। फूलों की वर्षा-जैसी मोहक थी वह किलक। दामिनी के प्रति वह इतना उन्मुख क्यों था? पिता का संस्कार?

"दामि! तू क्यों नाहक अपना अपमान करा रही है, इस घमंडी औरत के हाथों? तेरा आत्मसम्मान कहां गया?"

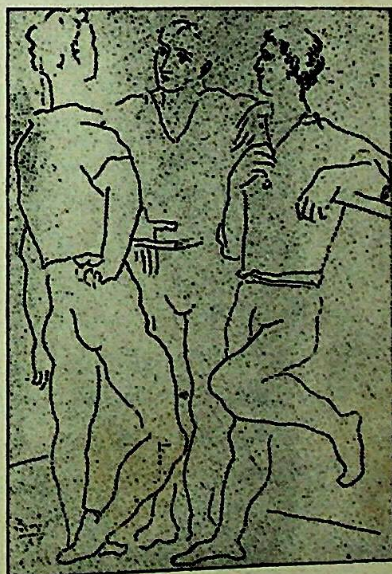
"पूंगोडी, इस माता के हाथों अपमानित होना भी इज्जत की बात है। अगर यह अकेली होती, तो मैं जरूर इससे मित्रता कर लेती। मगर देखो तो इसका मर्द कितना खोटा है! ऐसी अच्छी पत्नी के रहते कैसा घूर रहा है बेशर्म! हमारी देह पर से आंखें हटाता ही नहीं।"

× × ×

आखिरकार पौ फटी। डिब्बे में चहल-पहल शुरू हो गयी। आराम से सोये हुए बच्चे ने करवट बदली, फिर आंखें खोल दीं। जागते ही सामने दामिनी को देखकर खिल उठा—जैसे बड़ा-सा सूरजमुखी खिल गया हो।

दामिनी को अपनी नानी की बात याद आ गयी। तब वह छोटी लड़की थी। नानी कहती थी—"जब तू बरस-दो बरस की बच्ची थी, मर्दों को देखकर लपकती थी, खासकर नौजवानों के पास। औरतों में तू सिर्फ उन्हीं के पास जाती, जिसने बढ़िया कपड़े और खूब गहने पहन रखे हों। तुझे खेलते-हंसते देखकर लोग खुश हो जाते थे। कहते थे, कैसी छबीली है, सिनेमा वालियों जैसे नखरे करती है।"

नानी की यह मीठी चुटकी उसे बहुत अच्छी लगती थी। उसकी इच्छा होती थी कि नानी बार-बार अपनी बात दोहराये।



रसिक युवक : पिकासो

पर अब तो दामिनी को उसका स्मरण भी बुरा लग रहा था।

गाड़ी मायावरम् जंक्शन पर रुकी। रात का रहा-सहा अंधेरा भी आसमान से घुल चुका था। स्टेशन के नीम और आम के वृक्षों पर पक्षी चुस्ती से चहक रहे थे। प्लैटफार्म पर काफी और इडली के लिए यात्री दौड़-धूप कर रहे थे।

नाश्ते से निपटकर रसिक-मंडली फिर से खिड़की के पास आ जुटी, इसके पहले ही दामिनी पूंगोडी को साथ लेकर प्लेटफार्म पर उतर गयी और भीड़ से जरा हटकर खड़ी हो गयी। एकांत की जरूरत थी उसे। जब गाड़ी चलने की घंटी बजी, तो दोनों आकर अपनी सीटों पर बैठ गयीं।

"क्या सोच रही है पूंगोडी ?"

पूंगोडी जरा झेंप-सी गयी। धीरे-से बोली—"तुम भी उस सुहागिन बहन की तरह घर-गृहस्थी वाली होतीं, तो कितना अच्छा होता ! सब भाग्य की बात है।" दामिनी चुप रही।

जब गाड़ी अगले स्टेशन पर रुकी, एक बुढ़िया डिब्बे में चढ़ आयी। भिखारिन थी। इंजन की फुफकार और खिड़कियों की खड़-खड़ाहट में से उसकी आवाज उभर आयी—"गरीब लाचार बूढ़ी हूं सा'ब !......दया करो सा'ब ! ईश्वर अच्छा करेगा सा'ब !" फिर यही पंक्तियां 'सा'ब' के बजाय 'माई' के साथ दोहरायी गयीं।

यात्रियों के लिए ऐसे शब्द नये नहीं थे। सब अपनी-अपनी दुनिया में व्यस्त थे। प्रत्येक के सामने खड़ी होकर बुढ़िया रट लगा रही थी। मगर किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। मुश्किल से पांच-छः पैसे उसे मिले होंगे।

सामने की सीट पर मायावरम् में आकर बैठी मोटी अधेड़ महिला दामिनी से सीधे-टेढ़े सवाल पूछ रही थी और अनमनेपन से दामिनी उत्तर दे रही थी। महिला की बगल में बैठा उसका बेटा इस बातचीत में विशेष रस ले रहा था। अपनी मां के कान में एक-दो बार वह कुछ फुसफुसाया भी।

"नहीं जी, सिनेमा से कोई वास्ता नहीं। मैं स्कूल-मास्टरनी हूं।" मोटी औरत के चेहरे पर अविश्वास का भाव था। कई तरह से पूछने पर भी एक ही ढंग का उत्तर पाकर वह खीज रही थी। "अच्छा पढ़ाती हो! मैं तो यही समझी थी कि सिनेमा में काम करती होगी।" उसके स्वर में व्यंग्य था।

"आपने यह कैसे जान लिया कि मैं सिनेमा वाली हूं ?" दामिनी ने जरा डरी-सी आवाज में कहा। मोटी औरत अक-कचा-सी गयी।

"हां, तुम ठीक ही कहती हो। आजकल तो सभी लड़कियां ऐसा ही सिंगार करती हैं। विलायत का फैशन भी इनके आगे फीका पड़ जाता है।"

"हां, शायद आपको विलायत का बहुत तजुर्बा है......" दामिनी शायद और भी कुछ कहती, मगर तभी बूढ़ी भिखारिन पर उसकी दृष्टि पड़ गयी। उसने 'कुमुदम्' के खुले पन्ने में आंखें गड़ा लीं।

मोटी महिला की बगल में बैठा उसका लड़का कहता रहा – "अमुक फिल्म में मैंने बिलकुल ऐसी ही एक्स्ट्रा को देखा है।" लेकिन महिला का औत्सुक्य अब तक ठंडा पड़ चुका था।

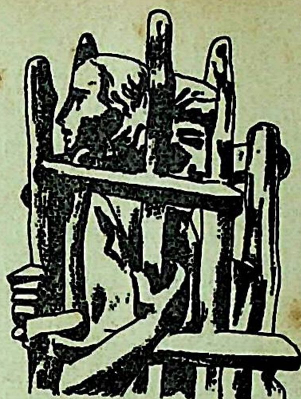
"गरीब लाचार बूढ़ी हूं माई! ...... किरपा करो माई......ईश्वर तुम्हारी रच्छा करेगा माई!"

दामिनी यह पुकार सुनकर सिहर उठी। उसने बूढ़ी को ध्यान से देखा। उसके मन में बवंडर-सा उठा, लेकिन उसने उसे दबा लिया। पर पूंगोडी द्रवित हो उठी। बोली– "दामी, इस बुढ़ापे में कोई सहारा न होने से कितना कष्ट झेलती होगी यह!"

दामिनी अपने स्वभाव के विरुद्ध, चुप थी। उसके झुके हुए चेहरे पर के भाव पूंगोडी भी न पढ़ सकी। बूढ़ी उन दोनों के सामने आकर खड़ी हो गयी। घूरकर देखा भी। नजर कमजोर थी। झुर्रियों के कारण चेहरा धूप में पके ताड़ के फल जैसा हो गया था। शरीर और स्वर दोनों में कंपकंपी थी।

दामिनी ने जैसे ठान लिया कि मुंह ऊपर नहीं करूंगी। बूढ़ी को वहीं खड़ी पाकर पूंगोडी ने हमदर्दी से पूछा–"पाट्टी! (नानी या दादी) तुम्हारा कोई नहीं है? इस बुढ़ौती में तुम क्यों भटक रही हो?"

"क्या करूं बिटिया? भाग्य का फेर है। एक बेटी है। निरा बोझ है; पड़ी रहती है पापिन! मैं अकेली होती, तो यों हाथ पसारते फिरने की जरूरत नहीं पड़ती।" फिर थोड़ी देर की खामोशी के बाद बूढ़ी ने पूछा–"यह



विवश नारीत्व
मूर्तिकार : ओसिप जैडकाइन

तुम्हारी बहन है?" इशारा दामिनी की ओर था।

"हां, बहन-जैसी ही है।"

"नाम क्या है तुम दोनों का?"

"यह दामिनी मास्टरनी है; मैं पूंगोडी हूं, मैं भी......"

दामिनी ने एक अठन्नी बूढ़ी के हाथ में डालकर, पूंगोडी को डांट सुनायी–"कुछ देना हो, तो तुरंत देकर इसे रफा-दफा करो! नाहक बक-झक कर रही है!"

पूंगोडी ने एक रुपया बूढ़ी के हाथ में रख दिया– "पाट्टी! अपनी तबीयत का खयाल करो! कितनी सूख-सिकुड़ गयी हो! कितने दिन यों घूमोगी।"

बूढ़ी अपनी जिज्ञासा दबा न पायी! "बिटिया! बड़ी भली हो! तुम दोनों के घर-गांव कहां हैं?"

दोनों चुप थीं। सामने वाले युवक ने बूढ़ी

को डांटा—"ऐ बुढ़िया ! तुझे इन बातों से क्या लेना-देना ? पैसा मिल गया है। अब टरकती क्यों नहीं। कुतर-कुतर कर सी० आई० डी० की तरह पूछ-ताछ क्या कर रही है ?"

युवक चिढ़ रहा था कि बूढ़ी उसे युवतियों को देखने नहीं देती—दीवार-जैसी बीच में खड़ी है।

बूढ़ी बेमन आगे बढ़ी; पीछे मुड़-मुड़कर देखती गयी। जब वह अगले डिब्बे में चली गयी, तो दामिनी आश्वस्त हुई। पत्रिका पढ़ने का दिखावा बंदकर उसने धीरे-से पूछा—"पूंगोडी, उस बुढ़िया पर तुझे इतनी ममता क्यों ?"

"मेरी नानी जिंदा रहती, तो इसी उम्र की होती। मुझे नानी की याद आ गयी। मैं उसे इतनी प्यारी थी कि मुझे वह जमीन पर पैर रखने नहीं देती थी।"

"मेरी नानी भी मुझ से ऐसा ही प्यार करती थी। अगर मैं उसकी बात मानकर गांव में ही रह जाती, तो आज इस बुढ़िया के साथ मुझे भी हांक लगाकर भीख मांगते फिरना पड़ता।"

"इस बुढ़िया के साथ......?" पूंगोडी के मन में एक प्रश्न कौंध गया! "दामि ! यही बुढ़िया अगर तुम्हारी नानी होती, तो क्या करतीं तुम ?"

"छिः, छिः ! मेरी नानी इज्जतदार औरत है; वह भला भीख क्यों मांगेगी ! भले भूखों मर जाये, मगर हाथ पसारने वाली नहीं है वह। हठीली बहुत है। नंबरदार के बेटे से मुझे ब्याहने की कसम [illegible] रखी थी। मैं मानी नहीं। उसी अनबन [illegible] तो मैं घर छोड़कर चली आयी।"

"पर नंबरदार का लड़का तुम्हें [illegible] क्यों नहीं ?"

"वह अव्वल दर्जे का धूर्त है। चोरी [illegible] ताड़ी बनाकर बेचता है; जबर्दस्त पियक्कड़ है, ठौर-कुठौर का कोई खयाल नहीं; [illegible] भी मिल गयी; बस......बड़ा दुराचारी।"

दामिनी का चेहरा घृणा से विकृत हो गया। वह फुसफुसायी "भागकर आ गयी, अच्छा किया। वरना......"

नाश्ते में व्यस्त अगल-बगल के यात्रियों का ध्यान इनकी बातों पर नहीं गया। [illegible] इन्हें घूर-घूरकर थक भी चुके थे।

× × ×

गाड़ी एक स्टेशन पर रुकी, लोग गाड़ी [illegible] उतरकर ताजी हवा लेने तथा अन्य जरूरतें पूरी करने चले गये। दामिनी वाशरूम में मुंह धोने चली गयी। उसके वापस आने के बाद पूंगोडी को जाना था।

तभी बूढ़ी भिखारिन वहां फिर आ गयी। पूंगोडी ने उत्साह से उससे फिर बातचीत छेड़ दी—"पाट्टी ! तुम्हारा गांव कहां है?"

"भिखारिनी का कोई गांव नहीं होता। मायावरम् और कुंभकोणम् के बीच मेरा आना-जाना चलता है। टिकट बाबू, गार्ड साहब, स्टेशन मास्टर सब भलेमानस हैं। मुझे पहचानते हैं; कोई तकलीफ नहीं देते। ......बिटिया ! सच-सच बता दो। तुम दोनों कहां की हो ?"

"मद्रास की हूं।"

"बायस्कोप में तो काम नहीं करतीं ?"

"नहीं; स्कूल-मास्टरनी हूं।...कितनी बार बताना पड़ेगा ?"

"वह दूसरी, तुम्हारी बहन है ?...... सगी बहन ?"

'हां; ऐसा ही समझो।"

"उसका सच्चा नाम क्या है ? क्या वह भी मद्रास की है ?"

"वही दामिनी टीचर ? मगर यह सब तुम क्यों पूछ रही हो ?"

बूढ़ी का चेहरा फीका पड़ गया। धंसी हुई आंखों में से निराशा झलक रही थी।

दामिनी ड्रेस बदल करके आ गयी। कितनी आकर्षक दिख रही है। साबुन की महक से घिरी, बिलकुल तरोताजा ! बूढ़ी अपनी हथेली भौंहों पर रखकर एकटक उसे देखने लगी।



चित्रकार : बियर्डस्ले

दामिनी वहां से चलती-चलती बोली—"पूंगोडी, मैं दूसरे डिब्बे में जाती हूं। यह बला टाले नहीं टलती।"

पूंगोडी सोच में पड़ गयी। तभी गाड़ी चल पड़ी।

बूढ़ी खोयी-सी सामने खड़ी थी। उसकी अकुलाहट पूंगोडी को विचलित कर रही थी। असत्य के महल को एक धक्के से ढहा देने की क्षणिक इच्छा उठने पर भी वैसा न करने का इरादा पक्का था। दामिनी फटकारेगी; आस-पास वाले हंसेंगे कि असली रूप कब तक छिपा रह सकता है। इस बूढ़ी को भी इतनी बेचैनी क्यों ? किसी का वियोग इसे साल रहा होगा। उसने नाश्ते की पोटली बूढ़ी के हाथ में रख दी और उससे वहां से हट जाने को मिन्नत की—हां, लगभग मिन्नत ही करना चाहिए।

तीन-चार स्टेशन के बाद दामिनी फिर वापस आयी।

"इतनी देर तुम वहां क्या कर रही थी, दामि ?"

"बला टालने के लिए गयी, तो वह वहां भी आ धमकी। उफ्फ !......"

"बुरा न मानना, दामि! तुम्हें इतनी घृणा क्यों है, उस बेचारी से ? ऐसी आदत पहले तो तुम्हारी नहीं थी। अजीब बात है !"

"खुफिया पुलिस की तरह कोई तुम्हारे पीछे पड़ जाये, तो तुम्हें खुशी थोड़े ही होगी ? बार-बार वही सवाल—तुम स्कूल-मास्टरनी हो, या ......? गांव तुम्हारा कहां है ? ...... तुम्हारा नाम ?...... मैं सब्र खो बैठी। टिकट बाबू को बुलाकर शिकायत कर दी। स्टेशन के बाहर खदेड़ देने को कह दिया। वह देखो, बूढ़ी गेट के बाहर मचल रही है।"

पूंगोडी ने देखा दो कुली बुढ़िया को जबरन गेट के बाहर निकालकर, गेट बंद

करके खड़े हैं। रेल छूटने के बाद ही बुढ़िया को अंदर आने दिया जायेगा।

बूढ़ी चिल्ला रही थी– "बस एक मिनिट के लिए अंदर जाने दो, भाई! उस लड़की से एक बात–सिर्फ एक बात पूछकर आ जाती हूं। तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, एक मिनिट के लिए छोड़ दो भाई! ......"

गाड़ी सीटी देकर छूटी। बूढ़ी की आंखें गीली थीं; हाथ से उस डिब्बे की ओर इशारा करती हुई वह कुछ बोल रही थी, जो सुनाई नहीं पड़ा। पूंगोडी गड़ी-सी रह गयी। उसकी आंखें छलछला आयीं। दामिनी दूसरी तरफ की खिड़की में से शून्य को देख रही थी। उसके गालों पर से होकर आंसुओं की बूंदें टपक रही थीं।

"तुम इतनी बेरहम डायन हो सकती हो, इसका मुझे पता नहीं था।"

दामिनी ने कोई जवाब नहीं दिया। लंबी खामोशी के बाद स्वयं बोली–"जब वह बगल के डिब्बे में आयी, अपने सब आदमियों से कहकर एक-एक रुपया दिलवाया। अच्छी आमदनी करा दी है।"

"उपकार भी करके कुत्ते की तरह निकलवा दिया तुमने? एक्स्ट्रा का पेशा अपनाया, तो दया-माया भी छोड़ दी जायेगी?"

"पूंगोडी, अगर मैं ऐसा नहीं करवाती, तो अब तक वह मुझे घसीटकर अपने साथ ले जा चुकी होती, जैसे मैं कुतिया हूं।"

"क्या कहा? उसको क्या पड़ी थी? पागल थोड़े ही थी?"

"मैं भी पागल नहीं हूं!"

दामिनी धीरे-से बोली–"पूंगोडी, वह मेरी नानी है, इसीलिए मुझे ऐसा करना पड़ा। अगर मैं दिल को पत्थर बनाकर कड़ाई नहीं बरत पाती, तो मेरी दुर्गत हो जाती आज।"

पूंगोडी सन्न रह गयी। क्या यह वही स्वाभिमानिनी बुढ़िया है, जो दामिनी के भेजे हुए मनीआर्डरों को हराम का पैसा मानकर वापस भेज देती थी! वह दामिनी की मां की, यानी अपनी बेटी की परवरिश के लिए रेलों में भीख मांगती फिरती है। दामाद जवानी में ही चल बसा। बेवा बेटी ने बदचलनी से घिनौना रोग लगा लिया है।

दामिनी से ये बातें पहले ही पूंगोडी जान चुकी थी। "कितनी निर्दय है! अब तक जो किया, सब निरा अभिनय है!"

आंसू पोंछकर दामिनी ने उस दिशा में देखा, जहां उसकी नानी गेट के बाहर खड़ी गिड़गिड़ा रही थी।

यह दृश्य देखकर डिब्बे के दरवाजे पर खड़े हुए चार-पांच युवकों का कुतूहल बढ़ा! एक ने आंख से इशारा करके कहा– "अरे देख, ट्रेजिक सीन का रिहर्सल हो रहा है! हां, जमेगी जरूर!"

"बेवकूफ! जम चुकी है कह।" और उसने एक कुटिल नजर दामिनी के शरीर की गोलाइयों पर फेंकी। युवकों का ठहाका फूटा, तो सब मुड़कर देखने लगे। दामिनी की आंखें तब भी गीली ही थीं।

[लेखक द्वारा स्वयं अनूदित]





लाटरी

मुख्तार ल्यूबिस

इंडोनेशियाई कहानी

बस में केरीनची जाते हुए मैं हाजी जकरिया के वारे में सोचने लगा। उनसे मिले चौदह साल हो गये थे। सुमात्रा के एक छोटे-से गांव में मेरे पिता का हाल ही में देहांत हुआ था और मुझे मां को ढाढ़स बंधाने और परिवार के सब मामलों को सुलझाने के लिए घर लौटना पड़ा था। इस सफर में एक फेरा मुझे केरीनची का भी लगाना पड़ा, जहां हाजी की रवर की खेती थी। वहां मुझे हाजी जकरिया के घर ही ठहरना था।

पहले तो मैं सिवा बस के और किसी चीज के वारे में नहीं सोच रहा था। यह सफर मुझे पसंद नहीं था; क्योंकि पादांग से सुंगाई पेन्युह तक की सड़क बहुत खराब हालत में थी। वहुत-सी बड़ी-बड़ी नदियां नाव या पुलों से पार करनी पड़ती थीं और सड़क घने जंगल और कई पहाड़ियों से होकर गुजरती थी। मैं अपनी मां का कहा नहीं टाल सकता था। लेकिन सफर शुरू से आखिर तक वैसा ही रहा, जैसी मुझे आशंका थी। दुर्घटना तो नहीं हुई; लेकिन दो बार बस का धुरा टूट गया, पर सौभाग्य से बस गहरे खड्ड के खुले मुंह से कुछ फुट इधर ही रोक ली गयी। ड्राइवर इन बातों का आदी नजर आता था और उसने वस में पीछे कई एक्सल रख छोड़े थे। फिर भी ऐसी दुर्घटनाओं से

आदमी जरा बेचैन हो ही जाता है।

सफर के शुरू होने के समय से ही परिमाम के मकतब से लौट रहा एक नौजवान ऊंची आवाज में कुरान की आयतें पढ़ रहा था। उसके पास बैठा यात्री, जो पहले ही गर्मी और सड़क के दोहरे मोड़ों के कारण लग रहे हचकोलों से पीड़ित था, इस ऊंची आवाज से और भी परेशान हो गया और उसने उस युवक को चुप रहने के लिए कहा। लेकिन इस पर युवक और भी ऊंचे स्वर में आयतें पढ़ने लगा। बीमार यात्री अचानक आपे से बाहर हो गया और उसने गुस्से से युवक को मुंह बंद रखने को कहा।

युवक चिल्लाया—"लानत है तुझ काफिर पर!" और उसने जेब में रखा चाकू हाथ में ले लिया। बोला—"तुम कौन हो मुझे कुरान शरीफ की आयतें पढ़ने से रोकने वाले?" इसके बाद उसने अरबी के वाक्यों की बौछार कर दी। फिर अपनी बोली में बीमार आदमी को दोजख की आग और अल्लाह के कहर का शाप दिया। उसके बाद उसने बारी-बारी हम सबकी ओर देखा। यह जानकर कि कोई भी उसे चुनौती नहीं देना चाहता, वह शांत हो गया और उस यात्री को कत्ल करने की बात भूल गया। और दोबारा पहले से भी ऊंची आवाज में कुरान की आयतें बोलने लगा।

किंतु आदमी टूटे एक्सलों, गहरे खड्डों और चिल्ला रहे धर्मांध युवकों का आदी हो ही जाता है। मेरा ध्यान हाजी जकरिया की ओर चला गया। बहुत समय पहले की बात है, मेरे पिताजी केरीनची में जिला-कमिश्नर थे। तब मैं छोटा बच्चा था, किंतु मुझे याद है कि हाजी जकरिया बड़े ही स्नेही आदमी थे। फसल पर वे मां को हरा चावल भेजना न भूलते थे। इस चावल से मां हमारे लिए बिस्कुट बनाया करती थी। शिकार से वापस आने पर वे हमें हिरन के नरम मांस के छोटे-छोटे टुकड़े भेजा करते थे और रोजों के बाद ईद के दिन तो हमें उपहारों से लाद देते थे। सबसे अच्छा उपहार पटाखों का होता था और एक बार पिताजी ने जब एक पैकेट खोला, तो देखा कि उसमें डाइनामाइट जितना बड़ा पटाखा है।

हम हाजी जकरिया को परिवार का ही सदस्य मानते थे। वे हमारे सबसे मेहरबान और उदार चाचा थे। वे अमीर थे। उनके कई एकड़ चावल के खेत थे और जब काफी की कीमत अधिक थी, तब उनके पास बढ़िया किस्म की काफी के बाग थे।

मेरे पिता के काफी के बाग थे, किंतु हाजी से कम। जब बाजार में रबर की कीमत चढ़ गयी, तो पिताजी ने काफी के स्थान पर रबर लगाने का फैसला किया। हाजी जकरिया ने उन्हें ऐसा करने से मना किया। किंतु पिताजी का खयाल था कि काफी का मूल्य एकदम गिर जायेगा, तब रबर काम आयेगा। पिताजी के इस विचार को हाजी जकरिया ने सनक कहा। लोग काफी तो सदा पियेंगे, मगर रबर नहीं खायेंगे।

हर साल हाजी, पिताजी और अम्मां

इकट्ठे मक्का-शरीफ हज के लिए जाने का निश्चय करते। मगर हाजी जकरिया को सदा अकेले ही जाना पड़ता। मेरे मां-बाप कभी हज नहीं कर पाये। बाद में मुझे पता चला कि पैसा न होने के कारण ही वे ऐसा न कर पाये। हर साल हाजी जकरिया पिताजी से कहते—"मेरे कमिश्नर दोस्त, तुम मेरे साथ ज्यादती क्यों करते हो? मेरा पैसा क्या तुम्हारा नहीं है? मेरे घर को अपना घर क्यों नहीं समझते हो? अगर तुम पैसा यों ही नहीं लेना चाहते, तो कर्ज ले लो, जब चाहो लौटा देना।"

मगर पिताजी इस प्रस्ताव पर हंस पड़ते और 'ना' कर देते, और हाजी जकरिया गुस्से में उठकर हमारे घर से चले जाते। और जब हज के लिए जाने का दिन आता, वे अकेले ही चल पड़ते। जब वे मक्का-शरीफ से हज करके लौटते, तो मां के लिए मूंगा और पवित्र चश्मों का पानी लाना न भूलते।

और मुझे यह भी याद है कि हाजी जकरिया लाटरी के बड़े शौकीन थे। हर महीने वे चार-पांच सौ रुपयों के लाटरी के टिकट खरीदते थे। जहां तक मुझे याद है, उनका नंबर कभी नहीं लगा। फिर भी वे लाटरी के पुराने टिकट कभी फेंकते नहीं थे, बल्कि बड़ी सावधानी से उन्हें रखे रहते थे। मुझे स्मरण है, ईद की रात एक बार मेरे माता-पिता मुझे हाजी के घर ले गये थे और लाटरियों की बात चल पड़ी थी। "ओह, मेरे मित्र," वे पिताजी से बोले थे—"पिछले महीने में इनाम लगभग जीत ही गया था। जीतने वाला नंबर था ५६७८८९ और मेरे एक टिकट का नंबर था ५६७८८८। अब मैं इनाम जीतने ही वाला हूं। अगले महीने मैं और अधिक टिकट खरीदूंगा।"

पिताजी लाटरियों को जुए से कम नहीं समझते थे। वे हाजी से सहमत न होते और अक्सर इसका विरोध करते। इस बार मेरे पिताजी की आंखों में शरारत चमक उठी और उन्होंने पूछा—"हाजी, बताओ तो तुमने इन लाटरियों पर कितना रुपया बर्बाद किया है?" हाजी जकरिया कमरे से बाहर गये और एक टीन का ट्रंक उठा लाये, जो लाटरी के टिकटों से भरा हुआ था। "इसमें दस हजार रुपये के टिकट हैं," उन्होंने ट्रंक पर हथेली से थाप देते हुए कहा—"यह तो भाग्य का खेल है। जीत जाओ तो लाभ ही लाभ...... और अगर न जीतो, तो महीने में पांच-सात सौ रुपये कौन-सी बात है।"

पिताजी ने सिर हिलाया और कहा—"इन कागजों का क्या फायदा? मैं तो कहता हूं, इन्हें बाहर फेंको। ये अशुभ हैं और दुःख का कारण बन सकते हैं।" हाजी जकरिया की हंसी गूंज उठी। "नहीं," उन्होंने सफाई पेश की—"लाटरियों का मजा इस बात को जानने में है कि तुम बड़े इनाम के कितने करीब हो। एक या दो नंबरों की ही तो बात होती है।"

* * *

मैं अभी स्मृतियों के इसी पड़ाव पर था कि बस हाजी जकरिया के मकान के पास रुकी। मैं बस से कूद पड़ा। हाजी जकरिया

पहले ही बाहर खड़े इंतजार कर रहे थे और उन्होंने मुझे गले लगा लिया। खाना तैयार था। खाना खा चुकने के बाद मैंने देखा कि मकान बदल गया है और खाली-खाली लगता है। फर्श पर कालीन नजर नहीं आये, और बच्चों का शोर भी सुनाई नहीं पड़ा। वे भी बड़े हो गये थे। हाजी के छः बच्चे थे, और अब केवल एक लड़की मरियम अभी कुंआरी रह गयी थी। बचपन में वह हमारे साथ खेला करती थी, मगर अब वह एक हसीन और जवान लड़की लग रही थी। मैं उसे निहारता रहा।

हाजी जकरिया ने ढेर सारी बातें कीं। पुराने दिनों को याद किया और बार-बार कहा कि तुमसे मिलकर खुशी हुई है, लेकिन तुम्हारे पिता के मर जाने का बहुत दुःख है। बाद में जब विवाहित लड़के और लड़कियां चली गयीं और मरियम भी मां के पास रसोई में चली गयी, तो वे अचानक बोले—"बेटा, अब हम गरीब हो गये हैं। बहुत वर्ष पहले जब काफी की कीमत एकदम गिर गयी थी, तो मैंने तुम्हारे पिता की नकल की थी। काफी की जगह रबर का बाग लगाया था। मगर जब रबर के पेड़ बड़े हुए, तो उसकी कीमत भी एकदम गिर गयी, और मैंने मूर्खतावश उन्हें काटकर फिर काफी बो दी। मगर काफी का मूल्य वहीं-का-वहीं रहा। तुम्हारे पिता भाग्यशाली थे। वे मंदी के दौरान भी रबर के साथ चिपटे रहे और जब कोरिया-युद्ध ने रबर को सोना बना दिया, तो उन्हें बहुत लाभ हुआ। उन्होंने



चित्र : टी० ए० राणा

अपने बाग की देखभाल करने के लिए मुझे कहा। इससे मुझे बहुत मदद मिली है लेकिन अब रबर फिर मंदी पर है और मैं नहीं जानता कि आगे क्या होगा!"

मैंने उन्हें अपने आने का उद्देश्य बताया मां चाहती थी कि वे हमारे रबर के बाग की देखभाल करते रहें और अब जब पिता नहीं रहे, तो उसे अपना ही बाग समझें।

बाद में शाम को वे मस्जिद चले गये और मरियम बातें करने के लिए मेरे पास चली आयी। उससे पता चला कि जब काफी का मूल्य गिरा था, तो उसके पिता ने खास परवाह नहीं की थी। वे हर साल मक्का शरीफ जाते रहे और पहले की तरह लाटरी के टिकट खरीदते रहे। बाद में हज पर जाने के वास्ते उन्हें कुछ चावलों के खेत बेचने पड़े।

किंतु सबसे बड़ा धक्का जापान के कब्जे के बाद लगा। हाजी जकरिया देशभक्त थे और उनके लड़के क्रांति-सेना में थे। उन्होंने रिपब्लिकन के राष्ट्रीय बांड खरीदने के लिए अपने खेत बेच डाले थे। केवल देशभक्ति

ही बात न थी; रिपब्लिकन सरकार सूद-सहित पूरी रकम तीन-चार साल में वापस करने की गारंटी दे रही थी। किंतु इंडोनेशिया स्वतंत्र हो गया और सरकार बांडों के पैसे न दे सकी। और फिर कोरिया का युद्ध छिड़ गया। लेकिन खुशकिस्मती से मेरे पिताजी ने अपना रबर का बाग बटाई पर हाजी जकरिया को दे रखा था।

मरियम की बातों से मुझे लगा कि आम तौर पर हाजी जकरिया अब भी खुशहाल थे। उनके सब बेटे काम पर लगे थे और उनकी मदद करते थे। अभी तक उनके पास चावल के खेत थे, इसलिए उन्हें चावल नहीं खरीदना पड़ता था। "किंतु," मरियम बोली– "वे अब लाटरी नहीं डाल सकते और हर साल हज के लिए नहीं जा सकते। और इन बातों का उन्हें बहुत दुःख है।"

बाद में जब हाजी जकरिया मस्जिद से वापस घर आये, तो शरारतन मैं उनसे लाटरियों के बारे में पूछ बैठा। उनका चेहरा चमक उठा और वे अपने सोने के कमरे से बड़ा ट्रंक उठा लाये और उसे खोला।

"तुम्हें याद है, मैं हर महीने लाटरी के टिकट खरीदा करता था और अक्सर इनाम जीतते-जीतते रह जाता था। तुम अंदाजा लगाओ, ये टिकट कितने रुपयों के होंगे ?"

"ओह, ये तो हजारों के होंगे।" मैं बोला।

"नहीं बेटा, 'हजारों के' न कहो। मुझे ठीक-ठीक मालूम है कि मैंने इनकी कितनी रकम अदा की है– छप्पन हजार रुपये, न उससे कम, न ज्यादा। और ये अच्छे दिनों के रुपये थे, आज के सस्ते रुपये नहीं...... समझे ?"

"फिर भी कभी आपकी लाटरी नहीं निकली ?" मैंने हैरत से पूछा।

"नहीं निकली !" उन्होंने उत्तर दिया और हंस पड़े। फिर उन्होंने बक्स बंद किया और अपने सोने के कमरे की ओर बढ़ते हुए कहा–"बेटा, आराम से सो जाओ।" तभी मैं बोला–"छप्पन हजार रुपये, पुराने रुपये ! क्या आप जानते हैं कि आज वे १५ लाख के बराबर हैं ? आप इन सब रुपयों से आज की बढ़ी हुई कीमतों पर भी क्या नहीं खरीद सकते थे ? आज आप अमीर होते।"

हाजी जकरिया रुके, हंसे और फिर अचानक उनका हंसना बंद हो गया। उनके चेहरे का रंग बदल गया और उन्होंने अचरज से मुझे देखा। फिर वे बुदबुदाये–"क्या बक रहे हो ? आराम से सो जाओ। तुम जरूर सफर से थक गये हो।"

मेरा कमरा बूढ़े दंपति और मरियम के कमरों के बीच था। मैंने महसूस किया कि मरियम बेचैन है और मैंने दिल में सोचा कि अगर वह सो नहीं पा रही है, तो इसके लिए मैं ही जिम्मेदार हूं।

* * *

मुझे जकर्ता वापस आये अभी एक मास ही बीता था कि मरियम का पत्र मिला। उसने लिखा था कि मेरे आने के बाद से वह अपने पिता के बारे में परेशान है। उसके पिता कमरे में बंद हो जाते हैं और लाटरियों के टिकट गिनते रहते हैं। वे बहुत चुप-

चाप रहने लगे हैं और घंटों, बल्कि कई-कई दिन तक किसी से बात नहीं करते।

मैंने उत्तर में मरियम को लिखा कि चिंता न करो, जैसे युवकों की समस्याएं होती हैं, वैसे ही वृद्धों की भी समस्याएं होती हैं, जो खुद-ब-खुद हल हो जाती हैं।

हफ्ते-भर बाद मरियम ने तार द्वारा सूचना दी कि उसके पिता चल बसे। तार के बाद आये पत्र में उसने स्पष्ट किया कि हाजी जकरिया ने आत्महत्या की थी। उन्होंने बंद कमरे में बंदूक से अपना भेजा उड़ा दिया था। जब दरवाजा तोड़कर खोला गया, तो देखा कि फर्श पर बिखरे लाटरी के टिकटों और रिपब्लिकन सरकार के बांडों पर रक्त बिखरा हुआ है और वे उनके बीच में पड़े हैं। अंत में उसने लिखा था—मेरी मां बीमार है और मुझे नहीं सूझता कि मैं क्या करूं।

तो अब यही मेरी समस्या है। मुझे क्या करना होगा ? कई रातों से मुझे नींद नहीं आ रही है। मैं अपने आपको कसूरवार समझता हूं। मैंने लाटरी के टिकटों की याद दिलाकर हाजी जकरिया का कत्ल किया है। क्योंकि मैंने उनकी मूर्खता की ओर ध्यान दिलाया था, इसलिए दुःख में उन्होंने आत्महत्या कर ली। मुझे मरियम से मुहब्बत है। लेकिन क्या बाप का हत्यारा उसकी बेटी से शादी कर सकता है ?

मैं बड़ी खुशी से मरियम से विवाह कर लेता, अगर मैं अपने आपको यह आश्वासन दिला सकता कि हाजी जकरिया ने लाटरी के टिकटों के कारण आत्महत्या नहीं की, बल्कि उनकी आत्महत्या का कारण रिपब्लिकन राष्ट्रीय बांडों का भुगतान न होने का दुःख है। —रूपांतर : राजेन्द्र बोहरा



रोमन सम्राट् आगस्टस व नीरो ने निर्माणकार्य के खर्च के लिए लाटरी आरंभ की थी। इंग्लैंड की रानी प्रथम एलिजाबेथ ने लाटरी के पुरस्कार की अनुमति दी थी। हमारे यहां केरल के साम्यवादी मंत्रिमंडल ने लाटरी शुरू करके खूब पैसा कमाया है। इससे पूर्व रूस की साम्यवादी सरकार ने दूसरे महायुद्ध का खर्च निकालने के लिए लाटरी चलायी और एक लाख रूबल पुरस्कार की घोषणा की। भारत में ब्रिटिश राज्य में ही लाटरी का प्रारंभ हो चुका था। १७८७ में पीटर मैसे कैसीन नामक व्यापारी ने स्टाक-एक्सचेंज की इमारत बनवाने के लिए लाटरी की योजना सोची। उस समय स्टार पागोडा नाम का ३.५० रुपये कीमत का सिक्का चलता था। ऐसे १ लाख पागोडा के इनाम की घोषणा की गयी, जिसमें पहला इनाम ५ हजार पागोडा का था, फिर ढाई-ढाई हजार के दो, एक हजार के पांच, पांच सौ के दस, ढाई सौ के बीस, एक सौ के पचास और पचास के सौ तथा बीस पागोडा के ३२१२-यानी कुल ३४०० पुरस्कार रखे गये थे। इसके अलावा पहला टिकट लेने वाले को ५०० और आखिरी टिकट खरीदने वाले के लिए ३६० पागोडा का पुरस्कार रखा गया था।





हाथी की जन्मकथा

रामेश बेदी

मां बनने वाली हथिनी के चारों ओर कुछ हाथी थोड़ी-थोड़ी दूरी पर खड़े थे। एक घेरा-सा बन गया था। सब हाथियों के मुंह बाहर की ओर थे। उनमें से कुछ हाथी तो स्पष्ट रूप से संतरियों-जैसी चेष्टाएं कर रहे थे। ऐसा लगता था कि वे किसी भी ओर से आने वाले खतरे का मुकाबला करने को तैयार हैं। जब बच्चे का जन्म हो गया, तो उनकी व्यूह-रचना में थोड़ा-परिवर्तन हुआ। हाथी पास-पास आ गये, लेकिन उन्होंने अपने मुंह बाहर की ओर ही रखे। वे चिंघाड़ रहे थे, गरज रहे थे, कान फड़फड़ा रहे थे; उनके पैर चंचल थे और शरीर झूम रहे थे।

इस घेरे के बीचों-बीच एक छोटा, काला, दुबला पदार्थ पड़ा था, जिसके ऊपर से मां तथा दूसरी हथिनियां झिल्ली उतार रही थीं। दाइयों की टोली में छः बड़ी हथिनियां व पांच छोटे बच्चे थे। इनके अलावा एक युवा हाथी कोई पंद्रह गज की दूरी पर खड़ा हुआ इस जन्मलीला को देख रहा था। बच्चे की सुरक्षा के लिए यह मजबूत व्यवस्था की गयी थी।

कुछ हथिनियां बच्चे को सहलाने लगीं और सूंड़ों से पकड़कर उसे खड़ा करने की कोशिश करने लगीं। इस बीच दूसरी हथिनियों ने झिल्ली के थैले को उतार लिया था।

[शीर्षक के साथ : शेर से भयभीत गजशिशु; फोटो : नरेश बेदी]

एक ने उसे सूंड़ में उठाया और दूर आसमान में फेंक दिया। ऊंचाई से गिरते हुए थैले में हवा भर गयी और वह एक नन्हे पैराशूट के समान फैल गया।

तभी नीले आसमान पर गिद्ध उतराने लगे। सेवादार हथिनियां उधर बढ़ने वाले गिद्धों को भगा देती थीं। पहरेदार किसी को प्रसूति-कक्ष में नहीं आने देते थे। केवल एक हाथी का उन्होंने लिहाज किया। वह वार्ड के अंदर चला गया।

लगातार कोई दस मिनिट तक पहरेदार गरजते और चिंघाड़ते रहे, मानो तुरही और नगाड़ों द्वारा नये मेहमान के आने की खुशियां मनायी जा रही हों। उसके बाद आधे घंटे तक लगभग चुप्पी रही। तब हथिनियां और उनके बच्चे दूर हट गये। अगली कार्रवाई में उनका भाग लेना आवश्यक नहीं था। मां और नवजात शिशु के साथ वे एक हथिनी और एक पट्ठे (हस्तिकिशोर) को छोड़ गये।

नवजात शिशु गीला था, आश्लेष्म से आवृत था। उसकी सारी देह पर खूब बाल थे, सिर पर अधिक। वह अब भी धरती पर लड़खड़ाता था और खड़ा होने में असमर्थ था। मां और मौसी तथा बड़ा भाई नन्हे शिशु को पैरों पर खड़ा करने का प्रयत्न करने लगे। दो घंटे से अधिक समय तक वे इस प्रयास में सफल नहीं हो पाये। मौसी तो पहले ही अनमनी हो गयी थी। वह उन्हें छोड़कर झुंड में वापस जा मिली।

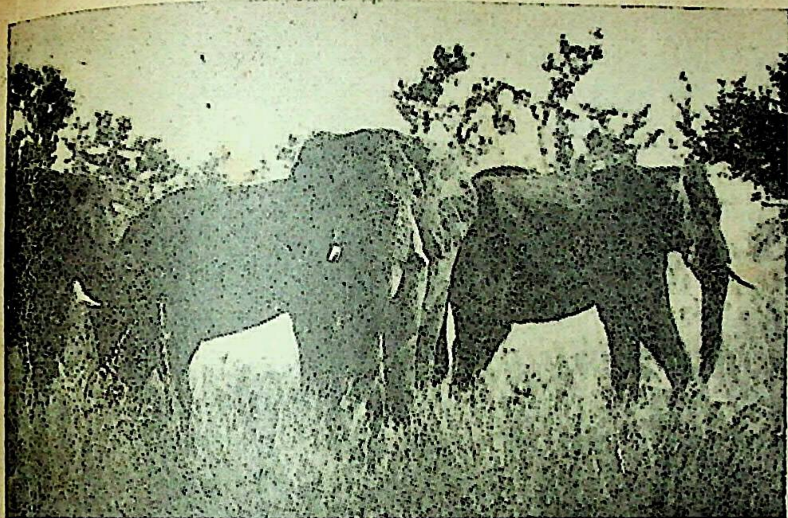
परंतु बड़ा भाई लगा रहा। वह बच्चे के पेट के नीचे सूंड़ डालकर उसे उठने में सहायता करता था। कभी वह एक बाजू से सूंड़ डालता और कभी टांगों के बीच में से। आखिरकार उसकी कोशिशें कामयाब हो गयीं। पर शिशु हाथी कुछ ही क्षणों तक अपने पैरों पर खड़ा रह सका। परंतु उसे फिर खड़ा किया गया। वह फिर गिर पड़ा। उठने-गिरने का सिलसिला चलता रहा। हर बार वह गिरते समय डर के मारे चिल्ला भी जाता था।

जब उसने पहले लड़खड़ाते कदम आगे रखने की कोशिश की, तो वह आगे की ओर सिर के बल गिर पड़ा और लुढ़ककर पीठ के बल आ गया। फिर भी उसे आराम नहीं करने दिया गया और लगातार पैरों के बल खड़ा होने और चलने को बाधित किया जाता रहा।

ज्यों ही शिशु अपने आप खड़ा होने में समर्थ हो गया, बड़ा भाई जोर से चिंघाड़ता हुआ वहां से खिसक गया। वास्तव में जन्मोत्सव में सम्मिलित हाथियों को ज्यों ही यह मालूम हो गया कि सब काम ठीक ढंग से होता जा रहा है, तो वे क्रमशः अलग होते गये। सबसे पहले रक्षकों का घेरा उठा, उसके बाद दाइयों की टोली गयी, तब मौसी और अंत में बड़ा भाई विदा हुए।

× × ×

भारत और बर्मा में काफी हाथी पाले जाते हैं। परंतु बंदी जीवन में हाथियों के बच्चे कम ही होते हैं। यूरोप में शायद अब तक किसी अफ्रीकी पालतू हाथी ने बच्चे



प्रसूता हथिनी की रक्षा के लिए अफ्रीकी हाथियों की व्यूह-रचना

नहीं दिये हैं। और वहां एशियाई हाथी के बच्चे जनने की पहली घटना १९०३ में लंदन के चिड़िया-घर में घटी थी। यह हथिनी एक सर्कस की थी। दुर्भाग्यवश शिशु कुछ ही सप्ताह जीवित रहा। भूसा भरी हुई उसकी देह अब भी साउथ केन्सिंग्टन-स्थित लंदन नैचुरल हिस्ट्री म्यूजियम में देखी जा सकती है। १९०७ में कोपनहेगन के जार्डिन दे एक्लिमेशन में एक बच्चा पैदा हुआ था। वहीं पर उसी जोड़े ने १९१२ में एक और बच्चे को भी जन्म दिया।

अकबर के समय मान्यता थी कि हथिनी का गर्भधारण-काल अठारह चंद्रमास (५४० दिन) का होता है। आधुनिक अनुमान के अनुसार, नर बच्चा मां के पेट में २२ महीने और मादा बच्चा २० महीने रहता है। विभिन्न गजपालकों ने यह समय १७ से २४ महीने तक बताया है। ढाई-ढाई बरस के अंतर से हथिनी बच्चा देती देखी गयी है।

एक प्रसव में एक ही बच्चा पैदा होता है। अपवाद के रूप में कभी-कभी दो जुड़वां बच्चे भी पैदा होते देखे गये हैं, जैसा कि मनुष्यों में भी होता है। बर्मा में लकड़ी ढोने वाली एक हथिनी ने २६ अक्टूबर १९६१ को सवेरे ७॥ बजे एक बच्चे को जन्म दिया, जो नर था। साढ़े तीन घंटे बाद दूसरे बच्चे ने जन्म लिया, जो मादा था। कंधे पर नर की ऊंचाई २ फुट ९ इंच और मादा की २ फुट ८ इंच थी। दोनों बच्चे २२ महीने गर्भ में रहे थे। उनकी मां २६ साल की थी। इसके पहले वह १० जून १९५९ को एक मादा बच्चे को जन्म दे चुकी थी। २ साल ३॥ महीने के अंतर से बच्चे देना असाधारण बात है।

नवजात शिशु का कद प्रायः २ फुट १० इंच और वजन लगभग २०० पौंड होता है। सारा शरीर रोमों से ढका होता है। शुरू के कुछ महीनों तक शिशु अपनी सूंड़ का उपयोग करने में समर्थ नहीं होता और मां के थन में मुंह लगाकर दूध पीता है। हथिनी के थन अगली दो टांगों के बीच में होते हैं। डर लगने पर छोटा बच्चा अपनी मां की सूंड़ के पीछे छिपने का यत्न करता है।

कम-से-कम दो साल तक तो बच्चा मां का दूध पीता है। अबुलफजल ने यह समय पांच साल लिखा है। थोड़ा बड़ा होने पर बच्चा घास से खेलने लगता है और उसे मुंह में लेकर चवाने लगता है। कई लोग इसी से ऐसा समझ बैठते हैं कि वह ठोस पदार्थ खाने के योग्य हो गया है। पर वास्तव में हाथी के बच्चे तब तक मां का दूध पीते रहते हैं, जब तक उनके भाई या बहन का जन्म नहीं हो जाता। असम की एक गजशाला में एक हथिनी अलग-अलग वय के अपने तीन बच्चों को बारी-बारी से दूध पिलाती थी। अलबत्ता सबसे छोटे को वह सबसे अधिक दूध पीने का अवसर देती थी।

खेदे में यदि कोई दुधमुंहा बच्चा मां से अलग पकड़ लिया जाये, तो उसे पालना कठिन तो होता ही है, खर्चीला भी पड़ता है। और इतने श्रम और व्यय के बाद भी वह बच्चा जिंदा रह जाये, तो गनीमत समझिये। जंगल में उसे शेर की दया पर छोड़ देना निर्दयता होगी, इसलिए उसे जंगल में भी नहीं छोड़ा जा सकता।

एक बार फ्रैंक निकल्स का पालतू हा[illegible] जंगल में से गुजर रहा था, तो एक [illegible] हथिनी ने आकर उसके मस्तक पर [illegible] सूंड़ रख दी। पालतू हाथी और उस पर [illegible] आदमी से वह जरा भी डरी नहीं। [illegible] वह सहायता मांगने आयी थी। वे [illegible] पीछे-पीछे हो लिये। हथिनी उन्हें एक [illegible] ले गयी, जहां उसका घायल बच्चा [illegible] था। बच्चे की एक टांग का निचला [illegible] शेर ने बेकार कर दिया था।

पैट्रिक स्ट्रेसी ने एक जंगली गजशिशु [illegible] बारे में लिखा है, जो शेरों के आक्रमण के [illegible] अपने झुंड और अपनी मां से बिछुड़ गया था। शेरों से बचकर वह बहादुर बच्चा हिम्म[illegible] करके नागा पहाड़ियों के नीचे जंगल के [illegible] में बनी रेल्वे-गैंगमैनों की झोंपड़ी में [illegible] पहुंचा था। ऐसा माना जा सकता है कि [illegible] रक्षा और भोजन पाने की आशा से उन[illegible] शरण में आया था।

जंगली हाथियों के बच्चे कई बार [illegible] झुंड छोड़कर पालतू हाथियों के साथ [illegible] जाते हैं। वे इतने भोले होते हैं कि जंगल [illegible] दुनिया में भी वे अपने और पराये का [illegible] नहीं जानते।

२१ मई १९६८ को शाम के पांच [illegible] जंगल में हमें जो पहला हाथी दिखाई [illegible] वह एक हथिनी थी, जिसके साथ करीब [illegible] साल का एक बच्चा था। धीरे-धीरे [illegible] हुए हम उससे सौ फुट दूर रह गये। हमें दे[illegible] कर हथिनी भाग खड़ी हुई। बच्चा [illegible] साथ जाने के बजाय, हमारी ओर [illegible]

लगा। अपनी सूंड़ बढ़ाकर उसने हमारी हथिनी का स्वागत किया। वह समझ रहा था कि यह हथिनी भी उन्हीं के झुंड की सदस्य है। उसकी मां जब काफी दूर निकल गयी, तो वह भी भाग गया।

एक बार खुले शाल-वन में एक झुंड को चरते हुए पाकर पैट्रिक स्ट्रेसी उसे देखने के लिए खड़े हो गये। वे पूरे सावधान थे कि झुंड को उनके आने का पता न चले, जिससे हाथी स्वाभाविक रूप से अपना काम-काज करते रहें। कुछ देर बाद वे लौटने लगे और अचानक उन्होंने देखा कि एक छोटा-सा दंतुर उनके हाथी के पीछे-पीछे आ रहा है। उसकी ऊंचाई ४ फुट से अधिक नहीं रही होगी। झुंड से वह कम-से-कम सौ गज दूर तो अवश्य चला आया होगा। अनुगमन करते हुए वह जब-तब अपनी नन्ही सूंड़ से बड़े हाथी की गंध को ग्रहण करने की कोशिश करता था।

स्ट्रेसी ने अपने हाथी को रोका। उस बच्चे को देखकर उनके हाथी को गुस्सा नहीं आया। उलटे, उसने अपनी सूंड़ आगे बढ़ाकर बच्चे का अभिनंदन किया। बच्चे ने भी अपनी सूंढ़ आगे करके दोस्ती का हाथ बढ़ाया। स्ट्रेसी चाहते तो इस बच्चे को साथ ले जा सकते थे। लेकिन इतने छोटे बच्चे को पालने में आने वाली कठिनाइयों का ध्यान करते हुए उन्होंने चिल्लाकर उसे भगा दिया। बच्छा तो यही है कि चार फुट से छोटे बच्चे को पकड़ा ही न जाये। कोई बच्चा पकड़ाई में आ ही जाये, तो भी यदि उसे फिर जंगल में अपनी मां के साथ या झुंड के बीच में छोड़ा जा सकता हो, तो तुरंत ऐसा कर देना चाहिये।

यदि हाथी के बच्चे को गाय या भैंस के दूध पर रखा जाये, तो वह जल्दी कमजोर होने लगता है और उसका हाजमा खराब हो जाता है। परंतु गाय या भैंस के दूध में अंडे की सफेदी, कैल्शियम और विटामिन मिलाकर पिलाया जाये, तो उस पर उसे अच्छी तरह पाला जा सकता है।

बिहारी गजवैद्य करभकों को दूध के अलावा दाल-चावल की पतली खिचड़ी भी देते हैं, जिसमें जरा-सा गुड़ भी मिला दिया जाता है। बांस की नली में भरकर इसे बच्चे को पिलाया जाता है।

असम में ए० पी० जी ने एक हाथी के बच्चे को पालने की कोशिश की थी। उनके पास जब वह लाया गया, तो ३ फुट २ इंच ऊंचा था और अंदाज था कि उसकी उम्र पांच महीने की है। डेढ़ महीने तक वह उनके पास रहा। वे उसे गाय के ताजे दूध में एक-चौथाई पानी मिलाकर देते थे और जरा-सी पतली खिचड़ी भी पिलाते थे। हरे चारे को कुतरना वह सीख गया था। गुड़ का वह शौकीन था। लंदन के लिए जब वह वायुयान से रवाना हुआ, तो रास्ते के लिए डिब्बे का दूध और 'कार्न फ्लेक' रख लिये थे।

शिशु को जन्म देने के कारण पैदा हुई निर्बलता तो जल्दी ही दूर हो जाती है, परंतु बच्चा जब तक तीन महीने का नहीं हो जाता, हथिनी जंगल में चरने नहीं जाती। मां अपने बच्चे से बेहद प्यार करती है।

झुंड के अन्य हाथी भी उसका ध्यान रखते हैं। चरते समय या सोते समय वह सदा अपनी मां या बड़े हाथियों के संरक्षण में रहता है। बंदी बनाये गये हाथियों में बच्चों के प्रति ऐसी ममता नहीं दिखाई देती। बाड़े में बड़े नर हाथियों के रास्ते में छोटे हाथी आ जायें, तो वे अधीरता से उन्हें परे धकेल देते हैं, या उन पर प्रहार करते हैं, और कभी-कभी तो क्रूरतापूर्वक मार भी डालते हैं।

भवभूति ने उत्तररामचरित (अंक ३) में एक पालतू गजशावक पर एक मदमस्त गजराज द्वारा हमला किये जाने का उल्लेख किया है। सीता ने इसे पुत्रवत् पाला था। एक बार जब वह पानी में खेल रहा था, तो मस्त हाथी उसे मारने दौड़ा था। सीता ने तब चिल्लाकर राम से कहा था—"आर्यपुत्र! मेरे पुत्र को बचाइये।"

मैंने देखा है कि गंभीर खतरा आने पर हथिनियां कई बार अपने बच्चे को छोड़कर भाग जाती हैं। पर सामान्य परिस्थितियों में तो खतरे का जरा-सा संकेत मिलने पर वे उन्हें अपने आगे हांक ले जाती हैं। वे तब तक सूंड़ से मुक्के मारकर उन्हें आगे धकेलती रहती हैं, जब तक कि खतरे के क्षेत्र से बाहर न निकल जायें।

दूध पिलाने वाली मां को यदि भारी काम पर या प्रशिक्षण में लगा दिया जाये, तो कामकाज के बोझ और दबाव के कारण उसका दूध सूखने लगता है। ऐसी हालत में उसका अपने बच्चे के प्रति लगाव जाता रहता है।



गणित के अध्यापक.........

एक छात्र—"मुझे तो भाई, गणित के अध्यापक बहुत अच्छे लगते हैं, क्योंकि वे जरा-जरा-सी गलती पर कक्षा के बाहर निकाल देते हैं।

तरकीब..........

एक डाक्टर ने अपने रोगी से कहा—"हम लोग तीन हैं – तुम, मैं और बीमारी! इसलिए यदि तुम मेरा साथ दोगे, तो हम दोनों मिलकर आसानी से बीमारी पर विजय पा सकते हैं। यदि तुम बीमारी का साथ दोगे, तो मैं तुम दोनों का सामना नहीं कर सकूंगा।"

कबूतर या कबूतरी............

एक कबूतर कूद रहा था। उसे बड़े गौर से दो सज्जन देख रहे थे। एक ने कहा—"कितना सुंदर कबूतर है!"

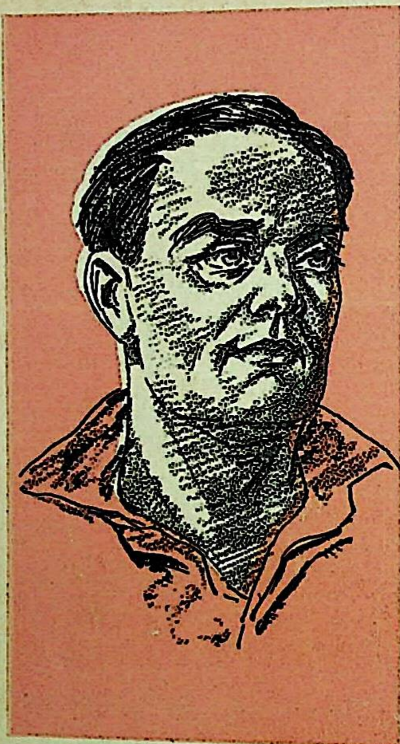
"नहीं, यह कबूतरी है।"

दोनों आपस में बहस करने लगे। तभी एक पंडितजी उधर से गुजरे, तो दोनों ने उनसे पूछा—"क्यों पंडितजी यह कबूतर है या कबूतरी?"

पंडितजी ने कबूतर के आगे दाने डालते हुए कहा—"यदि यह चुगेगा, तो कबूतर और चुगेगी तो कबूतरी।"

—अनुराग शर्मा





फील्ड मार्शल

सर विलियम स्लिम

बीता युद्ध, जीता एक सैनिक

रात का वीरानापन जैसे पूरे माहौल में समाया हुआ था। मैं केन्सिंग्टन की सूनी पड़ चुकी सड़कों से गुजर रहा था। लंदन में रहने का एक नुक्सान यह है कि आप कभी-कदाच ही आकाश में तारों को निहार पाते हैं। लेकिन उस रात मेरे पैर धरती पर चल रहे थे और आंखें आकाश में घूम रहीं थीं। मैं सिर ऊपर उठाये तारों को निहार रहा था, ठीक जैसे चार-पांच साल पहले मैं हर रात वीरान रेगिस्तान के खुरदरे बालू की चुभन पीठ में महसूस करता हुआ उन्हें देखा करता था।

लड़ाई के जमाने की उन रातों की तरह ही, ऊपर चमकते तारों में आंखें गड़ाये मैं केन्सिग्टन स्क्वायर से होकर गुजरने के लिए मुड़ा; मगर उसी पल अचानक एक शानदार कार पास के नुक्कड़ पर बड़ी तेजी से मुड़ी और मुझे छूती हुई-सी सर्र-से निकल गयी। क्षण-भर के लिए शायद मेरे मन में एक हल्के-से भय की ऐसी अनुभूति हुई, जैसी मृत्यु को करीब पाकर होती है; पर दूसरे ही क्षण उस कार वाले पर मैं क्रुद्ध हो उठा-मेरी मौत भी तो हो सकती थी!

कार कुछ गजों की दूरी पर खड़ी हो गयी थी। मैं जब कार के पास पहुंचा, एक आदमी दरवाजा खोल ड्राइविंग सीट से नीचे उतर आया। भारी-भरकम शरीर, साधारण कपड़े, गले में मफलर और सिर पर टोपी। उसकी पीठ मेरी तरफ थी; लेकिन हल्की-सी गोलाई लिये उसके चौड़े कंधे कुछ-कुछ पहचाने-से लग रहे थे। उसने मेरे कदमों की आहट सुनी और बिजली की-सी तेजी से

घूम पड़ा।

और तब मैं उसे पहचान गया। वह चौड़ा चेहरा, उभरी हुई गालों की हड्डियां, टूटी हुई-सी नाक, बड़ा-सा मुंह और छोटी आंखें। ना, इन्हें पहचानने में भूल नहीं हो सकती थी। मेरा गुस्सा काफूर हो गया।

"अरे चक!" मेरे स्वर में स्पष्ट उल्लास झलक उठा। चक के चेहरे पर जो तनाव उभर आया था, वह जाता रहा और एक मुस्कान-सी तिर आयी।

"हलो!" उसने कहा और अपना हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया।

"कैसा दिलचस्प संयोग है!" मैं अपनी रौ में था– "अभी-अभी मैं पुराने दिनों की याद में ही खोया हुआ था। अक्सर तुम्हारी याद आती है। लड़ाई के बाद से क्या कर रहे हो तुम?"

"ओह, बस यों ही दिन गुजार रहा हूं।" चक जैसे कुछ बताना नहीं चाहता था। उसकी आंखें मेरे कंधों पर से फिसलकर इधर-उधर भटक रही थीं। वह आंखें नहीं मिला रहा था। यह उसकी पुरानी आदत थी।

"तुम्हें कोई नौकरी मिल गयी है?" मैंने जैसे जोर देकर जानने की कोशिश की।

पर वह फिर बात टाल गया। बीच में ही बोल उठा–"मैं अब चलूंगा, किसी से मिलना है!" उसने सिर के झटके से स्क्वायर की दूसरी ओर एक अस्पष्ट-सा संकेत किया।

"सिर्फ आधा मिनिट!" मैंने अनुरोध-सा किया। लेकिन वह अब तक आगे बढ़ चुका था।

चलते-चलते बोला–"फिर कभी मुलाकात होगी–शायद!"

"लेकिन तुम्हारी इस कार का क्या होगा?" मैंने पीछे से पुकारकर कहा। मुड़कर वह मुस्कराया–"ओह, उसके लिए कोई आ जायेगा!" और वह नुक्कड़ पर मुड़कर नजरों से ओझल हो गया।

मुझे थोड़ी ठेस-सी लगी। चक अगर अपने बारे में मुझे ज्यादा कुछ नहीं बताना चाहता था, तब भी इतने स्पष्ट ढंग से यह बात जाहिर करने की क्या जरूरत थी।

सिर्फ बीस-इक्कीस कदम मैं आगे बढ़ा होऊंगा कि दुबारा मैंने किसी कार के बहुत तेज चाल में केन्सिंग्टन स्क्वायर के उसी नुक्कड़ पर मुड़ने की आवाज सुनी। रुककर मैंने उस ओर निगाह डाली।

यह कार भी घिसटती हुई-सी अचानक मुझसे थोड़ी दूर पर आकर रुक गयी। उसमें से तीन आदमी उतरे, जिनमें एक पुलिस कांस्टेबल लग रहा था। उन्होंने चक की गाड़ी को घेर लिया। उनमें से एक लंबा-चौड़ा आदमी, जो सामान्य नागरिकों जैसे वस्त्र पहने था, टहलता हुआ मेरी ओर बढ़ आया। उसने अपनी पैनी निगाहों से मुझे सिर से पांव तक देखा। शायद वह मेरी पद-प्रतिष्ठा और स्थिति के बारे में अपने मन को पहले पूरी तरह आश्वस्त कर लेना चाहता था।

सहज ढंग से उसने बात शुरू की–"वहां खड़ी वह दूसरी कार जब पहुंची, तब शायद आप यहां नहीं रहे होंगे, क्यों?"

"मैं यहीं था।" मैंने उसे बताया—"दर-असल जब मैं स्क्वायर से होकर गुजर रहा था, वह कार मेरी बगल से निकली थी।"

"किसी को उस कार से उतरते देखा आपने?"

"हां, एक आदमी था।......क्यों?"

"बात यह है कि यह कार चुरायी हुई है और अभी आधा घंटा पहले एक स्थान पर खिड़की तोड़कर माल उड़ा लेने की घटना में इस कार से काम लिया गया है। वह आदमी, जो इस कार से उतरा था, किस तरह का था? मेरा मतलब है, क्या आप उसका हुलिया बता सकते हैं?"

मैं पल-भर को हिचकिचाया—"उसका हुलिया?" मैंने कहा—"ना......ना, मैं उसका हुलिया नहीं बता पाऊंगा!"

× × ×

पूरे साल-भर तक एक पलटन के कमांडर के रूप में दिन-रात अस्तव्यस्त-सी जिंदगी गुजारने और छः महीने तक अस्पताल में मौत से जूझने के बाद, जब फौजी मेडिकल बोर्ड के अध्यक्ष ने मेरे लिए 'हल्की ड्यूटी' देने की बात कही, तो अच्छा लगा। लेकिन एक रिजर्व बटालियन के 'आफिसर्स मेस' के हिसाब-किताब का एक महीने तक इंचार्ज रहने के बाद, मैं इस हल्की ड्यूटी से ऊब गया।

१९१५ का साल अपने अंतिम दिन गिन रहा था और लड़ाई के लिए बलपूर्वक नये-नये रंगरूटों की भरती की जा रही थी। मैंने अपनी हल्की ड्यूटी से छुटकारा पाने के लिए ऐसे ही रंगरूटों के एक दल के संचालन का दायित्व संभालना चाहा और मुझे इजाजत मिल गयी।

एक सौ बीस रंगरूटों का दल आ पहुंचा। एक-एक करके मैं उन्हें आफिस में बुलाता जाता था। वे सारी बातें बिना किसी हिचक के बता रहे थे और इससे पहले सेना में भरती न होने की वजह भी बता देते थे।

पर एक आदमी ने ऐसी कोई वजह नहीं बतायी, अपने अन्य दायित्वों का हवाला भी नहीं दिया। उसके बारे में सबसे पहली चीज मेरे ध्यान में यह आयी कि जैसे ही वह दरवाजे से भीतर आया, पूरा कमरा उस एक अकेले से लगभग भर गया। बदन पर झूलती-सी खाकी पोशाक भी उसके चौड़े व शक्तिशाली कंधों और बड़ी व पुष्ट जांघों को नहीं छिपा सकी। उसके चेहरे पर इस बात की स्पष्ट-सी झलक थी कि उसने जमाने की खाक छानी थी और उसे अपने ऊपर गजब का विश्वास था।

उसकी छोटी, पर तीक्ष्ण नीली आंखें मेरी आंखों से क्षण-भर को मिलीं; फिर वे मेरे सिर के ऊपर से फिसलती हुई कमरे में चारों ओर भटकने लगीं। मुझे उस क्षण ऐसा लगा, जैसे हम दोनों का रोल आपस में बदल गया हो—जैसे मैं नया भरती किया गया रंगरूट होऊं और वह इंटरव्यू लेने वाला हो। और कुछ इसी भावना से मैंने निश्चय किया कि बिलकुल एक बेलौस और कठोर अधिकारी की तरह मैं उसका इंटरव्यू लूंगा।

"नाम ?" मैंने तेज आवाज में पूछा। अचानक गूंज उठी तेज आवाज ने उसे चौंका-सा दिया। उसकी आंखें मेरी आंखों पर आ टिकीं।

"चक, मेरा नाम चक है सर !" उसकी आवाज में एक कड़क थी।

"पूरा नाम ?" मैंने क्रम जारी रखा।

"रिचर्ड चक।"

"उम्र ?"

"पचीस साल कह लीजिये।"

"कह लीजिये से क्या मतलब तुम्हारा ? क्या तुम नहीं जानते कि तुम्हारी सही उम्र कितनी है ?"

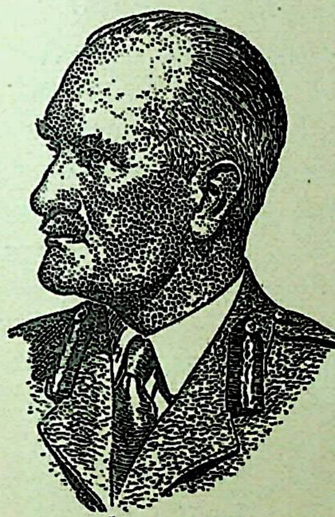
"नहीं।"

"क्या तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हें कभी बताया नहीं ?"

"अपने मां-बाप को कभी देखा नहीं !" मुझे लगा, जैसे धैर्य मेरा साथ छोड़ता जा रहा हो। रजिस्टर में मैंने उसकी उम्र पचीस साल लिख दी और फिर पूछना शुरू किया :

"जिस समय तुम्हें सेना में भरती होने के लिए कहा गया, उस समय तुम क्या काम कर रहे थे ?"

"कोई काम नहीं।" चक ने जवाब दिया।



फील्ड मार्शल स्लिम

"यानी बेकार थे ?"

"ठीक !" उसने अपना सिर ऊपर-नीचे हिलाया।

"लेकिन तुम्हारा गुजारा कैसे होता था ? तुम अवश्य कुछ-न-कुछ करते रहे होगे।"

"मैं घूमता था।"

"घूमते थे ?"

"ठीक !" अब वह मेरे लिए असह्य होता जा रहा था। "तुम घूमते थे ? कहां घूमते थे ?"

"सड़कों पर।" उसने सहज भाव से कहा।

"सड़कों पर घूमते थे ? तुम्हारा मतलब है, तुम......आवारा थे ?"

"ठीक !"

"तब तो तुम्हारे सेना में न भरती होने का कोई उचित कारण नहीं था। क्यों नहीं तुमने फौज में नाम लिखाया ?"

उसकी आंखें घूमकर मेरी आंखों पर आ गयीं; उसने अपने चौड़े कंधे लापरवाही से उचकाये।

"मैं जानता था कि जब मेरी सचमुच जरूरत होगी, मैं बुला लिया जाऊंगा।" उसने जवाब दिया।

"पहले भी कभी फौज में थे ?" मैंने सवालों का क्रम फिर शुरू किया।

"नहीं।"

"ठीक कह रहे हो तुम ?"

"हां।" सुनकर कुछ आश्चर्य से मैं उसके विशाल शरीर को देखता रह गया। उसके बड़े-बड़े हाथ नीचे की ओर झूल-से रहे थे। और तभी उसकी कलाई पर मुझे गोदने के निशान नजर आ गये।

"उस बांह की आस्तीन ऊपर करो।" मैंने आदेश दिया। अनिच्छापूर्वक उसने वैसा किया और उसकी कलाई पर मस्तूल से लिपटी गुदी हुई एक नग्न औरत की आकृति नजर आयी।

"नाविक ?" मैंने पूछा।

"स्ट्रोकर (पतवार संभालने वाला)।" उसने हल्की मुस्कान के बीच सहमति जतायी।

"कार्यमुक्त किये जाने का प्रमाणपत्र है तुम्हारे पास ?"

उसने अपना सिर हिलाया—"फाड़कर फेंक दिया मैंने।"

"क्यों ?" मैंने पूछा

"क्योंकि मुझे 'लाइलाज आवारा' बताकर कार्यमुक्त किया गया था।"

और उस 'लाइलाज आवारे' प्राइवेट रिचार्ड चक से यह मेरी पहली मुलाकात थी।

× × ×

सन १९१६। मेसोपोटामिया की तीव्र गर्मी और आबोहवा हमें यों ही रास नहीं आ रही थी, ऊपर से कैंप की जिंदगी! तंबू आग उगलते सूर्य की किरणों से हमारा बचाव करने में सर्वथा असमर्थ थे। रद्दी किस्म के बिस्कुट, सूखी सब्जियां और इसी तरह की जो अन्य चीजें हमें खाने के लिए दी जाती थीं, उनसे जिंदगी और असह्य-सी हो गयी थी। कुट के पतन से हमारे ऊपर गहरी निराशा हावी हो चली थी। ऐसा लग रहा था, जैसे हमारा कहीं कोई न हो—परमात्मा ने भी हमें भुला दिया हो! इसी से जब हमें नदी के किनारे-किनारे ऊपर की ओर मार्च करने का आदेश मिला, तो सबके-सब बसरा को छोड़ते हुए बड़े खुश नजर आ रहे थे।



आराम के क्षण दुर्लभ : रोनाल्ड सर्ल

लेकिन हमारी यह खुशी बहुत जल्द हमारा साथ छोड़ गयी। हम जैसे-जैसे आगे बढ़ते गये, सूरज और गर्म होता गया और रास्ते की मुश्किलें बढ़ती गयीं। बुरी तरह थककर अंत में हम वहां पहुंचे, जहां से हमें नदी के रास्ते आगे बढ़ना था। खजूर के ऊबड़-खावड़ व बेढंगे लट्ठों को मिलाकर तैयार किये गये घाट से लोहे की दो बड़ी चपटी नावें बंधी थीं।

शाही भारतीय नौसेना के एक लेफ्टिनेंट से वहां हमारी मुलाकात हुई। उसने उन नौकाओं की तरफ इशारा करके बताया कि वे हमारे लिए हैं। मैंने जंग खायी उन गंदी नौकाओं की ओर देखा, वीरान घाट और गंदले पानी व कीचड़ से लथपथ किनारे पर नजर दौड़ायी और पूछा कि हमें वहां से कब रवाना होना है।

लेफ्टिनेंट ने बताया कि हमें तुरंत ही रवाना हो जाना चाहिये था; पर उन नौकाओं को खींचकर ले जाने वाली मोटर-बोट अब तक नहीं पहुंच पायी है। तीसरे पहर तक उसे आ जाना चाहिये—यह कहकर वह अपनी मोटरबोट में बैठकर वहां से चला गया।

तीसरा पहर आ पहुंचा; पर हमारी नौकाओं को ले जाने वाली मोटर-बोट नहीं पहुंची। अब तक मेरे सभी सैनिकों का बुरा हाल हो चुका था। ऊपर से सूरज की झुलसा देने वाली गर्मी, नीचे नौका की लोहे की तपती हुई सतह। नरक की यातना भी शायद इससे अधिक नहीं हो सकती। कैसे सबके प्राण बचाये जायें, यह मेरी समस्या बन गयी और मैंने सहारे के लिए किनारे पर चारों ओर निगाह दौड़ायी।

कुछ दूरी पर, बसरा की दिशा में, पेड़ों के झुरमुट में कुछ तंबू नजर आ रहे थे। लगभग आधे मील की दूरी तै कर मैं वहां पहुंचा, तो कई बड़े-बड़े खेमे गड़े थे और उनके चारों ओर कांटेदार तारों का घेरा था। भीतर बक्सों और बोरों के ढेर लगे थे, यानी रसद के सामान। फाटक पर एक भारतीय संतरी खड़ा था।

मालूम हुआ, रसद-आपूर्ति और यातायात सैनिकों के दल का वह कैंप था। मैंने वहां के लेफ्टिनेंट कर्नल से भेंट की; लेकिन उसके पास हमारी सहायता के लिए कुछ नहीं था। उसके पास सिर्फ रसद थी, तंबू आदि नहीं। तब शायद राशन के रूप में वह कुछ अतिरिक्त खाद्य सामग्री ही हमें दे सके ......? लेकिन मुझे बताया गया कि इस तरह बांटते रहने के लिए उसके पास रसद नहीं थी। अगर हमारे सैनिकों को जरूरत की चीजें मयस्सर नहीं थीं, तो ऐसा या तो मेरी अयोग्यता से हुआ होगा या रीइन-फोर्समेंट कैंप के स्टाफ की अयोग्यता से।

उसने मुझे चेतावनी-सी देते हुए सारी बात ही खत्म कर दी—"अपने आदमियों को इधर चक्कर मत काटने देना। पूरे एशिया-भर में ब्रिटिश सैनिक सबसे बड़े चोर हैं और उनके अफसर उन्हें चोरी के लिए प्रोत्साहित करते रहते हैं।"

लेफ्टिनेंट कर्नल से झगड़ा मोल लेने से

कोई लाभ नहीं था; अतः मैं अपमान के ये कड़वे घूंट पी गया और वहां रखे फील्ड टेलिफोन पर रीइनफोर्समेंट कैंप से बात करने के लिए मैंने कर्नल की इजाजत चाही। फोन पर कैंप से संबंध जुड़ते ही जब मैंने पूछा कि क्या मैं अपने सैनिकों को कैंप वापस ले जाऊं, मुझे आदेश दिया गया कि जहां हम हैं, वहीं रहें; सुबह हम निश्चय ही वहां से आगे रवाना हो जायेंगे और साथ ही, हमें लेफ्टिनेंट कर्नल के रसद-आपूर्ति डिपो से अपना राशन लेने का अधिकार मिल गया।

वहां से रवाना होने की नौबत सुबह भी नहीं आयी, बल्कि हमें दो असहनीय दिन और दो कष्टदायक रातें वहां और गुजारनी पड़ीं; लेकिन इसी अरसे में हमें एक आश्चर्यजनक खुशी भी नसीब हुई। हमारे राशन में मीठे-नमकीन बिस्कुट, सूखी सब्जियां, चाय और चीनी, बस जी उबाने वाली ये ही रद्दी चीजें मिला करती थीं। लेकिन अगले दिन शाम से हमें काफी बड़ी मात्रा में हर तरह के टिनबंद फल भी मिलने लगे। दूसरे दिन सुबह से जाम, जेली के साथ ही टिनों में बंद दूध तक आने लगा। सिगरेटों का तो जैसे हर सैनिक के पास भंडार नजर आता था।

मुझे लगा, रसद-आपूर्ति और यातायात सैन्य-कैंप का वह लेफ्टिनेंट कर्नल ऊपर से रूखा और कठोर होने के बाद भी भीतर से दयालु है। मैंने अपने अधीनस्थ नायक से कहा कि हमें चलकर लेफ्टिनेंट कर्नल का शुक्रिया अदा कर आना चाहिये।

इस पर नायक ने कहा कि लेफ्टिनेंट कर्नल संभवतः वैसे व्यक्तियों में से है, जो अपनी उदारता किसी रूप में जाहिर होने देना नहीं चाहता, सो वह हमारे आभार-प्रदर्शन से नाराज हो सकता है।

लेकिन असलियत उस दिन दोपहर में मेरे सामने आयी, जिस दिन हम वहां से शाम को रवाना होने वाले थे। नायक बेहद उत्तेजित और हांफता हुआ-सा मेरे पास पहुंचा।

"उन्होंने उसे पकड़ लिया है, सर!"

"पकड़ लिया है—किसे?"

"चक को सर!"

मैं कुछ समझ नहीं पाया—"किसने उसे पकड़ लिया और क्यों?"

"रसद-आपूर्ति और यातायात कैंप के कर्नल ने, सर! उसका कहना है कि चक वहां से खाने-पीने की चीजें चुरा रहा था। नीचे एक वारंट अफसर कुछ लोगों के साथ हमारी नौकाओं की तलाशी लेने आया है।"

"नौकाओं की तलाशी?"

"हां, सर! यह देखने के लिए कि चुरायी हुई चीजें यहां तो छिपायी हुई नहीं हैं।"

अपने नायक के चेहरे पर एक नजर डालते ही मैं समझ गया कि तलाशी का नतीजा कितना भयंकर और अपमानजनक हो सकता था।

"कितना समय तुम्हें चाहिये?" मैंने नायक से पूछा।

"कम-से-कम आधा घंटा, सर!" उसकी आवाज में आशा की एक झलक है।



घर की याद : रोनाल्ड सर्ल

मैं तैयार होकर वारंट अफसर के साथ कर्नल के पास पहुंचा और कर्नल मुझे देखते ही बरस पड़ा—"जानते हो, तुम्हारे चोर सैनिकों ने मरीज फौजियों के लिए रखे सामानों को किस तरह लूटा है? यह देखो!"

उसने मेरे सामने एक लिस्ट रख दी। उसमें एक के बाद एक सब सामान दर्ज थे—टिनों में बंद फल, दूध, सिगरेट, जाम, जेली।

चीनी के चौकोर टुकड़ों से भरा एक बक्स उठाकर लाते हुए चक को कर्नल ने खुद पकड़ा था। उसने चीखते हुए कहा— "तुम्हारे उस सैनिक का कोर्टमार्शल होगा और अगर सिर्फ उसी का कोर्टमार्शल हुआ, तो तुम अपने आपको सौभाग्यशाली समझना। मैं खुद अभी तुम्हारी उन नौकाओं की तलाशी लेने चल रहा हूं।"

लेकिन कर्नल और उसके आदमियों को निराशा ही हुई। तलाशी में फल या दूध का कोई खाली टिन तो दूर रहा, किसी
का लेबल तक नहीं मिला। सब जगह तलाशी
ली गयी, यहां तक कि वह हिस्सा भी नहीं
छोड़ा गया, जहां मरीजों को रखा जाता है।
वैसे वह हिस्सा खाली था। सिर्फ एक
मसहरी के भीतर एक आदमी लेटा हुआ
था। उस आदमी की आंखें बंद थीं और
गहरी सांसें ले रहा था। कर्नल ने घूरकर
उसकी ओर देखा।

"हैजे का केस है सर!" नायक ने कहा।

बीमार सैनिक के मुंह से कराह निकली
और उसने अपने दोनों हाथों से अपना
दाब लिया। उसके चेहरे की रंगत
नहीं थी, जैसी हैजे के मरीज के चेहरे
होती है; लेकिन न मैं डाक्टर था, न
ही। उसने अपने आदमियों को बटोरा
धमकी देता हुआ चला गया।

चक को वहीं छोड़कर हमें रवाना होना
पड़ा। और कोई चारा भी तो नहीं था।
रास्ते में मुझे हैजे के मरीज की हकीकत
मालूम हुई। नायक ने फल और दूध के
टिन एक रस्सी से बांधकर नदी में
दिये थे और उसके सिरे पर बंधा
लकड़ी का एक छोटा-सा टुकड़ा ऊपर
रहा था, ताकि सैनिकों की नजर से
ओझल न हो जाये! हैजे के मरीज
सैनिक ने अपने साथ सब सिगरेट छिपा
थे। दरअसल, वह उन्हीं के ऊपर लेटा हुआ
था। लेफ्टिनेंट कर्नल के चले जाने के बाद
सैनिकों ने रस्सी में बंधे सारे टिन ऊपर
लिये थे। ठिकाने पर पहुंचने के कुछ

बाद चक भी वहां आ पहुंचा। जाहिर था, वह कोर्टमार्शल में छूट गया था।

"लेकिन स्वयं कर्नल ने तुम्हें रंगे हाथों पकड़ा था ?" मैंने मौका मिलते ही अकेले में सारी बात जाननी चाही। चक ने बताया कि कोर्टमार्शल में जब कर्नल से पूछा गया कि चीनी के अलावा और चीजें मेरे द्वारा चुराये जाने का कोई प्रमाण है, तो कर्नल के पास कोई प्रमाण नहीं था।

"और चीनी की चोरी का मामला ?"

"मैंने कहा कि मैं चीनी चुराऊंगा क्यों?" चक ने अपनी नाक मलते हुए कहा—"चीनी तो हमें राशन में मिलती ही है। अगर मैं कुछ चुराता ही, तो वह टिनबंद फल या दूध आदि कोई चीज होती, जो हमें राशन में नहीं मिलती है।"

"और उन्होंने तुम्हारा विश्वास कर लिया ? तुम्हें छोड़ दिया ?"

"जाहिर है !"

"लेकिन चक, तुमने चीनी का वह बक्स क्यों उठाया था ?"

"मैंने सोचा था, उस बक्स के भीतर फलों के टिन होंगे।"

"लेकिन बक्स पर तो साफ-साफ लिखा था—"चीनी के चौकोर टुकड़े।"

"लिखा होगा !" चक ने कहा—"मुझे पढ़ना कहां आता है !"

× × ×

लड़ाई फिर बड़े जोरों पर थी। तुर्की फौजों की खाइयों और हमारे बीच तीन सौ गज का फासला था।

चक ने इस बीच अपने आपको एक अचूक निशानेबाज साबित कर रखा था और सारा दिन हमारी खाइयों के पीछे, अपेक्षाकृत एक ऊंची-सी जगह के पीछे छिपकर वह चारों ओर पहरा दिया करता था। दुश्मनों की सारी गतिविधियां उसे वहां से साफ दिखाई देती थीं; लेकिन तुर्क उसे नहीं देख सकते थे।

उस वक्त जो हमारा ब्रिगेडियर था, वह जरूरत से ज्यादा चिंतित और 'सतर्क' रहने वाला अफसर था। वह बार-बार हमें सचेत किया करता, बेबुनियाद खतरे की सूचनाएं दिया करता था। एक सुबह उसका संदेशा आया कि क्या मैंने सुबह के धुंधलके में कुछ तुर्की सैनिकों को अपने घेरे के कांटेदार तारों को काटकर हमारी ओर बढ़ने के लिए रास्ता बनाते हुए देखा है ?

किसी ने भी नहीं देखा था; न कहीं तार कटे थे और न कोई तुर्की सैनिक ही हमारी ओर बढ़ने के लिए छिपे-छिपे रास्ता बना रहा था। पर ब्रिगेडियर का कहना था कि उसने खुद देखा है और हमें दुश्मनों के हमले के लिए तैयार रहना चाहिये।

लेकिन बिग्रेडियर कैसे मानता ? वह कर्नल और अपने स्टाफ कैप्टेन को लेकर खुद जांच करने आया। पहरे पर तैनात सैनिकों ने भी तुर्कों को तार काटते या रास्ता बनाते नहीं देखा था। ब्रिगेडियर को फिर भी यकीन नहीं हुआ। वह अपनी बात पर अड़ा था। तब मैंने उसे समझाने का अंतिम प्रयास किया—"खाइयों के पीछे ऊंची जगह

की आड़ में हमारा एक सैनिक आधी रात से ही पहरे पर तैनात है। अगर ऐसी कोई घटना घटी है, तो उसने जरूर देखा होगा।"

"पूछो उससे!" ब्रिगेडियर ने कहा।

"चक!" मैंने आवाज दी।

"अलो!" चक ने जवाब दिया।

"क्या तुमने सुबह के धुंधलके में तुर्क सैनिकों को तार काटकर आगे बढ़ने का रास्ता बनाते देखा है?"

"न! वे इतने बेवकूफ नहीं हो सकते।"

"लेकिन ब्रिगेडियर का कहना है कि उन्होंने खुद उन्हें ऐसा करते देखा है।"

"ब्रिगेडियर!" उसने हिकारत-भरी आवाज में वहीं से जवाब दिया—"ब्रिगेडियर को तो अपनी पलकों में भी तुर्क बैठे नजर आते हैं।"

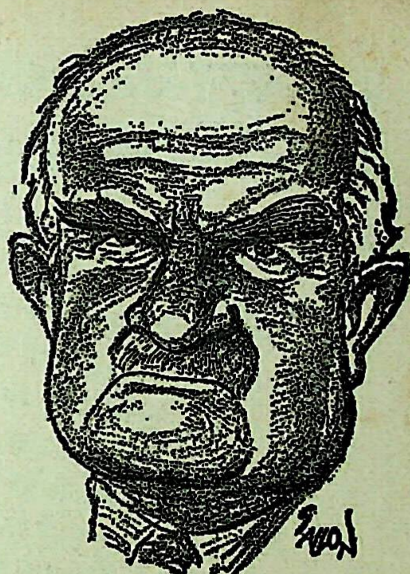
खामोशी के साथ ब्रिगेडियर अपने दल के साथ वापस हो गया।

× × ×

तुरंत ही हमने फिर कुट पर अधिकार कर लिया था। फिर बगदाद पर भी हमारा कब्जा हो गया और जब हम शहर के भीतर पहुंचे, तो एक बार हमें वहां की गलियां, मकान, सब काल्पनिक-से लगे। हम एक-एक चीज को आश्चर्य से निहार रहे थे।

उसी शाम में घूमता हुआ कुछ दूर जा निकला। चारों ओर से झुंड के झुंड अरबों ने निकलकर मुझे घेर लिया। उन्होंने बड़े प्रेम से मेरी पीठ थपथपायी और संकेतों से बस्ती के भीतर चलने को कहा।

मेरा सीना फूल उठा। इस तरह की घट-



स्लिम : नाट सो स्लिम
'डेली मिरर' में सेलोन की व्यंग्याकृति

नाएं मैं पढ़ता रहा था; पर कभी मेरे साथ भी घटेगी, यह सोचा तक न था। गुलामी के बंधन से मुक्त जनता के बीच में विजेता हीरो बना हुआ था। मैं बड़े आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ा।

अचानक मुझे लगा कि बहुत-से आदमी चिल्लाकर मुझसे एक ही बात कह रहे थे, सबका संकेत एक ही दिशा में था। उनकी उत्तेजना बढ़ती जा रही थी और मेरे गिर्द उनका घेरा भी सघन होता जा रहा था। मुझे अचानक बेचैनी-सी होने लगी और लगने लगा, जैसे मैं विजेता हीरो न होकर जबरन पकड़ा गया कैदी होऊं।

मैली-कुचैली कमीज पहने एक छोटा लड़का भीड़ में मेरे पास आ गया। "गुड नाइट टामी!" उसने अमरीकी लहजे में कहा।

"गुड नाइट—मेरा मतलब है गुड ईवनिंग! तुम अंग्रेजी बोल लेते हो?"

उसने सिर हिलाया—"हां।"

"अच्छा, तो मुझे बताओ, ये सब लोग क्या कह रहे हैं?"

"ये कह रहे हैं—तुर्क।"

"तुर्क? कहां?"

"यहीं पर!"

"कितने तुर्क?"

उसने अपने कंधे उचकाये—"यही कोई बीस-तीस! तुम उनसे लड़ोगे न?"

"सुनो!" मैंने भीड़ को समझाना चाहा—"ठहरो!" लेकिन कोई लाभ नहीं था। अचानक भीड़ मेरे चारों ओर से छंटने लगी और अगले क्षण ही मैं एक गली के किनारे पर बिलकुल अकेला खड़ा था। मेरे चारों ओर की जगह खाली थी—सिर्फ ठीक सामने की काफी की दुकान में मुझे हलचल-सी नजर आयी। फिर मुझे लोहे के टोप और लगभग एक दर्जन राइफलों की झलक भी मिल गयी।

मैं जल्दी से एक सुनसान पड़े मकान के दरवाजे की आड़ में हो गया। पसीने से मैं पूरी तरह लथपथ हो उठा था। विजेता हीरो की भावना बिलकुल ही काफूर हो चुकी थी और मैं किसी तरह भागकर अपने कैंप पहुंच जाना चाहता था; लेकिन मैं जानता था कि अरब, जो अगल-बगल के



दर्द के स्पर्श से दूर : बनशान

दरवाजों में छिपकर देख रहे थे, मुझे जाने नहीं देंगे।

मैं प्राणों की बाजी लगाकर वहां से भाग निकलने की सोच ही रहा था कि वहां छायी निस्तब्धता को भंग कर एक आवाज गूंज उठी, जैसे कोई धातु की चीज जमीन से रगड़ खाती हुई बढ़ रही हो। निश्चय ही कोई व्यक्ति यहां की स्थिति से बेखबर अपनी गाड़ी हांकता चला आ रहा था।

थोड़ी देर बाद ही मेरी दाहिनी ओर के रास्ते से खच्चरों की एक जोड़ी निकली और उसके पीछे भारतीय सेना की दो पहियों वाली चिर-परिचित यातायात-गाड़ी थी। कोचवान की सीट पर कंधे से राइफल लटकाये लापरवाही से एक ब्रिटिश सैनिक बैठा हुआ था।

"वापस जाओ!" मैं थोड़ा-सा बाहर की ओर झांककर चिल्लाया।

उस सैनिक ने अपनी गाड़ी रोक ली और

गर्दन घुमाकर मेरी ओर देखा। वह चक था।
"वापस जाओ बेवकूफ!" मैं फिर चिल्लाया।

"क्यों?" उसने भी चिल्लाकर पूछा।

"तुर्क!" चीखते हुए मैंने उंगली से उस ओर संकेत किया।

चक ने उस ओर मुड़कर देखा। फिर वह उस गाड़ी में खड़ा हो गया और अपना एक हाथ ऊपर उठाकर चिल्लाया—"ऐ, चलो बाहर आओ सब। जल्दी करो!"

काफी की दुकान के सामने एक मटमैला सफेद झंडा दिखाई पड़ा और एक घनी दाढ़ी वाला व्यक्ति गंदी खाकी पोशाक में, दोनों हाथ अपने सिर पर रखे वहां से बाहर निकला। उसके बाद दूसरा, फिर तीसरा और एक-एक करके सब निकलने लगे।

मैं चक के पास जा पहुंचा। कुल दस तुर्क थे। चक गाड़ी से उतरकर उनके पास जा पहुंचा और एक-एक कर उसने सबकी राइफलें उतार ली।

"हे भगवान!" मैंने राहत की सांस लेते हुए कहा—"चक, तुमने बड़ा भारी खतरा मोल लिया था!"

"खतरा! इनके साथ?" उसने उन कैदियों पर हिकारत-भरी नजर डाली—"ये तो बस इस बात का इंतजार ही कर रहे थे कि जो पहला गोरा आदमी मिले, उसके सामने आत्मसमर्पण कर दें। ये अरब इनके खून के प्यासे हो रहे थे!"

× × ×

बगदाद पर अधिकार होने से ही लड़ाई बंद नहीं हो गयी। कुछ ही दिनों में हमें फिर आगे बढ़ना पड़ा—उत्तर की ओर।

हम बढ़ते-बढ़ते दुश्मनों की पंक्ति के करीब होते जा रहे थे। गोलियों की आवाज और गोलों की धमक तेज होती जा रही थी। कुल सौ गज का फासला रह गया था कि एकाएक गोलाबारी रुक गयी। धूल का एक जोरदार बवंडर उठा और हमारे सैनिकों को समेट लिया। अचानक उठी इस जोरदार आंधी से बचने के लिए सबने अपने सिर झुका लिये; लेकिन आंधी के प्रचंड वेग ने बहुत-से सैनिकों को धराशायी कर दिया—कुछ खड़े हो गये, कुछ वापस मुड़ चले।

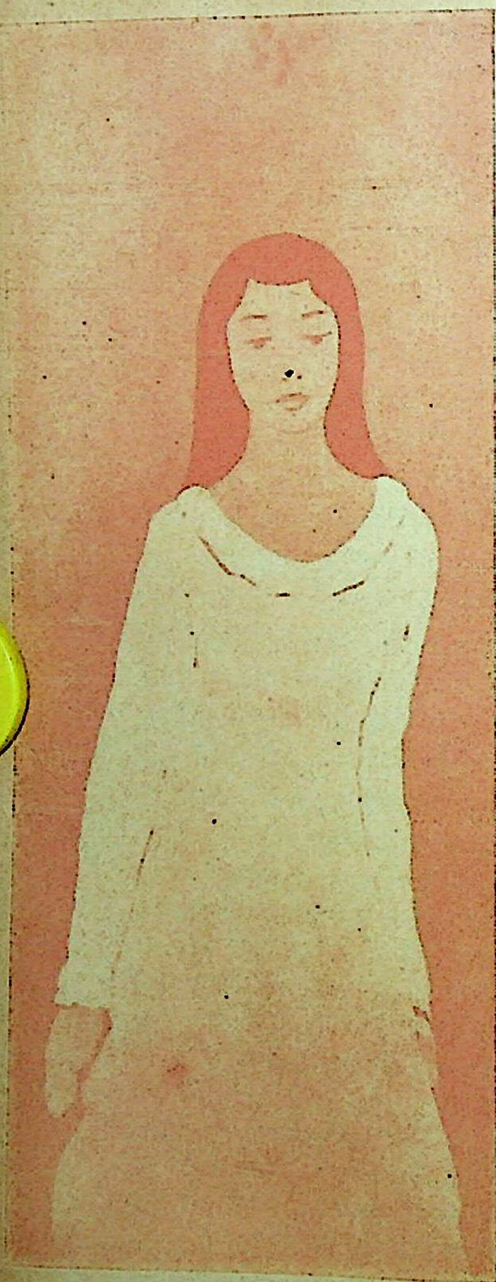
एक मिनट में ही सारी सेना-पंक्ति तितर-बितर हो जाने वाली थी। सैनिकों का मनोबल एकबारगी टूट गया था। जीतकर हम हार जाने वाले थे। मैं चिल्लाता हुआ दौड़ा—"आगे बढ़ो!" लेकिन मेरा चिल्लाना बेकार रहा। और तभी नगाड़े की गूंज-सी एक आवाज उभरी—"बहादुरो! अपना सिर ऊपर उठाओ और बढ़ चलो! दिखा दो दुश्मनों को अपना जौहर!"

वह आवाज चक की थी। पास के लोगों ने उसकी आवाज सुनी और उनके झुके सिर अपने आप तन गये। कदम स्वतः आगे की ओर चल पड़े और देखते-ही-देखते सारी सैन्य-पंक्ति दुश्मनों के हौसले पस्त करने के लिए आगे की ओर दौड़ पड़ी।

× × ×

ऐसा था वह लाइलाज आवारा रिचर्ड चक! क्या अब भी आप ताज्जुब करेंगे कि मैंने केन्सिंग्टन स्क्वायर में पुलिस को चक का हुलिया क्यों नहीं बताया?





कानशान वि[illegible]
की मालकि[illegible]

प्रेम, प्रतिस्पर्धा, प्रतिहिंसा औ[illegible] प्रतिशोध की एक प्रदीर्घ चौ[illegible] कथा, जिस पर सफल फिल्म [illegible] चुकी है। लेखक वांग क्वांग-[illegible] ताइवान के प्रसिद्ध पत्रकार औ[illegible] उपन्यास लेखक हैं।

हिन्दी रूपांतर : चंद्रशेखर [illegible]

हम दोनों समुद्र-किनारे मछलीघर की ओर आराम से टहल रहे थे। कुछ दूरी पर माल ढोने वाले जहाज का भोंपू बज रहा था। बज क्या रहा था, बस खांस रहा था। शहर की बाहरी सीमा से कभी-कभी गोली चलने की दबी-दबी आवाज सुनाई दे जाती थी। चुंगशन पार्क के बाहर सैनिकों की एक टुकड़ी खाई खोद रही थी। फौजी ट्रकों की एक पंक्ति धूल उड़ाती हुई बड़ी तेजी से ईस्ट टाउन से आ रही थी। इस पावन सागर-तट पर होते हुए भी हम यह न भूल सके कि युद्ध सिंगताओ के फाटक तक पहुंच चुका है।

मेरे साथ का व्यक्ति एक संवाददाता था, जिसे सिंगताओ के एक पत्र ने विनोद में 'लाओ सिआओ सी' (सर्वज्ञ) की उपाधि दी थी। उसके चेहरे पर परेशानी का कोई निशान न था। वह मौज में था और मुझसे पर्वत तथा खाड़ी देखने का आग्रह कुछ इस प्रकार कर रहा था, जैसे वह उसी की संपत्ति हो। उसने शारीरिक और मानसिक थकावट की जैसी अवहेलना कर रखी थी, वैसी अवहेलना मैं नहीं कर सका था; क्योंकि युद्ध-क्षेत्र से शहर की ओर लौटने का मेरा अभिप्राय केवल विश्राम था।

उसने मुझे संकेत करते हुए कहा कि सूर्यास्त का दृश्य देखने का अवसर मुझे नहीं खोना चाहिये। दस-बारह वर्षों से वह यह दृश्य देखता आ रहा था, फिर भी उसका मन नहीं भरा। उसके इस उत्साह से भी मेरे मन की उदासी न गयी और मैंने उसकी ओर देखकर केवल थोड़ा-सा मुस्करा दिया। मेरे मन में तो रह-रहकर एक ही प्रश्न चक्कर काट रहा था कि शत्रुओं द्वारा सिंगताओ शहर पूरी तरह घिर जाने के पहले ही मैं किसी तरह यहां से निकल जाऊं? सहसा मुझे कुहनी मारते हुए वह बोला—"अरे देखो, उधर देखो। जहां की प्राकृतिक छटा इतनी दैवी हो, केवल वहीं ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं।"

मैंने देखा, एक महिला मछलीघर की तरफ से हमारी ही ओर आ रही है। उसकी पोशाक हलकी ऊनी थी, जो हवा में उड़ रही थी और जिससे उसका लंबा-सुडौल शरीर स्पष्ट झलक जाता था। चश्मे के बड़े-बड़े शीशों से उसका गौर वर्ण कुछ अधिक पीला दीख पड़ता था। दो पतले कोमल चरण हमारी ओर बढ़े आ रहे थे। हवा के झोंकों में उसके बाल उड़ रहे थे, जो प्रचलित स्टाइल से कुछ छोटे कटे थे। 'शिह-जे काऊ' (लायन डाग) जाति के दो छोटे पिल्ले उसके पीछे-पीछे चल रहे थे।

दूसरे ही क्षण हम आमने-सामने थे। उसने 'लाओ सिआओ सी' का मौन अभिवादन किया और आगे बढ़ गयी। उस मंद प्रकाश में भी मैंने देख लिया कि कपोलों पर लटकता हुआ उसके बालों का गुच्छा सफेद है। औरतों को अधेड़ बनाने वाली आंखों के चारों ओर की अभिशाप-स्वरूप लकीरें भी स्पष्ट दिखाई दे गयीं। मगर फिर भी लगा, उसके सौंदर्य का आकर्षण अभी समाप्त नहीं हुआ था।

"तुम इसे जानते हो ?" मैंने पूछा ।

"हां, जानता हूं । एक प्रकार से यही इस खाड़ी की मालकिन है । गजब की औरत है ।"

मैंने पीछे घूमकर फिर उसे देखा । अब पिल्ले उसके आगे दौड़ रहे थे । "क्लियर माउंटेन टेम्पुल के पास ही एक मनोरम निवास में यह रहती है। प्रतिदिन इसी समय घूमने के लिए यह समुद्र के किनारे आती है। इसे इसी तरह नियमित रहते हुए मैं दस वर्षों से भी अधिक समय से देख रहा हूं । यह अपने घर को 'कानशान विला' (स्वच्छ पर्वत) कहती है और अपने को उसकी मालकिन । लेकिन हम पत्रकारों ने इसका दूसरा नाम रखा है—सागर-तट की सुंदरी।"

"लेकिन जब हर आदमी शहर से बाहर निकलने की फिक्र में है, तब यह इतनी निश्चित क्यों दीखती है ?"

"इसीलिए तो यह औरत महान है। इसकी कहानी सुनाने के लिए मैं तुम्हारा कुछ समय लूंगा ।"

और मेरे मित्र ने कहानी शुरू की—लगभग २७-२८ वर्ष पहले सिनान के तरुण पत्रकार कहा करते थे कि वास्तविक जीवन जीना हो, तो पैहुअत्सन रेस्टरां में खाइये, तेंमिंग झील में नौका-विहार कीजिये और रंगमंच पर जब लिन पाओ-जू हो, तो उसके सामने बैठकर उसका अभिनय देखिये । लिन पाओ-जू उस समय की सर्वाधिक प्रसिद्ध अभिनेत्री थी, जिसके बल पर कोई भी थियेटर-मैनेजर पैसों से अपना घर भर सकता था।

जैसे एक प्रसिद्ध अभिनेत्री को हि सामाजिक स्तर के लोग घेरे रहते हैं, पाओ-जू की भी ठीक यही हालत थी। ऐसे सभी लोगों से परिचित थी, जिन्हें अभिनेत्री को जानना चाहिये। तथा उपहारों में वह इस प्रकार करती थी, जैसे वह किसी बैंक की मा हो । संक्षेप में कहें, तो वह सिनान की धिक व्यस्त महिला थी । इन्हीं सब से वह प्रत्येक दर्शक की स्वप्नसुंदरी थी । यद्यपि उसका कंठ मधुर था, कि ऐसे नाटकों में प्रायः भाग नहीं लेती जिनमें गाने अधिक होते थे । उसे तो नाटकों में काम करना पसंद था, जिन अपने सौंदर्य तथा सुडौल अंगों के प्रद अवसर पा सके । आलोचक कुछ भी रहें, किंतु उसके हजारों प्रशंसक अभिनय देखने बराबर जाते थे।

जैसा कि प्रायः सभी अभिनेत्रियों साथ होता है, लिन पाओ-जू के साथ वही हुआ । जब उसकी ख्याति शिखर थी, वह प्रेम-पाश में फंस गयी । अधिकार-रहित प्रेम की कल्पना भी अभिनेत्री के लिए कठिन है । अनेक उसके पीछे दीवाने थे, लेकिन उन सबमें चेंग तुंग-हे सबसे अधिक भाग्यशाली वह एक फौजी क्वार्टरमास्टर था और रथी जनरल चांग सुंग-चंग के अधीन अफवाह ऐसी थी कि क्वार्टरमास्टर ने जितना धन पाओ-जू पर खर्च किया

उतने धन से युद्ध के लिए पूरी तरह से तैयार तीन रेजिमेंटें रखी जा सकती थीं। जिस नाटक में पाओ-जू काम करती थी, उसके सारे टिकट चेंग खरीद लेता था। इतना ही नहीं, लिन के व्यक्तिगत जीवन पर भी वही छाया रहता था। शायद ही कोई ऐसा दिन जाता होगा, जबकि चेंग ने पाओ-जू को भोज की दावत न दी हो, या उसे कोई स्वर्णाभूषण उपहार में न दिया हो, अथवा नवीनतम फैशन का कोई गाउन भेंट न किया हो।

आज के मितव्ययी युवक सोच सकते हैं कि एक औरत का प्यार पाने के लिए इतना खर्च मूर्खता है, किंतु समाज में ऐसे युवक भी मिलेंगे, जो चेंग की इस दिलेरी की स्पर्धा-पूर्वक प्रशंसा करेंगे। सभी को यह विश्वास हो गया था कि चेंग द्वारा पैसे की इस चौतरफी मार के सामने पाओ-जू को आत्म-समर्पण करना ही पड़ेगा। धूम-धड़ाका छापनेवाले छोटे-मोटे कई पत्रों ने तो चेंग और पाओ-जू से संबंधित अनेक मनगढ़ंत प्रेम-प्रसंग प्रकाशित भी कर दिये थे। किंतु पाओ-जू के हृदय पर तो किसी दूसरे का अधिकार था। वह जिसे चाहती थी, उस व्यक्ति का नाम था ह्वेंग सिआओ-चुआन। आयु में चेंग से वह काफी छोटा था और मार्शल चेंग सो-लिन के एक फील्ड-कमांडर चू यु-पु के अधीन सिनान में संपर्क-अधिकारी था। युवक ह्वेंग एक न्यूज-एजेंसी का प्रमुख भी था। इसकी लेखनी से ऐसे मनोहर गीत और लघु प्रेम-कहानियां द्रुत गति से निकलती रहती थीं, जिससे वह एक होनहार तरुण साहित्यकार समझा जाने[illegible] था। सच वात तो यह है, कि पाओ-[illegible] इतनी ख्याति वहुत कुछ उन समाचार[illegible] के लेखों पर निर्भर थी, जिन्हें ह्वें[illegible] लिखा था।

लिन पाओ-जू की नजर में ह्वेंग [illegible] प्रतिभाशाली तथा सरस-हृदय लेखक [illegible] उसे प्रभावशाली व्यक्तियों का सहयोग [illegible] प्राप्त था। ह्वेंग ही वह व्यक्ति था, जि[illegible] पाओ-जू को प्रसिद्धि के शिखर पर पहुंचा[illegible] था। स्वभावतया पाओ-जू उसकी [illegible] थी और मानती थी कि उसे यथार्थ [illegible] ह्वेंग ही समझ सका है। और निःसंदेह [illegible] भी एक सज्जन व्यक्ति था और पाओ-[illegible] प्यार का समुचित अधिकारी भी। पाओ-[illegible] ने एक बुद्धिमत्ता का मार्ग निकाला। [illegible] निश्चय किया कि चेंग से वह धन सं[illegible] करती रहेगी और अपना प्रेम ह्वेंग [illegible] प्रदान करेगी।

चेंग मूर्ख नहीं था। ह्वेंग के साथ पा[illegible] जू की प्रेम-लीला उसने जान ली। [illegible] वह काफी सनकी था। उसे विश्वास था [illegible] यदि किसी अभिनेत्री के सामने आप धन[illegible] ढेर लगाते जाइये, तो आगे चलकर आ[illegible] जीत निश्चित है। किंतु पाओ-जू को प[illegible] में चेंग धोखा खा गया। वह औरत [illegible] प्रकार के चरित्रों का अभिनय रंगमंच [illegible] करती थी, वैसी ही दृढ़-संकल्प और स्वा[illegible] मानिनी थी। ऐसा भी समय आया, जब [illegible] उसने चेंग का पैसा अस्वीकार करना आ[illegible] कर दिया, यहां तक कि वह उससे बिल्कु[illegible]

मिलने के तरह-तरह के बहाने बनाने लगी।

कुछ दिनों तक तो चेंग और ह्वेंग की स्पर्धा की कानाफूसी ही होती रही, किंतु शीघ्र ही वह बम की तरह फट पड़ी। एक रात पहले से सिखाये-पढ़ाये ऐसे लोगों की भीड़ नाटक में आयी, जो लिन पाओ-जू के अभिनय के बीच में रह-रहकर शोर करते थे और उसके अभिनय की निंदा करते थे। लगातार तीन-चार रातों तक यही उपद्रव जोरों से होता रहा। पत्रों में अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण प्रकाशित होने लगे। दावानल की तरह यह खबर चारों तरफ फैलने लगी और अटकलबाजियां शुरू हुईं। सबको संदेह था कि चेंग के सिवा और किसी का हाथ इसमें नहीं हो सकता। किंतु मामले की तह तक पहुंचे हुए संवाददाता इसे अस्वीकार करते थे। उनका कहना था कि चेंग ऐसी कोई समस्या खड़ी नहीं कर सकता, जिसमें उसे पाओ-जू को छोड़ना पड़े। अपने हृदय में अब भी वह इस आशा को संजोये हुए था कि एक-न-एक दिन पाओ-जू उसके पास वापस आयेगी।

एक रात को जब ह्वेंग थियेटर से अपने घर लौट रहा था, तब अंधकार में किसी छिपे व्यक्ति ने उस पर दो गोलियां चलायीं। ह्वेंग तो बच गया, किंतु उसका ड्राइवर मारा गया। सभी को चेंग पर संदेह हुआ। चेंग की स्थिति बड़ी नाजुक थी, किंतु एक फौजी अफसर होने के कारण उसमें स्वाभिमान अधिक था। जनता उसके पक्ष में नहीं है, केवल इसीलिए वह पाओ-जू को छोड़ने को तैयार नहीं था। गोली वाली घटना के तीसरे दिन सिनान के सर्वोत्तम होटल पैहुअत्सन रेस्टरां में उसने एक प्रीतिभोज का आयोजन किया, जिसका सम्मान्य अतिथि उसने ह्वेंग को बनाया। दोनों के सभी परिचित



चित्रकार : तोयोकुनी

मित्र भी आमंत्रित किये गये थे।

भोजन के बाद चेंग ने खड़े होकर कहा–"पाओ-जू को लेकर ह्वेंग के साथ होनेवाली अपनी प्रतिद्वंद्विता को मैं स्पष्ट स्वीकार करता हूं, किंतु मैं इतना नीच नहीं हूं कि छिपकर ह्वेंग पर वार करूं। मुझ पर ऐसा दोषारोपण करनेवाले ईर्ष्याविश झूठ बोल रहे हैं और वे हमारे राजनीतिक शत्रुओं द्वारा भड़काये गये हैं। यह मत भूलिये कि हम दोनों उत्तर चीन के सैनिक हैं और मान-मर्यादा के नियमों का पालन करना जानते हैं। मैं आप सबके समक्ष सौगंध खाता हूं कि एक औरत के लिए मैं किसी पुरुष की हत्या नहीं करूंगा। अपने मित्र ह्वेंग के सामने मैं एक प्रस्ताव रखता हूं, जिससे यह मामला हमेशा के लिए तय हो जाये। प्रस्ताव यह है कि हम दोनों यहीं और अभी जुआ खेलें; जो जीतेगा, पाओ-जू उसी की होगी और दूसरे व्यक्ति को सज्जनतापूर्वक अपने आप हट जाना होगा। मैं मानता हूं कि यह ढंग कुछ विचित्र है, किंतु दुःखदायी स्थिति को समाप्त करने के लिए कभी-कभी ऐसे विचित्र उपायों की जरूरत पड़ जाती है। हमारे भाग्य-निर्णय के अलावा हमारे प्रेस के मित्रों को एक अच्छी कहानी भी मिल जायेगी।"

इतना कहकर चेंग ने हंसना चाहा, पर उसे खांसी आ गयी। प्रस्ताव सुनकर सभी प्रसन्न हो गये। ह्वेंग मजबूर था। चुपचाप बैठे हुए अपने शत्रु पर हंसने के सिवा और कोई चारा न था। उसने यही भाव दर्शाया कि वह चेंग की दया पर निर्भर है।

मित्रों से घिरे हुए दोनों प्रतिद्वंद्वी [illegible] जोंग नामक जुआ खेलने के लिए आमने-सामने बैठे। आधी रात तक कोई [illegible] आगे न बढ़ सका। सहसा चेंग [illegible] बोला–"छोड़ो इसे, आओ पाइ-चिऊ खेलें। इस खेल में ३२ गोटें होती हैं, जिनकी [illegible] दिशाओं में अंक छपे होते हैं, और एक [illegible] में ४-४ गोटें प्रत्येक खिलाड़ी को दी जाती हैं। इधर-उधर जो लोग महजोंग खेल रहे थे, वे भी पाइ-चिऊ की मेज पर इन दोनों का खेल देखने को आ झुके। चेंग और ह्वेंग बारी-बारी से बैंकर बनते रहे। कई घंटे तक खेलने के बाद भी कोई पूरी हार के [illegible] दीक नहीं पहुंचा। फिर धीरे-धीरे चेंग हारने लगा। पसीने की बूंदें उसके माथे पर झलकने लगीं। उसने मांग की कि खेल की गति [illegible] के लिए केवल दो गोटें ही एक बार में दी जायें। ह्वेंग ने इसे मंजूर कर लिया। ह्वेंग की दृढ़ता के सामने चेंग परास्त होता जा रहा था। उसकी व्यग्रता मुख पर स्पष्ट दिखाई देती थी। दर्शकों में से किसी ने सुझाव रखा कि उन्हें दांव में कुछ रकम निश्चित करनी चाहिये। दूसरा बोल पड़ा–"क्यों न दस हजार डालर का दांव लगाया जाये?

"दस हजार डालर!" एक उत्तेजनात्मक और लालचभरी मुस्कान चेंग के चेहरे पर दौड़ गयी। वह बोला–"दस हजार [illegible] मेरे और ह्वेंग दोनों के लिए ऊंट के मुंह में जीरा के समान होगा। एक लाख डालर की बाजी ठीक रहेगी।"

किसी ने कहा–"अच्छी बात है, [illegible]

लाख ही सही।" इस पर सबने जोर का कहकहा लगाया। ह्वेंग पर प्रतिद्वंद्विता की दृष्टि डालते हुए चेंग ने कहा—"ह्वेंग! शायद तुम सोच रहे हो कि एक लाख बहुत कम है। अच्छा, दो लाख डालर की बाजी रखें तो कैसा रहे?"

कमरे में सन्नाटा छा गया। सब समझ गये कि इस दांव के पीछे रहस्य क्या है। चेंग केवल पैसे के बोझ से ह्वेंग को कुचल देना चाहता था। ह्वेंग के मुंह पर अब भी शांत-गंभीर मुस्कराहट थी। उसने धीरे-से कहा—"अच्छी बात है। जैसा तुम कहते हो, वही सही।"

खेल फिर शुरू हुआ। दो गोटों वाले पाइ-चिऊ पर दोनों के भाग्य का निर्णय शीघ्रता से होने लगा। किंतु जैसे ही कोई एक पराजय के एकदम निकट पहुंचनेवाला होता कि पासा उसका साथ दे जाता और बाजी बिलकुल पलट जाती। खेल में गर्मी आती गयी। एक सुशिक्षित व्यक्ति के अनुरूप मर्यादा को थामे रहना ह्वेंग को कठिन लगने लगा और चेंग तो खुलकर सबके सामने अपनी अश्लीलता, लालच तथा क्रोध का प्रदर्शन करने लगा।

भोर होने को आया। देखनेवाले थककर जंभाइयां लेने लगे। वे दोनों खेल रहे थे। सहसा चेंग का पलड़ा भारी पड़ने लगा। कुछ ही दांवों में उसने १ लाख ९० हजार डालर जीत लिये। बाद में ५ हजार डालर और झपट लिये। ह्वेंग चारों खाने चित्त होने ही वाला था कि पाओ-जू ने कमरे में प्रवेश किया। उसे देखते ही चेंग उत्तेजित हो उठा। विजय के कारण माथे पर आये हुए पसीने को पोंछकर उसने पूरे १ लाख ९५ हजार डालर आगे खिसका दिये और बोला—"ह्वेंग, यह सारी रकम और साथ में पाओ-जू दांव पर लगाता हूं। बस अंतिम बाजी फेंक दो। क्यों ठीक है न?"

निराशा-भरे स्वर में ह्वेंग ने कहा—"ठीक है!" एक हाथ की मुट्ठी में उसने दो गोटें लीं और दूसरे हाथ से वह उनके अंक जानने की कोशिश करने लगा। उसके चेहरे पर हजारों प्रकार के भाव प्रकट तथा लुप्त हो रहे थे। अंत में निराश मुद्रा के साथ उसने गोटों को मेज पर पलट दिया। विजय-सूचक अंक १ दिखाई पड़ा। एक क्षण के लिए तो ऐसा लगा, मानो सारा कमरा बरफ की तरह जम गया है, या यह कोई चित्र है, किंतु दूसरे ही क्षण तालियों की गड़गड़ाहट से कमरा गूंज उठा। आंसू-भरी आंखें लिये पाओ-जू ह्वेंग की बांहों में झूल गयी। और चेंग? वह इस युगल प्रेमी की ओर से हटकर धीरे-धीरे द्वार की ओर बढ़ा।

दूसरे दिन प्रतिज्ञा के अनुसार चेंग सिनान छोड़कर चला गया। जाने से पहले उसने ७० हजार डालर नगद एक पत्र के साथ ह्वेंग के पास भेजा। पत्र में उसने लिखा था—"मुझे अफसोस है कि मैं तुम्हारी पूरी रकम नहीं चुका सकता। मैं धन-मान सब कुछ खो चुका हूं, इसलिए सिनान छोड़कर जा रहा हूं और फिर से जीवन आरंभ करूंगा। मैं तुम दोनों की प्रसन्नता और सद्भाग्य की कामना करता



चित्रकार : तोयोकुनी

के लिए जीवन-साथी [illegible] जायेंगे। छोटे-बड़े सभी [illegible] ने इस घटना को आधुनि[illegible] शौर्यकथा के रूप में प्रकाशि[illegible] किया। शंघाई के एक सम[illegible] चार-पत्र ने तो इस कहा[illegible] के लिए एक अतिरिक्त विशे[illegible] षांक छापने का उत्सा[illegible] दिखाया। कई पत्रिकाओं [illegible] मुखपृष्ठ पर नाटक वा[illegible] वेशभूषा में पाओ-जू का चि[illegible] प्रकाशित हुआ।

ठीक उसी समय जनरल [illegible] की टुकड़ियां शंतुंग में आ [illegible] और सैनिक कार्रवाई [illegible] संचालन करने के लिए जन-रल चू स्वयं सिनान आया। ह्वंग को चू ने अपना छोटा भाई मान रखा था। [illegible] स्वाभाविक था कि जनरल [illegible] के सिनान आने पर ह्वं[illegible] हमेशा उसकी सेवा में रहता और सिनान के सभी दर्शनीय स्थानों की [illegible] सैर कराता। ह्वंग ने उसके सम्मान में क[illegible] पार्टियां दीं और पाओ-जू का अभिनय दिखाने के लिए उसे थियेटर भी ले गया। उस रात पाओ-जू 'रेनबो फोर्ट्रेस' नाटक की विधवा मैडम तुंगफंग के रूप में रंगमंच पर आयी। श्वेत परिधान में उसका सौंद[illegible] देखते ही बनता था। उस रात उसने अभि-नय भी ऐसा किया, जैसा पहले कभी नहीं [illegible]

हूं। मेरी शुभ-कामनाएं स्वीकार करो।"

विजयी होकर भी ह्वंग बहुत अधिक प्रसन्न नहीं था। वह सोचता था कि उसने चेंग को सिनान छोड़ने पर मजबूर किया और इस प्रकार जीवन-भर के लिए उसने उसको अपना शत्रु बना लिया। दूसरी ओर पाओ-जू बहुत अधिक प्रसन्न थी। मित्रों को दावतों पर दावतें दी जाने लगीं। हर कोई यही कहता था कि अब ह्वंग और अभिनेत्री सदा

किया था। इसका कारण यह था कि वह प्रेमी के अफसर को प्रसन्न कर देना चाहती थी। उसके आलोचकों तक को आनंद आया। जनरल चू तो आनंद के मारे जोर से चिल्ला उठता था। नाटक समाप्त होते ही अपने अंग-रक्षकों के साथ वह रंगमंच के पीछे गया और पाओ-जू को उसने बधाई दी।

कुत्सा छापने के शौकीन पत्रों के एक संपादक ने चू के क्रिया-कलाप को पैनी दृष्टि से देखा और दूसरे ही दिन उसने अपने पत्र में छापा—"क्या ह्वैंग का भाग्य-सितारा डूबने वाला है?"

दूसरी रात को जनरल चू बिलकुल ठीक समय पर अपने आप थियेटर में पहुंच गया। किंतु उस रात उसे कुछ भी आनंद नहीं आया, क्योंकि खेल कोई दूसरा था। तीसरी रात को चू के एक अफसर ने थियेटर-मैनेजर से 'रेनबो फोर्ट्रेस' खेल करने का आग्रह किया। चौथी रात फिर वही खेल कराया गया। चू के हेडक्वार्टर में यह चर्चा होने लगी कि पाओ-जू द्वारा अभिनीत 'रेनबो फोर्ट्रेस' के श्वेत परिधान वाले विधवा पात्र ने चू का मन मोह लिया है।

पांचवीं रात को चू ने अपने निवास-स्थान पर एक पार्टी दी, जिसका मुख्य कार्यक्रम था वही 'रेनबो फोर्ट्रेस' नाटक। पाओ-जू को आज्ञा दी गयी थी कि नाटक के बाद भोजन में वह उसी रंगमंच वाले श्वेत परिधान में आये।

जनरल चू ने अफसरी रोब के साथ पाओ-जू का हाथ अपने हाथ में मजबूती से थामे अपने सभी मेहमानों से उसे मिलाया। बीच-बीच में वह दिल खोलकर इतने जोर से हंसता था कि बाहर खड़े पहरेदार भी सुन रहे थे। स्वाभिमानिनी पाओ-जू को यह बहुत बुरा लग रहा था, किंतु किसी प्रकार वह अपने भावों को दबाये हुए थी। पास ही खड़ा था ह्वैंग, मगर वह बिलकुल विवश था। पाओ-जू की ओर देखने में भी उसे डर लग रहा था।

कुछ दिनों बाद एक विश्वस्त सूत्र से यह पता चला कि जनरल चू पाओ-जू को अपनी रखैल बनाना चाहता है। सिनान के समाचार-पत्रों में जब यह खबर मुख्य शीर्षक के रूप में आयी, तो सभी चौंक पड़े; क्योंकि केवल समाचार पढ़ने वाले भी ह्वैंग और पाओ-जू के प्रेम से परिचित थे। बाद में लोगों ने चौंका देने वाली दूसरी खबर भी सुनी कि ह्वैंग जनरल चू का प्रधान अंग-रक्षक बना दिया गया है। इस बात से कुछ जबानें चलीं, कुछ सिर हिले। लोगों के मन में प्रश्न उठा, सहसा यह तरक्की क्यों?

पीने वाले परस्पर चर्चा कर रहे थे। एक ने कहा—"भई, हमने सुना है कि जनरल चू के कुछ प्रमुख सलाहकार इस संबंध में बात करने उसके पास गये थे।" दूसरे ने फौरन पूछा—"तो क्या कहा उन लोगों ने?" पहला बोला—"जल्दी बात छेड़ने की उनकी हिम्मत नहीं होती थी। कुछ झिझके, कुछ हिचके। अंत में उन्होंने अपना मतंव्य प्रकट किया कि ह्वैंग को चू अपना छोटा भाई मानता है, इसलिए उससे उसकी प्रेमिका छीनना ठीक

नहीं, और परंपरा भी यही कहती है कि अपने अधीन छोटे अफसर के हर मामले में सहायता करना बड़े अफसर का कर्तव्य है।"

तीसरे ने पूछा—"इस पर चू ने क्या जवाब दिया ?" उत्तर मिला—"इसमें शक नहीं कि चू पाओ-जू पर पूरी तरह से लट्टू है, पर वह बुद्धू नहीं है। उसने फौरन जवाब दिया कि महाशय, आप लोग बात का बतंगड़ बना रहे हैं। दोस्ती के बीच में औरत को नहीं लाना चाहिये। पाओ-जू के साथ मेरा संबंध और ह्वैंग के साथ मित्रता, ये दोनों बिलकुल अलग बातें हैं, इनका एक-दूसरे से कोई संबंध नहीं। यह नया जमाना है, जिसमें सबको प्यार करने की आजादी है। क्या आप इस बूढ़े चू को इस लड़की से प्यार करने से रोकेंगे ?"

इस पर सब ठहाका मारकर हंसे। एक बोला—"भई वाह, बड़ा होशियार है जनरल चू। तो इस पर उसके सलाहकार चुप हो गये ?" कहनेवाले ने कहा—"जी नहीं, उन्होंने फिर कोशिश की और हर तरह से समझाया। किंतु वह टस से मस न हुआ। सहसा कुछ सोचकर बोला—अच्छी बात है, चलो समझौता कर लें। पाओ-जू के बदले में ह्वैंग की तरक्की किये देता हूं और मुझे विश्वास है कि वह इस बात को लेकर और ज्यादा बखेड़ा नहीं करेगा। आखिर यह लड़की है कौन ? नाटक में काम करनेवाली सिर्फ एक अभिनेत्री। वह उसकी बीवी या बहन तो नहीं है ?—और चू ने तरक्की की घोषणा कर दी। सलाहकार भी इसे मान गये और फिर वे ह्वैंग को समझाने च...

सब लोग हंसकर बोले—"तो ह्वैं... तरक्की का यह राज है! बेचारा ह्वैं...

ह्वैंग की समझ में कुछ भी नहीं आ... था कि वह क्या करे। पाओ-जू उसे ... सिनान से कहीं दूर भाग जाना चाहती ... उसे विश्वास था कि वह कहीं भी रहे, ... अभिनेत्री के रूप में प्रसिद्धि पा लेगी। ... ह्वैंग कुछ दूसरा ही सोच रहा था। वह ... जू की तरह उतना आशावादी नहीं ... वह जानता था कि युद्धपतियों के इ... में सफलता पाना बड़ा कठिन, किंतु ... बहुत आसान है। वह सोच रहा था कि ... एक बार उसने सिनान का पद और ... कार छोड़ दिया, तो दूसरी किसी भी ... उसे फिर यह पद प्राप्त न होगा।

ह्वैंग जनरल चू के सामने जाने ... हिचकता था। उसे डर था कि दोनों ... हाथापाई न हो जाये। अतः कुछ समय ... टाल देने का निश्चय उसने किया। ... क्वार्टर जाकर उसने अपना नया पद ... संभाला। बीमारी का बहाना बनाकर ... घर में ही पड़ा रहा।

चू को ह्वैंग से ऐसे व्यवहार की आ... थी। उसके हीले-हवाले से चू बहुत ना... हुआ, क्योंकि पाओ-जू को हासिल कर... बकार की देर हो रही थी। एक रात ... अपने दो अफसरों को भेजकर ह्वैंग को ... क्वार्टर में बुलाया और उसके आते ही ... शब्दों में उसका स्वागत किया—"तो तुम ... अभिनेत्री के लिए अपने धर्म-भ्राता ...

हेलना करना चाहते हो ?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है बड़े भाई ! मैं इस पर गंभीरता से विचार कर रहा था और सोच रहा था कि उचित अवसर पाते ही इस लड़की के साथ मैं अपनी मंगनी तोड़ दूं।"

जनरल चू समझ गया कि ह्वेंग ने 'मंगनी' शब्द का प्रयोग क्यों किया हैं। वह कुछ जोर से बोला-"मंगनी ? बहुत खूब ! लेकिन यह समझ में नहीं आता कि ऐसी लड़की से मंगनी का रिश्ता तुम क्यों जोड़ रहे हो, जो रंगमंच पर अपने अंगों का प्रदर्शन करती है। मेरे दोस्त ! तुम्हारी कोशिश बेकार है। क्या तुम समझते हो कि मंगनी शब्द का व्यवहार करके तुम मुझे मेरे इरादे से रोक सकते हो ?"

"जनरल साहब, दया करके मुझे गलत मत समझिये, मेरी नीयत पर संदेह मत कीजिये......"

हाथ झटककर चू ने ह्वेंग को आगे बोलने से रोक दिया। चू के कुछ सलाहकार कुछ कहना चाहते थे, किंतु उसे क्रोधित देखकर वे मन की बात मन में ही दबा गये। क्रोध से लाल चू गरजा-"लिन पाओ-जू को अभी यहां ले आया जाये। मैं इसी वक्त मामले का फैसला करना चाहता हूं।"

एक अफसर बोला-"हुजूर ! इस समय तो वह 'रेनबो-फोर्ट्रेस' में विधवा का अभिनय कर रही होगी।"

चू चिल्लाया-"भाड़ में जाये नाटक। उसे अभी ले आओ।"

शीघ्र ही कुछ सैनिक गये। थियेटर-मैनेजर से कहा गया कि खेल बंद कर दो और दर्शकों को टिकट का पैसा वापस कर दो, हम अभी पाओ-जू को ले जाना चाहते हैं। चू की आज्ञा भंग करने का साहस किसी में न था। विधवा के उसी श्वेत परिधान में सिपाही पाओ-जू को हेडक्वार्टर ले गये। उसे देखकर जनरल चू किसी प्रकार मुस्कराने में सफल हुआ। वह बोला-"पाओ-जू ! तुम्हें इस रूप में देखकर मुझे बड़ी खुशी होती है, क्योंकि ये वस्त्र तुम्हारी खूबसूरती में चार चांद लगा देते हैं।" फिर उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसने उपस्थित लोगों की ओर इशारा करते हुए कहा-"आओ, इन सबको बता दो कि वह कौन व्यक्ति है, जिसका सबसे ज्यादा खयाल तुम करती हो।"

पाओ-जू पकड़ में थी। उसने पूछा-"जनरल साहब ! यह सब क्या है ?"

"बिलकुल साफ है। यहां दो व्यक्ति हैं। एक मैं-चू यू-पु और दुसरा वह-ह्वेंग सिआओ-चुआन। इन दोनों में से तुम किसे प्यार करती हो ?"

पाओ-जू ने भयग्रस्त ह्वेंग की ओर देखा और दूसरों के गंभीर चेहरे भी। पहले तो वह अपनी सहज-मनोहर मुस्कान में मुस्करायी, फिर हंस पड़ी और बोली-"जनरल साहब ! क्या आप मुझसे यहां भी अभिनय करने को कहते हैं ? किंतु मैं तो रंगमंच पर ही अच्छा-से-अच्छा अभिनय कर सकती हूं।"

चू बिगड़कर बोला-"भाड़ में जाये तुम्हारा नाटक और अभिनय ! यहां सीधा मामला यह है कि ह्वेंग तुम्हारे बहुत करीब

है, हम सब जानते हैं और सब यह भी जानते हैं कि मैं भी तुम्हें चाहता हूं। तुम्हारा एक शब्द इस मामले का फैसला कर देगा। बोलो, हम दोनों में से तुम किसे चाहती हो?"

पाओ-जू ने चारों ओर देखा, किसी भी चेहरे पर मुस्कान नहीं थी। किंतु प्रयास करके उसने एक भयमिश्रित मुस्कान से चू की ओर देखा और कहा–

"जनरल साहब! आप यह बात सबके सामने मुझे अभी और यहीं कहने को मजबूर क्यों कर रहे हैं?"

"इसलिए कि इस मामले को मैं इसी वक्त साफ करना चाहता हूं।"

पाओ-जू काफी देर तक चुप रही। दूसरी बार भी बलात् मुस्कराकर उसने चारों ओर देखा। वह सोच रही थी कि अगर लंबे समय तक चुप रहने का मौका मुझे मिल जाये, तो संभव है कोई चमत्कार घटित हो जाये और मुझे बचा ले। उसने ह्वेंग की ओर देखा, तो उसका चेहरा कागज की तरह सफेद पाया, माथे पर पसीने की बूंदें भी थीं। स्वयं अपने हृदय की तेज धड़कन वह साफ सुन रही थी। उसने विनती की–"जनरल साहब! क्या किसी और दूसरी जगह मैं यह बात नहीं बता सकती?"

जनरल को सब्र कहां। वह चिल्ला उठा– "पाओ-जू! जरा सोचो, मैंने तुम्हारे लिए क्या किया है और आगे भी मैं क्या-क्या कर सकता हूं। तुम्हें अपने प्रेमी का नाम बताना ही होगा।"

पहले तो पाओ-जू जनरल की ओर बढ़ी, फिर सहसा लौट पड़ी और लड़खड़ाते [illegible] से ह्वेंग की ओर दौड़ी। पास पहुंचकर [illegible] फूट पड़ी और ह्वेंग को अपनी बाहों में [illegible] लिया। इसके बाद जनरल से करुण [illegible] स्वर में बोली–"जनरल साहब! हम पर [illegible] कीजिये, हम दोनों को क्षमा कर दीजिये।"

यह देखकर चू भौंचक्का रह गया [illegible] लगा, जैसे वह जम गया हो। थोड़ी देर [illegible] खड़ा वह इंतजार करता रहा कि क्रोध [illegible] लालिमा उसके चेहरे से चली जाये। अं[illegible] कार वह स्वस्थ हुआ और रूखी हंसी हं[illegible] बोला–"तुम्हें और कुछ कहने की [illegible] नहीं। तुम उसे चाहती हो, बस इतना [illegible] काफी है।" अपने अंग-रक्षक की ओर [illegible] कर उसने कहा–"इन लोगों को जाने दो [illegible] और वह स्वयं शांतिपूर्वक अपने [illegible] चला गया।

दूसरे दिन चू ने ह्वेंग को बुलाया और [illegible] नाटकीय ढंग से क्षमा मांगी। उसने [illegible] "छोटे भाई! मुझे दुःख है कि कल [illegible] काफी बिगड़ गया था और मैंने बड़ा [illegible] व्यवहार किया। किंतु एक औरत [illegible] हम दोनों की मित्रता में अंतर नहीं [illegible] चाहिये। मेरी सलाह है कि तुम उससे [illegible] कर लो। मेरे लिए भी यह अच्छा [illegible] इससे सारा मामला खत्म हो जायेगा [illegible] इसकी चर्चा बंद हो जायेगी। मेरे [illegible] छोड़ने के पहले जितनी जल्दी हो सके, [illegible] की तारीख पक्की कर लो। एक सच्चे [illegible] के नाते मैं भी तुम्हारी इस शादी में [illegible] रहना चाहता हूं।"

घटनाओं के इस विकास ने कहानी में और भी उत्तेजना पैदा कर दी। समाचार-पत्रों को मौका मिला और उन्होंने जनरल की उदात्त भावना की सराहना की। कुछ कवियों ने तो कविताएं लिखकर प्रकाशित भी करा लीं। सभी ने चू को ऐसा चित्रित किया, मानो वह प्राचीन योद्धा नायकों का अवतार है।

ह्वेंग और पाओ-जू खुशी से फूले न समाते थे। जैसा कि लोग कहते थे, ह्वेंग की चांदी ही चांदी थी; नौकरी में तरक्की और खूबसूरत बीवी। पर पाओ-जू कुछ गंभीर थी और ह्वेंग से कहती थी कि शादी हो जाने के बाद ही हमें खुशी मनानी चाहिये। किंतु ह्वेंग कहता था कि चिंता मत करो, जनरल चू अपने सलाहकारों के विचारों का आदर करता है और वे सब मेरे परम मित्र हैं।

सब कुछ ठीक-ठीक चलता रहा। वर्ष के सर्वाधिक भाग्यशाली युगल प्रेमी—जैसा कि अखबार वाले कहते थे—महीने की १५ वीं तारीख को विवाह-सूत्र में बंधने वाले थे। शादी की धूमधाम बड़ी शान से होने वाली थी। उसके लिए १५० मेजों से अधिक का इंतजाम करना था।

शादी के दिन आने वाले शुभचिंतकों की मोटरों और रिक्शाओं से सड़कें भर गयीं। प्रायः सभी मित्र और प्रेस वाले आमंत्रित थे। प्रेस वाले तो दावत के विशेष अधिकारी थे, क्योंकि उन्होंने इन दोनों की अच्छी विज्ञप्ति की थी।

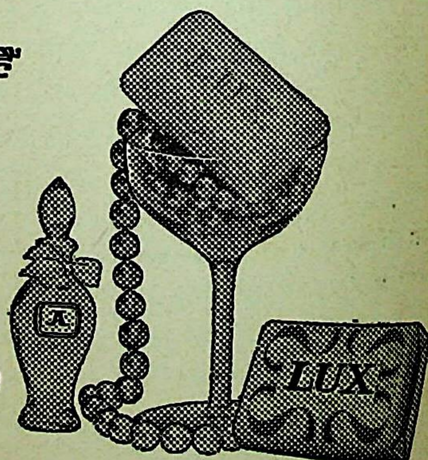
चमकीले वस्त्रों में वर-वधू प्रसन्न मुस्कान के साथ अतिथियों का स्वागत कर रहे थे। सभी आ चुके थे, बस एक मेहमान का इंतजार था। और वह मेहमान था जनरल चू यू-पू। सहसा सैनिकों से भरी एक ट्रक रेस्टरां के द्वार पर रुकी। दल का मुखिया ह्वेंग को पूछते हुए उसके पास पहुंचा और उसने फौजी फर्मान दिखाया। उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह ह्वेंग के हाथों में हथकड़ी पहनाकर उसी ट्रक में ले गया। सब हक्के-बक्के-से देखते रहे। किसी से कुछ न कहते बना। पाओ-जू पछाड़ खाकर गिर पड़ी। कुछ औरतें सहारा देकर उसे भीतर ले गयीं। रोते-रोते वह बेहोश हो जाती थी। होश आने पर फिर रोने लगती थी और फिर बेहोश हो जाती थी। शादी जहां-की-तहां रुक गयी। प्रेस वाले यह पता लगाने दौड़े कि ह्वेंग का क्या हुआ। किंतु फौजी क्षेत्र में जिन लोगों की काफी पहुंच थी, वे भी न जान सके कि ह्वेंग क्यों बंदी बनाया गया और कहां ले जाया गया।

दो महीने के बाद एक दिन फौजी दफ्तर से यह घोषणा प्रकाशित हुई कि ह्वेंग को फांसी दे दी गयी। उसका अपराध यह बताया गया था कि वह उस जनरल का खुफिया था, जिसने होपी प्रांत पर कब्जा कर रखा था और जिससे जनरल चू साल-भर लड़ता रहा।

जिस दिन सर्वसाधारण में इस बात की घोषणा की गयी, उसी दिन जनरल चू ने अपने प्रधान रक्षक को पाओ-जू के पास भेजकर कहलाया—"तुम्हारे साथ मेरी हार्दिक

'अब रूप का राज-शृंगार एक साबुन है लक्स'

चित्र-तारिका
बबिता कहती हैं



नए लक्स में
एक नई अनमोल
खुशबू है और
अन्तरराष्ट्रीय नई शान।
अपने लिए
पसन्द कीजिए...

रूप का राज-शृंगार एक साबुन है लक्स

लिंटास-LTS. 227-77 HI

हिंदुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

सहानुभूति है। ह्वेंग को फांसी की सजा मैंने जिस कठिनाई से दी है, वैसी कठिनाई का अनुभव मुझे जीवन-भर किसी काम में नहीं हुआ। मैं लाचार था। गुप्तचर विभाग ने उसका अपराध सिद्ध कर दिया था। इसलिए फौजी कानून का पालन करने के सिवा मैं और कर ही क्या सकता था। कुछ गंदे दिमाग के लोग भले ही मुझे दोषी ठहराते हुए कहें कि मैंने ह्वेंग से बदला लेने के लिए अपने अधिकारों का नाजायज फायदा उठाया है; किंतु इस तरह की द्वेषपूर्ण चर्चाओं के डर से एक फौजी अफसर अपने कर्तव्य से कैसे डिग सकता है? मैं स्वर्गवासी ह्वेंग सिआओ-चुआन और तुमसे क्षमा की प्रार्थना करता हूं। यहां ह्वेंग की सबसे निकटतम आत्मीया तुम्हीं हो, इसलिए आशा है कि ह्वेंग का शव ले जाकर तुम उसका अंतिम संस्कार करोगी और चूंकि ह्वेंग मेरा भाई था, मेरा घनिष्ठ मित्र था, इसलिए उसके अंतिम संस्कार के खर्च में भी हाथ बटाऊंगा।"

इस अवसर पर पाओ-जू ने महान साहस का परिचय दिया। यद्यपि ह्वेंग के साथ उसकी शादी नहीं हुई थी, किंतु उसने वह सब कुछ किया, जो एक विधवा को करना चाहिये। ह्वेंग का शव वह ले आयी और किसी से कुछ लिये बिना उसने अंतिम संस्कार का विधिवत् प्रबंध किया। सात दिनों तक संस्कार-कार्य चलता रहा और अंत में भगवान् बुद्ध तथा ताओ की प्रार्थनाओं से संपूर्ण हुआ। विधवा के अनुरूप पीले पाटंवर की शोक-सूचक पोशाक उसने पहन रखी थी। उसकी व्यथा की कल्पना सहज में की जा सकती है। आंखों के आंसू कभी सूखने नहीं पाये।

जब जनरल चू अपने छोटे भाई की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए पाओ-जू के घर आया, तो पाओ-जू ने उसकी अभ्यर्थना की, किंतु उसके चेहरे पर किसी भी प्रकार का भाव लक्षित नहीं था। चलते समय जब कि उसके पीछे चार अंग-रक्षक भी चल रहे थे, जनरल चू अपने को रोक न सका और बोल उठा—"पाओ-जू! विधवा के इन कपड़ों में भी तुम बहुत खूबसूरत लगती हो।' पाओ-जू ने कुछ भी उत्तर देना उचित नहीं समझा। इसीलिए उसके मौन ने चू को आगे कुछ और कहने से रोक दिया।

ह्वेंग का अंतिम संस्कार समाप्त होते ही पहला काम पाओ-जू ने यह किया कि रंगमंच और अभिनय को सदा के लिए तिलांजलि दे दी। दिन-भर वह घर में उदास पड़ी रहती थी; न किसी से मिलती थी, न बोलती थी। खाने-पीने की ओर भी उसकी रुचि नहीं रह गयी थी, अपने सौंदर्य को बनाये रखने के लिए कुछ प्रयत्न करने की बात तो बहुत दूर की थी। दुःख से वह बावली-सी हो गयी थी। उसकी थोड़ी-सी झलक जिनको कभी मिल जाती थी, वे कहते थे कि जल्दी ही पाओ-जू को अपने दिमाग का इलाज कराने के लिए अस्पताल में भरती होना पड़ेगा। कुछ दूसरे कहते थे कि एक न एक दिन फांसी लगाकर वह आत्महत्या कर लेगी। किंतु जब बहुत दिनों तक वह न

दिमाग के अस्पताल में भरती हुई और न उसने आत्महत्या ही की, तो लोग उसे भूलने लगे। अब वह चर्चा का विषय न थी। यहां तक कि जो समाचार-पत्र उसकी छोटी-से-छोटी खबर छापने को लालायित थे, वे भी उसकी ओर से उदासीन हो गये। हां, यह जान लेना जरूरी है कि पाओ-जू के पास धन की कमी नहीं थी। स्वयं उसकी कमाई हुई संपत्ति तो थी ही, ह्वैंग भी उसके लिए बहुत कुछ छोड़ गया था।

बहुत दिनों के बाद, जब लोगों का ध्यान पाओ-जू की तरफ से बिलकुल हट गया, एक दिन वह चुपचाप अपनी सारी संपत्ति समेटकर सिंगताओ चली गयी। वहां से वह पूर्वी शंतुंग गयी और चेफू में एक किराये का घर लेकर रहने लगी। कुछ दिनों के बाद अच्छी तरह समझ-बूझकर उसने एक कंपनी-कमांडर से शादी कर ली, जो पूर्वी शंतुंग के एक युद्धपति जनरल लिऊ चेननिएन की फौज में काम करता था। शादी के बाद पाओ-जू ने अपने पति के वरिष्ठ अफसर को चांदी के डालरों से भरा एक बक्सा रिश्वत के रूप में दिया, जिससे वह बटालियन-कमांडर बना दिया जाये और ऐसा हो भी गया।

बटालियन-कमांडर की पत्नी पाओ-जू अपना बहुत अधिक समय अपने पति के अधीनस्थ सैनिकों की भलाई में लगाती थी। वह सबकी सेवा-सहायता करने में तनिक भी नहीं हिचकती थी। धीरे-धीरे वह बटालियन की रानी मानी जाने लगी। पाओ-जू ने अपना सौंदर्य भी फिर से प्राप्त कर लिया था। धन तो था ही। अतः बहुत-से अफसर तथा सिपाही उसका आदर करने लगे थे, क्योंकि इसके पहले उन्होंने इतनी सुंदर और उदार औरत नहीं देखी थी। पाओ-जू ने इस स्थिति में तीन वर्ष बिताये।

उन्हीं दिनों जनरल लियू की फौजी टुकड़ियों को आदेश मिला कि वे मध्य शंतुंग की ओर जनरल चू यु-पू के सिपाहियों के साथ मिलकर युद्ध में भाग लें। पाओ-जू का पति अपनी बटालियन को लेकर तींतसिन-पुकौ रेल्वे की ओर बढ़ा, जहां जनरल चू के सिपाहियों के साथ मिलना था। पाओ-जू को पता चला कि जनरल चू एक स्पेशल ट्रेन में सिनान से तेहचो जाने वाला है।

रेल्वे लाइन के पास ही एक गांव में पाओ-जू का पति अपनी बटालियन के साथ रात में ठहर गया था। पाओ-जू भी साथ थी। उस रात काफी देर तक वह पति से बातें करती रही। उसने साफ शब्दों में कहा—"मुझे एक काम पूरा करना है, जिससे तुम्हारा कोई संबंध नहीं है। मैं तुम्हें उसमें शामिल नहीं करना चाहती, क्योंकि वह बड़ा खतरनाक काम है। तीन वर्षों से जिस काम का मैं इंतजार कर रही थी, वह पूरा करने का समय अब आ गया है। मुझे रोकने की कोशिश न करना। हो सकता है, मुझे सफलता न मिले और यदि मिल गयी, तो भी तुम फौज में नहीं रह सकोगे। विवाहित जीवन के इस अरसे में तुम मेरे प्रति सदैव दयालु रहे हो, इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद और मैं अपना काम पूरा करने के लिए तुम्हें माफ़ी

बनाया, इसके लिए माफी चाहती हूं।"

इतना कहकर उसने १०० औंस सोना मेज पर रख दिया और बोली—"सबसे अच्छा यह होगा कि धन लेकर इसी रात तुम अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र शंघाई चले जाओ, जहां तुम सुरक्षित रह सकोगे।"

पहले वह राजी नहीं हुआ, किंतु पाओ-जू ने अपनी वाक्पटुता और सौंदर्य का सारा बल लगाकर उसे समझाया। कमांडर ने देखा कि इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है, तब एक होशियार आदमी की तरह उसने एक कपड़े में सोना लपेटा और रफू-चक्कर हो गया।

दूसरे दिन पाओ-जू ने उन सभी अफसरों और सिपाहियों को बुलाया, जिनसे उसे मदद पाने की आशा थी। आंखों में आंसू भरकर उसने अपनी सारी कहानी उन्हें सुनायी और यह भी बता दिया कि बदले की एक आशा उसने हृदय में दबा रखी है। अपनी योजना बताते हुए उसने कहा—"किसी को घबराने की जरूरत नहीं, क्योंकि इस काम में यदि किसी की जान जायेगी, तो मेरी। बस आप लोगों की थोड़ी सहायता मुझे चाहिये और मुझे विश्वास है कि वह सहायता आप लोगों से मिलेगी। मैं कृतघ्न नहीं हूं। इस उपकार के लिए प्रत्येक अफसर को चांदी के १०० डालर और प्रत्येक सिपाही को ५० डालर भेंट करूंगी।"

पाओ-जू एक कुशल अभिनेत्री थी। उसने ऐसे ढंग से अपनी बात कही कि सब प्रभावित हो गये। दूसरी बात यह थी कि उन्हें ठीक समय पर वेतन नहीं मिलता था। तीसरा कारण यह था कि आगे भयंकर युद्ध छिड़ने वाला था। और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उन दिनों एक सिपाही के लिए ५० डालर एक अच्छी रकम थी, जिसे लेकर वह अपने गांव जा सकता था। अतः उन्होंने आपस में कुछ बातें कीं और मदद देने के लिए तैयार हो गये।

जनरल चू की स्पेशल ट्रेन जिस समय उधर से निकलने वाली थी, उससे एक घंटा पहले पाओ-जू के सिपाहियों ने रेल की एक पटरी निकाल दी और लाइन के दोनों ओर छिप गये। उस ट्रेन में इंजन के अतिरिक्त सिर्फ दो डिब्बे थे। आगे के डिब्बे में चू के अंग-रक्षक थे और पीछे वाले में वह स्वयं आराम कर रहा था। ड्राइवर ने जब देखा कि रेल्वे लाइन टूटी हुई है, तो जोर लगाकर उसने ब्रेक लगाया और गाड़ी रोक दी। गाड़ी रुकते ही पाओ-जू के सिपाहियों ने आगे वाले डिब्बे को निशाना बनाकर दोनों ओर से गोलियों की बौछार शुरू कर दी। डिब्बे के सिपाही चौंक गये। जिन्होंने नीचे उतरने की कोशिश की, वे मारे गये। सब पूरी तरह घिर गये थे। एक जवान अफसर, जो पाओ-जू के सिपाहियों का संचालन कर रहा था, आगे बढ़कर बोला—"खैरियत इसी में है कि आत्मसमर्पण कर दो।" अंग-रक्षकों के सरदार ने अपनी पिस्तौल फेंक दी और हाथ उठाये डिब्बे से बाहर निकल आया। दूसरे सिपाहियों ने भी उसका अनुसरण किया। जवान अफसर ने रोबीले स्वर

में कहा—"जनरल चू कहां है ? हम उससे बात करना चाहते हैं ।"

दूसरे क्षण एक छड़ी में सफेद रूमाल बांधकर ऊपर उठाये हुए एक अफसर पीछे वाले डिब्बे से बाहर आया और पीछे-पीछे जनरल चू उतरा । उसने थोड़ा सिर उठाकर हमलावरों को पहचानना चाहा और कुछ सभलते हुए पूछा—"मेरी ट्रेन क्यों रोकी गयी है ?"

जवान अफसर ने गरजकर कहा—"चुपचाप हमारी ओर चले आओ और पूरे हाथ ऊपर उठाओ ।" चू ने वैसा ही किया । अब विधवा के उसी श्वेत परिधान में पाओ-जू एक ओर से निकलकर चू के पास आयी और बोली—"जनरल चू ! मेरी ओर देखो और बताओ, क्या इन कपड़ों में मैं अभी भी तुम्हें अच्छी लगती हूं ?" चू ने हकबकाकर कहा—"अरे, पाओ-जू तुम !" मुस्कराते हुए पाओ-जू बोली—"चलो अच्छा हुआ, तुमने मुझे पहचान तो लिया । तब तुम्हें यह भी याद होगा कि तुमने मेरे साथ कैसा व्यवहार किया था ?"

यद्यपि चू अपने आंतरिक भय को छिपाने की कोशिश कर रहा था, किंतु उसका चेहरा सफेद पड़ गया था । उसने बड़ी आजिजी से कहा—"विश्वास करो पाओ-जू, ह्वैंग की फांसी की सजा पर दस्तखत करते हुए मुझे बहुत अधिक दुःख हुआ था, लेकिन मैं बिलकुल लाचार था।"

पाओ-जू ने झिड़कते हुए कहा—"यह मत भूलो जनरल कि इस समय हम दोनों में से कोई भी रंगमंच पर अभिनय नहीं कर रहा है ।"

"लेकिन मुझे एक मौका दो, मुझे बात का खुलासा करने दो ।"

"बात का खुलासा तो ह्वैंग के पास जाकर करना ।" यह कहकर अपने बगल के सिपाही की पिस्तौल लेकर पाओ-जू ने दो-तीन गोलियां दनादन दाग दीं । चू कटे पेड़ की तरह धरती पर गिर पड़ा । पाओ-जू ने पिस्तौल सिपाही को वापस कर दी और चू की लाश की ओर देखे बिना वह चुपचाप चली गयी ।

दूसरे कैदियों ने सोचा कि हमारी भी यही गति होगी, किंतु जवान अफसर ने कहा—"तुमसे हमारी कोई लड़ाई नहीं है । तुम लोग चुपचाप ट्रेन में चढ़ जाओ ।"

उनके चले जाने के बाद हमलावर भी इधर-उधर भाग गये ।

जनरल चू के उत्तराधिकारी जनरल लियांग ने अधूरे मन से पाओ-जू और उस जवान अफसर को पकड़ने की कोशिश की, पर वह सफल नहीं हुआ । दो-चार ऐसे लोगों को उसने जरूर मार दिया, जिन पर हमले में भाग लेने का संदेह था, किंतु इससे ज्यादा और कुछ न हो सका ।

कहानी समाप्त करते हुए मेरे मित्र ने कहा—"यह औरत, जो अभी हमारे पास से होकर गयी है, वही प्रसिद्ध अभिनेत्री लिन पाओ-जू है ।"

मेरे मुंह से सहसा निकल पड़ा—"सचमुच गजब की औरत है !"



कोलगेट से सांस की दुर्गंध रोकिये और दंत-क्षय का दिन भर प्रतिकार कीजिये!

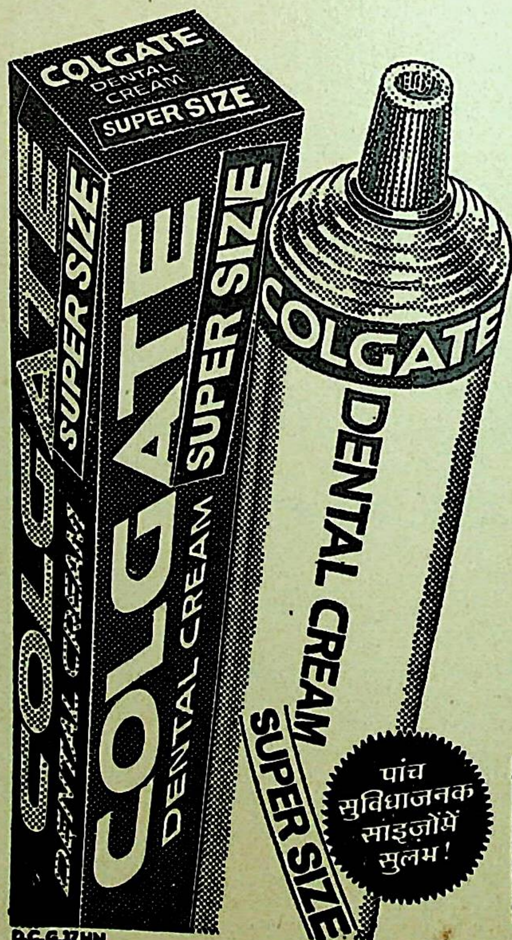


क्यों कि : एक ही बार दांत साफ़ करने पर कोलगेट डेन्टल क्रीम मुंह में दुर्गंध और दंत-क्षय पैदा करनेवाले ८५ प्रतिशत तक रोगाणुओं को दूर कर देता है।

वैज्ञानिक परीक्षणों से सिद्ध हो चुका कि १० में से ७ लोगों के लिए कोलगेट सांस की दुर्गंध को तत्काल खत्म कर देता है, और कोलगेट-विधि से खाना खाने के तुरंत बाद दांत साफ़ करने पर अब पहले से अधिक लोगों का— दंत-क्षय रुक जाता है। दंत-मंजन के सारे इतिहास की यह बेमिसाल बात है। केवल कोलगेट के पास ही यह प्रमाण है!

इसका पिपरमिंट जैसा स्वाद भी कितना अच्छा है—इसलिए बच्चे भी नियमित रूप से कोलगेट डेन्टल क्रीम से दांत साफ़ करना पसंद करते हैं।

ज़्यादा साफ़ व तरोताज़ा सांस और ज़्यादा सफ़ेद दांतों के लिए—दुनिया में अधिक लोगों को दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट ही पसंद है।





परिचित शब्द अपरिचित अर्थ

डा० शिवनंदन कपूर

प्राचीन ग्रंथों में कभी-कभी शब्दों के विचित्र प्रयोग एवं अर्थ मिलते हैं। सुनने में वे शब्द हमारे चिरपरिचित होते हैं; किंतु उनके अर्थ अद्‌भुत एवं सर्वथा अपरिचित निकलते हैं। 'शृंगार-मंडप' से सहज ही आज के पाठक को 'फैशन-शाप' का ध्यान आयेगा, या नारियों के शृंगार-कक्ष का। परंतु 'शृंगार-मंडप' का प्रयोग हुमायूं ने अपने 'दरबारे-आम' के लिए किया था। मुगल बादशाहों ने हाथियों के भी संस्कृतमय नाम रक्खे थे।

'साम्यवादी' : साम्यवादियों को संभवतः यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता होगी कि 'साम्यवाद' तथा 'साम्यवादी' शब्द प्राचीन भारत में भी प्रयोग में आते थे। किंतु यह प्रसन्नता निश्चय ही उसके अर्थ का परिचय मिलते ही लुप्त हो जायेगी। 'साम्यवादी' का प्रयोग संस्कृत साहित्य में 'भंडुए' के लिए होता था। और इस प्रयोग की भी एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है।

कश्मीर में ब्राह्मणों और कायस्थों का झगड़ा वर्षों तक चला। कायस्थ अपनी तीव्र बुद्धि के कारण उच्च पदों पर विद्यमान थे। अंत में उच्चल ने विद्रोह करके सत्ता हस्तगत की। वह ब्राह्मणों का पक्षपाती था। अतः उसने कायस्थों को टाट पहनाकर 'साम्यवादियों' (भंडुवों), वेश्याओं, तथा धूर्तों के साथ उनका जुलूस निकाला और उन्हें बाजों की ताल पर नचाया।

स शीर्षदर्शनं साम्यवादवेश्यविटान्वितं।
प्रियवेश्यं कंचिदग्रे नृत्तवाद्यमकारयत् ॥ – राजतरंगिणी (८.९६)

संभव है, स्त्री-पुरुष दोनों ही कहे जाने के कारण 'भंडुवों' का नामकरण इस रूप में हुआ होगा।

'भक्ति' और 'रूप' : संस्कृत-साहित्य में 'भक्ति' का प्रयोग वस्त्रों पर अंकित की जाने वाली आकृतियों (डिजाइनों) के लिए भी हुआ है। राजस्थानी में अब भी इसे 'भात' या 'भांत' कहा जाता है। स्व० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'कला और संस्कृति' में इसका उल्लेख किया है। इसी प्रकार बाणभट ने 'रूप' शब्द का प्रयोग 'छापने के ठप्पे'

के लिए किया है।

'आकाश' और 'वाण' : संगीत-शास्त्र में भी कुछ शब्दों के विचित्र प्रयोग मिलते हैं। उसमें 'आकाश' एक प्रकार की 'वीणा' थी। मिजराव की सहायता से वजने वाली इस वीणा का उल्लेख 'स्वप्नवासवदत्त' में भी है :

> **बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया।**
> **हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥**

'वाण' भी एक प्रकार की विशेष 'वीणा' थी। इसमें १०० तार होते थे। यह उदुंवर अर्थात् गूलर की लकड़ी की वनायी जाती थी। इसे लाल चमड़े से मढ़ा जाता था और इसके पृष्ठभाग में १०० द्वार होते थे। हर द्वार से एक-एक तार बंधा होता था। सभी तार दर्भ और मूंज से तीन भागों में वांट दिये जाते थे। मध्य में ३४ तार होते थे। इसे एक पतली, टेढ़ी पलाश की शलाका से बजाया जाता था।

'आकाशजननी' : अभी 'आकाश' के संगीतपरक विलक्षण अर्थ का ऊपर उल्लेख किया गया है। महाभारत (शांतिपर्व ६९.४३) में 'आकाशजननी' शब्द भी उपलब्ध है। इससे न तो पंचतत्त्वों में गिनाये गये आकाश का सीधा संबंध है, न संगीत-शास्त्र का। इसका संबंध युद्ध-शास्त्र से था। 'आकाशजननी' प्राचीन समय में परकोटे पर बने छिद्रों को कहा जाता था। इनके द्वारा तोपों से गोले फेंके जाते थे। गोले सामान्यतः पत्थर के ही होते थे। उतनी ऊंचाई पर बने होने के कारण उन्हें यह विलक्षण नाम दिया गया होगा।

तंत्र-शास्त्र में 'ललना', 'वारुणी' आदि के अद्‌भुत प्रयोग प्राप्त हैं। उसी तरह आयुर्वेद में 'मांस', 'मज्जा', 'अस्थि' आदि का फल के अंगों के रूप में भी व्यवहार हुआ है।



कहानी बाजार में

जब जेम्स थर्बर की कहानी पर बनी फिल्म 'वाल्टर सिटी' हिट हुई, तो निर्माता गोल्डविन ने उन्हें बुलाने के लिए लिखा—"मैं आपको प्रतिसप्ताह पांच हजार डालर देने को तैयार हूं।" थर्बर 'न्यूयार्कर' में काम करते थे। उन्होंने उत्तर दिया—"धन्यवाद! नहीं आ सकता। 'न्यूयार्कर' के संपादक मि० रास ने मेरी तनख्वाह पांच हजार डालर प्रतिसप्ताह कर दी है।"

गोल्डविन राशि बढ़ाते-बढ़ाते पच्चीस हजार डालर प्रतिसप्ताह पर पहुंचे, पर थर्बर ने उत्तर दिया—"रास ने मेरी तनख्वाह पच्चीस हजार डालर प्रतिसप्ताह कर दी है।" अंत में गोल्डविन ने लिखा—"क्षमा कीजिये, अब मैं आपको प्रतिसप्ताह पंद्रह हजार डालर से अधिक नहीं दे सकता।" मि० थर्बर ने उत्तर में निवेदन किया—"धन्यवाद! रास ने भी मेरी तनख्वाह में इतनी ही कटौती कर दी है।"

—रमेश खुराना 'स्वप्न'



बुखार की गर्मी ठंडा दिमाग

थियोडोर अर्विन

चेहरे पर तपन ? शरीर में जलन और फुरहरियां ? आराम से बिस्तर पर लेट जाने की इच्छा ? ......बहुत संभव है, आपको इस समय बुखार हो। थर्मामीटर लगाकर देखिये तो। आप जानते हैं कि बुखार इस बात का संकेत है कि शरीर में कुछ गड़बड़ है, वह अनेक रोगों का लक्षण है और बुखार जितना ही तेज होगा, उसका कारण भी उतना ही गंभीर होगा।

इन चंद मोटी बातों के अलावा लोग बुखार के बारे में कुछ नहीं जानते। यदि बुखार की असलियत समझ जायें, तो वे बुखार चढ़ने पर ठंडे दिमाग से काम करेंगे।

सीधे-सादे शब्दों में कहें, तो शरीर का तापमान बढ़कर असामान्य हो जाना ही बुखार है। तापमान की ऐसी वृद्धि एक लक्षण है, इस बात की आरंभिक सूचना है कि तापमान पर नियंत्रण रखने वाली शारीरिक व्यवस्था बिगड़ गयी है।

साधारणतया शरीर का सामान्य तापमान ९८.६ अंश माना जाता है। [illegible] विभिन्न अवयवों का तापमान विभिन्न हो[illegible] है; एक ही समय मुंह, बगल और नितंबों [illegible] थर्मामीटर रखकर ताप मापा जाये, [illegible] तीनों के तापमान अलग-अलग निकलें[illegible] आजकल चिकित्सक ९७ से ९९ अंश [illegible] को सामान्य तापमान समझते हैं। वास्तव[illegible] शरीर का तापमान चौबीसों घंटे एक[illegible] नहीं रहता। रात को सो जाने पर २ बजे[illegible] ५ बजे के बीच तापमान न्यूनतम (९७ अं[illegible] या कम) रहता है और दिन के तीसरे पहर[illegible] कभी-कभी ९९.५ अंश तक पहुंच जाता है[illegible]

इसके अतिरिक्त, अलग-अलग आदमि[illegible] का स्वाभाविक तापमान अलग-अलग रह[illegible] है। इलिनाय के नार्थ वेस्टर्न विश्ववि[illegible] लय के चिकित्सा महाविद्यालय में [illegible] प्राध्यापक ने एक परीक्षण किया। उ[illegible] २७६ स्वस्थ छात्रों का तापमान (मुंह [illegible] थर्मामीटर रखकर) माप कर देखा। [illegible] वह ९६.६ से ९९.४ अंश तक अ[illegible]

जिसका औसत ९८.१ पड़ता है। ९८.६ तापमान केवल १९ छात्रों का निकला। मुंह से तापमान मापने के पूर्व अगर रोगी ठंडा पानी या गर्म चाय पी चुका हो, अथवा वह नाक के वजाय मुंह से सांस लेता हो, तो तापमान घट-वढ़ जाता है।

वच्चों के तापमान का नियंत्रण करने वाली शारीरिक व्यवस्था पूर्णतया विकसित नहीं होती है। अतः मामूली कारणों से भी उनका तापमान डरावने ढंग से तेज हो जाता है। वच्चों का साधारण तापमान वयस्कों से अधिक होता है। मामूली जुकाम-सर्दी से भी उनका तापमान १०५ अंश तक पहुंच सकता है, और इसके वावजूद संभव है, वच्चे की हालत गंभीर नहीं हो।

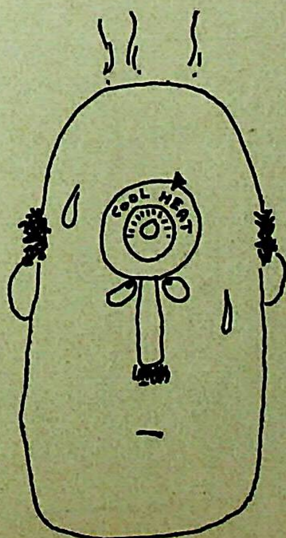
इसके विपरीत अगर उसके पिता को इतना वुखार हो जाये, तो उसकी हालत खराव हो जायेगी। परंतु तेज वुखार वच्चे के लिए भी खतरनाक हो सकता है, अगर वुखार के साथ उसका वदन ऐंठने लगे या कोई और गड़वड़ी दिखाई पड़े।

वयस्कों को कई कारणों से वुखार आ सकता है। कारण जो भी हो, वुखार का अर्थ यह है कि शरीर जितनी तेजी से गर्मी खर्च कर रहा है, उससे अधिक तेजी से गर्मी पैदा कर रहा है। जव तक यह स्थिति रहेगी, तापमान वढ़ता जायेगा।

भोजन के पाचन से गर्मी पैदा होती है और वह रक्त-वाहिकाओं में से गुजरता है। गर्मी व्यर्थ में वाहर न निकल जाये, इसके लिए शरीर में चर्वी की परतें रहती हैं। जव तक गर्मी की खपत और उत्पादन में संतुलन रहता है, तव तक शरीर का तापमान सामान्य बना रहता है। जहां उत्पादन खपत से जरा भी बढ़ा कि वुखार चढ़ जाता है। सो वुखार इस बात का सूचक है कि शरीर का 'थर्मोस्टैट' (तापमान-नियंत्रक) विगड़ गया है।

ऐसा माना जाता है कि तापमान का नियंत्रण करने वाली कोशिकाएं 'हाइपोथैलामस' में केंद्रित हैं। तंत्रिका-ऊतकों से वना हुआ यह अंगूठे-भर चौड़ा क्षेत्र नाक के ऊपरी सिरे से थोड़ा ऊपर व पीछे की ओर, मस्तिष्क के तलभाग में स्थित होता है।

कोलंबिया विश्वविद्यालय के चिकित्सा-विज्ञान महाविद्यालय के डा० डेविड जे० गोक का कहना है—"वुखार इस बात का लक्षण है कि शरीर का कोई अंग क्षतिग्रस्त हो गया है। वुखार इस क्षति की प्रतिक्रिया का एक भाग होता है। उदाहरणार्थ, कोई इन्फेक्शन होने पर रक्त के श्वेत कण रोग



से आक्रांत प्रदेश में आकर वहां के क्षति-ग्रस्त ऊतकों का खात्मा करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रक्रिया में कुछ श्वेत-कण टूट-फूटकर मर जाते हैं। जब ऐसा होता है, तो उनमें से निकले हुए ऊष्मा-उत्पादक पदार्थ रक्त के साथ बहकर मस्तिष्क में जा पहुंचते हैं और थर्मोस्टैट की प्रक्रिया को उत्तेजित करते हैं। इससे शरीर का तापमान बढ़ता है और बुखार हो जाता है।

"बुखार केवल इन्फेक्शन से ही नहीं, अन्य अनेक कारणों से भी हो सकता है। गठिया और जिगर का स्लिरोसिस इन्फेक्शन के रोग नहीं हैं, परंतु उनसे भी बुखार हो सकता है। घाव लगने पर या कोई अवयव जल जाने पर क्षतिग्रस्त ऊतक वहां से रक्त के रास्ते थर्मोस्टैट में पहुंचकर बुखार पैदा कर सकते हैं। कई रासायनिक औषध भी बुखार का कारण बन सकते हैं।

बुखार आने पर शरीर में कंपकंपी उठती है, दांत बजने लगते हैं। इसका कारण यह है कि तापमान बढ़ने से रक्त-वाहिकाएं रह-रहकर सिकुड़ती हैं। इससे गर्म रक्त ठीक तरह त्वचा तक नहीं पहुंच पाता। अतः त्वचा का तापमान घट जाता है और ठंड लगने लगती है। मगर शरीर के अंदर तापमान ऊंचा होता है। कंपकंपी से गर्मी पैदा होती है, जिससे तापमान और अधिक बढ़ता है। तेज बुखार में अक्सर जी मिचलाता है, भूख मारी जाती है, कमजोरी महसूस होती है और कभी-कभी पेट भी बिगड़ जाता है।

तापमान बढ़ने पर थर्मोस्टैट शरीर के सब अंगों को सचेत कर देता है। तापमान घटाने के उद्देश्य से रक्तवाहिकाएं फैल जाती हैं, जिससे मुंह लाल हो जाता है। दिल तेजी से धड़कने लगता है, ताकि रक्त पूरी तेजी से बहे। इससे दिल पर जोर पड़ता है। क्षति-ग्रस्त कोशिकाएं रक्त के मार्ग से बाहर निकाल दी जाती हैं, ताकि स्वस्थ कोशिकाएं उनके स्थान पर आ सकें। फिर अंदर की गर्मी त्वचा पर भी आने लगती है। तब पसीना आता है और तापमान घटने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।



सबका अपना-अपना 'नार्मल'

गर्मी घटाने की प्रक्रिया में कभी-कभी शरीर के कई लवणों का ह्रास हो जाता है। यदि बहुत ज्यादा लवण निकल जायें, तो शरीर में रक्त का परिणाम घट जाता है, और रोगी 'शाक' की स्थिति में आ सकता है।

तेज बुखार मस्तिष्क की प्रक्रियाओं में भी बाधा डाल सकता है। १०३ डिग्री से ऊपर के बुखार में बेचैनी बढ़कर सन्निपात

की स्थिति तक आ पहुंच सकती है। ऐसी हालत होने पर सावधानी रखना आवश्यक होता है। सन्निपात से बुखार और ज्यादा तेज होता है।

लू लगने आदि की अवस्था में जब बुखार बढ़कर १०८ या १०९ अंश तक पहुंच जाता है, तो रक्त परिसंचरण घटने लगता है। शरीर लगभग ताप का अवाहक (नान्-कंडक्टर) बन जाता है। जिगर आदि आंतरिक अवयवों में से बुखार ऊपर नहीं आ पाता। इस बुखार को उतारने के प्रयत्न फौरन करने चाहिये। लू से बचने के लिए, खास तौर से धूप में काम करने वाले लोगों को नमक ज्यादा खाना चाहिये और अधिक-से-अधिक पेय वस्तुएं लेनी चाहिये।

लंबी अवधि तक बुखार रहना खतरनाक हो सकता है; परंतु साधारण बुखार हमेशा गंभीर नहीं होता। यह बात भी सही नहीं है कि तेज बुखार सदा ही किसी गंभीर रोग का लक्षण होता है। फिर भी बुखार तेज हो, तो उसके उपचार में कभी ढील नहीं करनी चाहिये।

१०४.८ डिग्री बुखार बहुत कम होता है; लेकिन हो जाये, तो वह काफी हानिकर हो सकता है। १०६.६ डिग्री का बुखार कुछ घंटों तक भी रहे, तो बहुत हानिकर होता है। और १०९ डिग्री के बुखार को यदि तुरंत उतारा न जाये, तो वह इतनी क्षति कर जाता है, जो कभी सुधारी नहीं जा सकती। १०९ अंश से अधिक बुखार हो जाये, तो उस हालत में कोई भाग्यवान ही जीवित बचता है।

प्रकृति ने शरीर को ऐसा सामर्थ्य दे रखा है कि १०९ डिग्री तापमान होते ही, वह स्वतः तापमान उतारने की प्रक्रिया शुरू कर देता है। जोर का पसीना आने लगता है, ताकि तापमान उतरे। जब बुखार नियंत्रण से बाहर हो जाये, जैसा कि थर्मोस्टेट के जख्मी हो जाने या लू लगने पर होता है, तभी वास्तव में स्थिति खतरनाक होती है।

खाना खाने के बाद शरीर में पाचन-क्रिया आरंभ होने के कारण शरीर का तापमान सामान्यतया कुछ बढ़ता है। गर्मी में शारीरिक परिश्रम से तापमान एक-दो अंश बढ़ सकता है। मासिक धर्म के समय स्त्रियों का तापमान कुछ बढ़ जाता है। और कुछ व्यक्तियों का तो स्वाभाविक तापमान सामान्य से कम या अधिक होता है।

मलेरिया जैसे रोग में एक या दो दिन छोड़कर बुखार दो-तीन घंटे के लिए आता है। र्‍यूमैटिक बुखार में असाधारण तापमान एक मामूली लक्षण होता है। क्षय जैसे पुराने रोगों में तापमान नियमित रूप से दिन को बढ़ता है और रात को सामान्य हो जाता है।

क्या बुखार कभी लाभदायक भी हो सकता है? यह अभी अनिश्चित है। पेनिसिलीन आदि के आविष्कार के पूर्व ऐसा माना जाता था कि कई अवस्थाओं में बुखार लाभप्रद होता है। कुछ लोगों में बुखार कृत्रिम रूप से चढ़ाया भी जाता था। परंतु अब इस विधि का परित्याग कर दिया गया

है। वजन घटाने की कुछ दवाओं में भी बुखार लाने वाले रसायन मिले रहते थे।

विभिन्न रोगों में बुखार का स्वरूप और प्रभाव विभिन्न प्रकार का होता है। इसलिए थर्मामीटर से बुखार मापना चिकित्सकों के लिए रोग-निदान में सहायक है। उदाहरणार्थ बुखार गले के दर्द का एक स्पष्ट लक्षण है।

बुखार इस बात का भी प्रमाण हो सकता है कि शरीर में इन्फेक्शन से लोहा लेने की क्षमता है। किसी रोग-जीवाणु का आक्रमण होने पर बुखार का न आना यह प्रकट करता है कि शरीर में इन्फेक्शन का मुकाबला करने का सामर्थ्य नहीं है। बुखार रक्त-संचार बढ़ाता है, शरीर को रोग-जीवाणुओं पर हमला करने के लिए अधिक संख्या में श्वेत-कण और एंटी-बाडी उत्पन्न करने के लिए प्रेरित करता है।

तापमान मापने के लिए थर्मामीटर को ठंडे पानी से धोकर उसका पारा ९५ अंश से नीचे उतार लेना चाहिये।

अधिकांश चिकित्सकों का मत है कि बुखार में निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिये :

१. पेय पदार्थ अधिक मात्रा में लेने चाहियें, ताकि शरीर का जो पानी भाप बनकर, या पसीने के रूप में, या उलटी में निकल जाता है, उसकी पूर्ति होती रहे और शरीर में पानी की मात्रा घटने न पाये।

२. भूखा नहीं रहना चाहिये। प्रोटीन और विटामिनयुक्त हल्का-सुपाच्य भोजन करना चाहिये; क्योंकि तेज बुखार प्रोटीन, चर्बी और कार्बोहाइड्रेटों को तेजी से भस्म करता रहता है।

३. हल्के बुखार में एस्पिरिन का सेवन किया जाये, तो आधे या एक घंटे में तापमान सामान्य हो जाता है। वयस्क व्यक्ति चार-चार घंटे बाद एस्पिरिन की पांच-पांच ग्रेन की दो-दो टिकियां ले सकते हैं और बच्चे सवा ग्रेन की। मगर एस्पिरिन तापमान को घटाता भी है और बढ़ाता भी है। अतएव इसका उपयोग बहुत सावधानी से करना चाहिये।

४. बुखार के रोगी को हल्की चादर ओढ़नी चाहिये और कमरे को कुछ ठंडा रखना चाहिये। कमरा गर्म रखना और कंबल ओढ़कर पसीना लाना अज्ञान का परिचायक है। क्योंकि शरीर तो गर्मी निकालने के लिए बेचैन रहता है, गर्मी पाने के लिए नहीं।

५. तापमान १०३ अंश से ऊपर हो, तभी बर्फ सिर पर रखनी चाहिये।

६. यदि हल्का-सा बुखार घरेलू उपचारों के बाद भी कई दिनों तक बना रहे, तो किसी संक्रामक रोग का लक्षण मानकर फौरन डाक्टर से उपचार कराना चाहिये। यदि तेज बुखार २४ घंटों में न उतरे तो समझना चाहिये कि शरीर इस रोग का सामना करने में असमर्थ है और डाक्टर को बुलाना चाहिये। वैसे समझदारी की बात तो यह है कि सामान्य बुखार में भी डाक्टर का परामर्श ले लिया जाये।



सार सरोवर

शांति के सेनापति

यद्यपि जनरल आइजनहोवर की गणना अमरीका के महान राष्ट्रपतियों में नहीं होगी, तो भी वे संभवत: अपने देश के महान सेनानियों में स्थान पायेंगे।

दिसंबर १९४३ में जर्मन-अधिकृत फ्रांस पर आक्रमण करने वाली मित्र राष्ट्रीय अभियान-सेना के सर्वोच्च सेनापति के रूप में 'आइक' ने दिखा दिया कि शिष्टाचार कई वार अहंकेंद्रित सैनिक दिमागों से अधिक शक्तिशाली होता है।

मनचले किंतु विश्वसनीय मांटगोमरी तथा खब्ती जार्ज पैटन इन दोनों के रहते हुए भी जनरल आइजनहोवर कभी तैश में न आते थे। तैश में न आना संसार के सबसे कठिन कामों में से है।

जनरल आइजनहोवर बड़े विनम्र व्यक्ति थे। इसका अनुभव एरियल को तब हुआ, जब आज से दस साल भी पहले वह उनसे मिला था; आइक तब राष्ट्रपति थे और यह मुलाकात उनके पेन्सिल्वानिया एवेन्यू स्थित कार्यालय में, अर्थात् ह्वाइट हाउस में हुई थी।

उनकी एक चीज सबका ध्यान खींच[illegible] थी। इसे १९५२ में जान गंथर ने [illegible] गैर-फौजी मानस कहा था। गंथर के शब्द[illegible] हैं—"जीवन-भर वे सैनिक रहे हैं; [illegible] उनकी आस्था शांति में है। वे युद्ध के [illegible] अपितु युद्ध के विरुद्ध सुरक्षा के समर्थक हैं। वे सैनिक वर्ग के प्रतिनिधि तो सर्वथा न[illegible] लगते और अनेक बार मैंने यूरोप में [illegible] को उन्हें अजीब किस्म का आदमी—[illegible] का सेनापति—कहते सुना है।"

चार वर्ष बाद एरियल पर भी 'आइक' की यही छाप पड़ी। ह्वाइट हाउस पेंटागन (अमेरिकी सेना का मुख्यालय) से [illegible] दूर प्रतीत होता था।

—एरियल (फ्रैंक मोराइस), संडे स्टैं[illegible]

०००

बर्मा में हमारे भाई

प्रधान मंत्री की हाल की बर्मा-यात्रा [illegible] प्रसंग में से लिखित एक लेखमाला में [illegible] ये अंश उद्धृत हैं।

आज भी बर्मा में भारतीय मूल के [illegible] लाख व्यक्ति हैं, जो विश्वयुद्ध से पहले की [illegible]

की १० लाख से भी बड़ी भारतीय आबादी का अवशेष हैं। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि बहुत-से सिद्धांतहीन भारतीय व्यापारी बर्मा का शोषण करके पलते रहे और उन्होंने बदले में बर्मा को कुछ भी नहीं दिया और जब स्वतंत्रता आयी, तो बर्मी लोगों का अपने अर्थतंत्र के संचालन में न के बराबर हाथ था। परंतु इस प्रसंग में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि ऐसे भारतीय भी थे जिन्होंने बर्मियों की कई पीढ़ियों को पढ़ाया था, वकालती पेशे की नींव डाली थी, रोगियों का इलाज किया था।

मुझे आशा है, कोई निष्पक्ष बर्मी मेरे इस कथन का बुरा नहीं मानेगा कि आज बर्मा में भारतीयों को अपमानपूर्वक और भेद-भावपूर्ण व्यवस्था में जीना पड़ रहा है। उनमें से लगभग ७,००० को ही बर्मी नागरिकता दी गयी है, जबकि ३५ हजार की अर्जियां वर्षों से अधर में लटकी हुई हैं। जिन भारतीयों के पास राष्ट्रीय पंजीकरण प्रमाणपत्र हैं, उन्हें भविष्य में नागरिकता मिल सकती है; लेकिन वे नागरिक के रूप में स्वीकार किये जायेंगे या नहीं, यह अनिश्चित है। लगभग १ लाख भारतीयों के पास नागरिकता के कोई कागजात नहीं हैं और कोई नहीं जानता कि उनका क्या होगा।

जनरल ने विन और उनके सहकर्मी भले न्यायशील हों, लेकिन छोटे अफसर और स्थानीय सुरक्षा तथा प्रशासन समितियां (एस० ए० सी०) भारतीयों के लिए—बर्मा छोड़ना चाहने वाले भारतीयों के लिए भी—मुसीबतें पैदा कर रही हैं। उन पर ऐसे प्रतिबंध हैं, जो भारतीय अधिकारों का हनन करते हैं। विदेशी अपना घर नहीं बेच सकता, पता नहीं बदल सकता, आयकर की पूर्ण चुकाई का सर्टिफिकेट पाने के लिए उसे महीनों इंतजार करना पड़ता है। बर्मा छोड़ने के लिए एस० ए० सी० से 'एतराज नहीं' का सर्टिफिकेट मिलने में महीनों लग जाते हैं।

और बर्मा छोड़ते हुए भारतीयों को अपने साथ बहुत ही कम चीजें ले जाने दिया जाता है। (सरकारी कर्मचारियों के लिए जरूर उदारतापूर्वक और न्यायोचित अवस्था है। जिनके बाल-बच्चे, माता-पिता, भाई-बहन भारत में हैं, उन्हें उनसे मिलने जाने नहीं दिया जाता, न भारत से ही मिलने आने दिया जाता है। वयस्क विदेशियों को ५० क्याट (७५ रु०) का वार्षिक कर देना पड़ता है और ऐसे भारतीय परिवार बहुत हैं, जिनके पास कर देने के लिए पैसा नहीं है।

"यदि कोई ऐसा भारतीय, जो बर्मा का नागरिक है, बर्मा छोड़ना चाहे, तो उसे 'आइडेंटिटी' के प्रमाण-पत्र के लिए दरख्वास्त देनी पड़ती है। बर्मा से बाहर निकलने का यह लगभग अकेला मार्ग है। प्रमाण-पत्र मिलने में दो-तीन वर्ष तक लग सकते हैं; लेकिन मैंने सुना है कि यदि ऐसा आदमी बर्मा सरकार के किसी व्यापारिक-औद्योगिक संस्थान में काम कर रहा हो, तो उसे नौकरी से बर्खास्त कर दिया जा सकता है।

"इधर कुछ अरसे से सरकार 'आइडेंटिटी' का प्रमाणपत्र देने से पहले बर्मी नागरिकता

का प्रमाणपत्र लौटा देने की मांग करती है। 'आइडेंटिटी' के प्रमाणपत्र के लिए अर्जी देने वाले पेन्शन, ग्रैच्युइटी और प्राविडेंट फंड से भी हाथ धो बैठते हैं। विदेशियों की संतान को डाक्टरी, इंजीनियरी आदि पेशेवर कोर्सों के लिए सामान्यतया भरती नहीं किया जाता।

मैं नहीं समझ पाता कि यदि २ लाख मनुष्यों से संबंधित इस समस्या को मानवीय दृष्टि से देखा जाये तो क्या नुक्सान है। व्यक्तिशः बर्मी नितांत सहृदय होते हैं। इसलिए बर्मा सरकार का वर्तमान रवैया बड़ा अस्वाभाविक है।......यदि भारत सरकार बर्मा में स्थित भारतीय मूल के व्यक्तियों के कष्टों और बेबसी की उपेक्षा करेगी, तो सचमुच ही उनका बहुत बड़ा अहित कर बैठेगी।

"भारत सरकार को किसके पास कौन-से कागजात हैं, इसे लेकर कानूनी वितंडा नहीं करनी चाहिये। भारत अपनी जहाजरानी की उन्नति का खूब बखान करता है। क्या अपने ही आदमियों को लाने के लिए वह इससे अधिक जहाज नहीं भेज सकता, जितने उसने अब तक भेजे हैं? पिछला जहाज अक्टूबर १९६८ में छूटा था, और अगला छूटेगा इस साल मई में।

"क्यों नहीं कोई सार्वजनिक संस्था बर्मा जाकर निर्धन दुखियारे भारतीयों की देखभाल करती, (ऐसा लगता है, बर्मा के आधे भिखारी भारतीय हैं) और उन्हें भारत लौटने में मदद करती? क्यों नहीं भारत सरकार की यह हिम्मत होती कि वह इनके प्रति अधिक मानवीय व्यवहार की मांग करे और घोषणा करे कि जो भारत लौटना चाहें, उनका स्वागत है?

--चंचल सरकार (टाइम्स आफ इंडिया)

०००

हरिजन हिताय

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंचालक श्री गोलवलकर ने वर्णाश्रम-व्यवस्था में और पुरी के गोवर्धनपीठ के श्री शंकराचार्य ने अस्पृश्यता में अपनी आस्था सार्वजनिक रूप से व्यक्त करके जैसे भिड़ों के छत्ते को छेड़ दिया है। किंतु योजना आयोग की पत्रिका **योजना** के ९ मार्च १९६९ के अंक में श्री **आर० अच्युतन** ने 'अस्पृश्यता; एक गप" नामक लेख में वर्ण-व्यवस्था और अस्पृश्यता के विषय में कहीं अधिक गहरी और विचारोत्तेजक बातें कही हैं। लेखक एक हरिजन नेता हैं और भारत सरकार द्वारा १९६५ में नियुक्त अस्पृश्यता जांच समिति के सदस्य रहे हैं। लेख में उन्होंने कहा है:

"अस्पृश्यता वर्णभेद का नहीं, अपितु आर्थिक असमानता आदि का परिणाम है। उदाहरण के लिए, जो अधिक भाग्यशाली, धनी और उच्चशिक्षित हिन्दू सब क्षेत्रों में उच्च पदों पर आसीन हैं, उन्होंने आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हुए सवर्ण हिन्दुओं को भी उपेक्षित और पददलित कर रखा है। तस्वीर का दूसरा पहलू भी है, और वह भी इतना ही महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण

के लिए, स्व० आंबेडकर, श्री जगजीवनराम और श्री संजीवय्या जैसे व्यक्तियों को कभी अस्पृश्यता के अभिशाप का कष्ट नहीं भोगना पड़ा। स्वयं मेरे साथ, कभी हरिजन होने के कारण भेदभाव नहीं बरता गया है।

"बेशक मैं मानता हूं कि इस देश में एक समय अस्पृश्यता थी, परंतु महात्मा गांधी और केरल के श्री नारायण गुरु तथा अन्य नेताओं एवं संस्थाओं के प्रयत्नों से इस सामाजिक बुराई के प्रति तीव्र जनभावना उत्पन्न हुई। और अब, अस्पृश्यता का कानूनन उन्मूलन कर दिया गया है।

"मेरी राय में, अस्पृश्यता का यों निरंतर राग अलापने से तथाकथित हरिजनों के मनोबल का ह्रास हो रहा है। अब यह कुछ स्वार्थियों के मतलब का मामला रह गया है, जो इससे पूरा लाभ उठाने की कोशिश कर रहे हैं। भारत में वर्ण-व्यवस्था का बना रहना कुछ व्यक्तियों और संघटनों के अस्तित्व के लिए अत्यावश्यक है। निस्संदेह वे ही, इस बुराई के जारी रहने का कारण हैं। और ये व्यक्ति केवल सवर्ण हिन्दुओं में ही नहीं, परिगणित जातियों में भी पाये जाते हैं। वे अस्पृश्यता के निवारण और तथाकथित दलित जनों के उद्धार के लिए सरकार से बड़े-बड़े अनुदान प्राप्त करते हैं। हरिजन नेता बहुधा अनुदानों का दुरुपयोग करते हैं और कोशिश करते हैं कि हरिजन सदा दलित बने रहें। मेरी राय में, यदि हरिजन सदा हरिजन बने रहना चाहते हैं, तो उनकी उन्नति हमेशा के लिए दुःस्वप्न और मृगमरीचिका बनी रहेगी।

"साफ बात यह है कि सर्वत्र दो ही वर्गों के लोग हैं—धनी और निर्धन। भारत में दोनों के बीच की खाई बहुत चौड़ी है और इस विषमता को कम करना आवश्यक है, और वही अस्पृश्यता के निवारण का एकमात्र उपाय है। हाल में देश के दौरे में मैंने देखा कि अस्पृश्यता कहीं भी वर्ण-व्यवस्था के कारण नहीं है। अपितु सर्वत्र मैंने दो अवस्थाओं के लोगों को पाया है—एक जो शान-शौकत से जी रहे हैं, दूसरे जो गरीबी, पिछड़ेपन और अज्ञान से ग्रस्त हैं। मेरा खयाल है, सरकार को इस खाई को पाटने का प्रयत्न करना चाहिये।

"अस्पृश्यता-निवारण की सरकारी योजनाएं निष्पक्ष अध्येताओं के मन में यह संदेह पैदा कर सकती हैं कि इस देश में अस्पृश्यता के बने रहने में स्वयं सरकार का भी हाथ है। परिगणित जातियों को दिये गये विशेषाधिकार उनकी आत्मिक अवनति का कारण बन रहे हैं और उनमें हीनता की भावना उत्पन्न कर रहे हैं। यह चीज उन्हें अपनी हीनता का उपयोग करके जीवन की कठिनाइयों और सच्चाइयों से ईमानदारीपूर्ण कठोर परिश्रम से पलायन करने का अवसर दे रही है। जबकि यही विशेषाधिकार अगर सबको योग्यता के आधार पर दिये जायें, तो उससे हरिजनों में हीनता का भाव नहीं उपजेगा।

"मैं बड़ी तीव्रता से यह महसूस करता हूं कि कोई भी विकास-योजना केवल हरि-

जनों के लाभ के लिए नहीं होनी चाहिये; बल्कि यह उन सबके लाभ के लिए होनी चाहिये, जो आर्थिक विषमता से पीड़ित हैं। प्रत्येक भारतीय को आर्थिक विकास के फलों का उपभोग करने का अधिकार है; और किसी को यह नहीं महसूस करना चाहिये कि हरिजन होना एक विशेष अधिकार है। उसी तरह किसी को यह भी महसूस नहीं होने देना चाहिये कि हरिजन होना दुर्भाग्य है।

"निर्धन सवर्ण हिन्दू का बच्चा भी अधिक अच्छे और सफल जीवन का उतना ही अधिकारी है, जितना कि हरिजन का बच्चा। मैं यह भी कह दूं कि धनी हरिजन का बच्चा ऐसी कोई सहायता नहीं चाहता और उसकी जाति उसके अभ्युत्थान में बिलकुल भी बाधक नहीं है।

"आज के वैज्ञानिक युग में वर्ण नाम की कोई चीज नहीं है, इसलिए अस्तित्वहीन वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध जिहाद बोलना अनावश्यक है। इसलिए यह हरिजनों का काम है कि भारत के नागरिक के रूप में जहां भी चाहें, वहां जाने और रहने की शक्ति और मनोबल अपने में विकसित करें।"

०००

सेनाएं—कितनी, कैसी

पिछले दिनों राज्यसभा में श्री डी० थेंगडी के प्रश्न के उत्तर में 'सेनाओं' के संबंध में जो लेखा-जोखा सरकार की तरफ से प्रस्तुत किया गया, उससे प्रकट होता है कि पूरे देश में कुल ५३ 'सेनाएं' हैं और उनकी सदस्य-संख्या १,५९,०७२ है।

इनमें सबसे बड़ा दल शिवसेना का है। शिवसेना की सदस्य-संख्या ८०,५०० है। शिवसेना के बाद है केरल की मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की लाल सेना, जिसकी सदस्य-संख्या १९,००० है। उसी राज्य की दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी की लाल सेना की सदस्य-संख्या १०,००० है। इनके अलावा केरल में कांग्रेस सेवादल की सदस्य-संख्या १३,५०० राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ११ हजार और मुस्लिम सेना की ५,००० है। केंद्र-शासित प्रदेश त्रिपुरा में भी एक सेना है—शांति सेना; जिसकी सदस्य-संख्या है ५,०००।

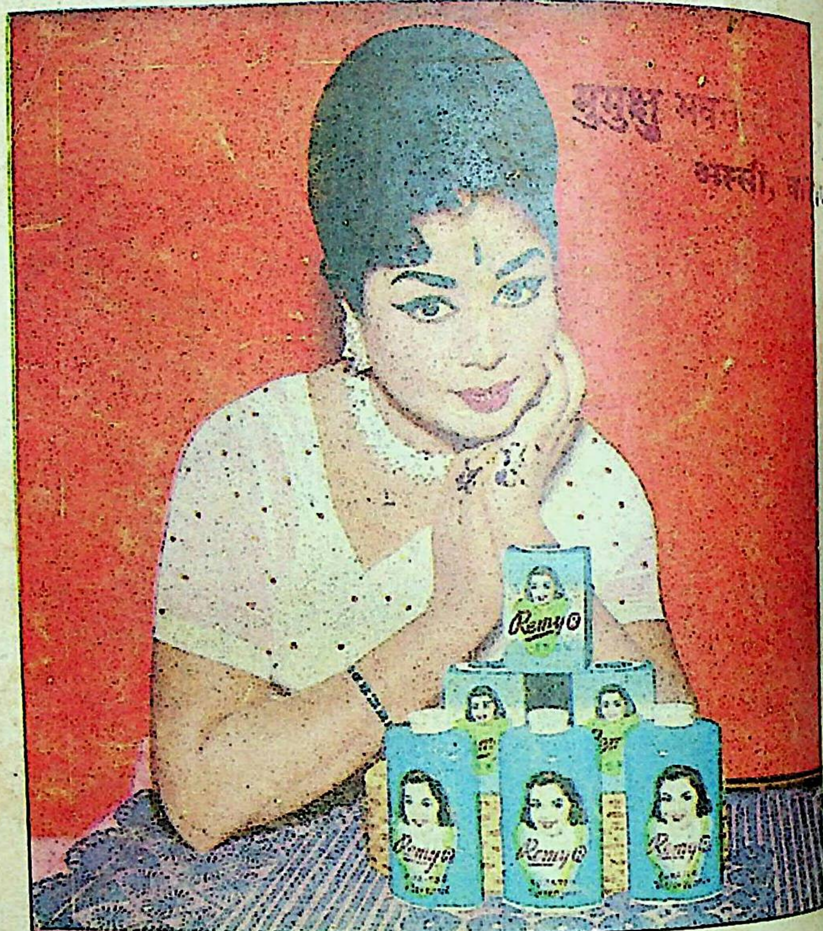
सबसे अधिक सेनाएं मध्यप्रदेश में हैं (१४), उसके बाद है उत्तर प्रदेश (११)। मध्यप्रदेश की सेनाओं की सदस्य-संख्या शून्य से लेकर २०० तक है और उत्तरप्रदेश में ३० से ३,००० तक। सरकार को तमिल सेना की सदस्य-संख्या ज्ञात नहीं है।

भीमसेना का नाम मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर और उत्तर प्रदेश में अधिक लोकप्रिय है। एक शिवसेना मध्यप्रदेश में भी है, जिसकी सदस्य-संख्या कुल ६५ है। मद्रास में तीन अन्य सेनाओं के अलावा 'ब्लाइंड ब्रिगेड' और 'थाट ब्रिगेड' नाम से दो और सेनाएं हैं।

विभिन्न राज्यों में जो अन्यान्य सेनाएं हैं, उनमें प्रमुख हैं हिन्दू राष्ट्र सेना, हिन्दी सेना, भूमि सेना, सुभाष सेना, शांति सेना, अण्णा सेना, विजय सेना और क्रांति सेना।

—फ्री प्रेस जर्नल




Remy

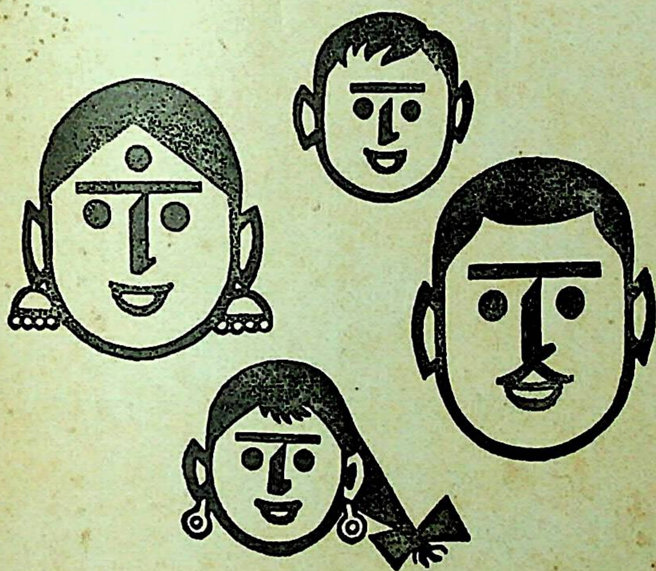
नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

जनवरी

१९६९



बस दो या तीन बच्चे :
होते हैं घर में अच्छे



परिवार नियोजन केन्द्र की पहचान लाल तिकोन

दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

का आपको निमंत्रण है, आयात प्रतिस्थापन को सफल बनाइये

एस० जी० आइरन के कास्टिंग

कांसा, पीतल, गनमेटल तथा लौहेतर धातुओं तथा इस्पात के पुर्जों व हिस्सों का स्थान ले सकते हैं।

मैलिएबल आइरन के कास्टिंग

अनेक प्रकार की चीजों में इस्पात के कास्टिंग का काम दे सकते हैं

एस. जी. आयरन और मैलिएबल आइरन के कास्टिंगों में उच्च भौतिक गुण होते हैं, वे खरीदने में सुगम, दृढ़ एवं तन्यतायुक्त, उनमें घिसाव कम होता है।

संपर्क कीजिये :



फेरस फाउंड्री, पंचपाखाडी, पहला पोखरन लेन, ठाणा

उच्च श्रेणी के कास्टिंग्स् [illegible] के लिए [illegible] हैमर बैंड का आग्रह कीजिये



आपके मनपसंद

साठे

पिकनिक

बिस्कुट

अब खूबसूरत और
हवासे बचाव करने वाले
कारटन में मिलते हैं।

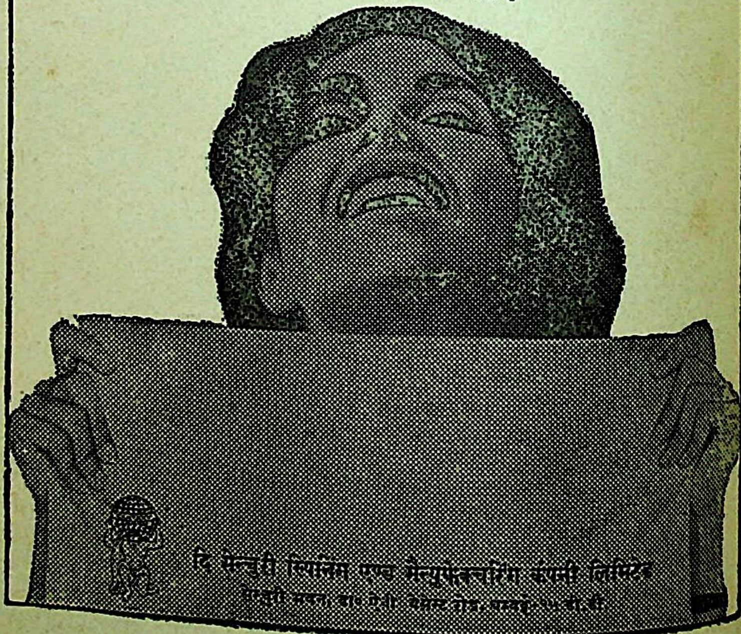


साठे बिस्कुट एण्ड चॉकलेट कं. लि., पूना-२








दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड

नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

वर्ष १८ जनवरी १९६९ अंक १





इस अंक में

१७ मार्गदर्शक
प्रज्ञाघन
१८ कारुण्य का सागर
चंद्रशेखर पांडेय
२१ महर्षि और महात्मा
मोरारजी देसाई
२५ मां !...... मेरी मां !
मुंशी, डा० कामत, हेलन केलर
२८ डा० हरगोविंद खुराना
कृष्णकुमार गुप्त
३४ अणुयुगी मानव का अधिकार-पत्र
नार्मन कजिन्स
३६ कविताएं :
'शैलेश', रजनी पोद्दार, दिनकर सोनवलकर, रामनारायण उपाध्याय, मल्लिका
३७ अमिट रेखाएं
रा० वीलिनाथन्, सुशीला, चौहान
४० पुरखों की थाती
४१ शुभ-कामनाएं
नरेंद्र छावड़ा
४५ जनजीवन का शब्दशिल्पी
वीरेंद्र सिंह
४८ पत्र और परामर्श

४९	पेरी मेसन का पिता	बेन हिक्स
५३	भालुओं के भयंकर भक्त	परमेश श्रीवास्तव
५७	बुझने वाली, न बुझने वाली प्यास	देवेन मेवाड़ी
६१	आधी रात का दफ्तर	परिपूर्णानंद सिंह
६५	हृदय-प्रतिरोपण	चंदन
६९	तनाव, अल्सर और संबंधित बातें	नलिनी कांत
७३	फिरदौसी (कविता)	रामचंद्र 'चंद्रभूषण'
७५	यहां एक द्वीप जन्म ले रहा है	राजबहादुर सिंह
७६	जब जान पर बन आती है	दामू धोत्रे
८०	कुछ नये रेखाचित्र	डा० जगदीश गुप्त
८१	मनुष्य पाताल में बसेगा	हरिमोहन शर्मा
८६	लातों से लाखों कमानेवाला	सुरेश वैद्य
९३	कुछ असंबद्ध गीत	राजेंद्रप्रकाश 'गौतम'
९४	आपकी सांस दूसरों के प्राण बचा सकती है	शौकत अली
९७	अमीर खां पिंडारी	परदेशी
१०३	तीरंदाज	एम० बी० महरीन
१०६	वाइसराय का पराक्रम	श्यामलालयम्
११३	मुगल साम्राज्य का हिन्दू प्रधान-मंत्री	हरिदत्त वेदालंकार
१२४	ये सर्द हवाएं	चंदन
१२८	षष्टिपूर्ति (कविता)	जाबालि
१२९	बचपन	जार्ज बर्नार्ड शा
१३२	बाघों का साम्राज्य (पुस्तक-संक्षेप)	तहावर अली खां
१६६	मैं हूं वो जाम	सैयद मुहम्मद जाफरी
१६७	पशु भी पैसों के भक्त	वान्स पैकार्ड
१७२	परायी पुस्तकों के प्रेमी	बी० नार्ली
१७४	मधुरेण समापयेत्	....



चित्रसज्जा : जगदीश गुप्त, ओके, शेणै, गोस्वामी, दामानी, मगन पटेल

हमारा पता : नवनीत प्रकाशन लि०, ३४१, तारदेव, बंबई ३४, फोन : ३७२८१३

श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लि०, ३४१ तारदेव, बंबई-३४ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६।४८ खेतवाड़ी बैंक रोड, बंबई-४ में मुद्रित।

नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

संसार के नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान का प्रतिनिधि मासिक

मार्गदर्शक

गुरु आत्मबोध के ध्यान-शिविर में एक साधक शिष्य चोरी करते हुए पकड़ा गया। शिकायत गुरु तक पहुंचायी गयी; पर गुरु ने बात अनसुनी कर दी। कुछ दिन बाद वही शिष्य फिर चोरी करते हुए पकड़ा गया। फिर शिकायत हुई, गुरु ने फिर अनसुनी कर दी। अन्य शिष्यों ने इस पर बड़ी नाराजगी के साथ गुरु से लिखित निवेदन किया कि उस शिष्य को निकाल दें, अन्यथा हम सब शिबिर से चले जायेंगे। गुरु ने उत्तर में कहा— "भाइयो, तुम सब समझदार हो; उचित-अनुचित का विवेक कर सकते हो। तुम लोग कहीं भी जाकर ध्यान करने में समर्थ हो। किंतु यह बेचारा भाई उचित-अनुचित का भेद भी नहीं जानता। यदि मैं इसे नहीं सिखाऊंगा, तो भला कौन सिखायेगा? मैं तो इसे यहीं रखूंगा, भले तुम सब मुझे छोड़कर चले जाओ।" दोषी शिष्य की अश्रुधारा ने उसकी चित्तभूमि को धो डाला; वह चोरी की आदत से मुक्ति पा गया। —प्रज्ञाघन

कारुण्य का सागर

यदि मैंने शुभ कर्मों द्वारा कुछ भी पुण्य-संचय किया है, तो उस पुण्य से दुःखग्रस्तों को परित्राण मिले।

चंद्रशेखर पांडेय

नरक में उस दिन सहसा शीतल वायु का एक झोंका आया, दहकती आग में झुलसते हुए शरीरों को दाह से त्राण मिला। प्यास से सूखे हुए कंठ तर हो गये। यंत्रणा के यंत्र थोड़ी देर के लिए थम गये। नरकवासियों ने चकित हो इधर-उधर दृष्टि दौड़ायी, तो एक नररत्न उन्हें अपनी ओर आते हुए दिखाई दिये। उनके साथ बिजली-सी कांतिमयी काया वाला एक यमदूत था, जो उन्हें नरक के विभिन्न विभाग दिखाता हुआ चल रहा था। यातना और उत्पीड़न के भीषण दृश्यों को देखकर उस नररत्न का मुख म्लान हो गया।

यमदूत से अत्यंत खिन्न स्वर से उसने कहा—"हे धर्मदूत, जनक-वंश में उत्पन्न मैं विदेह देश का राजा विपश्चित् हूं। मैंने सदा धर्मानुसार प्रजा और पृथ्वी का पालन किया है। परायी स्त्री और परायी संपत्ति पर मैंने कभी लालची दृष्टि नहीं डाली। अनेक यज्ञ तथा विविध शुभ कर्म मैंने किये हैं। देवता, पितर, ऋषि और अतिथि का मैंने सदा यथाविधि पूजन किया है। फिर मुझे किस पाप के कारण नरक आना पड़ा ?"

यमदूत ने अत्यंत नम्रता के साथ निवेदन किया—"राजन्! आपने जो कुछ कहा, अक्षरशः सत्य है। आपके समान धर्मात्मा राजा होना बड़ा कठिन है। किंतु आपसे भी एक बार कर्तव्य-च्युत हो गया था।"

यमदूत ने जो राजा की छोटी-सी भूल बतायी, उसे आज के युग में शायद अधर्म की संज्ञा नहीं दी जाती, किंतु वह पुराण-युग था। उस काल की आचार-मर्यादाएं भिन्न थीं।



त्राहीति चार्त्ता क्रन्दन्ति

यमदूत बोला—"राजन्, नरक-दर्शन से ही आप अपने दोष का दंड पा चुके। अब अपने पुण्य-कर्मों का सुख भोगने स्वर्ग चलिये।"

दूत राजा विपश्चित् को निर्गमन-द्वार की ओर ले जाने के लिए मुड़ा। विपश्चित् जब जाने को उद्यत हुए, तो समस्त नरकवासी अत्यंत आर्तस्वर से चिल्ला-चिल्लाकर प्रार्थना करने लगे—"दो घड़ी और ठहर जाइये महाराज! अभी मत जाइये। आपके शरीर से जो हवा लगकर हमारे पास आती है, वह हमारे ताप को नष्ट करती है।"

महाराज विपश्चित् उनकी करुण पुकार सुनकर वहीं रुक गये और उन्होंने यमदूत से पूछा—"मेरे शरीर से लगकर बहनेवाली वायु इनकी वेदना को कैसे शांत कर देती है?" यमदूत बोला—"महाराज! पितर, देवता, ऋषि, अतिथि और भृत्य—इन सबको संतुष्ट करने के बाद बचे हुए अन्न से आपका शरीर पुष्ट हुआ है। उसी पुण्य का यह प्रभाव है कि आपको छूकर बहनेवाली हवा दुखियों का संताप दूर कर देती है। आपके तेज से ताड़न-छेदन-दहन करनेवाली नरक की शक्तियां कोमल हो गयी हैं।"

इस पर राजा ने कहा :

"न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत् सुखम् प्राप्यते नरैः।
यदार्तजन्तुनिर्वाणदानोत्थमिति मे मतिः॥

—मेरे विचार से, जो सुख दुखियों का दुःख दूर करके उन्हें शांति प्रदान करने से होता है, वह सुख मनुष्य ब्रह्मलोक अथवा स्वर्गलोक में भी नहीं प्राप्त कर सकता। अतः हे यमदूत, यदि मेरे यहां रहने से इन जीवों को नरक-यातना कष्ट नहीं पहुंचाती, तो मैं यहीं रहूंगा।" यमदूत ने उन्हें समझाने की बहुत चेष्टा की—"राजन्, प्रत्येक को अपने कर्म का फल भोगना पड़ता है। आइये, इन पापियों को अपना कर्मफल भोगने दीजिये और स्वर्ग को चलिये।"



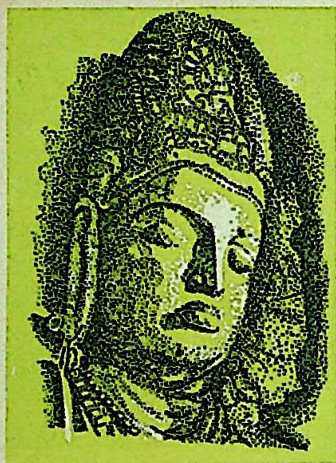
यम धर्मराज
[खजुराहो]

पर विपश्चित् अपनी बात पर अटल रहे—"नहीं यमदूत! इतने प्राणियों को घोर यातना में छोड़कर मैं स्वर्ग में सुख भोगने के लिए नहीं जा सकता।

धिक् तस्य जीवनं पुंसः शरणार्थिनमातुरम्।
यो नार्त्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम्॥

—शरणार्थी, पीड़ित तथा रोगी मनुष्यों पर—चाहे वे शत्रुपक्ष के ही क्यों न हों—जो कृपा नहीं करता, उसके जीवन को धिक्कार है। इसलिए तुम जाओ यमदूत, मैं यहीं रहूंगा।"

राजा विपश्चित् के इस उत्तर से सब नरकवासी प्रसन्न होकर उन्हें साधुवाद देने लगे। किंतु उसी समय जगमगाता हुआ एक दिव्य विमान वहां आकर रुका। साक्षात् धर्मराज और देवराज इंद्र उसमें से उतरकर राजा के पास पहुंचे। धर्मराज ने कहा—"राजन्, तुमने पृथ्वी पर भली भांति मेरी



पुण्यदीप्त मुखमंडल

अनुकृति : मगन पटेल

उपासना की है। अतः मैं तुम्हें स्वर्गलोक में ले चलने के लिए आया हूं।"

विपश्चित् ने पहले दोनों देवों को सादर प्रणाम किया, फिर धर्म से बोले :

"नरके मानवा धर्म! पीडयन्तेत्र सहस्रशः।
त्राहीतिचार्त्ताः क्रन्दन्ति मामतो न व्रजाम्यहम् ॥

—धर्म! नरक के ये हजारों मनुष्य आर्त-स्वर से मुझे रक्षा के लिए पुकार रहे हैं। इन्हें छोड़कर स्वर्ग जाने के लिए मैं कठोर हृदय कहां से लाऊं? मैं इन्हें इस अवस्था में छोड़कर नहीं जा सकता।"

फिर राजा ने प्रश्न किया—"यदि आप और इंद्र जानते हों, तो बताने की कृपा करें कि मेरे कितने पुण्य हैं।" धर्म ने कहा—"महाराज! जैसे सागर के जलबिंदुओं, आकाश के तारों और गंगा की वालुका के कणों की गणना नहीं हो सकती, उसी प्रकार आपके पुण्यों की गणना नहीं हो सकती। वे असंख्य हैं। उन्हीं के फलस्वरूप आप देव-लोक में चलकर सुख भोगें और ये पापी नरक में रहकर अपने पापों का फल भोगेंगे।"

राजा ने कुछ खिन्नता से उत्तर दिया :

"कथं स्पृहां करिष्यन्ति मत्सम्पर्कंषु मानवाः।
यदि मत्संन्निधावेषामुत्कर्षो नोपजायते॥
तस्माद् यत् सुकृतं किञ्चिन्ममास्ति त्रिदशाधिप।
तेन मुच्यन्तु नरकात् पापिनो यातनां गताः॥

"देवो! यदि मेरे समीप आने पर भी इन दुःखी जीवों को सुख न मिला, तो कोई मनुष्य मेरे निकट आने की स्पृहा क्यों करेगा? इसलिए अपने समस्त पुण्य कर्मों के बदले में यही चाहता हूं कि ये जीव नरक से छुटकारा पा जायें। मुझे देवलोक के सुखों की अभि-लाषा नहीं है।"

राजा के इस उत्तर पर इंद्र धन्य-धन्य कह उठे और बोले—"राजन्! इस उदारता के कारण आपके पुण्य और भी हजार गुना बढ़ गये। वह देखिये नरक के प्राणी भीषण यातनाओं से मुक्त होकर जा रहे हैं। अब आप भी स्वर्ग चलिये।"

"करुणा-मूर्ति महाराज विपश्चित् की जय!" के नारे लगाते हुए सब नरकवासी मुक्त होकर अपने-अपने कर्मों के अनुसार अन्य लोकों के लिए चले। जब तक वे नर विदा नहीं हो गये, विपश्चित् वहीं खड़े रहे। उन पर पुष्पों की वर्षा होती रही!



महर्षि और महात्मा

● मोरारजी देसाई ●

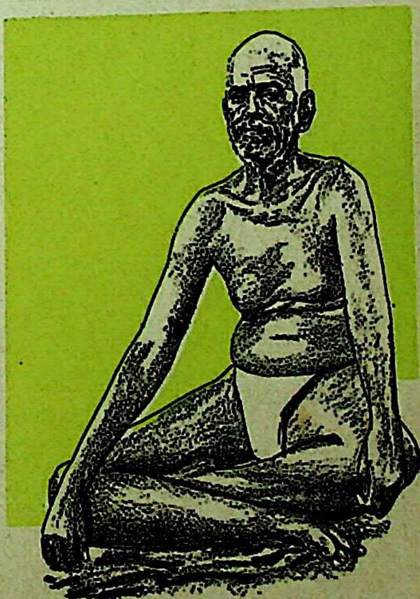
रमणाश्रम में पहली वार मैं सन १९३५ में गया था। आज वहां जो भवन हैं, उनमें से थोड़े-से भवन ही उस समय तक वन पाये थे और स्वयं रमण महर्षि भी उतने प्रसिद्ध नहीं हुए थे, जितने कि बाद में हुए।

उस अवसर पर मैं आश्रम में केवल एक दिन ही ठहरा था और महर्षि के समक्ष एक घंटा या कुछ अधिक बैठ सका था। उस समय मैंने पूर्ण आंतरिक शांति का अनुभव किया था।

महर्षि से मैंने एक भी प्रश्न नहीं पूछा; क्योंकि मुझे कुछ पूछने की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई। किंतु उस मौन उपस्थिति में पूर्ण निश्चलता का वह एक घंटा मेरे जीवन की एक वहुमूल्य स्मृति वन गया।

आश्रम से विदा होने के पूर्व महर्षि के साथ भोजन करने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ था। उस यात्रा में मुझे विश्वास हो गया था कि महर्षि आत्म-साक्षात्कारी पुरुष हैं और गीता में प्रतिपादित 'निष्कर्ष में कर्म' का आदर्श सचमुच जीवन में प्राप्त किया जा सकता है।

यद्यपि हम सभी जानते हैं कि युद्धों का आरंभ मनुष्य के मन में होता है, फिर भी हम देखते हैं कि अधिकांश लोग पहले आंतरिक शांति प्राप्त किये विना वाहरी कर्मों द्वारा शांति-स्थापना के लिए प्रयत्न करते हैं। युद्ध क्यों होते हैं ? इसलिए कि लोगों के मन में लोभ है, अपने न्यायोचित अंश से अधिक सांसारिक संपत्ति का स्वामी वनने का लोभ



है, कामना है ।

जब तक धर्म की सच्ची भावना को समझकर उसका पालन नहीं किया जायेगा और लोगों के मन में आंतरिक शांति की स्थापना नहीं होगी, तब तक हम संसार में शांति की स्थापना नहीं कर सकेंगे ।

शांति का अर्थ युद्धों से उपरत होना ही नहीं है, वरन् एकत्व और दूसरों के प्रति चिंता की भावात्मक अनुभूति भी है । मुझे विश्वास है कि इस लक्ष्य को एक-न-एक दिन सब लोग तथा सभी राष्ट्र स्वीकार करेंगे ।

एक कदम

ओ करुणामय प्रभो ! इस घिरते हुए अंधेरे में मेरा मार्ग-दर्शन करो । रात अंधेरी है और मैं अपने घर से बहुत दूर हूं । तुम केवल मेरे पैरों को दिशा दो; मैं तुमसे कोई सुदूर दृश्य दिखाने की याचना नहीं करता, मेरे लिए तो एक कदम चलना भी पर्याप्त है ।

—जे० एच० न्यूमैन

यदि हम इस लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकें, तो भी हमें इसके लिए प्रयास करना उचित है; क्योंकि यदि इस दिशा में बढ़ना छोड़ दें, तो संघर्ष के कारण बढ़ते जायेंगे और संसार की दशा सुधरने के वजाय बिगड़ती ही जायेगी । यदि हम सब आंतरिक शांति के लिए प्रयास करें, तो एक दिन संसार एक सच्चा मानव-समाज बन जायेगा ।

जब तक भय और लोभ का लोप नहीं होगा, जब तक हम दूसरों की संपत्ति, प्रतिभा तथा पद-प्रतिष्ठा पर ईर्ष्यापूर्ण दृष्टि डालना बंद नहीं करेंगे, जब तक प्रत्येक देश का प्रत्येक व्यक्ति मानसिक शांति प्राप्त नहीं कर लेगा तथा जब तक प्रत्येक धर्म-संप्रदाय सर्व-श्रेष्ठता का दावा छोड़कर दूसरे धर्म-संप्रदायों का आदर नहीं करेगा तथा उनके द्वारा अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को समृद्ध नहीं बनायेगा, तब तक सच्ची धर्म-भावना, एकत्वानुभूति तथा मानव-जाति की साझी नियति भय और लोभ को नहीं जीत पायेगी और हम धरती पर सच्चे मानव-समाज की स्थापना नहीं कर पायेंगे।

तो सबसे पहली चीज है, अपने अंदर झांककर देखना, अपने को जानना, अपनी दुर्बलताओं को पहचानना और स्वयं सुधरने का प्रयत्न करना। यदि इसके बजाय अपने को ही श्रेष्ठ मानते हुए हम दूसरों को सुधारने की कोशिश करने लगें, तो भले ही हम यह सब शांति के नाम पर करें—तो भी शांति के बजाय युद्ध का वातावरण ही उत्पन्न करेंगे । अध्यात्म जगत् में न तो लोभ, भय, संघर्ष के लिए स्थान है और न आत्मश्लाघा और अपने को विशिष्ट समझने की भावना के लिए ।

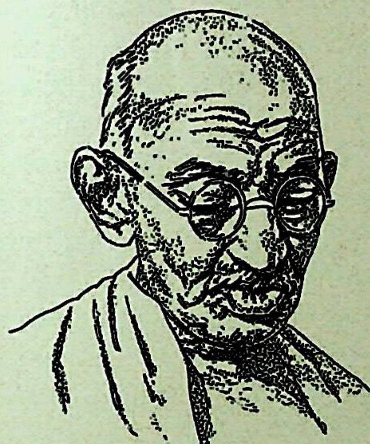
हम भारतवासियों ने सदैव 'अनेकांत-वाद' को स्वीकार किया है, जिसमें दृष्टि-कोणों की भिन्नता के लिए गुंजाइश है । यही कारण है कि हम सहिष्णुता से बहुत आगे चले गये हैं, आखिर सहिष्णुता कृपापूर्वक सहार लेना ही तो है, जिसमें अपनी श्रेष्ठता

['संडे स्टैंडर्ड' से साभार उद्धृत]

और दूसरे की हीनता का भाव रहता है।

हम दूसरों का सम्मान इसीलिए करते हैं कि जो आत्मा हमें अनुप्राणित कर रही है, उसी का प्रतिबिंब हम दूसरों में भी देखते हैं। हम कहते हैं–'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अर्थात् मुझे समस्त जीवों के प्रति वैसा ही व्यवहार करना चाहिये, जैसे व्यवहार की आशा मैं अपने लिए दूसरों से करता हूं। समस्त जीवों के एकत्व की इस मान्यता से ही अहिंसा-सिद्धांत उत्पन्न होता है। केवल अहिंसक अवस्था में ही मनुष्य दूसरों का सम्मान कर सकता है और जब मनुष्य एक-दूसरे का सम्मान करेंगे, तभी समानता का वातावरण बनेगा, जिसमें शांति का राज्य होगा।

मेरे विचार से सभी धर्मों का मुख्य कार्य है-शांति। जिसमें आंतरिक शांति है, वह बाहर भी शांति फैलायेगा। किंतु जब कोई धार्मिक समुदाय केवल अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने के लिए अपने विचारों का प्रचार करना चाहता है, तब उसका परिणाम संघर्ष होता है। धर्म-तत्त्व को यदि अपूर्ण साधन के माध्यम से कार्य करना है, तो संघठित धर्मों को इस आक्रामक भावना को त्यागना होगा।



"उनके भीतर अध्यात्म-शक्ति कार्य कर रही है और वही उनका मार्ग-दर्शन कर रही है।"

आज विज्ञान इतना आगे बढ़ चुका है कि कोई भी मनुष्य अभावग्रस्त न रहे, इसकी व्यवस्था की जा सकती है। किंतु साथ ही विज्ञान दिनोंदिन संहार के उपकरणों में भी वृद्धि करता जा रहा है। जब तक हम इसकी रोकथाम करके विज्ञान को अध्यात्म का पुट नहीं देंगे और साथ ही सार्वजनिक जीवन तथा सामाजिक संबंधों का अध्यात्मीकरण नहीं करेंगे, तब तक आधुनिक विज्ञान के नवीन संचार-साधनों और सामाजिक संगठनों से मानव-जाति को जो लाभ मिल सकते हैं, उनका हम सच्चा आनंद नहीं ले सकेंगे। विज्ञान और टेक्नालाजी मानव-जाति की सेवा कर सके, इसके लिए भावात्मक और गतिशील शांति अति आवश्यक है। और यह आध्यात्मिक शक्ति त्याग की साधना से प्राप्त हो सकती है, आक्रमण या आक्रामकता से नहीं।

दक्षिण अफ्रीका और भारत के अपने लंबे राजनीतिक जीवन के दौरान महात्मा गांधी के असंख्य कार्य-कलापों ने न तो कभी उनकी आंतरिक शांति को क्षुब्ध किया और न

उनके सहकर्मियों की शांति को। गांधीजी की शक्ति उनकी शांति की बाह्य अभिव्यक्ति मात्र थी, जिसे उन्होंने प्रार्थना और निष्ठापूर्ण निःस्वार्थ सेवा के द्वारा विकसित किया था।

'टाक्स विद रमण महर्षि' के कुछ ऐसे प्रसंगों से गांधीजी की निर्विकल्प अवस्था और पूर्ण भगवत्समर्पण के विषय में महर्षि के तलस्पर्शी विचारों का पता चलता है।

सन १९३८ में बाबू राजेंद्रप्रसाद भी कुछ दिनों तक रमणाश्रम में ठहरे थे। १८ अगस्त को वहां से विदा होते समय उन्होंने महर्षि से गांधीजी के लिए उनका संदेश मांगा। इस पर महर्षि का उत्तर था—"उनके भीतर अध्यात्म-शक्ति कार्य कर रही है और वही उनका मार्ग-दर्शन कर रही है। यही पर्याप्त है। इससे अधिक और क्या चाहिये?"

फिर २० सितंबर १९३८ को जब कुछ कांग्रेसियों ने स्वतंत्रता-संग्राम की सफलता के विषय में प्रश्नों की झड़ी लगा दी, तब महर्षि ने घोषणा की—"गांधीजी ने परम प्रभु को आत्मार्पण कर दिया है और उसी के अनुरूप वे निःस्वार्थ भाव से कार्य कर रहे हैं। फल की चिंता उन्हें नहीं है। फल जो भी हो, उसे वे अंगीकार करना जानते हैं। राष्ट्रसेवियों की यही वृत्ति होनी चाहिये।"

किंतु कांग्रेसी अपनी ही बात पर अड़े रहे—"क्या हम यह भी न जानें कि हमारा कार्य सार्थक भी है, या नहीं?" महर्षि ने फिर यही कहा—"राष्ट्रसेवा के मार्ग में गांधीजी का अनुसरण करो। एक ही शब्द है—समर्पण।"

कवयित्री सरोजिनी नायडू ने इन दो महापुरुषों के बीच के संबंध को बहुत ही सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है—"आज भारत में दो महान व्यक्ति हैं। एक हैं रमण महर्षि, जो हमें शांति प्रदान करते हैं। दूसरे हैं महात्मा गांधी, जो हमें एक क्षण भी शांति से नहीं बैठने देते। फिर भी दोनों का उद्देश्य एक ही है—भारत का आध्यात्मिक पुनरुज्जीवन।"

★

स्वागत नववर्ष !

आज आरंभ हो रहे इस नववर्ष में अवश्य ही मैं तीन सौ पैंसठ से अधिक सूर्योदय देखूंगा और उससे भी कहीं अधिक संध्याएं। इसमें अनेक वसंत आयेंगे, अनेक वर्षा ऋतुएं और शरत्-पूर्णिमाएं आयेंगी। इसमें सारे साल खेतों में लगातार और एक साथ कटाई व बुआई चलती रहेगी। जिस क्षण भी मेरे मन में कोई सद्विचार उठेगा, सूर्योदय होगा। जिस क्षण भी मैं द्वंद्वमुक्त हूंगा, स्वर्णिम संध्या होगी। दूसरों के सुख-सौभाग्य पर मेरे चित्त का प्रफुल्ल होना सौरभमय वसंत होगा। करुणा या कृतज्ञता से पलकों का भीगना जीवन-दायिनी वर्षा ऋतु होगी। स्वार्थ या भय के एक तंतु का भी टूटना शरत्-पूर्णिमा होगी। इस सारे वर्ष में सेवा के बीज बोऊंगा, मैत्री की फस्ल काटूंगा। प्रकृति के वर्ष में प्रकाश और अंधकार के क्षणों का परिमाण कुल मिलाकर बराबर होता है। किंतु मेरे इस नववर्ष में प्रकाश के क्षण अधिक होंगे और लंबे अंधकार के क्षण कम और छोटे होंगे। —अविरेश

★

कुलदेवी

मां !...मेरी मां !

–कन्हैयालाल मा० मुंशी



मैं अपनी असाधारण, स्नेहमयी और तपस्विनी मां का स्मरण आज भी बड़ी स्नेहश्रद्धा से करता हूं। उसने हमारे अनमेल विवाह को अपना आशीर्वाद देकर सुखी बनाया था। उसमें सत्य के रास्ते पर चलने का साहस था। कौन क्या कहता है, इसकी परवाह उसे नहीं थी। जब हम लोग विवाह के इंतजाम और साज-सामान के बारे में विचार-विमर्श कर रहे थे, तो मां ने कहा था–"मैं तुम्हारी मां भी हूं और पिता भी। इसलिए सारे निमंत्रणपत्रों पर मेरा हस्ताक्षर होगा और हम अपने सारे मित्रों और रिश्तेदारों को आमंत्रित करेंगे। आखिर हम लोग कोई पाप तो नहीं कर रहे हैं।" और इस तरह उसने सर्वाधिक शास्त्र-विरुद्ध एक विवाह पर अपनी विवेकपूर्ण अनुमति की मुहर लगा दी।

मेरी मां का हृदय विशाल था। वह एक महीयसी नारी थी। उसने वृद्धावस्था में भी मेरे लिए जो कुछ किया, उस अवस्था में शायद कोई दूसरी मां नहीं कर सकती थी। उसने जिस तरह मेरी भावनाओं को समझा, वैसा कोई दूसरा नहीं समझ सकता था। मेरी प्रथम पत्नी लक्ष्मी की मृत्यु के बाद उसने पुनः परिवार-संचालन का भार लिया था। उसने लीलावती को अपनी बेटी की तरह माना और मुझे उस 'स्वर्णिम स्वर्ग' को गढ़ने और मुझे उसकी संरक्षक आत्मा बनने में हर तरह का सहयोग दिया। वह मेरे बच्चों की देखभाल करती थी और जब मेरे परिवार में लीला की लड़की बाला आयी, तो उसे भी मेरी मां ने वही स्नेह-संरक्षण दिया, जो घर में दूसरे बच्चों को प्राप्त था।

विवाह के बाद भी मां के स्नेह-संरक्षण ने हमारे जीवन को आलोकित रखा। जब भी

उसे अवसर मिला, मुझे निंदा-लांछना से बचाया। यही नहीं, उसने मेरे और लीला के चारों ओर आदर्श की ऐसी ऊंची दीवार खड़ी की, कि हमने अपने जीवन की कठिन से कठिन विपत्तियों में भी एक-दूसरे का साथ नहीं छोड़ा और कभी भी असत्य की राह नहीं पकड़ी। मां मेरे जीवन की कुलदेवी थी।

०००

जलती मशाल

—डा० मोहनराव कामत

विवाह के बाद सातवें ही दिन मैं चिकित्साशास्त्र की उच्चशिक्षा के लिए अमरीका चला गया। आजीविका कमाते हुए पढ़ाई पूरी करने में मेरी आशा से कुछ अधिक ही वर्ष लग गये। पत्नी सरला को वहां बुलाने का संकल्प भी पूरा नहीं हुआ। म्युनिसिपल अस्पताल की नर्स मेरी विधवा मां अपने अल्प वेतन और मेरे द्वारा अमरीका से कभी-कभी भेजी जानेवाली छोटी रकमों के सहारे घर चलाती रही। मां पत्रों में कभी अपने कष्टों की चर्चा नहीं करती थी, यों मोहल्ले-भर के लोगों के सुख-दुःख का ब्योरा देती रहती थी।

फिर एक दिन एम० डी० का पुछल्ला अपने नाम के साथ जोड़कर मैं स्वदेश लौटा। दो दिन की वायुयात्रा और १४ घंटे की रेलयात्रा पूरी करके जब घर पहुंचा, तो रात के दो बज गये थे। मैं अपने आने की खबर नहीं दे पाया था; क्योंकि मुझे अचानक ही एक वायुयान में सीट मिल गयी थी। मां दस घंटे की ड्यूटी बजाकर लौटी थी। वर्षों के बाद के उस मिलन में कितनी ऊष्मा थी! किंतु मां ने ही कहा—"बहू सवेरे से खट रही है। तुम भी थके हुए हो, जल्दी से सो जाओ।" कितनी मीठी मां! मगर रात को दो बजे के करीब मेरे कमरे का किवाड़ जोरों से खटखटाया जाने लगा। सरला ने दरवाजा खोला। मां कह रही थी—"मोहन को जगाओ, पास की गंदी बस्ती में आग लग गयी है। लोगों को हमारी जरूरत होगी।" मैंने नींद के भार से झुकी अधखुली आंखों से देखा—आंगन में दो-चार आदमी लालटेनें लिये खड़े हैं; मां के कंधे पर शाल और हाथों में फर्स्ट एड का बक्सा है।

सरला मुझे जगाने में झिझकी। मेरी बूढ़ी दादी अपनी खटिया पर से बोली—"बैठ, आराम कर लेने दे बेचारे को। सात साल बाद आज ही तो आया है। और थका हुआ भी कितना है!" पर मां ने बड़ी दृढ़ आवाज में कहा—"अम्मां, मोहन डाक्टर है। जब लोग जलकर मर रहे हों, वह आराम कैसे कर सकता है!" मैं चुपचाप उठा और कोट पहनकर मां के साथ चल पड़ा। सारी रात हम दोनों घायलों की मरहम-पट्टी करते रहे।

मां आज नहीं है। लेकिन उस अंधेरी रात में उसने कर्त्तव्यबोध की जो मशाल मेरे हाथ में थमायी थी, उसकी रोशनी आज भी मुझे राह दिखा रही है।

मेरी ज्योति

—हेलन केलर

फिर मनहूस फरवरी मास आया और आयी वह बीमारी, जिसने मेरे नयन और मेरे कान हमेशा के लिए बंद कर दिये और मुझे नवजात शिशु के अचेतन मानस में धकेल दिया। इसे पेट और दिमाग का तीव्र संकुचन बताया गया। डाक्टर का खयाल था, मैं जिंदा नहीं बचूंगी। लेकिन एक दिन सवेरे बुखार उसी तरह अचानक और चुपचाप चला गया, जैसे कि वह आया था। उस प्रातःकाल हमारे घर खुशियां मनायी गयीं। लेकिन किसी को मालूम न था—डाक्टर को भी नहीं—कि मैं अब कभी भी देख न सकूंगी, सुन न सकूंगी।

मुझे स्मरण नहीं है कि बीमारी के बाद के पहले महीनों में क्या-क्या हुआ। मैं इतना ही जानती हूं कि मैं मां की गोद में बैठी रहती थी, या जब वे घर का काम-काज कर रही होतीं, तो मैं उनके लहंगे से चिपकी रहती थी। मेरे हाथ हर वस्तु को टटोलते थे, हर हलचल का पता लगाते थे और इस तरह मैं बहुत-सी बातें सीख गयी।

शीघ्र ही मुझे भावों और विचारों के संप्रेषण की आवश्यकता अनुभव होने लगी और मैं अनघड़ संकेतों द्वारा यही करने लगी। सिर झटकने का अर्थ था "नहीं", आहिस्ते से एक बार ऊपर-नीचे सिर हिलाने का अर्थ था "हां", हाथ से खींचने का अर्थ था "आओ", धके-लने का "जाओ"। अगर मैं पावरोटी चाहती तो पावरोटी काटने और उस पर मक्खन लगाने की क्रिया का अनुकरण हाथों से करती। अगर मैं आइसक्रीम चाहती, तो फ्रीजर यंत्र चलाने का इशारा करती और शरीर को ऐसे कंपाती, जैसें ठंड लग रही हो।

मां मुझे बहुत कुछ सिखाने-समझाने में सफल हो गयीं। जब भी वे मुझसे कोई चीज मंगवाना चाहतीं, मैं तुरंत समझ जाती, और तुरंत दौड़ती हुई दूसरी मंजिल पर या जहां कहीं भी वे बतातीं, चली जाती। सच तो यह है कि उस लंबी रात में जो कुछ भी उजला और अच्छा था, वह सब मां की ही बदौलत था।

मां के संबंध में कैसे लिखूं? वे मेरी इतनी आत्मीय हैं कि उनके बारे में कुछ भी बोलना असंस्कारिता लगती है।



धरती पर के फूल एक-दूसरे से जलते नहीं, हालांकि उनमें एक दूसरे से ज्यादा खूबसूरत और खूबियों से भरा हो सकता है। वे सहृदयता के साथ एक-दूसरे के पड़ोस में रहते हैं और एक-दूसरे की खूबियों का आनंद उठाते हैं। —जेकब बोह्मी



डा. हरगोविंद खुराना

कृष्णकुमार गुप्त

सामान्यत: जीवमात्र की और विशेषत: मानव की जीवनगत समस्त गतिविधियों की प्रेरक प्रवृत्ति मूलत: एक ही है—जीवित रहने की आकांक्षा। हम और आप जीवित हैं, अर्थात् जीवनयुक्त हैं। परंतु जिस 'जीवन' को हम जीते हैं, या जिसके अस्तित्व के कारण हम जीवित हैं, वह 'जीवन' आखिर क्या है, कैसा है, कहां से आया, कैसे आया, कब आया और क्यों आया ?—जीवन को लेकर ऐसे कितने ही सवाल हो सकते हैं, जिनका उत्तर पाने के लिए हर मानव-पीढ़ी आदि काल से आज तक अपने बुद्धि-पराक्रम के अनुसार प्रयत्न करती आ रही है। मगर 'जीवन' की गुत्थी है कि सुलझने का नाम नहीं लेती।

जीवन की उत्पत्ति अथवा प्रकृति संबंधी मूल प्राथमिक प्रश्नों को फिलहाल छोड़ भी दें, तो भी जीवन के लक्षण संबंधी अनेक गौण प्रश्न भी कोई कम जटिल नहीं हैं। जीवधारियों का एक प्रमुख लक्षण है—आनुवंशिकता। वैज्ञानिक क्षेत्रों में आजकल इसकी चर्चा काफी गर्म है।

हम भारतवासियों के लिए इस दिशा में विशेष अभिरुचि का, संभवत: कुछ-कु[illegible] गौरव का भी एक प्रमुख कारण और है। आनुवंशिकता के संकेतों (कोड्स) [illegible] सार्थक और अणु-संरचनामूलक व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए जिन तीन अमरीकियों को १९६८ का नोबेल पुरस्कार दिया गया है, उनमें एक हैं—डा० हरगोविंद खुराना, जो अमरीकी नागरिक होते हुए भी मूलत: भारतीय हैं।

रवींद्रनाथ ठाकुर (साहित्य १९१३) और डा० चंद्रशेखर वेंकट रामन् (भौतिक-शास्त्र १९३०) के बाद नोबेल पुरस्कार पानेवाले तृतीय भारतीय हैं डा० खुराना। इसलिए उनका सार्वजनिक चर्चा और जिज्ञासा का विषय बन जाना स्वाभाविक था। लेकिन चर्चा व्यक्ति को लेकर ज्यादा हुई, उनके शोधकार्य के बारे में कम। वैज्ञा-निक शोध की सुविधाओं के अभाव के कारण इतने प्रतिभाशाली वैज्ञानिक का विदेशी नागरिकता ग्रहण करना हमारे लिए राष्ट्रीय अगौरव की बात लग सकती है, विशेष इसलिए कि ताराभौतिकीविद् डा० चंद्रशेखर और गणितज्ञ नारळीकर जैसे कई प्रख[illegible] [illegible]



पोर्ट्रेट : बी० एन ओके

मेधावी विज्ञानी भी विदेशों में बस चुके हैं। लेकिन हमें याद रखना चाहिये कि यह 'ब्रेन ड्रेन' का सवाल ब्रिटेन जैसे साधन-संपन्न देशों को भी सता रहा है।

तो मुख्य बात डा० खुराना का वह शोध-कार्य है, जिसके कारण उन्हें नोबेल पुरस्कार से विभूषित किया गया और जिसके कारण इस सारी चर्चा की शुरूआत हुई है। जैसा कि आप जानते हैं, डा० खुराना को यह सम्मान आनुवंशिक संकेतों की अणुसंरचना-मूलक व्याख्या प्रस्तुत करने के कारण मिला है। मगर 'आनुवंशिक संकेत' क्या हैं ? और उनकी 'अणुसंरचना-मूलक व्याख्या' से क्या अभिप्राय है ?

सभी जीवधारियों की एक विशेषता है—अपने अनेक गुणों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान करते चले जाना। अनेक लक्षण हमें अपने मां-बाप से मिले हैं, हमारे बच्चों में हमारे अनेक लक्षण वैसे के वैसे देखे जा सकते हैं—यही आनुवंशिकता है। और 'जीन' इसके लिए जिम्मेदार हैं।

प्रश्न है, जीन किस प्रकार आनुवंशिकता को प्रेषित और क्रियान्वित करते हैं ? मानव-शरीर अरबों छोटी-छोटी कोशिकाओं से मिलकर बना है। कोशिकाओं का मुख्य अवयव क्रोमोसोम (गुणसूत्र) है। क्रोमोसोम मिलकर बनते हैं जीनों से। अनेक आनुवंशिक और जैवरासायनिक प्रयोगों से यह

बात काफी पहले ज्ञात और स्थापित हो चुकी है। 'आनुवंशिक निर्देशों' के वाहक हैं डी० एन० ए० (डीआक्सिराइबो न्यूक्लिक एसिड) नामक रसायन के अणु, जो संरचना की दृष्टि से काफी जटिल होते हैं। जीन का निर्माण जिन रसायनों से मिलकर होता है, उनमें डी० एन० ए० भी एक है।

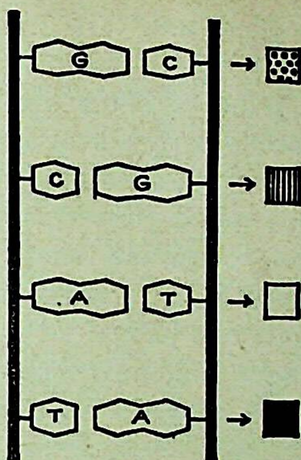
सन १९५३ में अमरीका के जेम्स ड्यूई वाट्सन और ब्रिटेन के फ्रांसिस क्रिक ने मिलकर डी० एन० ए० की अणुसंरचना का पता लगाया। शोधकर्ताओं के अनुसार, डी० एन० ए० का अणु दोहरी कुंडलियों से मिलकर बनता है। घुमावदार सीढ़ी की तरह ये दोनों कुंडलियां बराबर-बराबर दूरियों पर बंधकों के द्वारा जुड़ी रहती हैं। वाट्सन और क्रिक ने ही पहली बार आनुवंशिक संकेतों का स्पष्टीकरण किया। उन्होंने सिद्ध किया कि दोनों कुंडलियों को जोड़नेवाले बंधक वास्तव में 'न्यूक्लियोटाइड' नामक रासायनिक यौगिकों के जोड़े हैं।

डी०एन०ए० में पाये जानेवाले न्यूक्लियोटाइड चार प्रकार के होते हैं; परंतु कुंडलियों की लंबाई में वे जिस क्रम से जुड़े रहते हैं, वह एक दूसरे से बिलकुल अलग होता है और यह क्रम-विशेष ही संभवतः किसी-न-किसी रूप में आनुवंशिक संकेतों का आधार है।

न्यूक्लियोटाइड जटिल रसायन हैं और रसायन-वर्गीकरण की दृष्टि से प्रोटीनों के अंतर्गत आते हैं। जिन अमीनो अम्लों के मेल से मानव-जीन के चारों न्यूक्लियोटाइड बनते हैं, उनकी संख्या बीस है। आनुवंशिक संकेत-भाषा को सुलझाने के प्र[illegible] के दौरान वैज्ञानिकों ने यह निश्चय कि[illegible] कि किसी भी विशेष अमीनो अम्ल [illegible] "बुलाने" के लिए चार न्यूक्लियोटाइ[illegible] वर्णों में से तीन वर्ण "आनुवंशिक संकेत" [illegible] होने चाहिये। सन १९६१ में नाइरेनबर्ग [illegible] डी० एन० ए० के एक न्यूक्लियोटाइड [illegible] एडेनीन (ए) और बीसों अमीनो अम्[illegible] की सहायता से एक कुंडली का संश्ले[illegible] किया, जिसमें केवल फेनिलएलानीन ना[illegible] अमीनो अम्ल की शृंखला उपस्थित [illegible] इस प्रकार नाइरेनबर्ग इस निष्कर्ष पर पहुं[illegible] कि उनके संश्लेषण में एडेनाइन न्यूक्लि[illegible] टाइड (ए० ए० ए०) के तीन वर्णों वा[illegible] संकेत कोशिका को मिला, जिसमें फेनि[illegible] एलानीन को इस्तेमाल करते हुए, प्रोटी[illegible] निर्माण करने का आदेश था।

विस्कांसिन विश्वविद्यालय के एन्जा[illegible] शोध-प्रतिष्ठान के निदेशक डाक्टर ह[illegible] गोविंद खुराना भी स्वतंत्र रूप से इसी [illegible] पर शोधकार्य कर रहे थे। डा० खुराना [illegible] कार्य को आगे बढ़ाकर ऐसी स्थिति तक पहुं[illegible] चाने में सफल हुए हैं, जहां से भावी [illegible] वनाओं का राजमार्ग स्पष्ट दीखने लगा है [illegible] धुंधलापन दूर हो चुका है और आनुवंशि[illegible] संकेतों को अब वैसे ही स्पष्टता से [illegible] जा सकता है, जैसे कि टेलिग्राफिक कोड [illegible] यह बहुत बड़ी बात है। छोटी-सी कोशि[illegible] में चल रही जीव-प्रक्रियाएं किस प्र[illegible] किसी मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व का प्र[illegible] तैयार करती जाती हैं—इसे अब काफी ह[illegible]





आनुवंशिकता का आधार है, 'जीन' के भीतर विद्यमान डीआक्सिराइबो न्यूक्लिक एसिड— डी० एन० ए० । इसकी आणविक संरचना चक्करदार सीढ़ी जैसी कल्पित की गयी है। इसमें दो कुंडलियां हैं — शर्करा और फासफोरस । चार बुनियादी बंधक — एडेनाइन, ग्वानाइन, साइटोसाइन और थाइमाइन —इन कुंडलियों में डंडे के रूप में जड़े हुए हैं । डंडे बड़े और छोटे हैं, पर इस तरह आपस में जुड़ते हैं कि एक छोटा और एक बड़ा डंडा मिलकर सीढ़ी का एक पूरा बंधक बनता है ।

समझा जा सकता है ।

डा० खुराना ने उस दिन को और समीप ला दिया है, जब अणुजैविकी द्वारा आनुवंशिक दोषों को दूर करना, आनुवंशिकता को नियंत्रित करना और शायद स्वयं 'जीवन' का निर्माण करना संभव होगा ।

भारत के सपूत होते हुए भी डा० खुराना भारतीयों के लिए अपरिचित हो सकते हैं; लेकिन कैलिफोर्निया (अमरीका) के प्रसिद्ध जैवरसायनज्ञ डा० मेल्विन कोह्न का कहना है कि अमरीका में जैवरसायनशास्त्र का प्रारंभिक कोर्स पढ़नेवाले छात्र भी डा० खुराना की बाबत बहुत कुछ बता देंगे। उस क्षेत्र में उन्हें कोई बिना जाने रह ही नहीं सकता ।

कोह्न ने अपने मित्र खुराना को नोबेल पुरस्कार मिलने की खबर नयी दिल्ली में सुनी और उन्होंने यह भी बताया कि खुराना अमेरिकन नेशनल एकेडेमी आफ सायंसेज के सदस्य हैं । इस संस्था के कुल पांच सौ सदस्य हैं और इसका सदस्य चुना जाना किसी भी अमरीकी वैज्ञानिक के लिए बड़ी प्रतिष्ठा की बात है ।

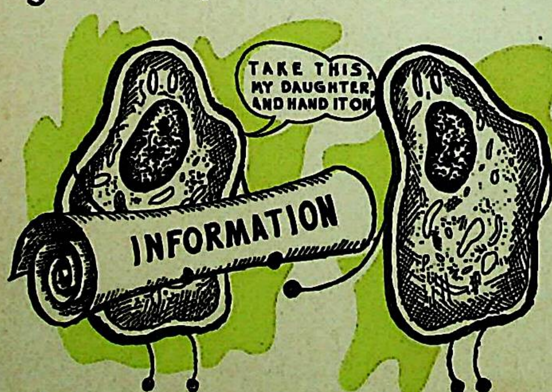
डा० खुराना के बाल्यकाल के गुरु ७६ वर्षीय मास्टर दीनानाथ ने जो बातें बतायीं, वे भी कम दिलचस्प नहीं हैं। अपने शिष्य को उन्होंने किताबी कीड़ा बताया और कहा— "मैंने उसे एक भी क्षण बरबाद करते कभी नहीं देखा। जब उसे हाईस्कूल में प्रथम स्थान के बजाय दूसरा स्थान प्राप्त हुआ, तो वह ऐसे फूट-फूटकर रोया था, जैसे उसका सब कुछ लुट गया हो।"

डा० खुराना के बड़े भाई श्री नंदलाल खुराना दिल्ली के एक स्कूल में अध्यापक हैं। संवाददाताओं ने जब उन्हें घेर लिया, तो वे घर के अंदर गये और एक अलबम उठा लाये और अपने अनुज के परिवार के चित्र दिखाते हुए बोले—"यह हरगोविंद की छोटी बेटी जूली है। यह बड़ी लड़की एमिला और यह उसकी पत्नी है।" और कितना अपनत्व और अभिमान था उनके स्वर में!

अविभक्त पंजाब के रायपुर गांव में एक पटवारी के घर ९ जनवरी १९२२ को जन्मे हरगोविंद खुराना बचपन से ही मेधावी विद्यार्थी रहे और छात्रवृत्तियां पाते रहे। सन १९४३ में उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से बी० एस०-सी० (आनर्स) और १९४५ में एम० एस-सी० (आनर्स) प्राप्त किया। अगले वर्ष भारत सरकार की छात्रवृत्ति पाकर वे ब्रिटेन गये, जहां उन्होंने लिवरपूल विश्वविद्यालय में प्रो० ए० राबर्टसन के अधीन शोधकार्य करके डाक्टरेट ली। फिर भारत सरकार के ही फेलोशिप से वे ज्यूरिच के फेडरल इन्स्टिटयूट आफ टेक्नालाजी में प्रो० वी० प्रेलाग के अधीन शोधकार्य करते रहे।

इतनी योग्यता अर्जित करके स्वदेश लौटने के बाद वे दिल्ली के लाल किले के एक बंगले की नौकरों की कोठरी में रहकर नौकरी ढूंढ़ते रहे। इस

आनुवंशिक संपदा



लो बेटी, यह वंशानुगत निधि संभालो; इसे अपनी संतान को सुरक्षित संभलवा देना।

खोजने पर भी कोई कदरदान नहीं मिला, तो फिर ब्रिटेन चले गये और नफील्ड फाउंडेशन की छात्रवृत्ति के बल पर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में लार्ड टाड के अधीन शोधकार्य करने लगे।

सन १९५२ में उन्हें वैंकूवर (कनाडा) की ब्रिटिश कोलंबिया रिसर्च कौंसिल के रसायनज्ञ दल का अध्यक्ष बनाया गया।

जनवरी

सितंबर १९६० में वे विस्कांसिन विश्व-विद्यालय के एन्जाइम शोध प्रतिष्ठान के प्राध्यापक बनकर अमरीका चले गये; बाद में उन्हें उस प्रतिष्ठान का निदेशक पद दिया गया। अभी दो वर्ष पूर्व उन्होंने अमरीकी नागरिकता ग्रहण कर ली।

वैज्ञानिक पुरस्कार और अंतर्राष्ट्रीय सम्मान डा० खुराना के लिए नयी चीजें नहीं हैं। कनाडा की केमिकल इन्स्टिटयूट का मर्क पुरस्कार (१९५८) और इन्स्टिटयूट आफ पब्लिक सर्विस का स्वर्णपदक (१९६०) वे पा चुके हैं। १९६७ में टोकियो में हुए सातवें अंतर्राष्ट्रीय जैवरसायन सम्मेलन का उद्घाटन भाषण उनसे दिलवाया गया और नोबेल पुरस्कार की घोषणा से एक दिन पूर्व ही उन्हें और डा० नाइरेनबर्ग को सम्मिलित रूप से लूसिया ग्रास हार्विट्ज पुरस्कार (१,८७,५०० रु०) प्रदान किया गया।

नोबेल पुरस्कार के पश्चात् नवंबर १९६८ में उन्हें बुनियादी महत्त्व के चिकित्साशास्त्रीय शोधकार्य के लिए ७५ हजार रुपये का अल्बर्ट लास्कर पुरस्कार भी प्रदान किया गया है।

फिर भी नोबेल पुरस्कार का समाचार मिलने पर उन्होंने वैज्ञानिकों को शोभा देनेवाली विनम्रता के साथ कहा–"यह शोधकार्य तो वास्तव में 'टीम-वर्क' था।"

नोबेल पुरस्कार के प्रसंग में विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में खुराना की भारतीयता का उल्लेख तक न होना हमें अखर सकता है। लेकिन वैज्ञानिक किसी भी देश का हो, विज्ञान तो समस्त विश्व की साझी सारस्वत संपदा है।



मास-भविष्य

मानव-जीवन की प्रेरक शक्ति क्या है? सुखलिप्सा, जैसा कि फ्रायड ने कहा है? अधिकारलिप्सा, जैसा कि एडलर ने माना है? नहीं, सार्थकता की खोज–डा० विक्टर फ्रैंकल का कहना है। नाजी बंदी-शिविर में वर्षों रहकर भी जीवन-निष्ठा न खोनेवाले इस वियेना-निवासी मानस-चिकित्सक का परिचय फरवरी १९६९ के नवनीत में पढ़िये।

पी० एल० ४८० से भारत करोड़ों रुपये का गेहूं, कपास आदि मंगवाता है और उसके दाम से घर-खर्च चलाता है। लेकिन प्रा० विनायक दांडेकर ने 'पराधीनता का नया अवतार' में इस व्यवस्था के खतरों की ओर ध्यान खींचा है।

'पटेल ने यह प्रश्न भी सुलझाया' में क० मा० मुंशी से सुनिये कि सरदार पटेल ने संविधान-निर्माण के समय अल्पसंख्यकों को रिजर्व सीटों के मोह से कैसे मुक्ति दिलायी।

अन्य लेख : प्रसाधन शल्यचिकित्सा; दीपंकर श्रीज्ञान का तिब्बत प्रस्थान; स्त्री के संग कैसे जियें? फ्लोबा की निजी चिंतन-पोथी से; बाघों का साम्राज्य–दूसरी किस्त।



नार्मन कजिन्स



अणुयुगी मानव का अधिकार-पत्र

हम इस धरती के निवासी अंततः इस बात के लिए उत्तरदायी हैं कि हमारी इस दुनिया पर क्या बीतती है।

हम जीवन को अपार मूल्य की वस्तु मानते हैं। जीवन का संवर्धन, पोषण और आदर करना चाहिये।

यदि इन आस्थाओं को वास्तविक बनाना है, तो हमें एक-दूसरे के प्रति और आनेवाली मानव-पीढ़ियों के प्रति कर्तव्य स्वीकार करने होंगे।

यह हमारा कर्तव्य है कि धरती पर जीवन को उदात्त बनायें और उसे आक्रमण, अपमान, अन्याय, भेदभाव, बीमारी और दुरुपयोग से बचायें।

हमारा कर्तव्य है कि हम मानव-अस्तित्व के लिए आवश्यक परिस्थितियों को सुरक्षित रखें, विश्व के साधन-स्रोतों का विकास और उपयोग मानव-कल्याण के लिए करें, जमीन का बचाव और परिरक्षण करें, ताकि वह भरपूर अन्न दे, जल और वायु को विषों से मुक्त रखें।

और सबसे बढ़कर हमारा कर्तव्य है कि हम अपने विश्व और उसकी समस्त वस्तुओं को इस अणुयुग में अर्थहीन हिंसा के परिणामों से बचायें।

हमारा कर्तव्य है कि विश्व में स्थायी शांति की परिस्थितियों का निर्माण करें, ताकि मनुष्य को दूसरे को मारना और दूसरे के हाथों मरना न पड़े।

हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी बुद्धि और ज्ञान का उपयोग धरती पर समस्त मनुष्यों के जीवन को भरा-पूरा बनाने और



प्रत्येक मनुष्य के पूर्ण विकास को प्रोत्साहन देने के लिए करें।

इन कर्तव्यों की पूर्ति के लिए हमें बलपूर्वक कहना होगा कि मानव-परिवार में मानव की सबसे पहली वफादारी मानव के प्रति है। मानव-समाज की सार्वभौमता राष्ट्रों की सार्वभौमता से पहले और ऊपर है। मानवीय राष्ट्र-कुल के नागरिकों के नाते हमें यह मांग करने का अधिकार है कि राष्ट्रों के पारस्परिक व्यवहार में अराजकता समाप्त हो। अंतर्राष्ट्रीय अराजकता अपरिमित भय और क्लेश को जन्म देती है और मानव-समाज के विघटन एवं स्वयं जीवन के सर्वविनाश का कारण बन सकती है।

हमें यह मांग करने का अधिकार है कि राष्ट्र आपस में कानून के वशवर्ती रहें, जिस प्रकार वे अपनी सीमाओं के अंदर नागरिकों से कानून के वशवर्ती होने की मांग करते हैं।

हमें यह मांग करने का अधिकार है कि राष्ट्रसंघ विश्व-कानून का स्रोत बने और



सृजनात्मक एवं न्यायपूर्ण शांति की पक्की व्यवस्था के लिए राष्ट्रों के तर्कहीन, उत्तरदायित्वहीन तथा हिंसात्मक सलूक के स्थान पर व्यवस्थित एवं व्यवहार्य कार्य-विधान स्थापित करे।

इन कर्तव्यों तथा अधिकारों के ज्ञापन एवं एक उच्चतर वफादारी के सबल प्रतिपादन के द्वारा हम एक ऐसे विश्व के निमित्त प्रतिज्ञा लेते हैं, जो मानव के लिए सुरक्षित एवं अनुरूप बनाया गया है।



दुगुने स्नेह का अधिकार

अपने एक मित्र के यहां इलाहाबाद गया हुआ था। उन्हीं के घर के पास राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन का घर था। मेरे मित्र के साथ ही टंडनजी के दो भतीजे कृष्ण और गोपाल पढ़ते थे। इसलिए मेरे मित्र अक्सर उनके घर जाया करते थे। एक दिन मैं भी उन्हीं के साथ टंडनजी के घर पहुंच गया। मेरे मित्र का नाम भी कृष्णगोपाल था। मित्र को देखते ही टंडनजी बोले—"आओ भाई कृष्णगोपाल! तुम पर तो मेरा दुगुना स्नेह है। जानते हो क्यों? तुम हमारे दोनों भतीजों के बराबर ही हो। ये दोनों मिलकर कृष्ण+गोपाल हैं और तुम तो अकेले ही कृष्णगोपाल हो।"

और हम सबों के साथ ही इतने जोर से वे भी ठहाका लगाकर हंस पड़े कि आज भी उस महामानव की वह मुक्त हंसी स्मरण हो आती है।

—लक्ष्मीनारायण 'शोमन'



आज / हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

हिम-सा पिघल रहा है
अस्तित्व आज,
नंगे पहाड़-से लगते हैं संबंध।

कहने को तो–
आवाजों के द्वार खुले हैं,
पर संगीन पहरा है,
इजाजत लेनी पड़ती है–
आने-जाने की।
चोटी से घाटी तक है अनुगूंज–
गलत हवाओं की,
गंदे नालों की दुर्गंध
भर गयी बहती धाराओं में।

सूरज और चांद ने
कसम खायी है
नहीं उतरेंगे वे धरती पर,
नहीं उगेंगे अब आसमान पर,
कृत्रिम सूरज-चांद बन गये हैं
जब चाहो दिन-रात बना दो।

पूनम रंगरेजन / रजनी पोद्दार

अमावस की धोबन ने
चांदनी की चूनर का
धो-धो कर डाला
सारा रंग फीका।

नया रंग रंग देगी
पूनम रंगरेजन
आ रही लगाये, चंदा का टीका

निकष / दिनकर सोनवलकर

जिसका करते ही तिरस्कार
कि वह तो क्षुद्र है
द्वार पर खड़ा है –
जिंदगी की पाठशाला में
वही तुमसे ज्यादा पढ़ा है।
अगर उसे छू लेते हैं
तुम्हारे शब्द
तो समझो कि तुमने
आत्मा का काव्य गढ़ा है।

नैवेद्य / रामनारायण उपाध्याय

फुल्के की तरह
रात के काले तवे पर
उलटने पुलटने के पश्चात्
दिन की भट्ठी में सिककर
जिस जिंदगी पर दाग नहीं लगता वही
भगवान के नैवेद्य लगाने के काम आती है।

मोती / मल्लिका

कहा था उन्होंने–
"डूब जाना
गुंजन में
फिर ही मिलेगा
मौन का मोती
वहां तुम्हें।"

अमिट रेखाएं

पद्मा दूर के रिश्ते से मेरी भांजी लगती थी। आना-जाना अधिक न होने से एक तरह से हमारा रिश्ता टूट-सा गया था। कारण, वह गांव में थी और मैं शहर में।

शादी हुई तो वह पति के साथ शहर आ गयी थी। इस बात का भी पता मुझे तब चला, जब कि मेरी बुआ उसे साथ लेकर एक दिन मेरे घर आयीं।

बातों से पता चला कि तीन-चार महीनों में वह मां बननेवाली है। मेरी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। मैं सबको वडपळनि के मंदिर में ले गया। जाते समय पद्मा ने मुझसे कहा–"मामाजी! मैं एम०एस० सुब्बुलक्ष्मी का गाना सुनना चाहती हूं। परसों कृष्ण-गान सभा में उनका गायन होनेवाला है। मुझे ले चलो न ?"

उसका खयाल था कि बिना पैसा खर्च किये उसे गाना सुनने ले जाने की क्षमता मुझ में है। इसी कारण से उसने मुझसे यह प्रस्ताव रखा था।

मैं स्वभाव से संकोची था और 'कांप्लिमेंटरी टिकट' मंगवाने में आगा-पीछा सोचने लगा। पैसा देकर टिकट खरीदना भी उस समय मेरे लिए असंभव था। क्योंकि महीने का अंतिम सप्ताह चल रहा था। मध्यम-वर्गीय स्थिति वाले व्यक्ति की हालत जैसी होती है, वैसी ही हालत मेरी थी।

मैंने टालमटोल करते हुए कहा–"अगली बार उनका गायन जब होगा, तब जरूर ले जाऊंगा।"

उसने झट कहा–"अगली बार हम-तुम मिलें तब न ?"

"कैसी बातें करती हो ? अब तो तुम हमारे ही शहर में आ गयी हो! अब तो हम बराबर मिलते रहेंगे। और मैं तुम्हें जरूर एक बार सुब्बुलक्ष्मी का गायन सुनाऊंगा।"

उसने फिर जिद नहीं की और जैसे संतोष कर लिया।

कुछ दिनों के बाद वह प्रसव के लिए मायके चली गयी। मां-बच्चे की बड़ी उत्सुकता के साथ मैं राह देख रहा था कि एक पत्र आया :

"अब पद्मा इस दुनिया में नहीं है।"

ओह! कैसी विडंबना है! मेरे कानों



कृष्ण और बलराम

[पश्चिम बंगाल का मृत्तिका शिल्प]

में उसके वे शब्द गूंजने लगे—"अगली बार हम-तुम मिलें, तब न ?"

अब भी, जब कभी मैं संगीत-सभाओं में जाता हूं, मधुर गीतों के मध्य, पद्मा का वह कथन गूंज उठता है। उसका सुंदर मुख अमिट रेखा बनकर आंखों के सामने उभर आता है। —रा० वीलिनाथन्

०००

गर्व की बात

चने, मूंगफली, मक्की आदि बेचनेवाला एक व्यक्ति रोज शाम को हमारे यहां आया करता है। वैसे चने, मूंगफली आदि मैंने शायद ही कहीं और खाये होंगे। पता नहीं, वह किस तरह उन्हें भूनता है कि वे खाने में बड़े करारे और खस्ता लगते हैं। फिर हर चीज में से उसकी उठती हुई खास महक महसूस की जा सकती है। अड़ोस-पड़ोस के सभी घरवाले उससे कोई न कोई चीज जरूर खरीदते।

जब से उसने हमारे यहां आना शुरू किया है, मैंने उसे हमेशा नीली धारि... वाली, सस्ते-से कपड़े की एक ही कमी... पहने देखा है। खस्ता हालत हो जाने ... भी वह हमेशा धुली हुई, साफ-सुथरी होती... फिर धीरे-धीरे वह ऐसी तार-तार हो ... कि यह सोचकर हैरानी होती थी कि ... उसे किस तरह धोता, पहनता या ... रता होगा !

मुझे उसकी गरीबी पर तरस आया... एक दिन मुझसे रहा न गया और जब मैं... उससे चने खरीदे, तो अपने पति की ए... कमीज उसे देनी चाही, जो अभी नयी ... थी और तंग होने के कारण उन्होंने पहन... छोड़ दिया था।

कमीज देखकर उसके चेहरे पर ... का भाव आया। फिर उसने बड़ी विनम्र... से कमीज लेने से इन्कार करते हुए ... कि ईश्वर का दिया उसके पास सब कुछ है।

तब मुझे लगा कि जहां किसी पर ... करना गर्व की बात है, वहां जरूरतमंद ... पर भी किसी की दया स्वीकार न ... तथा संतोषपूर्वक जीना और भी बड़े गर्व की बात है। —सु...

०००

सज्जनता

घर में मां की तबीयत अधिक ... थी। अतः कुछ विशेष दवाइयां, जो ... छोटे शहर में उपलब्ध न हो सकी थीं, ... के लिए निकट के शहर भोपाल गया। ... से उतरकर सिटी बस में जा बैठा। बस ... चली, तो थोड़ी देर बाद मैंने अपने ...

जेब में रखे रुपयों को टटोला। हाथ जेब पर रखते ही मेरा दिल धक्-से हो गया। जेब से रुपये नदारद थे। कई बार सभी जेबों को, खाली होते हुए भी बार-बार खाली किया, लेकिन क्या मिलता? लगता है, रुपये बस में चढ़ते समय ही कहीं गिर गये थे अथवा किसी ने मार दिये थे। बस में बैठे सभी यात्रियों से पूछा, लेकिन सभी ने सिर हिला दिया। अंत में निराश होकर अपनी सीट पर बैठ गया।

मेरी बगल में बैठे यात्री ने सहानुभूति दिखायी। मैंने उन्हें बताया कि इटारसी से आया हूं। ८० रुपये थे। दवा नहीं मिलेगी, तो मेरी मां का बचना मुश्किल हो जायेगा।

निश्चित स्थान आने पर मैं उतर गया। मेरे साथ बैठा वह यात्री भी उतरकर मेरे पास आ खड़ा हुआ। कुछ देर बाद वह बोला—"तुम मुझसे अस्सी रुपये ले जाओ और दवा खरीद लो।" रुपये मिलने की आशा तो नहीं थी; अतः मुझे अत्यंत खुशी हुई। उस व्यक्ति ने अस्सी रुपये दिये, मुझे अपना पता दिया और मुझसे मेरे घर का पता लेकर चला गया। मैंने आवश्यक दवाएं खरीदीं और तुरंत अपने शहर लौट आया।

दो दिन बाद अस्सी रुपये जुटाकर उस व्यक्ति को भेजने की मैं सोच ही रहा था कि एक पत्र मिला, जो उसी व्यक्ति ने भेजा था। लिखा था—"भाई साहब, माफ करना। आपके रुपये मुझे ही मिले थे। चूंकि पहली बार पूछने पर मना कर दिया था, इसलिए बेइज्जती न हो, इस डर से बाद में सत्य भी प्रकट न कर सका। आशा है, आप मुझे माफ करेंगे।" मैं आज भी उस पत्र को नहीं भूला हूं।

—गुलाबसिंह चौहान



पंजाब केसरी महाराज रणजीत सिंह एक बार अपने सैनिकों के साथ कहीं जा रहे थे। अकस्मात् सामने से एक पत्थर आकर उनके सिर पर लगा। सैनिक तत्काल रुक गये। पत्थर मारनेवाले की खोज शुरू की।

सैनिकों को एक बुढ़िया दिखी, जो अपराधिनी की भांति सहमी हुई थी। उन्होंने उसे बंदी बना लिया और महाराज के समक्ष उपस्थित किया। बोले—"महाराज इसी दुष्ट ने आपको पत्थर मारा है।" भय से कांपती हुई बुढ़िया बोली—"महाराज, मैं बेकसूर हूं। मेरा बच्चा दो दिनों से भूखा है। घर में एक दाना अनाज नहीं। कहीं कुछ नहीं मिला। मगर बच्चे का पेट भरना था। सामने के पेड़ पर फल दिखे। पत्थर मारकर उन्हें तोड़ने की कोशिश कर रही थी। मेरी बद-किस्मती से एक पत्थर आपको लग गया। माफ कीजिये महाराज।"

रणजीत सिंह सेनापति से बोले—"इसे कुछ अशर्फियां देकर छोड़ दो।"

सेनापति ने आश्चर्य से पूछा—"यह कैसा न्याय महाराज! दंड के स्थान पर पुरस्कार?" रणजीत सिंह ने हंसकर उत्तर दिया—"पत्थर लगने पर बेजान वृक्ष भी मीठा फल देता है; फिर मैं इसे खाली हाथ कैसे जाने दूं?"

—संतकुमार टंडन





पुरखों की थाती

गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो ।

गतिशीलता धर्म का लक्षण है, गतिहीनता (जड़ता) अधर्म का लक्षण है।

अज्झत्थं सव्वओ सव्वं, दिस्स पाणे पियायए ।
न हणे पाणिणो पाणे भयवेराओ उवरए ।।

—सब ओर से आनेवाले सब सुख-दुःख का मूल अपने ही भीतर है और सभी प्राणियों को प्राण प्रिय हैं, यह जानकर भय और द्वेष से विमुक्त मनुष्य किसी के प्राणों का हनन नहीं करता।

दुमपत्तए पंडुयए जहा निवडइ राइगणाण अच्चए ।
एवं मणुयाणं जीवियं समयं गोयम मा पमायए ।।

जैसे रात के बीतते-बीतते वृक्षों के पके पत्ते झड़ जाते हैं, उसी तरह मनुष्य का जीवन झड़ जाता है। इसलिए हे गौतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद न कर।

नाणस्स सव्वस्स पगासणाय अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स य संखएणं एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं ।।

समस्त ज्ञान प्रकाशमय (निर्मल) हो जाये, अज्ञान-मोह का त्याग हो जाये, राग एवं द्वेष का संक्षय हो जाये, तो सुख ही सुख है।

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुघा धेणू, अप्पा मे नंदनं वणं ।।

आत्मा ही वैतरणी नदी है, आत्मा ही कूटशाल्मली वृक्ष है, आत्मा ही कामधेनु है, आत्मा ही मेरा नंदनवन है ।

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुक्खाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं य दुप्पट्ठिय सुपट्ठियो ।।

आत्मा ही अपने सब दुःख-सुख का बनाने-बिगाड़ने वाला है। सुपथगामी आत्मा मित्र है, विपथगामी आत्मा शत्रु है। —महावीर के वचन, संकलनकर्ता पं० बेचरदास



नरेंद्र छावड़ा

जब चालू वर्ष समाप्ति के निकट पहुंचता है और नववर्ष दिवस समीप आ पहुंचता है, दुकानें रंग-बिरंगे, चित्र-विचित्र कार्डों से भर जाती हैं। उन पर लिखा रहता है—क्रिस्मस पर्व मुबारक हो।......नववर्ष की बधाई!

और अब तो दिवाली और होली के कार्ड भी छपने लगे हैं; परंतु ये पर्व डाकियों का बोझ उतना नहीं बढ़ाते। अभिवादन और शुभकामना-प्रेषण के मामले में अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व के दिन तो २५ दिसंबर (क्रिस्मस दिवस) और १ जनवरी हैं। इन दिनों के उपलक्ष्य में करोड़ों कार्ड छापे, बेचे और भेजे जाते हैं।

स्नेह-सौहार्द की अभिव्यक्ति के लिए ग्रीटिंग कार्ड भेजने की प्रथा का आरंभ पहले-पहल किस देश में, किस व्यक्ति ने किया, यह अभी तक खोज का विषय है। कुछ विद्वानों के मतानुसार ग्रीटिंग कार्ड का आविष्कार इंग्लैंड में हुआ और इसका श्रेय हेनरी कोल नाम के एक व्यक्ति को है, जिसने सन १८४३ में विश्व का प्रथम ग्रीटिंग कार्ड बनाया और भेजा।

एक अन्य मत इससे भिन्न है। इसके अनुसार एक और इंग्लैंड-निवासी सोलह वर्षीय विलियम मा इग्ले ने संसार का सर्वप्रथम ग्रीटिंग कार्ड बनाया। वह कार्ड क्रिस्मस ग्रीटिंग के डिजाइन का था, जो उसने क्रिस्मस दिवस पर अपने एक मित्र को भेजा था। उस पर नववर्ष की मंगलकामनाओं का संदेश भी लिखा था। यह कार्ड काफी बड़े आकार का था—सवा पांच इंच लंबा और साढ़े तीन इंच चौड़ा। कार्ड के बीचोंबीच क्रिस्मस के चार विभिन्न दृश्य चित्रित किये गये थे, जिसके गिर्द एक बार्डर बना था। कार्ड के फोल्ड के बाहरी भाग पर भी चार छोटे-छोटे सुंदर

दृश्य अंकित किये गये थे। कहा जाता है कि विश्व का यह पहला कार्ड आज भी ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित रखा है और इसमें जो शुभ संदेश लिखा है, वह इस प्रकार है : "हैपी क्रिस्मस टू यू" और "हैपी न्यू ईयर टू यू।"

वस्तुतः अनेक इतिहासकारों ने मान लिया है कि इग्ले ने ही सर्वप्रथम ग्रीटिंग कार्ड बनाया था। उनका कहना है कि वास्तव में उक्त कार्ड के बन जाने के एक वर्ष पश्चात् ही हेनरी कोल ने ऐसा कोई कार्ड तैयार किया था, जो उन्होंने अपने मित्रों को क्रिस्मस ग्रीटिंग के रूप में भेजा था। हेनरी कोल का नाम विक्टोरिया युग के एक विख्यात समाज - सुधारक और शिक्षा-शास्त्री के रूप में प्रसिद्ध है। इन कार्डों के अन्य डिजाइन तैयार करने में हेनरी कोल ने रायल अकाडमिशियन जान हार्सले की भी सहायता ली और इन डिजाइनों के कार्ड छपवाकर अपने मित्रों को भेजे।

जान हार्सले की सहायता से तैयार किये गये इन डिजाइनों में से एक कार्ड पर, एक परिवार के कुछ सदस्यों का दृश्य अंकित किया गया था, जो शराब की बोतलों और प्यालों से लदी एक मेज के गिर्द बैठे अपने दूरस्थ मित्रों के प्रति शुभकामनाओं में 'टोस्ट' (शराब) पी रहे थे। हेनरी कोल ने इस डिजाइन की लगभग एक हजा[illegible] अधिक प्रतियां छपवायी थीं और स्वयं [illegible] हाथों से उनमें रंग भरकर उन्हें अपने [illegible] व संबंधियों को भेजे थे।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि १८[illegible] पूर्व भी 'सेंट वैलिंटाइंस' दिवस पर प्र[illegible] ग्रीटिंग कार्ड भेजने का रिवाज चल पड़ा [illegible] और हजारों-लाखों शुभसंदेश लोग [illegible] द्वारा एक-दूसरे को भेजने लगे थे।

एक अन्य प्रमाणित तथ्य भी है कि [illegible] से सैकड़ों वर्ष [illegible] प्राचीन मिस्र [illegible] और रोमन [illegible] भी नये वर्ष [illegible] दिन शुभकामना [illegible] का विनिमय कि[illegible] करते थे।

संभवतः [illegible] कारण रहा है कि शुरू-शुरू के क्रिस्मस-कार्डों में 'वैलें[illegible] टाइंस' का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर हो[illegible] है; क्योंकि इसमें "वैलिंटाइना" की [illegible] विशेषताओं की स्पष्ट छाप झलकती है। इन कार्डों का निर्माण एक कठिन [illegible] था। इन कार्डों के किनारे-किनारे [illegible] सजायी जाती थीं और इन्हें तीर-कमा[illegible] रंग-बिरंगी मृत मछलियों, तितलियों [illegible] परों, पशु-पक्षियों और फूल-फलों [illegible] के दृश्यों तथा मोतियों के टुकड़ों से [illegible] जाता था। अथवा, इनमें देवदूतों के [illegible] पच्चीकारी के सुंदर चित्र होते थे, [illegible]

प्रतीक्षा-सुख

मैं जब नीले आकाश को निहारता हूं, तो वह इतना गहरा, इतना शांत और एक रहस्यमय कोमलता से इतना भरा दिखता है कि उस सुषमित करुणा में से उभरने वाली ईश्वरीय उषा के लिए मैं शताब्दियों तक प्रतीक्षा कर सकता हूं। —जी० मैकडानल्ड

देवता फूलों की शैया पर झिलमिलाते दिखाये जाते थे, या बच्चे और युवतियां पत्ते और फूलों के फ्रेम में से प्रसन्नतापूर्वक मुस्कराते दिखाई देते थे।

उस काल के उपलब्ध कार्डों के नमूनों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सन १८८० के कार्डों में रोविन पक्षी की तस्वीर चित्रित करने की प्रथा बड़ी लोकप्रिय हुई। यह चिड़िया कई रूपों में दिखायी जाती थी—बर्फ पर चलनेवाली स्लेज गाड़ियां खींचती हुई, पुस्तकें पढ़ती हुई, डिनर खाती हुई या फिर वर्फ में मरी पड़ी हुई दिखायी जाती थी।

अमरीका में पहला ग्रीटिंग कार्ड सन १८७५ में, एक व्यक्ति लूइस प्रांग ने पहले-पहल बनाया। इससे पूर्व इस देश में क्रिसमस और न्यू ईयर ग्रीटिंग कार्ड जर्मनी और इंग्लैंड से मंगवाये जाते थे। लूइस प्रांग ने इस कार्य में विशेष प्रगति की और सन १८८१ तक वह पचास लाख कार्ड प्रतिवर्ष छापने लग गया था। प्रांग स्वयं भी एक कुशल लीथोग्राफर था और इस कला में उसे गहरी रुचि भी थी। उसने कार्ड के विभिन्न डिजाइनों की राष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रतियोगिताओं का आयोजन किया और चित्र बनवाने के लिए अपने समकालीन प्रसिद्ध चित्रकारों की सेवाएं प्राप्त कीं।



एक रूसी ग्रीटिंग कार्ड

उन्हीं दिनों इंग्लैंड में क्रिस्मस कार्ड के सुंदरतम नमूने प्रस्तुत करने के लिए रैफल टाक नामक एक व्यक्ति ने पांच सौ पौंड के इनाम की घोषणा की। अनेक कलाकारों ने इसमें गहरी रुचि दिखायी और डिजाइनों का ढेर लग गया। कलाकारों के इस उत्साह से वह बहुत प्रभावित हुआ और उसने तीन रायल एकादमिशियनों मिस्टर मिलेस, मिस्टर लिंडसे और मिस्टर मोरकस से इन नमूनों को परखने का आग्रह किया।

इन प्रतियोगिताओं के आयोजन का प्रभाव यह पड़ा कि धीरे-धीरे प्रसिद्ध कलाकारों ने भी इस व्यवसाय में रुचि दिखायी और इस प्रकार ग्रीटिंग कार्डों में उत्कृष्ट कलाकृतियों का चित्रण आरंभ हुआ। सर्वप्रथम सुप्रसिद्ध चित्रकार रैफल के एक चित्र 'मैडोना' की अनुकृति कार्डों में उतारी गयी। इस अनुकृति के लिए एक प्रसिद्ध चित्रकार ने 'ब्रिटिश नेशनल गैलरी' में सात सप्ताह तक लगातार काम किया था। इस चित्र के संपूर्ण रंगों की भी नकल की गयी थी। और अब तो लगभग सभी बड़े-बड़े संग्रहालय अपनी

गैलरी की प्रसिद्ध कलाकृतियों को ग्रीटिंग कार्डों पर उतारने लगे हैं।

पिछले कुछ वर्षों से क्रिस्मस कार्डों के व्यवसाय में "यूनिसेफ" (संयुक्त राष्ट्र बाल-विकास कोष) पर्याप्त लोकप्रिय हो गया है। इस संस्था ने यह योजना कैसे शुरू की, इसकी भी एक कहानी है। सन १९४६ में इस संस्था को पोलैंड के एक बालक ने एक कार्ड भेजा, जिसमें उसने अपने हाथों से एक तस्वीर बनायी थी। तस्वीर में पांच बच्चे एक खंभे के गिर्द नाचते दिखाये गये थे। इस बाल-कृति ने संस्था को एक नयी सूझ दी और संस्था ने बाल-कल्याण हेतु धन एकत्र करने के लिए स्वतंत्र रूप से ग्रीटिंग कार्ड व्यवसाय आरंभ कर दिया। इस संस्था का पहला कार्ड सन १९५० में तैयार हुआ था, जो अत्यंत लोकप्रिय हुआ था। हर वर्ष यह संस्था कार्डों का एक सेट, जो विभिन्न डिजाइनों-रंगों में होता है, छपवाकर बेचती है। ये कार्ड बहुत सुंदर होते हैं, कम मूल्य के होते हैं और इनकी खूब बिक्री होती है।

अब तो राउल ड्यूफे, हेनरी मतीस, हैन्स एर्नी, मार्क छागल और भारत के यामिनी राय सरीखे अनेक सुप्रसिद्ध चित्रकार भी इस संस्था के लिए तरह-तरह के रंगों व डिजाइनों के कार्ड चित्रित करने लगे हैं। अनुमान है कि यूनिसेफ के कार्ड अकेले संयुक्त राज्य अमरीका में एक वर्ष में ३४ लाख से अधिक बिके थे। कलाकृतियों से तैयार कार्डों की बिक्री से यूनिसेफ जो धन प्राप्त करती है, वह भूख और बीमारी से बिलखते-तड़पते बच्चों के लिए खाना, दूध, कप[illegible] दवाइयों आदि पर खर्च किया जाता है।

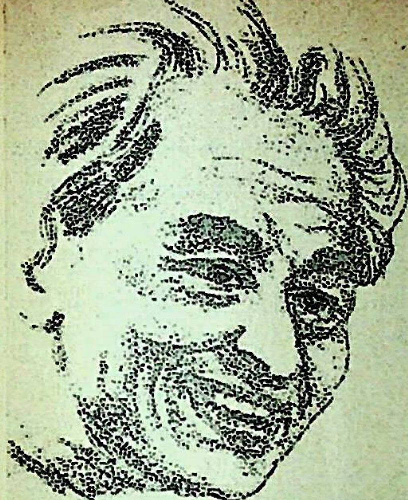
बाद में जब कार्डों पर हैपी क्रि[illegible] (सुखद क्रिस्मस), "विश यू हैपी न्यू ई[illegible] (तुम्हें नया वर्ष मुबारक हो) आदि [illegible] संदेश अपर्याप्त प्रतीत हुए, तो कवियों [illegible] लेखकों से आग्रह किया गया कि वे कार्डों [illegible] लिए कविता की पंक्तियां अथवा अन्य संदे[illegible] की रचना करें। अतः अब कार्डों पर [illegible] संदेशों के अलावा नये संदेश और कवि[illegible] भी छापी जाती हैं।

आज सभी बड़ी-बड़ी फर्में अपने का[illegible] के डिजाइन तैयार करने के लिए प्र[illegible] चित्रकारों को और शुभकामनाओं के लि[illegible] लेखकों और कवियों को नियुक्त करती हैं।

इस काम में एक जर्मन नार्ब[illegible] होलिंगर ने तो कमाल कर दिखाया। [illegible] एक अत्यंत कीमती कार्ड तैयार करके अ[illegible] एक मित्र को भेजा। उसमें दिया गया चि[illegible] विश्वविख्यात चित्रकार रेम्ब्रां की एक र[illegible] थी, जो बहुमूल्य और दुर्लभ थी। यह [illegible] बाद में पता चला। इसे लौटाने के लिए [illegible] अपने मित्र पर मुकद्दमा कर दिया। मुक[illegible] में उसने लगभग बारह हजार पौंड [illegible] किये। पर मुकद्दमा हार गया और वह [illegible] वापिस हासिल न कर सका।

भारत में ग्रीटिंग कार्डों के आदान-प्र[illegible] की प्रथा अंग्रेजों के आगमन के बाद आ[illegible] हुई। यह रिवाज मुख्यतः यूरोप की दे[illegible] पर आज इसका आदान-प्रदान हमारे [illegible]जिक शिष्टाचार का एक अंग बन चुका है।





• वीरेंद्र सिंह •

जनजीवन का शब्दशिल्पी

जापानी कथाकार यासुनारी कावावाता का १९६८ के नोवेल साहित्य पुरस्कार के लिए चुना जाना शायद इस बात का प्रमाण है कि पक्षपात और पूर्वग्रह भी लगातार काम करते-करते थक जाते हैं ।

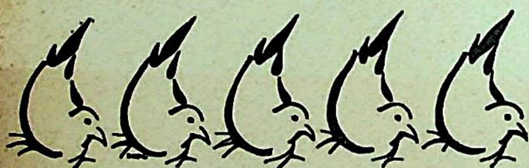
विश्व के इस सबसे बड़े साहित्य-पुरस्कार के निर्णायकों पर, पक्षपात का आरोप न नया है, न निराधार। जार्ज रसल, ताल्सताय, जिब्रान, माम और एहरनबुर्ग को तो उन्होंने इस सम्मान के योग्य नहीं समझा, पर कई अति-साधारण लेखकों के सिर अमरता का सेहरा बांध दिया। कामू, सार्त्र, स्टाइनबेक, शोलोखोव की उन्होंने दशकों तक उपेक्षा की और अव भी ग्राहमग्रीन और अल्वर्तो मोराविया से मुंह मोड़े हुए हैं।

पूर्वग्रह (या कहिये 'पश्चिम ग्रह') का यह हाल है कि १९१३ में रवींद्रनाथ को सम्मानित करने के बाद पूरे पचपन वर्ष तक नोबेल निर्णायकों को इस वात की स्मृति नहीं रही कि पूर्वी गोलार्ध में भी साहित्य-सृजन होता है।

कुछ दोष कार्यप्रणाली का भी है। नोबेल समिति उन्हीं ग्रंथों या लेखकों पर विचार करती है, जिनके अनुवाद पश्चिमी यूरोप की भाषाओं—विशेषतः अंग्रेजी और स्वीडिश में हो चुके हों। जैसे समस्त विश्व की साहित्यिक गति-

विधियों की खोज-खबर रखना उसका काम नहीं। रवींद्र और कावाबाता पुण्यशाली थे कि उनकी कुछ रचनाओं का अनुवाद अंग्रेजी में उपस्थित था।

कावाबाता का जन्म १८९९ में जापान के प्रसिद्ध औद्योगिक केंद्र ओसाका में हुआ था। जब वे दो वर्ष के थे, तभी पिता की मृत्यु हो गयी और तीन वर्ष के होने पर तो मां का साया भी उठ गया। इसके बाद वे दादा-दादी के यहां रहने लगे; परंतु दुर्भाग्य ने वहां भी उनका पीछा न छोड़ा। और जब कावाबाता सोलह वर्ष के थे, उनका भी देहांत हो गया। तब उनके



पालन-पोषण का भार ननिहाल ने ले लिया। इन्हीं दुर्घटनाओं के कारण उनकी स्कूली शिक्षा रुक-रुक कर तथा अपर्याप्त हुई। अध्यवसाय ही उनका प्रमुख संबल रहा। साहित्य और कला-प्रेम उन्हें अपने पिता से विरासत में मिला था। बचपन में वे चित्रकार बनने के आकांक्षी थे, पर हाईस्कूल तक आते-आते साहित्य ने उन्हें मोह लिया और वे लिखने का अभ्यास करने लगे। स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने से उनमें आत्मविश्वास तथा उत्साह पैदा हुआ और युवावस्था प्राप्त करने तक उनका

नाम देश के साहित्यिक क्षेत्रों में फैल च[...]
बी० ए० करने के बाद उन्होंने एक प्र[...] साहित्यिक पत्रिका के संपादकीय विभा[...] काम करना शुरू किया। वहां एक वर्ष [...] काम करने के बाद उन्होंने स्वयं अ[...] पत्रिका निकाली, पर चला न पाये [...] परिणामस्वरूप पत्रकारिता की हवस छो[...] वे पूरी तरह साहित्य-सृजन में जुट गये। जीवन के कठिन थपेड़ों ने उनमें अकेले[...] की भावना भर दी थी। उनका स्व[...] अंतर्मुखी बन गया। अपने संवेदनशील म[...] की अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने के लि[...] कावाबाता ने कलम उठायी और कुछ [...] दिनों में वे जापान के सर्वश्रेष्ठ कथाका[...] की पंक्ति में आ गये।

कावाबाता लिखने में बड़ी मेहनत कर[...] हैं और कोई भी पांडुलिपि तैयार करने[...] काफी देर लगाते हैं। अपने लिखे को बा[...] बार काटना और पूर्ण संतोष हो जाने[...] बाद ही उसे प्रकाशन के लिए देना उन[...] आदत है। छपने के बाद भी अपनी रच[...] के प्रत्येक संस्करण में वे कुछ-न-कुछ सं[...] धन करते हैं। कभी-कभी तो कई अध्[...] फिर से लिखने बैठ जाते हैं। उनका सर्व[...] श्रेष्ठ माना जाने वाला उपन्यास 'बर्फ [...] देश' १९३४ में आरंभ हुआ था, परंतु उ[...] पूरा करने में कावाबाता ने पूरे तेरह व[...] लगा दिये और वह १९४७ में प्रकाशि[...] हुआ। नोबेल पुरस्कार का आधार मू[...] उनका यही उपन्यास है। पश्चिम में प्र[...] शित होनेवाला उनका दूसरा उपन्[...]

'हजार सारस' अभी हाल ही में निकला है, परंतु इन दो उपन्यासों के अलावा उनके लगभग बीस उपन्यासों से अभी तक विदेशी पाठक अपरिचित हैं। 'बर्फ का देश' में टोकियो के एक कलाप्रेमी युवक और एक गीशा के असफल निराश प्रेम का अत्यंत सूक्ष्म, भावुक, दर्दीला चित्रण है, जिसमें जीवन और मृत्यु, दोनों की सीमा-रेखाएं बड़ी कलात्मकता से खींची गयी हैं। इसके साथ ही उपन्यास में जापान की प्राकृतिक सुषमा का अत्यंत काव्यात्मक चित्रण है, जो विशेषतः विदेशी पाठक को सहज ही लुभा लेता है। 'हजार सारस' में भी अनेक सुंदरियों का प्रेम पाने पर भी अंत में खाली और एकाकी रह जानेवाले एक नायक का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। एक अन्य उपन्यास 'पर्वत की ध्वनि' की कथा-भूमि भी बहुत कुछ इसी तरह की है। 'इजू के नर्तक' उनका युवावस्था का लिखा उपन्यास है, जिसमें इजू प्रांत के नर्तक बंजारों के जीवन का व्यापक, गहन और संवेदनापूर्ण वर्णन है। कावाबाता इसे अब भी अपनी अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृति मानते हैं।

उपन्यासकार होने के साथ ही कावाबाता श्रेष्ठ कवि और आलोचक भी हैं। 'ओजोका' उनकी उल्लेखनीय काव्यकृति है। अपनी किशोरावस्था की अनुभूतियों को उन्होंने बड़ी मार्मिकता से एक डायरी में संजोया था, जो अब प्रकाशित हो चुकी है।

कावाबाता जापानी जन-जीवन के अनन्य चितेरे हैं। जापानी मानस, प्रकृति और इतिहास उनकी कृतियों के प्रमुख अंग हैं। उन्होंने पश्चिम के साहित्यकारों से आधुनिक जीवन-दृष्टि ली है, पर उनका लक्ष्य अपने देश की परंपराओं और उनके जीवन के विविध पक्षों को उजागर करना है। आम व्यक्ति पर जोर देते हुए भी उनका कथापात्र ठेठ जापानी है। उनकी भावनाएं, सुख-दुःख सार्वभौम हैं, पर उनका परिवेश, कार्य और स्वभाव स्थानीय संस्कारों से युक्त हैं। उपयुक्त शब्दों से जड़े और एक-दूसरे में गुंथे हुए लंबे काव्यमय वाक्य उनकी शैली की जान हैं। भाषा में इतना प्रवाह है कि बरसाती नदी की तरह अपने साथ पाठक को अंत तक बहा ले जाती है। प्रकृति-चित्रण की विशदता और मानव-चरित्र की गहराई, दोनों में वे सिद्धहस्त हैं। प्रणय, वासना और मांसलता का वर्णन भी बड़ी दिलचस्पी से करते हैं, पर वह दिलचस्पी एक कलाकार की निस्संगता के साथ है।

छोटे कद के, दुबले-पतले, धवलकेश कावाबाता अपनी पत्नी और पुत्री के साथ आजकल जापान के प्राचीन सामुराई योद्धाओं की ऐतिहासिक राजधानी कमाकुरा में रहते हैं। राजनीति से वे विरक्त हैं और उसकी हलचलों की अपेक्षा जापानी जन-मानस की हलचलों की थाह लेने और उन्हें अभिव्यक्ति देने में तल्लीन रहना ज्यादा पसंद करते हैं। अपनी कृतियों के द्वारा "वे पूर्व और पश्चिम को जोड़नेवाला अध्यात्म-सेतु बना रहे हैं"—जैसा कि नोबेल पुरस्कार समिति ने कहा है।



पत्र और परामर्श

श्रीनिधि सिद्धांतालंकार का 'पौलस्त्य' बहुत जल्दी समाप्त हो गया। आशा थी, इस अतिसरस (आपने केवल 'सरस' कहा है) आख्यायिका की कम-से-कम दो किस्तें और पढ़ने को मिलेंगी। श्रीनिधिजी तक मेरा यह अनुरोध पहुंचा दें कि 'पौलस्त्य' को आगे बढ़ाकर संपूर्ण रावण-चरित को नयी दृष्टि से प्रस्तुत करें।

—वेपा जगन्नाथ सीताराम, गुडूर

०००

'शब्दवेध' अच्छा उपयोगी स्तंभ था। स्तंभ को चालू रखिये। संभव हो तो किसी एक व्यक्ति से इसे लिखवाइये—पर ऐसे ही व्यक्ति से, जो हिन्दी को जीती-जागती आगे बढ़ती हुई भाषा मानता हो और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और कामता-प्रसाद गुरु के गाड़े हुए खूंटे से उसे हमेशा के लिए बांधे रखने का आग्रही न हो। —डा० शंकरसिंह, कलकत्ता

०००

दीपावली अंक यद्यपि 'नवनीत' के अन्य विशेषांकों के बराबर महत्त्वपूर्ण तो नहीं बन पड़ा, फिर भी इसे विस्मरण नहीं किया जा सकता। काव्य-मंजूषा के अंतर्गत जिन श्रेष्ठ रचनाओं का संकलन किया गया है, वे पठनीय एवं मनोहारी के साथ-साथ प्रेरणाप्रद भी हैं। आर्नाल्ड टायन्बी का लेख जननायक नेहरूजी की विचारधारा समझाने में बड़ा सहायक है और श्रीप्रकाशजी का 'प्रजातंत्र-उपनिषद्' सर्वथा नयी चिंतन-दिशा का प्रतीक है।

—अमरेश, रायबरेली

०००

'नवनीत' से मुझे एक शिकायत है. इसमें वाक्यों में पूर्ण विराम के लिए अभी तक खड़ी पाई का ही प्रयोग हो रहा है. हिन्दी भाषा व देवनागरी लिपि के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण रखने-वाली अनेक पत्रिकाएं वाक्यों में पूर्ण विराम के स्थान पर बिंदु का प्रयोग प्रारंभ कर चुकी हैं. —गोकुलेश श्रीवास्तव, लखनऊ

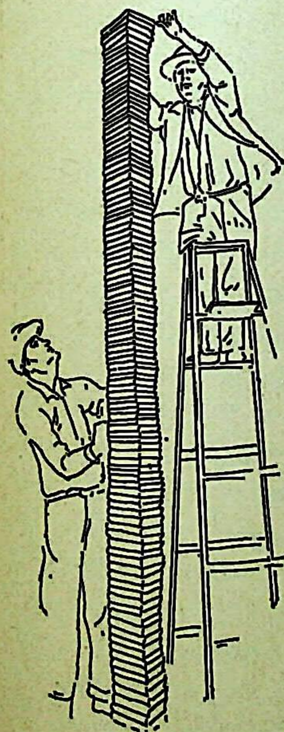


पेरी मेसन का पिता

अर्ल स्टैन्ली गार्डनर के सवा सौ उपन्यासों की सोलह करोड़ प्रतियां बिक चुकी हैं और वह कानून की चपेट में आये निरपराधों के बचाव के लिए दो लाख रुपये अपनी जेब से खर्च कर चुका है।

बेन हिब्स

अर्ल स्टैन्ली गार्डनर आज संसार में जासूसी उपन्यासों का सर्वाधिक लोकप्रिय लेखक है। वह इतनी अधिक मात्रा में लिखता है



कि दक्षिणी कैलिफोर्निया में उसका ३००० एकड़ का पशुपालन-केंद्र 'गार्डनर का उपन्यास कारखाना' कहलाता है। कपड़ा, चीनी या कार की तरह बड़े पैमाने पर साहित्य का निर्माण कई लेखकों और आलोचकों को अनुचित और अटपटा लग सकता है; परंतु गार्डनर को यह बात बड़ी स्वाभाविक लगती है।

जहां गार्डनर रहता है, वह स्थान सचमुच कारखाना है। जासूसी उपन्यास, लेख, कहानियां, टेलिविजन कार्यक्रमों की स्क्रिप्ट और पुस्तकें वहां से तैयार होकर सारे संसार में जाती हैं। गार्डनर की अब तक सौ से ऊपर पुस्तकें छप चुकी हैं, जिनमें से लगभग आधी 'पेरी मेसन' नामक वकील के बारे में हैं, जो हर गुत्थी को सुलझाने का सामर्थ्य रखता है। आज से लगभग पैंतीस वर्ष पहले गार्डनर ने इस पात्र को अपने एक उपन्यास में जन्म दिया, और तब से अब तक वह उसके उपन्यासों में लगातार आता रहा है।

गार्डनर ने अपने नाम के अतिरिक्त ए० ए० फेयर नाम से भी जासूसी उपन्यास

लिखने शुरू किये थे। इस नाम से भी अब तक उसके कई उपन्यास छप चुके हैं।

हिसाब लगाया गया है कि २० देशों में गार्डनर के उपन्यासों की १५ करोड़ से अधिक पुस्तकें बिक चुकी हैं, अर्थात् संसार में सबसे ज्यादा बिकनेवाले किसी भी लेखक की पुस्तकों से तिगुनी ज्यादा। अब अस्सी साल की उम्र हो जाने पर गार्डनर की साहित्य-सृष्टि की रफ्तार पहले से कुछ कम हो गयी है; लेकिन वह आज भी साल में छः उपन्यास अवश्य लिखता है, जिसमें से दो ए० ए० फेयर के नाम से छपते हैं। वह एक उपन्यास तीन या चार हफ्तों में लिख लेता है।

उपन्यास लिखना गार्डनर का एकमात्र काम नहीं है। वह और भी कई काम करता है, और उसके कई शौक हैं। वह खुद अपनी कंपनी की ओर से पेरी मेसन टेलिविजन कार्यक्रम तैयार करके उन्हें प्रसारित करता है, जिन्हें लाखों लोग देखते हैं।

गार्डनर के पशुपालन-केंद्र में कई इमारतें हैं। इनमें से कोई कारखाना है, तो कोई गैराज; कोई उपन्यासों की पांडुलिपियां रखने का स्थान है, तो कोई गार्डनर के लिखने-पढ़ने का कमरा। गार्डनर के घर में बहुत बढ़िया पुस्तकालय है। घर के पास ही उसका दफ्तर है, जहां उसके छः सेक्रेटरी हर वक्त व्यस्त रहते हैं। गार्डनर को बोलकर लिखाने की आदत है, जो टेप-रेकार्डर पर रेकार्ड हो जाता है; बाद में उसे टाइप कर दिया जाता है। १८ कर्मचारी उसके घर की देखभाल करते हैं।

गार्डनर का विवाह सन १९१२ में [illegible] था; लेकिन अब कई वर्षों से वह [illegible] शुदा है। उसकी पत्नी अपनी बेटी और [illegible] बेटों के साथ अलग रहती है।

अर्ल स्टैन्ली गार्डनर का जन्म सन १[illegible] में हुआ था। उसके पिता इंजीनियर थे। [illegible] ने स्कूल से आगे शिक्षा प्राप्त नहीं की। [illegible] कभी कालेज नहीं गया; लेकिन [illegible] स्वयं कानून का अध्ययन किया और [illegible] बन गया। वकील के रूप में उसकी [illegible] यह थी कि वह गरीबों की खातिर [illegible] करता था। इससे उसे विशेष [illegible] तो न हो सकी; लेकिन उसे अदालतों [illegible] विविध और विशद अनुभव प्राप्त हु[illegible] बाद में यही अनुभव उसके उपन्यासों [illegible] मसाला बना।

कई किस्म के काम करने के बाद गार्[illegible] ने लेखन पर भी हाथ आजमाया। [illegible] एक कहानी लिखी, जिसका नाम था 'चीं[illegible] वाला अस्थि-पंजर'। यह कहानी [illegible] एक जासूसी पत्रिका को भेजी, जिसके [illegible] पर उसे १५० डालर पारिश्रमिक के [illegible] मिले। यह १९२३ की बात है। उक्त [illegible] के प्रकाशन के बाद तो वह धड़ाधड़ [illegible] लगा, यहां तक कि हफ्ते में वह तीन या [illegible] लघु उपन्यास लिख लेता था। जब उस[illegible] रचनाएं नियमित रूप से पत्र-पत्रिकाओं [illegible] छपने लगीं, तो उसने वकालत छोड़ दी।

अपने प्रकाशक के सुझाव पर गार्डनर [illegible] अपने एक उपन्यास में पेरी मेसन [illegible] पात्र की सृष्टि की, पेरी मेसन वकील [illegible]

हैसियत से जो भी मुकद्दमा हाथ में लेता था, उसे जीत कर रहता था। पेरी मेसन वाला पहला उपन्यास सन १९३३ में छपा था। उसके छपते ही गार्डनर के नाम की धूम मच गयी थी।

गार्डनर ने टेलिविजन वालों को अपने उपन्यास देने से इन्कार कर दिया था; क्योंकि फिल्मों में उसे कटु अनुभव हो चुका था। आखिर उसने अपनी ही कंपनी खोली और अपने उपन्यासों को टेलिविजन पर पेश करने लगा। आज उसके अधीन ऐसे दूसरे लेखक भी हैं, जो उसके उपन्यासों के आधार पर टेलिविजन के लिए स्क्रिप्ट (पटकथा) तैयार करते हैं। लेकिन कोई भी स्क्रिप्ट तब तक टेलिविजन पर नहीं जाती, जब तक उसे पढ़कर गार्डनर स्वयं संतुष्ट न हो जाये। कभी-कभी तो वह स्क्रिप्ट कई-कई बार लिखी जाती है।

आज गार्डनर को अपराध-विज्ञान का और दंड-विधान का विशेषज्ञ समझा जाता है। खासकर उसे अदालतों में होनेवाली कारंवाईयों का माहिर समझा जाता है। वह दर्जनों जजों और जेल के वार्डनों को जानता है और प्रायः वह जेलों में जाकर कैदियों से मिला करता है और उनके रिहा होने पर कुछ की मदद भी करता है। वह लगातार इस बात का प्रचार करता आ रहा है कि अमरीकी जेलों में कैदियों को रहन-सहन, खान-पान इत्यादि की अधिक अच्छी सहूलियतें मिलनी चाहिये।

अपराध और न्याय के क्षेत्र में काम करते हुए गार्डनर ने 'अंतिम आश्रय की अदालत' की स्थापना की थी, जिसके संबंध में दस-बारह साल तक समाचार-पत्रों में बड़ी-बड़ी खबरें छपती रहीं। यह अदालत गार्डनर ने 'आर्गोसी' पत्रिका के संपादक-प्रकाशक हैरी स्टीगर के साथ मिलकर १९४० में स्थापित की थी। उसकी ओर से जो मुकद्दमे लड़े गये, उनके लिए हैरी स्टीगर ने काफी बड़ी धनराशि का प्रबंध किया था और उन मुकद्दमों के बारे में अपनी पत्रिका में बहुत कुछ छापा था।

इन दोनों व्यक्तियों ने अपराध और दंड-संबंधी शोधकार्य करनेवाले कई विशेषज्ञों को अपने यहां नियुक्त किया था। इन विशेषज्ञों ने बाद में ऐसे कई अभियुक्तों के मुकद्दमे लड़े, जिन्हें उनकी राय में न्याय नहीं मिला था और गलत सजा दी गयी थी।

गार्डनर चाहता था कि इन मुकद्दमों के जरिये दंड-विधान की कमजोरियों को लोगों के सामने रखा जाये, ताकि भविष्य में अपराधियों को सही ढंग से न्याय मिल सके। उसने बहुत-से कैदियों को जेल से छुड़ाकर नये सिरे से उनके मुकद्दमे लड़े और यह साबित किया कि उनके साथ कानूनी तौर पर न्याय नहीं हुआ था और फिर से न्याय की मांग की। गार्डनर के कथनानुसार—"हमारी 'अदालतें' न्याय के केवल एक पहलू पर जोर दे रही थीं। बहुत सारे कैदी ऐसे अपराधों के लिए सजा भुगत रहे थे, जो उन्होंने किये ही नहीं थे। सो हमने उनके मुकद्दमे लड़े। वैसे गलत सजाओं की

तुलना में गलत रिहाइयां कहीं ज्यादा होती हैं। खैर, हम उन व्यक्तियों पर तो फिर से मुकद्दमे नहीं चला सकते थे, जो दरअसल अपराधी होने के बावजूद कानून के पंजे से निकल गये थे। फिर भी, मेरा खयाल है कि हमने कुछ अच्छा काम किया।"

गार्डनर का मुकद्दमा बहुत प्रसिद्ध है। यह एक ऐसे कैदी के लिए लड़ा गया था, जिसे कत्ल के अपराध में २६ साल की कैद हुई थी। उसकी बहन ने गार्डनर से प्रार्थना की थी कि मेरा भाई निर्दोष है और आप उसके लिए कुछ अवश्य कीजिये।

गार्डनर ने उस व्यक्ति का पता लगाया, जिसकी गवाही के आधार पर अभियुक्त को सजा दी गयी थी। तब गार्डनर के प्रयत्न से मुकद्दमे के २५ साल बाद वह व्यक्ति अदालत में यह कहने को तैयार हो गया कि उसकी गवाही पूर्ण रूप से सही नहीं थी। फिर एक और व्यक्ति का पता लगा, जिसकी गवाही के आधार पर कैदी निर्दोष साबित हो सकता था।

और भी बहुत-सी जरूरी जानकारी प्राप्त करने के बाद गार्डनर ने कैदी के मुकद्दमे को पुनः हाथ में लेने की प्रार्थना अदालत से की। उसकी प्रार्थना स्वीकार की गयी और मुकद्दमे में कैदी को रिहाई मिली। बेचारा कैदी लगभग २५ साल की जेल काट चुका था और अब ५० साल का हो चुका था। जेल से छूटने पर उसने एक व्यापार करना शुरू किया और कुछ अर्से के बाद बहुत सफल व्यापारी बना।

अदालत के दिन गार्डनर के जीवन [illegible] सबसे अधिक व्यस्तताओं-भरे दिन थे। [illegible] दिनों वह अपना आधे से ज्यादा समय अदा- लती काम को दिया करता था और [illegible] इन मुकद्दमों के लिए २५ हजार डालर [illegible] जेब से खर्च किये थे। पिछले कुछ सालों [illegible] गार्डनर को अदालत का काम बंद [illegible] पड़ा है, क्योंकि अब अधिक परिश्रम [illegible] लायक उसका स्वास्थ्य नहीं रह गया है। फिर भी वह गरीबों की खातिर लड़ने [illegible] नहीं हटता और गरीब भी सहायता [illegible] के लिए उसके पास अब भी आते रहते हैं।

गार्डनर का कहना है—"यद्यपि आज [illegible] अदालतों में बेइंसाफी होती है; [illegible] पिछले कई सालों से अदालतों में [illegible] सुधार हुआ है। अधिकांश वकील [illegible] को ढूंढ़ने की पूरी कोशिश करते हैं। [illegible] यह सुनकर मेरे पाठक हैरान हों कि पुलिस के लिए मेरे मन में गहरा आदर है। फिर [illegible] पुलिस के मुकाबले में पेरी मेसन की [illegible] होती है—यह है मेरे उपन्यासों का ढांचा।"

जासूसी उपन्यास कथा-साहित्य [illegible] चिरस्थायी रूप है। क्यों? गार्डनर के [illegible] के अनुसार लोगों को इस बात का [illegible] संतोष मिलता है कि परिस्थितियों [illegible] शिकार बननेवाला निर्दोष व्यक्ति अंत [illegible] बुराई की ताकतों पर विजय प्राप्त कर [illegible] है। दूसरे, अच्छी तरह लिखी हुई जासूसी कहानी पढ़ने में बड़ी दिलचस्प होती है और संसार-भर में लाखों-करोड़ों लोग [illegible] बड़े शौक से पढ़ते हैं।



भालुओं के भयंकर भक्त

जापान की कला और औद्योगिक प्रगति ही नहीं, वहां की एनु आदिमजाति भी अनुपम है।

परमेश श्रीवास्तव

जापान के सुदूर उत्तरी टापुओं में आदिवासियों की एक जाति रहती है, जिसे जापानी 'ऐनु' के नाम से जानते हैं। इनकी आबादी पहले लाखों की थी; मगर अब ये कुछ ही हजार रह गये हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जापानियों के दक्षिण-पश्चिम से आने के पहले ही ये लोग उत्तरी हिस्से से आकर इधर बस गये थे। इनमें से अधिकांश होक्कैदो नामक टापू में रहते हैं, और बाकी सखालिन और क्युराइल टापुओं में रहते हैं। सखालिन और क्युराइल टापू १९४५ में जापानियों की पराजय के बाद रूसी अधिकार में चले गये और तब से उन टापुओं पर रूस का ही अधिकार है।

ऐनु जाति दरअसल नृतत्वशास्त्रियों के लिए एक पहेली है। मूलतः वह कहां से आयी और किस नृवंश से संबंधित है, यह आज तक पता नहीं चल सका है। यों जापानियों से यह जाति बिलकुल अलग ही दीखती है। ऐनु अपने लंबे और घने बालों के लिए दुनिया में मशहूर हैं। उनके सारे शरीर पर केश-जैसे रोएं होते हैं, जब कि जापानियों के तो शरीर भी चिकने होते हैं। ऐनु पुरुष कभी दाढ़ी-मूंछ नहीं काटते। उनकी औरतें भी अपने ओंठों के ऊपरी हिस्से पर मूंछ गोदवा लेती हैं; ताकि वे भी दूसरी जाति





अन्य जापानियों की भांति एनुओं का चाय का दर्शनशास्त्र नहीं है; फिर भी चाय का वे पूरा आनंद लेते हैं।

की औरतों से अलग दीख सकें। शरीर के और भी दूसरे हिस्सों पर वे गोदवाना पसंद करती हैं।

इनकी भाषा में 'ऐनु' का अर्थ आदमी होता है। ऐनु जाति के स्त्री-पुरुष बड़े हट्टे-कट्टे और मजबूत होते हैं। रहने के लिए सरकंडों और घास-फूस की छोटी-मोटी झोंपड़ियां बना लेते हैं। सोने-बैठने के लिए चटाई जैसी चीज का उपयोग करते हैं। घर के बीचोंबीच जमीन में एक चूल्हा होता है, जिसे ये लोग अग्निदेवी का वासस्थान मानकर बड़ी श्रद्धा से सहेजकर रखते हैं। धुआं निकलने के लिए झोंपड़ी में एक चिमनी-जैसा छोटा-सा छेद बना रहता है। रात को रोशनी के लिए वे मछली का तेल जलाते हैं।

सोने की इनकी आदत बड़ी अजीब है। घर में बड़े-बूढ़े, औरतें-बच्चे सभी एक साथ सटकर सोते और ऊपर से चा... की मोटी-मोटी ... ओढ़ लेते हैं। ... के लिए ये पेड़ की ... से निकाले हुए ... कपड़ा बुनते हैं और ... पर तरह-तरह के रंग... तागों से सुंदर ... काढ़ते हैं।

ऐनु लोग स्वभाव... बड़े भयानक ... लड़ाकू होते थे। पु... जमाने में जापानि... के आक्रमण करने पर औरतें भी लड़ाई ... शामिल होती थीं। मगर अब उनके स्व... में काफी परिवर्तन हो गया है। बाहरी ... के आने पर अब वे लड़ने पर उतारू ... हो जाते। अजनबी पर्यटकों के साथ भी ... व्यवहार करते हैं। वैसे ये होते बहुत ... हैं, नहाने का तो नाम तक नहीं जानते ... कभी किसी पर्व-त्योहार के मौके पर ... बहुत हाथ-मुंह धो लिया, तो गनीमत ... झिये। ये शराब भी बहुत पीते हैं, और ... में औरतें भी कम नहीं।

वे लोग चांद-सूरज, आग-पानी के अ... माल की पूजा करते हैं। साधारणतया ... आखेटजीवी होते हैं। जंगली हिरन, ... और दूसरे जानवरों के अलावा ये एक ... की चमकदार मछलियां खाना पसंद कर... हैं। शिकार में साथ देने के लिए ये कुत्ते पाल... जानवर...

हैं और पूर्वज मानते हैं।

ऐनु प्राचीनकाल से भालू का शिकार बड़े चाव से करते आये हैं। और सचमुच उनके दुस्साहस और बहादुरी का मुकाबला नहीं। सिर्फ एक छुरा लेकर पहाड़-सरीखे भयानक भालुओं से भिड़ना बच्चों का खेल नहीं। ऐनु पुरुष अकेला पहाड़ की गुफाओं-कंदराओं में भालुओं की खोज में घूमता-फिरता है। बड़े-बड़े भालुओं का शिकार ये मांस के लिए करते हैं, पर भालू के बच्चों को ये अपना देवता समझते हैं।

जब कोई बच्चा भालू मिल जाता है, उसे गांव में लाया जाता है। एक झोंपड़ी में उसके रहने का इंतजाम किया जाता है। उसे बड़े लाड़-प्यार से रखा जाता है। सुना जाता है कि उसे ऐनु औरतें अपने बच्चों की तरह दूध पिलाती हैं। ऐनु बच्चों के साथ वह भालू का बच्चा घुल-मिलकर खेलता-कूदता है और इसी तरह पलता है, जैसे परिवार का ही कोई प्यारा सदस्य हो।

परंतु जब भालू जवान हो जाता है, और कद्दावर और भयानक लगने लगता है, तब बच्चे उससे खेलते नहीं। और भालू में भी जैसे पशुता जागने लगती है। तब उसे मोटी-मोटी लकड़ियो के बने मजबूत पिंजड़े में बंद कर दिया जाता है। उसे पिंजड़े से बाहर नहीं आने दिया जाता और उसका खाना-पीना पिंजड़े के अंदर ही होता है। फिर एक दिन वह आता है, बड़े लाड़-प्यार से, अपने बच्चे की तरह पाले-पोसे गये उस जीव की बड़ी बेरहमी से हत्या कर दी जाती है।

और यह हत्या-कांड ही ऐनु लोगों का सबसे बड़ा त्योहार है। यह साधारणतया सितंबर अथवा अक्टूबर के महीने में मनाया जाता है और इसे 'दूत भेजने का भोज' कहते हैं।

जो व्यक्ति यह भोज देना चाहता है, वह सबसे पहले कबीले के हर आदमी को निमंत्रण देता है। निमंत्रण सिर्फ अड़ोस-पड़ोस वालों को ही नहीं दिया जाता, दूर-दूर के गांवों में भी यह संदेश भेजा जाता है।

अनुष्ठान के दिन सुबह से ही लोगों का तांता लग जाता है। अतिथि उस झोंपड़ी के पास जमा होते जाते हैं, जहां वह पवित्र भालू कैद है। एक अग्नि-कुंड तैयार किया जाता है, जिसके चारों ओर लोग बैठते हैं। सामने पुरुष और उसके पीछे औरतों का दल। भोज शुरू हो जाता है। मकई की रोटियों और शराब पर लोग टूट पड़त हैं।

बलि-क्रिया के प्रारंभ में अग्नि देवी की पूजा की जाती है,। फिर कुछ लोग पिंजड़े के पास जाते हैं और उस भालू देवता से प्रार्थना करते हैं—"हमें हमारी गलतियों के लिए क्षमा करो। हम जो कुछ कर रहे हैं, वह तुम्हारी भलाई के लिए कर रहे हैं। तुम नाराज न होना। हम तुम्हें बहुत-बहुत प्यार करते हैं। कितने लाड़-दुलार से तुम्हें पाला-पोसा, और अब चूंकि तुम काफी बड़े हो गये हो, हम लोग तुम्हें तुम्हारे पूर्वजों के पास भेज रहे हैं। उन्हें हमारे सद्व्यवहार की बातें बताओ और फिर इस धरती पर जन्म ग्रहण करो, ताकि हम पुनः तुम्हें तुम्हारे पूर्वजों



एक एनु कुलवृद्ध

के पास भेजने का सौभाग्य प्राप्त कर सकें।"

अब भालू को पिंजड़े से बाहर निकाला जाता है। दोनों तरफ से दो आदमी फंदों से उसे पकड़े रहते हैं। बूढ़े लोग एक घेरा बनाकर बैठ जाते हैं और युवक-युवतियां खड़े रहते हैं। जिन आदमियों के हाथ में भालू का फंदा है, वे उसे घेरे के चारों ओर घुमाते हैं और अतिथि भोथरे तीरों से उस पर वार करते जाते हैं। उस समय इतना शोर मचाया जाता है कि कान बहरे हो जायें। चीख-चिल्लाहट और तीरों की चुभन से भालू क्रोध और खीज से भर उठता है, तड़प उठता है; मगर बेचारा कर ही क्या सकता है!

भालू जब बिलकुल थक जाता है, तब घेरे के बीचोंबीच एक मजबूत खूंटा गाड़ा जाता है और भालू को उससे बांध दिया जाता है। लोग उस पर तीरों से वार करते जाते हैं। बेचारा भालू दर्द से, गुस्से से कराहता, बिग-ड़ता-तड़पता रहता है, जब तक वह एक-दम थककर शांत न हो जाये।

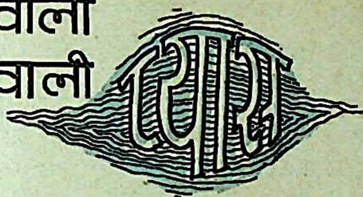
अब हिम्मत का नया खेल शुरू होता है। कुछ ऐनु नौजवान आगे बढ़कर भालू के कान और उसके चेहरे पर के बाल मजबूती से पकड़ लेते हैं। कुछ और लोग दौड़कर उसके पिछले हिस्से को कसकर पकड़ रखते हैं। वे लोग उन पकड़े हुए हिस्सों को कुछ इतने जोर से खींचते हैं कि बेचारा भालू अपना मुंह फाड़ देता है और भालू जैसे ही मुंह फाड़ता है, कुछ लोग दौड़कर आते हैं और बड़ी क्रूरता से भालू की हत्या कर देते हैं।

भालू के मर जाने पर उसका चमड़ा उघाड़ा जाता है, उसे काटा जाता है। फिर उसका गर्म-गर्म खून बड़े चाव से भक्ति-श्रद्धा से पीते हैं और अपने शरीर में और कपड़ों में भी खून का लेप लगाते हैं। भालू का सिर काटकर उसकी झोंपड़ी के पूर्वी हिस्से की तरफ रख दिया जाता है। और उसके के मांस का एक टुकड़ा, कुछ भुनी हुई मछ-लियां और कुछ शराब उस मुंह के सामने रख दिये जाते हैं। लोग जब यह समझते हैं कि उसे भालू देवता ने खा लिया है, तो उसे फिर भालू के मांस को पकाते हैं और सबको प्रसाद के रूप में बांट देते हैं।

आजकल ऐनु आदिवासियों के समाज में भी मिशनरियों और जापान सरकार ने बड़ा क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। अब लोगों का ऐसी प्रथाओं और अंधविश्वासों से विश्वास उठता जा रहा है।



बुझने वाली न बुझने वाली



जैसे जब तक सांस तब तक आस, उसी तरह जब तक सांस तब तक प्यास। जीवन की अभिन्न सहचरी प्यास विज्ञान की जिज्ञासा का विषय बनी हुई है।

देवेन मेवाड़ी

कहते हैं अगस्त्य मुनि ने सारा समुद्र पी डाला था, जबकि साधारण आदमी के लिए प्यास बुझाने हेतु एक-दो गिलास पानी ही बहुत होता है। अधिक-से-अधिक गर्मियों में 'कूलर' का तीन-चार गिलास पानी पीकर प्यास बुझा लेंगे। लेकिन उस प्यास को आप क्या कहेंगे, जिसे बुझाने के लिए हर रोज आपको ८ से १२ गैलन पानी पीना पड़ जाये और फिर भी प्यास बनी ही रहे?

ऐसी न बुझनेवाली प्यास अक्सर मस्तिष्क की पिच्यूटरी ग्रंथि से संबंधित एक बीमारी 'डायबिटीज इनसिपिडस' के कारण लगती है, जिसमें रोगी रात-भर में ही चार से छः गैलन तक पानी पी जाता है। ऐसे रोगी पानी का मटका कमरे में रखकर सोते हैं। घड़ों के हिसाब से पानी पीकर भले ही वे लोगों के सामने पानी-पानी हो जायें, पर उनकी प्यास बुझाये नहीं बुझती। युद्ध में घायल सैनिकों की भयानक प्यास का वर्णन आपने पढ़ा होगा। प्यास से पीड़ित व्यक्तियों का गंदे पानी की नाली में मुंह लगा देना या मूत्र पी जाना भी अनसुनी बात नहीं है।

प्यास लगते ही पानी की इच्छा जगने लगती है। भूख लगने पर पेट में चूहे कूदने की बात कही जाती है, लेकिन प्यास की क्या परिभाषा देंगे आप? पानी की इच्छा, आवश्यकता, संवेदन, विचार, भूख या बीमारी?

पहले प्यास को भी भूख या सेक्स की तरह एक सामान्य संवेदन ही माना जाता था। लेकिन हार्वर्ड विश्वविद्यालय के वाल्टर बी० कैनन ने इस पर पहली बार प्रयोग प्रारंभ किया। कैनन को विश्वास था कि भूख खाली पेट की दीवारों के संकुचन के कारण महसूस होती है; पर प्यास के लिए तो ऐसा कोई साफ कारण नहीं था। उन्होंने कहा कि जरूर प्यास मुख व गला सूखने के

संवेदन से लगती है। इसकी पुष्टि में उन्होंने मुख में लार का निकलना बंद कर देनेवाली दवा 'एट्रोपीन' खायी और बताया—"इससे मुझे बिलकुल प्यास जैसी अनुभूति हुई।"

पर मुख सूखने के इस सिद्धांत का विरोध करते हुए कई लोगों ने कहा कि हमें तो गला सूखने और प्यास लगने में एक अंतर महसूस होता है। इन्होंने परीक्षण के लिए कुत्तों को वही गला सुखानेवाली दवा 'एट्रोपीन' खिलायी। देखा गया कि फिर भी कुत्तों ने बाकी दिनों के जितना ही पानी पिया।

वस्तुत: पानी पीने और प्यास बुझने में बहुत फर्क है। 'पाइलोकार्पाइन' नामक दवा खाने से मुख में अत्यधिक लार निकलने लगती है, लेकिन प्यास नहीं बुझती। उसके लिए पानी जरूरी होता है। कुछ लोगों को ऐसी प्रचंड प्यास का भी अनुभव है, जिसमें गला प्यास से जलने लगता है। लेकिन गला तो ठंड से भी जलन-सी महसूस करता है और यह संवेदन भी पानी से नहीं बुझता।

विज्ञान की नजर में प्यास का वास्तविक संबंध शरीर के निर्जलीकरण से है, जिसका संकेत हमें खून से मिलता है। घंटों तक खेलने या धूप में बहुत अधिक परिश्रम करने से पसीने के रूप में काफी पानी शरीर से बाहर निकल जाता है। परिणामस्वरूप पानी की कमी से खून गाढ़ा हो जाता है। अर्थात् 'डीहाइड्रेशन' या निर्जलीकरण की इस क्रिया से शरीर में पानी की कमी हो जाती है।

एक दूसरी तरह का भी निर्जलीकरण होता है, जब कि शरीर में आवश्यक[illegible] अधिक पानी हो। ऐसा बहुत मात्रा में नमक[illegible] युक्त पदार्थ खाने से हो जाता है। नमक[illegible] मात्रा बढ़ने से प्यास भी बढ़ती जाती है[illegible] तात्पर्य यह है कि शरीर में पानी की [illegible] मात्रा रहने पर भी, नमक की अधिक [illegible] खा लेने से प्यास लग जाती है। इस [illegible] शरीर में पानी ही नहीं, वरन् नमक की [illegible] का भी ठीक-ठीक संतुलन रखा जाता है[illegible]

अधिक नमक होने पर अधिक पानी [illegible] पीना पड़ता है, ताकि शरीर में नमक [illegible] पानी का अनुपात ठीक रहे। [illegible] अगर नमकीन पदार्थ खाकर इतना [illegible] पी लें कि उसे बाहर न निकाल सकें, [illegible] उनके पेट व पांव फूल जाते हैं। [illegible] अक्सर अधिक नमक खानेवाले लोगों [illegible] शरीर में नमक का अंश बढ़ जाता है [illegible] उन्हें बहुत प्यास लगती है।

आदमी को ५ प्रतिशत नमक के [illegible] का इंजेक्शन देने पर कुछ समय बाद ही [illegible] तीव्र प्यास लग जाती है। विशेषज्ञों के [illegible] सार, दिमाग में कैरोटिड धमनी के [illegible] पास कुछ खास तरह के सूक्ष्म 'ग्राही' [illegible] हैं, जो रक्त परासरण दाब (आस्मोटिक [illegible] टेन्शन) के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं [illegible] हैं। रक्त के गाढ़ा हो जाने पर एक [illegible] यनिक संकेत दिमाग में इन ग्राहियों [illegible] पहुंचता है, जो इस खबर को मुख तथा [illegible] तक भेज देते हैं। तब नाड़ियां हमें प्यास [illegible] प्रति सावधान कर देती हैं।

इधर पता चला है कि गुर्दों से पानी [illegible]

[illegible]

उत्सर्जन का नियंत्रण मस्तिष्क की पिच्यूटरी ग्रंथि से निकलनेवाला एक हारमोन करता है। ग्राहियों की आज्ञा से ही इस हारमोन का स्राव होता है। अतः नमक का इंजेक्शन देने पर प्यास की अनुभूति उस समय होती है, जब शरीर के भीतर रक्त इत्यादि द्रवों का परासरण दाब (आस्मोटिक टेन्शन) १ से २ प्रतिशत तक बढ़ जाता है। ऐसी दशा में कोशिकाओं में पानी का प्रतिशत कम हो जाता है।

स्वीडन के बी० एंडर्सन ने बकरियों के मस्तिष्क के अधश्चेतक भाग (हाइपोथेलेमस) नमक के गाढ़े घोल की आंशिक मात्रा इंजेक्शन द्वारा पहुंचाकर उनमें एकदम प्यास जगा दी। मस्तिष्क के अन्य भागों में नमक का इंजेक्शन देने से बकरियों को प्यास नहीं लगी। मस्तिष्क का हाइपोथेलेमस भाग ही 'प्यास-केंद्र' है। इस तरह शरीर में एक 'प्यास प्रतिवर्ती क्रिया' भी होती है। शरीर में पानी कम होने से मुख भी सूखने लगता है। नमकीन चीजें खाने से खून गाढ़ा होता जायेगा और प्यास भी बढ़ती जायेगी, लेकिन नमकीन भोजन बंद करते ही प्यास स्वयं बंद होने लगेगी।



महर्षि अगस्त्य
त्रिवेंद्रम् म्यूजियम की एक मूर्ति ओके द्वारा अनुकृति

डा० कुनूस मैन १९३३ में १२७ दिनों तक ढाई गैलन पानी प्रतिदिन के हिसाब से पीते रहे। आठ दिन के बाद उन्हें प्यास लगने लगी। अक्सर रात में उठकर उन्हें पानी पीना पड़ता था। असल में उनके शरीर से मूत्र के साथ नमक की बहुत मात्रा निकल जाती थी, जिससे उन्हें यह 'नमक-प्यास' लगने लगी थी। ऐसी प्यास नमक खाने पर बुझ जाती है।

आदमी भोजन के बिना महीनों जिंदा रह सकता है; लेकिन जल के बिना नहीं। किसी ठंडे कमरे में आराम से लेटकर ज्यादा-से-ज्यादा बारह दिन बिना पानी के जिया जा सकता है। इसीलिए लंबी समुद्री यात्रा में समुद्री पानी से बदन ठंडा करके प्यास लगने को काफी देर तक टाला जा सकता है। रेगिस्तानों में दिन में सिर्फ आराम करके रात को ठंड में यात्रा करने से भी अधिक प्यास से बचा जा सकता है।

रेगिस्तानों में दिन में यात्रा करते समय तपते हुए सूर्य की धूप में चौथाई गैलन पानी प्रतिघंटे के हिसाब से शरीर से बाहर निक-

लता है। शरीर का ३ से ५ प्रतिशत पानी निकल जाने पर आदमी असुविधा महसूस करने लगता है और चिड़चिड़ा हो जाता है। इसके बाद ५ से १० प्रतिशत कम होने पर मुख सूखकर कपड़े-सा लगने लगता है, जीभ तालू से चिपक जाती है, खाल सिकुड़ने से मुंह भरा हुआ लगता है और आदमी निगलने की क्रिया तेजी से दुहराने लगता है। आदमी अपने आप से बातें करने लगता है।

शरीर में १० से २० प्रतिशत पानी कम होने पर तो आंखें झपकनी बंद हो जाती हैं और आदमी बोलने में असमर्थ होकर मुंह में ही विलाप करने लगता है। इस स्थिति में वह अपना ही खून या पेशाब तक पी सकता है। २० प्रतिशत से अधिक पानी निकल जाने पर पसीने के स्थान पर त्वचा से खून की बूंदें निकलने लगती हैं और आंखों से भी खून के आंसू टपकने लगते हैं। प्यासा आदमी निराशा में रेत खोदता हुआ अंत में मर जाता है।

गर्मियों में शरीर का तापमान साधारण बनाये रखने के लिए प्रति १००० कि० ग्राम० कैलोरी ताप शरीर से बाहर निकालने के लिए हमें आधा गैलन पानी पसीने के रूप में बाहर निकालना पड़ता है। शरीर में चलनेवाली रासायनिक क्रियाओं और बहुत अधिक काम करने से मांसपेशियों की भट्ठियों में बननेवाली गर्मी से ही हम ज[illegible] कर खाक हो जायें, यदि कोशिकाओं [illegible] ऊतकों से पानी अतिरिक्त गर्मी को न नि[illegible] दे। यह गर्मी पसीने व मूत्र के साथ बा[illegible] निकाल दी जाती है।

लंबी समुद्री यात्राओं में कई लोग [illegible] वर्षा-जल, समुद्र-जल या मछलियों का [illegible] निचोड़कर प्राप्त किये गये पानी पर [illegible] निर्भर रहे हैं। बराबर मात्रा में शुद्ध [illegible] तथा समुद्री जल पीकर भी कई बार यात्रि[illegible] ने प्यास बुझायी है।

लेकिन आम तौर पर समुद्र-जल पी[illegible] जिया नहीं जा सकता। मानव-शरीर [illegible] निश्चित सीमा से अधिक नमक को [illegible] धारण नहीं कर सकता। अतिरिक्त [illegible] को वह मूत्र तथा पसीने के जरिये [illegible] निकाल देता है। लेकिन आदमी मूत्र [illegible] साथ २ प्रतिशत से अधिक नमक शरीर [illegible] बाहर नहीं निकाल सकता, जब कि समु[illegible] के पानी में लगभग ३.५ प्रतिशत न[illegible] होता है। इस अतिरिक्त नमक को शरी[illegible] से बाहर निकालने के लिए मनुष्य को १०[illegible] क्यूबिक सेंटिमीटर पानी पीकर १७५ [illegible] बिक सेंटिमीटर पानी उत्सर्जित कर[illegible] पड़ेगा, जो कि असंभव बात है। इस[illegible] महर्षि अगस्त्य की समुद्र पीने की [illegible] कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं।



ताशकंद से तमरेज जानेवाली सड़क पर साइरोप गांव के पास एक विशाल वृक्ष है। यह १,००० साल पुराना है और सात आदमी हाथ पकड़कर खड़े हों, तो भी इसे घेर नहीं सकते। इसका तना भीतर से खोखला है और उसमें एक चायघर बना हुआ है।



आधी रात का दफ्तर

विश्व की एक चौथाई से अधिक आबादी का भाग्य-संचालन रात के नीरव अंधेरे में होता है।

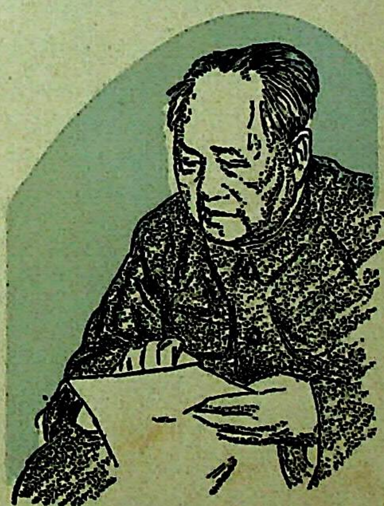
परिपूर्णानंद सिंह

रात के साढ़े बारह बज रहे हैं। सारा शहर गहरी नींद में सोया है। मगर शहर में एक मकान ऐसा है, जहां दिन का-सा उजाला हो रहा है। दरवाजे पर चुस्त वर्दी में प्रहरी तैनात हैं। लोग आ-जा रहे हैं। प्रहरी परिचितों को जाने देते हैं और अजनबियों को पूछताछ के लिए रोक लेते हैं। मकान के सामने बड़ी-बड़ी कारों की भीड़। कारों से उतरनेवाले लोग बड़े व्यस्त-से मकान में जाते और बड़े अस्त-व्यस्त निकलते हैं। उच्च सेना-अधिकारियों का तो तांता लगा है।

सारे शहर में अकेला जागता हुआ, आधी रात को दिन की दोपहर-सी व्यस्तता में डूबा हुआ यह मकान, जानते हैं क्या है?

पिछले उन्नीस वर्षों से चीनी जनता को साम्यवाद की ओर ले जानेवाले, सांस्कृतिक क्रांति के सूत्रधार, लालचीन के अधिनायक माओ त्से-तुंग का यह राजकीय निवास-स्थान है। यहीं वे आधी रात को विदेशी अतिथियों से मिलते हैं, जरूरी सरकारी कागज-पत्र देखते हैं और उपाध्यक्ष मार्शल लिन प्याओ, प्रधान मंत्री चाउ एन-लाइ और विदेश मंत्री चेन-यी जैसे प्रमुख सरकारी अधिकारियों को बुलाते हैं और सरकारी समस्याओं पर विचार-विनिमय करते हैं।

माओ दफ्तरी काम-काज रात के दस बजे शुरू करते हैं और कम-से-कम दो-तीन बजे रात तक उनका दफ्तर चलता रहता है। दफ्तर के बाद, अगर माओ की चीनी शत-



रंज खेलने की इच्छा हुई, तो वे इन अधिकारियों को और भी देर तक रोक ले सकते हैं। माओ त्से-तुंग चीनी शतरंज खेलने में माहिर हैं।

चीनी क्रांति के कर्णधार के व्यक्तिगत जीवन की अंतरंग झांकियां देखने से यह लगता है कि उनका जीवन बड़ा शांत, व्यस्त और पर्याप्त सुखमय है।

माओ त्से-तुंग की रात को देर तक जगकर काम करने की आदत उनके पुराने गेरिल्ला-जीवन में ही लग चुकी थी। उनकी पत्नी च्यांग चिंग ने भी पति की आदतों के अनुरूप ही अपने को ढाल लिया है। पति-पत्नी दोनों की दिनचर्या बड़ी चिलचस्प है।

माओ दंपति दिन के ग्यारह बजे सोकर उठते हैं। उस समय तक सारा पेकिंग शहर पूरे तीन घंटे तक दफ्तरों और कारखानों में खट चुका होता है। उठने के बाद सबसे पहला जो काम माओ करते हैं, वह है अपने घर में ही बने स्विमिंग पूल में तैरना। उनका यह जलकुंड इतना बड़ा है कि उसमें एक साथ बारह तैराक उतर सकते हैं। उस कुंड में मौसम के अनुसार गर्म या ठंडा जल भरा जा सकता है। जब माओ कुंड में पीठ के बल तैरते होते हैं, तो उनके सब निजी सचिव भी अक्सर साथ होते हैं, क्योंकि माओ तैरते समय बातचीत करते रहना पसंद करते हैं। मगर हर आदत में साथ देनेवाली उनकी पत्नी नहाने के मामले में कतरा जाती हैं। हां, कभी-कभी तैराकी देखने के लिए वे कुंड के किनारे बैठ अवश्य जाती हैं।

अक्सर श्रीमती च्यांग चिंग उठने के [illegible] रसोई-घर की ओर चली जाती हैं और [illegible] इयों को हिदायतें देती हैं कि नाश्ते में [illegible] क्या बनाया जाये, या दिन के खाने का [illegible] क्या हो। खाना बनाने के लिए तीन नौ[illegible] हैं। श्रीमती माओ स्वयं कभी खाना [illegible] बनातीं।

सामान्यतया माओ दंपति नाश्ता [illegible] के बारह बजे करते हैं, दिन का खाना [illegible] के छः बजे और रात का खाना [illegible] रात को। खान-पान में माओ दंपति [illegible] कट्टर हैं। वे बिलकुल चीनी ढंग का [illegible] ही खाते हैं। उन्हें पश्चिमी खाना बिल[illegible] नापसंद है। यही नहीं, वे टेबुल और [illegible] कांटे से खाने की रीति को भी पसंद [illegible] करते। गर्म मसालों में माओ की उतनी [illegible] तीव्र रुचि है, जितनी कि क्यूबा के [illegible] में उनकी आसक्ति है। श्रीमती च्यांग [illegible] भी ठेठ देहाती खाना पसंद करती हैं।

माओ जब खाना खा रहे होते हैं, तो [illegible] मुंह से 'चप-चप' की आवाज निकलती [illegible] और जब वे सिगार का कश खींचते हैं, [illegible] देहातियों की तरह मुंह से बड़े जोर-जोर [illegible] सीत्कार करते हैं। इतने वर्ष शहरी [illegible] बिताने के बावजूद माओ त्से-तुंग में देहा[illegible] पन आज भी बना हुआ है। कभी-कभी [illegible] उनकी इस ग्राम्यता से लोग संकोच में [illegible] जाते हैं।

एक बार येनान में अमरीकी पत्र[illegible] एडगर स्नो से बातचीत करते-करते [illegible] त्से-तुंग ने अपने पैंट का बेल्ट खोल [illegible]

और पैंट के ऊपरी हिस्से को पलटकर उसमें जूंएं ढूंढ़ने लगे। एडगर स्नो तो स्तंभित रह गये। स्नो ने यह भी लिखा है कि एक बार माओ अपने गुफानुमा घर में जब गर्मी से परेशान हो गये, तो अतिथियों के सामने ही अपना पैंट खोल डाला।

माओ के व्यस्त कार्यक्रम को देखकर यह अनुमान लगाना सहज नहीं है कि उन्हें पढ़ने-लिखने का भी समय मिलता होगा या नहीं। पर, दरसअल माओ का काफी समय स्वाध्याय में जाता है। संभवतः उन्होंने विश्व की लगभग सभी प्रमुख ऐतिहासिक और दार्शनिक पुस्तकें अनुवाद के माध्यम से पढ़ ली हैं। माओ कोई विदेशी भाषा नहीं जानते। हालांकि सुना जाता है कि सन १९५० के लगभग उन्होंने अंग्रेजी सीखना शुरू किया था। माओ के जीवन पर सबसे गहरा प्रभाव डाला है, प्राचीन चीन के क्लासिकी साहित्य ने। दि वाटर मार्जिन, दि रोमांस आफ दि थ्री किंगडम्स और दि ड्रीम आफ दि रेड चैम्बर्स जैसे उपन्यासों ने उनके मन को बड़ा गहरा छुआ है।



मदाम च्याङ चिंग

'दि वाटर मार्जिन' उपन्यास में दिखाया गया है कि सौ साल पहले चीन में गरीब अमीरों से किस तरह लड़े। 'चिंग पिंग मी' नामक उपन्यास भी माओ की सर्वाधिक प्रिय पुस्तकों में से एक है। इसमें एक परकीया पत्नी की कहानी वर्णित है। इसम प्राचीन चीनी बुद्धिजीवियों के यौन जीवन का बड़ा स्पष्ट चित्रण किया गया है।

माओ त्से-तुंग का यौन जीवन भी बड़ा रंगीन रहा है। माओ ने चार शादियां कीं। उनकी पहली शादी माता-पिता ने करायी थी और वह बिना सुहागरात मनाये ही टूट गयी। कहा जाता है, यह पत्नी कुरूप थी, इसीलिए माओ ने उसे छोड़ दिया। सन १९२१ की सर्दियों में उन्होंने दूसरी शादी की। उनकी दूसरी पत्नी का नाम काइ-हुई था और वह उनके शिक्षक की लड़की थी। उस बेचारी को १९३० में हुनाव के गवर्नर ने फांसी दे दी। उसका अपराध इतना ही था कि उसने माओ से शादी की और अंत तक उन्हें पति मानती रही।

काइ-हुई की मृत्यु के फौरन बाद ही उन्होंने हो त्से-चेन से शादी की, जिसने अक्टूबर १९३४ में शुरू हुए 'लंबे कूच' में साथ दिया था। त्से-चेन उस लंबी यात्रा में घायल हो गयी और उसे १९३७ में इलाज के लिए रूस भेजा गया। दो साल बीत गये, मगर त्से-चेन अच्छी नहीं हुई और अस्पताल में ही पड़ी रही। तब माओ ने उसे तलाक देकर एक फिल्म अभिनेत्री लान पिंग से शादी की। वही लान पिंग आज श्रीमती च्यांग चिंग हैं।

माओ दंपति कभी पेकिंग के बाहर अपने ग्राम-गृह में रहते हैं, कभी पुराने शाही पर-कोटे के भीतर चुंग नन हाइ के पांच कमरों वाले एपार्टमेंट में। चुंग नन हाइ पार्टी के उच्च पदाधिकारियों का मुहल्ला है।

माओ दंपति का परिवार बहुत छोटा है। च्यांग चिंग से माओ को दो लड़कियां हुई हैं—माओमाओ और लीना। उनका पुत्र माओ एन यिंग, जो उनकी दूसरी पत्नी की कोख से जन्मा था, कोरिया के युद्ध में मारा गया। उनकी तलाकशुदा तीसरी पत्नी हो त्से-चेन आजकल अपने रिश्तेदारों के साथ हांग चाओ में रहती है।

माओ त्से-तुंग बातचीत की कला में बड़े दक्ष हैं। जब वे घर पर होते हैं, तो अपनी दोनों लड़कियों और अपने दो मृत भाइयों के लड़कों के साथ गपशप में उलझे रहते हैं। माओ के दोनों भाई कुमिन्तांग द्वारा मारे गये थे। घर की बनायी अंगूरी शराब की चुस्कियां और लंबे गृहयुद्ध की कथा-फुल-झड़ियां फूटती-छूटती रहती हैं।

कभी-कभी माओ बातचीत करते-करते जरा गंभीर हो जाते हैं और बच्चों से पूछते हैं—"क्या तुम लोगों को भी सैनिक शिक्षा के लिए भेज दूं?"

हर साल माओ तीन महीने की लंबी छुट्टी लेते हैं। अगर गर्मी के दिन हों, तो उत्तर में पिटायहो अथवा चिनवां[illegible] अथवा दक्षिण में लू पहाड़ों में जाना [illegible] करते हैं। सर्दियों में उन्हें शंघाई [illegible] हांगचाओ में रहना पसंद है। दोनों [illegible] उनके निजी मकान हैं, कारें हैं, [illegible] अक्सर माओ दंपति साथ-साथ ही [illegible] करते हैं। चीन में वे बड़ी प्यारी और [illegible] जुगल-जोड़ी के रूप में प्रसिद्ध हैं। [illegible] दोनों शराब पीते होते हैं, तो दोनों [illegible] दूसरे के प्रति प्रेम कविता की भाषा में [illegible]शित करते हैं।

चीन में शतरंज खेलने वाली [illegible] को बड़ी तीक्ष्णबुद्धि माना जाता है। [illegible] श्रीमती माओ शतरंज में कोई दि[illegible] नहीं रखतीं। वे चीनी क्लासिक पढ़ना [illegible] पसंद करती हैं। शायद इसका कारण [illegible] का प्रभाव हो।

वे जब-तब अपने कुछ अंतरंग मित्रों [illegible] घर पर आमंत्रित करती रहती हैं और [illegible] अपनी पुरानी फिल्में दिखाकर उनका [illegible]रंजन करती हैं। वे सिनेमा, बैले और [illegible] आदि में अक्सर जाया करती हैं। और [illegible] कभी ऐसे कलाकारों की सख्त नुक्ता[illegible] भी करती हैं, जो 'माओ के विचार' [illegible] अपने जीवन में नहीं उतारते हैं।

★

५ अगस्त १९६८ को माओ त्से-तुंग ने शिंहुआ विश्वविद्यालय में अपने विचारों [illegible] प्रचार करनेवाले एक मजदूर किसान दल को आमों का बहुमूल्य उपहार दिया। उस [illegible] आम को माओ के अपराजेय विचार वाला एक आध्यात्मिक बम कहा और लाखों नाग[illegible] सैनिकों ने बाजे-गाजे के साथ जुलूस निकालकर इस आध्यात्मिक बम का स्वागत किया।

★

हमारा विज्ञान
हमारे वैज्ञानिक

चंदन



हृदय-प्रतिरोपण
क्या अनावश्यक हो जायेगा?

हृदय-प्रतिरोपण हुआ और सर्जरी के क्षेत्र में एक क्रांति हुई। दक्षिण अफ्रीकी सर्जन डा० क्रिश्चियन बर्नार्ड का नाम दुनिया के छोटे-बड़े सभी अखबारों की सुर्खियों में चमक उठा, रेडियो, न्यूज-बुलेटिनों में गूंज उठा। अमरीका, इंग्लैंड, भारत और जापान में भी दिल बदले गये। अधिकांश पराये दिल वाले इस दुनिया में नहीं रह सके, डाक्टरों की ज़ी-तोड़ कोशिशों के बावजूद। डा० फिलिप ब्लेबर्ग सबसे अधिक दिलदार साबित हुए। इस दृष्टि से सर्जन बर्नाड की यह दूसरी सफलता थी। जिगर के प्रतिरोपण के भी कुछ मामले पिछले महीनों में हुए हैं।

अंग-प्रतिरोपण से संबंधित सर्जरी ने अब एक नये आयाम को छुआ है। संभावनाएं काफ़ी वजनी हैं। जब ये आगे बढ़ेंगी, तो बड़ी दूरगामी होंगी। जरा कल्पना कीजिये। अंग-प्रतिरोपण तो हो, लेकिन बिना सर्जरी के, यानी बिना चीर-फाड़ के। बात सुनने में सनसनीखेज लगती है। परंतु इस संभावना के जन्मदाता और इसे आगे बढ़ाने के लिए प्रयत्नरत वैज्ञानिक वाटूमल पुरस्कार-विजेता डा० पी० एम० भार्गव (उपनिदेशक

एवं अध्यक्ष जैव-रसायन विभाग, रीजनल रिसर्च लेबोरेटरी, हैदराबाद) ने जब अपना शोध-कार्य एक सिद्धहस्त शिक्षक की भांति प्रेस-संवाददाताओं को समझाना शुरू किया, तो वात ऐसी न थी, जो समझ में न आ सके।

डा० भार्गव ने बड़े-बड़े दावे करने के बजाय इस बात पर बल दिया कि इस दिशा में अभी काफी काम करना होगा। और यह डा० भार्गव के स्वभाव और चिंतन से पूरी तरह मेल खाता है। उन्हें शिकायत है कि हमारे पत्रकार "वास्तविक शोध-कार्य पर जोर न देकर उस पर आधारित ऊहा-पोह (स्पेक्युलेशन) पर ज्यादा जोर दे बैठते हैं।" उनके शोध-कार्यके संबंध में एक विस्तृत लेख अंतर्राष्ट्रीय-ख्यातिप्राप्त शोध-पत्रिका 'एक्सपेरिमेन्टल सेल रिसर्च' में प्रकाशित होनेवाला है। यों इससे पूर्व भी उनके लगभग साठ शोध-निबंध विश्व की उच्चतम कोटि की अनुसंधान-पत्रिकाओं में ससम्मान स्थान पा चुके हैं।

मानव-शरीर के किसी अंग-विशेष में कोई गंभीर दोष पैदा हो जाने पर उसे ठीक करने की दो ही विधियां आज तक ज्ञात थीं— औषधों द्वारा, अथवा सर्जरी करके उसके स्थान पर दूसरे (कृत्रिम या वास्तविक) अंग के प्रतिरोपण के द्वारा। डा० भार्गव जिस विधि पर कार्य कर रहे हैं, वह इन दोनों से एकदम अलग और नयी है। इसके अनुसार यदि किसी दूषित अंग वाले प्राणी को उसी जाति के किसी अन्य प्राणी के उसी अंग की कोशिकाएं इंजेक्शन के रूप में दे दी जायें, तो संभव है कि इंजेक्शन के माध्यम से शरीर में प्रविष्ट कोशिकाएं धीरे-धीरे अंग पर 'रोपित' होने लगें और इस प्रकार उस अंग को वाहर निकालने की आवश्यकता न रह जाये। प्रयोग से इस संभावना को काफी वल मिला है।

मतलब यह कि अव इंजेक्शन के रूप में दवा नहीं, अपितु स्वयं अंग-विशेष के रूप में होगा; अथवा शल्यक्रिया द्वारा जो अंग शरीर में पहुंचाया जाता था, उसका बीज अव सूई के माध्यम से शरीर में पहुंचाया जा सकेगा। यह वीज शरीर में उसी प्रकार विकसित हो सकेगा, जिस प्रकार किसी वृक्ष के फल के सूख-सड़कर गिर जाने पर उसके स्थान पर दूसरा फल स्वतः उत्पन्न हो जाता है। प्रकृति में जो सुविधाएं पेड़-पौधों को प्राप्त हैं, वे मनुष्य या पशु-पक्षियों को प्राप्त क्यों नहीं हो सकतीं? हो सकती हैं, डा० भार्गव ने सिद्ध कर दिखाया है।

इस उपलब्धि का मूल्यांकन चिकित्सा-जगत् किस प्रकार करता है, यह तो अभी देखना होगा; परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि डा० भार्गव की यह उपलब्धि दिल आदि वदलने की सनसनीखेज उपलब्धि से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण, उपयोगी, बुनियादी और मौलिक है। क्योंकि हृदय-प्रतिरोपण में तकनीक का विकास अधिक है, किसी मूल सैद्धांतिक अनुसंधान का उतना नहीं; जबकि इस भारतीय वैज्ञानिक की शोध का क्षेत्र पूर्णतः सैद्धांतिक और मौलिक है।

अब जरा प्रयोग-पक्ष पर भी दृष्टि डालें। प्रयोगों के दौरान एक चूहे के जिगर (लिवर) से निलंबन (सस्पेन्शन) के रूप में कोशिकाएं प्राप्त की गयीं, जिन्हें बाद में इंजेक्शन के द्वारा उसी आनुवंशिक रचना वाले एक दूसरे चूहे के शरीर में पहुंचा दिया गया। चौबीस घंटे बाद देखा गया कि प्रविष्ट की गयी कोशिकाएं दूसरे चूहे के जिगर के संरचनात्मक मैट्रिक्स में विद्यमान हैं। किसी वयस्क पशु की ऊतक कोशिकाएं अपनी ही जाति के किसी अन्य पशु की तत्समान कोशिकाओं को पहचानने और उन्हें स्वीकार करने में सहज ही समर्थ हो सकती हैं, इसका यह पहला प्रदर्शन था।

संभव है, ये प्रयोग मनुष्य पर भी करके देखे जायें। इस संबंध में डा० भार्गव ने स्पष्ट कहा—"मैं अभी यह नहीं कह सकता कि किसी औषध से पूर्व-उपचार किये बिना भी मनुष्य के ऊतक-विशेष किसी दूसरे मनुष्य की तत्समान ऊतकी कोशिकाओं को स्वीकार कर सकेंगे, या इस प्रकार के प्रतिरोपण के लिए औषधीय पूर्व-उपचार आवश्यक हुआ करेगा।" उनका कहना है—"इस विषय में निरंतर खोज करते रहना होगा।"

कोशिकाओं को पशु-शरीर में इन्जेक्ट करने में सफल होने के लिए डा० भार्गव को अनेक वर्षों तक साधना करनी पड़ी। जिगर की कोशिकाओं का निलंबन कैसे तैयार किया जाये?—यह भी एक समस्या थी। इस संबंध में भी डा० भार्गव को अनेक मौलिक प्रयोग करने पड़े। उनके परिणाम स्वीडन की 'एक्सपेरिमेन्टल सेल रिसर्च' नामक विख्यात शोध-पत्रिका (३ सितंबर १९६२ के अंक) में प्रकाशित हुए थे।

यों तो कोशिकाओं के निलंबन तैयार करने की अनेक विधियां ज्ञात थीं; परंतु डा० भार्गव द्वारा आविष्कृत विधि तुलनात्मक दृष्टि से सर्वोत्तम समझी गयी। इसके कई महत्त्वपूर्ण कारण थे, जिन्हें गिनाने के लिए कुछ तकनीकी शब्दों का उपयोग करना पड़ेगा।

भार्गव-विधि द्वारा तैयार किया गया निलंबन रक्त-कोशिकाओं, कोशिकीय संदूषक पदार्थों तथा कोशिकीय मलबे से मुक्त होता है। कोशिकाएं व्यर्थ में नष्ट नहीं हो पातीं। किसी अवस्था में ऊतक का कोई बड़ा भारी उपचार नहीं करना पड़ता। पशुओं को निर्जीव करने के बाद निलंबन तैयार करने में पंद्रह मिनिट से अधिक समय नहीं लगता।

निलंबन की अवस्था में यकृत कोशिकाओं के प्रोटीनो में 'लेबल्ड' अमीनों अम्ल किस प्रकार समाविष्ट किये जा सकते हैं—इस विषय पर डा० भार्गव ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। ब्रिटेन की 'लाइफ सायंसेज' पत्रिका के एक अंक (अंक ९, १९६२) में प्रकाशित इस विषय के एक शोध-निबंध में डा० भार्गव ने अपनी विधि को समझाते हुए उसके परिणामों की स्पष्ट व्याख्या भी प्रस्तुत की है।

चूहे के जिगर के रासायनिक और कोशि-

कीय संगठन के संबंध में अनेक महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर डा० भार्गव का अध्ययन भी 'लाइफ सायंसेज' (अंक ५, १९६३) में प्रकाशित हुआ था। उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विज्ञान का यह मौन साधक एक लंबे अर्से से योजनाबद्ध तरीकों से धीरे-धीरे, परंतु निरंतर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता रहा है। जिस दिन वह अपने लक्ष्य पर पहुंचेगा, उस दिन सर्जरी के क्षेत्र में एक नयी क्रांति आयेगी। जरा सोचें, तब केवल दवाओं के ही नहीं, कोशिकाओं के भी इंजेक्शन होंगे और सर्जन के हाथ में नश्तर की जगह सिरिंज होगी।

निलंबन में चूहे की वियुक्त यकृती कोशिकाओं की प्रश्वसन-प्रक्रिया संबंधी जो बारीक छानबीन डा० भार्गव और उनके साथियों ने शुरू की थी, वह जब १९६५ में ब्रिटेन के 'बायोकेमिकल जर्नल' के द्वारा प्रकाश में आयी, तो इन शृंखलाबद्ध अध्ययन-प्रयोगों में एक नया मोड़ आया। अगली महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी—चूहे के जिगर के निलंबन में ऊतकी कोशिकाओं द्वारा सजातीय राइबोन्यूक्लिक अम्लाणुओं की ग्रहण-क्षमता पर डा० भार्गव के शोध-निबंध का प्रकाशन (बायोकेमिकल जर्नल, १९६६

इसके अतिरिक्त इसी विषय में डा० भार्गव के आधे दर्जन के लगभग मौलिक शोध-निबंध देश-विदेश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ स्वीकृत हैं। जिस लगन, तत्परता और निष्ठा के साथ विज्ञान-साधक अपनी प्रयोगों की दुनि में मस्त है, यह देखकर गर्व होता है।

१९२८ में राजस्थान में जन्मे डा० भार्ग ने लखनऊ विश्वविद्यालय से 'डाक्टरे प्राप्त की और शुरू-शुरू में वहीं अध्या भी किया। फिर 'चीकने पात' के 'होनहार बिरवे' ने यूरोप, अफ्रीका और उत्तरी अमरीका महाद्वीपों के दो दर्जन से भी अधिक देशों का दौरा किया—कहीं अध्ययन किया, तो कहीं भाषण दिये, और कहीं सेमिनारों में सम्मिलित हुए और फिर हैदरा बाद में दत्तचित्त हो अनुसंधान-कार्य के लिए अपने को अर्पित कर दिया।

खोज-कार्य, पुस्तक-लेखन, सभा-समि तियों की सदस्यता, वैज्ञानिक सलाह और मार्गदर्शन देने की जिम्मेदारी और प्रशा सन में व्यस्त डा० भार्गव शौकिया फोटो ग्राफर भी हैं और खिलाड़ी भी।

★

महत्त्वपूर्ण यह नहीं कि तुम काम में कितनी बार विफल हुए हो, बल्कि यह है कि तुमने कितनी बार यत्न किया है।

महत्त्वपूर्ण यह नहीं कि तुमने कितनी मेहनत की है, बल्कि यह है कि तुमने कितनी अच्छी तरह व सच्चाई से काम किया है।

महत्त्वपूर्ण यह नहीं कि तुम कितनी बार गिरे हो, बल्कि यह है कि तुम फिर कितनी बार संभले हो!

—ए० पी० ...

★



तनाव, अल्सर और संबंधित बातें

एक विख्यात अमरीकी चिकित्सक के साथ प्रश्नोत्तर

संकलनकर्ता : नलिनी कांत

प्लेग, हैजा, मलेरिया और तपेदिक पर आदमी काबू करता चला जा रहा है, तो कैन्सर, ब्लडप्रेशर, अल्सर और हृद्‌रोग अपना साम्राज्य फैलाते जा रहे हैं। कैन्सर से तो शायद सभी डरते हैं; लेकिन ब्लडप्रेशर, अल्सर और हृद्‌रोग गौरवप्रद रोग बन गये हैं; क्योंकि उन्हें व्यस्तता और कार्याधिकता की निशानी समझा जाता है और काम-काज की अधिकता की महत्ता का प्रतीक माना जाता है।

पर क्या ये जितने लोग ब्लडप्रेशर, अल्सर और हृद्‌रोग से मरते हैं, सचमुच वे सब बेहद काम करने के कारण ही मरते हैं?

डा० जोसेफ एफ० मांटेग का कहना है—"दुनिया में कोई भी आदमी बेहद काम नहीं करता। मैंने कभी किसी आदमी को काम की अधिकता के कारण बीमार पड़ते नहीं देखा।"

डा० मांटेग पेट और आंतों की बीमारियों के माने हुए विशेषज्ञ हैं। वे चिकित्साशास्त्र की कई पुस्तकें लिख चुके हैं, कई वर्ष तक 'हेल्थ डाइजेस्ट' नामक पत्रिका के प्रधान संपादक रहे हैं और आजकल अमरीका के चिकित्सा-शास्त्रीय लेखकों के संघ के अध्यक्ष हैं। चिकित्सा-संबंधी कई उपकरणों के

आविष्कार का भी उनको श्रेय है। आइये, तनाव, अल्सर और आराम के बारे में उनसे थोड़ी देर बाद-चीत कर लें।

डा० मांटेग—आदमी काम की अधिकता से नहीं, अपने को अत्यधिक थका डालने के कारण बीमार पड़ते हैं; और अक्सर उनके अत्यधिक थकने का कारण होता है असीम महत्त्वाकांक्षा, असाध्य लक्ष्य, जो कि अत्यधिक स्नायविक तनाव को जन्म देता है।

प्रश्न : स्नायविक तनाव दरअसल क्या चीज है और क्यों होता है ?

उत्तर : स्नायविक तनाव नितांत स्वाभाविक चीज है। कुछ-न-कुछ तनाव का होना आवश्यक है, अन्यथा आदमी बाहरी संवेदनों के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं कर सकता। असली समस्या तनाव नहीं है। तनाव समस्या तब बन जाता है, जब उसे इस कदर बढ़ने दिया जाये कि वह शरीर के स्वाभाविक क्रियाकलाप में बाधा डालने लगे।

प्रश्न : क्या स्नायविक तनाव हर आदमी को सताता है ?

उत्तर : नहीं, कुछ लोग ऐसे चुस्त होते हैं कि वे जीवन और उसकी समस्याओं को खास महत्त्व नहीं देते। तनाव से प्रायः वही पीड़ित होते हैं, जो बहुत संवेदनशील हैं, बुद्धिमान हैं—यानी ऐसे लोग जो सभ्यता को संवारते और आगे बढ़ाते हैं। मुसीबत यह है कि अधिक बुद्धिमान होने के कारण ये अधिक संवेदनशील भी होते हैं और इसलिए इनका स्नायु-संस्थान अधिक सूक्ष्म होता है; जरा-सी गड़बड़ से वह विक्षुब्ध जाता है। एक दृष्टांत लें। अपनी म अलार्म घड़ी को फर्श पर पटक दीजिये। देखेंगे, वह पूर्ववत् चलती रहेगी। वहीं आप अपनी हाथ-घड़ी को गिरा बैठें, तो घड़ीसाज के पास ले जाना जरूरी जायेगा।

प्रश्न : क्या कुछ पेशों में स्नायविक तनाव की संभावना ज्यादा रहती है ?

उत्तर : हां, यह एक प्रचलित धार है। निश्चय ही मामूली ट्रक-ड्राइवर को का अल्सर होने का उतना खतरा नहीं होता जितना कि किसी व्यापारिक संस्थान के संचालक को होता है। इसीलिए पेट के अल्सर को दिमागी काम करनेवालों की बीमारी माना जाता है। लेकिन मेरी राय में स्नायविक तनाव के लिए पेशा नहीं, बल्कि व्यक्ति अधिक दोषी है।

कोई भी ऐसा आदमी, जो अपने की जिम्मेदारियों को उठाने की मानसिक, बौद्धिक क्षमता रखता हो, कभी अल्सर का शिकार नहीं होगा। जब आदमी स्थितियों और प्रश्नों का सामना करने कमजोर पड़ जाता है और अपनी न्यून को समझता है, वह अपना भावनात्मक संतुलन खो बैठता है और स्नायविक तनाव और पेट के अल्सर का शिकार हो जाता है।

असल में बात यह है कि बहुत-से लोग गलत ढंग के पेशे में चले आते हैं और उस में पनपने और चमकने की कोशिश करते हैं। इनमें से कुछ लोग परिश्रम और कई अवसरों

कुछ धूर्तता द्वारा ऊंचे पद पर पहुंच जाते हैं। अगर उनमें अपने काम को ठीक से करने की शक्ति है, तो वे स्नायविक तनाव के शिकार नहीं होंगे। लेकिन उनके अधिकार प्रायः अधीनस्थ कर्मचारियों को इसका शिकार बना देते हैं। प्रायः ये जालिम अफसर कहलाते हैं। वे बड़े आराम से दूसरों की नींद हराम कर सकते हैं। अधीनस्थ कर्मचारी तनाव से बचाव के लिए, धूम्रपान, मदिरा आदि का सहारा लेते हैं, जो शरीर को उत्तेजना देकर क्षणिक आराम पहुंचाती है।

लेकिन यह ऐसा ही है, जैसे अरई चुभा-चुभाकर अपने आपको चलाना। आप जानते हैं, तंबाकू में कई रासायनिक द्रव्य होते हैं, जिनमें से निकोटीन भी है। इसी तरह आपके शराब पीने से भी शरीर में ऐसे द्रव्य पहुंचते हैं, जो शरीर-तंत्र के लिए हानिकारक होते हैं। कुछ लोग—खासकर पश्चिमी देशों में—अपने को बहुत चतुर समझते हैं। सवेरे दफ्तर पहुंचते ही वे चुस्ती लाने के लिए गोलियां निगल लेते हैं, जिन्हें 'पेप पिल्स' कहा जाता है। चुस्ती तो आ जाती है, लेकिन स्नायु-तंत्र इतना तन जाता है कि



उद्भ्रांत : पंकज गोस्वामी

रात को बिस्तर पर पड़ जाने पर भी देर तक नींद नहीं आती; इसलिए वे नींद की गोलियां निगलते हैं। उनका खुमार उतारने के लिए सवेरे फिर 'पेप पिल्स।'

इस तरह ये अपने शरीर में रासायनिक अरई चुभाते चले जाते हैं, जिससे स्नायविक तनाव का असली कारण निरंतर जटिल होता चला जाता है। वास्तव में दफ्तर से थककर या खीजकर घर आये हुए आदमी के लिए सबसे अच्छा तो यह उपाय है कि वह ऋतु के अनुसार ठंडे या गर्म पानी से अच्छी तरह स्नान करे—शरबत या एक प्याली गर्म पेय पिये और आराम से खाना खाकर सो जाये।

प्रश्न : आपने बताया कि अल्सर स्नायविक तनाव का प्रसिद्ध लक्षण है, तनाव के अन्य लक्षण क्या हैं?

उत्तर : उग्र स्नायविक तनाव किसी भी अंग को प्रभावित कर सकता है; क्योंकि सभी अंग स्नायुओं से संबंधित होते हैं। लेकिन मर्मस्थलों पर उनका परिणाम अधिक उग्र होता है, खासकर दिल और रक्तवाहिनियों पर, या पाचन-क्रिया संपन्न करनेवाले आमाशय और अंतड़ियों पर। यही नहीं,

तनाव से अंत:स्रावी ग्रंथियों की क्रियाएं भी गड़बड़ा सकती हैं। इन ग्रंथियों में थायरायड, पिच्यूटरी और जनन-ग्रंथियां मुख्य हैं, जो कि हमारे शरीर में बहुत महत्त्वपूर्ण स्रावों को मिलाते हैं। ये स्राव शरीर के अवयवों की विभिन्न क्रियाओं के संचालन में सहायक होते हैं। अतः कहा जा सकता है कि स्नायविक तनाव का उग्र रूप शरीर के



मूर्तिकार : दामानी

किसी भी भाग को प्रभावित कर सकता है।

प्रश्न : क्या इसका असर आदमी के दैनिक काम-काज पर पड़ता है।

उत्तर : हां, क्यों नहीं ! जहां भी आदमी काम करता है, उससे उम्मीद की जाती है कि वह विवेक और समझबूझ से काम लेगा। लेकिन अगर वह स्नायविक तनाव का शिकार है, तो ऐसा नहीं कर सकता। वह एकाग्रचित्त नहीं हो पाता, सुलझे ढंग से सोच [illegible] पाता, और सबसे बुरी बात यह है कि [illegible] मन में वह स्वयं जान रहा होता है कि [illegible] ठीक से अपना काम निभा नहीं पा रहा [illegible] और उसमें आंतरिक द्वंद्व शुरू हो जाता है।

मुझे याद आता है कि डेल कार्नेगी [illegible] मैंने एक किस्सा सुनाया था, जिसे वे [illegible] भाषणों में प्रायः सुनाया करते थे। [illegible] यों है कि मैंने एक रोगी को बताया कि [illegible] अल्सर है। रोगी बोला—"डाक्टर [illegible] हम जो खाते हैं, उसी से ये अल्सर हो [illegible] हैं न ?" मैंने उत्तर दिया—"नहीं भाई, [illegible] जो खाते हो उससे नहीं, बल्कि जो [illegible] तुम्हें खाये डाल रही है, वह अल्सर [illegible] करती है। यह बात आज भी उतनी ही [illegible] है। दरअसल जब हम दुनिया से संघर्ष [illegible] के बजाय अपने आपसे संघर्ष करने [illegible] हैं, तब अल्सर होते हैं।

प्रश्न : ऐसी हालत में आप अपने रोगि[illegible] को क्या सलाह दिया करते हैं ?

उत्तर : यही कि वह दुनिया के [illegible] महत्त्वपूर्ण व्यक्ति का यानी अपने [illegible] घनिष्ठ परिचय प्राप्त करे। उसे यह [illegible] की कोशिश करनी चाहिये कि किसी [illegible] या पेय पदार्थ का, धूम्रपान और मद्य[illegible] का, खेल-कूद और व्यायाम का उसके [illegible] पर क्या प्रभाव पड़ता है। वह ऐसा [illegible] काम न करे, जिससे शरीर की व्यवस्था [illegible] बड़ा जाये। मैं यह नहीं कहता कि वह [illegible] के सब आनंद और विनोद छोड़ बैठे। [illegible] ऐसा नहीं होना चाहियें कि रात-भर [illegible]

रहे और सवेरे सिरदर्द लिये दफ्तर आ पहुंचे।

प्रश्न : क्या छुट्टी स्नायविक तनाव से बचने में सहायक नहीं है?

उत्तर : छुट्टी अवश्य लाभप्रद चीज है। लेकिन एक साथ लंबी छुट्टी लेना आवश्यक नहीं। वल्कि बीच-बीच में थोड़े-थोड़े दिनों की छुट्टी लेते रहना चाहिये—सो भी छुट्टी बिताने के लंबे-चौड़े प्रोग्राम वनाये विना। बहुधा लोग छुट्टी में इतने सारे कार्यक्रम भर लेते हैं कि छुट्टी की थकान कई माह तक नहीं मिटती। मेरी राय में, साल में एक बार चार हफ्ते की छुट्टी लेने के बजाय दो-दो हफ्ते की छुट्टी लेना ज्यादा अच्छा है। छुट्टी का मतलव है—अपने रोजमर्रा के वातावरण और ढर्रे से वाहर निकलना।

प्रश्न : यानी छुट्टी पर अपने साथ काम ले जाना ठीक नहीं।

उत्तर : छुट्टी में कोई काम नहीं करता। अगर काम किया, तो छुट्टी ही क्या हुई?

प्रश्न : और सप्ताहांत कैसे वितायें?

उत्तर : मेरा खयाल है, शनिवार-रविवार की छुट्टियां मिलने-जुलने आदि ऐसे कार्यक्रमों के लिए रखना चाहिये, जो बाकी दिनों में काम-काज में बाधक होते हैं। बाकी दिनों में मिलना-जुलना उतनी महत्त्वपूर्ण चीज नहीं है, जितना कि मिलनसार होना। यानी सब दिन शिष्ट, हंसमुख बने रहिये; लेकिन मेल-मुलाकात के प्रोग्राम सप्ताहांत या छुट्टी के दिनों के लिए रख छोड़िये, जिससे आपको काम-काज और मौज-मजा दोनों पर एक साथ ध्यान न देना पड़े।



फिरदौसी

सोने के बदले तुम्हें मिली चांदी
तो क्या हुआ अजूबा
कि तुम घुट-घुटकर मर गये
यह तो होता ही है
कि कवि अपनी कृतियों का सुख
स्वयं नहीं भोगता
(ऐसी ही हैं रूढ़ियां)
उससे लाभान्वित होती हैं
बाद वाली पीढ़ियां। तुम्हें न सही
तुम्हारे किसी वारिस को तो
'शाहनामे' पर सोने की अशर्फियां
मिलीं ही।
कवि ! तुम बड़ा गलत कर गये
कि इस मामूली छलावे को
नहीं सह सके
और घुट-घुटकर मर गये।

— रामचंद्र 'चंद्रभूषण'



प्रश्न : अच्छा, अब यह बताइये कि क्या यह पता लगाने का भी कोई उपाय है कि हम अपने पर बहुत बोझ डाल रहे हैं ?

उत्तर : हां, जब काम आनंद और उल्लास देना बंद कर दे, तो समझिये आप अपने पर वहुत ज्यादा दबाव डाल रहे हैं। लेकिन यहां भी काम को दोष देने के बजाय, हमें अपने आप पर नजर डालनी चाहिये। कहीं ऐसा तो नहीं कि हम इसीलिए ठीक काम नहीं कर पाते हों कि बहुत ज्यादा खाना खा लेते हैं, वहुत ज्यादा धूम्रपान करते हैं, या रात को पर्याप्त सोते नहीं हैं।

और जो लोग ऊपर के अधिकारियों के व्यवहार को अपने तनाव और अल्सर का कारण बताते हैं, उनसे मुझे यह कहना है कि नौकरी में अधिकारी और अधीनस्थ का तारतम्य तो रहेगा ही। सो जहां तक संभव हो, आज्ञाओं और नियमों का पालन कीजिये। मान लीजिये, अफसर तुनुकमिजाज है। उसे अपना शत्रु मान लेने से आपकी समस्या और उग्र ही हो जायेगी। मामले को नजर-अंदाज कर जाइये। या सोचिये—आज बेचारे घर में बीवी साहिबा की डांट सुनकर आये होंगे। फिर दुनिया में तो बहुत-सी चीजें सहार लेनी पड़ती हैं; और यहां कोई भी शाश्वत नहीं है, चाहे वह कितना बड़ा अफसर क्यों न हो।

प्रश्न : स्वस्थ और दीर्घ जीवन के लिए आपका क्या सुझाव है ?

उत्तर : एक शब्द में—नियमितता-युवावस्था में ही, या जब भी इस ओर ध्यान [illegible] तब, मनुष्य को अपने लिए नियमित [illegible] चर्या बना लेनी चाहिये—दूसरों की [illegible] के अनुसार नहीं, बल्कि अपने शरीर के [illegible] अनुकूल पड़ता है, इसके अनुसार। [illegible] बारे में हमसे ज्यादा कौन जानता हो [illegible]

नियमितता पर ध्यान देना जरूरी है। आखिर हम अपने शरीर के अवयवों [illegible] नियमितता की अपेक्षा करते हैं। हम चा[illegible] हैं, हमारा हृदय नियमित रूप से धड़[illegible] हमारा कोठा नियमित रूप से मल-निष्का[illegible] सन करे, शरीर के सब काम नियम से [illegible] तो क्या इन अवयवों के स्वामी को भी नि[illegible] मित नहीं होना चाहिये। मैं यह नहीं कह[illegible] कि हम नियमितता को हौवा बना [illegible] उलटे, नियमितता जीवन को आसान [illegible] देती है।

तो उठने का निश्चित समय रखिये। निश्चित समय पर रोज नहाइये, निश्चि[illegible] समय पर ही नाश्ता कीजिये। दफ्तर के [illegible] काज में भी नियमितता बरतिये। निश्चि[illegible] समय पर लंच लीजिये। ऐसा नहीं कि [illegible] किसी समय पर लंच लिया, कल किसी सम[illegible] इसी तरह चाय व सिगरेट पीने का सम[illegible] नियमित हो, जिससे सोचने में बाधा न [illegible] मैं स्वयं भी एक-आध सिगरेट पीता हूं; [illegible] तभी, जब काम निबटा चुकता हूं। [illegible] सिगरेट दिन-भर की मेहनत का पुरस्[illegible] हो। जो लोग संयम बिना खोये [illegible] करते हैं, उनके लिए भी यही उचित है।



यहां एक द्वीप जन्म ले रहा है

दक्षिणी प्रशांत महासागर में आजकल एक ऐसा दृश्य दिखाई दे रहा है, जो एक नये द्वीप के जन्म का सूचक है । भूगर्भशास्त्री, ऋतु-वैज्ञानिक और ज्वालामुखी-वैज्ञानिक वर्ष के आरंभ से ही सृष्टि के इस नये चमत्कार का पर्यवेक्षण कर रहे हैं । यह द्वीप न्यूजीलेंड से १,५०० मील उत्तर-पूर्व में निर्मित हो रहा है । ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र-तल से यह एक ज्वालामुखी के रूप में अंतःसामग्री लेकर ऊपर उठ रहा है।

वायुयान द्वारा इस द्वीप-जन्म की प्रसव-क्रिया देखने में आयी है और लगातार टीलों, पर्वत-शृंग-खंडों और बाष्प से यह नवनिर्मित द्वीप ढंकता जा रहा है । यह निरंतर ऊपर उठ रहा है । ऐसा लगता है कि इस द्वीप-जन्म की प्रसव-वेदना प्रकृति को कठोर रूप में सहन करनी पड़ रही है; क्योंकि बीच-बीच में इस क्रिया में रुकावट या ठंडापन आ जाने के वाद विस्फोट उग्र हो उठता है ।

जन्म-क्रिया पूर्ण होने के पहले ही वैज्ञानिकों ने इस द्वीप का नामकरण कर दिया है। वे इसे 'मेटिस शोल' कहने लगे हैं । यह टोंगन द्वीप-समूह का एक अंग होगा और इसकी स्थिति वक्र प्रशांत-मेखला (सर्कम-पैसिफिक वेल्ट) में ही है । यह क्षेत्र न्यूजीलेंड के ज्वालामुखी-वहुल और भूकंप-प्रधान क्षेत्र में उत्तरी द्वीप (नार्थ आइलेंड) के दायीं ओर स्थित है ।

रायल न्यूजीलेंड एयर फोर्स (ओरायन) के एक उड़ाके ने हाल ही में इस अर्द्ध-जात द्वीप पर उड़ान मरी है । उसने सूचना दी है कि ६० मील दूर से ही इस द्वीप पर ५,००० फुट का धूम-खंड वादल की तरह छाया हुआ दिखाई देता है। द्वीप का ठीक आकार अमी तय नहीं किया जा सकता है; क्योंकि सारा क्षेत्र वाष्प के वादल छाये रहने से अंधेरे के परदे में ही रहता है ।

वैज्ञानिकों का कहना है कि यह द्वीप भूमि के भीतर से लावा के रूप में निकलकर ऊपर आनेवाली वस्तुओं से बढ़ता और छाता जा रहा है । भूगर्भ-वेत्ताओं का विश्वास है कि अभी अगले कई महीनों तक यह विष्फोट-क्रिया अपेक्षाकृत शिथिल और स्वल्प बनी रहेगी, क्योंकि जिस ज्वालामुखी के भड़कने से यह नव निर्माण हो रहा है, वह कमी उग्र हो उठता है और कभी ठंडा ।

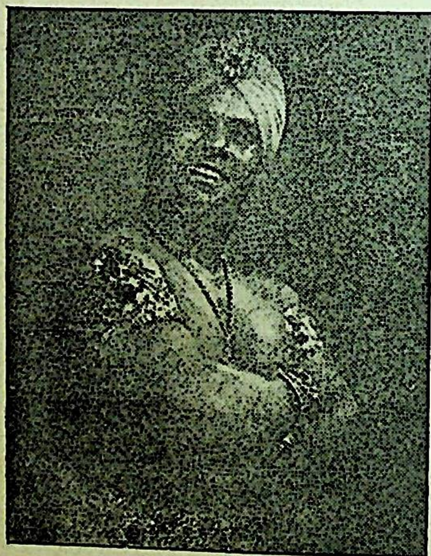
भू-वैज्ञानिकों का यही कहना है कि इस प्रकार नये भूखंड का रचनात्मक जन्म इतने निकट से सक्रिय एवं साकार रूप में कभी-कमी ही देखने में आता है ।

भूगर्भवेत्ता इसे 'प्रशांत महासागर का बाष्पीय वच्चा' कहते हैं, और बताते हैं कि असंख्य ज्वालामुखियों से भरे हुए प्रशांत महासागर के नीले जल में इस नये द्वीप का जन्म द्वीप-निर्माण की प्रक्रिया का एक दुर्लभ प्रदर्शन है । —राजबहादुर सिंह



जानवर आखिर जानवर हैं, कौन कह सकता है, कब उनकी प्रतिहिंसा भड़क उठे...लेकिन साहस और स्थिरता के आगे वे भी सिर झुकाते हैं। सर्कस के पशुओं के एक विश्वविख्यात भारतीय प्रशिक्षक के कुछ अनुभव उन्हीं के शब्दों में।

जब जान पर बन आती है



दामू धोत्रे

सर्कस में जब हिंस्र जानवरों को प्रशिक्षक अपनी मर्जी के मुताबिक चलाता-फिराता है, तो आपकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। मगर खेल दिखाते-दिखाते अगर अचानक कोई जानवर बेकाबू हो जाये और बिफर पड़े, या अपने प्रशिक्षक पर ही हमला कर दे, या बजाय खेल दिखाने के ये हिंस्र जानवर आपस में लड़ने लगें अथवा जब वे क- तब दिखा रहे हों, ठीक तभी सर्कस-मंडप की बत्ती गुल हो जाये, तब आपको कैसा लगेगा?

ऐसे सारे अनुभवों की कल्पना मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। लेकिन मेरे सर्कस- जीवन में ऐसे कई क्षण आये हैं, जब जान पर आ बनी है।

ईमानदारी की बात तो यह है कि अगर ऐसे समय प्रशिक्षक जोर-जोर से 'बचाओ-बचाओ' चिल्लाये भी, तो शायद ही कोई सामने आकर बचाने का दुस्साहस दिखाये।

सबसे पहली बात तो यह है कि सर्कस में उस समय तत्काल ऐसी कोई भी सहायता पहुंचायी ही नहीं जा सकती। प्रशिक्षक को अपने ही आत्मविश्वास से जानवरों पर काबू पाना पड़ता है। अगर वह चूक जाता है तो उसका फल भी उसे ही भुगतना पड़ता है।

बात उन दिनों की है, जब मैं काफी छोटा था। अपने मामा के सर्कस में नया-नया भरती ही हुआ था। कोल्हापुर (महाराष्ट्र) ...

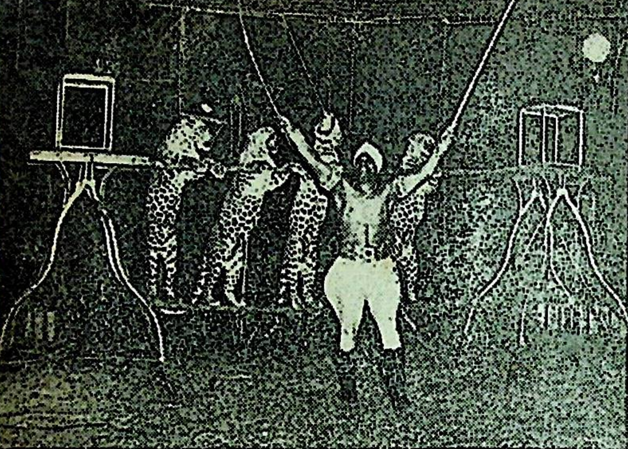
के महाराज के आग्रह पर मामा ने सर्कस का एक 'शो' आयोजित किया। बेशुमार जनता यह 'शो' देखने आयी। मैं पूरे उत्साह में था। रिंग में दो शेर 'सुल्तान' तथा 'मोती' एवं दो शेरनियां 'क्वीनी' तथा 'बेबी' को लेकर उतरा। अभी मैंने अपना कोई करतब दिखाया भी न था कि दर्शकों की तालियों की गड़गड़ाहट से सारा पंडाल गूंज उठा।

मैंने अपनी लंबी चाबुक की नोक से क्वीनी की नाक पर एक हल्की-सी चोट की। यद्यपि क्वीनी काफी समझदार और शांत शेरनी थी, लेकिन इस तरह की चोट या मार खाने की आदत उसकी नहीं थी। वह जोर से दहाड़ उठी। सारा पिंजरा एकदम दहल गया। मेरे लिए ऐसी दहाड़ तो पालतू कुत्तों के भौंकने जैसी ही थी और मैंने देखा, क्वीनी के साथ मेरी इस छेड़छाड़ में लोगों को आनंद मिल रहा है। मैंने उस पर फिर एक चोट की। वह फिर दहाड़ उठी। इस बार लोगों में अचानक कुछ आतंक-सा फैल गया। मैंने तीसरी बार उसकी नाक पर एक चोट और की। इस बार उसकी नाक पर मेरी चाबुक की नोक का लगना था कि बस वह एकदम जोर से दहाड़ उठी और बड़ी तेजी से घातक ढंग से मुझ पर झपटी। क्वीनी का झपटना इतनी तेजी का था कि दर्शकों में चीत्कार और 'बचाओ-बचाओ' की आवाजों के साथ भगदड़ शुरू हो गयी।

इस शोर से क्वीनी घबरायी और उसने फिर मुझ पर पूरे जोर से हमला किया। वह ज्यों ही मेरे ऊपर झपटी, मैं एकदम दुबक गया और अपने हाथ के डंडे से उसे दूर करने लगा। वह मुझ पर कूदी; लेकिन दूसरी छलांग में 'सुल्तान' पर जा झपटी, जो अब तक चुपचाप अपने स्टूल पर बैठा था। सुल्तान को क्वीनी ने जाते ही दबोच लिया। अब क्या था, दोनों आपस में गुंथ गये। उन दोनों के भिड़ते ही मोती और बेबी भी उन पर टूट पड़े। अब चारों शेर आपस में ही एक-दूसरे पर झपट रहे थे।

उधर दर्शकों में भगदड़ मच गयी। निकलने के दरवाजे पर भीड़ जमा हो गयी। अब इन गुंथे हुए जानवरों को छुड़ाया कैसे जाये, यह प्रश्न था। एक ही तरीका था कि मैं उन्हें लालायित करूं कि वे मुझ पर झपटें। पिंजरा भी ज्यादा लंबा-चौड़ा नहीं था। कुल २८ फुट लंबा था। और वहां पर कोई ऐसा स्थान भी न था, जहां मैं अपने को बचाकर खड़ा रख सकता था।

उधर सर्कस-मालिक मेरे मामा ने समझा, आज दामू गया! उस आधे घंटे में मैंने किस उत्साह से उन चारों जानवरों को काबू में किया, मैं ही जानता हूं। जब चारों जानवर थककर अपने-अपने पिंजरे में चले गये, तब भी मैं बहुत देर तक उन स्टूलों के पास स्तब्ध-सा खड़ा रहा। उस समय का दृश्य मुझे अब भी याद आ रहा है। सब ओर एकदम सन्नाटा छा गया था। दर्शक भाग गये थे। सारा पंडाल एकदम खाली हो गया था। चारों जानवर अपनी-अपनी जगह सिर झुकाये बैठे थे और उनके बीच में मैं चुप-



एक साथ चार-चार चीतों का नियंत्रण

चाप खड़ा था । मुझे कहीं खरोंच तक नहीं लगी थी । चारों जानवर काफी घायल हुए थे । लेकिन फिर भी मेरे लिए यह एक बहुत बड़ा सबक था और शेर के आक्रमण का प्रथम अनुभव ।

सर्कस ही मेरा जीवन बन गया । बाद में मेरे मामा भी अपना सर्कस छोड़कर इसाको के रशियन सर्कस में शामिल हो गये । मैं इसाको सर्कस के साथ शंघाई में था । मेरा-नाम तो खूब हो चुका था । एक दिन एक अखबार का फोटोग्राफर आया और जानवरों के साथ मेरी फोटो खींचने के लिए कहने लगा । मेरी और सर्कस की शोहरत होती, इसलिए मैंने सर्कस के खुले मैदान में, जहां रोशनी आदि अच्छी तरह से आ सकती थी, रिंग बनवाकर पिंजरे लगवाये । सुबह का समय था । सभी शेरों-शेरनियों को बुलवाकर अलग-अलग स्टूलों पर बैठा दिया गया । चाबुक और लकड़ी लेकर, हाथ फैलाते हुए मैं मुस्करा रहा था और उधर फोटोग्राफर अपना कैमरा ... कर रहा था कि तभी घोड़ों का ... दल हमारे पिंजरे के ... पास से गुजरा।

घोड़ों को अपने पिंजरे के ... पास देखकर शेरों के मुंह में ... आना लाजिमी था । रिंग में ... स्टूल पर बैठा 'शांता' नामक ... जो इस दल में सबसे बड़ा था, ... नक मुझ पर कूद पड़ा और मेरे ... को अपने मुंह में भर लिया।

मैंने फुर्ती से झटका देकर अपना ... बचा लिया; लेकिन वह मुझ पर झूल ... और उसका एक पंजा मेरे कंधे पर ... मैं उसके साथ जमीन पर आ गया। ... उठने लगा, तो लगा मेरे पांवों में ... नहीं है । मैंने तत्काल चाबुक से उसकी ... और मुंह पर चोट करना शुरू कर दि...

फिर क्या देखता हूं कि अब एक ... दो-दो शेर मुझ पर दांव लगाने के लिए ... हैं । शांता के साथ 'गुंडा' नामक शेर ... मिल गया था, जो वास्तव में था तो ... पर बड़ा खतरनाक और खोटा था। ... सहायक भी आ गये और डंडों व सींखचों ... टोंचते हुए उन्होंने पिंजरों में धकेल दि... मैंने कपड़ा लगाकर अपने घाव से बहते ... को बंद करना चाहा; लेकिन खून ... रहा था । अगर मैं उस समय वहां से ... निकलता, तो फिर कभी भी उन जानवरों ... का सामना न कर सकता । जानवरों ...

सामने से डरकर जो भाग जाता है, जानवर फिर कभी उसकी बात मानते नहीं हैं।

सिंगापुर की घटना है। उन दिनों भी मैं इसाको के ही साथ था। एक रात, जब मैं सर्कस के रिंग में अपने जानवरों को लेकर उतरा, तो वहां से गुजरते हुए घोड़ों का एक दल मेरे जानवरों का मिजाज खराब कर गया। सब जानवरों को अपने-अपने स्थानों पर बैठाकर मैं बीच में आकर ज्यों ही खड़ा हुआ कि कोने में बैठी 'वाली' नाम की शेरनी, जो मिजाज की काफी गर्म थी, मुझ पर आ झपटी। मैं जमीन पर गिर पड़ा। लेकिन तभी मेरा एक सहयोगी रोम्बा, जो काफी समय से मेरे पास था, तेजी से हमारे बीच में कूद पड़ा और जोर से चाबुक फटकारते हुए अंत में उसे अपनी जगह पर पहुंचा ही दिया।

मैं अपनी जगह से उधर बीच में आया और अपनी चाबुक लेकर फिर काम दिखाने लगा। मैंने जानवरों की परेड करानी शुरू की। पहले वे आगे बढ़े, फिर मैंने उनको उलटा चलने का आदेश दिया। जो जानवर तेजी से चक्कर लगा रहे थे, एकदम उलटे पीछे चल पड़े। इस क्रम में दो शेर तजी से से उलटे-उलटे चलते टकरा गये और पिंजरे से इतनी जोर से टकराये कि पिंजरे के कुछ सींखचे खुलकर गिर पड़े और बारह-तेरह फुट की जगह एकदम खुल गयी।

मैं हाथ का डंडा और चाबुक लेकर उस खुले हुए स्थान पर आ गया। उधर दर्शकों में भगदड़ मच गयी कि पिंजरा टूट गया और शेर भाग निकले। पिंजरे के हिस्से का जमीन पर गिरना था कि सारे जानवर उस धमाके से डरकर एकदम पीछे हट गये।

मैंने तत्काल शेरों के पिंजरे के ऊपर बैठे अपने एक सहयोगी से कहा कि वह पिंजरे का दरवाजा खोले, जिससे मैं एक-एक शेर को पिंजरे की ओर ढकेल दूं। मगर वह डर गया था और बुरी तरह कांप रहा था। तभी फ्लाइंग ट्रेपीज का एक उत्साही कलाकार कोलमैन, जो मेरा अच्छा दोस्त था, मेरे पास आकर खड़ा हो गया और जानवरों का रास्ता रोके डटा रहा।

उधर रोम्बा ने कूदकर जानवरों के पिंजरों के दरवाजे खोले और एक-एक शेर को पिंजरों में दाखिल करना शुरू किया। लेकिन जानवर दर्शकों की चीत्कार, भगदड़ और रिंग के गिरने से भयभीत थे। इसलिए पिंजरे का दरवाजा खुलते ही सब एक साथ एक ही पिंजरे में घुस गये। अब दृश्य और भी भयानक था। अपने पिंजरे में दूसरे शेरों को आया देख शेर आपस में ही गुंथ गये। भयंकर हमले शुरू हुए। मैंने डंडे के सहारे उनका बीच-बचाव किया और एक-एक करके उन्हें उनके पिंजरों में भेज दिया।

ऐसी एक नहीं, कई घटनाएं हैं। अगर उस समय प्रशिक्षक आत्मविश्वास से काम न ले, तो सब कुछ समाप्त भी हो सकता है। लेकिन मैं इतना जानता हूं, कि जानवरों का सहयोग भी बहुत जरूरी होता है। जानवर है तो जानवर ही; लेकिन वह जानता है कि प्रशिक्षक ही उसका मालिक है।



डा० जगदीश गुप्त के

कुछ नये रेखाचित्र











मनुष्य पाताल में बसेगा

हरिमोहन शर्मा

सन २००० तक पश्चिम के अनेक नगर भूतल के नीचे स्थित होंगे।

बच्चे भूगर्भस्थ पाठशालाओं में पढ़ने के लिए जाया करेंगे। भूतल के एक फर्लांग नीचे स्थित फैक्टरियों में आज की तरह सभी वस्तुओं का उत्पादन जारी रहेगा। खाने के लिए अन्न, भाजियां और गोश्त भूगर्भ-स्थित खेतों और पशुओं से प्राप्त हुआ करेगा।

यह वैज्ञानिक कल्पना-मात्र नहीं है, आज से पैंतीस साल बाद के जीवन का पूर्वाभास है। पश्चिम के प्रमुख देशों के सुरक्षा विभाग के लोग गुप्त रूप से जो योजनाएं बना रहे हैं, उनके अनुसार उनकी संतानें स्थायी रूप से जमींदोज शहरों (अंडरग्राउंड सिटी) में रहा करेंगी।

इन योजनाओं की जड़ में एक ही शब्द है-भय। किसी की जरा-सी गलती से युद्ध आरंभ हो जाने का भय निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। कब, कहां, कौन, किस गलत बटन को दबा देगा, इसका कोई भरोसा नहीं है। उन अस्त्र-शस्त्रों का खतरा अलग है, जो रूस तथा अमरीका की प्रयोगशालाओं में तैयार हो रहे हैं।

वर्तमान स्थिति यह है कि यदि कोई देश अपने राडारों द्वारा शत्रु के प्रक्षेपास्त्रों को अपनी ओर आते देखे, तो उसे जमींदोज सुरक्षा-स्थलों में जाने के लिए कुल पद्रंह मिनिटों का समय मिलेगा। पर आनेवाली मृत्यु-किरणों, उपग्रहों द्वारा छोड़े गये हाईड्रोजन बमों, अंतरिक्ष में पृथ्वी का चक्कर लगाते हुए बमवर्षक यानों के कारण यह समय कम होकर कुल १५ सेकेंड ही रह जायेगा। इसलिए भावी महायुद्ध हो या न हो, जमींदोज शहरों की योजनाएं बनायी ही जा रही हैं।

इटली, चीन, रूस, अमरीका, स्वीडेन तथा जर्मनी आदि देशों में भूतल के नीचे कारखानों, अस्पतालों, प्रक्षेपास्त्र-अड्डों आदि का निर्माण आरंभ हो गया है। १९७५ तक पूरे जमींदोज शहरों का निर्माण भी आरंभ हो जायेगा। सन २००० तक तीन-चौथाई

मानव-जाति ऐसे नगरों में रहा करेगी, ऐसा अनुमान है।

इन नगरों का निर्माण स्वीडेन के प्रोफेसर जियरमान की 'पानी में नींव डालनेवाले पीपों की पद्धति' के अनुसार किया जायेगा। एक पूरे नगर का प्रसार-क्षेत्र कुछ सौ एकड़ ही होगा, पर चूंकि नगर के भवनों की निचाई १,५०० फुट के करीब होगी, इसलिए उसमें दस लाख के करीब व्यक्ति आसानी से रह सकेंगे। इस नगर के निर्माण के लिए खुली भूमि में आधे मील व्यास का कंकरीट का वृत्त बनाया जायेगा। इस आधार पर आठ फुट मोटी दीवार बनेगी। जैसे-जैसे यह दीवार ऊंची होगी, वैसे-वैसे कंकरीट के वृत्त के अंदर की भूमि को खोखला किया जायेगा। इससे यह सारी दीवार भूमि के अंदर धंसती चली जायेगी, और तब १,५०० फुट की निचाई पर उसके नीचे कंकरीट का फर्श बिछा दिया जायेगा, और इस विशाल वृत्त को १५ फुट मोटे कंकरीट से ढक दिया जायेगा।

कंकरीट के इस विशाल वृत्त के अंदर सैकड़ों ऐसी इमारतों का निर्माण होगा, जो आकस्मिक आघात को निष्प्रभाव बना देंगी। रूस ने भूकंप के आघातों से अपनी जमींदोज इमारतों को बचाने के लिए उन्हें लोहे की दृढ़ स्प्रिंगों पर आधारित किया है। कुछ इमारतों को कंकरीट की छत से लटके, लोहे के दृढ़ तारों पर लटकाया जायेगा, ताकि वे सब प्रकार के आघातों-प्रत्याघातों से सुरक्षित रह सकें। इमारतों से संबंधित, और

४० मील प्रति घंटे के वेग से च
पार्श्वमार्गों द्वारा जमींदोज शहरों के
एक स्थान से दूसरे स्थान तक आ-जा

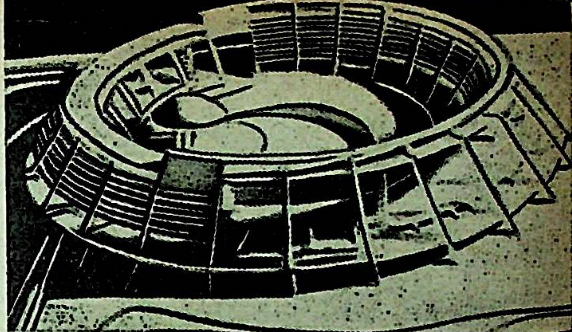
जमींदोज शहरों के फ्लैटों में
तया तीन कमरों और एक रसोई की
की गयी है। बिजली परमाणु विद्यु
से उपलब्ध होगी। नगर की सड़कों
इमारतों में लगे चमकदार विद्यु
द्वारा रात और दिन का भ्रम उत्पन्न कि
जा सकेगा। वायु की पुनःपूर्ति
ओषजन से होती रहेगी। कूड़ा-क
टट्टी-पेशाव की व्यवस्था उसी प्रकार
जायेगी, जिस प्रकार अंतरिक्ष-यानों में
जाती है। ठोस पदार्थों का रासा
विघटन करके तथा द्रव पदार्थों को
करके, दोबारा काम में लाया जायेगा।

भावी जमींदोज शहरों में प्रायः
वस्तुएं—खेल के मैदान, उद्यान, नहरें
सभी कृत्रिम होंगी। जमींदोज शहर के
वास्तुशिल्पी का कहना है– "इन शहरों
कृत्रिम आकाश तथा कृत्रिम सागर
का प्रयत्न भी किया जायेगा।

पर्वतारोहण, शिकार और मछली
ड़ने के शौक पूरा करनेवाले को एक
पार्श्वमार्ग द्वारा यात्रा करनी होगी,
उसे एक विभिन्न कंकरीट-वृत्त में पहुं
देगा, जहां उसे कृत्रिम पर्वत, कृत्रिम
और कृत्रिम वन के दर्शन होंगे। वहां
में एक दिन ३०० फुट की ऊंचाई से
वर्षा भी होगी। एक अन्य कंकरीट-
'स्कीईंग' के प्रेमियों के लिए कृत्रिम हि

मैदान बिछाये जायेंगे ।

रूस के प्रोफेसर चेखाकोव के तत्वावधान में रूसी वैज्ञानिक विकिरण से सुरक्षित, भूतल के नीचे स्थित पशु-पालन-केंद्रों में मुर्गियों, सूअरों, भेड़ों आदि को पालने के प्रयोग चल रहे हैं। रूसी जीवशास्त्री यूराल पर्वत की गुफाओं में गेहूं, चावल, आलू आदि उपजाने की कोशिश कर रहे हैं। इन खाद्यान्नों को रासायनिक मिश्रणों से पूर्ण बड़-बड़ी तश्तरियों में उपजाया जाता है। स्थान को बचाने के लिए इन तश्तरियों को एक दूसरे के ऊपर रखा जाता है। मौसम के समुचित नियंत्रण के कारण फसलें कभी भी पैदा की जा सकती हैं।



यह न तो स्टेडियम है, न उड़न-तश्तरी; बल्कि यह ४,००० की आबादी के एक प्रस्तावित शहर का माडल है, जो १९६७ में मांट्रियल के एक्स्पो मेले में रखा गया था। रूस के डिजाइन इन्स्टिटचूट द्वारा निर्मित यह माडल उत्तरी ध्रुव-सागर के एक बंदरगाह के लिए है। समूचा शहर सीमेंट की छत और लोहे व कांच की दीवारों से ढंका होगा, जिससे वह पाले और बर्फ से बचा रहेगा। शहर एक छतदार सड़क द्वारा बंदरगाह से जुड़ा रहेगा।

अमरीकी विशेषज्ञों का कहना है कि कंकरीट के एक वृत्त में, एक समय में इतना खाद्यान्न उपजाया जा सकेगा, जो कई लाख व्यक्तियों के लिए पर्याप्त होगा।

इन जमींदोज शहरों में गृहिणियों के लिए सामान खरीदना बड़ा आसान हो जायेगा। टेलिविजन-फोन पर स्टोर को बुलाने से टेलिविजन पर आवश्यक वस्तुओं के चलचित्र और मूल्य आ जायेंगे। फोन पर आर्डर देने पर, वस्तुओं के डिब्बे वायु-संचालित नली के जरिये घर में आ जायेंगे। ऐसी वायु-संचालित नलिकाएं प्रत्येक घर, कार्यालय और दुकान में लगी होंगी। जर्मनी में आज भी ऐसी चौड़ी नलिकाओं द्वारा, जिनका जाल वहां के प्रमुख नगरों के नीचे बिछा हुआ है, डाकघरों से डाक रेल्वे स्टेशनों और हवाई अड्डों पर पहुंचायी जाती है। प्रत्येक नलिका १२ मील लंबी है।

एक परमाणु यंत्र के जरिये जर्मनी के भूगर्भ में कई सौ मील लंबा भू-रेलमार्ग बनाया जा रहा है, जो यूरोप के औद्योगिक क्षेत्र के सभी प्रमुख नगरों को एक-दूसरे से जोड़ देगा। १९७४ के अंत में, जब तक इस भू-रेलमार्ग के पूरे हो जाने की आशा है, एक ही पटरी पर चलनेवाली रेलगाड़ियां, भूतल से २०० फुट नीचे १६० मील प्रति-घंटा के वेग से दौड़ा करेंगी। इस भू-रेल-मार्ग के आस-पास के क्षेत्र में दस लाख लोगों के रहने का प्रबंध किया जा रहा है। इतने लोग संकट के समय कई हफ्तों तक भूतल के नीचे रह सकेंगे। अमरीका, इटली और

स्वीडेन की सुरंगों में तश्तरी के आकार की 'कोच' गाड़ियां विना पटरियों की मदद के चलेंगी। इस कोच के मोटरयुक्त पहियें, सुरंग की अंदरूनी दीवारों की रगड़ से, ३०० मील प्रतिघंटा की गति से दौड़ा करेंगे।

अभी से भूगर्भी पाठशालाओं में विद्यार्थियों को शिक्षा देने के प्रयोग किये जा रहे हैं। सन २००० में स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थी और उनके अभिभावक आज की भांति आणविक युद्ध के निरंतर भय से प्रताड़ित नहीं रहेंगे। पृथ्वी का वर्णन उन्हें ऐसे ही पढ़ाया जायेगा, जैसे आज हम चंद्रलोक या अन्य लोकों का वर्णन पढ़ते हैं। कभी-कभी वे अपने खास टेलिविजन कैमरों द्वारा पृथ्वी के 'दर्शन' भी करते रहेंगे। जमींदोज शहरों की एक विशेष सेना का यही काम होगा कि वह टेलिविजन कैमरों के जरिये यह देखभाल रखे कि कोई शत्रु हमले की योजना तो नहीं वना रहा।

अमरीका में नागरिक सुरक्षा-विभाग के प्रधान कार्यालय को भूगर्भ-स्थित विशेष कार्यालय में भेजने की तैयारियां चल रही हैं। इस कार्यालय के भवन म ५०० से २,००० तक कर्मचारी स्थायी रूप से कार्य कर सकेंगे तथा रह सकेंगे। इसकी रचना इस विधि से की गयी है कि उसके पास २० मेगाटन वम के विस्फोट होने पर भी वह आसानी से अपनी धुरी से पौने दो इंच से अधिक नहीं हिल सकेगा। जरूरत पड़ने पर, किले की भांति निर्मित यह कार्यालय एक विशाल सीपी की तरह बंद भी हो जायेगा। तब इसके १६ इंच मोटे कंकरीट के दरवाजे मजबूती से बंद हो जायेंगे।

जमींदोज शहरों के मानवों को पहली पीढ़ी, मानव की वर्तमान पीढ़ी के समान ही होगी। चूंकि उन्हें पृथ्वी की सभी वस्तुएं (भले ही कृत्रिम रूप में क्यों न हों) उपलब्ध होती रहेंगी, इसलिए उनका जीवन और विकास हम लोगों की भांति ही होगा। पर कई पीढ़ियों बाद, अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई दे सकते हैं। एक-से तापमान तथा एक ही आर्द्रता में रहने की अभ्यस्त यह नयी मानव-जाति अन्य तापमानों को सहन न कर पायेगी। चूंकि इस नयी मानव-जाति के सदस्यों को पैदल चलने का कोई अवसर नहीं मिलेगा; इसलिए उनके पांव ठिगने और मोटे हो जायेंगे। वांहें भी कमजोर हो जायेंगी, क्योंकि श्रम करने के अवसर नहीं रहेंगे। एक-सा तापमान रहने के कारण उन लोगों की त्वचा सफेद और रेशम की भांति मुलायम हो जायेगी।

कुछ वैज्ञानिकों को यह भी डर है कि सदा भूगर्भ में रहने के कारण इस नयी मानव-जाति के पुरुष क्रमशः अपनी जनन-क्षमता खो बैठेंगे। इसलिए इस कठिनाई को हल करने के लिए 'वीर्य-बैंक' बनाने की योजना है। भूगर्भ में जाने से पूर्व, सब स्वस्थ पुरुषों से वीर्यदान करने को कहा जायेगा। इस 'वीर्य-बैंक' की सहायता से प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में स्वस्थ टेस्ट-ट्यूब शिशुओं को जन्म दिया जा सकेगा।



क्रीड़ा-जगत् में पेली ब्राजील का पर्यायवाची बन गया है। फुटवाल
यह अप्रतिम खिलाड़ी तरुणावस्था में ही जीता-जागता 'मिथक' बन
है। राजनेताओं से अधिक सम्मानित और सिने-सितारों से अधिक लो
प्रिय इस महान खिलाड़ी ने पेशेवर फुटबाल से भले अवकाश ग्रहण
लिया हो, लेकिन फुटबाल का इतिहास उसे नहीं भूलेगा।



लातों से
लाखों
कमानेवाला

सुरेश कं

"हम से डेढ़ अरब क्रुजेरा (लगभग चालीस लाख रुपया) ले लो, और सिर्फ एक साल के लिए अपना वह खिलाड़ी हमें दे दो।" पर उस खिलाड़ी के क्लब को यह सौदा मंजूर नहीं हुआ। इससे पहले यह क्लब इटली के एक क्लब का २१ लाख रुपये का और अल्जीयर्स के एक क्लब का एक जहाज देने का प्रस्ताव अस्वीकार कर चुका था।

यह मशहूर क्लब है—सांतोज क्लब, और इस क्लब की जान माना जानेवाला खिलाड़ी है, विश्व के सर्वाधिक लोकप्रिय खेल फुटबाल का सर्वाधिक लोकप्रिय खिलाड़ी—एडसन अरांतेज दो नासिमेंतो 'पेली'। पेली को कुछ क्रीड़ा-विशेषज्ञ विश्व का महानतम खिलाड़ी मानते हैं।

जितना आश्चर्यजनक पेली का खेल है, उतनी ही आश्चर्यजनक है उसकी जीवन-कहानी। विश्व के शायद ही किसी विख्यात खिलाड़ी ने इतनी चमत्कारिक प्रगति की हो, जितनी पेली ने पिछले कुछ वर्षों में फुटबाल के खेल में की है।

पेली का जन्म ब्राजील की एक पिछड़ी बस्ती में रहनेवाले एक निर्धन परिवार में हुआ था। उसे आज तक यह मालूम नहीं है कि 'पेली' उपनाम उसे कब दिया गया और उसका क्या अर्थ होता है। फुटबाल से उसे बचपन से ही शौक हो गया था। शायद इसके पीछे उसके पिता जोआओ रामोस दो नासिमेंतो का हाथ रहा हो, जो खुद अपने जमाने के अच्छे फुटबाल-खिलाड़ी थे।

वस्तुतः पेली की फुटबाल-प्रतिमा को पहचानने का श्रेय ब्राजील के भूतपूर्व प्रख्यात फुटबाल-खिलाड़ी वाल्देमार दे ब्रितो को है, जिन्होंने दस-ग्यारह साल के पेली को धूल-भरी सड़कों पर फुटबाल खेलते देखकर ही जान लिया था कि यह बालक भविष्य में फुटबाल का एक शीर्ष खिलाड़ी बनेगा। पेली की प्रगति में ब्रितो का बड़ा हाथ है। वह १५ साल की आयु में ही सांतोज टीम का सदस्य बन गया था।

हर वर्ष आयोजित होनेवाली विश्व की सर्वोच्च पेशेवर फुटबाल-प्रतियोगिता 'वर्ल्ड कप साकर' में पिछले ४० वर्षों से दक्षिण अमरीका के फुटबाल-दलों का प्रभुत्व रहा है। ब्राजील, आर्जेंटिना, उरुगुए के फुटबाल-दलों ने कई अवसरों पर विजेता-पद या द्वितीय स्थान प्राप्त किया है। इन दलों में ब्राजील का दल सबसे तगड़ा माना जाता है। १९५८ और १९६२ के 'वर्ल्ड कप' में उसे विजेता-पद मिला था। इस शानदार सफलता का श्रेय पेली को ही दिया जा सकता है।

सिर्फ १७ वर्ष की आयु में पेली ने ब्राजील की ओर से स्टाकहोम में आयोजित 'वर्ल्ड कप' प्रतियोगिता में भाग लिया था। उसकी कच्ची उम्र का ख्याल करके दल के कप्तान और व्यवस्थापक ने उसे प्रारंभिक मैचों में नहीं उतारा; पर जब उसे अंतिम मैचों में खेलने का अवसर दिया गया, तो पूरे मैदान में बस पेली ही पेली दिखाई पड़ने लगा। फुटबाल के इतिहास में पेली-युग का प्रारंभ उसी दिन हुआ। •

विश्व के श्रेष्ठतम खिलाड़ियों के मुकाबले में खेलने का यह पेली का पहला अवसर था, पर उसने अपने चमत्कारिक खेल-कौशल से दिखा दिया कि गेंद पर नियंत्रण रखने, उसे मनमाना नाच नचाने और अंत में तोप के गोले की भांति उसे गोल में पहुंचाने में वह दुनिया के अच्छे-से-अच्छे खिलाड़ी से भी अच्छा है। वेल्स के शक्तिशाली दल के विरुद्ध क्वार्टर-फाइनल में किये गये पेली के एक गोल को क्रीड़ा-विशेषज्ञों ने प्रतियोगिता का सर्वाधिक चमत्कारिक गोल कहा। फाइनल में स्वीडेन के लंबे-चौड़े और हट्टे-कट्टे खिलाड़ियों के विरुद्ध खेलते हुए पेली ने पांच में से दो गोल स्वयं किये। ब्राजील ने तो प्रतियोगिता का कप ही जीता, पर पेली ने दुनिया-भर के फुटबाल-प्रेमियों के मन जीते।

दुनिया-भर के फुटबाल-प्रेमी इस तरुण खिलाड़ी के अचरज-भरे खेल को देखकर दंग रह गये। तभी तो १९६६ की 'वर्ल्ड कप' प्रतियोगिता में ब्राजील के विजेता-पद प्राप्त न करने के बावजूद भी विश्व के फुटबाल-इतिहास में पेली-परंपरा आज तक कायम है।

ब्राजील लौटकर उसने अपने देश की राष्ट्रीय फुटबाल-प्रतियोगिता—साओपावलो फुटबाल-प्रतियोगिता—में भाग लेकर ६० गोल करके पिछले तीस वर्षों के राष्ट्रीय कीर्तिमान को भंग किया। उस समय उसकी आयु १८ वर्ष की भी नहीं हुई थी। अब तक पेली ने ८७८ से भी अधिक गोल किये हैं। इतने कम समय में विश्व के किसी खि[illegible] ने इतने गोल नहीं किये हैं।

तब से ब्राजील की अस्थिर राजनीति[illegible] अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं, पर [illegible] के फुटबाल-दल में पेली का लेफ्ट-इन [illegible] अक्षुण्ण रहा है। पेली ने स्वयं तो [illegible] ख्याति प्राप्त की ही, अपने देश ब्रा[illegible] को भी एक अनूठी विश्व-ख्याति दिल[illegible] ब्राजील का नाम याद आते ही पेली [illegible] पेली का नाम याद आते ही ब्राजील [illegible] ध्यान आने लगता है। पेली की प्रसिद्धि [illegible] तुलना में तो ब्राजील की 'काफी' की [illegible] प्रियता भी फीकी पड़ जाती है।

पेली के खेल की अद्वितीयता बिना [illegible] देखे नहीं जानी जा सकती। उसमें [illegible] जैसी फुर्ती और शक्ति है। उसकी [illegible] अविश्वसनीय फुर्ती और शक्ति के [illegible] विरोधी दल के खिलाड़ियों को पता ही [illegible] चल पाता कि वह कब आया, कब [illegible] विरोधियों की लाख कोशिशों के बावजूद [illegible] गेंद हमेशा उसके इर्द-गिर्द ही दिखाई दे[illegible] है। एक प्रमुख क्रीड़ा-विशेषज्ञ ने उसके [illegible] के बारे में सच ही कहा है, "फुटबाल [illegible] भी सर्वोत्कृष्ट है, वह ब्राजील के पास है [illegible] और ब्राजील के फुटबाल-दल में जो सर्वो[illegible]त्कृष्ट है, वह पेली के पास है। वह कि[illegible] फुटबाल नहीं खेलता, बल्कि उसका तो [illegible] खेल किताब बनकर रह जाता है।"

पेली के बारे में कहा जाता है कि [illegible] एक 'कम्प्लीट फुटबालर' है। उसके [illegible] कौशल में है—जिमि ग्रीव्स की तरह [illegible]

कौन कितना कमाता है

गोल्फ के खिलाड़ियों में आर्नल्ड पामर सबसे अमीर आदमी माना जाता है। उसकी वार्षिक आय १,८०,००० डालर है। इस आय का चौथाई हिस्सा उसे सिर्फ गोल्फ के खेलों से हासिल होता रहा है, और बाकी आय उसके विभिन्न व्यवसायों से। मोटर-गाड़ियों और घरेलू वर्तनों के धंधों के अलावा वह 'दी आर्नल्ड पामर लांडरी कंपनी' का संचालन भी करता है। अमरीका, दक्षिणी अफ्रीका और जापान को अपने सामान बेचनेवाली इस कंपनी की वार्षिक बिक्री ५० लाख डालर तक पहुंची है।

फुटबाल के खिलाड़ियों में ब्राजीलनिवासी पेली को सबसे अमीर आदमी माना जाता है। उसकी हैसियत १० लाख डालर से भी अधिक की है। उसकी वार्षिक आय का वर्णन साथ के लेख में दिया गया है। उसका अधिकांश धन जमीन-जायदाद में विनियोजित है।

टेनिस के खिलाड़ियों में राड लैवर्स को सबसे धनी आदमी समझा जाता है। गत वर्ष उसकी वार्षिक आय १ लाख डालर तक पहुंची है। उसकी आय का अधिकांश हिस्सा टेनिस के खेलों से ही आता रहा है। बाकी कुछ आय कपड़े और टेनिस-रैकेट के धंधे से हो जाती है।

मोटर-रेस के प्रतियोगियों में विश्व चैम्पियन ग्राहम हिल ने १९६२ में ४० हजार डालर कमाया था। ग्राहम हिल सबसे अधिक आय करनेवाला प्रतियोगी है। १९५७ में स्थापित उसकी व्यवसाय-संस्था 'स्पीडवेल्थ कनवर्सन' की वार्षिक बिक्री ५ लाख डालर तक पहुंच चुकी है।

अपराजित हेवीवेट विश्व चैम्पियन कैसियस क्ले (मुहम्मद अली) ने, जिसे अपदस्थ कर दिया गया है, अपने कुल छः साल के पेशेवर जीवन में बीस लाख डालर से कुछ अधिक ही कमाया है। चूंकि वह काले वर्ग का खिलाड़ी है, इसलिए उसके धन का किसी व्यावसायिक धंधे में लगाना संभव नहीं था। जो भी आमदनी उसने की है, वह सबकी सब 'बाक्सिंग' की प्रतियोगिता से ही की है।

जौकियों में (घुड़दौड़ में घोड़ों के सवारों) विलियम शूमेकर, अमरीका का सबसे नामी जौकी है। उसकी हैसियत करोड़ों की है। उसकी वार्षिक आय दो लाख पचास हजार डालर से अधिक ही है। उसकी सारी कमाई घुड़दौड़ों से ही हुई है।

oooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooo

करने की आसक्ति, जान ह्वाइट की तरह की तरह उर्वर क्रीड़ा-मस्तिष्क, एलन पिक बाल को पकड़े रहने की क्षमता, डैनी ब्लांच की तरह 'हेड' करने की दक्षता, और जिमि

आर्मफील्ड की तरह प्रखर बौद्धिकता।

अपने दुर्लभ और दर्शनीय खेल के कारण ही पेली ने १९६२ में चिली में आयोजित वर्ल्ड कप प्रतियोगिता में भी अपने देश को विजेता-पद दिलाया। जब इस प्रतियोगिता के एक मैच में पेली घायल हो गया, तो प्रतियोगिता में सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी को चुनना विशेषज्ञों के लिए मुसीबत हो गयी थी।

१९६६ की वर्ल्ड कप प्रतियोगिता में ब्राजील के हार जाने पर पेली को इतना दुःख हुआ था कि वह मैदान में ही रोने लगा था। इस प्रतियोगिता में विजेता-पद इंग्लैंड को मिला था। विरोधी दलों के खिलाड़ियों ने इस प्रतियोगिता में पेली को हमेशा घेरे रहने का नियम-सा बना लिया था। बल्गेरिया के खिलाड़ी तो गेंद को हिट न कर, उसे ही हिट करते थे। घायल हो जाने से वह सब मैचों में भाग न ले सकता था। यदि वह विरोधी दलों की बेजा हरकत से घायल न होता, तो फुटबाल में ब्राजील का तीसरी बार विश्व-विजेता बनना निश्चित था।

पेली की आमदनी ५,००,००० डालर प्रति वर्ष है। इसमें २,००,००० डालर प्रति वर्ष उसे अपने फुटबाल-क्लब से मिलते हैं, और शेष राशि फिल्मों, किताबों, लेखों, रेडियो, टेलिविजन और विज्ञापनदाताओं से। तब भी विश्व के पेशेवर फुटबाल-क्लबों में अधिक-से-अधिक राशि का लोभ देकर पेली को खरीदने की होड़ लगी रहती है।

१९५८ में वर्ल्ड कप प्रतियोगिता के पश्चात्, ब्राजील में अचानक यह अफवाह फैली कि स्पेन का एक क्लब पेली को ज्यादा पारिश्रमिक का लालच देकर स्पेन ले जाना चाह रहा है। बस क्या था, लाखों लोगों ने सांतोज क्लब को चारों तरफ से घेर लिया, ताकि पेली का कोई अपहरण न कर सके। एक बार तो पेली का अपहरण रोकने के लिए ब्राजील के प्रेसिडेंट को हस्तक्षेप करना पड़ा था।

पेली के खेल की विशेषता यह है कि वह क्षण की प्रेरणा के अनुसार खेलता है, और कभी किसी निश्चित शैली या नियम का अनुसरण नहीं करता। उसके पैरों में बिजली की-सी गति है। उसके खेल की मति-गति समझना जितना दुष्कर है, उतना ही दुःसाध्य है उसकी अग्रगति को रोकना; क्योंकि उसके दोनों पैर विद्युत्गति से दिशा बदलते रहते हैं। बायें और दाहिने दोनों पांवों में शाट मारने की उसकी शक्ति समान है। वह जब 'हेड' करता है, तो गेंद की गति-शक्ति कमान से छूटे गोले की तरह होती है।

इसीलिए आज तक कोई खिलाड़ी उसके कौशल का भेद नहीं पाता। वह कभी अपनी किसी चाल को नहीं दोहराता और न किसी फारवर्ड-खिलाड़ी से डरता है। 'पास' देने की उसकी शैली हर बार नयी और अनूठी होती है।

इतनी ख्याति प्राप्त कर लेने के बावजूद पेली की दिनचर्या पहले की ही भांति सीधी-सादी है। कोई भी उससे आसानी से मिल सकता है। उसके संस्कारों में भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इंग्लैंड के प्रसिद्ध फुट-

बाल-खिलाड़ी बाब मूर तो जैसे उसके प्रेम में पागल हैं। वे स्वयं फुटबाल के बहुत प्रसिद्ध खिलाड़ी होते हुए भी पेली को अपनी सबसे बड़ी प्रेरणा मानते हैं। उनकी बड़ी कामना थी कि पेली किसी-न-किसी रूप में हर क्षण उनके साथ रहे। इसीलिए उन्होंने थाइलैंड का एक बड़ा काला बिल्ला पाल रखा है, जिसका नाम रखा है पेली। एक सामान्य बिल्ले का नाम पेली रखकर बाब-मूर पेली को ही अपने निकट में पाना चाहते हैं। खेल की दुनिया में स्नेह, प्रीति और निष्ठा के माध्यम से वीर-पूजा का इससे बड़ा उदाहरण नहीं है।

चिली में विश्व कप प्रतियोगिता के समय सरकार की ओर से खिलाड़ियों को जो निःशुल्क काफी पिलायी गयी थी, उस ब्रांड का नाम था 'पेली काफी'। उस 'पेली काफी' का विज्ञापन बड़ा आकर्षक था—"यह काफी पेली की तरह ही कृष्णकाय, पेली की तरह ही शक्तिशाली है। यह काफी पेली की तरह ही मन का सारा अवसाद दूर करती है।" ब्राजील में पचासों वस्तुओं के ट्रेडमार्क पेली के नाम पर इस्तेमाल किये जाते हैं।

लेकिन जब मेक्सिको के एक बीयर-निर्माता ने उसे १०,००० डालर देकर उससे उस बीयर के लिए प्रशंसापत्र लेना चाहा, तो उसने इन्कार करते हुए कहा—"इतनी रकम को इन्कार करते हुए अच्छा नहीं लग रहा है, मगर युवा पीढ़ी के उत्तम स्वास्थ्य का महत्त्व मेरी दृष्टि में रुपये से कहीं अधिक है।" अपने दुःखमय दिनों में पेली [illegible] चुरा-चुराकर बेचा करता था।

पेली बहुत सरल है। एक बार पेली [illegible] लिखी हुई किताब जब प्रकाशित हुई [illegible] प्रकाशक ने पेली से अनुरोध किया-[illegible] संस्करण की सभी किताबों पर [illegible] हस्ताक्षर देना चाहता हूं।" पेली ने [illegible] सहमति देते हुए कहा कि वह प्रकाशक [illegible] दुकान पर जाकर ही हस्ताक्षर करेगा। [illegible] दिन पेली प्रकाशक की दुकान पर [illegible] उस दिन हजारों की भीड़ ने पेली के प्रति [illegible] प्यार दिखाया, वह अभूतपूर्व था। भीड़ [illegible] हर आदमी उससे कुछ प्रेम की [illegible] चाहता था। देने के लिए तो पेली के पास [illegible] था नहीं। नतीजा यह हुआ कि उसके [illegible] के चिथड़े-चिथड़े कर लोगों ने बांट [illegible] उससे पूरा नहीं हुआ, तो उसकी गाड़ी [illegible] कई पुर्जे खोल लिये। पेली लगभग [illegible] पैदल घर लौटा।

इस उग्र जनप्रियता को केवल [illegible] ही सहन कर सकता है। निरहंकार [illegible] पेली कहा करता है—"मैं फुटबाल [illegible] करता हूं, इसीलिए फुटबाल खेलता हूं [illegible] फुटबाल ही मेरा जीवन है। किंतु [illegible] सिर्फ मेरा खेल देखकर ही संतुष्ट नहीं हैं [illegible] वे मुझे भी पाना चाहते हैं। इसीलिए [illegible] किसी भी चीज को वे लोग अपनी [illegible] बनाकर रखना चाहते हैं। उनके इस [illegible] मुत प्रेम-प्रदर्शन का मैं बिलकुल बुरा [illegible] मानता।"



कुछ असंबद्ध गीत

राजेंद्रप्रकाश 'गौतम'

तूफान जब लौटा, तो समुद्र-तट पर टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों में पुरातन के कुछ छंद बिखेर गया। संध्या के आंगन में दिशाओं ने अपनी मौन भाषा में उन गीतों को इस प्रकार पढ़ना प्रारंभ किया :

"हे धरा के वासियो ! अनुकरण एक अंधी छड़ी है, अंधकार की विभीषिकाएं मनुष्य के लिए ही हैं तथा मंजिलें थके हुए कदमों से दूर ही रहती हैं और अगणित तूफान भी समुद्र को आतंकित नहीं कर सकते।

"स्वतंत्र होते हुए भी यह विस्तार नश्वरता के बंधनों में बंधा हुआ है।"

उपयक्त छंद कुछ उद्भट गायकों के थे। इनसे आगे एक बालक का गीत था, जो इस प्रकार है :

"रोने में कुछ आनंद नहीं, ऐसी बात नहीं है ....जितना आनंद खिलौने और बेमतलब हंसी में है, उससे अधिक आनंद रोने में है, यदि मैं रोऊं नहीं, तो आकाश शब्दहीन रह जाये।"

इससे आगे एक चरवाहे का गीत था—

"भेड़ें अज्ञानी का जीवन नहीं जीतीं; वे तो केवल सरल और सहनशील हैं......।"

कुछ ही दूरी पर उधेड़-बुन के रूप में एक बिखरा हुआ गीत मिला। वह किसी किसान का गीत था, जो यों था :

"जागनेवाले नहीं जानते कि सोनेवाले किन स्वप्नों से अभिभूत हैं।

"बीजों में से अंकुर अपनी गोद में जो कुछ भर लाते हैं, वह भी उनसे छिन जाता है। इसीलिए बीज कराह रहे हैं, अंकुर भयभीत हैं।

"जीवन को जो कुछ भी चाहिये, वह क्यारियों से ले ले; क्योंकि मोह की छलना से उनका आंचल भीगा नहीं है, वे उदार हैं। और यदि त्याग के मूल्य और मर्म को जानना चाहते हो, तो जो आम्रवन आज मंजरित है, वहां समाधि लगाओ।

"बादलों के प्रथम आगमन पर मिट्टी की महक जब अंतर को सुवासित करती है, तब पश्चिम की ओर से गीत जागते हैं; वे सब मेरे हैं। और प्राची दिशा से आनेवाली सुर्ख पगडंडियों पर घंटियों की जो मधुर ध्वनियां बिखरती हैं; वे सब मेरी हैं।"

इससे आगे कुछ यों लिखा था :

"थकान और जिंदगी का मेल नहीं होता और जो सुंदर है वह मेरे हल में है; और जो मधुर है, वह मैं नित्य बोता हूं, जो कभी पकता नहीं।"



क्या प्रार्थनाओं का सचमुच कुछ प्रभाव है ? हां, जब मन और वाणी एक होकर कोई चीज मांगते हैं, तो उस प्रार्थना का जवाब जरूर मिलता है। —रामकृष्ण परमहंस

तंदुरुस्ती हजार नियामत :

आपकी सांस दूसरों के प्राण बचा सकती है

शौकत अली

जैसे बिना आप मरे स्वर्ग नहीं दिखता, वैसे ही बिना आप सांस लिये जीवन नहीं निभता। फिर भी कभी ऐसा मौका आ सकता है कि आपके सांस लेने से, रुकी हुई सांस वाला कोई आदमी समय से पहले स्वर्ग देखने की मुसीबत से बच जाये। और ऐसा मौका दफ्तर में, बाजार में, घर में कहीं भी आ सकता है। क्या आप जानते हैं कि ऐसे मौके पर क्या करना चाहिये ?

दुर्घटना या बीमारी से सांस रुक जाने पर आदमी आक्सिजन के अभाव में चार-छः मिनिट से ज्यादा जीवित नहीं रह सकता। और आपका कीमती प्रश्वास डाक्टरी सहायता आने तक ऐसे आदमी को जिंदा रख सकता है।

मुंह से मुंह लगाकर श्वासदान एक सीधी-सी प्राथमिक उपचार-विधि है, जिसे कोई भी व्यक्ति आसानी से सीख सकता है। अमरीका की हार्ट एसोसिएशन ने हाल में एक छोटी-सी पुस्तिका इस विषय में प्रकाशित की है। नीचे दी हुई विधि उसी से उद्धृत की गयी है :

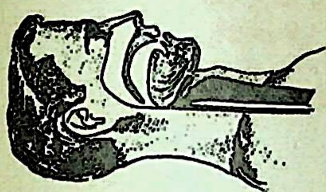
हो सकता है, आप जिस व्यक्ति को ... रुकी हुई समझ रहे हैं, वास्तव में वह ... बेहोश हो। इसलिए सबसे पहले यह ... लगाना चाहिये कि क्या वह सांस ले ... है। उसके मुंह से अपना कान सटाकर ... तरह रखिये कि आपका सिर उसकी ... की ओर हो। इससे आप उस आदमी ... सांस को सुन और महसूस कर सकेंगे, ... ही उसकी छाती की हलचल को देख सकेंगे।

अगर सांस के कोई लक्षण न मिलें, ... आदमी की गर्दन ऊपर उठाकर उसके ... को उतना पीछे मोड़िये, जहां तक गर्दन ... ही पीछे मुड़ सकती है। इससे श्वास-मार्ग ... जायेगा। आदमी को पुनः सांस लेने में ... यता देने का यह सबसे महत्त्वपूर्ण कदम ... हो सकता है, इतने से ही आदमी सांस ... लग जाये।

अगर किसी कारण मुंह में सांस ... कठिन या असंभव हो, तो नाक से मुंह ... कर सांस देना जरूरी हो सकता है। ... नौबत तब आ सकती है, जब रोगी के ... में चोट लगी हो, या ऐसी कोई चीज ... गयी हो, जिसे मुंह में उंगली डालकर ... दूर नहीं किया जा सकता।

श्वासदान शुरू करने के साथ ही डाक्टर ... को बुलाने के लिए किसी को भेज दीजिये ... जब तक डाक्टरी मदद न आ पहुंचे, ... प्रयत्न बंद न कीजिये। बिना डाक्टर ... हिदायत के कोई द्रव या उत्तेजक वस्तु रोगी ... को न दीजिये।

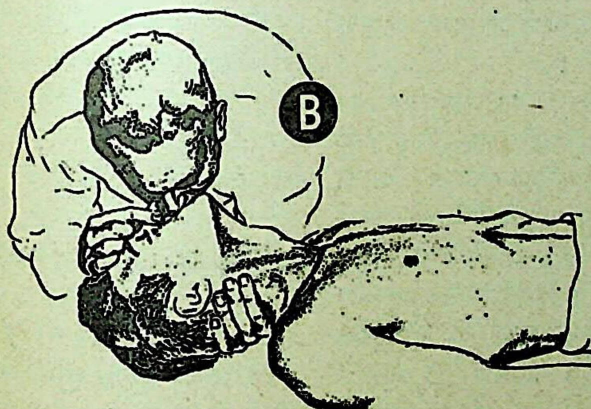
छोटे बच्चों और शिशुओं को श्वास...



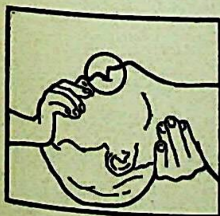
गलत स्थिति
(सिर झुकाया नहीं गया है,
श्वासनली बंद है)



सही स्थिति
(सिर ठीक झुकाया हुआ है,
श्वासनली खुली है)



श्वासदान



मुंह से मुंह



मुंह से नाक



मुंह और नाक

देते समय उनकी नाक और मुंह दोनों को अपने मुंह से ढंक दीजिये।

श्वासदान के दौरान सारे समय रोगी के सिर को ठीक से पीछे मोड़े रखना बहुत महत्वपूर्ण है। और याद रखिये, कारंवाई तुरंत शुरू कर देनी चाहिये।

यह विधि अच्छी तरह सीख लीजिये। हो सकता है, किसी दिन आपके हाथों किसी के प्राण बच जायें।

श्वासदान का क्रम

श्वास-मार्ग

१. आदमी को पीठ के बल सपाट लिटा दीजिये।

२. एक हाथ से उसकी गर्दन उठाइये।

३. दूसरे हाथ से उसका सिर पीछे की ओर मोड़िये, उतना जितनी कि गर्दन सहज पीछे मुड़ सके। इससे जीभ आगे निकल आयेगी और श्वास-मार्ग खुल जायेगा। सारे समय सिर को ठीक पीछे मुड़ा हुआ रखिये।

१. मुंह से मुंह

क. रोगी की नाक अपनी उंगलियों से बंद कर दीजिये।

ख. अपना मुंह चौड़ा खोलिये।

ग. गहरी सांस लीजिये।

घ. अपना मुंह रोगी के मुंह पर कसकर जमा दीजिये।

ङ. सांस फूंकते जाइये, जब तक रोगी के फेफड़े फूलकर उसकी छाती ऊपर न उठे।

च. उसके फेफड़ों को फुलाने की क्रिया मिनिट में बारह बार के हिसाब से दोहराते रहिये।

२. मुंह से नाक में श्वासदान

क. उसका मुंह अच्छी तरह बंद कर दीजिये। नाक में सांस फूंकिये। १२ बार प्रति मिनिट के हिसाब से यह क्रिया दोहराइये।

३. मुंह और नाक में श्वासदान-बच्चों के लिए

क. बच्चे के मुंह और नाक पर कसकर मुंह जमा दीजिये। मिनिट में १२ या १५ बार के हिसाब से धीमे से सांस फूंकिये।

ख. मिनिट में २०-३० के हिसाब से हलकी फूंकें शिशुओं के लिए काफी हैं।



शापेनहावर अंग्रेजों के एक जलपान-गृह में भोजन किया करता था। प्रतिदिन वह भोजन के आरंभ में अपने सामने मेज पर एक सोने का सिक्का रख दिया करता था और भोजन समाप्त होने पर सिक्के को पुन: अपनी जेब में डाल लेता था। आखिर एक नौकर ने इस आदत का कारण पूछा। शापेनहावर ने उत्तर में कहा—"यह मेरी बाजी है कि जिस दिन यहां भोजन करनेवाले अंग्रेज किसी दिन घोड़ों, औरतों और कुत्तों के अतिरिक्त और किसी विषय पर चर्चा करेंगे, तो मैं उस सिक्के को निर्धन-कोष में डाल दूंगा। पर इसकी नौबत ही नहीं आती और विवश होकर मैं सिक्के को पुन: जेब में डाल लेता हूं।"

राष्ट्रद्रोह के पुरस्कार में राजगद्दी पानेवाला :

अमीर खां पिंडारी

परदेशी

भारतीय इतिहास का एक बहुत ही विचित्र व्यक्ति है—अमीर खां। यशवंतराव होलकर का वह सेनापति अंग्रेजों से लड़ने जाता है, किंतु इस तरह लड़ता है कि 'गद्दार' भी न कहलाये और अंग्रेजों की रिश्वत का अपार धन भी हाथ से न निकलने पाये। वह किसी का साथ नहीं देता, सिर्फ सिक्का और सोना ही उसका साथी है, स्वामी है।

अमीर खां, एक साधारण-सा सैनिक! एक दिन इंदौर के महाप्रतापी शासक, देश के प्रथम क्रांतिकारी, यशवंतराव होलकर के तीस हजार अश्वारोही सैनिकों की एक टुकड़ी का सेनापति बन जाता है। वह शीश हथेली पर रखकर नहीं लड़ता, शत्रु के गुप्तचरों के निर्देशन पर अपनी सेनाओं का संचालन करता है। भोले मराठा सरदार ठगे जाते हैं। अमीर खां उन्नति करता जाता है। रिश्वत, षड्यंत्र, हत्या और प्रतिहिंसा के प्रत्येक प्राप्त अवसर से वह लाभ उठाता है। उसकी दृष्टि रणक्षेत्र की ओर नहीं रहती, अपने शिविर के गुप्तद्वार की ओर रहती है कि नियत समय पर फिरंगी का भेदिया कितनी राशि लेकर आता है।

जनरल वेल्जली मेजर माल्कम को सूचना देता है—"यदि ग्रीम मर्सर ने अमीर खां को अपने पक्ष में कर लिया, तो होलकर नष्ट हो जायेगा।" और सचमुच इस अमीर खां ने अंग्रेजों से तैंतीस लाख रुपये लेकर भरतपुर के युद्ध के समय होलकर की सेना को असहाय छोड़ दिया था।

संसार के इतिहास में विश्वासघात के, मित्र-द्रोह एवं स्वामि-द्रोह के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं, किंतु अमीर खां का विश्वासघात अपनी मिसाल नहीं रखता!

उसी विश्वासघात के वरदान में सन १८१८ में अमीर खां को टोंक (राजस्थान) का राज्य मिला। आज भी उसके वंशज 'टोंक के नवाब' कहलाते हैं। इस देशद्रोही का जामाता भी कम गद्दार नहीं था; उसे जावरा (मध्य प्रदेश) का राज्य मिला। उसकी संतान भी 'नवाब' कहलाने लगी।

अमीर खा 'पिंडारी' था।

पिंडारी कौन थे? दक्षिण की एक आयुधजीवी जाति। किंतु शस्त्र-संचालन और पराक्रम-प्रदर्शन इस जाति का स्वभाव नहीं था, वरन् लूटमार, डाका, हत्या और विनाश इसकी प्रकृति थी। दूसरी सभ्य जातियां जिन कार्यों से हिचकती थीं, उन्हें पलक मारते पूरा कर दिखाना पिंडारियों की खूबी थी। नृशंसतम कार्य—सर्वनाश, सर्व-

संहार—नन्हे बालकों को भाले की नोक पर छेदना और लटका देना, उन्हें जीवित जलाकर उनके माता-पिता से छिपे हुए धन का पता पूछना, बलात्कार, अपहरण, आग-जनी, सब ईष्ट था इन्हें !

देश में अराजकता थी। शासन का एक-मात्र सूत्र 'भय-प्रदर्शन' था। अपने-पराये का कहीं कोई भेद न था। फूट और वैमनस्य का विष राष्ट्रीय जीवन में घर कर गया था। देश मिट रहा था और उसके खंडहरों पर एक नया साम्राज्य बन रहा था। विदेशी भाषा, भेष-भेद, और विदेशी सभ्यता का शासन—लाल-लाल, विकराल और खूनी ! तभी इतिहासकार नालेन ने इस शासन की संचालिका कंपनी के विषय में लिखा—"ईस्ट इंडिया कंपनी और इस अनाचारी, डाकू, हत्यारे, खूनी अमीर खां के बीच मित्रता थी। लार्ड मिंटो ने होलकर राज्य का अधिकांश भाग इसे दे दिया। यह मैत्री एक राष्ट्र के रूप में इंग्लैंड के नाम पर कलंक का काला धब्बा है।"

लेकिन अंग्रेज थे कि पिंडारियों और उनके नेताओं को धन देकर, मराठा-मंडल के विभिन्न राज्यों में कत्ल, बगावत, लूट, साजिश, अपहरण, विश्वासघात और धोखा-घड़ी' का बाजार गर्म रख रहे थे।

और अमीर खां इन कामों में उस्ताद था। विनाश और अनाचार का यह सूत्रधार जिधर जाता, आबादियां वीरान हो जातीं, फसलें जल जातीं, मकान खंडहर हो जाते, नदियों का पानी लहू से लाल हो जाता।

फिरंगियों को ऐसे ही आदमी की जरूरत [illegible]

उत्तर की ओर प्रयाण करने [illegible] पिंडारी दक्षिण भारत के छोटे-बड़े रा[illegible] की सेनाओं में 'घुड़सवार' का काम करने [illegible] इन्हें वेतन दिया जाता था। लड़ाई में [illegible] ये लूट सकते थे, उतना माल-असबाब इन[illegible] अपना होता था। यही आकर्षण और [illegible] भन था कि हजारों पिंडारी भारतीय रि[illegible] सतों में घुड़सवार बनकर उच्छृंखलता [illegible] अराजकता के पंखों पर उड़ रहे थे।

पिंडारियों में कुछ ऐसे वीर-योद्धा [illegible] हैं, जिन्हें अनाचार और अन्याय का [illegible] पसंद नहीं था। शिवाजी महाराज [illegible] विश्वासपात्र 'नसरू' एक पिंडारी ही [illegible] मराठों का सहायक पुनप्पा भी पिंडारी [illegible] वैसे औरंगजेब के विरुद्ध पिंडारियों ने [illegible] का साथ दिया था। मराठों के पास जब [illegible] देने के लिए धन शेष नहीं रहता, वेतन [illegible] जाते और ये भस्मासुर अपने वरदा[illegible] शीश पर ही अपना हाथ रखने को [illegible] जाते, तब मराठे कूटनीतिज्ञ इनके घोड़ों [illegible] बागडोर एक न एक दिशा-विशेष की [illegible] मोड़ देते।

बाजीराव प्रथम पेशवा 'राव [illegible] प्रधान' ने क्या किया? पिंडारियों को [illegible] का सबसे संपन्न, उर्वर और [illegible] प्रदेश 'मालवा' दिखा दिया। पिंडारी [illegible] बादल टूट पड़े। बरसों तक लूट चलती [illegible] माधवजी सिंधिया के दो पिंडारी सर[illegible] हीरा खां और बुरहान खां प्रसिद्ध हैं। [illegible] राव सिंधिया ने चीतू और करीम खां [illegible]

पिंडारी सरदारों को नवाब के पद पर प्रतिष्ठित किया और बड़ी-बड़ी जागीरें दीं। पानीपत के तीसरे युद्ध में पंद्रह हजार पिंडारी अश्वारोहियों का नायक हूल पिंडारी मराठों की ओर से लड़ा।

बाजीराव प्रथम की विजय के पश्चात् हजारों पिंडारी मालवा में बस गये। सिंधिया और होलकर ने नर्मदा के तटवर्ती प्रदेश में इन्हें सैकड़ों जागीरें और जमीनें दीं। रण-निमंत्रण मिलने पर ये पिंडारी अपने-अपने घोड़े और सैनिक लेकर अपने आश्रयदाता की सेवा में पहुंच जाते थे। इनमें से जो लोग सिंधिया के अधीन थे, वे 'सिंधियाशाही' और जो होलकर के पक्ष में थे, वे 'होलकरशाही' कहलाते थे।

ऐसे ही होलकरशाही पिंडारियों का कुख्यात सरदार था अमीर खां।

यशवंतराव होलकर अमीर खां पिंडारी का आश्रयदाता था। आजीवन अमीर खां यशवंतराव की सेना में रहा। उसी की कृपा से वह साधारण सैनिक से असाधारण सेनापति बना! उसके नाम से नागपुर के भोंसले, हैदराबाद के निजाम, कंपनी सरकार के फिरंगी और मालवा के राजे-महाराजे कांपने लगे। अमीर खां ने जरा-सा इशारा किया कि देखते-देखते नागपुर लुट गया, औरंगाबाद नष्ट हो गया, अंग्रेजी सेना की रसदें लुटीं, जयपुर नगर लुटा और मेवाड़, मारवाड़ और मालवा तहस-नहस हो गये! करोड़ों रुपयों की संपत्ति, लाखों लोगों के प्राण, हजारों अबलाओं का सतीत्व उस एक स्वेच्छाचारी की कृपाकोर का भिखारी बन गया।

यशवंतराव अमीर खां को नागपुर से लाया था। अनेक अपने अमानवीय गुणों के कारण अमीर खां होलकर की सेना में उन्नति करता गया। आरंभ में अंग्रेजों से उसकी सांठ-गांठ नहीं थी और बड़ी लगन से वह मराठों की सेवा कर रहा था।

सन १८०० ई० में महान राजनीतिज्ञ नाना फड़नवीस का स्वर्गवास हो गया। अंग्रेजों को अपना जाल फैलाने का स्वर्ण-अवसर मिल गया, क्योंकि नाना इन फिरंगियों का कट्टर शत्रु था और वह कहा करता था कि "इन टोपीवालों का कदापि विश्वास नहीं करना चाहिये।" लेकिन नाना के बाद के मराठा सरदार टोपीवाले फिरंगियों के हाथों में खेल गये और आपस में लड़ने लगे। होलकर ने नागपुर के भोंसले सरदारों पर आक्रमण कर दिया। अमीर खां को उन्नति का मौका मिला। अंग्रेजों की साजिश में यह तय हुआ कि अमीर खां निजाम की 'सेवा में' रखा जाये। उसका आधा खर्च निजाम दे और आधा कंपनी दे।

इस षड्यंत्र के फलस्वरूप अमीर खां और होलकर के बीच में खाई पड़ गयी। अंग्रेज यही चाहते थे। उन्होंने पहले तो होलकर और भोंसले को लड़ाया, फिर होलकर को निजाम से लड़ाया, सिंधिया से लड़ाया और जब सबसे लड़कर होलकर अकेला रह गया, तो स्वयं उस पर आक्रमण कर दिया।

अमीर खां ने जब देखा कि अंग्रेजों ने उसे

निजाम का सेनापति बनाने का सिर्फ एक बहाना बनाया है, तो उसने रुष्ट होकर और होलकर को अपनी वफादारी दिखाने के लिए निजाम-राज्य में लूट-मार शुरू कर दी और औरंगाबाद नगर का विध्वंस कर दिया।

सन १८०५ में फिरंगियों से घिरा हुआ भरतपुर, फिरंगियों के दांत खट्टे कर रहा था। जनरल लेक परेशान था—कहां तो आक्रमण करने आये थे, कहां खुद घिर गये! फिरंगी सेना दुर्दशाग्रस्त थीं। रसद एकदम कम हो गयी थी। सामने भरतपुर डटा था। पीछे होलकर की सेना थी, बीच में जनरल लेक फंसा था! यदि दोनों ओर से एक बार एक साथ आक्रमण आरंभ हो जाये तो?

परंतु अंग्रेजी सेना का पीछा होलकर की जो सेना कर रही थी, उसका सेनापति अमीर खां था; वह अमीर खां, जिसका खुदा था पैसा। गवर्नर-जनरल ने अपने सेनापति लेक को गुप्त पत्र में लिखा—"यदि अमीर खां होलकर का साथ छोड़ने को तैयार हो जाये, तो उसे जागीर का वचन दे दीजिये।"

अमीर खां ने तैंतीस लाख रुपये नकद मांगे और एक इतनी बड़ी जागीर की मांग की, जिससे दस हजार घुड़सवारों का खर्च चल सके। अंग्रेज बेचारे क्या करते? वे सौदागार थे, सौदा करना जानते थे।

निश्चित योजना के अनुसार अंग्रेज सेनापति जनरल स्मिथ के साथ अमीर खां की सेना की नकली लड़ाई हुई। अमीर खां ने अपने सैनिकों को अंग्रेजी गोलियों का शिकार बना दिया। अमीर खां हार गया। विजयश्री अंग्रेजों की ओर रही।

सन १८०८ ई० में यशवंतराव होलकर पागल हो गया। यह भी कहा जाता है कि फिरंगी षड्यंत्रकारियों ने, जिनका प्रतिनिधि होलकर-दरबार में रहता था, राज्य के अन्य भ्रष्टाचारी दरबारियों से मिलकर, उन्हें रिश्वतें देकर, उस महाप्रतापी क्रांतिपुत्र को धोखे से कोई विषैला पदार्थ खिलाकर पागल बना दिया।

इस पापपूर्ण कृत्य में अमीर खां का प्रमुख हाथ था, क्योंकि यशवंतराव की रुग्णावस्था में दरबार दो दलों में बंट गया था—एक मराठों का दल था तथा दूसरा अमीर खां के नेतृत्व में अवसरवादियों का दल। चूंकि अमीर खां को अंग्रेजों का पृष्ठपोषण प्राप्त था, अतः निर्णय हुआ कि अमीर खां ही सारा राजकाज चलाये। उस समय होलकर-रानी तुलसा बाई निःसंतान थी। उसे अंग्रेजों ने चार वर्ष के एक बालक मल्हारराव को गोद लेने के लिए मजबूर किया, ताकि जब तक यह बालक नाबालिग रहे, अमीर खां और अंग्रेज मनमानी करते रहें। और यही हुआ।

अब अमीर खां पूरी तरह अंग्रेजों के वश में था। अब उन्होंने उसे नया प्रलोभन और प्रोत्साहन देकर मालवा के राजपूत राजाओं के विरुद्ध भड़काया। राजपूत सर्वथा असंगठित थे। उनमें वंश, पद और अपनी-अपनी रक्त-रक्षा के लिए प्रचंड मानाभिमान चलता था। उन्होंने पूर्व इतिहास से कभी शिक्षा नहीं ली। नतीजा यह हुआ कि अमीर खां

की ओट में अंग्रेज अपनी राजनीतिक शतरंज के मुहरे चलाते रहे। लगभग इन्हीं वर्षों में उन्होंने मालवा और राजपूताना की कई देशी रियासतों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। जो वड़े राजा उनके प्रभाव-क्षेत्र में नहीं आये, उन्हें परेशान कर दिया। अमीर खां ने जयपुर नगर को जी भरकर लूटा।

जब अंग्रेजों ने देखा कि सभी देशी रियासतें, राजपूत और मराठे हमारे झंडे के नीचे झुक गये हैं और अमीर खां से कोई स्वार्थ साधना शेष नहीं रहा है, तो उन्होंने अमीर खां को अंगूठा दिखा दिया।

अंग्रेजों ने यह भी देखा कि कहीं बरार का राजा राघोजी भोंसले मराठा-संगठन में सम्मिलित न हो जाये और अपने राज्य के भू-भाग उनके अधिकार से मुक्त कराने का प्रयत्न न करने लग जाये। अंग्रेजों ने अमीर खां की बढ़ती जा रही शक्ति को देखकर उसे कहीं-न-कहीं उलझाये रखना आवश्यक समझा। इसलिए अमीर खां को हरी झंडी दिखलायी और पिंडारियों के दल-के-दल बरार प्रदेश की ओर बढ़ चले।

अमीर खां ने बरार के राजा राघोजी भोंसले से लड़ने का यह बहाना बनाया कि जिन दिनों यशवंतराव होलकर नागपुर में था, उसके अनेक अमूल्य आभूषण और हीरे-मोती भोंसले राजा की सुरक्षा में थे, वे वापस नहीं किये गये हैं। या तो आभूषण लौटाये जायें, या मैदान में फैसला हो जाये।

अमीर खां लड़ने को बेचैन था। मगर अंग्रेज तो कोई दूसरी ही चाल चल रहे थे। सीधे-सादे भोंसले और मूर्ख पिंडारी दोनों उस चाल में फंस गये।

जब अमीर खां की सेनाएं बरार की सीमा पर पहुंचीं, तब अमीर खां यह देखकर चकित रह गया कि उसके विपक्ष में, उसके सामने, उससे लड़ने को तत्पर अंग्रेजी सेना खड़ी है—उसके अपने दोस्तों और संरक्षकों की सेना!

अमीर खां आग-बबूला हो गया। फिरंगियों ने धोखा दिया। अंग्रेजों ने भोंसले से कहा—"निजाम और अमीर खां दोनों मुसलमान हैं, और दोनों मिलकर बरार क्षेत्र में तुम्हारी सीमा पर एक नया राज्य स्थापित करना चाहते हैं।" बेचारा भोंसले डर गया। फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी और सहायता भी नहीं मांगी। मगर अंग्रेजों ने जबर्दस्ती अपनी सेना भोंसले की मदद के लिए भेज दी और उसे संधि करने पर विवश कर दिया!

इस प्रकार धीरे-धीरे राजपूत और मराठे राजे-महाराजे अंग्रेजों के जाल में फंस गये। अब अंग्रेज उनकी शक्ति का उपयोग मराठों और पिंडारियों की समाप्ति के लिए करने लगे।

तीसरे मराठा युद्ध के पश्चात् राजपूत राजाओं की सहायता से अंग्रेजों ने पिंडारियों को सदा के लिए समाप्त कर दिया। अमीर खां की मृत्यु के साथ-ही-साथ उसकी तानाशाही परंपरा और अराजकता का भी खात्मा हो गया।



बाल-पाठकों के लिए विशेष :

तीरंदाज

एम० बी० महरीन

बहुत पहले की बात है कि ईरानियों और उनके पूर्व में बसे हुए तूरानियों में भयानक लड़ाइयां होती रहती थीं। ये लड़ाइयां इतने लंबे अरसे तक छिड़ी रहीं कि तूरान का बादशाह अफ़ासिआब और ईरान का बादशाह मनुचेहर दोनों ही थक गये। उन्होंने देश की सीमाएं तय करके फैसला करने का निश्चय किया।

पर यह किया कैसे जाये? दोनों का ही विचार था कि दूसरे ने उसके देश की भूमि हड़प ली है। अतः दोनों के लिए संतोषजनक सीमा-निर्धारण सरल नहीं थी। उस समय लड़ाई ईरान के मैदान में लड़ी जा रही थी, जिसका बहुत-सा भाग बादशाह अफ़ासिआब के कब्जे में था।

ईरान के बादशाह ने एक सुझाव दिया, ताकि वह दुश्मन के हाथों में गये अपने देश के भू-भाग को वापस पा सके। इस सुझाव के अनुसार तय हुआ कि एक ईरानी तीरंदाज मैदाने-जंग के सबसे ऊंचे पर्वत की चोटी से एक तीर फेंकेगा। जहां से तीर छोड़ा जायेगा और जहां धरती को छुएगा, वहां पूर्व से पश्चिम की ओर एक सीधी रेखा खींचकर सीमा तय कर दी जायेगी।

अफ़ासिआब ने इस विचित्र सुझाव को स्वीकृति दे दी और मन-ही-मन बड़ा खुश हुआ। उसे पक्का यकीन था कि कोई भी तीरंदाज बहुत अधिक दूर तीर नहीं फेंक सकता। अतः यह समझौता उसके अनुकूल ही पड़ेगा।

बादशाह मनुचेहर ने अपने देश के सुदूर कोनों में दूत भेजे, ताकि वे किसी ऐसे जवान तीरंदाज को ढूंढ़ सकें, जो शरीर और आत्मा से पवित्र हो, चरित्र का दृढ़ हो और देश



वीर युवा : एक प्राचीन काष्ठमूर्ति

तथा बादशाह के लिए मरने को तैयार हो।

बादशाह के दूत शहरों, कस्बों और गांवों में घूम-घूमकर ऐसे युवा लोगों को निमंत्रण देने लगे, जो बादशाह द्वारा बताये गुणों से युक्त हों। अफसोस! एक भी युवक सारे देश में ऐसा नहीं मिल सका।

एक छोटे-से गांव में लंबा, तगड़ा और सुंदर युवक तीरंदाज रहता था, जो किसी के भी मुकाबले अधिक दूरी तक और सीधा तीर फेंक सकता था। युवक आरिश को उसके दोस्तों ने बादशाह के पास जाने की सलाह दी। परंतु वह इतना शर्मीला था कि खुद ऐसा नहीं कर सकता था। "निश्चय ही," उसने कहा—"मुझसे अच्छे, तगड़े और पवित्र युवक इस देश में विद्यमान हैं, जो बादशाह की सेवा करने के ज्यादा काबिल हैं।" तभी उसे एक विचित्र अनुभव हुआ। धरती की देवी अस्फंदयारमज्द, उसके सामने आयी और उसे आशीर्वाद देते हुए अतिरिक्त शक्ति प्रदान की। अस्फंदयारमज्द ने आरिश को राजधानी जाकर बादशाह के सामने यह कहने के लिए प्रेरित किया कि वह उनके द्वारा बताया गया काम कर सकता है।

आरिश राजधानी पहुंचा। मनुचेह्र के सामने जाकर उसने अपनी कमीज उतार दी और वापस मुड़कर अपनी मांसपेशियों को फुलाया। तब उसने दरबारियों से कहा कि वे देख लें कि मेरे शरीर में कहीं जरा-सा भी नुक्स तो नहीं है। तब बादशाह को सिर झुकाकर कहा :

"शहंशाह, आप देख रहे हैं कि मेरी मांसपेशियां कितनी मजबूत हैं और सारा शरीर कितना गठा हुआ है। परंतु तीर छोड़ने के बाद यह शक्ति शरीर छोड़ देगी; क्योंकि मुझे अपनी कुल ताकत से अपने सामने फैली हुई धरती पर तीर छोड़ना है। तीर के धरती को छूते ही मेरा शरीर निर्जीव होकर ढह जायेगा।"

इतना कहने के बाद वह महान तीरंदाज मैदाने-जंग के सबसे ऊंचे पहाड़ की चोटी पर धनुष-बाण लेकर चढ़ गया। अपनी सारी ताकत से उसने तीर चलाया। धरती की देवी उस तीर को बड़ी दूर ले गयी और उसे धरती पर गिरने नहीं दिया। आधे दिन तक यह तीर पहाड़ों और घाटियों में से होता हुआ हवा में उड़ता रहा। जब तीर बहुत-बहुत दूर पहुंच गया, तब नीचे आकर अखरोट के एक वृक्ष से जा टकराया।

जहां तीर गिरा था, वहां से ईरान और तूरान की सीमा निश्चित कर दी गयी। पर धरती को छूते ही तीरंदाज आरिश का शरीर निर्जीव होकर नीचे गिर गया।

आरिश इस काम में मर भले ही गया हो, पर उसके देशवासियों के मन में उसकी याद आज भी ताजा है। जिस दिन तीर छोड़ा गया था, उस दिन प्रतिवर्ष ईरानी एक भोज का आयोजन करते हैं, जिसे 'तीरगान' कहते हैं। उस दिन प्रत्येक युवक यह प्रार्थना करता है कि उसे भी आरिश जैसी ताकत मिले, ताकि वह भी देश के काम आ सके।

अनुवादक : सौमित्र मोहन



वाइसराय का पराक्रम

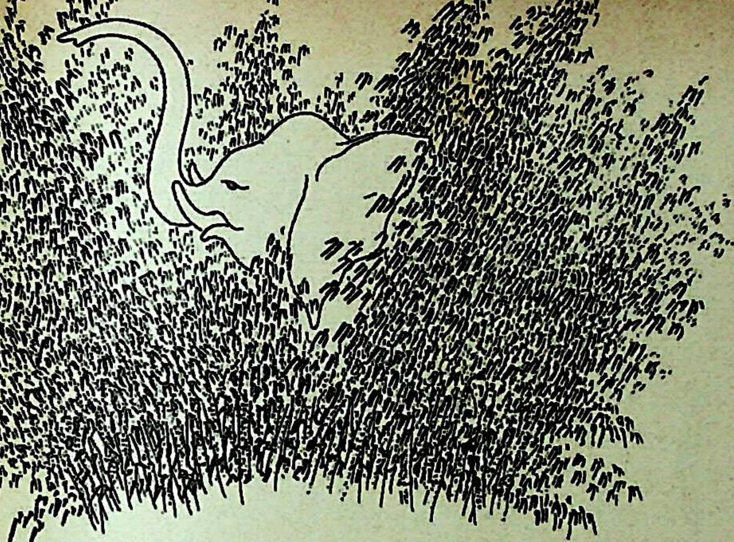
श्यामलालयम्

वह देश—उसके बारे में आपने जरूर सुना होगा—ब्रिटेन के राजमुकुट का सबसे उज्ज्वल रत्न माना जाता था। उसके निवासी दार्शनिक किस्म के लोग थे, जो राजदंड की अपेक्षा योगदंड को ऊंचा मानते थे। बड़े विलक्षण थे ये लोग—परम वैराग्य-संपन्न। उनकी स्त्रियां बड़ी सती-साध्वियां थीं, जिनके चरणों के स्पर्श-मात्र से अशोक-वृक्ष फूलों से लद उठते थे।

उस देश में बहुत-सी रियासतें थीं और अनेक राजा थे। इन राजाओं की कई श्रेणियां थीं। कोई नवाब था तो कोई निजाम, कोई जामोरिन था तो कोई मन्ने सुलतान, कोई शमशेर जंग था तो कोई बहादुर सिंह। कुछ को इकतालीस तोपों की सलामी दगती थी, कुछ को इक्कीस तोपों की और कुछ को नौ तोपों की।

ये सारे राजा या तो सूर्य के वंशज थे, या चंद्रमा के। लेकिन एक ही गौरवशाली पुरखों के वंशज होने पर भी उनके अधिकारों में बहुत अंतर था। उनमें से मुट्ठी-भर को ही कागज के नोट छापने का विशेषाधिकार था। बाकी राजाओं का सिक्के ढालने का अधिकार चांदी की अठन्नी [illegible] आकर अटक जाता था। और ऐसों [illegible] कमी नहीं थी, जो थे तो राजा, मगर [illegible] भी सिक्का नहीं ढाल सकते थे; [illegible] इसमें एक अटपटा कानून—पीनल कोड-[illegible] आता था। वे सबके सब योद्धा थे-[illegible] अपनी छोटी-छोटी पैदल सैनाएं थीं [illegible] उनसे भी छोटी अश्वसेनाएं। उनमें [illegible] संस्कृत के मर्मज्ञ थे, आयुर्वेद के आचार्य [illegible] और ललितकलाओं में पारंगत थे।

इन तमाम राजाओं के ऊपर एक [illegible] चमड़ी वाला आदमी था, जिसके हाथ [illegible] सृष्टि, स्थिति, संहार की त्रिविध शक्ति [illegible] उसे वाइसराय कहते थे। वह दिन [illegible] घंटे से भी ज्यादा काम किया करता [illegible] क्योंकि उसके पास करने को बहुत [illegible] काम था, जैसे शिकार करना, नृत्य [illegible] शानदार पार्टियां देना, शिलान्यास [illegible] कौंसिलों का उद्घाटन और विसर्जन [illegible] राजाओं को गद्दी पर बैठाना और [illegible] नीचे उतारना, खजाने लूटना और [illegible] म्यूजियम के लिए दुर्लभ कलाकृतियां [illegible]रना इत्यादि।



एक दिन एक छोटी रियासत का राजा अपनी अनेक रानियों में से एक के साथ प्रणय-क्रीड़ा में व्यस्त था कि एकाएक उसका युवराज एक महत्त्वपूर्ण संदेश लेकर वहां घुस आया ।...... अगले सप्ताह वाइसराय साहब रियासत देखने पधार रहे हैं ।

राजा साहब की राजसी सांस रुक गयी, और पूरे एक मिनिट तक रुकी रही । उनके राजसी ओंठ फड़कने लगे । कीमती अंगूठियों के बोझ से दबी उनकी राजसी उंगलियां थरथर कांपने लगीं । वाइसराय साहब पहली ही वार उनकी रियासत में पधार रहे थे ।

लेकिन जल्दी ही राजा साहब ने होश को काबू में कर लिया और अपने ग्रहों को सराहा कि विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था । यह बड़े ही सौभाग्य की बात थी कि वाइसराय ने युद्धकाल में रियायत का दौरा नहीं किया । यदि वे युद्ध के दिनों में आ गये होते, तो रियासत के सारे राजकोष को झाड़-पोंछकर गये होते; क्योंकि यह राजधर्म का एक माना हुआ नियम था कि युद्ध-कोष को भारी रकम दान में दी जाये ! लेकिन तभी राजा साहब को वाइसराय के वतन में आयी भयंकर बाढ़ की याद आ गयी, जिसके बारे में अखबारों में बहुत कुछ छपा था; और उनके दिल की धड़कन एक पल के लिए थम गयी । अब तो एक लाख रुपये और दस हजार कंबल से हाथ धोना ही पड़ेगा !

और राजा साहब का मुखड़ा एकदम बुझ गया; क्योंकि उन्हें वाइसरायनी की याद आ गयी, जो बिजली के पीछे आनेवाली गरज की तरह वाइसराय के साथ जरूर आने वाली थीं । राजा साहब ने वाइसरायनी को मन-ही-मन (हां, मन-ही-मन, क्योंकि वे पक्के स्वामिभक्त थे) कोसा ।

उन्हें याद आया कि वाइसरायनी अच्छी चीजों की बड़ी कद्रदान हैं। रानी साहिबा का कीमती हीरों का हार और पन्ने जड़ा हुआ हाथीदांत का कंघा जरूर वाइसरायनी का ध्यान आकृष्ट करेगा।

वाइसराय के स्वागत की तैयारियां चटपट शुरू हो गयीं। राजमहलों की पुताई की गयी। देवी-देवताओं के चित्रों का स्थान ब्रिटेन के जीवित और मृत राजा-रानियों के चित्रों ने ले लिया। चिड़ियाघर के मरियल शेरों और बाघों को भर पेट मांस खिलाया गया। गरीबों को दूध का पाउडर, विटामिन की गोलियां और कपड़े बांटे गये। अस्पतालों के जच्चा-वार्डों में सफेद-सफेद चादरें बिस्तरों पर बिछायी गयीं। वाइसरायनी जो पधार रही थीं!

और आखिरकार वह ऐतिहासिक दिन आ पहुंचा और महामहिम वाइसराय दंपति अपने विशाल दल-बल के साथ स्पेशल ट्रेन से आ पहुंचे।

वाइसराय ने पुराने किलों और नये स्वास्थ्य-वर्धक स्थानों का मुआइना किया, आतिशबाजी और लोक-नृत्यों का अवलोकन किया। ये चीजें उन्हें बहुत पसंद आयीं। ये चीजें उतनी ही पसंद आयीं जनता व पुलिस वालों को भी, जो सब जगह छाये हु...

वाइसरायनी ने अनाथालयों में ... को मिठाई बांटी। उन्होंने जच्चा-वा... ऐन फोटोग्राफरों के सामने एक ब... अपने दस्ताने-मढ़े हाथों में उठाकर ... दिल एकदम जीत लिये।

राजकीय भोज के बाद वाइसराय ... और राजा साहब रियासत के माम... विचार-विनिमय कर रहे थे। अचान... राजकीय अतिथि ने सवाल कर ... "आपके जंगलों में क्या-क्या है?"

"सागवान, शीशम, चंदन....." ... साहब उत्साह से वर्णन करने लगे। पर... सराय ने उनकी बात बीच में ही का... "पशुओं के बारे में बताइये।"

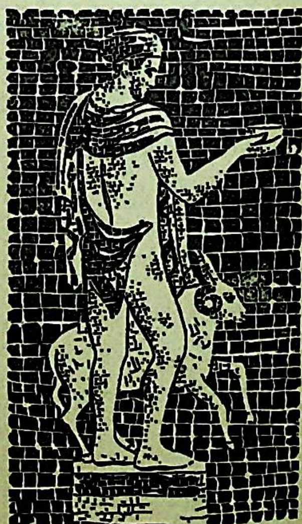
"जंगली भैंसे, ... हिरन......"

"उंह! आपकी ... सत ने भी मुझे ... कर दिया।"

राजा साहब ... याचना-सी कर... बोले—"मैं समझ ... पाया, श्रीमन्।"

"मैं हाथी का ... करना चाहता हूं। ... कोई हाथी नहीं है ... जंगलों में?" वाइ... ने डपटते हुए कहा।

राजा साहब ... के लिए सकपका ...



नेपल्स संग्रहालय की एक प्रतिमा

फिर अपने को संभालकर उत्तर दिया—"जी, हैं क्यों नहीं! यह तुच्छ रियासत आपको निराश नहीं करेगी, श्रीमन्।"

वाइसराय ने राजा साहब की पीठ पर धौल जमाकर अपना संतोष व्यक्त किया। फिर सहसा उठकर खड़े होते हुए वे बोले—"हम कल हाथी का शिकार करेंगे।"

जब वाइसराय आराम करने चले गये, राजा साहब ने अपने दीवान को बुलवाया और हाथियों के बारे में सवालों की झड़ी लगा दी। दीवान ने बताया कि पिछली पशु-गणना के अनुसार राज्य के जंगलों में तीन दंतैल हाथी और चार हथिनियां थीं। मगर राजा साहब ताजातर जानकारी चाहते थे। दीवान ने फारेस्ट कन्सर्वेटर को बुलवाया; कन्सर्वेटर ने जिला वन-अधिकारी से बात की; उसने वन्यपशु-रक्षक को बुला भेजा; उसने गेम वार्डन से बात की; और उसने फारेस्ट गार्ड से पूछा। अंत में राजा साहब को सूचित किया गया कि पिछली पशु-गणना के तुरंत बाद जंगल में महामारी फैल गयी, जिसमें सिर्फ एक हाथी बच पाया; और वह बचा-खुचा एकमात्र हाथी भी वाइसराय साहब के पधारने से एक महीना पहले दस्त लगने से मर गया।

यह सुनकर राजा साहब का पारा आसमान पर चढ़ गया और उन्होंने ऐसे जोर से अपना ओंठ काटा कि सोने का एक दांत खिसककर गिर पड़ा।

"वाइसराय साहब को निराश नहीं किया जा सकता। हम उन्हें वचन दे चुके हैं। कुछ भी हो, कल सवेरे हमारे जंगल में हाथी होना ही चाहिये।" राजा साहब गरजे।

उस रियासत में सरकारी मंदिर तो कई थे, लेकिन केवल दुर्गा का मंदिर ही ऐसा था, जिसके पास अपना हाथी था। दरअसल यह हथिनी थी और उसका नाम भी 'दुर्गा' था। आखिर वह दुर्गा माता की ही तो दासी थी।

बड़ी सुंदर हथिनी थी वह, और बिलकुल भगतिन। प्रतिदिन वह अपनी पिछली टांगों के बल खड़ी होकर दुर्गा माता को प्रणाम किया करती थी। अगर उस वक्त उसे साड़ी और चोली पहनाकर उसके मुड़े हुए सूंड में एक वैनिटी बैग लटका दिया जाता, तो उसे देखकर किसी को भी पैंतीस-छत्तीस की भारी-भरकम औरत का भ्रम हो जाना संभव था। दुर्गा का एक ही काम था—यात्रा में देवी की प्रतिमा को वहन करना। वह दूसरे हाथियों से बहुत भिन्न थी। वह शहर में जन्मी थी और शहर में ही पली थी। उसे सपने आते थे कारों के, ऊंची अट्टालिकाओं के, फिल्मों के।

दुर्गा और उसका महावत एक-दूसरे को बहुत मानते और समझते थे। हाथी और महावत का ऐसा आदर्श जोड़ा दुनिया में दूसरा नहीं होगा। महावत के लिए दुर्गा की चिंघाड़ से बढ़कर कोई मधुर संगीत नहीं था। अगर वह दुर्गा को सीने से चिपकाकर लोरियां गाकर नहीं सुलाता था, तो उसका कारण सिर्फ यही था कि वह खासी वजनदार थी। महावत का कोई सगा-संबंधी नहीं था, न मित्र था, न घर-बार था। जीवन में

उसकी एक ही महत्त्वाकांक्षा थी। वह दुर्गा की पीठ पर बैठे-बैठे अंतिम सांस लेना चाहता था।

उस रात उसे किसी ने सोते से जगा दिया। "हथिनी कहां है?" अंधेरे में से आवाज आयी।

"सो रही है।" महावत ने उत्तर दिया।

"उठाओ उसे। राजा साहब का हुक्म है।" दूसरी आवाज अफसराना ढंग से बोली।

"क्यों, क्या बात है?" उसने पूछा।

"तुम्हें समझाने की हमें फुरसत नहीं है। हमें हथिनी को लेकर तुरंत चल पड़ना है। महावत के तौर पर तुम्हारी नौकरी आज से खत्म। राजा साहब का यह हुक्म है।"

"मगर........." महावत ने भर्रायी हुई आवाज में कहा—"हथिनी के बिना मैं कैसे जीऊंगा?"

"एम्प्लायमेंट एक्सचेंज में अपना नाम दर्ज करा दो।" किसी ने सुझाया।

"लेकिन मुझे तो दूसरा कोई काम आता ही नहीं।"

"तुम तजुरबेकार महावत हो। तुम्हें जरूर ट्रैक्टर-ड्राइवर का काम मिल जायेगा।"

"जल्दी कर अबे!" कोई बेसब्री से चिल्लाया।

"सवेरे चलेंगे।" महावत बोला।

तभी चटाक-से उसके गाल पर एक तमाचा पड़ा।

महावत चीख पड़ा—"ऐं......तुमने मुझे मारा है! नहीं, अब तो मैं हथिनी के पास भी नहीं फटकूंगा। तुम अपने आप तो उसे हांककर ले जा नहीं सकते।"

राजा साहब के कर्मचारी सविनय-अ[illegible] के इस आकस्मिक प्रदर्शन से हक्के-बक्के र[illegible] गये। ऐसी स्थिति की उन्हें आशंका नहीं थ[illegible] महावत को मनाना जरूरी था। तह[illegible] दार को, जिसने कि उसे तमाचा जड़ा [illegible] उससे माफी मांगनी पड़ी।

महावत जरा ढीला पड़ा। उसने ह[illegible] को जगाया। वह उसके पीछे चल पड़ी।

समूची पार्टी रेल्वे स्टेशन पहुंची।

दुर्गा को एक विशेष वैगन में चढ़ाया [illegible] जो उसी की प्रतीक्षा में खड़ा था। दुर्गा [illegible] महावत की ओर देखने लगी, मानो पूछ [illegible] हो—"यह सब क्या झमेला है?" जब [illegible] ने देखा कि महावत की आंखें आंसुओं से [illegible] हुई हैं, वह उदास हो गयी। उसने माल[illegible] के वैगन में पड़े गन्नों और ताड़ के [illegible] पत्तों को छुआ तक नहीं, जो उसी के [illegible] वहां डाले गये थे।

रात-भर रेलगाड़ी भागती रही, हां[illegible] रही। आखिरकार सवेरा हुआ। [illegible] गाड़ी अब भी जंगल में सांप की [illegible] बल खाती हुई दौड़ी चली जा रही [illegible] मीलों दूर तक जंगल फैला हुआ था—[illegible] वृक्ष, उलझी हुई बेलें, बड़ी-बड़ी [illegible] उफनते हुए नाले।...... अकस्मात् झटके [illegible] साथ रेलगाड़ी रुक गयी।

"हथिनी को उतारो!" एक [illegible] चिल्लाया।

महावत ने दुर्गा को मालगाड़ी के [illegible] से उतारा।

"ले जाओ इसे, घने जंगल में ले जाओ।" अफसर ने हुक्म दिया। महावत ने आज्ञा का पालन किया। हथिनी मेमने की तरह उसके पीछे-पीछे चल दी।

दुर्गा घबरा उठी थी। जीवन में पहली ही बार वह जंगल देख रही थी। घने झाड़-झंखाड़ के बीच में से होकर चलने में उसे तकलीफ हो रही थी। तभी बांसों के झुरमुट में से एक जंगली भैंसे ने ताक-झांक की। दुर्गा डर के मारे भाग खड़ी हुई और उसके साथ महावत भी भागा।

कई घंटे बीत गये। फिर आपाधापी में तैयार की गयी उस चक्करदार जंगली सड़क पर रियासत की कुछ कारें प्रकट हुईं। वाइसराय, फारेस्ट कन्सर्वेटर, वन्यपशु-रक्षक और गेम कीपर दुनाली बंदूकें थामे कारों से उतरे। फारेस्ट गार्ड आगे चल रहे थे।

गार्ड जंगल में बिखर गये और हांका लगाने लगे। गीदड़ मुंह में जान लेकर भागे।

"भेड़िया!" गेम वार्डन बड़े जोर से चिल्लाया। वाइसराय साहब उत्सुकता से उछल पड़े।

"यह बाघ की गंध है।" कन्सर्वेटर कान में फुसफुसाया। वाइसराय के रोंगटे खड़े हो गये।

गार्डों ने ढोल पीटना और चिल्लाना जारी रखा। वाइसराय की नजर एक जंगली खरहे पर पड़ी, गेम वार्डन ने तुरंत उसे मार गिराया। कन्सर्वेटर की दिखायी हुई जंगली बत्तख पर वाइसराय ने फायर किया; मगर गोली निशाना चूक गयी और मधुमक्खियों के छत्ते में जा लगी। गुस्से में भरकर मक्खियां बड़े-छोटे का लिहाज किये बिना सबको डंक मारने लगीं। वाइसराय की नाक सूजकर टमाटर हो गयी। मगर महामहिम वाइसराय डटे रहे। जो जबर्दस्त 'थ्रिल' उनकी प्रतीक्षा कर रहा था, उसकी तुलना में मधुमक्खी का डंक भला क्या चीज थी!

"हाथी कहां है?" कुछ समय बाद वाइसराय ने पूछा।

गार्डों ने तेजी से ढोल पीटकर जंगल सिर पर उठा लिया। अचानक ही कई आवाजें एक साथ चिल्ला उठीं—"हाथी!"

वाइसराय का दिल तेजी से धड़कने लगा। उनकी रीढ़ में झुरझुरी की लहर दौड़ गयी। हां, वह रहा हाथी, बांस के झुरमुट में!

बड़ी सावधानी से वे लोग आगे बढ़े। सिर्फ हाथी का सिर दिखाई दे रहा था।

वाइसराय बाकी लोगों से चंद कदम आगे निकले; मगर कन्सर्वेटर ने उन्हें चेताया कि ज्यादा निकट जाने में खतरा है।

हथिनी ने अपनी छोटी-छोटी आंखों से उन्हें देखा। लो, आखिरकार कुछ तो मनुष्य आ पहुंचे! वह बड़ी खुश हुई और उसने सूंड उठाकर बड़ी अदा से सलाम बजाया।

वाइसराय ने निशाना साधा। बंदूक दो बार गरजी। एक तीखे आर्तस्वर के साथ, जो बिलकुल मनुष्य की आवाज-जैसी जान पड़ती थी, हथिनी निढाल होकर जमीन पर गिर पड़ी।

"बधाई हो, योर एक्सलेन्सी, बधाई हो। आज तक किसी ने कभी इतने नजदीक से

दुष्ट हाथी को नहीं मारा—सो भी जमीन पर खड़े-खड़े ।" फारेस्ट कन्सर्वेटर बड़े अदब से बोला ।

वाइसराय खुशी में भरकर चल पड़े, गिरे हुए हाथी की ओर ।

"गुस्ताखी माफ हो, योर एक्सलेन्सी ! जब तक गार्ड अच्छी तरह जांच न लें कि हाथी सचमुच मर चुका है या नहीं, तब तक उसके पास जाना सुरक्षित नहीं है ।" गेम वार्डन ने वाइसराय को चेताया और साथ ही गार्डों को आंख से इशारा किया ।

"वह देखिये ......चीता !" कन्सर्वेटर चिल्लाया और दूसरी दिशा में भाग निकला । उसके पीछे-पीछे वाइसराय दौड़ रहे थे ।

"जल्दी करो !" वार्डन ने गार्डों को आदेश दिया । वे दौड़कर बांसों के झुरमुट में घुस गये । हथिनी दम तोड़ चुकी थी ।

दो गार्ड और आ पहुंचे । मरे हुए महावत को उठाकर पास की झाड़ियों में छिपा दिया गया । हथिनी के गले की रस्सी काटकर फेंक दी गयी । फिर वे सब लौट गये ।

कन्सर्वेटर और गेम वार्डन वाइसराय साहब को उनके शिकार के पास ले गये । हार्दिक मुस्कान के साथ महामहिम वाइसराय ने हथिनी की गर्दन पर, जिसे दुर्गा माता की प्रतिमा अपने पवित्र स्पर्श से सहलाया करती थी, पैर रखा । सरकारी कैमरामैन लपककर आगे बढ़े, उन्होंने फोटो लिया ।

यह फोटो सारे देश की सचित्र पत्रिकाओं में छपा और उसके नीचे लिखा था :

"महामहिम वाइसराय महोदय अपने मारे हुए दुष्ट हाथी के साथ । यह स्मरणीय है कि यह हाथी दीर्घकाल से रियासत में जान और माल के लिए खतरा बना हुआ था । ज्ञात हुआ है कि रियासत की प्रजा ने अपनी कृतज्ञता की निशानी के रूप में महामहिम वाइसराय की प्रस्तर-मूर्ति स्थापित करने का निश्चय किया है ।"

—अनुवादक : सुखलाल



अंतर्दर्शन

एक पिंजड़ा था, जिसमें चारों ओर शीशे ही शीशे जड़े हुए थे और पिंजड़े के बीचों-बीच एक पूर्ण विकसित गुलाब का फूल रखा हुआ था । उस पिंजड़े में एक मैना छोड़ दी गयी । उसने शीशों में चारों ओर पुष्प का प्रतिबिंब देखा । जिधर भी मैना की दृष्टि जाती थी, उसी ओर फूल दिखाई देता था । जितनी बार वह शीशे के फूल को पकड़ने के लिए झपटी, उतनी बार उसकी चोंच शीशे से टकरायी और वह घायल होकर नीचे गिर पड़ी । हताश होकर ज्यों ही उसने शीशे से मुंह मोड़कर नीचे की ओर देखा, त्यों ही पिंजड़े के केंद्र में रखा हुआ गुलाब का पुष्प मिल गया । ऐ मनुष्य ! संसार ही वह पिंजड़ा है; जिस सुख को तू अपने से बाहर ढूंढ़ता है, वह स्वयं तेरे भीतर है ।

—स्वामी रामतीर्थ





मुगल साम्राज्य का हिन्दू प्रधान मंत्री

हरिदत्त वेदालंकार

मामूली मुशी के रूप में जीवन आरंभ करके वह मुगल साम्राज्य का प्रधान मंत्री बना। बहुत कम शिक्षा-दीक्षा के बावजूद वह स्वाध्याय के बल पर अपने समय का महान वित्तविशेषज्ञ बना और भूमिकर की ऐसी व्यवस्था कर गया कि आज भी भारत की भूमि-व्यवस्था पर उसकी छाप है। प्रशासन-पटु होने के साथ वह तलवार का धनी और युद्ध-निपुण सेनानी था। वह अपने युग का शायद सबसे सफल राजपुरुष था। साथ ही वह उतना ही आदर्शनिष्ठ सत्पुरुष भी था। अकबर का अत्यंत विश्वासपात्र होते हुए भी उसने 'दीने-इलाही' को अंगीकार नहीं किया। मुस्लिम राज्य का आधार होते हुए भी वह नैष्ठिक हिन्दू था। प्रतिभा और चरित्र-बल दोनों दृष्टियों से वह अकबर के नवरत्नों में अद्वितीय था।

राजा टोडरमल के आरंभिक जीवन पर अंधकार का परदा पड़ा हुआ है। उसके जन्मस्थान के बारे में बहुत विवाद है। इतनी बात निश्चित है कि वह टंडन खत्री था, बचपन में अनाथ हो गया, गरीब विधवा मां ने उसे बड़ी कठिनाई से पाला था और वह ज्यादा पढ़-लिख भी नहीं पाया था। उसका जन्मस्थान पहले लाहौर या उसी जिले का चूनियां नामक स्थान माना जाता था, जहां उसके बड़े विशाल महल और मकान बताये जाते हैं। किंतु नवीन अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि वह उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले में लहरपुर नामक कस्बे में जनमा था।

ऐसा प्रसिद्ध है कि टोडरमल ने सर्वप्रथम शेरशाह के यहां नौकरी की और सूर-वंश के अध:पतन के पश्चात् वह अकबर के यहां एक मामूली मुंशी के रूप में काम करने लगा। यदि यह सत्य हो, तो मानना पड़ेगा कि अकबर के राज्यारोहण के साथ ही १५५६ ई० में वह मुगल सम्राट् की सेवा में आया होगा।

किंतु पांच-छः वर्षों में ही अकबर के दरबार में उसका स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण समझा जाने लगा, उसे बादशाह के सामने विभिन्न मामलों में बुलाया जाने लगा और उसकी सलाह ली जाने लगी। इसका कारण था टोडरमल के अनेक गुण। बहुत कम पढ़ा-लिखा होने पर भी उसे स्वाध्याय का तथा सब बातों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करने का शौक था। उसका दूसरा गुण था, काम की सफाई तथा काम में गहरी दिलचस्पी। इससे शीघ्र ही उसे दफ्तर की सभी बातों का तथा सरकारी कायदे-कानूनों का विस्तृत और गंभीर ज्ञान हो गया।

उसके बारे में आजाद ने यह सत्य ही लिखा है—"काम का नियम है कि जो उसे संभालता है, वह भी चारों ओर से सिमटकर उसी की ओर ढुलकता है। टोडरमल प्रत्येक कार्य बहुत अच्छे ढंग से और शौक से करते थे, इसीलिए बहुत-सी सेवाएं तथा कार्यालय उनकी कलम से संबद्ध हो गये।"

शीघ्र ही दफ्तरों के काम-धंधों के संबंध में टोडरमल का ज्ञान इतना बढ़ गया कि अमीर और दरबारी हर बात का पता उसी से पूछने लगे। उसने दफ्तर के कागजों, मुकद्दमों की मिसलों और बिखरे हुए कामों को भी नियमों और सिद्धांतों के क्रम से व्यवस्थित किया। धीरे-धीरे वह बादशाह के सामने उपस्थित होकर कागज आदि पेश करने लगा और हर काम में उसी का नाम जबान पर आने लगा।

दफ्तरी क़ायदे-कानूनों का अगाध ज्ञान होने से वह हर बात में नियम उद्धृत कर सकता था और सरकारी कागजों के विशाल जंगल में से आवश्यक कागज को झटपट ढूंढ़ लाना तो उसके बायें हाथ का खेल था। इसलिए बादशाह के लिए उसे यात्रा में भी अपने साथ रखना अनिवार्य हो गया।

समकालीन इतिहासों में टोडरमल का पहला उल्लेख १५६२ ई० में मिलता है। अबुल फजल ने 'अकबरनामा' में यह लिखा है कि व्यास और सतलुज के बीच के पहाड़ी प्रदेश में नंदन नामक एक हिन्दू राज्य था।

इनके शासक गणेश ने अकबर के शाही जागीरदार जान मुहम्मद के प्रदेश पर हमला किया। पर लड़ाई में गणेश की हार हो गयी, उसे अपने राज्य से हाथ धोना पड़ा और उसे अपनी जान के लाले पड़ गये। उसने टोडरमल की शरण ली। टोडरमल ने दरबार में उसका पक्ष लिया और अकबर से उसकी सिफारिश की। टोडरमल के प्रभाव से बादशाह ने उसे माफ कर दिया और शाही सेवा में एक पद प्रदान किया।

इससे यह स्पष्ट है कि छः वर्ष के अल्प-काल में ही, निर्धन विधवा का पुत्र टोडरमल अकबर को अपनी सेवाओं से प्रसन्न और प्रभावित कर चुका था और उसका महत्त्व-पूर्ण दरबारी बन गया था।

परंतु टोडरमल दफ्तरी काम-काज जितनी ही कुशलता से सैन्य-संचालन भी कर सकता था। उसने साम्राज्य को कई बड़े खतरों से बचाया और नये प्रदेश जीतने में अकबर को बड़ा सहयोग दिया। हुमायूं को भारत में पुनः साम्राज्य स्थापित करने में बहुमूल्य सहायता देनेवाले उजबेक (तुर्क) सरदारों ने १५६५ में बादशाह अकबर के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया। ये उत्तर प्रदेश में साम्राज्य के पूर्वी प्रांतों में नियुक्त थे और अफ़गानों से लोहा ले रहे थे। पर इन्हें बड़ी शिकायत यह थी कि अकबर दरबार में ऊंचे पद ईरानियों को दे रहा है। आरिफ कंधारी ने 'तारीखे अकबरशाही' में लिखा है कि इन सरदारों की यह योजना थी कि अकबर को बंदी बनाकर देश पर अधिकार कर लिया जाये। इस योजना को विफल बनाने तथा इनका विद्रोह दबाने के लिए अकबर ने टोडरमल और लश्कर खां को बागी सरदार इस्कंदर के विरुद्ध सेना देकर भेजा। सीतापुर से चार मील दक्षिण-पूर्व में खैराबाद की लड़ाई में इस्कंदर को हराकर टोडरमल ने अपनी सैनिक प्रतिभा प्रदर्शित की।

सन १५६९ ई० में रणथंमौर की लड़ाई में टोडरमल ने पुनः रणक्षेत्र में अपना सैन्य-संचालन का कौशल प्रकट किया। उन दिनों राजस्थान में चित्तौड़ के बाद यही सबसे बड़ा दुर्जेय दुर्ग माना जाता था। १५६८ में चित्तौड़ जीतने के बाद अकबर ने इसे जीतने का निश्चय किया और १० फरवरी १५६९ को वहां पहुंच गया।

उस समय यह किला सुर्जन हाड़ा के अधिकार में था। उसने परकोटों और किले-बंदियों को मजबूत करके आवश्यक रसद किले में भर ली थी। अकबर ने पार्श्ववर्ती पहाड़ी शिखर से स्वयमेव इसका निरीक्षण करके इसके चारों ओर तोपें जमवा दीं। परंतु जब ये तोपें किले की दीवारों को विशेष क्षति नहीं पहुंचा सकीं, तो अकबर ने सबातों के निर्माण की आज्ञा दी।

अबुल फजल ने लिखा है कि मुख्य कारी-गर कासिम खां और राजा टोडरमल इस कला में कुशल एवं अनुभवी थे। इसलिए इन्हें यह कार्य सौंपा गया। इन्होंने किले-जैसी ही ऊंची एक सबात उसके मुख्य द्वार रण-दरवाजे के सामने बनवा दी। "समतल भूमि

पर २०० जोड़ी बैलों द्वारा खींची जानेवाली भारी तोपों को लौहभुजा-वाले कहारों के दल द्वारा रण की पहाड़ी पर चढ़ा दिया गया। ये वड़ी-वड़ी तोपें ३० मन के लोहे के गोले तथा ६० मन के पत्थर के गोले फेंक सकती थीं।" इन तोपों की भीषण गोलाबारी से किले की दीवार में दरार पड़ गयी और अंत में सुर्जन हाड़ा आत्मसमर्पण करने के लिए विवश हो गया (२२ मार्च १५६९)।

सन १५७४ तक टोडरमल अकबर का इतना विश्वासपात्र वन चुका था कि साम्राज्य में जहां कहीं विकट अथवा विषम स्थिति देखता था, उसे ठीक करने के लिए टोडरमल को वहां भेज देता था। परंतु उसके राजधानी से वाहर चले जाने पर दफ्तरी काम-काज तथा प्रशासन एवं अर्थ-व्यवस्था के संचालन में वड़ी दिक्कत होती थी। अतः फरवरी १५७४ में टोडरमल की सहायता के लिए राय रामदास को नियुक्त किया गया, ताकि राजा टोडरमल की अनुपस्थिति में भी मालगुजारी और वित्त-व्यवस्था का प्रशासन-कार्य भली भांति चलता रहे।

दो साल बाद अकबर ने बिहार और बंगाल की विजय के लिए तथा अफगानों के दमन के लिए टोडरमल को भेजा। १०-१२ जुलाई १५७६ को राजमहल की लड़ाई में टोडरमल ने शौर्य, साहस और रणनीति-कौशल का जो अद्‌भुत प्रदर्शन किया, वह सदैव स्मरणीय रहेगा।

वर्षा ऋतु पूर्ण यौवन पर थी। राजमहल का निकटवर्ती प्रदेश पानी की विशाल चादर जैसा प्रतीत हो रहा था। शाही सेना के वायें पक्ष का संचालन टोडरमल और दायें पक्ष का मुजफ्फर खां कर रहे थे। मध्यभाग खाने-जहां के नेतृत्व में था। शत्रु-पक्ष में दाऊद ने स्वयं मध्यभाग की कमान संभाली थी; काला पहाड़ दायें भाग का तथा जुनैद वायें भाग का नेतृत्व कर रहे थे।

शत्रु का सामना करने के लिए मुगलों की फौज पानी में उतरी और जलधारा को पार करके अफगानों से भिड़ गयी। मुगलों के वायें पक्ष ने काला पहाड़ पर हमला किया; पर उसने इतनी दृढ़ता से मुकावला किया कि मुगलों के पैर उखड़ने लगे। ऐसे आड़े समय में टोडरमल अपने सैनिकों को ललकारता हुआ साहस से आगे वढ़ा और शत्रु पर प्रवल वेग से टूट पड़ा।

काला पहाड़ घायल होकर युद्ध से भाग खड़ा हुआ। दाऊद का घोड़ा कीचड़ में फंस गया। उसने दूसरा घोड़ा लिया, पर वह पकड़ा गया और मार डाला गया। उसका सिर फतेहपुर सीकरी भेज दिया गया और धड़ बंगाल की राजधानी टांडा में एक तख्ते पर टांग दिया गया।

खानेजहां और टोडरमल के शानदार प्रयत्नों से बंगाल को पुनः जीत लिया गया। सन १५८१ में बिहार तथा बंगाल में अकबर के विरुद्ध जो महान विद्रोह हुआ, उसका दमन करने में भी टोडरमल ने बड़ा भाग लिया था। इतिहासकार विन्सेंट स्मिथ ने टोडरमल को अकबर का एक योग्यतम सेनानी कहा है।

किंतु टोडरमल की सर्वोत्तम प्रतिभा प्रशासन में, विशेष रूप से भूमिकर-व्यवस्था एवं वित्त-व्यवस्था में प्रकट हुई। गुजरात को जीतने के बाद १५७३ ई० में अकबर ने टोडरमल को उस प्रांत का दीवान यानी अर्थमंत्री नियुक्त किया और उसे वहां की मालगुजारी की व्यवस्था को नये सिरे से करने का आदेश दिया।

टोडरमल ने भूमि की पैमाइश और उत्पादन के आधार पर मालगुजारी तय करने के सिद्धांत निश्चित किये और उनके आधार पर गुजरात की कुल मालगुजारी का विवरण प्रस्तुत किया। उसकी सुचारु व्यवस्था से गुजरात थोड़े ही समय में साम्राज्य का सबसे अधिक संपन्न प्रदेश समझा जाने लगा।

गुजरात में की गयी भूमि-व्यवस्था से अकबर बहुत प्रसन्न हुआ था। अंत में उसने सितंबर १५८१ में बंगाल में विद्रोह के दमन के बाद टोडरमल को वहां से बुलाकर 'दीवान कुल' (सारे साम्राज्य का वित्त-मंत्री) तथा वजीर (माल-मंत्री) बना दिया। टोडरमल ने गुजरात वाली भूमि-व्यवस्था को सारे साम्राज्य में लागू किया।

अगले साल १५८२ में मुगल सम्राट ने उसकी पदोन्नति करके उसे अपने साम्राज्य का प्रधान मंत्री बना दिया। यह बड़ी युगां-तरकारी घटना थी। भारत में मुस्लिम शासन स्थापित होने के बाद, केवल हेमू के अपवाद को छोड़कर, किसी हिन्दू को मंत्री भी नियुक्त नहीं किया गया था। विधर्मी को



अकबर—एक समकालीन चित्र

प्रधान मंत्री बनाने की तो कभी कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। परंतु अकबर ने अपनी उदार नीति से एक नवयुग का श्रीगणेश किया।

इस नियुक्ति ने अकबर के समय में सर-कारी नौकरियों के विषय में हिन्दू-मुसलमान के भेदभाव को समाप्त कर दिया और यह सिद्ध किया कि असाधारण योग्यता से संपन्न कोई भी व्यक्ति साम्राज्य के उच्चतम पद पर पहुंच सकता है।

असाधारण योग्यता और कार्यकुशलता के बल पर ही टोडरमल ने मामूली मुंशी के पद से उन्नति करते हुए साम्राज्य में सर्वोच्च पद प्राप्त किया था। पर इस हिन्दू की असा-धारण उन्नति से मुसलमान अमीर उससे प्रबल ईर्ष्या और डाह रखते थे। १५६४ में ही कुछ दरबारियों ने अकबर से उसकी शिका-

[विरोध] करते हुए उसे पदच्युत करने की मांग की [थी]! उनका आक्षेप यह था कि एक विधर्मी [को] इतने ऊंचे पद क्यों दिये जा रहे हैं।

अकबर ने उत्तर दिया था कि तुममें से [प्र]त्येक ने अपनी जमींदारी में हिन्दुओं को नियुक्त कर रखा है, तो फिर मैंने एक हिन्दू को रखने में क्या गलती की है ?

टोडरमल ने भूमि-व्यवस्था और वित्तीय मामलों में बड़ी क्षमता प्रदर्शित की। वह साम्राज्य के सुप्रबंध में जी-जान से जुट गया और अबुल फजल के शब्दों में "प्रशासनीय और वित्तीय मामलों में सुव्यवस्था स्थापित हो गयी।" अबुल फजल ने उसकी ईमानदारी और शासन के रहस्यों को समझने-समझाने की उसकी क्षमता की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है।

टोडरमल को भारतीय इतिहास में स्थायी ख्याति उसके भूमिकर विषयक सुधारों के कारण मिली है। उस जमाने में राज्य की आय का प्रधान स्रोत मालगुजारी थी। अतः टोडरमल के अधिकांश सुधार मालगुजारी के विभाग से संबद्ध थे और उनका प्रधान लक्ष्य कृषकों का कल्याण एवं राजकीय हितों का संरक्षण था।

पहला सुधार मालगुजारी इकट्ठा करने के बारे में था। प्रायः कर वसूल करनेवाले कर्मचारी या आमिल और जागीरदार किसानों से अधिक से अधिक कर वसूल करते थे। टोडरमल ने सरकार द्वारा निर्धारित करसे अधिक वसूल करनेवाले आमिलों के लिए जुर्माने की व्यवस्था की, ताकि किसानों पर नाजायज वसूली के लिए किये जानेवाले अत्याचार बंद हों।

दूसरा सुधार भूमि-व्यवस्था या बंदोबस्त का था। खेती में वृद्धि करने के उद्देश्य से कृषियोग्य भूमि की पैमाइश एवं उत्पादन के आधार पर भूमिकर निश्चित करने के नियम बनाये गये। भूमि नापने के लिए गज, तनाव या जरीब और बीघे का परिमाण निश्चित किया गया।

पहले जमीन की पैमाइश ५५ गज की रस्सी या जरीब से होती थी। रस्सी के सूखी या गीली होने पर इसकी लंबाई घट-बढ़ जाती थी। टोडरमल ने बांस या नर्कट की ६० गज की जरीब निश्चित की और उसके बीच-बीच में लोहे की कड़ियां डलवायीं, ताकि उसकी लंबाई में कोई अंतर न पड़े।

टोडरमल के सुझाव के अनुसार सारे साम्राज्य को सूबों में बांटा गया और दस-साला बंदोबस्त निश्चित हुआ। कुछ गांवों का परगना, कई परगनों की सरकार या जिला और कई सरकारों के सूबे बनाये गये।

उपज के अनुसार भूमि चार प्रकार की मानी गयी :

क. पोलज भूमि, जिसमें बारह महीने खेती होती थी;

ख. परती भूमि, जो उपजाऊ बनाने के लिए साल में कुछ समय बिना खेती के रखी जाती थी;

ग. चच्चर भूमि, जो तीन वर्ष तक न जोती जाये;

घ. बंजर भूमि, जो पांच या अधिक



मुगलकालीन जनजीवन की एक झांकी—एक मुगल चित्र की ओके द्वारा अनुकृति

लगती थी, अतः खेत के अनुसार उनकी उपज का चौथाई, पांचवां, छठा या सातवां हिस्सा भूमिकर के रूप में लिया जाता था।

निर्धन किसानों को तकावी दी जाती थी। जो अधिकारी ईमानदारी से कार्य करते हुए खेती का विस्तार करते थे, उन्हें पदोन्नति दी जाती थी। किसानों से मालगुजारी वसूल करने, उसके विस्तृत विवरण रखने तथा उसका संक्षिप्त मासिक विवरण केंद्रीय कार्यालय को भेजने के नियम बनाये गये थे।

टोडरमल के वित्तीय सुधार भी महत्त्वपूर्ण थे। १५८२ में मुद्रा-विषयक कुछ नयी व्यवथाएं की

वर्षों तक न जोती-बोयी जाये।

समूची कृषियोग्य भूमि की पैमाइश करके उसकी उपज के अनुसार उस पर कर लगाया जाता था। कम उपजाऊ भूमि से कम कर लिया जाता था। मालगुजारी इस प्रकार निश्चित की जाती थी :

बरसाती जमीन के गल्ले में आधा काश्तकार का होता था तथा आधी उपज राजकीय कर के रूप में वसूल की जाती थी।

अन्य जमीनों की औसत उपज में से खर्च निकालकर उपज का तृतीयांश कर के रूप में लिया जाता था।

ईख आदि की फसलें उत्कृष्ट कोटि की समझी जाती थीं। चूंकि उनमें देखभाल, पानी, कटाई की मेहनत अनाज से ज्यादा

गयीं। उस समय प्रचलित तांबे के सिक्के का नाम 'दाम' था। चांदी के एक रुपये में ४० दाम निश्चित किये गये। परगनों का लगान दामों में निश्चित किया गया। एक करोड़ दाम का लगान देनेवाले प्रदेश पर 'करोड़ी' नामक राजस्व कर्मचारी नियत किये गये। १० रुपये या ४०० दाम का सोने का सिक्का, या अशर्फी उस समय 'लाल जलाली' कही जाती थी।

सरकारी कर्मचारियों के वेतनों की नयी दरें दामों में निश्चित की गयीं। अमीन को प्रतिदिन चार दाम, मुंशी को दो दाम तथा नौकरों को एक दाम दिया जाने लगा। पूरे दिन पैमाइश करनेवालों की दैनिक मजदूरी २४ दाम थी।

टोडरमल के प्रशासकीय सुधारों म सर्वाधिक महत्वपूर्ण घोड़ों को दागने की प्रथा थी। उस समय अकबर के दरबार में मनसबदारी की प्रथा थी। दहबाशी से पंजहजारी तक के विभिन्न सरकारी पद थे। इन पदों पर नियत व्यक्तियों द्वारा रखे जाने वाले सैनिकों की संख्या के आधार पर ये नाम रखे गये थे। उदाहरणार्थ, दहबाशी को दस सैनिक रखने पड़ते थे। पंजहजारी को पांच हजार सैनिक रखने पड़ते थे और साथ ही इस सेना के लिए आवश्यक ३३७ घोड़े, १०० हाथी, माल ढोने के लिए ८० ऊंट, २० खच्चर, १६० बैलगाड़ियां भी रखनी पड़ती थीं।

पंजहजारी मनसबदार को इस सेना का खर्च चलाने के लिए राज्य से २८–३० हजार रुपया मासिक वेतन मिलता था। यह वेतन इसलिए दिया जाता था कि इससे मनसबदार अपने पद के लिए निर्धारित सेना सदा तैयार रखे और बादशाह जब चाहे, उसकी फौजों को लड़ाई में बुला सके। किंतु अधिकांश मनसबदार इसमें बड़ी बेईमानी और धोखाधड़ी करते थे। वे नाममात्र के सैनिक और घोड़े दिखावे के लिए अपने पास रखते थे और वेतन का सारा पैसा बचाकर अपनी जेब में डाल लेते थे। जब मनसबदारों से सैनिकों की मांग की जाती थी, तो वे दौड़-धूप करके किराये पर आदमी और घोड़े भरती करके अपनी पलटन पूरी करते थे। कुछ घोड़ों को पहले एक जगह दिखलाया जाता था, फिर उन्हीं को दूसरी जगह दूसरी बार दिखाया जाता था।

यह धोखाधड़ी राज्य के लिए बहुत घातक थी। अत: टोडरमल ने इसे रोकने के लिए यह नियम बनाया कि घोड़ों को दागकर उन पर विशेष निशान अंकित कर दिये जायें और उसे सरकारी कागजों में लिख दिया जाये, ताकि एक बार दिखाया गया घोड़ा दूसरी बार न दिखाया जा सके।

अब तक की कहानी टोडरमल की लौकिक सफलता से संबंधित थी। लेकिन टोडरमल केवल 'सफल' व्यक्ति नहीं था; वह श्रेष्ठ व्यक्ति भी था, अपने सिद्धांत का पक्का। जब अकबर ने 'दीने-इलाही' चलाया, तो अन्य अनेक चापलूस दरबारियों के व्यवहार के विपरीत, टोडरमल ने उस धर्म में दीक्षित होने से साफ इन्कार कर दिया। अकबर का अत्यंत विश्वस्त स्वामिभक्त सेवक होते हुए भी वह हिन्दू धर्म पर गहरी आस्था रखता था और धार्मिक कर्मकांड का पूरा पालन करता था। युद्ध तथा यात्रा में भी उसके दैनिक पूजा-पाठ में कोई व्यतिक्रम नहीं होता था और वह बिना पूजा किये अन्न-जल ग्रहण नहीं करता था।

एक छोटी-सी घटना उसकी नैष्ठिकता पर प्रकाश डालती है। टोडरमल अक्टूबर १५७७ में बादशाह के साथ अजमेर से पंजाब आ रहा था। ६ नवंबर को शाही लश्कर जयपुर के निकट आमेर पहुंचा। यहां शाही खेमों को एक मंजिल से दूसरी मंजिल में हटाते समय टोडरमल की देवमूर्तियों वाला थैला खो गया। संभवत: किसी व्यक्ति ने

मूल्यवान समझकर उसे चुरा लिया होगा। इस कारण पूजा-पाठ बंद हो गया। दैव-निष्ठ टोडरमल इतना उद्विग्न हुआ कि उसने खाना-पीना छोड़ दिया। दरबार में इसकी चर्चा फैल गयी।

अकबर को उसके निराहार रहने से बड़ी चिंता हुई। उसने राजा टोडरमल को समझाया—"ठाकुरजी चोरी चले गये हैं; लेकिन असली अन्नदाता ईश्वर तो मौजूद है, वह तो चोरी नहीं गया। स्नान करके उसका ध्यान कीजिये और खाना खाइये। खुदकुशी करना पाप है।" टोडरमल ने अकबर की युक्तियुक्त बात मान ली और पूजा करके अन्न-जल ग्रहण किया।

परंतु धर्मनिष्ठ होते हुए भी टोडरमल व्यावहारिक और समय की मांग को समझनेवाला सच्चा राजनेता था। उस समय तक हिन्दू फारसी नहीं पढ़ते थे। टोडरमल ने समझ लिया कि मुस्लिम शासन की राजभाषा को सीखे विना हिन्दुओं के लिए साम्राज्य के ऊंचे पद पाना संभव नहीं है। इसलिए उसने फारसी पढ़ी और उसमें प्रवीणता पायी। उसकी देखादेखी अन्य हिन्दू भी इस भाषा को पढ़कर ऊंचे पद पाने लगे।

वेश-भूषा के विषय में भी वह प्रगतिशील था। उसे बादशाह के साथ रणक्षेत्र में तुर्की घोड़ों पर दौड़ना पड़ता था; इसके लिए धोती उसे असुविधाजनक जान पड़ी। अतः उसने धोती-मिर्जई को तिलांजलि दी, और पाजामा व चोगा पहनकर तुर्की योद्धाओं का रूप धारण किया।

परंतु ये परिवर्तन उसके बाह्य भौतिक जीवन तक ही सीमित थे। वृद्धावस्था में उसमें यह भावना प्रबल हुई कि अकबर की सेवा से अवकाश ग्रहण करके जीवन के अंतिम वर्ष हरिद्वार में गंगा-तट पर भगवान के भजन में बिताऊं। अक्टूबर १५८९ में जब अकबर काबुल में था, तो उसे टोडरमल का पत्र मिला कि मैं अपनी शारीरिक निर्बलता और बुढ़ापे के कारण अवकाश लेकर हरिद्वार जाना चाहता हूं। अकबर ने अपने महामात्य को अवकाश ग्रहण करने की अनुमति अनिच्छापूर्वक दे दी और टोडरमल हरिद्वार की ओर चल भी पड़ा।

लेकिन इसी बीच अकबर का विचार बदल गया और दूसरे पत्र में टोडरमल को लिखा—"ईश्वर की कोई उपासना मनुष्यों की सेवा करने के बराबर नहीं है; अतः आपके लिए उत्तम यही होगा कि आप यह विचार त्यागकर, अपनी अंतिम सांस तक मनुष्यों की सेवा में लगे रहें।"

टोडरमल यह आदेश पाकर हरिद्वार के मार्ग से वापस लौट आया और राजकीय कार्य में लग गया। किंतु इस समय तक वह बहुत निर्बल हो गया था। ८ नवंबर १५८९ को लाहौर में उसका देहांत हो गया।

अबुल फजल ने टोडरमल की प्रशंसा करते हुए लिखा है—"वह इस युग में ईमानदारी, खरेपन, साहस, सब बातों के ज्ञान तथा भारत के शासन में अद्वितीय था।" इतिहास ने इस मूल्यांकन पर स्वीकृति की मोहर लगा दी है।



ये सर्द हवाएं

चंदन

एकदम साफ आसमान, मंद-मंद बहती सर्द-सुहावनी हवा, माहौल में मस्ती, सुरूर का आलम—सर्दियों का आगमन जो हो रहा है ! तन-मन का रोआं-रोआं मस्ती में महक उठता है; मगर मौसम है कि बेखबर लोगों से गुस्ताखी करने से बाज नहीं आता। घर-घर में खांसी, जुकाम और सर्दी का जोर । जिसे देखो, छींके जा रहा है, या रूमाल से बेचारी नाक की खबर लिये जा रहा है । किसी का गला रुका पड़ा है, तो कोई सारे काम-काज को धता बता कंबल में दबा पड़ा है । बहुत ही कम खुश-किस्मत होते हैं, जो मौसम की मार से महफूज रह पाते हों । आखिर क्यों ?

क्योंकि सर्द हवाओं में मस्ती होती है न ! जब आदमी का मन मौजों के लिए मचल उठता है, तो आदमी के शरीर में कुछ वाइरस ऐसे भी होते हैं, जिनमें सक्रियता उछालें मारने लगती है और यही वजह है कि सर्दी का संक्रमण (इन्फेक्शन) मामूली-सी बात बन जाता है । खसरा (मीजिल्स), इन्फ्लुएंजा और पैरा-इन्फ्लुएंजा आदि अनेक ऐसी बीमारियां हैं, जिनकी जड़ में इन्हीं वाइरसों की सक्रियता कारण रूप में रहती है । वयस्कों को प्रभावित करनेवाले अधिकांश वाइरस, राइनो वाइरस-कुल के सदस्य होते हैं ।

वाइरसों की बाबत आदमी की जानकारी अभी नयी ही है और आये दिन इसमें इजाफा होता जा रहा है । किस्म-किस्म के वाइरसों और उनके लाक्षणिक गुण-धर्मों के अध्ययन-शोध में सारा वाइरस-विज्ञान (वाइरालाजी) पूरी तरह से जुटा हुआ है । यही वजह है कि वाइरसों के नामकरण और वर्गीकरण प्रायः बदलते देखे जाते हैं। वाइरस-वर्गीकरण के विज्ञों को पहले से किये गये वर्गीकरणों के प्रति काफी जागरूक रहना पड़ता है, और जैसे ही आवश्यकता हो, उन्हें फिर से बदल देने के लिए तैयार रहना पड़ता है ।

राइनो वाइरस नवीनतम नाम है। इससे पूर्व जो नाम प्रचलित थे, वे क्रमशः यों हैं-कोरीजा वाइरस । रेस्पिरो वाइरस; मूरी वाइरस; सैलिसबरी वाइरस तथा इको-लाइक वाइरस। नवीनतम नामकरण १९६३ में बैक्टीरिया और वाइरसों के नामकरण-संबंधी अंतर्राष्ट्रीय समिति द्वारा किया गया था । सर्दी और इसी प्रकार की अन्य

बीमारियों में फंसे मरीजों से प्राप्त किये गये वाइरसों को दो वर्गों में रखा गया। आंत्र क्षेत्र से प्राप्त वाइरसों को एंटेरो वाइरस और नासिका क्षेत्र से प्राप्त वाइरसों को राइनो वाइरस कहा जाने लगा।

सर्दी लगना कोई नया रोग नहीं है। न जाने किस जमाने से आदमी इस रोग का शिकार होता रहा है। आम आदमी इसके लक्षणों से भली भांति परिचित हैं और उपचार में माहिर हैं। मगर वाइरसों के संदर्भ में इसपर जो प्रकाश पड़ा है, वह बहुत पुराना नहीं है। पहले-पहल १९१४ में क्रूसे का ध्यान इस ओर गया। उसने बताया है कि सर्दी से पीड़ित व्यक्ति के नासिका-स्राव को यदि फिल्टर करके बैक्टीरिया से पूरी तरह मुक्त कर दिया जाये, तो भी उसमें दूसरे स्वस्थ व्यक्ति को प्रभावित करने की क्षमता बनी रहती है। जाहिर है, संक्रमण का कारण चाहे जो भी हो, बैक्टीरिया तो नहीं है।

फिर डोकेज ने १९३१ से लेकर १९३३ तक विस्तृत अध्ययन किया। उसे सामान्य जुकाम-स्रावों से मनुष्य को ही नहीं, चैंपेनीज तक को संक्रमित करने में सफलता मिली। उस समय तक राइनो वाइरसों का पता नहीं चल सका था, मगर लगता है कि डोकेज के परीक्षण अनजाने में राइनो वाइरसों से ही संबंधित थे। इसके बाद १९१६ में ब्रिटिश मेडिकल रिसर्च कौंसिल के तत्त्वावधान में सैलिसबरी (इंग्लैंड) के 'जुकाम अनुसंधान केंद्र' के शोधकर्ताओं के एक दल ने खोज-शुरू की। वाइरसों के गुणों और उनके



सर्दी के समय......बंसीलाल वर्मा

संचरण के संबंध में अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आये। मगर पहली बार १९६० में इस वाइरस का संवर्धन (कल्टिवेशन) प्रयोगशाला में संभव हुआ। और इसका श्रेय प्राप्त है—डा० डी० टायरैल, सर सी० एंड्रूज तथा डा० एम० वायनो को।

राइनो वाइरसों को यदि सामान्य वायुमंडलीय तापमान पर सुखाया जाये, तो उनकी सक्रियता समाप्त हो जाती है; परंतु ४ डिग्री सेंटिग्रेड पर उन्हें कई हफ्तों तक जीवित रखा जा सकता है। रासायनिक संरचना की दृष्टि से उनका मुख्य घटक राइबोन्यूक्लिइक अम्ल है। अब तक बासठ विभिन्न प्रकार के राइनो वाइरसों का पता चल चुका है, जिनमें से ५३ मानव-ऊतकों में और शेष नौ बंदरों के ऊतकों में वृद्धि पाते हैं।

जाहिर है, सर्दी, जुकाम, खांसी का असर केवल मनुष्यों और बंदरों पर ही हो पाता है। मनुष्य पर इनका प्रभाव तुलनात्मक रूप से शीघ्र और आसानी से होता है।

टीके लगाकर जो प्रयोग किये गये, उनसे एक बात बिलकुल स्पष्ट है और वह यह कि राइनो वाइरस मनुष्य के शरीर में नाक के रास्ते ही प्रवेश पाते हैं। नासा ग्रसनी, गले, मुंह, अथवा मांसपेशियों के माध्यम से भी राइनो वाइरस, मानव-शरीर में पहुंचाये गये, मगर शीत का प्रभाव या तो पाया ही नहीं गया और पाया भी गया, तो बहुत कम रहा।

एक अनुमान के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को जाड़े और वसंत के मौसम में औसतन दो से चार बार तक सर्दी का शिकार होना पड़ता है। मामूली अवस्था में यह रोग दो से पांच दिन तक और कभी छः-सात दिन तक आदमी को परेशान रखता है। शीत का प्रभाव हलका, सामान्य अथवा सख्त हो सकता है। हलके प्रभाव की हालत में प्रायः गले में जलन का होना, नाक का रुक जाना या भारी-सा हो जाना, छींकों का आना तथा सिर में दर्द का रहना—मुख्य लक्षण हैं।

सामान्य सर्दी में कुछ घबराहट, सिर-दर्द और कंपकंपी-सी रहना आम बात है। मगर सर्दी का आक्रमण सख्त हो, तो भूख कम हो जाती है, या बिलकुल मर जाती है, बुखार आ जाता है और मरीज की बिस्तर छोड़ने की हिम्मत तक नहीं हो पाती।

सर्दी आदमी तक दो प्रकार से पहुंच सकती है। एक तो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक संक्रमण का सीधा संचरण, यानी हवा में उपस्थित बूंदों द्वारा। दूसरे, मौसम के परिवर्तन के कारण। वयस्कों की अपेक्षा बच्चे इस रोग को शीघ्रता से फैलाते हैं। स्कूली बच्चों में यह रोग वयस्कों की तुलना में लगभग बीस गुना अधिक पाया जाता है।

मौसम में परिवर्तन के फलस्वरूप दबाव बढ़ जाता है और कहा जाता है कि ऐसी स्थिति में कुछ गुप्त वाइरस अधिक सक्रिय हो उठते हैं। यों तो प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में रोग के आक्रमण को रोकने और उसका मुका-बला करने की क्षमता स्वभावतः रहती ही है; परंतु अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सर्दी के विषय में प्रतिवाइ-रसी रोग-सहिष्णुता अधिक नहीं होती।

हां, यह बात तो ठीक है कि पिछली दशाब्दि में राइनो वाइरसों के संबंध में हमारी जानकारी काफी बढ़ी है। मगर इन वाइरसों के संवर्धन को रोकने का कोई समुचित उपाय अभी तक आदमी के हाथ नहीं लग सका है। यह कहना कि 'एंटि-हिस्टैमीन' दवाओं के द्वारा सर्दी को रोका जा सकता है, परीक्षणों से सही सिद्ध नहीं हो सका है।

सर्दी का आक्रमण होने पर आराम करना उपचार की दृष्टि से लाभकारी माना गया है। मेंथाल और टिंक्चर बेंजाइन को गर्म पानी में डालकर भाप को सांस के साथ अंदर ले जाने से भी कुछ राहत मिल सकती है।

अब तक वैज्ञानिक अनेक बीमारियों का जड़ से सफाया करने में सफल हो चुके हैं, मगर सर्दी के सामने अभी भी वे परास्त ही रहे हैं। हर वर्ष करोड़ों मानव-घंटे (मैन-आवर) इस बीमारी के कारण नष्ट होते हैं। काश, इसे रोका जा सकता!



षष्टिपूर्ति

जाबालि

आयु के साठ वर्ष पूरे हो गये ।
बचपन के साथी जवानी में खो गये ।
जवानी के साथी कुछ आगे बढ़ गये—
कुछ पिछड़ गये ।
और कुछ सदा के लिए गहरी नींद सो गये ।
आज आयु के साठ वर्ष पूरे हो गये

० ० ०

एक दिन शाम की ढलती वेला में—
अकेला, उदास, यही सोच रहा था;
कितने बदल गये दिन, कितनी बदल गयी रातें
किससे कहूं मन की, सुख-दुःख की बातें
कोई साथी नहीं मन का, बचपन का
कितना सूनापन है,
कैसे कटेगा शेष मार्ग, लंबे जीवन का

तभी सहसा पलकों की कोर पर
किसी झिलमिलाती रोशनी ने पुकारा
देखा, तो पत्तों की ओट से
झांक रहा था एक नन्हा-सा सितारा
बोला, मित्र ! भूल गये तुम
देखो, आंख उठाओ वही हैं हम, वही तुम
वही आसमान, वही रातें वही तनहाई
आओ करें दिल की बातें
और, पल-भर में तो उतर आयी
तारों की टोली
आ गयी डोली चांद की भी
बचपन के सपनों में डूब गया मन
और फिर आ गया बचपन

० ० ०

आंख मूंदे रात-भर खेला तारों के साथ
फिर आ गयी उषा,
हाथ में लिये सिंदूर लाल
बोली आओ खेलें होली
भूल गये तुम, वही हैं हम, वही तो तुम
वही आसमान, वही धरती
आओ करें बातें दिल की
तभी धीमी-सी अंदर से आयी आवाज
वर्ष क्यों गिनता है
तू तो है वर्षों की सीमा से मुक्त
जो न वर्षों से ढलता है
न मृत्यु से मरता है
तेरा साथी बनकर रहता हूं ।
मैं सदा तेरे साथ आनंद से भरपूर
युग-युग हो गये
वर्ष क्यों गिनता है
तू तो है वर्षों की सीमा से मुक्त।

बचपन
मीठा कम, तीखा अधिक

जार्ज बर्नार्ड शा

मुझे ऐसा कोई समय याद नहीं आता, जब कोई छपा हुआ पृष्ठ मेरी समझ में न आया हो। सो मैं यह मान सकता हूं कि मैं जन्म से ही शिक्षित व्यक्ति था।

मेरा पालन-पोषण तो अराजकतावादी ढंग से हुआ था, और इसके पहले कि मैं सोचता-सीखता, मैं 'स्वतंत्र विचारक' बन गया था।

मेरे लिए परिवार कोई पाठशाला नहीं था, जिसके प्रति मन में आदर पैदा हो; बल्कि वह तो एक खदान था, जिसमें से मैं बड़ी दिलचस्प किस्म की चीजें खोद-कर निकाल सकता था। मुझे कल्पना द्वारा किसी चीज को जन्म देने की जरूरत नहीं पड़ी थी।

मेरे माता-पिता में कोई अमानुषिक प्रवृत्ति नहीं थी। यद्यपि परिवार में रहते हुए मेरे साथ कोई बुरा व्यवहार नहीं हुआ, फिर भी मेरे प्रति एक लापरवाही का रवैया जरूर था, जिसके फलस्वरूप मुझमें भयंकर आत्मनिर्भरता पैदा हुई। आज भी मुझमें किसी हद तक प्यार और स्निग्धता का अभाव है।

अगर मेरे माता-पिता इतने गरीब होते कि वे घर में नौकर न रख सकते, तो मेरा पालन-पोषण अच्छे ढंग से हुआ होता। अगर मेरा जन्म किसी किसान के घर में हुआ होता, तो सचमुच आज मैं आवारा व्यक्ति होता।

मेरी मां में हास्य-विनोद का अभाव था, और उसने जीवन में कभी कोई ऐसी बात नहीं कही, जिसमें हास्य का पुट हो। सो मुझमें जो हास्य-विनोद है, वह मुझे मां से विरासत में मिला हुआ नहीं है।

मेरी मां ने मेरा पेट भरने के लिए काम किया और मुझे कभी यह उपदेश नहीं दिया कि मुझे उसकी खातिर काम करना चाहिये।



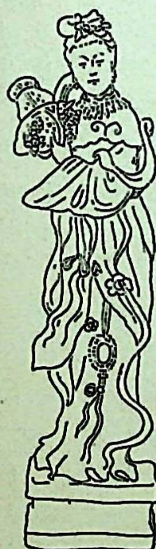
मैं उसके सामने सिर झुकाता हूं।

बचपन में जब मैं अपने से बड़ों को 'क्या', 'कहां' और 'क्यों' आदि सवालों से हर समय तंग किया करता था, तो हमारे यहां की नौकरानियां कहा करती थीं—"कोई सवाल न पूछो, तुम्हें कोई झूठी बात नहीं सुननी पड़ेगी।" उनका यह कहना सही तो था, किंतु ज्ञानवर्धक नहीं था।

सबसे ज्यादा मेरे सवालों के शिकार मेरे पिताजी हुआ करते थे, जो कि मेरी नजर में सर्वज्ञानी और सर्वदर्शी थे और कभी गलती नहीं कर सकते थे। और जो बात मुझे आज भी हैरान करती है, वह यह कि मेरे सवालों के जवाब में वे मुझे ऐसे विषयों की जानकारी दिया करते थे, जिनके बारे में वे खुद ही मेरी तरह अज्ञानी थे।

बच्चा और उसके माता-पिता एक-दूसरे के लिए अजनबी होते हैं; क्योंकि उनकी उम्रों में बहुत बड़ा फर्क होता है। गेटे की आत्मकथा पढ़िये, आप पायेंगे कि वह यद्यपि अपने माता-पिता के यहां खुश था, देखने-सुनने और समझने की उसमें अलौकिक शक्ति थी, फिर भी वह अन्य लोगों की अपेक्षा, जिनका कि उसने आत्मकथा में जिक्र किया है, अपने माता-पिता को बहुत कम जानता था।

मैं खुद अपनी मां के काफी निकट था। बयालीस साल की उम्र तक मैं उसके संग-संग रहा और इस अरसे में हमारे बीच किसी किस्म की भी अनबन नहीं हुई। फिर भी उसकी मृत्यु पर जब मैं उसके साथ अपने संबंधों के बारे में सोचने लगा, तो पाया कि मैं उसके बारे में बहुत कम जानता था। कोई अपरिचित व्यक्ति हमें बड़ा दिलचस्प लगता है, किसी पहेली की तरह; लेकिन मां झाड़ू या आसमान में रहनेवाले सूरज की तरह होती है। बच्चा चाहे झाड़ू से मार खाये, या सूरज से गर्मी और रोशनी हासिल करे, वह उसे एक हकीकत के रूप में स्वीकार कर लेता है। वह यह नहीं सोचता कि वह कभी जवान रही होगी, उसमें जज्बे होंगे, वह फूल-फूल रही होगी या दुःख झेल रही होगी।



भूषणप्रिया
[प्रस्तर मूर्ति]

पंद्रह साल की उम्र में मुझमें किसी किस्म का कोई बचपना बाकी नहीं रह गया था।

हम बच्चे (मेरे अलावा मेरी सिर्फ दो बड़ी बहनें थीं) नौकरों की देखभाल में छोड़ दिये जाते थे, जो कि सिवा विलियम्स के सभी ऐसे नालायक थे कि उनकी देखभाल में बिल्लियों को छोड़ना भी खतरनाक था। रसोई में बैठाकर मुझे ऐसा खाना खिलाया जाता, जो मुझे बिलकुल पसंद नहीं था और उसे खाते हुए मैं नाक-भौंह चढ़ाया करता था। मैं शक्कर चुराकर खाया करता था। क्योंकि मैं कभी भूखा नहीं रहता था।

पिताजी अपने बचपन में भूख की विभीषिका को अनुभव कर चुके थे; इसीलिए हम लोगों के समय में वह घर में खाने-पीने की इतनी चीजें भर देते कि हम बच्चे जो भी चाहते, पा सकते थे।

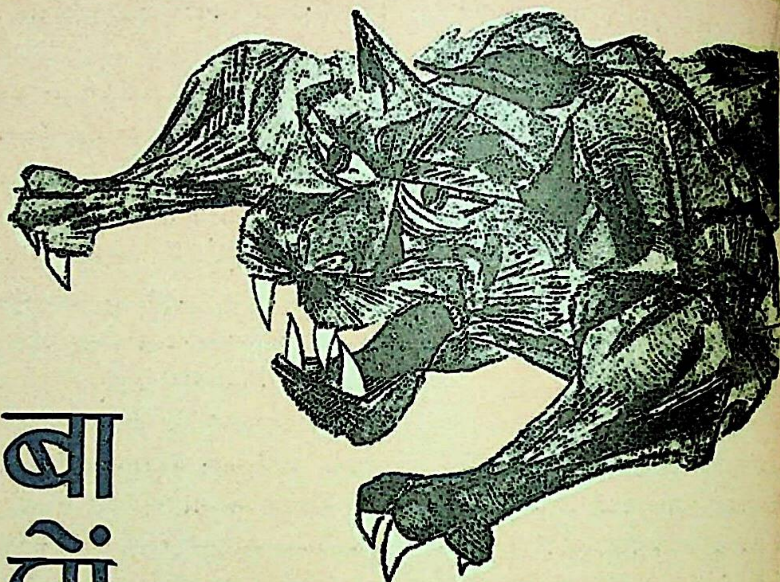
एक बार एक नौकरानी मुझे सैर कराने के लिए एक गरीब बस्ती में ले गयी, जहां उसके कुछ परिचित व्यक्ति रहते थे। वहां वह एक दोस्त के संग एक शराबखाने में गयी, जहां मुझे शरबत पिलाया गया। मुझे उसका शराबखाने में जाना अच्छा नहीं लगा; क्योंकि मेरे पिताजी ने मुझे शराब की बुराइयों के बारे में बड़े प्रभावशाली ढंग से बताया था। ......तब मेरे मन में गरीबी के प्रति ऐसी नफरत पैदा हुई, जिसने मुझे जिंदगी-भर गरीबों की खातिर लड़ने के लिए प्रेरित किया।

जब मैं छोटा-सा बुजदिल-सा लड़का था, तो मैं अपने को एक अजेय योद्धा के रूप में लोगों के सामने पेश किया करता था। एक बार जब मैं अपने माता-पिता के साथ नाटक देखने गया, तो मुझे जितना नाटक अच्छा लगा, उतनी ही दिलचस्प लगीं एक्टरों की तलवारें। फिर मैं सभी लड़कों की तरह सोचने लगा कि बड़ा होने और बहुत-से पैसे पाने पर क्या खरीदूंगा, तो जवाब मिला कि सबसे पहले रिवाल्वर खरीदूंगा। सन १९१४ में जब मैं उनसठ साल का था, मुझे यह देखकर हैरानी हुई कि तब भी हथियारों और लड़ाई के प्रति हल्की-सी दिलचस्पी मुझमें कायम थी।

अपने बचपन में मुझे अमानुषिक और बेतुकी रस्मों का शिकार होना पड़ा था। प्रत्येक इतवार की सुबह को मुझे गिरजे में जाने के लिए बाधित होना पड़ता। अंधेरे, घुटन-भरे गिरजे में बेहतरीन कपड़े पहनकर, मन मारे बैठे रहना, और फिर उस अस्वाभाविक नीरवता में अंगों का दुखने लगना और मन में कई किस्म के विचार और कल्पनाओं का उठना, और साथ ही गुनाह का एहसास पैदा होना—यह सब किसी भी कोमलहृदय लड़के पर प्रतिकूल असर डाल सकता है। बड़ा होने पर जब वह अपनी मर्जी का मालिक होगा, तो अपनी आजादी का पहला फायदा यह उठायेगा कि गिरजे में जाना बंद कर देगा। पिछले पचीस सालों में मैं गिरजे में सात बार से ज्यादा नहीं गया हूं, और न मैं भविष्य में गिरजे में जाकर अपनी उदास यादों और आक्रोश-भरी भावनाओं को फिर से जगाना चाहता हूं।

मैंने कभी संघर्ष नहीं किया। मैं संघर्ष करने में असमर्थ था और आज भी असमर्थ हूं। मेरी यह असमर्थता एक तरह की कायरता है। मैं लिख सकता था, और रोज लिखा करता था। मैं वक्ता बन सकता था और इस प्रकार अपने विचारों का प्रचार कर सकता था। मगर हालत यह थी कि अपने परिवार की रोजाना रोटी के लिए भी संघर्ष करना मेरे लिए संभव नहीं था। इस सिलसिले में मेरा आलस्य लाजवाब था। मैं लेखक या वक्ता बनकर ही सब कुछ करने का सामर्थ्य पाना चाहता था।





बाघों का सामना ज्य

तहावर अली खां

शिकार प्रकृति की दो संतानों, मानव और पशु के स्वभावों की टक्कर है, उनके मनोबल, बुद्धिबल और भाग्यबल का आपसी मुकाबला है, जिसमें आवश्यक नहीं कि जीत मानव की हो। तहावर अली खां पशु-मनोविज्ञान के कुशल अध्येता एवं राइफल और कलम दोनों के धनी हैं। 'मैन ईटर्स आफ सुंदरबन्स' में उन्होंने पाकिस्तानी सुंदरबन के बाघों का भीषण-रमणीय चित्र प्रस्तुत किया है, जिसकी पहली किस्त यहां दी जा रही है।

मैन ईटर्स आफ कुमाऊं' के अमर लेखक जिम कार्बेट जंगलों और जंगली जान-वरों के बारे में जितना जानते थे, उतना शायद ही कोई और आदमी जानता होगा। वही जिम कार्बेट ने एक बार कहा था कि बाघ के शिकार के प्रचलित तरीकों को सुंदर-वन में काम में लाने का निश्चित अर्थ है, बेकार ही जान का खतरा मोल लेना। निश्चय ही उनका इशारा सुंदरवन की विकट प्रकृति और उसमें छिपे संकटों की ओर था।

कर्करेखा के ठीक नीचे सुंदरवन का पूर्वार्ध पूर्वी पाकिस्तान में पड़ता है—लगभग ७० मील लंबा और उतना ही चौड़ा। गंगा के डेल्टे के नीचे पेडू की तरह इसे सटा हुआ आप देख सकते हैं।

इस सुंदरवन की उत्पत्ति विशाल गंगा और जमुना नदियों के गाद-भरे पानी और बंगाल की खाड़ी के ज्वार के समय के खारे जल-प्रवाह के समागम से सागर के गर्भ में हुई। भीषण तूफानों, भूचालों और उग्र मानसूनी बारिश के बीच सदियों तक सागर और सरिता की यह विकट समागम-क्रीड़ा चलती रही। गाद की तह पर तह जमती गई, सागर का पेट भारी होता गया और अंत में आज से कोई दो हजार साल पहले सुंदरवन का आविर्भाव हुआ।

अशांति व हलचल के बीच जनमा और विनाशकारी तत्त्वों की गोद में पला सुंदर-वन भयानक व स्वभाव से दगाबाज है; फिर भी प्रकृति ने इस पर अपना प्यार उंड़ेल दिया है, अपनी खूबसूरती इस पर निसार कर दी है।

सुंदरवन के लगभग १०० मील उत्तर गंगा ब्रह्मपुत्र से मिलती है, जो उत्तर-पूर्व से शहजादियों-सी चाल से आती है और दक्षिण की ओर मुड़ने पर जमुना बन जाती है। मानसून के दिनों में आकाश जब अपने बंद दरवाजे खोल देता है और इन नदियों में आकाश के खुले दरवाजों से जल की बड़ी-बड़ी बूंदें गिरने लगती हैं, तो इनका पेट बुरी तरह फूल उठता है। ये नदियां आकाश की अमानत अपनी गोद में संभाल नहीं पातीं। पानी की उमड़ती-घुमड़ती धाराएं क्रोध के साथ किनारे तोड़कर मीलों तक वह निक-लती हैं और सारा इलाका विशाल समुद्र नजर आने लगता है, जिस पर जगह-जगह पेड़ों के धब्बे पड़े रहते हैं। सुंदरवन में सांप की तरह बल खा-खाकर भटकनेवाली राय-मंगल, पासार, सिप्सा और मालंच आदि छोटी-छोटी नदियां तभी अपना पेट पूरी तरह भर पाती हैं।

निरंतर वर्षा से नदियों का जल जब उमड़कर खाड़ी से बाहर आता है, तो छोटी-छोटी नदियों से गले मिलने के लिए खाल (या सोतों) के रूप में फूट पड़ता है, जो जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाता है, शाखा-प्रशा-खाओं में बंटता चला जाता है, जब तक वह बिलकुल ही गायब नहीं हो जाता।

इसी कारण सुंदरवन ने विभिन्न आकारों के अनगिनत टापुओं का रूप धारण कर लिया है, जिसके चारों ओर बरसात के दिनों

में जनमे खाल आपको नजर आ जायेंगे। जलस्रोतों का यह टेढ़ा-मेढ़ा जाल किसी पत्ते में पाये जानेवाले रेशों से मिलता-जुलता है और स्वभावत: किसी भी ओर नाक की सीध में कुछ सौ गजों की दूरी से अधिक की यात्रा करना संभव नहीं है।

हर जगह पर आपको एक-न-एक सोता मिल जायेगा, जो आधा मील या उससे भी ज्यादा चौड़ा हो सकता है। बाधित होकर आपको पीछे मुड़कर दूसरी दिशा में आगे बढ़ने का रास्ता खोजना होगा। जलस्रोतों की इस भूलभुलैया में आप अपने आपको फंसा हुआ पायेंगे। और दिशाभ्रम हावी होते ही आपके मन में भय बढ़ता जायेगा। ऊपर से चारों ओर भटकते हुए आदमखोर बाघ! कल्पना कीजिये ऐसी स्थिति की, जब आपको तनिक गुमान भी न हो और कोई आदमखोर आपको अपना निवाला बनाने के लिए घात लगाये बैठा हो।

लेकिन यही जलस्रोत अपने साथ प्राण-दायिनी मिट्टी भी ला-लाकर छोड़ जाते हैं, जो सुंदरवन के पेड़ और झाड़ियों को पोषण-तत्त्व देती है, उनकी हरीतिमा बनाये रखती है।

रायमंगल नदी के पूर्व की ओर का हिस्सा, जो सुंदरवन का पाकिस्तान में पड़नेवाला हिस्सा है, भारत में पड़नेवाले पश्चिमी हिस्से से ज्यादा घना है और कुदरत ने अपनी खूब-सूरती के खजाने का ज्यादा हिस्सा यहीं खाली कर दिया है। लंबे और हरे-भरे पेड़ों की कतार-सी क्षितिज तक चली गयी है—७० फुट लंबे सुंदरीवृक्ष, उनसे कुछ ही कम लंबे गेंगवा और पासुर वृक्ष और इसी तरह सैकड़ों प्रकार के वृक्षों की भरमार है। केवड़े के सघन झाड़ों की भी कमी नहीं और किनारे पर उगनेवाले गोलपट्टा के गुच्छे भी सर्वत्र बिखरे-बिखरे-से नजर आ जायेंगे।

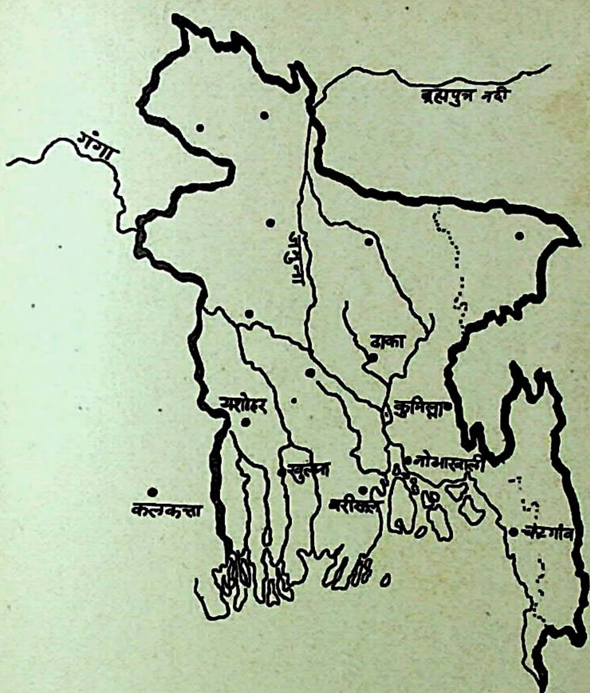
सिप्सा नदी के किनारे प्रसिद्ध शेकतंक मंदिर के ध्वंसावशेष व कुछ अन्य खंडहर इस बात के संकेत देते हैं कि सबसे पहले लगभग छ: सौ वर्ष पूर्व इंसान ने यहां बसने की कोशिश की थी। वे बहादुर थे; पर निश्चय ही उनमें अक्ल का अभाव था कि उन्होंने सुंदरवन की विभीषिकाओं के प्रति उपेक्षा-पूर्ण रवैया अपनाया। इस बात की कल्पना आसानी से की जा सकती है कि मानसून के दिनों में हवा, पानी और जंगल के संयुक्त हमले के बीच उन्होंने कैसे अपने दिन गुजारे होंगे। ऊपर से उन्हें एक और शत्रु का सामना करना पड़ा होगा—सोतों में अपनी लंबी-लंबी नौकाओं में छिपे जलदस्युओं का, जो कलकत्ता, खुलना, चटगांव और रंगून के बीच जलमार्ग से होनेवाले व्यापार पर अपनी भयंकर नजर रखे रहते थे।

जंगल से मोर्चा लेकर जिंदगी बसर करने के इरादे से आये वे बहादुर इंसान धीरे-धीरे नष्ट होते गये और उनके महलों और मंदिरों पर जंगल ने अपना आधिपत्य जमा लिया—चमगादड़ और विषधर सांप वहां बसेरा करने लगे।

सुंदरवन के इलाके में आजकल जो कोई मानव-आकृतियां दिखाई देती हैं, तो सिर्फ

अक्टूबर से मार्च के महीने तक, जबकि प्रकृति शांत रूप धारण किये रहती है। ये सब सुंदरवन के बाहर की बस्तियों से आजीविका के सिलसिले में आनेवाले लोग होते हैं; लेकिन इनसे भी पहले इस इलाके में, जो पुलिस के अधिकार-क्षेत्र से बाहर है, कानून और व्यवस्था के प्रतिनिधि वन विभाग के कर्मचारियों और अफसरों का कारवां आता है।

इनका मुख्य काम होता है, अपने शक्तिशाली मोटर लांचों और किश्तियों से जलस्रोतों में चारों ओर पेट्रोलिंग करना और टिंबर के लिए जंगल को ठेके पर महाजनों को देना। जंगल से प्राप्त किसी भी उत्पादन पर सरकार की रायल्टी वसूल करने में वे ढिलाई नहीं करते और सारे इलाके का संरक्षण कर नक्शों और चार्टों को दुरुस्त बनाये रखते हैं।



खुलना और बरीसाल के नीचे सागर और सरिताओं के संगम-स्थल पर पाकिस्तान की पश्चिमी सीमा तक का कटा-फटा द्वीपमय प्रदेश पाकिस्तानी सुंदरबन है।

फिर टिंबर-कंट्राक्टरों द्वारा नियुक्त किये गये लकड़हारे आते हैं और अपने मजबूत जाल लेकर मछुए आते हैं। ये सबके सब अपनी-अपनी डोंगियों में दल बांधकर आते हैं। अक्टूबर के भयंकर होते ही कुल्हाड़ियों के चलने की और पानी में भारी जाल फेंके जाने की आवाजें सुनने के लिए सुंदरवन के पेड़ों का पत्ता-पत्ता अपने कान खड़े कर लेता है। निर्द्वंद्व विचरनेवाले आदमखोर बाघ सजग और सतर्क हो अपने शिकार पर दांव लगाने के लिए तैयार हो जाते हैं; क्योंकि आदमखोरों के इस इलाके में जिंदगी हर पल अरक्षित है और यहां आनेवाला हर इंसान जानता है कि मौत का पलड़ा

...हां जिंदगी के पलड़े से भारी है।

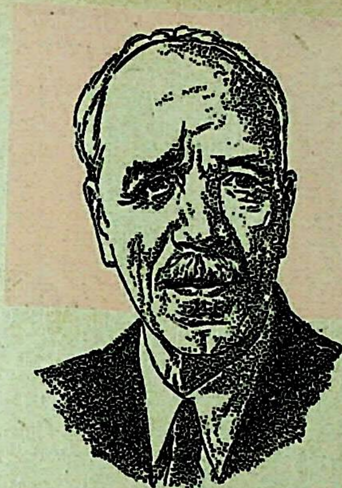
और इसी सुंदरबन के चप्पे-चप्पे से मैं अच्छी तरह परिचित हूं। शिकारी होने के नाते यहां के जर्रे-जर्रे से मुझे बेहद लगाव है, क्योंकि यहां हर क्षण जिंदगी मौत से आंखमिचौनी खेलती है।

आदमखोरों का शिकार करने के स्वप्न मैंने तभी से संजोने शुरू कर दिये थे, जब मैं इतना बड़ा हो गया था कि अपने पिता की बंदूक अपने कंधे से लटकाकर उसका भार वहन कर सकूं। तब मैं अपने बड़े भाई को 'शिकार' बनाकर सोफा के चारों ओर उनका पीछा किया करता था।

मेरे भाई के लिए यह एक वाहियात खेल था, जिसे सिर्फ वह मेरा दिल रखने या मेरे बालसुलभ हठ के कारण खेला करता था; लेकिन मैं पूरी गंभीरता और तन्मयता के साथ यह खेल खेला करता था। मेरे बालमन में असली शिकार की उत्तेजना बनी रहती थी, सारा आनंद मौजूद रहता था।

मेरी नजरों में मेरे पिता बड़े-बड़े शूरवीरों, वीर राजकुमारों और असीम शक्तिशाली पहलवानों से ज्यादा अहमियत रखते थे और वे मेरे सबसे बड़े 'हीरो' थे। उनके अभियानों की रोमांचक कहानियां अपने पुराने नौकर से मैं हर रात तब तक सुनता रहता था, जब तक मुझे नींद नहीं आ जाती थी। मेरे पिता एक नामवर शिकारी थे, जिन्होंने कई आदमखोरों का शिकार उनसे कुछ गजों की दूरी पर ही जमीन पर खड़े होकर किया था।

...१९६१

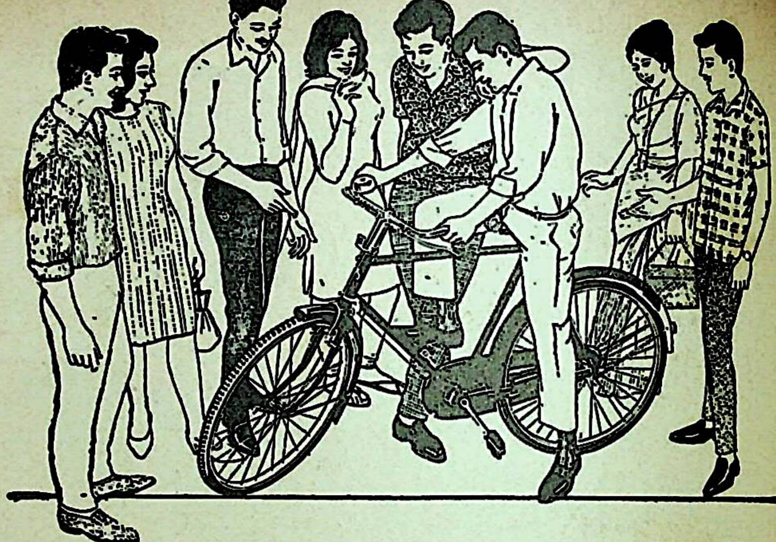


जिम कार्बेट

कुमाऊं के वन-पशुओं को विश्व-साहित्य में अमर कर देनेवाला अप्रतिम शिकारी और शिकार साहित्यस्रष्टा।

जब कभी वे जंगलों से वापस आते थे, सबसे पहले मैं चिल्लाता हुआ दौड़कर उनकी बांहों में पहुंचता—"बाबा! आपने उसे मार दिया न?" उनकी आंखों में स्नेह की चमक आ जाती और वे कोमल स्वर में कहते—"सब्र करो, बेटे! पहले मुझे हाथ-मुंह धोकर चाय तो पी लेने दो।"

लेकिन मुझमें इतना सब्र कहां था! मैं उत्तेजना के मारे उछलता हुआ अपनी ही बात दुहराता—"नहीं बाबा! नहीं! आपको अभी ही बताना होगा। आपने उस बाघ को मार दिया न?" बाबा तब मेरी आंखों में पल-भर देखते, प्यार से मेरे गाल



हर तरह से एक बेहतरीन सायकिल!



नॉर्टन

जरा इसकी बनावट को देखिए। कितनी खूबसूरत, कितनी मज़बूत, कितनी संतुलित — और फिर इसकी तेज़ रफ्तार। कौन सी ऐसी सायकिल है जो रास्तों पर दौड़ती हुई नॉर्टन का मुक़ाबला कर सके। और फिर जरा इसकी कीमत पर ग़ौर तो कीजिए। सारी दुनियां में कहीं भी इतने रुपयों में इतनी लाजवाब चीज़ नहीं मिल सकती।

हिन्द सायकल्स लि. २५०, वरली, बम्बई १८

'हिन्द' सायकिल पर सवार होकर हवा से बातें कीजिए।

SOBHAGYA—HC9A

...पाते और उनके ओठों से वह जादुई ...द निकल पड़ता—"हां!"

मैं खुशी में जोरों से ताली बजाता हुआ ...ने पिता के पैरों से लिपट जाता और ...रे घर में दौड़ लगाने के बाद पड़ोस में ...रों ओर ढिंढोरा पीट आता कि मेरे बाबा ...ने एक और आदमखोर को मौत की गोद में ...हुंचा दिया।

मेरे बाबा जंगल की बारीकियों के माने ...ए जानकार थे। चतुर से चतुर आदम-...ोर का पीछा वे बड़ी सहजता से कर लेते ...े। जंगल में होनेवाली हर हलचल का मत-...ब वे बखूबी समझते थे और वहां पाया ...ानेवाला हर निशान उन्हें अपनी कहानी ...ना देता था। मैं एक आज्ञाकारी शिष्य ...ौर श्रद्धालु भक्त के समान उनके शिकार-...भियानों के रोमांचक वर्णन सुनता था।

जब मैं थोड़ा बड़ा हुआ, तो मैं तरह-तरह ...े हथियारों को और अलग-अलग किस्म ...े कारतूसों को पहचानने लगा। बाबा ने ...ुझे इस बात की इजाजत दे दी कि उनकी ...रह-तरह की बंदूकों की मैं देखभाल करूं ...ौर जब उनसे काम न लिया जा रहा हो, ...ो उन्हें भली भांति साफ कर एहतियात के ...ाथ रखूं।

लेकिन बंदूक चलाना दरअसल मेरे चाचा ...े मुझे सिखाया। उन दिनों में स्कूल में पढ़ता ...ा। वे भी एक कुशल निशानेबाज और ...ाने हुए शिकारी थे और उनके योग्य ...शिक्षण में मैं शीघ्र ही शाटगन और छोटी ...ोर वाली राइफल से निशाना लगाने में माहिर हो गया। शिकार का पीछा करने की कला भी उन्होंने ही मुझे सिखायी।

एडवेंचर की तलाश में, राइफल और कैमरा लेकर मैंने कितनी बार सुंदरवन के जंगलों की सैर की है। सन १९५७-५८ के एक साल के अरसे में ही मैं चार बार इन जंगलों की खाक छान चुका हूं। सैकड़ों मील मैंने नदी के रास्ते लांघकर, या नाव में तय किये हैं—मैं धोखेबाज दलदलों और घने पेड़ों व झाड़ियों के बीच से गुजरा हूं और मौत के साथ खुद दो-दो हाथ करने के अलावा ऐसी भी कई घटनाएं मेरी जानकारी में आयी हैं, जिनमें धरती के किसी और बेटे ने मौत को ललकारा था और मौत ने किसी और की चुनौती स्वीकार की थी!

शिकारी भी आखिर इंसान है, जो विपरीत और अजानी परिस्थितियों में जिंदगी और मौत का खेल खेलता है। हर बार वह सफल हो, यह जरूरी नहीं और उसे अपनी हार बहादुरी के साथ स्वीकार करनी पड़ती है, उस हार से नया सबक सीखना पड़ता है।

पर मौत को ललकारनेवाला, जिंदगी को हर क्षण दांव पर रखनेवाला कोई भी शिकारी जंगल में हमेशा सिर्फ अपने चातुर्य के सहारे अधिक दिनों तक अपनी जिंदगी सुरक्षित नहीं रख सकता। जंगल की जानकारी, बुद्धि-कौशल, शौर्य, सब आवश्यक है; लेकिन फिर भी शिकारी के जीवन में कभी ऐसा मौका भी आता है, जब उसकी सारी सूझ-बूझ रखी रह जाती है, उसका सारा कौशल एवं शौर्य बेकार हो जाता है

'आख़िर यह
इतनी अधिक
सफ़ेदी आती
कहाँ से है?'

सर्वोत्तम सफ़ेदी के लिए—
टिनोपाल

सफ़ेद कपड़ों की धुलाई के बाद आखिरी बार खँगालते समय पानी में थोड़ा-सा टिनोपाल मिला लीजिए। फिर देखिए, आपके शर्ट, साड़ियों, चादरों व तौलियों की सफ़ेदी का निखार! टिनोपाल इस्तेमाल करने का खर्च? प्रति कपड़ा एक पैसे से भी कम! वैज्ञानिक पद्धति से बनाया गया व्हाइट्नर टिनोपाल कपड़ों के लिए बिल्कुल हानिरहित है!

टिनोपाल की अन्य पैकिंग:



'एक बाल्टी के लिए एक पैकेट'

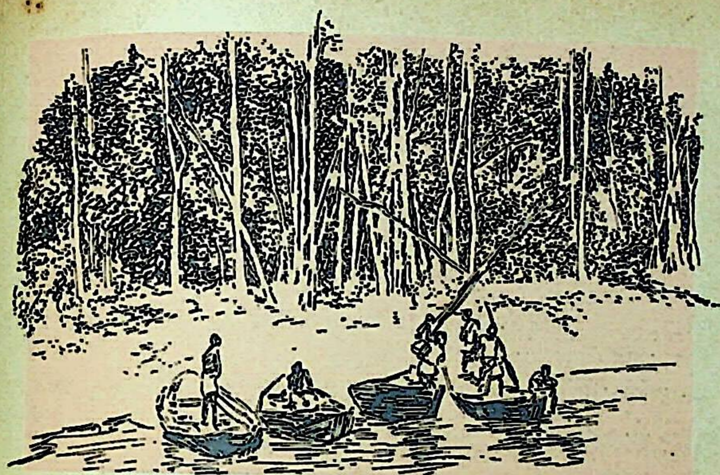


नया 'इकॉनमी पैक'



® टिनोपाल जे. आर. गायगी, एस्. ए. बाल, स्विट्ज़रलैंड का रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क है। सुहृद गायगी लि., पो. ऑ. बॉक्स ९६३ बम्बई-१ बी आर

Shilpi S.G.



सुंदरबन में लकड़ी काटने जाने की तैयारी करते हुए लकड़हारे

और उस असंभव स्थिति में अगर उसके प्राण बच जाते हैं, तो भाग्य से या संयोग से बचते हैं।

यह भाग्य ही होता है, जो हमेशा एक शिकारी के पीछे स्वामिभक्त कुत्ते की तरह लगा रहता है और आगे बढ़कर उसे मौत के भयानक जबड़ों से निकाल लाता है, जिससे वह दूसरी बार फिर शिकार कर सके।

इसीलिए शिकारी एक सीमा तक इस माने में अंधविश्वासी होते हैं कि वे अपनी तकदीर में जबर्दस्त यकीन रखते हैं और अपने-अपने ढंग से अपनी तकदीर को अपने बस में बनाये रखने की कोशिश करते रहते हैं। कुछ शिकारी इसी कारण सप्ताह के किसी खास दिन न बंदूक उठाते हैं, न शिकार करते हैं; कुछ अपनी बांहों पर तावीज बांधते हैं, या जंगल में घूमने के पहले किसी विशेष वृक्ष की एक छोटी-सी टहनी अथवा किसी विशेष पक्षी का पर अपने हैट में खोंस लेते हैं। मेरे एक शिकारी मित्र, जिनकी बहादुरी और अचूक निशाने के कारण मौत जाने कितनी बार शरमाकर भाग गयी है, बंदूक चलाने के पहले उसकी नली पर थूक देते हैं। उनके लिए, जो जंगलों में अपने प्राणों की बाजी लगाते रहते हैं, ये छोटी व औरों को हास्यास्पद लगनेवाली बातें बड़ी अहमियत रखती हैं।

× × ×

मेरी तकदीर भी यकीनन सन १९५७ के फरवरी की उस सुबह मुझ पर विशेष रूप से मेहरबान रही होगी, जब अपनी राइफल उठाने के पहले मैंने अपनी रोज की इबादत पढ़ी। यह तकदीर की मेहरबानी ही थी कि मैं आज सारा वाकया सुनाने के

लिए जिंदा बच गया ।

फारेस्ट रेंजर के साथ सरकारी लांच में मैं सेजरवाली जा रहा था । पुटनी टापू के डेढ़ मील उत्तर में हमने पलांका नदी पार की और सेजरवाली जलस्रोत की ओर लांच का रुख करवा दिया । जलस्रोत के प्रवेश-द्वार के निकट लांच रुकवाकर हम किनारे की ओर बढ़ गये; क्योंकि रेंजर मुझे दिखाना चाहता था कि सुंदरवन के इलाके में काम करनेवाले किस तरह अपने पीने के पानी को, जिसे वे अपने साथ लेकर आये होते हैं, सुरक्षित रखते हैं और किस तरह उन्हें उसकी तकलीफ भुगतनी पड़ती है ।

हमारे साथ कुछ और आदमी भी थे । किनारे पर पचास फुट तक चमकीली स्वच्छ रेतीली जमीन के बाद ऊबड़-खावड़ जमीन का सिलसिला शुरू हो गया था, जिसमें जगह-जगह तीन से छः फुट तक ऊंची घास उगी हुई थी । दो सौ गज की दूरी के बाद जंगल का इलाका था और वहां तक उस ऊबड़-खावड़ जमीन पर जगह-जगह समुद्री हवा ने रेत के छोटे-छोटे टीले बना दिये थे ।

रेंजर हमें उस जगह ले गया, जहां खुरदरी रेतीली जमीन पर कोई ३०-४० गड्ढे बने हुए थे । ये गड्ढे लगभग ४ फुट गहरे थे और इनमें से कुछ गड्ढों की सतह में पानी नजर आ रहा था । एक गड्ढे में उतरकर मैंने उस पानी का स्वाद लिया । वह खारा था; लेकिन फिर भी किसी तरह पीने के काबिल था । इस बीच रेंजर की निगाह रेत पर बने हुए बाघ के पंजों के निशान पर पड़ गयी थी और जब मैं उसके पास पहुंचा, वह उन निशानों की छान-बीन कर रहा था । उसने मुझे बताया कि ये गड्ढे जहां पीने का पानी सुरक्षित रखकर वन के जीवों और इंसानों के प्राणों की रक्षा करते हैं, वहीं उन्हें मौत की गोद में भी धकेल देते हैं; क्योंकि आदमखोर बाघ के लिए इन गढ्ढों के पास उगी घास में छिपा रहना और गड्ढे में उतरकर पानी निकालते समय किसी इंसान को अपना शिकार बना लेना बड़ा आसान होता है ।

तभी सोते की दिशा में लगभग १५० गज की दूरी पर विचरते चितकबरे हिरनों के झुंड को शायद मानुस-गंध मिल गयी और दूसरे ही क्षण वे चौकड़ियां भरते हुए जंगल की ओर दौड़ पड़े । उगी हुई लंबी घासों के उस ओर उनके सींग-भर दिखाई देते थे । उनके शिकार का लोभ मैं संवरण नहीं कर सका और अपनी राइफल संभालता हुआ उनकी ओर दौड़ पड़ा । मैं जंगल से अभी ३०-४० गज दूर ही था कि हिरनों ने अपनी दिशा जरा बदली और जंगल के घने हिस्से की ओर मुड़ गये । बड़ी फुर्ती दिखाने पर भी मैं सिर्फ एक शानदार हिरन को अपना निशाना बना सका, जो प्राण बचाने के लिए की जा रही इस दौड़ में सबसे पीछे था ।

रेंजर अब तक मेरे पास आ गया था । साथ के आदमी गोली खाकर गिरे हिरन को उठा लाने के लिए जंगल की ओर दौड़ पड़े । राइफल की आवाज पर 'कां-कां' करके अपना क्रोध और रोष प्रकट करते

चाँदनी साबुन

का प्रयोग कर समय बचाइये

—कपड़े जल्दी साफ़ होते हैं।



अधिक स्वच्छ
अधिक सफेद
अधिक उजले

बैरार आॅइल इन्डस्ट्रीज़, अकोला

ASP/C-13 HIN

कौए पास के पेड़ों से उड़ गये थे और
री नजर उनमें से कुछ पर पड़ी, जो इन
ड़ों की दिशा में, जिधर से हम आये थे,
भग १५० गज दूर एक स्थान के ऊपर
राते हुए चिल्ला रहे थे। शायद वहां
न में कोई वाघ छुपा था, जिस पर उनकी
र पड़ गयी थी। यह खयाल आते ही मैं
न के पेड़ की ओर दौड़ पड़ा और तुरंत
की ऊपरी शाखाओं पर पहुंच गया,
ससे भली भांति देखकर यह समझ सकूं
मामला क्या है।

कौए जहां मंडरा रहे थे, पल-भर के
वहां लंबी घास से घिरी रेतीली जमीन
अलावा कुछ नजर नहीं आया। दोनों ओर
च में १० फुट की दूरी छोड़कर रेत के
अच्छे-खासे टीले मौजूद थे। कुछ खीज-
र में पेड़ से उतरने ही वाला था कि रेत
उन टीलों के बीच कोई काली-सी चीज
ोरों से झकझोरी जाती नजर आयी। फिर
अचानक थोड़ा ऊपर उठी और हवा
एक वृत्त वनाये हुए गिर पड़ी। तब मेरी
झ में आ गया कि वह एक इंसानी पैर था।
फिर मैंने अपने उस 'शिकार' के चारों
र घूमते हुए एक कद्दावर वाघ को भी
ा। घूमते-घूमते वह अचानक रुक गया
र उसकी पैनी निगाहें उसी पेड़ की ओर
गयीं, जिस पर मैं चढ़ा था। कुछ क्षण
रुककर वह एकदम इधर देखता रहा।
नहीं जानता, उसने मुझे देखा या नहीं।
उसे शक हो गया था; क्योंकि अपने
शिकार को वहीं छोड़कर वह एक टीले की
आड़ में चला गया।

मेरे विचार से जब दूरी ६० या ७० गज से अधिक हो, किसी वाघ पर गोली चलाना अक्लमंदी का काम नहीं है। वैसे २५ गज की दूरी से ज्यादा अच्छे और सही ढंग से उसे गोली का निशाना वनाया जा सकता है। किसी भी शिकारी को इस वात का पूरा यकीन होना चाहिये कि वाघ उसकी गोली खाकर ही मर जायेगा। उसे घायल बनाकर छोड़ देना और भी ज्यादा खतरनाक होता है।

वाघ और मेरे बीच की दूरी चूंकि लगभग १५० गज थी, पेड़ पर ठहरे रहना महज बेवकूफी थी। मैं पेड़ पर से उतर आया और रेंजर को मैंने सारी घटना वता दी। अपने सभी आदमियों को इकट्ठा कर हम किनारे की ओर वढ़ चले, जहां से वाघ और हमारे बीच वहुत कम दूरी रह जाने वाली थी। हमारे सभी आदमियों के पास शाटगन थे। जब हम किनारे पर पहुंच गये, तो मैंने रेंजर के साथ सबको वहीं रोक दिया और अकेला उस वाघ की ओर बढ़ा। लेकिन मेरे स्वामिभक्त पठान नौकर ने मेरे साथ चलने की जिद ठान ली। उसका कहना था कि वह वाघ का शिकार करते समय कैमरे से मेरे फोटो उतारेगा। वहस के लिए समय नहीं था। मैंने अनिच्छापूर्वक उसकी बात मान ली और अपने पीछे खामोशी से आने को कहकर आगे बढ़ गया।

हम रेत में खोदे गये उन गड्ढों के पास पहुंच गये। घास और अपने बीच हमने सारे

...ने कुछ गजों की दूरी बनाये रखी थी। ...ां पहुंचकर घास की लंबाई कम होती ...ली गयी थी; अतः हम जमीन पर बैठ गये और कुहनियों और घुटनों के बल उस दिशा में सरकने लगे, जिधर मेरे अनुमान के अनुसार बाघ को होना चाहिये था। ...मुश्किल से हमने १० गज की दूरी पार की ...थी कि अचानक कौओं के 'कांव-कांव' करके कर्कश स्वर में चीखने की आवाज सुनाई ...पड़ी। नजरें उठाकर देखा, तो वे जंगल के ...पास के कुछ पेड़ों के ऊपर मंडरा रहे थे। ...मेरी समझ में आ गया कि बाघ ने वह जगह छोड़ दी थी। वह जंगल में चला गया था।

खड़े होकर मैंने उन पेड़ों की दिशा में देखा। फिर मेरी नजर वहां तक चारों ओर ...की घास पर पड़ी। जब कोई बड़ा जानवर ...ऊंची घास में से गुजरता है, तो रास्ते में ...आनेवाली घास के डंठलों का सिलसिला अस्त-व्यस्त हो जाता है और अगल-बगल ...की घास से उनका रंग देखने में थोड़ा ज्यादा ...गहरा नजर आने लगता है। रंगों का यह ...अंतर साधारण इंसान की नजरें नहीं भांप ...पातीं और यों भी कुछ ही देर में उसका रंग ...पहले की तरह सामान्य भी हो जाता है; ...पर एक शिकारी की आंखें इसके जरिये यह ...आभास पा जाती हैं कि जानवर किधर ...गया है।

वहां की घास भी उस बाघ के जाने की ...दिशा का स्पष्ट संकेत दे रही थी। मैं उसके ...सहारे वहां पहुंच गया, जहां से जंगल शुरू ...होता था और यहां मैंने किसी भी मूल्य पर अपने नौकर को आगे साथ ले जाना स्वीकार नहीं किया। मैंने उसे केवड़े के एक झाड़ में आराम से बैठकर मेरी वापसी का इंतजार करने के लिए कहा। उससे कैमरा लेकर अपने सीने पर बेल्ट के सहारे कसकर बांध लिया और फिर मन-ही-मन खुदा की इबादत कर जंगल में घुस गया।

गोरान वृक्षों के उस जंगल और झाड़ियों के बीच मैं पूरे एहतियात के साथ आगे बढ़ता गया। वहां की नम जमीन पर अपने शिकार को लेकर गुजरनेवाले बाघ के पंजों की छाप भी जगह-जगह साफ नजर आ रही थी।

जंगल के भीतर लगभग सौ गज तक जाने के बाद अचानक मुझे कहीं निकट ही उस आदमखोर के मौजूद होने का आभास हो गया, यद्यपि न कोई पत्ता खड़का था, न कोई टहनी हिली थी। कुछ ऐसा मौन-सा सन्नाटा छाया था कि मुझे दम घुटता प्रतीत होने लगा। मन में बड़ी तीव्र इच्छा उठी कि किसी इंसान या पशु-पक्षी की आवाज ही सुनाई पड़े और प्राणों पर हावी होते जा रहे इस जानलेवा सन्नाटे से छुटकारा मिले। मैंने कष्टमिश्रित सतर्कता से चारों ओर अपनी निगाहें घुमायीं। मेरा गला सूखने लगा था और मैंने बलपूर्वक कई बार थूक निगलकर अपना गला तर करने की कोशिश की।

तभी हड्डी की कड़कड़ाहट की आवाज वहां के उस सन्नाटे में पिस्तौल से निकली गोली की आवाज की तरह कानों में लगी। फिर मुझसे आगे कुछ ही गजों की दूरी पर दायीं ओर से दांतों से हड्डी चबाये जाने की

आवाज सुनाई दी। नजरों के सामने उगी हुई कुछ सघन और कुछ बेतरतीब झाड़ियों के कारण मैं कुछ देख नहीं पा रहा था। अतः दो-तीन कदम आगे बढ़कर, थोड़ा झुककर मैंने उन झाड़ियों के बीच से देखने की कोशिश की।

झाड़ियों के उस ओर लगभग १५ गज दूर किसी अभागे इंसान के अधखाये शरीर के अवशेष बिखरे हुए थे। उनके उस ओर अपने पेट की भूख शांत करने में जुटे बाघ के सिर और कंधों का भी कुछ हिस्सा नजर आ रहा था। झाड़ियों के इस ओर से गोली चलाने का खतरा मोल लेने का कोई सवाल ही नहीं उठता था; क्योंकि गोली झाड़ियों से टकराकर निश्चय ही लक्ष्य से विचलित हो जाती। मैं खामोशी से सीधा खड़ा हो गया, जिससे किसी अधिक उपयुक्त स्थान पर पहुंच सकूं।

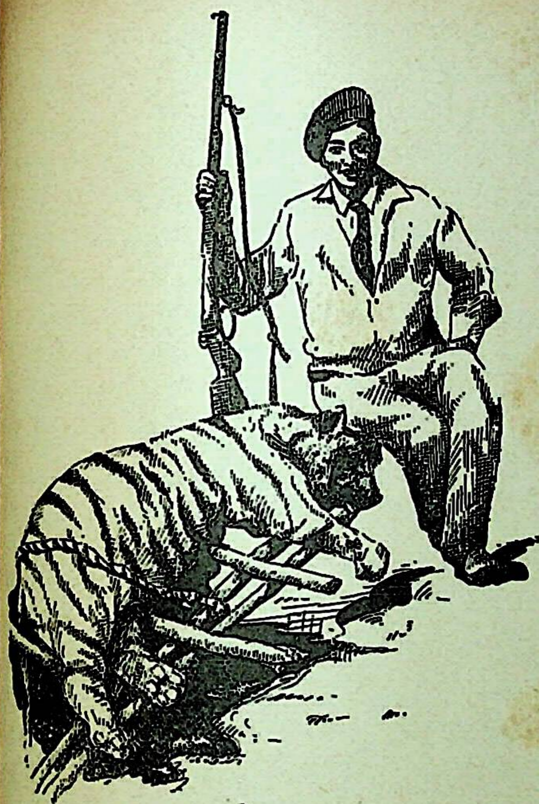
मैं बड़ी सावधानी से दबे पांवों अपनी दायीं ओर खिसकने लगा और वहां जाकर रुका, जहां झाड़ियां के बीच शहर की किसी संकरी-सी गली की तरह पतली-सी जगह छूट गयी थी। वहां से मानव-शरीर के भक्षण में जुटे बाघ का जी में उबकाई पैदा कर देने-वाला नजारा बिलकुल साफ नजर आ रहा था और बाघ मेरी मौजूदगी से बेखबर पूरी तन्मयता में अपनी क्षुधा तृप्त करने में जुटा हुआ था। मेरी नजरों के सामने उसकी पीठ थी।

मैं उस वक्त बड़ी आसानी से उसे अपनी राइफल का निशान बना सकता था; लेकिन मुझे 'दुर्लभ' क्षणों की तस्वीरें उतारने का भी बड़ा शौक रहा है। किसी आदमखोर को इस तरह पूरी तन्मयता के साथ अपने शिकार को उदरस्थ करते हुए इतने करीब से देखने का मेरा यह पहला मौका था और मैं इसे अपने कैमरे में बंद कर लेने का लोभ संवरण नहीं कर सका।

कैमरा चूंकि मेरे सीने से बंधा हुआ था, मैंने सिर्फ उसका रुख उस दिशा में घुमाया, जो मेरे विचार से सही दिशा थी और बाघ पर से अपनी निगाहें पल-भर के लिए भी हटाये बिना अपने अंगूठे से कैमरे का शटर रिलीज करनेवाला बटन दबा दिया।

शटर चलने की हलकी-सी ही आवाज हुई; पर पलक झपकते बाघ उछलकर खड़ा हो गया और गुर्राते हुए उसने चारों ओर अपनी निगाहें घुमायीं। एक क्षण के लिए उसने आश्चर्य से बिलकुल मेरी आंखों से आंखें मिलायीं और अपने अधखाये शिकार को, जिस तरह बिल्ली चूहे को दबोचती है, मुंह में दबाकर दायीं ओर की झाड़ियों की ओर उछल पड़ा। मैं तुरंत अपनी जगह पर झुक गया और झाड़ियों के निचले हिस्से में मैंने सामने की उन झाड़ियों में गायब होते हुए उसके पैरों की झलक-भर देखी।

वह आदमखोर अब हाथों से निकल गया है। कम-से-कम कुछ समय के लिए मेरे मन में यही विचार आया। मैं खड़ा हो गया। महज अपनी आदत के कारण अपने कैमरे के वाइंडिग हैंडिल को आधा घुमाया, जिससे अगले किसी दृश्य की तस्वीर उतारने के



तहावर अली अपने शिकार के साथ

कहीं रख दिया था और छिपकर बड़ी सतर्कता से वहीं आ पहुंचा था, स्थिति की सही जानकारी हासिल करने के लिए। मेरे कैमरे से रील घूमने से निकली आवाज ने उसे संभवत: यह जानकारी दे दी कि मैं कहां मौजूद हूं अथवा इस आवाज ने उसे चौंका दिया और रुष्ट कर दिया; क्योंकि कुछ सेकेंडों के भीतर ही उसने हमला कर दिया।

मेरी बायीं ओर लगभग १०० फुट दूर की झाड़ियां कुछ इस तेजी और इस भयंकर रूप से हिल उठीं कि जैसे कोई तोप का गोला वहां आ गिरा हो। मेरे दिमाग ने तत्काल मुझे

लिए फिल्म का उपयुक्त हिस्सा व्यू-फाइंडर के सामने आ जाये और एक दृश्य के दूसरे पर 'ओवरलैप' होने की कोई संभावना न रह जाये। अगर आप रोली फ्लेक्स कैमरे से परिचित होंगे, तो आप जानते होंगे कि इस प्रक्रिया में घर्र-र्र-र्र की एक तेज आवाज-सी होती है और इसी आवाज ने मेरे प्राणों पर बन आयी।

मैं यह अनुमान भी नहीं लगा पाया था कि बाघ ने अपना अधखाया शिकार

खतरे का आभास दे दिया और संकट का मुकाबला करने के लिए मेरी सारी इंद्रियां सजग हो उठीं।

बायीं ओर घूमते समय मेरी उंगली ट्रिगर पर कस गयी, राइफल का कुंदा कंधे पर टिक गया और मैंने सेफ्टी कैच हटा दिया। साथ ही, सही स्थिति में आने के लिए उसी क्षण मेरा दायां पैर घूमा और तब अचानक मेरे भय की सीमा न रही, जब मेरा दायां पैर वहां उगे नुकीले कांटों के समूह से टक-

राया और मैं लड़खड़ाकर आगे गिरने लगा।

मैंने हाथ आगे फैलाकर सहारा लेने की कोशिश की, दायें हाथ में अभी भी राइफल थी। बायां हाथ पास के एक पेड़ की शाखा से जा टकराया और मैंने उसे पकड़कर अपने को जमीन पर गिरने से बचाया। और जब मैं बायें हाथ से पेड़ की शाखा पकड़े लटक-सा रहा था और मेरा दायां हाथ अधर में टंगा हुआ था, मुझसे ५० फुट की दूरी पर, बाघ झाड़ियों से बाहर निकल आया।

वह न गुर्राया, न गरजा, बल्कि उसके तेजी से बढ़ते जिस्म के पीछे झाड़ियां जिस सरसराहट की आवाज से फिर एक-दूसरे से मिल गयीं, उसने मेरे मन में अनायास ही आतंक की एक लहर दौड़ा दी। मेरे कंधे सुन्न लगने लगे और अपना सिर मुझे अधर में तैरता महसूस हुआ। कानों में सनसनाहट-सी होने लगी और आंखों के आगे धुंध-सी तैरने लगी। कुछ ऐसी विषम स्थिति थी कि मुझे लगा, ऐसा दूसरे लोगों के साथ ही घट सकता है, मेरे साथ नहीं।

आगे बढ़ता बाघ मुझे दु:स्वप्न में उभरती हुई आकृति-सा लगा और मेरी भयग्रस्त और चुंधियायी आंखों ने उसका अतिरंजित स्वरूप मेरे सामने खड़ा कर दिया। वह किसी विशाल दैत्य के समान नजर आने लगा—नफरत व क्रोध का साकार प्रतीक। जबड़े मिचे हुए और व्यंग्य व घृणा की मिली-जुली मुस्कान! उसकी खून की प्यासी आंखें मेरी आंखों से आ मिलीं। उनमें कुछ ऐसा रोष था, कुछ ऐसी जलन थी कि मैं होश में आ गया, जैसे किसी हिस्टीरिया के मरीज को जोरदार थप्पड़ लगा हो, या ऊंघते इंसान के चेहरे पर बर्फ का पानी उंड़ेल दिया गया हो।

परिस्थितियां मेरे बिलकुल विपरीत थीं। बाघ अब मुझसे कुछ ही गज दूर रह गया था। उसकी पूंछ तनकर खड़ी थी और वह सिर झुकाये सीधा मेरी ओर बढ़ता चला आ रहा था और मैं अभी उसी ऊटपटांग स्थिति में था, जो ठोकर खाकर गिरते समय बीच में ही रुक जाने से हो जाती है। प्राणों के मोह और स्थिति की विषमता ने अचानक मेरे भीतर तीव्र क्रोध का संचार कर दिया। शायद बाघ की क्रोध से जलती आंखों का प्रभाव था यह। क्षण-मात्र में मेरे मन-प्राण पर छाया सभ्यता का लबादा दूर जा गिरा और मैं जंगल में अपने प्राणों की रक्षा के लिए तत्पर एक जंगली हिंस्र पशु बन गया।

मुझे आज भी संदेह है कि मेरे गले से क्रोध और घुटन की जो भयंकर चीख निकली, वह किसी इंसान के गले से निकलनी संभव नहीं है। ऐसा लगा, जैसे मेरे पैरों से चलकर सारे अंतर्मन को जलाती हुई मेरे खुले मुंह से नफरत और रोष की एक तीव्र-सी लहर बाहर निकल गयी। कुछ ऐसी डरावनी चीख थी वह कि मैं स्वयं भी पल-भर के लिए स्तब्ध रह गया। उस खून व हत्या की भावना से ओतप्रोत चीख का वर्णन करना कतई संभव नहीं। उसने मुझसे १५-२० गज दूर रह गये बाघ को भी एक बार चौंका दिया। उसका ध्यान क्षण-भर के लिए बंट-सा गया और वहां की नम जमीन पर

फिसलता हुआ वह मेरी ओर बढ़ चला।

इसे लिखने और पढ़ने में चाहे जितना समय लगा हो, पर मेरे ठोकर खाकर लड़खड़ाने से लेकर अब तक की सारी घटनाएं चंद सेकेंडों में ही घट गयीं थीं। मेरे दायें हाथ में, जो मेरे कंधे से उपर की ओर उठा था, अभी भी मेरी राइफल मौजूद थी और मेरे बायें हाथ ने पेड़ की डाल पकड़ रखी थी। बाघ जैसे आगे की ओर फिसला, मैं अपना दायां हाथ बड़ी तेजी से नीचे ले आया, जैसे कोई भाला जमीन में फेंका जा रहा हो और राइफल का कुंदा उस आदमखोर के सामने से बड़ी तेजी से गुजर गया।

बाघ ने इस आकस्मिक विपत्ति से बचने के लिए अपने अगले पंजे जमीन में गड़ा दिये और अपने सिर को झटका दिया। और तब तक निहायत आश्चर्यजनक घटना घटी। बाघ ने वैसा क्यों किया, आज भी मैं नहीं जानता। वह अपनी उस स्थिति से कुछ पीछे हट गया और अपने शरीर को सिकोड़कर हवा में उछाल ली। उस जगह से पीछे हटने में उसका रुख गलत हो गया था और वह पांच फुट दूर दायीं ओर जा गिरा। क्रोध से गुर्राते हुए वह घूमा, उसकी पूंछ फिर तनकर खड़ी हो गयी और वह दूसरे हमले की तैयारी करने लगा।

इसबीच मैंने अपने आप पर काबू पा लिया था। अपना बायां हाथ मैंने नीचे किया और उससे दायें हाथ में झूलती राइफल के बैरल को सीधा व स्थिर करने की कोशिश की। राइफल की नली संयोगवश उसी दिशा की ओर थी, जिधर बाघ दुवारा हमले के लिए अपना शरीर सिकोड़कर उछाल भरने की तैयारी कर रहा था। निशाना लेने का समय नहीं था। अनायास मेरी उंगली ने ट्रिगर दबा दिया। कान फाड़ देनेवाली आवाज हुई और राइफल मेरे हाथ से छूटकर गिरते-गिरते बची।

उछाल भरने में बाघ से कुछ क्षणों की देर हो गयी थी। राइफल की गोली निश्चय ही उसके शरीर को स्पर्श करती निकली होगी; क्योंकि उसकी उछाल में अंतर आ गया था। वह मुझसे काफी दूर हवा में तैरता हुआ-सा मेरे पीछे की सघन व कंटीली झाड़ियों में जा गिरा। मैंने उसे बेचैनी से उन झाड़ियों को रौंदते हुए और गले से गुर्राहट की आवाज निकालते हुए सुना। शायद वह छिपकर यह भी देख रहा था कि मैं अपने शिकार की ओर बढ़ता हूं, या नहीं। अगर मैं उसकी ओर बढ़ा होता, तो निश्चय ही वह फिर मुझ पर हमला कर देता।

जब तक अपने से कुछ दूर उस आदमखोर के झाड़ियों में चलने की आवाज सुनाई देती रही, उसकी ओर से अचानक ही किसी हमले का खतरा जाता रहा। सिर पर सवार मौत के थोड़ी देर के लिए ही टल जाने के बाद होनेवाली उसकी प्रतिक्रिया मेरे मन पर असर डालने लगी। मैं उस आदमखोर से तत्काल उलझने के लिए किसी भी कीमत पर तैयार नहीं था। अतः मैं धीरे-धीरे उन झाड़ियों की ओर आंख गड़ाये, पीछे खिसकता हुआ जंगल से दूर होने लगा।

केवड़े के झाड़ में बैठे मेरे पठान नौकर ने मेरी चीख और राइफल की आवाज के साथ बाघ की गुर्राहट भी सुनी थी। स्वभावतः ही उसे लगा कि या तो मैं मारा गया हूं, या बुरी तरह जख्मी हो गया हूं। मैंने उसे बार-बार पुकारते सुना—"साहब, जवाब दो। आप ठीक हैं?"

मैंने जवाब में चिल्लाकर उसे आश्वस्त करना चाहा; लेकिन सिर्फ मेरा मुंह खुलकर रह गया और तनिक भी आवाज नहीं निकली। मेरे पैर बुरी तरह कांपने लगे और मेरे शरीर में अचानक ऐंठन होने लगी। मैंने कांपते हाथों से अपना कपाल छुआ—वह बर्फ की तरह ठंडा था।

अचानक मेरे पैरों की शक्ति जाती रही। मेरी बेजान-सी महसूस होनेवाली बांह को राइफल का बोझ किसी पहाड़ का बोझ लगने लगा। मैंने राइफल को जमीन पर रखना चाहा; पर मेरी मांसपेशियों ने काम करने से इन्कार कर दिया।

कुछ ही क्षणों पहले मौत जो मेरे इतने करीब आ गयी थी, यह सब उसी की प्रतिक्रिया थी। मैंने अपने भीतर एक अजीब-सा खोखलापन महसूस किया, जैसे मेरे जिस्म में मांसपेशियां या हड्डियां बिलकुल न हों। इसकी पीड़ा असहनीय थी। मैं यह कामना करने लगा कि वह आदमखोर लौट आये और इन सारी भावनाओं से मुझे मुक्ति दिला दे।

तभी मैंने बहुत-से लोगों के चिल्लाने और हवा में बंदूक चलाये जाने की आवाज सुनी। मेरे भीतर एक कंपकंपाहट-सी दौड़ गयी और मेरे पैरों ने जवाब दे दिया। मैं धम-से जमीन पर गिर पड़ा और मेरा सिर पास ही निकले एक पेड़ की ठूंठ से जा टिका। एक लंबी-सी सांस मेरे मुंह से निकली और बिना किसी वजह के मेरी आंखों से आंसू बह निकले। मौन सिसकियों से मेरा बदन हिलने लगा।

रेंजर और उसके आदमी चिल्लाते और दौड़ते हुए मेरी ओर आने लगे। मेरा नौकर भी उनके साथ था। मेरे पास पहुंचकर वह घुटनों के बल बैठ गया और फिर चिंतित व व्याकुल हो यह देखने लगा कि मैं कहां और कितना जख्मी हूं। बड़ी मुश्किल से मैंने अपना सिर हिला और फुसफुसाकर उसे जताया कि मैं बिलकुल ठीक हूं। मैंने उसे इशारों से बताया कि मुझे उठाकर अपने पैरों पर खड़ा कर दिया जाये। रेंजर, उसके आदमी और मेरे पठान नौकर ने जल्दी-जल्दी आपस में सलाह-मशविरा किया और फिर मैं छोटे बच्चे की तरह कुछ लोगों द्वारा ऊपर उठा लिया गया। दो व्यक्तियों की बांहों पर मुझे लिटा दिया गया और इस लज्जास्पद व गौरवविहीन ढंग से मैं मोटर लांच तक ले जाया गया।

किंतु संयोग की ऐसी घटना हमेशा नहीं घटती। शिकारी को हमेशा अपने ऊपर ही भरोसा रखना होता है और विकट से विकट परिस्थितियों में भी उसे स्वयं अपने या अपने सहयोगियों के बल-बूते पर ही बाहर निकलना होता है। इसी से इस जिंदगी में, जहां

पल-पल मौत के साथ बाजी लगा करती है, सजगता-सतर्कता के साथ परले दर्जे की चतुराई, जिसे धूर्तता की संज्ञा भी दी जा सकती है, बहुत आवश्यक है। अगर यह गुण न हो, तो शायद ही कोई शिकारी अपने किसी शिकार की कहानी सुनाने को जिंदा रहे।

यह गुण या कला, जो भी कह लीजिये, इंसानों की ही विरासत नहीं है। सच तो यह है कि जंगल के बेटे इस मामले में धरती के बेटों से बहुधा आगे रहे हैं।

× × ×

रायमंगल नदी के जंगलों का वह आदमखोर बाघ भी कम चतुर नहीं था। यों तो वहां कई आदमखोर बाघ घूमा करते थे। लेकिन मैं जिस बाघ की बात कर रहा हूं, वह एक विशालकाय कद्दावर और ढलती उम्र का बाघ था, जिसका अगला बायां पैर कुछ लंगड़ाता था। यह स्वीकार करने में मुझे कोई झिझक नहीं है कि सजगता, सतर्कता और चतुराई में उसने मुझे शिकस्त दी और मैं जीतकर भी नहीं जीता। जीतकर हारने का यह प्रसंग अपने आप में कम दिलचस्प नहीं है।

सुंदरबन का इलाका भारत और पाकिस्तान के बीच जिस कल्पित रेखा द्वारा विभाजित है, वह रायमंगल नदी की धारा के साथ दक्षिण की ओर बढ़ती हुई 'बूढ़ी गंगा' नामक तीन मील लंबे सोते से होकर पश्चिम की ओर मुड़ जाती है और फिर हरीनभंग नदी के बीचोबीच दक्षिण की ओर बंगाल की खाड़ी की दिशा में बढ़ जाती है। उत्तर की ओर बढ़ते सोतें और इन दो नदियों के बीच १५ मील लंबा और दो से चार मील चौड़ा जो जमीन का टुकड़ा है, वही रायमंगल टापू है। देखने में घुटने के पास से टूटे किसी मानव-पैर की तरह नजर आनेवाली यह जमीन, जहां बंगाल की खाड़ी से मिलती है, वहां ऐसा लगता है, जैसे उसने अपना फूला-फूला अंगूठा पानी में डुबो रखा है।

धरती पर इस जंगल की तुलना में सघन पेड़ों, भयानक झाड़-झंखाड़ों से भरा कोई अन्य जंगल शायद ही हो। ४५ वर्गमील के इस घने और दलदली जमीन वाले जंगल में सन १९४७ से, जब पाकिस्तान का जन्म हुआ, आदमखोरों ने अनगिनत इंसानों की भेंट ली है। इस टापू के पास भी जाने से लोग घबराते हैं और टिंबर की लकड़ियों का और मछली मारने का ठेका देने में वन-विभाग को हमेशा बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ता है।

काम का मौसम समाप्त हो जाने पर जो दल अपने सभी सदस्यों के साथ सकुशल लौट आता है, वह खुद इस पर यकीन नहीं कर पाता; क्योंकि बहुधा काम करनेवालों की पार्टी को एक दिन में दो-दो आदमियों से भी हाथ धोने पड़े हैं।

रायमंगल के आदमखोरों के बारे में मुझे पूर्वी पाकिस्तान के गवर्नर के सेक्रेटरी से तब मालूम हुआ, जब मैं एक बार ढाका गया हुआ था। वहीं मुझे यह भी मालूम हुआ कि रायमंगल के उस बूढ़े और सबसे धूर्त आदमखोर

को, जो अगले बायें पैर से लंगड़ाकर चलता था, मारने के प्रयास कई शिकारियों ने किये थे। उन्होंने उसे जीवित चारे (बकरी या अन्य मवेशी) का प्रलोभन देना चाहा; लेकिन वह आदमखोर कभी उस प्रलोभन में नहीं आया और शिकारी मचान पर इंतज़ार करते ही रह गये।

नियमत: आदमखोर बाघ अन्य जानवरों की तुलना में इंसान का मांस ज्यादा पसंद करते हैं और चारे के रूप में बांधे गये किसी जानवर की ओर वे बहुत कम ध्यान देते हैं। जब वे अत्यधिक क्षुधा-पीड़ित होते हैं और मानव-मांस प्राप्त नहीं होता है, तभी लाचारी में वे उधर आकर्षित होते हैं। चूंकि लोग रायमंगल के इलाके के आसपास जाने से भी कतराते थे, उस बूढ़े बाघ को हमेशा इंसानी गोश्त मिलने की कोई संभावना नहीं थी। फिर भी उसका चारे के रूप में बांधे गये मवेशियों की ओर ध्यान नहीं देना, इस बात का प्रमाण था कि वह बहुत ही चतुर और सतर्क था।

आदमखोर का शिकार भी साधारणतया मचान बांधकर ही किया जाता है और रायमंगल के इस खतरनाक व धूर्त आदमखोर का नीचे जमीन पर, बिना किसी मचान के शिकार करने की बात मूर्खता ही कही जा सकती थी। किसी ने भी यह कोशिश नहीं की थी। मैंने यही करने का फैसला किया। यों भी मचान पर बैठकर शिकार करने में जिस धैर्य और स्वयं पर लौह-नियंत्रण की जरूरत होती है, उन गुणों का मुझमें अभाव है।

मैं ढाका से खुलना पहुंचा और वहां मैंने अपने मित्र डिविजनल फारेस्ट अफसर से भेंट की। उसने अपने मोटर लांच में रायमंगल टापू तक मुझे ले चलना मंजूर कर लिया; लेकिन जब उसने यह सुना कि मैं उस धूर्त आदमखोर का शिकार जंगल में पैदल चलकर करना चाहता हूं, तो वह अवाक् रह गया। उसने मुझसे कहा—"खुदकुशी करने के दूसरे कई तरीके हैं, जो इससे कहीं कम तकलीफदेह हैं।"

मैं मुस्कराकर रह गया। पर उसकी भावनाओं का खयाल करके मैंने रवाना होने के पहले एक जवान बकरा खुलना में खरीद लिया; क्योंकि सुंदरवन के इलाके में, जहां इंसानी बस्ती नहीं है, मवेशी पाने की उम्मीद नहीं की जा सकती थी।

रायमंगल नदी से होते हुए हम लोगों का लांच तालपट्टी खाल में, ज़ो आदमखोरों के इलाके से तिरछे बहता है, आगे बढ़ा और खाल के मुहाने से कोई सौ गज इधर हमने लंगर डाल दिया।

हम कुल छ: आदमी, ज़िनमें फारेस्ट अफसर और फारेस्ट गार्ड अब्दुल रज्जाक भी शामिल थे, एक छोटी नौका में बैठकर टापू की ओर चल दिये। मुआयने के दौरान हमारी कोशिश यही रही कि यथासंभव एक किनारे के करीब रहें। बकरा हम लोगों के साथ था। वह मेरे मित्र फारेस्ट अफसर की गोद में अपना सिर रखे बड़े इत्मीनान से खड़ा था और हम लोगों के मन में इस शर्मनाक भावना का एहसास करा रहा था

कि हम कैसे दगाबाज हैं।

टापू के नुकीले हिस्से का चक्कर लगाकर हम रायमंगल नदी के मुहाने में प्रविष्ट हुए और फिर हमारी डोंगी उस छोटे-से सोते में बढ़ चली, जो जंगल की ओर से निकलकर नदी में आ मिला था। सोते में कुछ दूर जाने के बाद, हमने उस किनारे की ओर रुख किया, जिधर रायमंगल के आदमखोरों का एकछत्र राज्य था।

किनारे पर उतरने के साथ ही नौका खेनेवाले ने हमारा ध्यान एक ओर आकर्षित किया। मैंने बाइनाक्युलर आंखों पर लगाकर देखा, लगभग आधे मील दूर पर एक कद्दावर बाघ बड़ी शाही चाल से चलते हुए किनारे से जंगल की ओर जा रहा था। मैं उसे कुछ क्षणों तक देखता रहा; पर उसकी चाल में जरा भी लंगड़ाहट नजर नहीं आयी। जाहिर था कि यह वह बाघ नहीं था, जिसकी मुझे तलाश थी। वह कुछ देर तक मुझे नजर आता रहा, फिर अचानक ही आंखों से ओझल हो गया।

हम किनारे-किनारे ३-४ मील तक आगे बढ़ गये। पंजों के कई निशान हमें नजर आये, जो कम-से-कम दो अलग-अलग बाघों के वहां से गुजरने की कहानी बता रहे थे। लेकिन उनमें कोई भी निशान इतना बड़ा नहीं था, जिसे उस आदमखोर से संबंधित मान लिया जाता। फिर उन निशानों से यह भी साफ जाहिर था कि वे जिन बाघों के पंजों के निशान थे, वे तनिक भी लंगड़ाकर नहीं चलते थे।

जब हम वापस हुए, तो दिन ढल गया था और शाम का अंधेरा छा रहा था। निराशा-सी मन पर हावी थी कि सारा दिन यों ही गुजर गया था और रायमंगल के उस धूर्त बेटे का अता-पता भी नहीं चला था। लेकिन जब हम अपनी नाव से लगभग ५० गज दूर रह गये थे, मेरे दिल की धड़कन तेज हो गयी और मैं ठमककर खड़ा हो गया।

जंगल से लेकर किनारे-किनारे हमारी नाव तक पंजों के बड़े-बड़े निशान साफ नजर आ रहे थे, जो पहले वहां नहीं थे। उन निशानों की जांच के पहले ही मेरे अंतर्मन ने बता दिया कि वे निशान उसी आदमखोर के थे, जिसकी तलाश में हम वहां आये थे और पिछले कई घंटों से भटक रहे थे।

सुंदरबन के इलाके में आदमखोर बहुधा अपना शिकार ऐसी नौकाओं से प्राप्त कर लेते हैं, जो या तो असावधानी की वजह से या किसी दुर्घटना में फंसकर किनारे के करीब आ लगती हैं। इसी से जब कोई बाघ नाव तक जाता है, चाहे वह नाव खाली ही क्यों न हो, तो यह बात तय है कि वह आदमखोर है।

हमारे मामले में बाघ सिर्फ नौका तक पहुंचकर ही नहीं रुक गया था, बल्कि उसने नाव पर जाकर मुआयना भी किया था। एक जगह लकड़ी पर उसके कीचड़ से सने पंजे की छाप साफ उभर आयी थी। अपनी खोज में निराश हो, उसने रोषपूर्वक किनारे की नम जमीन पर कुछ दूरी तय की थी और फिर सोते के उस पार चला गया था। उसके



रायमंगल बाघ के पंजे के निशान

पंजों की छाप से साफ पता लग रहा था।

मुझे इस बात का पूरा यकीन था कि वह बाघ कहीं छिपकर हम लोगों की निगरानी कर रहा था। जब तक हम उस इलाके में रहने वाले थे, उसकी निगरानी जारी रहने-वाली थी। इन परिस्थितियों में, उसके इंत-जार में किसी पेड़ पर चढ़कर रात काटना व्यर्थ था। फिर भी हमने एक काम किया। हम उन पद-चिह्नों के सहारे जंगल में कुछ दूर बढ़ गये और एक जगह उस बकरे को बांध-कर लौट आये। बकरे को खतरे का पूर्ण-रूपेण आभास हो गया था। वह बड़े करुण स्वर में चीखने लगा था; लेकिन जब आप आदमखोर के शिकार पर निकले हों, एक बकरे के विलाप पर भावनाओं में बहने से काम नहीं चलनेवाला है।

अगर वह बाघ उसी रास्ते वापस लौटता और रात में बकरे को अपना शिकार बनाता, तो इस बात की पूरी संभावना थी कि दूसरे दिन हमें इस बात का कुछ सुराग मिल जाता कि वह किस दिशा की ओर गया है।

जब हम नौका तक वापस पहुंचे, तो चारों ओर अंधेरा छा गया था। चूंकि बाघ सोते के उस पार चला गया था, इस बात की संभावना थी कि उस किनारे पर उससे मुठभेड़ हो जाये। अतः सोते के उस किनारे पहुंचकर मैंने नाव के बजाय किनारे-किनारे पैदल वहां तक चलने का इरादा किया, जहां हमारा लांच लंगर डाले खड़ा था।

फारेस्ट अफसर ने मुझे समझाने की बड़ी कोशिश की; लेकिन अंत में "पागल को कौन समझाये" मानकर वह चुप हो गया। उसने स्वयं नाव में रहने की बुद्धिमत्ता बरती; लेकिन फारेस्ट गार्ड रज्जाक और दो अन्य व्यक्तियों ने स्वेच्छापूर्वक मेरा साथ देने का फैसला किया। उनके इस फैसले के लिए मैं शुक्रगुजार था, क्योंकि एक और बंदूक का सहारा बड़ा सुखद था। और दरअसल मुझे ऐसे दो आदमी चाहिये भी थे, जो शूटिंग लैंप और उस टोकरी को साथ लेकर चल सकें, जिसमें उस लैंप से जुड़ी हुई बैटरी रखी थी।

मैंने शूटिंग लैंप का संबंध बैटरी से जोड़-कर उसे जला दिया और उसे ले चलने-वाला आदमी उसकी रोशनी बारी-बारी से जंगल और सोते की ओर फेंकता हुआ मेरे साथ आगे बढ़ता रहा। नाव सोते में हमारे साथ-साथ चल रही थी। मैंने अपने और जंगल के बीच १० से १५ गज की दूरी बनाये रखी थी, यद्यपि यह दूरी किसी भी

ड़ी में छिपे बाघ के दिल में हम पर हमला करने के लिए प्रलोभन उत्पन्न कर सकती थी, और हमला होने पर जल्दी से निशाना लेना मेरे लिए बड़ा मुश्किल साबित होता। मेरे आगे-आगे बायीं ओर वह आदमी चल रहा था, जिसके हाथ में शूटिंग लैंप था। उसकी बगल में ही बैटरी की टोकरी वाले दूसरा आदमी था। मेरे ठीक पीछे अब्दुल रज्जाक था, जिसकी बंदूक की दोनों नलियां कारतूसों से भरी किसी भी क्षण आग उगलने को तैयार थीं।

हम लोग सावधानीपूर्वक हर झाड़-झंखाड़ की जांच करते आगे बढ़ रहे थे कि तभी लैंप लेकर चलनेवाला आदमी अचानक चिल्लाया—"बचो, बाघ!" और वह मुंह के बल नीचे लेट गया। उसके हाथ से लैंप छूटकर नम रेतीली जमीन पर जा गिरा और उसकी रोशनी ऊपर आकाश की ओर पड़ने लगी।

मेरे दिल की धड़कन अनायास ही बढ़ गयी और मैंने फुर्ती से राइफल कंधे से उठाते हुए ट्रिगर पर उंगली रख दी। फिर उतनी ही फुर्ती से जंगल की ओर घूम गया। लेकिन कहीं कुछ नहीं था और मैंने उस आदमी को कड़ी डांट पिलाने के बाद फिर लैंप उठाकर आगे चलने को कहा।

कुछ क्षणों के बाद, जब उस आदमी के होश ठिकाने आये, उसने लैंप उठाकर उसकी रोशनी जंगल की ओर फेंकी। एक झाड़ी पर रोशनी डालते हुए उसने अवरुद्ध कंठ से कहा कि बाघ वहां था और हमला करने के लिए उछलने की तैयारी कर रहा था।

रात्रि के उस समय झाड़ी के करीब जाकर जांच करने का सीधा-सादा अर्थ था, "आ बैल मुझे मार!" अतः कुछ मिनिट तक वहीं से चारों ओर लैंप की रोशनी में मुआयना करने के बाद हम आगे बढ़े। लैंप और बैटरी ले चलनेवाले व्यक्ति बहुत आतंकित हो उठे थे; अतः मैंने अब बिलकुल किनारे-किनारे चलने का फैसला किया।

थोड़ी देर बाद हम बिलकुल निश्चिंत हो गये और किसी प्रकार के खतरे की आशंका न रही। एक बार भी पीछे मुड़कर देखे बिना हम आगे बढ़ते रहे। अगर हमने पीछे की ओर नजर डाली होती, तो संभवतः उसी रात रायमंगल का वह धूर्त आदमखोर मारा जाता; क्योंकि सुबह हम यह देखकर स्तब्ध रह गये कि किनारे पर हमारे पद-चिह्नों के ऊपर सारे रास्ते बाघ के पंजों की छाप मौजूद थी।

लैंप लेकर चलनेवाला आदमी जहां पर चिल्लाया था, उसके तुरंत बाद से ही हमारे पैरों के निशान पर बाघ के पंजों की छाप पड़नी आरंभ हो गयी थी और यह सिल-सिला तालपट्टी खाल के मुहाने तक, जिसके आगे हमारा मोटर लांच लंगर डाले खड़ा था, चला आया था। जाहिर था कि वह आदमखोर वहां तक बड़ी चतुराई से हमारा पीछा करता आया था। उसने रात में पूरे ६ मील तक हमारा पीछा किया था और हम तनिक भी भांप नहीं पाये थे।

किनारे पर पड़े निशान आगे की सारी

कहानी भी वता रहे थे। खाल के मुहाने पर, जब हम नाव में सवार हो गये थे, उसने सिर्फ दो सौ गज की दूरी पर अपने नुकीले पंजों से रेतीली जमीन खोदकर अपने छिपने के लिए गड्ढा तैयार किया था। हमारे वहां से रवाना हो जाने के बाद वह किनारे से जंगल में चला गया था और फिर खाल के मुहाने तक आया था। वहां की नम जमीन पर उभर आये निशान साफ वता रहे थे कि किस तरह वहां बैठकर उसने किनारे से २० गज दूर लंगर डाले लांच पर अपनी नजर जमा रखी थी।

वहां के मुआयने से पूर्ण संतोष न मिल पाने के कारण, या जो भी वजह रही हो, वाघ वहां से खाल के किनारे-किनारे पीछे की ओर वहां तक चला था, जहां रायमंगल नदी आकर मिली थी। धारा के तेज प्रवाह और वहां उठनेवाले ज्वारों के कारण हमने खाल के उस किनारे के आगे उसके पैरों के निशान तलाशने की कोशिश की और हम यह देखकर आश्चर्य-स्तब्ध रह गये कि उसने ठीक उसी जगह से खाल पार किया था। जैसे वहां का जल-प्रवाह खतरनाक न होकर शांत और स्थिर हो।

वचपन में एक शेर हमें सिखाया गया था, जिसमें कहा गया था कि मनुष्य को जिंदगी की दगाबाज व खतरनाक नदी को किसी वहादुर बाघ की तरह सीवा पार करना चाहिये। मैंने इस उपमा को हमेशा शाइर की कल्पना समझा था, जब तक कि रायमंगल के उस आदमखोर का वह करिश्मा मैंने देख नहीं लिया।

खाल के इस पार आकर वह आदमखोर धारा के साथ फिर आगे वढ़ा था और किनारे पर आकर उसने लांच पर अपनी नजर गड़ा दी थी। मगर रात में कोई बाहर डेक पर सोया होता, तो निश्चय ही उसने लांच तक पहुंचकर अपना शिकार पाने की चेष्टा की होती। पर जाड़े के दिन थे और हम सब बंद दरवाजों के पीछे सोये थे। यहां तक कि खिड़कियां भी बंद थीं।

इंतजार से संभवत: थककर विना अपना शिकार पाये बाघ ने फिर खाल पार किया था और जंगल में चला गया था। निश्चय ही, ये सारी बातें हमें सुबह उसके पंजों के निशानों व अन्य कुछ निशानों से ज्ञात हुईं; लेकिन यह भी स्पष्ट हो गया कि वह कितना चालाक, धैर्यवान और परिस्थिति की समझ-बूझ रखनेवाला था, जो यह जानता था कि परिस्थितियां कब उसके अनुकूल नहीं हैं। इसलिए उसे खुले में लाने की एक ही तदबीर थी कि परिस्थितियों को उसकी नजर में अनुकूल बनाया जाये। मैंने तय किया कि उसकी तलाश में मैं सिर्फ एक आदमी—फारेस्ट गार्ड अब्दुल रज्जाक—को लेकर जाऊंगा।

बकरे का, जिसे मैं खुलना से लाया था, इस अभियान से अब कोई संबंध नहीं था; लेकिन सिर्फ आपकी उत्सुकता मिटाने के लिए बता दूं कि उसका बाल भी बांका नहीं हुआ था और सुबह वह हमें वहीं मिला, जहां हम उसे छोड़ गये थे। बाद में, जब हम उस

इलाके से वापस हुए थे, वह हमारे साथ ही खुलना गया और मैंने उसे वहां एक बूढ़ी औरत को दे दिया, जिसका पति सुंदरबन में शहद एकत्र करते समय मारा गया था।

दोपहर का खाना हमने खत्म किया ही था कि बुरी तरह भयभीत दो मछुए एक नाव में चढ़कर हमारे पास आये और उन्होंने यह खबर दी कि कुछ ही घंटों पहले ताल-पट्टी खाल से निकलनेवाले सोतों में से एक सोते के किनारे उनके एक साथी को एक बड़ा बाघ उठा ले गया है। वे मछुए उस सोते में मछलियां पकड़ रहे थे। किनारे पर वे खाना पकाने के लिए कुछ लकड़ियां लाने गये थे। उनमें से दो नाव में रह गये थे और तीसरा, जिसकी मौत उस दिन बदी थी, किनारे पर उतरकर जंगल के किनारे लक-ड़ियां बटोरने गया था।

दोनों मछुए बुरी तरह भयभीत थे; फिर भी उन्होंने हमारे साथ दुर्घटना की जगह तक चलना स्वीकार कर लिया। यह अनु-मान लगाते हमें देर नहीं हुई कि रात-भर भूखे रहने के बाद पहला मौका मिलते ही उस गरीब मछुए को रायमंगल के उसी आदमखोर ने अपना निवाला बनाया था।

बिना तनिक विलंब किये, अब्दुल रज्जाक को साथ लेकर मैं उन मछुओं की नाव में सवार हो गया। जब हम उस किनारे पहुंचे, जहां यह दुर्घटना हुई थी, दोपहर के दो बज रहे थे। मैंने अपनी राइफल में गोलियां भर लीं और उसकी अच्छी तरह जांच कर ली। अब्दुल रज्जाक ने भी अपनी १२ बोर की दुनाली बंदूक की जांच की। मछुओं को बीच धारा में जाकर हमारा इंतजार करने के लिए कहकर हम नाव से उतर पड़े।

जंगल के करीब पहुंचकर हमने जमीन की जांच आरंभ की और यह बिलकुल स्पष्ट हो गया कि हमारा अनुमान ठीक था। हम एक बार फिर उसी धूर्त आदमखोर से मोर्चा लेने जा रहे थे। उसके पंजे के निशान वहां स्पष्ट उभर आये थे।

निशानों के सहारे हम जंगल में ५० गज की दूरी तै करके वहां पहुंच गये, जहां बहुत-सा खून छितराया हुआ था और कपड़े की कुछ चिंदियां इधर-उधर पड़ी थीं। बहुत-सी मक्खियां वहां भनभना रही थीं; लेकिन उससे लगभग दस गज आगे मक्खियों का जो जबर्दस्त हुजूम था, उससे हमें यह सम-झते देर नहीं लगी कि उस अभागे मछुए की बची-खुची लाश वहां पड़ी थी।

मक्खियों का हुजूम जिस तरह वहां जमा हो रहा था, उससे जाहिर था कि बाघ अपने शिकार के पास नहीं था; क्योंकि भोजन करते समय, या पेट भरने के बाद आराम करते समय बाघ मक्खियों द्वारा छेड़े जाने पर क्रुद्ध हो अपनी पूंछ फटकारता है और मक्खियां बीच में भनभनाकर ऊपर उड़ जाया करती हैं। वैसे यह संभावना थी कि बाघ कहीं पास ही में आराम कर रहा हो।

वहां उगी झाड़ियों की आड़ का सहारा लेकर हम बहुत सावधानी से आगे बढ़े। करीब पहुंचकर हमने झाड़ियों के उस ओर झांका, जहां थोड़ी-सी खुली जमीन पर उस

बछड़े की लाश पड़ी थी। एक नजर डालते ही हमें पता चल गया कि बाघ किस कदर भूखा था; क्योंकि शिकार पकड़े उसे ५ घंटे से ज्यादा नहीं हुए थे और इतनी ही देर में उसने उसका आधे से अधिक हिस्सा उदरस्थ कर लिया था। पैरों के अलावा कमर के नीचे का कुछ हिस्सा-भर बच गया था।

भर पेट भोजन करने के बाद बाघ कहीं गहरी नींद में न सोया हो, यह सोचकर हम फिर निशानों के सहारे बड़ी सावधानी से आगे बढ़े। अभी हम कुल बारह-पंद्रह कदम ही आगे बढ़े थे कि आगे की झाड़ियों में हल्की-सी हलचल दिखाई दी। अपने साथी को सामने नजर रखने का संकेत देकर मैं जमीन पर लेट गया और मैंने झाड़ी के निचले हिस्से की दरारों से झांकने की कोशिश की। कोई १५ गज की दूरी पर बायीं ओर बढ़ते बाघ के पांवों की झलक नजर आयी। वहां से गोली चलाना कोई माने नहीं रखता था, अतः मैं उसे दो-तीन मिनिटों तक देखता रहा, जब तक वह आंखों से ओझल न हो गया।

उसकी चाल में जो इत्मीनान था और जिस शाही ढंग से वह गुजरा था, उससे जाहिर था कि उसे हम लोगों की खबर नहीं थी। इससे हमारा काम अपेक्षाकृत आसान और कम खतरनाक हो गया था। मुझे यह भी उम्मीद थी कि झाड़ी के उस ओर की नम जमीन पर पड़नेवाले उसके पैरों के निशान हमें उसका सही पता दे देंगे। सो हमने उसके पंजों के निशान के सहारे बड़ी सावधानी से उसका पीछा किया।

मगर उस बाघ ने हमें खूब चक्कर दिया! वे निशान जंगल की हर दिशा की ओर से गुजरते हुए विभिन्न सोतों के किनारे से गुजरते थे और फिर टेढ़े-मेढ़े रास्तों से जंगल की ओर वापस मुड़ जाते थे।

एक घंटे बाद, पीछा करने के इस खेल से थक जाने के साथ-साथ मेरे मन में कहीं कुछ अटपटा-सा लग रहा था। तभी अचानक मेरी निगाह नीचे जमीन पर पड़ी और मैं ठमककर खड़ा हो गया। भय व आश्चर्य से मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मेरी दायीं ओर लगभग दो गज की दूरी पर बाघ के पदचिह्नों के समानांतर वैसे ही निशान और बने थे और उनकी बगल में मेरे रबर के तले वाले जूतों और अब्दुल रज्जाक के पैरों के निशान भी साफ नजर आ रहे थे।

इसका एक ही मतलब था कि बाघ हमें एक गोल घेरे में चारों ओर घुमा रहा था और धीरे-धीरे वह अपना घेरा छोटा करता जा रहा था। और ऐसा लगा, जैसे हम उसका पीछा नहीं कर रहे थे, बल्कि दरअसल, वह हम लोगों का पीछा कर रहा था। जंगल के एक ही हिस्से से दोबारा गुजरने के कारण ही मेरे मन में अटपटेपन का आभास हुआ था।

अचानक उसी वक्त मेरे दिमाग में यह भी कौंध गया कि मेरे पीछे-पीछे आ रहे अब्दुल रज्जाक पर बाघ कभी भी पीछे से हमला कर दे सकता था। मैंने तुरंत घूमकर धीमी आवाज में उसे चेतावनी दी और वहीं बैठ जाने को कहा, जिससे पीछे से आ रहे बाघ पर गोली चलाते समय वह बीच

में न पड़ जाये। उसी वक्त अपनी एड़ियां पर जरा-सा दायें घूमते हुए मैंने राइफल अपने कंधे की सीध में लाकर ट्रिगर पर उंगली रख दी और तभी २० गज दूर सीने तक ऊंची झाड़ियों के पीछे गायब होते हुए बाघ की पूंछ मुझे नजर आ गयी।

मैंने खुदा का शुक्र माना कि उसने समय पर मुझे सचेत कर दिया था। एक मिनिट की देर भी अब्दुल रज्जाक को उस धूर्त बाघ के हमले का शिकार बना सकती थी।

किंतु इसके साथ ही मैंने एक और बात के लिए भी खुदा का शुक्र माना। जिन झाड़ियों के पीछे बाघ ने हमारी नजरों से बचने के लिए पनाह ली थी, वह चारोंओर अन्य झाड़ियों से १० से १५ गज अलग थी और इसी से बिना खुली जमीन से होकर गुजरे वहां से बाघ के लिए कहीं अन्यत्र चला जाना संभव नहीं रह गया था। उसे उन झाड़ियों से बाहर आने के लिए मजबूर कर देने पर उसे शिकस्त देने की पूरी संभावना थी।

मैंने अब्दुल रज्जाक को सारी स्थिति समझायी और वह उठ खड़ा हुआ। दूसरे ही क्षण, उसने भी अपनी बंदूक तान ली थी और उसकी निगाहें सामने की झाड़ियों की ओर लगी थीं। हम दोनों ही पूरी तरह से सतर्क थे; लेकिन १० मिनिट की प्रतीक्षा के पश्चात् भी बाघ अपने छिपने की जगह से बाहर नहीं निकला। जैसे उसने यह भांप लिया था कि वह फंस चुका है।

और इंतजार करने के पक्ष में हम नहीं थे। बाघ को झाड़ियों से निकलकर बाहर आने के लिए मजबूर कर देने के इरादे से मैं दायीं ओर से धीरे-धीरे आगे बढ़ा और रज्जाक बायीं ओर से। झाड़ियों और हमारे बीच की दूरी कम होती गयी और जब यह दूरी सिर्फ १० गज रह गयी, बाघ धीमे, पर खतरनाक ढंग से गुर्राया। तय था कि उसे हमारा इतने पास आ जाना पसंद नहीं था।

दूसरे ही क्षण झाड़ियों के उस ओर उसकी तनी हुई पूंछ हवा में नजर आयी और मैं उसके हमले के लिए तैयार हो गया। लेकिन बाघ ने एक सेकेंड की देर कर दी, शायद जान-बूझकर ही उसने ऐसा किया था और फिर वह हवा में पूरी ऊंचाई तक उछलकर झाड़ियों के ऊपर से होता हुआ मेरी बायीं ओर लगभग ५ गज की दूरी पर आ रहा। जब उसका सारा जिस्म झाड़ियों के ऊपर होता हुआ इस ओर आ रहा था, तभी मेरी राइफल की तीक्ष्ण नुकीली गोली उसके पेट के पास के मुलायम चमड़े में जा घुसी। बड़े जोरों से चीखते हुए उसने हवा में ही अपने शरीर को झटके दिये थे और अब्दुल रज्जाक के उस ओर कुछ दूरी पर जा गिरा था।

तत्काल मैंने उसे दूसरी गोली का निशाना बनाना चाहा; लेकिन राइफल की सीध में अब्दुल रज्जाक पड़ता था; और आदमखोर इस मौके का फायदा उठाकर आगे की झाड़ियों में जा घुसा। वह पागलों की तरह दौड़ता हुआ झाड़ियों में घुसा था और सारे पौधे कांप गये थे।

हम उसके पीछे झाड़ियों के निकट तक

पहुंचे। कोई दस गज भीतर वाघ के पीड़ा से कराहने की आवाज आयी। निश्चय ही वह बुरी तरह घायल हुआ था। पास के एक ऊंचे पेड़ पर चढ़कर हमने उस ओर नजर डाली। संभवतः उस चतुर वाघ ने हमें पेड़ पर चढ़ते देख लिया था; क्योंकि पेड़ के ऊपर पहुंचते ही ५० गज दूर की झाड़ियां हमें हिलती नजर आयीं, फिर कुछ दूर एक पेड़ पर बैठा बंदर बुरी तरह चीखने लगा।

हम नीचे उतर आये और कुछ देर तक इंतजार करने के वाद, जब बंदर ने चीखना बंद कर दिया, झाड़ियों के भीतर उस ओर पहुंचे, जहां से हमने बाघ के कराहने की आवाज सुनी थी। वहां काफी खून छितराया हुआ था और खून से सने बाघ के पंजों के निशान उसके जाने की राह बता रहे थे।

बाघ को जख्मी करने के बाद तुरंत ही, झाड़-झंखाड़ के बीच उसका पीछा करना जान-बूझकर खतरों को दावत देना है। इस विषय के विशेषज्ञों का कहना है कि कम-से-कम २४ घंटे वाद जख्मी बाघ के पीछे जाना चाहिये। जहां तक इस बाघ का सवाल था, अब्दुल रज्जाक और मैं—दोनों की यही धारणा थी कि वह इस कदर जख्मी हो गया था कि वारह घंटों से अधिक जीवित नहीं रह सकेगा। उस स्थान को, पेड़ की शाखाएं तोड़कर, चिह्नांकित करके हम लौट गये।

दूसरे दिन उन मछुओं के बिना ही, जो हमें अपनी नाव में वहां तक ले गये थे, मैंने अब्दुल रज्जाक के साथ वहां की यात्रा की; लेकिन सुंदरवन के उस इलाके में जलस्रोतों की जो भूलभुलैया है, उसमें भटककर वहां तक नहीं पहुंच सके। रात भी हमने अपनी नाव में आंखों-आंखों में काट दी। संयोगवश अगले दिन अन्य मछुओं से भेंट हो गयी और उन्होंने हमें उस किनारे तक पहुंचा दिया।

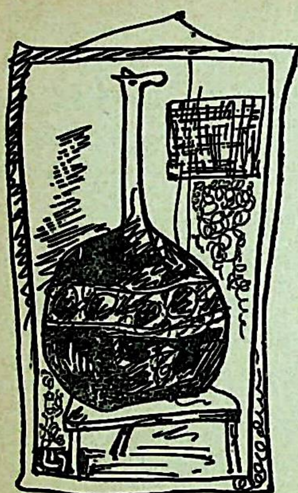
हम वाघ के खून से सने पंजों के निशान के सहारे उसके पास तक जा पहुंचे। वह मरा पड़ा था और एक नजर उस पर डालते ही यह स्पष्ट हो गया कि उसकी मौत दो रोज पहले हो गयी थी—संभवतः उस वक्त, जब वह बंदर वड़ी देर तक चीखता रहा था।

वह उस तंग सोते में पड़ा था और ४८ घंटों तक उस खारे जल में पड़े रहने से उसकी सारी गौरव-गरिमा जैसे नष्ट हो गयी थी। उसका शरीर बुरी तरह फूल चुका था और मांस के सड़ने की हल्की-सी वदबू आने लगी थी। जब उसके चमड़े को हमने उतारने की कोशिश की, हमारे हाथ में चमड़े के बजाय उसका लिजलिजा गोश्त आ गया। अतः हमने उसके दांत उखाड़ लिये और उसके पंजे काट लिये। उन्हें ही अपना उपहार मानकर हम वापस हो गये।

पूर्वी पाकिस्तान का वन-विभाग सुंदरबन के इलाके में किसी आदमखोर के शिकार के लिए सरकारी तौर पर तब तक आपका शुक्र गुजार नहीं होता, जब तक आप उसकी खाल वहां पेश न करें। इस तरह, रायमंगल के उस धूर्त और बूढ़े आदमखोर ने, जो मुझे अपनी जिंदगी में नहीं छल सका, शिकस्त खाकर मरने के बाद भी मुझे पराजय दी और मैं जीतकर भी नहीं जीता। (क्रमशः)



मैं हूं वो जाम

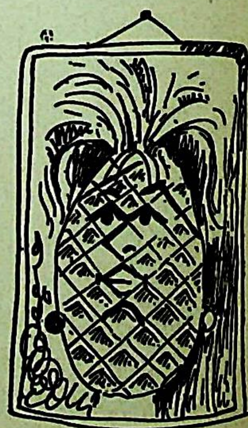


सैयद मुहम्मद जाफरी

एब्स्ट्रैक्ट आर्ट की देखी थी नुमाइश मैंने।
की थी अजराहे[1] मुहब्बत भी सताइश[2] मैंने॥
आज तक दोनों गुनाहों की सजा पाता हूं।
लोग कहते हैं कि क्या देखा ? तो शरमाता हूं॥
सिर्फ कह सकता हूं इतना ही, वे तस्वीरें थीं।
यार की जुल्फ को सुलझाने की तदबीरें थीं॥

एक तस्वीर को देखा जो कमालेफ़न थी।
भैंस के जिस्म पर एक ऊंट की-सी गर्दन थी॥
नक्शे महबूब मुसव्विर[3] ने सजा रखा था।
मैंने देखा कि तिपाई पै घड़ा रखा था॥

एक तस्वीर जो देखी तो यह सूरत निकली।
जिसको समझा था अनन्नास वह औरत निकली॥
एब्सट्रैक्ट आर्ट की इस चोज पै देखी है असास[4]।
तन की उरियानी[5] से बेहतर नहीं दुनिया का लिबास॥
बोली तस्वीर, जो मैंने उसे उलटा-पलटा—
"मैं हूं वो जाम कि जिसका नहीं सीधा-उलटा॥"



मैंने यह काम किया सख्त सजा पाने का।
यह नुमाइश न थी इक ख्वाब था दीवाने का।
कैसी तस्वीर बनायी मेरे बहकाने को।
अब तो दीवाने भी आने लगे समझाने को॥

१. मूक प्रेम, २. संकल्प, ३. चित्रकार,
४. बुनियाद, ५. नंगापन।

पशु भी पैसों के भक्त

पैसों का मोह केवल मानव का दुर्गुण नहीं है। नीचे वर्णित प्रयोग बताते हैं कि उसक बीज पशुओं के मानस में भी मौजूद हैं।

वान्स पैकार्ड

प्राय: जानवर अपने बुद्धिमान होने का परिचय देकर हमें आश्चर्यचकित कर देते हैं। फिर भी हममें से अधिकांश लोग यह मानते हैं कि जानवरों की बुद्धि एक सीमा से आगे नहीं बढ़ पाती। बहुत-से मनोवैज्ञानिकों की धारणा भी यही है। उनका कहना है कि बुद्धिमान से बुद्धिमान जानवर भी मूर्ख से मूर्ख मनुष्य की तुलना में निम्नस्तर का प्राणी है। उनकी राय में मनुष्य जानवरों से मुख्यत: इसलिए उच्चस्तर का प्राणी है कि वह प्रतीकों का प्रयोग कर सकता है।

इन प्रतीकों का उपयोग हम बोलते समय करते हैं। शब्द भी तो पदार्थों या क्रियाओं या भावनाओं के प्रतीक ही हैं, और इन शब्द-प्रतीकों की बदौलत ही हम विचार व्यक्त करते हैं।

प्रतीकों के प्रयोग का एक बहुत बढ़िया उदाहरण है—रुपये-पैसे से चीजों को खरीदना। एक रुपये का नोट, जो कागज का टुकड़ा मात्र होता है, अपने प्रतीकात्मक मूल्य के कारण हमारी नजर में कीमती बन जाता है। हम जानते हैं कि उस नोट से हम उस कीमत की कोई भी चीज खरीद सकते हैं।

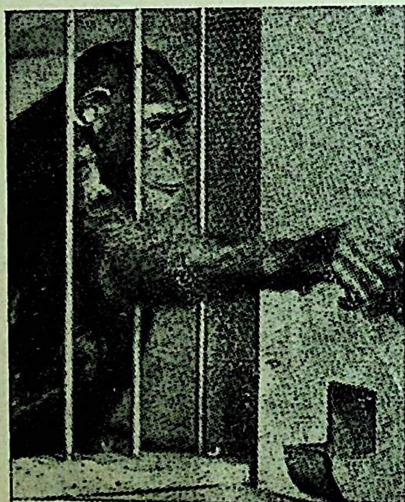
परंतु वैज्ञानिकों की यह धारणा, कि प्रतीकों का प्रयोग सिर्फ मानव-बुद्धि का ही करिश्मा है, पिछले कुछ वर्षों से गलत साबित होने लगी है। प्रयोग करके देखा गया है कि जानवर भी धन की प्रतीकात्मक महत्ता को समझते हैं। कई जानवर तो ऐसे हैं, जिनमें यह समझ इतनी तीव्र होती है कि वे धन-प्राप्ति के लिए पागल हो उठते हैं। धन कमाने के लिए उनमें मनुष्यों की-सी ही चालाकी, मेहनत, लालच आदि गुण-अवगुण पाये जाते हैं।

कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रयोगों द्वारा साबित किया गया है कि सफेद चूहों को पत्थर के टुकड़ों के एवज में खुराक हासिल करने का तरीका सिखाया जा सकता है।

सान डायगो चिड़ियाघर में एक बंदर है, जिसे लोग 'सौदागर' कहते हैं। यह चिड़ियाघर से मिलनेवाला भोजन दर्शकों को देकर उनसे मूंगफली और मीठी गोलियों का सौदा पटा लेता था। बाद में 'सौदागर' ने पत्थर

या लकड़ी के टुकड़ों से उन चीजों का सौदा करना शुरू कर दिया। आखिर वह ऐसा पेटू बन गया और इतना ज्यादा खाने लगा कि उसकी जान जाने का खतरा पैदा हो गया। तब एक मनोविज्ञानी उसका अध्ययन करने के लिए उसे अपनी प्रयोगशाला में ले गया।

जब मनोविज्ञानी उसकी ओर हाथ बढ़ाकर कहता—"सौदागर, मुझे कुछ दो," तो सौदागर उसे देने के लिए कोई चीज ढूंढ़ने



का यत्न करता। कागज का टुकड़ा या कोई और चीज ढूंढ़कर वह उसे देता और बदले में खाने की चीज न पाता, तो फिर कोई और चीज ढूंढ़ने का यत्न करता। मनोविज्ञानी ने वहां विभिन्न प्रकार की चीजें रख छोड़ी थीं। जब ये चीजें देने पर भी उसे खुराक नहीं दी जाती थी, तो चीखने लगता था, जैसे उसे लूटा जा रहा हो।

तब मनोविज्ञानी ने एक और तरीका अपनाया। उसने कुछ डब्बों में विभिन्न रंगों के पत्थर के टुकड़े डालकर उन्हें उसके कमरे में रख दिया। जब बंदर सफेद पत्थर लाकर देता, तो बदले में उसे केला मिलता। नीले पत्थर के बदले में मूंगफली मिलती, लाल पत्थर के बदले में संतरा और हरे पत्थर के बदले में रोटी का एक टुकड़ा। लेकिन पीले पत्थर के बदले में कुछ न मिलता। अब बंदर ज्यादा-से-ज्यादा सफेद पत्थर लाकर देने लगा, क्योंकि केला उसे ज्यादा पसंद था। सफेद पत्थर के बाद वह ज्यादातर नीले पत्थर लाता; क्योंकि केले के बाद उसे मूंगफली सबसे ज्यादा अच्छी लगती थी।

पीला पत्थर तो वह शायद ही कभी लाकर देता था, क्योंकि पीले पत्थर के विनिमय में उसे कुछ नहीं मिलता था। हरा पत्थर भी वह कम ही लाता था; क्योंकि रोटी उसे ज्यादा पसंद नहीं थी।

इसी प्रकार का प्रयोग छः बनमानुसों पर भी किया गया। उनके पास एक मशीन रखी गयी, जिसमें सफेद पत्थर डालने पर उसमें से एक अंगूर निकलता था। बनमानुसों को जब मशीन का इस्तेमाल बताया गया, तो वे झट सीख गये; क्योंकि उनमें नकल करने की प्रवृत्ति बहुत होती है।

शुरू में बनमानुसों ने पत्थर के टुकड़ों में कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखायी। लेकिन जब उन्हें पता लगा कि इनके बदले में वे मशीन में से अंगूर प्राप्त कर सकते हैं, तो वे ज्यादा-से-ज्यादा संख्या में इन्हें इकट्ठा करने

गये। यही नहीं, वे इन पत्थर के टुकड़ों के लिए आपस में लड़ने-झगड़ने भी लगे।

पत्थर के टुकड़ों के अलावा वनमानुसों को तांबे के गोल टुकड़े भी दिये गये। जब वे इन्हें मशीन में डालते थे, तो उसमें से अंगूर नहीं निकलते थे। सो तांबे के टुकड़े उनकी नजर में बेकार बन गये। जब उनके पिंजरे में पत्थर के सफेद टुकड़े और तांबे के गोल टुकड़े फेंके जाते, तो 'बुला', 'विंबा' और 'आल्फा' नामक मादा बनमानुस सफेद पत्थरों की ओर लपकते और तांबे के टुकड़ों को नजर-अंदाज कर देते थे।

जब वे मशीन को अच्छी तरह इस्तेमाल करना सीख गये, तो मशीन में कुछ ऐसी तब्दीली की गयी कि उसमें पत्थर डालने पर अंगूर तुरंत बाहर न आता था, बल्कि कुछ देर के बाद आता था। इससे बनमानुसों को बड़ी खीज होती। पत्थर डालने पर वे मशीन को तब तक जोर-जोर से हिलाते रहते थे, जब तक कि अंगूर निकल न आये।

अब वे पैसों (जो सफेद पत्थरों की शक्ल में थे) को प्यार करने लगे थे, और उन्हें जमा करके खुश होते थे। लेकिन क्या वे उनके लिए परिश्रम भी करेंगे?—यह प्रश्न मनोवैज्ञानिकों को उलझन में डाल रहा था; क्योंकि मनुष्य अभी तक अन्य जानवरों की तरह बनमानुसों को पालतू बनाकर खेती-बाड़ी या अन्य कामों के लिए तैयार नहीं कर सकता है। प्रश्न था कि अगर उन्हें काम के बदले में पैसों का लालच दिया जाये, तो क्या वे काम करने के लिए तैयार होंगे?

सो एक और मशीन उनके पिंजरे में रखी गयी। उन्हें सिखाया गया कि मशीन का बड़ा-सा हैंडल उठाया जाये, तो उसके नीचे से एक अंगूर प्राप्त किया जा सकता है। जब बनमानुस उस मशीन का प्रयोग सीख गये, तो मशीन में ऐसी व्यवस्था की गयी कि हैंडल उठाने पर उसके नीचे अंगूर के बजाय पत्थर का सफेद टुकड़ा मिले। इस टुकड़े को दूसरी मशीन में डालकर अंगूर प्राप्त किया जा सकता था।

इस प्रकार अंगूर प्राप्त करने की क्रिया ज्यादा पेचीदा तो हो ही गयी, साथ ही अंगूर खरीदने के लिए पैसे पाने के लिए मेहनत भी करनी पड़ती थी। मशीन के हैंडल का वजन ९ किलोग्राम था। उसे उठाने के लिए काफी जोर लगाना पड़ता था। वह लहू-पसीने की कमाई थी।

बनमानुस ज्यादा-से-ज्यादा धन कमाने के लिए हैंडल को उठा-उठाकर सफेद पत्थर प्राप्त करने लगे। उनमें से दो तो इस हद तक धनलोभी हो उठे कि वे बेहद थक जाने पर भी हैंडल उठाने से न हटते। आखिर उनकी सेहत खराब हो जाने का खतरा पैदा हो गया। प्रत्येक बनमानुस अपने पत्थर अलग रखता और बड़ी सावधानी से उनकी रक्षा करता।

'मूस' नामक बनमानुस इतनी तेजी से हैंडल उठाया करता था कि एक बार उसने १० मिनिट में १८५ बार हैंडल उठाया जो कि ४१ मन भार उठाने के बराबर है। लेकिन कुछ समय के बाद उसमें संतोष पैदा

होने लगा। वह तभी हैंडल उठाता, जब उसका धन कम होने लगता और वह ज्यादा अंगूर पाना चाहता। जब उसके पास जरूरत से ज्यादा धन होता, तो मशीन में उसकी कोई खास दिलचस्पी न होती। कभी अगर उसे योंही बहुत-से सफेद पत्थर दे दिये जाते, तो वह और पत्थर पाने के लिए मशीन पर काम न करता; क्योंकि उसे पता होता था कि जरूरत के मुताबिक उसके पास काफी धन है। लेकिन अगर कभी उसके पत्थर खत्म हो जाते, तो वह मशीन पर काम करने के लिए एकदम उतावला हो उठता था।

वनमानुसों का अध्ययन करनेवाले एक मनोवैज्ञानिक ने उनके बारे में लिखा है—"मनुष्य की भांति धन कमाने के लिए वनमानुस का मेहनत करना इस बात पर निर्भर है कि उसके पास कितना धन जमा है।"

जब मनुष्य पैसे कमाता है, तो वह उसी समय उसे खर्च के लिए नहीं चल पड़ता। वह कुछ दिनों या हफ्तों तक उसे अपने पास जमा रखता है। क्या बनमानुसों में भी यह धैर्य पाया जाता है? कुछ में तो बिलकुल नहीं होता। उदाहरणार्थ, बेल्ट नामक बनमानुस ज्यों ही हैंडल उठाकर कुछ पत्थर प्राप्त करता, त्यों ही अंगूर प्राप्त करने के लिए दूसरी मशीन की ओर भाग चलता। अगर उस समय मशीन रुकी हुई होती, तो उसे बड़ी बेचैनी होती थी। लेकिन उसके ठीक विपरीत, मूस और बिबा नामक वनमानुस लालच और कंजूसी दिखाते थे। वे मशीन पर काम करते हुए पसीने-पसीने हो जाते, हालांकि उस दिन उन्हें अंगूरों की कोई जरूरत नहीं होती थी।

कुछ दिनों के बाद एक और नया कदम उठाया गया। तब तक बनमानुसों के लिए तांबे का गोल टुकड़ा व्यर्थ की चीज था, और सफेद पत्थर का टुकड़ा एक अंगूर की कीमत के बराबर था। लेकिन अब, जब नीले पत्थर का टुकड़ा मशीन में डाला गया, तो उसमें से दो अंगूर निकलते थे। लाल पत्थर डालने पर पानी प्राप्त हो सकता था। और जब पीला टुकड़ा दरवाजे के एक छेद में डाला जाता, तो उसके बदले में बनमानुस को पिंजरे में से निकलकर मनोवैज्ञानिक के कंधे पर सवार होकर घूमने का सुख मिलता था।

विभिन्न रंगों के पत्थरों के विभिन्न मूल्यों को समझने के लिए काफी ऊंचे स्तर की बुद्धि आवश्यक

मानवीय संस्कार

स्वामी दयानंद सरस्वती के सामने एक लड़का लाया गया, जिसे भेड़ियों ने अपनी मांद में पाल-पोसकर बड़ा किया था। लड़का हाथ-पैर के बल पशुओं की तरह चलता था और गले से गों-गों की आवाज करता था। स्वामीजी को देखते ही उसने पैसे के लिए हथेली फैला दी। स्वामीजी ने उसे पैसे दिये और साथ के लोगों से कहा—"देखो, पशुओं के बीच पलने पर भी इसका मानवीय संस्कार गया नहीं।"

चाहिये। अगर किसी बच्चे को चवन्नी मांगने पर अठन्नी मिल जाये, तो वह बहुत खुश होगा। यद्यपि उसे इस बात का ज्ञान नहीं होता कि अठन्नी की कीमत चवन्नी से ज्यादा है, वह यह देखकर खुश होता है कि अठन्नी चवन्नी से बड़ी है और इसलिए उससे ज्यादा चीज खरीदी जा सकती है।

वनमानुसों को जल्दी ही इस बात का ज्ञान हो गया कि नीले पत्थर सफेद पत्थरों से ज्यादा कीमती हैं। तब वे नीले पत्थर ज्यादा संख्या में इकट्ठे करने लगे। अगर उन्हें पानी न दिया जाता, तो प्यास लगने पर वे हमेशा लाल पत्थरों का चुनाव करते, जिनसे कि पानी प्राप्त हो सकता था। उस समय वे नीले या सफेद पत्थरों को नजर-अंदाज कर देते थे।

पीले पत्थरों के महत्त्व को अभी तक वे जान नहीं पाये थे। लेकिन एक दिन बुला नामक मादा वनमानुस ने बड़े नाटकीय ढंग से उसका प्रदर्शन किया। एक दिन उसे बड़ी प्रसन्न मुद्रा में मशीन में नीले पत्थर डालते हुए देखकर मनोवैज्ञानिक ने एक सफेद चूहा उसके पास फर्श पर छोड़ दिया।

चूहे को देखते ही बुला घबरा उठी—ठीक वैसे ही, जैसे स्त्रियां घबरा उठती हैं। अब वह कहां भागे? उससे बचने के लिए वह धीरे-धीरे पीछे हटने लगी। तभी एकाएक वह पीले पत्थरों वाले डब्बे की ओर भागी और उसमें से एक पत्थर उठाकर उसने दरवाजे के छेद में डाला। दरवाजा खुलते ही वह पिंजरे में से निकलकर मनोवज्ञानिक के कंधे पर चढ़ बैठी और उसे वहां से ले चलने के लिए कहने लगी।

दिन-प्रतिदिन धन का लालच बढ़ने लगा था और वनमानुस धन को अधिक सोच-समझकर खर्च करने लगे थे। आखिर लालच की बुराइयां दिखाई देने लगीं। आपस में गहरा स्नेह रखनेवाले वे वनमानुस अब एक-दूसरे को शंका और डर की नजर से देखने लगे। वे एक-दूसरे पर धाक भी जमाने लगे।

बुला का बिंबा पर इतना रौब था कि जब उन दोनों को एक पिंजरे में बंद किया जाता और बहुत-से पत्थर उनके सामने रखे जाते, तो बुला उनमें से अधिकांश पर कब्जा कर लेती और बिंबा के हिस्से कुछ ही पत्थर आते। जब अंगूर वाली मशीन उनके पिंजरे में रख दी जाती, तो दोनों ही अपने-अपने पत्थर लेकर उसकी ओर बढ़ते; लेकिन बुला बिंबा को एक ओर धकेल देती और मशीन में पत्थर डालकर अंगूर निकालने लगती। वह बड़े मजे से अंगूर खाती जाती। बेचारी बिंबा को उसके वहां से हटने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी।

इन प्रयोगों से यह साबित होता है कि वनमानुस, कुछ दूसरे बंदर और अन्य बुद्धि-मान पशु भी मनुष्यों की तरह ही प्रतीकों को समझ सकते हैं और यह इस बात का प्रमाण है कि प्रतीकों को समझने की क्षमता केवल मानव की विशेषता नहीं है, न ही वह उसके सर्वाधिक बुद्धिमान जीव होने का सबूत है।



(पराई) पुस्तकों के प्रेमी

वी० नार्ला

स्टैन्ली वाल्डविन ने कहा था—"उधार आयी पुस्तक से प्राप्त होनेवाला आनंद अत्यल्प होता है।" इस बात से पूर्णतः सहमत हूं। निजी पुस्तक को एक ही सांस में पढ़कर समाप्त करने की आवश्यकता नहीं होती। जब चाहे तब, जितना चाहें उतना, मजा ले-लेकर अपेक्षित सावधानी के साथ पढ़ा जा सकता है। प्रारंभ करने के बाद लगातार पढ़ने लायक पुस्तक हो, तो एक ही बैठक में समाप्त कर, पुनः जब चाहें तब, इच्छित अध्यायों को पढ़कर, मधुर स्मृतियों को उद्दीप्त किया जा सकता है। पुस्तक का अध्ययन करते समय उठते विचारों को हाशिये में दर्ज किया जा सकता है। मुख्यतः स्मरणीय पदों के नीचे लकीर खींची जा सकती है।

वस्तुतः उधार लायी और निजी पुस्तकों में उसी तरह बुनियादी अंतर होता है, जिस तरह अपने बच्चों और पराये बच्चों में अंतर होता है। यह मेरा सत्य अनुभव है। इसलिए पैसे के अभाव में भी मैं पुस्तकें खरीदना बंद नहीं कर सकता हूं।

कुछ भाग्यशाली लोग पुस्तकें खरीदते नहीं, उनका संग्रह करते हैं। वास्तव में यह काम अत्यंत सरल है। "पढ़ के लौटा दूंगा, जरा यह पुस्तक दे दीजिये।" विनय से मांगना, फिर उसे अपने संग्रह में जमा कर लेना कितना आसान काम है! यदि कोई देनेवाला इतना लोभी हो कि अपनी पुस्तक वापस पाने का हठ करे, तो "कल दूंगा" कहकर टाला जा सकता है। दस-बीस बार टाला जाये, तो वही आखिर ऊब जायेगा। या यह भी कहा जा सकता है कि "कहीं गुम हो गयी, नयी खरीदकर दे दूंगा।" यदि वह भलामानस हुआ, तो कह बैठेगा—"नहीं भाई, जाने भी दो।" और अगर उसने यह न कहा, तो "कल खरीदूंगा, परसों खरीदूंगा," कहते-कहते ही कई दिन बिताये जा सकते हैं। तब भी न माने, तो यह कहकर पुस्तक उसके सिर पर पटकी जा सकती है कि "परसों आलमारी साफ कर रहा था कि अचानक मिल गयी।"

मैं अपने अनुभव से कई बार किसी के पुस्तक उधार लेकर न लौटाने और नयी खरीदकर देने की इच्छा प्रकट करने पर इन्कार कर चुका हूं। लेकिन एक से साहस कर मैंने पूछा भी था—"अच्छा, इसे कब खरीदकर देंगे?" इस पर उसने कहा था—"खरीदकर क्यों दूं? पैसा दूंगा, आप ही खरीद लीजिये।" इस पर भी मैंने हठ के साथ कहा—"अच्छा, दे ही दीजिये।" उसने मनी-बैग निकालते हुए पूछा—"आपने उस पुस्तक को मूर मार्केट से सिर्फ आठ आने

में खरीदा था न ?" मैंने उस सुंदर ग्रंथ को इतने कम दाम में खरीदने की खुशी को छिपा न सकने के कारण, उसके सामने यह बात कह दी थी। उसे मैं तो भूल गया था; लेकिन वह नहीं भूल सका। मेरा चेहरा फीका पड़ गया, चौंककर कहा—"लेकिन अब चाहूं, तो क्या मूर मार्केट में मिल सकती है? उसका असली दाम तो पांच रुपये है।" पर वह आठ आने मेरे हाथ में रखते हुए बोला—"ये आठ आने लीजिये। जब मिले, तभी खरीद लीजियेगा।"

उत्तम पुस्तक पढ़कर मित्रों और परिचितों के आगे उसकी प्रशंसा किये बिना रहा नहीं जाता। प्रशंसा सुनकर वे पूछे बिना नहीं रहते कि वह पुस्तक क्या आपके पास है? झूठ न बोल सकने की स्थिति में किये हुए अपराध को स्वीकार करनेवाले मुजरिम की भांति स्वीकार करना पड़ता है कि हां, मेरे पास है। बस उसकी मांग हुई और हमें देना पड़ता है। यदि न दिया, तो क्या आश्चर्य कि विख्यात अमरीकी लेखक मार्क ट्वेन के हाथों जैसे किसी ने पराभव का अनुभव किया था, वैसे ही हमें भी करना पड़े।

मार्क ट्वेन ने एक दिन अपने पड़ोसी से किसी पुस्तक का नाम लेकर पूछा कि क्या यह पुस्तक आपके पुस्तकालय में है? उसने जवाब दिया—"क्यों नहीं, जरूर है। आप चाहें, तो मेरे पुस्तकालय में बैठकर खुशी से पढ़ सकते हैं।" मार्क ट्वेन "थैंक्स"—कहकर चुप रह गये। कुछ दिन बाद उसी पड़ोसी को लान मोवर (घास काटनेवाली मशीन) की जरूरत पड़ी। उसने मार्क ट्वेन से पूछा—"क्या आपके पास लान मोवर है?" मार्क ट्वेन ने उत्तर दिया—"हां-हां, जरूर है। चाहें तो आप उसका मेरे लान पर खुशी से उपयोग कर सकते हैं।"

कुछ लोग पूछ सकते हैं कि पुस्तकें खरीदने और उन्हें जोड़ने से क्या लाभ, जब कि आज सभी नगरों में कितने ही पुस्तकालय हैं। पर धर्मशाला और सार्वजनिक पुस्तकालय में बहुत कुछ समानता है। धर्मशाला संकट में ही काम देती है, स्थायी निवास तो घर में ही हो सकता है।

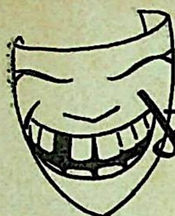
इसी प्रकार सार्वजनिक पुस्तकालय में मनोवांछित पुस्तक का मिलना कठिन होता है। यदि मिल भी जाये, तो एक सप्ताह अथव. एक पक्ष में ही वापस कर देनी होती है। यही कारण है, विशाल सार्वजनिक लाइब्रेरी की अपेक्षा अपने छोटे-से पुस्तकालय पर ही मेरा प्रेम और विश्वास अधिक है।



एक सज्जन घने कुहरे में अपनी कार आगे-आगे चलनेवाली एक कार के पीछे-पीछे चलाते रहे। अचानक ही आगे चलने वाली कार रुक गयी, और पीछे वाली कार जोरों से उससे टकरा गयी। पीछे वाली कार के मालिक ने झुंझलाते हुए कहा—"क्यों भाई, कार रोकने के पहले आपने सिगनल क्यों नहीं दिया ?"

"सिगनल क्यों दूं ? मैंने तो कार अपने गैरेज में रोकी है।" जवाब मिला।





मधुरेण समापयेत्

अमरीका में गत नवंबर में चुनाव हुए, हमारे यहां अगले महीने मध्यावधि चुनाव होने वाले हैं। चुनाव सभाओं में हास्य और व्यंग्य अमोघ अस्त्र का काम करते हैं। चुनाव-संबंधी ये लतीफे शायद किसी देसी उम्मीदवार के भी काम आ जायें।

मत चूके चौहान :

डेमोक्रैटिक पार्टी के सेनेटर विलियम जे० ब्रायन चुनाव दौरा करते हुए एक जगह पहुंचे, जहां काफी लोग उनका भाषण सुनने के लिए जमा थे। पर वहां कोई मंच नहीं बना था, जिस पर खड़े होकर वे भाषण दें। सेनेटर ने नजर दौड़ायी, तो पास ही कूड़े का काफी ऊंचा ढेर दिख गया। लपककर वे उस पर चढ़ गये और इस अप्रिय परिस्थिति का विरोधी दल के विरुद्ध उपयोग करते हुए बोले—"महिलाओ और भद्र पुरुषो ! अपने राजनीतिक जीवन में यही पहला अवसर है, जब मैं रिपब्लिकन पार्टी के मंच पर से भाषण दे रहा हूं।"

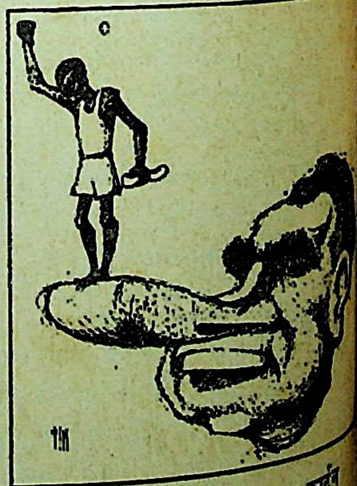
मियां का जूता...... :

दासता के घोर विरोधी सेनेटर चार्ल्स समनर की हाजिरजवाबी गजब की थी। अमरीकी गृहयुद्ध से कुछ पहले वे पादरियों की एक सभा में दासता के विरुद्ध भाषण दे रहे थे, बीच में एक पादरी ने उन्हें टोका—"आप दक्षिणी राज्यों में जाकर वे दासता-विरोधी भाषण क्यों नहीं देते ? आखिर दासता तो वहीं है।" चट से उत्तर मिला—"आप भी तो लोगों को दोजख से बचाने की बातें करते हैं, तो आप खुद दोजख क्यों नहीं जाते ?"

आशु प्रतिभा :

एडलाई स्टीवेन्सन १९५२ के चुनाव में तूफानी दौरे पर थे। उस दिन उन्हें कनेक्टीकट राज्य के दस शहरों और कस्बों में बोलना था। जब वे एक शहर का कार्यक्रम

विजयी निक्सन



'ला एक्सप्रेस' में टिम का कार्टून

जनवरी

निबटाकर चल देते, तो कार में बैठे स्थानीय कार्यकर्ता उन्हें अगले शहर के बारे में जानकारी देते जाते थे। मगर सड़क के किनारे जगह-जगह खड़े लोगों की नारेबाजी इस कार्य में विघ्न डाल रही थी। सहायक उन्हें बता रहा था कि अगले कस्बे में घड़ियां बनती हैं... यहां का मेयर जिम केसी, जो आज की सभा का अध्यक्ष होगा, डेमोक्रेटिक पार्टी का सदस्य है और वह यहां के मछली बाजार का मालिक है......और रिपब्लिकन पार्टी के सेनेटर टैफ्ट दो-तीन दिन पहले चुनाव-प्रचार के सिलसिले में यहां आये थे...... इतने में उनकी मोटर उस कस्बे के चौक में सभास्थल पर पहुंच गयी।

स्टीवेन्सन ने भाषण शुरू करते हुए अपने मित्र मेयर जिम केसी का आभार माना और कहा—"मैं जानता हूं, इस चौक में जो बास आ रही है, वह आपके मेयर और मेरे मित्र जिम केसी के साफ-सुथरे मछली बाजार से नहीं आ रही है; बल्कि यह पिछले हफ्ते इस चौक में रिपब्लिकन पार्टी की जो सभा हुई थी, उसकी बदबू है।

और मैंने सुना है, आप लोगों ने रिपब्लिकन सेनेटर राबर्ट टैफ्ट को अपने यहां बनी एक सुंदर घड़ी भेंट की है। लेकिन देवियो और सज्जनो, मेरे माननीय मित्र राबर्ट टैफ्ट को घड़ी देना ही काफी नहीं है। अच्छा होता, आप उन्हें एक पंचांग देते। क्योंकि टैफ्ट साहब और उनकी पार्टी को अभी तक यह नहीं मालूम है कि इस समय बीसवीं सदी चल रही है।"

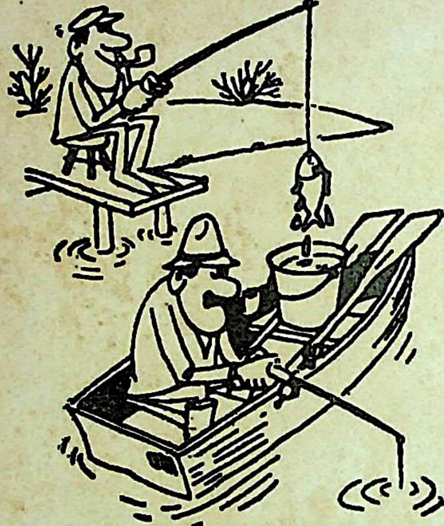
सरफरोशी की तमन्ना :

लेकिन सेनेटर टैफ्ट भी कम हाज़िर-जवाब नहीं थे। एक बार वे भाषण दे रहे थे कि श्रोताओं में से किसी ने एक सड़ी-गली बंदगोभी निशाना साधकर उनके पैर के पास फेंकी। टैफ्ट ने तुरंत टिप्पणी की—"विरोधी दल से मुझे बड़ी ईर्ष्या होती है। उसमें ऐसे बलिदानी कार्यकर्ता हैं, जो पार्टी के लिए खुशी से अपना सिर काटकर फेंक देते हैं।"

हृदय के उद्‌गार :

और चुनाव सभाओं में हास्य जितना ही प्रभावशाली शस्त्र है नाटकीयता। न्यूयार्क के भूतपूर्व मेयर विलियम ओ'ड्वायर बड़े नाटकीय व्यक्ति थे। हर चुनाव सभा में भाषण देने के लिए खड़े होते ही वे जेब से भाषण के लिए तैयार किये हुए 'नोट्स' का पुलिंदा निकालते। फिर श्रोताओं पर नजर डालते और अलग-अलग पंक्तियों में बैठे दस-बीस श्रोताओं से "हलो" कहकर मुस्कराते हुए कहते—"देवियो और सज्जनो, इतने सारे निजी मित्रों के सामने बोलते हुए इन नोट्स की क्या आवश्यकता ?" फिर बड़ी अदा से वे उन 'नोट्स' को फाड़ डालते और अपने हृदय पर दायां हाथ रखकर कहते—"आप लोगों के बीच तो मैं यहां से बोलना पसंद करता हूं।"

पुराने अखबारी संवाददाता दावा करते हैं कि ऐसे ही एक भाषण के बाद उन फटे हुए कागजों की जांच की गयी, तो वे उनकी पत्नी की लिखी हुई 'शापिंग' लिस्टें निकलीं।



बंद हुई लोकसभा, मंत्री सब व्यस्त हुए भाषण-उद्घाटन में – "जनसेवा असली यही है कि जनता को मेहनत का मौका दें, रूस औ' अमरीका को भेजनी हैं मछली!"

व्याज-आत्मनिंदा :

राष्ट्रपति रूजवेल्ट बड़े हंसोड़ थे और चुनाव भाषणों में अपने बारे में कई मजाकिया किस्से सुनाया करते थे। उनके प्रिय किस्सों में से एक वेस्टचेस्टर शहर के एक भलेमानस के बारे में था। वेस्टचेस्टर उन दिनों रूजवेल्ट के विरोधी रिपब्लिकनों का गढ़ था और रूजवेल्ट का नाम लेना भी वहां मानो कुफ्र था।

हां तो, रूजवेल्ट का किस्सा यों है कि वेस्टचेस्टर के ये रिपब्लिकन सज्जन रोज सवेरे लोकल ट्रेन के स्टेशन पर अखबार बेचनेवाले के पास जाते और अखबार लेकर उसके पहले पन्ने पर सरसरी नजर डालकर अखबार लौटा देते, फिर ट्रेन पकड़ने के लिए दौड़ पड़ते।

बरसों यही क्रम चलता रहा, तो एक दिन अखबार बेचनेवाले ने उनसे पूछा कि रोज सवेरे आप ऐसा क्यों करते हैं?

उत्तर मिला–"मुझे एक मृत्यु-सूचना में दिलचस्पी है।"

"लेकिन मृत्यु-सूचनाएं तो दूसरे पन्ने पर रहती हैं, न कि पहले पन्ने पर!"

"ठीक कहते हो भाई, लेकिन जिस मृत्यु में मुझे दिलचस्पी है, उसकी सूचना पहले पन्ने पर ही रहेगी।"

एक और तीर :

इस प्रसंग का संबंध भी मृत्यु से ही है, लेकिन राष्ट्रपति की मृत्यु से नहीं। वुडरो विल्सन उस समय अभी राष्ट्रपति नहीं, बल्कि न्यूजर्सी के राज्यपाल थे। एक दिन राज्य के सड़क विभाग के अध्यक्ष की मृत्यु हो गयी।

उसी रात २ या ३ बजे के करीब राज्यपाल विल्सन के शयन-कक्ष में टेलिफोन की घंटी बज उठी। विल्सन ने फोन उठाया। फोन करनेवाले ने अपना नाम बताया। वह उसी राज्य का एक छुटभैया राजनीतिज्ञ था। उसने कहा–"राज्यपाल महोदय, मुझे पता चला है कि सड़क विभाग के अध्यक्ष मर गये हैं। मैं उनकी जगह लेना चाहता हूं।"

विल्सन ने आधी नींद में भी एक जागरूक राजनीतिज्ञ की तरह उत्तर दिया–"अगर ग़ोरकुन (कब्र खोदनेवाला) को एतराज न हो, तो मुझे कोई एतराज नहीं।"





लन्दन

के लिए हफ़्ते में

१४

सर्विसें

यूरोप से होकर

और न्यू यॉर्क के लिए तो

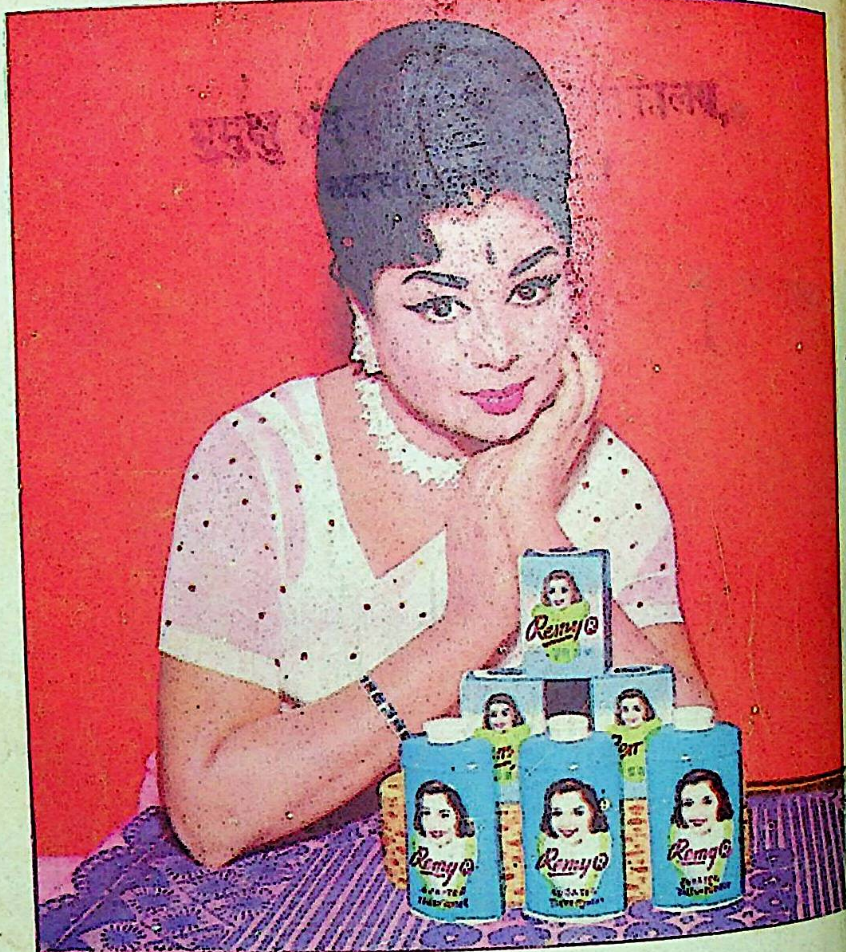
हर रोज सर्विस

पेरिस के लिए हफ़्ते में ५ सर्विसें
फ्रैंकफर्ट के लिए हफ़्ते में ५ सर्विसें
जेनेवा के लिए हफ़्ते में ३ सर्विसें
ज्युरिख के लिए हफ़्ते में २ सर्विसें
प्राग के लिए हफ़्ते में २ सर्विसें
ब्रुसेल्स के लिए हफ़्ते में १ सर्विस
मास्को के लिए हफ़्ते में २ सर्विसें
रोम के लिए हफ़्ते में ४ सर्विसें

एअर-इंडिया

सहयोगी: बी. ओ. ए. सी. और क्वैन्टस

HTA-AI 7942


Remy

अप्रैल

नवनीत

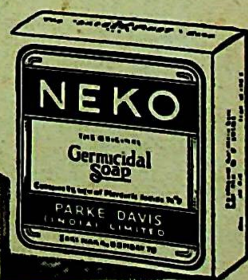
[हिन्दी डाइजेस्ट]

१९६१



निको
कृमिनाशक साबुन
पार्क-डेविस की एक बनावट

जो आपकी त्वचा को साफ और तन्दुरुस्त रख, उसे मुहासा, ददोरा, काले दागों तथा कई अन्य चर्म रोगों से मुक्त रखता है। **निको** से हमेशा बाल धोने से इसका जन्तुघ्न फेन फ़ुसी का बहुत अच्छा प्रतिकार करता है। मानी हुई उपयोगितावाला **निको** एक साथ तीन सेवाएं करता है—सफाई, रक्षण और जन्तुनाश। आपकी त्वचा को जिस सम्हाल की जरूरत है उसे **निको** के रोजाना व्यवहार से पूरी करें।



निको®

कृमिनाशक साबुन रोजाना इस्तेमाल कीजिये

बस दो या तीन बच्चे :
होते हैं घर में अच्छे



परिवार नियोजन केन्द्र की पहचान लाल तिकोन





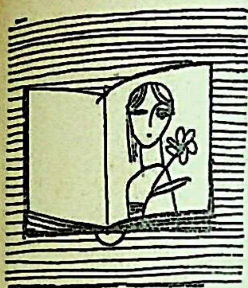

भवन-निर्माताओं की सबसे बड़ी पसंद
हिन्दालको अल्युमिनियम के
ढले हुए सामान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युग-युग का भारत मृत नहीं हुआ है, न उसने अपनी अंतिम सर्जनक्षम वाणी ही उच्चारित की है; वह जीवित है और उसे अपने लिए तथा मानव-समष्टि के लिए अभी भी कुछ करना है।

—श्रीअरविंद


सिम्पलेक्स वाश 'एन' वीयर साड़ी



संचालक
श्रीगोपाल नेवटिया
प्रधान संपादक
सत्यकाम विद्यालंकार
संपादक
नारायण दत्त
सहकारी
परमेश श्रीवास्तव
गिरिजाशंकर त्रिवेदी
सज्जाकार
ठकोर राणा
प्रबंध-संचालक
हरिप्रसाद नेवटिया
विज्ञापन-व्यवस्थापक
महेंद्र महेता



नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

वर्ष १८ अप्रैल १९६९ अंक ४

इस अंक में

१७ चांद का उपहार
विनयधर
१८ परछाईं का वध
रमण महर्षि से संवाद
१९ निर्माल्य और निर्मूल
मार्तंड महाजन 'ज्ञ'
२० दर्शनशास्त्र का दायित्व
स्व० डा० संपूर्णानंद
२४ पुरखों की थाती
संत फ्रांसिस द सेल्स
२५ मेरे गुलाब, मेरे गुरु !
सत्यम् भाई
२६ फूलों का आत्म-निवेदन
काका कालेलकर
२८ आधे के हिस्सेदार
रामधारीसिंह दिनकर
३३ सन २०००
हरमन कान्ह
३७ पराग का बादशाह
... ...
४० हमारा विज्ञान, हमारे वैज्ञानिक
चंदन
४५ यह मोह छोड़िये
'हिन्दुस्तान टाइम्स' से

४८ पत्र-परामर्श ... ...
४९ संगीत का बागबान — फ्रैंक एस० फायसाउक्स
५२ मां !...... मेरी मां ! — भगवानदास वर्मा, कुणाल सिंह
५६ दो पहाड़ : एक बूढ़ा, एक जवान — डा० खड्गसिंह वल्दिया
६२ शक्ति का अंतःस्रोत — एमिल कू
६४ मरुभूमि में विज्ञान की गंगोत्री — गोविंद रत्नाकर
६९ अमिट रेखाएं — दत्त, सिंह, कुसुम, रावल
७२ पांच कविताएं — त्रिवेदी, मिश्र, कुसुमाग्रज, मल्लिका, सराफ
७३ शेरनी को श्वासदान — अखिल कुमार
७६ आवश्यकता है खेलने वालों की — अश्विनी कुमार
७९ उमाम्बा — डा० विलास गुप्ते
८० यहां रहिये, यहां पढ़िये ... ...
८१ मातृभूमि का ऋण — हरिमोहन शर्मा
८५ रक्त की हर बूंद बची रहे — सरा आर० रीडमन
९६ स्तालिन का बेटा, बेचारा — माइकल बुदेक
१०१ नन्हा नगर, नन्हे नागरिक — परमेश श्रीवास्तव
१०४ चकोर भूपाली — कन्हैयालाल कपूर
१०८ को-हसिन की पत्नी — जागई
११२ न्याय के लिए — अर्विंग स्टोन
१२९ सस्सी-पुन्नू (पुस्तक-संक्षेप) — गुरबख्श सिंह
१४५ जब मौत घर में आये — हेलीन एस० आर्नस्टाइन
१४९ वह भीषण रेल-यात्रा — सत्यवती शर्मा
१५५ खोज-खबर — मलय
१६१ पाप और प्रायश्चित्त — वि० ल० मुजुमदार
१६५ आगे बढ़कर मिलिये ... ...
१६६ सार-सरोवर ... ...

मुखपृष्ठ का चित्र : चित्तार

चित्रसज्जा : अल्बर्ट मैग्नस, हेनरी मूर, हेलेन शिगैला, ओके, शेणै, राणा, गोस्वामी।

हमारा पता : नवनीत प्रकाशन लि० ३४१ तारदेव, बम्बई—३४. फोन : ३७२८४७

श्री हरिप्रसाद नेवटिया द्वारा नवनीत प्रकाशन लि०, ३४१ तारदेव, बंबई—३४ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६।४८ खेतवाड़ी बैक रोड, बंबई—४ में मुद्रित।

अप्रैल
१९६९

नवनीत
[हिन्दी डाइजेस्ट]

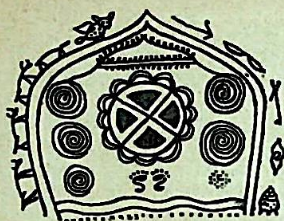
संसार के नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान का प्रतिनिधि मासिक

चांद का उपहार

जेन गुरु र्योकन पर्वत की तलहटी में एक पर्णकुटी में सादगी से जिंदगी गुजारते थे। एक सांझ उनकी अनुपस्थिति में एक चोर कुटिया में घुस आया, मगर वहां कुछ न पाकर खाली हाथ लौट चला। तभी र्योकन उसके सामने पड़ गये। वे सारी बात समझ गये। बोले– "भैया, तुम इतनी दूर से मुझसे मिलने आये, सो मैं तुम्हें खाली हाथ कैसे जाने दूं? लो, मेरा यह चोगा लेते जाओ।" और अपना चोगा उतारकर उसे दे दिया। चकित चोर चुपचाप चोगा लेकर वहां से खिसक गया।

तब तक चांद निकल आया था। नग्नदेह गुरु र्योकन एक चट्टान पर बैठकर मुग्ध भाव से चांदनी की छटा देखते रहे। उनकी काया ठंड से कांप रही थी, परंतु उनकी आत्मा सौंदर्य-सिंधु में स्नान कर रही थी। उनके मुंह से निकला–"अभागा आदमी! काश, मैं उसे यह खूबसूरत चांद उपहार में दे सकता!"

—विनयधर



परछाईं का वध

एक भक्त : क्या मुझे अपना व्यापार-व्यवहार छोड़कर वेदांत-ग्रंथों के अध्ययन में लग जाना चाहिये ?

भगवान : यदि भौतिक वस्तुओं की कोई स्वतंत्र सत्ता हो, अर्थात् यदि तुम से अलग कहीं उनका अस्तित्व हो, तो ही तुम उनसे अलग कहीं दूर जा सकते हो। परंतु तुम से पृथक् उनका अस्तित्व है ही नहीं; उनकी सत्ता तुम पर, तुम्हारे विचारों पर निर्भर है। सो उनसे बचने के लिए भला तुम कहां जा सकते हो ? और जहां तक वेदांत-ग्रंथों के पढ़ने का सवाल है, चाहे जितनी पुस्तकें तुम पढ़ते रहो, वे तुम्हें बस यही बतायेंगे—"अपने अंदर की आत्मा को जानो।" आत्मा पुस्तकों में नहीं पायी जा सकती। तुम्हें स्वयं ही उसे अपने अंदर से प्राप्त करना होगा।

लगभग यही प्रश्न दोपहर को एक भक्त ने पूछा और भगवान ने यह उत्तर दिया :

"तुम संसार से या भौतिक वस्तुओं से भागकर भला जाओगे कहां ? वे तो आदमी की परछाईं की तरह हैं, जिससे बचकर आदमी भाग नहीं सकता। एक दिलचस्प कहानी है। एक आदमी ने अपनी परछाईं को दफना देने की ठान ली। उसने एक गहरा गढ़ा खोदा। गढ़े के तले में अपनी परछाईं देखकर उसे बड़ी खुशी हुई कि अब परछाईं नीचे दब जायेगी। उसने उत्साह-पूर्वक परछाईं पर मिट्टी डालनी शुरू कर दी। गढ़ा भरते-भरते पूरा भर गया। और तब वह आदमी यह देखकर चकित और स्तब्ध रह गया कि परछाईं गढ़े के ऊपर विराजमान है। इसी तरह, सांसारिक वस्तुएं और उनका विचार तब तक तुम्हारे साथ बने ही रहेंगे, जब तक तुम आत्मा को नहीं जान लोगे, पा नहीं लोगे।"



बोकेरेत में आग लगी और सब मुहल्ले जल गये। केवल वह मुहल्ला बचा रहा, जिसमें यहूदी धर्माचार्य हुना रहते थे। लोगों ने कहा—यह हुना के पुण्य का प्रभाव है। उस रात लोगों को एक सपना पड़ा। उसमें उन्हें बताया गया कि हुना की पुण्यराशि इतनी बड़ी है कि मुहल्ले को जलने से बचाने-जैसे छोटे कार्य के लिए उसकी आवश्यकता नहीं। यह तो उसी मुहल्ले की एक औरत के पुण्य का परिणाम है, जो अपनी अंगीठी सुलगाकर दूसरे लोगों को उपयोग करने के लिए दिया करती है।



निर्माल्य और निर्मूल्य

मार्तंड महाजन 'ज्ञ'

एक विशाल मंदिर। मंदिर के आगार में सुशोभित एक नंदादीप। दीप के प्रकाश में आलोकित एक भव्य देव-प्रतिमा। प्रतिमा पर चढ़े हुए अगणित पुष्प। कुछ खिले, कुछ अधखिले, कोई सौरभपूर्ण, कोई निर्गंध, कुछ आकर्षक, कुछ साधारण। किंतु सब अतीव प्रसन्न थे। किसी के मन में यह कल्पना तक नहीं थी कि वह देव-प्रतिमा के मुकुट पर है अथवा भाल पर; भगवान के पवित्र चरण-कमलों में है या उनसे दूर। सभी के मन में एक ही बात थी कि जो कुछ प्रकृति ने उन्हें मुक्तहस्त से दिया था, वह उन्होंने अपने आराध्य के चरणों में समर्पित कर दिया। उनके जीवन की यही एक मात्र साध थी, और वह पूर्ण हो गयी थी। उस पूर्णता का उन्हें संतोष था।

दूसरे दिन सौंदर्य एवं सौरभ से परिपूर्ण पुष्पों का एक और थाल सुसज्जित था। सभी समर्पित होने को व्यग्र थे। किंतु देव-प्रतिमा पर चढ़े पुष्पों का निर्माल्य-स्वरूप देखकर वे दुःखी हुए। उनका वहां से हटाया जाना देखकर, उनका दुःख विद्रोह में परिणत हो गया। एक आक्रोश गूंज उठा—"हम देव-प्रतिमा पर नहीं चढ़ेंगे! क्या हमारे स्वार्पण का यही अंत है? चढ़ना, मुरझाना और निर्माल्य होकर हटाया जाना? हम निर्माल्य नहीं होंगे......हम निर्माल्य नहीं बनेंगे......"

इस आक्रोश के साथ ही निर्माल्य के ढेर से एक गंभीर स्वर सुनाई दिया:

"बंधुओ! समर्पण व्यापार नहीं होता। इच्छाओं की समाप्ति का नाम ही समर्पण है। जो खिलता है, वह मुरझाता ही है! यह संसार परिवर्तनशील है। इसमें स्थैर्य नहीं है। फिर भी यदि तुम अपना सौंदर्य और सौरभ अनादि-अनंत समझते हो, तो तुम्हें हाट-बाजार की ललचायी दृष्टि में, मादक रात्रि में या शिष्टाचार के एक अंगुल पानी-भरे गुलदस्तों में ही सजना होगा। वहीं तुम्हारा स्थान होगा!

समर्पण ही जीवन का साफल्य है, इस कठोर सत्य को समझने के लिए उस कठिन क्षण तक तुम्हें रुकना होगा, जब पश्चात्ताप की स्वरलहरियों पर कोई बंजारा तुम्हारे निकट से यह गाता हुआ जायेगा—तूने हीरा जनम गंवाया......! तब तुम्हारी आंखें खुलेंगी, तब तुम्हारा अहं नष्ट होगा! किंतु तब तक बहुत विलंब हो चुका होगा। तब तुम निर्माल्य नहीं, निर्मूल्य होगे!





राजनीति की व्यस्तताओं के बीच भी स्वर्गीय डा० संपूर्णानंदजी का सत्यान्वेषण का सारस्वत व्रत कभी नहीं टूटा। उनके दर्शन-ग्रंथ 'चिद्विलास' की भूमिका के कुछ अंश यहां सादर उद्धृत किये जा रहे हैं।

स्वर्गीय डा० संपूर्णानंद

दर्शनशास्त्र का दायित्व

भारत के विद्वानों ने दर्शन को मोक्षशास्त्र माना है। मैं भी ऐसा ही मानता हूं। परंतु मेरे लिए दर्शन का प्रवेश-द्वार पहले से भिन्न है। बार-बार जन्म और मरण का भय दिखलाना, माता के उदर में पड़े अर्भक के कल्पित कष्टों की जुगुप्सित कहानी सुनाते रहना, मुझे अच्छा नहीं लगता।

निस्संदेह जो मूढ़धी बारंबार जन्म-मरण, दुःख और अविद्या से छुटकारा पाने की बात नहीं सोचते, वे दयनीय हैं, दुर्लभ और अमूल्य नरदेह को फेंक रहे हैं। परंतु प्रायशः मृत्यु उतनी भयानक घटना नहीं होती, जितना कि कुछ साधु-महात्माओं की पोथियों में दिखलाया जाता है।

हाथ-पांव ऐंठना इस बात का सूचक तो है कि प्राण शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों से खिंच रहा है; परंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मुमूर्षु को गहरी पीड़ा हो रही है। मृत्युकाल में बहुधा नाड़ी-संस्थान शिथिल पड़ जाता है और मस्तिष्क काम नहीं करता; इसलिए अनुभूति होती ही नहीं।

ऐसी पोथियों में प्रायः यह भी लिखा रहता है कि प्रसव-वेदना से व्यथित होकर गर्भस्थ शिशु भगवान से प्रतिज्ञा करता है कि अब धर्माचरणरत रहूंगा और तुम्हारी भक्ति करूंगा। यह सब कथन कल्पना मात्र है।

बार-बार जन्म-मरण का होना, अर्थात् बार-बार शरीर धारण करना जीवन के

ज्ञान का परिणाम है। अज्ञान स्वतः हेय है, उससे कई प्रकार की हानि होती है। परंतु जन्म-मरण के दुःसह दुःख के अतिरंजित चित्र किसी विचारशील मनुष्य को प्रभा-वित नहीं कर सकते। अविचारशील हठी स्वभाव वाले भी ऐसी बातों से नहीं घबराते।

इसी प्रकार वैराग्य को दृढ़ करने के लिए ...री पोथियों में बहुत-सी ऐसी बातें कही जाती हैं, जो निःसार और निंद्य होती हैं। स्त्रियों की निंदा और उनके शरीर के गोप्य अंगों का विस्तृत वर्णन करके बुरा-भला कहना कुरुचि और अभद्रता का द्योतक तो है ही, उससे यह भी ध्वनि निकलती है कि कहने वाला स्वयं विरक्त नहीं है और गाली ...ने के बहाने उन वस्तुओं का वर्णन करके ...पने को तृप्त कर रहा है, जिसके लिए ...सका चित्त लालायित है।

स्त्रियों की निंदा करने वालों को यह नहीं ...ता कि पुरुष की निंदा भी प्रायः उन्हीं ...ब्दों में की जा सकती है। ऐसी दुर्बल नींव ...र ज्ञान का सुदृढ़ दुर्ग नहीं उठ सकता।

मेरी समझ में पुरुषार्थों की विवेचना ...क्षाभिमुख ले जाने का प्रशस्ततर मार्ग है। अर्थ और काम मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियां हैं। यह शास्त्र की अपेक्षा नहीं ...ती। विचारशील मनुष्य को इन्हीं प्रवृ-त्तियों से धर्म की आवश्यकता प्रतीत होने ...गती है और धर्म उसे मोक्ष की ओर ले ...ता है। ज्ञान स्वतः उपादेय है; क्षुद्र ...लोभन और भय उसकी उपादेयता को ...टा नहीं सकते।

विज्ञान ने जगत् के प्रतीयमान रूप पर बहुत प्रकाश डाला है। दार्शनिक इस वैज्ञा-निक प्रगति की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि दर्शन विज्ञान का अनुचर बन जाये। दर्शन विज्ञान के विभिन्न अंगों का स्वामी है। वह उनकी सामग्री का उपयोग करता है, उनका सम-न्वय करता है और उनकी भूलें भी दिख-लाता है।

दर्शन स्वयं विज्ञान की शाखा नहीं है; परंतु वैज्ञानिक सिद्धांतों पर उससे प्रकाश पड़ना चाहिये। ज्यों-ज्यों विज्ञान आगे बढ़ता है, त्यों-त्यों उसके सामने ऐसे प्रश्न आते हैं, जिन्हें दर्शन अपना क्षेत्र मानता रहा है। यहां दर्शन और विज्ञान मिलते हैं। दर्शन में हमें वह सेतु मिलना चाहिये, जो भौतिक-अभौतिक, दृश्य-अदृश्य, जड़-चेतन को मिलाता है।

क्षिति, अप्, तेज, वायु, आकाश, शब्द,



स्पर्श, रूप, रस, गंध प्राचीन शब्द हैं। इनकी सहायता से भारतीय विद्वान भौतिक जगत् के स्वरूप को समझाते रहे हैं। परंतु यदि इन शब्दों के वही अर्थ हैं, जो सांख्य, न्याय और वैशेषिक के प्रचलित वाङ्मय में किये जाते हैं, तो ऐसा मानना होगा कि जो लोग इन शब्दों से काम लेते हैं, वे सत्य से बहुत दूर हैं।

इस क्षेत्र का विज्ञान ने भी मंथन किया है। अभी उसकी खोज समाप्त नहीं हुई है। संभव है, वह आगे चलकर अपने कई सिद्धांतों को बदल दे। फिर भी जितना निश्चित रूप से ज्ञान है, उतने से ही हम इस बात के लिए विवश हो जाते हैं कि या तो इन शब्दों को और उस विचार-धारा को, जिसमें इन्हें स्थान मिलता है, छोड़ दें—या फिर इनकी नयी निरुक्ति करें।

दर्शन और विज्ञान का विरोध नहीं है। एक से दूसरे को सतत सहायता मिलनी चाहिये। मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि प्राचीन और मध्ययुगीन भारतीय विद्वानों का इस साहचर्य की ओर ध्यान नहीं गया। विज्ञान के और अंगों में न सही, परंतु गणित में इस देश ने बड़ी उन्नति की थी। गणित और दर्शन में घनिष्ठ संबंध है। दिक्, काल और कार्यकारण-शृंखला दोनों के विचारणीय विषय हैं। परंतु न तो हमारे प्रमुख गणिताचार्यों में कोई उल्लेख्य दार्शनिक हुआ और न दार्शनिकों में कोई गणित का ज्ञाता हुआ।

अभी तक हमारे यहां यही परंपरा चली आ रही है कि जो पंडित-गण दर्शन का अध्ययन करते हैं, वे साहित्य और व्याकरण तो पढ़ते हैं, परंतु गणित से दूर रहते हैं। विज्ञान के अंगों में गणित का विषय सबसे सूक्ष्म है। तर्कशास्त्र और गणित में बहुत सादृश्य है। भारतीय दार्शनिकों को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

हमारे प्राचीन दार्शनिक वाङ्मय में दो बड़ी त्रुटियां हैं। एक तो यह है कि उसमें कला के संबंध में कुछ भी नहीं कहा गया है। यह मान लिया गया है कि दर्शन शुष्क विषय है। उसका कला से कोई संबंध नहीं है। साहित्य के विद्वानों ने रस का विचार करते हुए सौंदर्यानुभूति के संबंध में कुछ अवश्य कहा है, पर उनका निरूपण अधूरा है। वस्तुतः अनेक

घुड़सवारी

एक दुःखी किसान गृहस्थ ने हसीदी गुरु कोब्रिनर से कहा—"महाराज, बुरी इच्छाएं बार-बार मुझे सताती हैं और मैं बार-बार भूलें कर बैठता हूं, क्या करूं?" गुरु ने उससे पूछा—"तुम घुड़सवारी करते हो?" उत्तर मिला—"हां, महाराज।"

"अगर कभी घोड़े पर से गिर पड़ते हो, तो क्या करते हो?"

"फिर चढ़ जाता हूं, महाराज।"

"बुरी इच्छाओं को घोड़ा समझो। जब भी गिर पड़ो, उठकर फिर सवार हो जाओ। ऐसा करते-करते अंत में घोड़ा तुम्हारे काबू में आ ही जायेगा।"

यह दर्शन का विषय है।

हमारे पुराने दार्शनिक वाङ्मय में सबसे बड़ी कमी यह है कि उसमें आचार के विषय में कहीं विवेचन नहीं किया गया है। धर्म की चर्चा तो बहुत है, परंतु धर्म के स्वरूप के विषय में तात्त्विक विचार नहीं मिलता। धर्म की कोई प्रत्यक्ष सार्वभौम परिभाषा भी नहीं दी गयी है। जैमिनी कहते हैं—"चोदना लक्षणो धर्म्मः", जिसकी घोषणा, आज्ञा वेद में की गयी है, वह धर्म है। यह धर्म की परिभाषा नहीं है। "जो खान में मिलता है, वह सोना है" कहने से सोने के उद्गम का ही पता चलता है, उसके स्वरूप का बोध नहीं होता।

कणाद "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः," जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो, वह धर्म है—कहकर जैमिनि से तो आगे जाते हैं, परंतु वस्तुतः यह वाक्य भी धर्म का स्वरूप नहीं, वरन उसका फल बतलाता है।

कर्म के परिणाम के संबंध में तो बहुत शास्त्रार्थ मिलता है, परंतु सत्कर्म के संबंध में इतना संकेत पर्याप्त समझ लिया गया था कि जो श्रुति कहे, वह धर्म, सत्कर्म, कर्तव्य है। तैत्तिरीय उपनिषद् में गुरु शिष्य से कहता है :

यदि ते कर्मविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः युक्ता आयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः।

—यदि तुम्हें कर्म (श्रौत-स्मार्त यज्ञादि कर्म), या वृत्त (आचार) के संबंध में विचिकित्सा हो, तो जो विचारशील मृदुस्वभाव धर्मकाम कर्मरत ब्राह्मण हों, उनका अनुकरण करना।

यह आदेश व्यवहार में भले ही काम दे जाये, परंतु शंका की निवृत्ति करने का इसमें कोई उपाय नहीं बतलाया गया है।

इसी प्रकार जब मनुस्मृति कहती है कि आचार के संबंध में "श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः"—श्रुति, स्मृति, सदाचार और जो अपने को प्रिय लगे प्रमाण है, तब भी यही कहना पड़ता है कि यह कर्तव्य की ठीक परख नहीं हुई। अपने को जो प्रिय लगता हो—यह तो ऐसा मार्ग है, जिसमें पदे-पदे शंका होती है।

यह सब आदेश आज पर्याप्त नहीं माने जा सकते। लोग दार्शनिक से वैयक्तिक और सामूहिक धर्म का, सदाचार का स्वरूप पूछते हैं। वे जानना चाहते हैं कि सत्कर्म क्या है? कर्म की अच्छाई की क्या परख है? धार्मिक आचरण के पक्ष में क्या हेतु है?

आज दार्शनिक को राजनीति और अर्थ-नीति, दंड-विधान और शिक्षा के संबंध में सम्मति देनी होगी और मार्ग दिखलाना होगा। यदि वह स्वतंत्र रूप से ऐसा नहीं कर सकता, तो कहना होगा, उसका दर्शन निकम्मा है।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि दर्शन इन प्रश्नों का उत्तर दे सकता है। इसके लिए उसे किसी श्रुति या आप्त पुरुष की शरण में जाने की आवश्यकता नहीं है।



पुरखों की थाती

अशांति, आत्मा के लिए पाप के पश्चात् सबसे घातक चीज है। क्योंकि जैसे राजद्रोह और आंतरिक उथल-पुथल राज्य को पूरी तरह तबाह कर देते हैं और उसे बाहरी शत्रु का सामना करने योग्य नहीं रहने देते, उसी प्रकार विक्षुब्ध और अशांत हृदय न केवल अपने संचित शुभगुणों को बनाये रखने की शक्ति खो बैठता है, अपितु शत्रु के प्रलोभनों का प्रतिरोध करने के साधन से भी हाथ धो बैठता है—और शत्रु तो मौके का लाभ उठाने की घात में रहता ही है।

अपने भीतर महसूस हो रही बुराई से छुटकारा पाने अथवा मनचाही अच्छाई को प्राप्त करने की उत्कट और असंयत इच्छा ही अशांति को जन्म देती है। फिर भी बुराई को उग्रतर बनाने और अच्छाई को दूर भगाने का अशांति और चिंता से बढ़कर कोई साधन नहीं। पक्षी जाल में इसीलिए फंसते हैं कि जब वे देखते हैं कि उनके पांव जाल में पड़ गये हैं, तो वे बेतहाशा छटपटाते हैं और छुटकारा पाने के लिए असंयत हलचल करते हैं, जिससे वे और अधिक उलझ जाते हैं।

इसलिए जब किसी बुराई से छूटने अथवा किसी अच्छाई को पाने की तुम्हारी तीव्र इच्छा हो, तो सबसे पहले अपनी आत्मा को स्थिर और शांत बनाओ, अपनी बुद्धि और मन को उद्वेग-मुक्त करो। फिर धीमे-से, बड़ी नरमी से अपने लक्ष्य के लिए उचित उपायों से प्रयत्न करो। "धीमे से" कहने से मेरा अभिप्राय "उपेक्षापूर्वक" नहीं है, मेरा अभिप्राय है—बिना चिंता, क्षोभ और अशांति के। अन्यथा अपनी इच्छा पूरी करने के बजाय, तुम सारा मामला बिगाड़ बैठोगे और अपने आपको बुरी तरह हैरान कर लोगे।

—संत फ्रांसिस द सेल्स



यह गुलाब, जिसे तुम अपनी भौतिक आंखों से देख रहे हो, अनादि कालों से परम प्रभु की गोद में खिला हुआ है। —साइलीसियस

सत्यम् भाई



पिताजी ने तय किया कि बिजनेस में बच्चा रमेगा नहीं, इसलिए उन्होंने अपना बिजनेस छोड़ दिया और थोड़ी जमीन खरीदकर गुलाब की खेती करने लगे। मैं भी उनकी मदद करने लगा। पिताजी बिक्री-विभाग देखते थे, मैं कलमों को—बागबानी विभाग को—देखता था।

मेरा १७ से २४ साल की उम्र का काल, जो जीवन का गुलाब-काल समझा जा सकता है, गुलाबों की संगति में बीता। और मुझे जितना मानव-संपर्क ने नहीं, उतना गुलाब-संपर्क ने दिया। उनके संपर्क से जीवन के तीन बुनियादी गुण सीखने को मिले—मौन, अहिंसा, ब्रह्मचर्य।

गुलाब की खेती में मैं बिलकुल तल्लीन, एकरूप हो गया था। गुलाबों को बिलकुल तकलीफ न हो, यही खयाल दिन-भर रहता था। जैसे कोई मां अपने बच्चे को संभालती है, वैसे मैं गुलाब की सेवा में लग गया। पौधों की कोमल टहनियों को तकलीफ न हो, इसलिए मैं खेत में घूमते समय जूता पहनता नहीं था, नंगे पैर ही घूमता था। और गुलाब-पुष्प मौन रहते हैं, सो उनकी संगति में मैं भी मौन हो गया। मौन मेरा स्वभाव ही हो गया था। इतना कि मां भी उससे परिचित हो गयी थीं। वे भोजन के समय चुपचाप थाली मेरे सामने रख देती थीं और मैं भी शांति से मौनपूर्वक खा लेता था। शब्दों का आदान-प्रदान नहीं होता था।

एक बार एक पौधा बीमार पड़ गया। पत्तियां काली पड़ गयीं, मुरझा गयीं। मैं उसके

उपचार में लग गया। दिन-रात वही चिंता। उसे दवाइयां देता था, विशेष खाद देता था, पौधों के अस्पताल भी ले गया था। वहां उस पर नियंत्रित धूप-छाया देने का उपचार किया गया। खूब सेवा की। पौधा ठीक हो गया। ताजा दीखने लगा। मैं भी संतुष्ट हो गया।

नित्य की तरह दूसरे दिन सुबह उठते ही खेत में गया और सर्वप्रथम उस पौधे का दर्शन किया। और क्या देखता हूं – उस पर एक छोटी-सी कली हंस रही थी! वह जानता था कि सुबह-सुबह मैं उसे देखने आऊंगा। मेरी सेवा के लिए कृतज्ञता प्रकट करना उसने अपना फर्ज माना था। और सद्यः मिली हुई स्वास्थ्य-पूंजी लगाकर, मौनपूर्वक उसने वह कृतज्ञता प्रकट की थी। मुस्कराती कली जरूरत न रहने पर भी धन्यवाद दे रही थी। जिसने सेवा की, उसे प्रसन्न करने की कितनी प्रेरणा!

एक बार मैंने उत्तर आयलैंड के एक कैटलाग में एक अपूर्व गुलाब पुष्प का वर्णन देखा। उसमें सौ पंखुड़ियां थीं। रंग काला-सा गहरा लाल, जो आम तौर पर देखने को मिलता नहीं है। खुशबू ऐसी कि एक पुष्प भी आस-पास का सारा वातावरण महका दे। मैंने तय कर लिया कि अपने बाग में उसकी कलम लगाऊंगा। एक पौधे की कीमत दस रुपये थी। मैंने एक दर्जन पौधे मंगवाये और रुपये भेज दिये। एक-आध हफ्ते में एअरमेल से पौधे आ पहुंचे।

कलम करने के पहले पौधों को 'एक्लेमेटाइज' (वातावरणानुकूल) करना पड़ता है। वह सारी विधि पूरी करके पौधे लगाये गये। उन पर निगाह रखी गयी। दिन बीतने लगे। नयी कोंपलें निकलीं, कलियां आयीं, फूल खिले। लेकिन फूल कैटलाग में दिये वर्णन से मेल नहीं खा रहे थे। उनका वर्ण, उनकी गंध, पंखुड़ियां बिलकुल मामूली थीं।

मैं बहुत दुःखी हुआ। सोचने लगा कि परदेश में भी ठगने की वृत्ति होती है। तुरंत उस कंपनी को सारा हाल लिखा और सफाई मांगी। उन्होंने फौरन सारी खोज करके जवाब लिखा कि पौधे तो बिलकुल ठीक भेजे गये थे, पर फूल वर्णन के मुताबिक इसलिए नहीं खिले कि कैटलाग में जो वर्णन लिखा है, वह हमारे यहां की आबोहवा के अनुसार लिखा है। आपके यहां की आबोहवा हमारे यहां से भिन्न है। वहां फरवरी में फूल खिलेंगे।

अब राह देखने के सिवा मेरे पास क्या चारा था। कुछ उत्सुकता से ही मैं राह देख रहा था। जैसे-जैसे फरवरी नजदीक आने लगी, वैसे-वैसे पौधे मजबूत, ताजे दीखने लगे। कलियां खिलने लगीं, पंखुड़ियां बढ़ने लगीं, रंग गहरा होने लगा, खुशबू फैलने लगी। और फरवरी माह में हर पौधे का हर फूल ठीक सौ पंखुड़ियां धारण कर, गहरे रंग की मुस्कान के साथ, सारे माहौल को अपनी खुशबू से हमरंग करने लगा। मैं कितने ही फूलों के पास गया और उनकी पंखुड़ियां गिनीं। मन-ही-मन में शर्मिंदा हो गया। एक नयी झांकी मिली।

कुछ दिन पूर्व ये पुष्प सौंदर्यहीन थे और मैंने उसी को उनका सत्य स्वरूप मान लिया था। उन पर अविश्वास किया था। पर योग्य समय आते ही उनका अपना सत्य स्वरूप खिल उठा। दुनिया को प्रसन्न करने का अपना फर्ज उन्होंने समय पर अदा किया। मैं कैसा मूढ़ कि शांति से राह भी न देख सका परिवर्तन की। गुलाबों ने मुझे सिखाया कि मनुष्य मूलतः "अमृतस्य पुत्रः" है।

गुलाब के पौधों में काम-वासना मैंने काफी प्रमाण में देखी। पर बेमौसम वे कभी इस प्रेरणा के अधीन नहीं होते। पौधों में भी इतना संयम देखकर मानव से कितनी ऊंची अपेक्षा की जा सकती है, इसका भान हुआ।

गुलाबों की संगति में बिताये हुए उन दिनों की मेरे जीवन पर अमिट छाप है।



फूलों का आत्म-निवेदन

जब कभी आप सरीखे लोग नये-नये स्थान पर या सभा में जाते हैं, लोगों का न्योता कबूल करते हैं, तो वहां के लोग आपका स्वागत करने के लिए फूलों का हार बनवाते हैं। अच्छे ताजे सुगंधित रंग-बिरंगे फूलों की यौवनपूर्ण प्रसन्नता देखकर सब लोग खुश हो जाते हैं। फूलों-जैसी ताजगी और प्रसन्नता सबके चेहरे पर खिल उठती है। यह तो सब ठीक ही है, लेकिन हमारा खयाल आप लोगों ने कभी किया है? आप आये और हमारा जीवनानंद उसी क्षण मुरझा गया। आपको दूर से देखते ही हमारी छाती में धड़कन शुरू होती है। मन में सोचता हूं—"कहां से आयी यह बला? इनको राजी करने के लिए अब हमारा गला घोंटा जायेगा। अपने-अपने पौधे पर से कठोर अंगुलियों के द्वारा हमें अलग कर दिया जायेगा। और एक ही छोटी-बड़ी रस्सी के द्वारा हमें एक के नजदीक एक को फांसी दी जायेगी।"

आपके गले में हमारा हार देखकर आपकी रमणियां संतुष्ट होती होंगी। लेकिन हम तो आपको उस समय महाकाल समझते हैं। राक्षसों के या भक्तों के सिर काटकर उनकी एक माला बनायी जाती है और वह महाकाल शिवजी के गले चढ़ायी जाती है। आप शिवजी को 'रुंडमालधर' कहते हैं न? सौ वर्ष के पहले शिवजी के ऐसे चित्र घर-घर दिखाई देते थे। आजकल के लोगों को ऐसे बीभत्स चित्र पसंद नहीं आते। लोगों की अभिरुचि में इतना सुधार हुआ, इसका आपको नाज है, इसलिए पूछने की हिम्मत होती है कि क्या देश के नेताओं के गले में जो फूलों के हार होते हैं, वे सब रुंडमाला-जैसे ही अशुभ-अभद्र नहीं हैं?

आप जिसे फूलों की खुशबू कहते हैं, सचमुच वह फूलों का आनंद ही होता है। कुदरत के प्रति वह उनका कृतज्ञता-ज्ञापन ही समझ लीजिये। —काका कालेलकर



कवि-द्वारा कविमित्र के संबंध में :

आधे के हिस्सेदार

रामधारीसिंह दिनकर

बच्चन और मैं दोनों ने साहित्य में उस समय आंखें खोली थीं, जब छायावाद अपने शिखर पर पहुंच चुका था और जब ये आसार आशकार हो रहे थे कि कविता कोई अन्य मार्ग पकड़ने वाली है। हम दोनों पहले-पहल सन १९४५ ई० में कलकत्ते में मिले, जब जापान के राष्ट्रकवि योग नोगूची के सम्मान में कलकत्ते में एक विशाल कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया था। महादेवीजी, भगवती बाबू, रामकुमारजी, मनोरंजनजी, हृदयेशजी, बिस्मिल इलाहाबादी आदि अनेक सुकवियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया था। महादेवीजी के मुख से पहले-पहल मैंने इसी कवि-सम्मेलन में कविता सुनी थी। उसी यात्रा के क्रम में हममें से कई लोग पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी के नेतृत्व में शांतिनिकेतन गये थे। हम लोगों का काव्य-पाठ शांतिनिकेतन में आयोजित एक गोष्ठी में भी हुआ था। महादेवीजी ने उस गोष्ठी में भी काव्य-पाठ किया था। मगर जहां तक मुझे याद है, उस गोष्ठी के बाद किसी और गोष्ठी में महादेवीजी को कविता पढ़ते मैंने नहीं देखा है।

बच्चन से जब मैं पहले-पहल मिला, उसके पूर्व ही मैं उनकी कृतियों से परिचित हो चुका था। शायद वे भी तब तक मेरी दो-चार चीजें पढ़ चुके थे। एक दृष्टि से, हम दोनों समान रूप से भाग्यशाली रहे हैं। हम लोगों की कविता के विरोधी या हमारे निंदक साहित्य में नहीं रहे हों, यह बात नहीं है। मगर जनता का समर्थन हमें आरंभ से ही प्राप्त था। जनता मेरी ओर इसलिए उन्मुख हुई थी कि मेरा आरंभ राष्ट्रीय चेतना के इर्द-गिर्द हुआ था। बच्चन उतने ही जनता के प्यारे इसलिए हो गये कि उन्होंने मस्ती और बेफिक्री के गीत एक अनुपम कलाकारिता के साथ आरंभ किये।

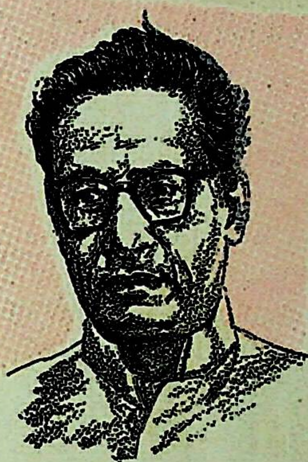
हम लोगों की बातचीत बड़ी ही अंतरंग और कभी-कभी फूहड़ भी होती है। मगर एक गलती मुझसे हो गयी, जिस पर मेरी

[राजपाल एंड सन्स के प्रकाशन 'बच्चन निकट से' में से साभार]

नजर आज पड़ी है। मैं बच्चन से यह पूछना भूल गया हूं कि कभी-कभी उनके भीतर यह लोभ जागा है या नहीं कि मेरे द्वारा रचित किसी कविता के नीचे हस्ताक्षर मेरा नहीं, उनका होता। मगर सच बात यह है कि बच्चन की कई कविताओं को देखकर मैं लुभा गया था और कभी-कभी यह भी सोचने लगा था कि काश, इन कविताओं के नीचे हस्ताक्षर मेरे हुए होते !

कलकत्ते में नोगूची वाले कवि-सम्मेलन के अलावा एक-दो गोष्ठियां और हुई थीं, जिनमें हमने साथ-साथ कविताएं पढ़ी थीं। इन गोष्ठियों में बच्चन के साथ मेरी बात-चीत तो बहुत कम हो पायी, मगर मैंने आंखों के सहारे उन्हें तोलने और आजमाने की कोशिश जरूर की। मुझे याद है कि उस समय बच्चन के प्रति मुझमें ममता का भाव जगा था, उन पर प्रेम और भक्ति उत्पन्न हुई थी। उन दिनों वे राजयक्ष्मा अथवा ऐसी ही किसी बीमारी से चंगे हुए थे, अतएव उनके प्रति श्रद्धा और ममत्व कुछ अधिक ही उत्पन्न हुआ था।

शांतिनिकेतन के बाद जब मैं अपने कर्म-स्थान को लौटा, पं० बनारसीदासजी ने एक पत्र लिखकर मुझे बताया कि आप दोनों कवि मित्र-भाव से रहें और मुझे बतायें कि बच्चनजी आपको कैसे लगे हैं। यह उप-देश चौबेजी ने क्या सोचकर दिया था, इसका मुझे पता नहीं है। बच्चन और मैं कभी भी प्रतिस्पर्धी होकर प्रकट नहीं हुए हैं, न कलकत्ते में हमारे बीच किसी प्रतिस्पर्धा



"मैं कहता हूं, भाई अद्धो !"

का भाव था।

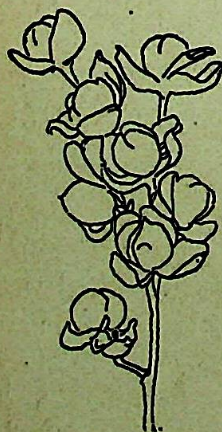
यहां बच्चन का चेहरा मुझे एक करुण प्रसंग में याद आता है। उन दिनों मैं कहीं देहात में सब-रजिस्ट्रार था। अचानक मैंने सुना, बच्चन की पत्नी सख्त बीमार हैं और उनका इलाज डाक्टर भार्गव से करवाने को बच्चनजी उन्हें पटने ले आये हैं। अतः एक रविवार को मैं पटने आया और बच्चन से मिलने अस्पताल गया।

उस दिन वे धोती और कुरता पहने हुए थे। राजयक्ष्मा से वे खुद मुश्किल से उबरे थे, उस पर घातक रोग से ग्रसित पत्नी की चिंता। उनका चेहरा दुर्बल, उदास और गमगीन था, मगर उनके सिर पर के घुंघराले बाल उन्हें तब भी मनोज्ञ बनाये हुए थे। और उनके व्यक्तित्व का सारा तेज तब भी उनकी आंखों से झांक रहा था। बच्चनजी की

आंखें बड़ी नहीं हैं, मगर वे उनके व्यक्तित्व को बराबर व्यंजित करती हैं। उनमें कुछ तो तटस्थता दीखती है, कुछ गहराई और कुछ ऐसी बेधकता, जो बिलकुल ही अनिर्वचनीय है।

बच्चनजी मुझे श्यामाजी (उनकी प्रथम भार्या का यही नाम था) की रोग-शय्या के पास ले गये और उनसे उन्होंने मेरा परिचय कराया। श्यामाजी का शरीर सूखकर कांटा हो गया था। वे खाट से लगी हुई थीं। फिर भी उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर मुझे नमस्कार किया और एक गुलाब का फूल दिया, जो न जाने, कैसे उनके सिरहाने पर पड़ा हुआ था। और फिर बच्चनजी के कान में धीमे-से उन्होंने कोई बात कही। बच्चनजी ने कहा –"इन्हें जब भी कड़वी दवा की घूंट पीनी पड़ती है, तब इनके मुख से तुम्हारी कविता की एक पंक्ति निकल जाती है।

हे नीलकंठ, संतोष करो,
था लिखा गरल का पान तुम्हें।"



जब श्यामाजी की रोगशय्या से हम हटे, बच्चनजी ने कहा– "भाई, मैं खुद थाइसिस से ग्रस्त हुआ था। लोगों ने मुझे बहुत उपदेश दिये कि अमुक जगह पर जाकर अमुक डाक्टर से इलाज करवाओ। मगर उतने पैसे कहां से लाता? मैंने हर दोस्त से यही कहा कि अच्छा तो मैं केवल अपनी तपस्या से होऊंगा और तपस्या के जरिये ही मैं उस रोग से मुक्त भी हो गया। मगर श्यामा का कष्ट नहीं देखा जाता है। तुम समझ सकते हो कि मैं कैसी परेशानियों में मुब्तिला हूं।"

बच्चन ने लाख प्रयत्न किये, मगर श्यामाजी नहीं बच सकीं। और श्यामाजी के शरीरांत के बाद बच्चनजी दर्द से बेहाल, बल्कि विक्षिप्त हो गये। 'निशा-निमंत्रण' और 'एकांत संगीत' उन्हीं बेचैन दिनों की रचनाएं हैं। "इस पार प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा।"

बच्चनजी जब यह कहते हैं कि मैंने वही लिखा है, जो भोगा है, तो वे जरा भी अत्युक्ति नहीं करते। 'निशा-निमंत्रण' और 'एकांत संगीत' को देखकर यह अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि सच्ची कविता घटना होती है, जीवन का यथार्थ चित्रण होती है और जिस कविता में कवि खुद समाया होता है, वही कविता औरों के भी हृदय में समा जाती है।

जब मैं साउथ एवेन्यू (नई दिल्ली) में रहता था, तब भी बच्चनजी विलिंग्डन क्रिसेंट में ही रहते थे। हम दोनों अपने-अपने घर से सुबह में टहलने को चाणक्यपुरी की ओर चले जाते थे। जाते समय हमारा साथ नहीं होता था, मगर टहलने के क्रम में हमारी भेंट अक्सर हो जाती थी। जब भी भेंट होती, मैं यह देखकर खूब हंसता कि बच्चनजी

पत्थर का कोई टुकड़ा गर्दन पर संभाले, सड़क के ओवरसीयर के समान, चले आ रहे हैं। और कौतुक उन्हें भी होता था कि मैं अक्सर नीम के दातुन तोड़कर उन्हें कंधे पर उठाये चलता था।

उन दिनों बच्चनजी को पत्थरों से सांकेतिक प्रतिमाएं बनाने का शौक हो गया था। उन्होंने इस काम के लिए छेनी, हथौड़ी और कुछ रंग भी खरीद लिये थे। रास्ते में चलते समय वे पत्थरों के टुकड़ों को गौर से देखते और कल्पना लड़ाते कि किसी टुकड़े में कोई मूर्ति छिपी हुई है या नहीं। अगर कोई टुकड़ा उन्हें ऐसा दिखाई देता, जिसके भीतर से मूर्ति उभारी जा सकती थी, तो वे उसे उठाकर अपने कंधे पर रख लेते और घर आकर छेनी, हथौड़ी और रंग के प्रयोग से कोई मूर्ति तैयार कर लेते। ऐसी अनेक प्रतिमाएं अब भी उनके बरामदे की शोभा बढ़ाती हैं।

बच्चनजी के इस शौक पर मैं यह टिप्पणी करता था कि "कवि कोई कौतुक रचे बिना शायद जी नहीं सकता है। देखो न, महादेवीजी ने ढेर बिल्लियां-गिलहरियां और बहुत-से कुत्ते और पक्षी पाल रखे हैं। सुना है, जानकीवल्लभजी के यहां भी कई दर्जन बिल्लियां पल रही हैं, जिनमें से प्रत्येक का नाम उन्होंने किसी अप्सरा के नाम पर रखा है। और तुम्हें कुछ न सूझा, तो पत्थर में लग गये हो।"

उन दिनों काव्य-चर्चा के प्रसंग में बच्चनजी अक्सर एक पते की बात कहते थे, "कविता का रंग-ढंग बदल गया और हमें भी



जो लिखना था, लिख चुके हैं। क्या तुम्हें यह नहीं लगता कि हम लोग अपनी ही सीमा में घिर गये हैं? अब जो लिखने लगता हूं, तो साफ दिखाई देता है, इधर 'मधुशाला' राह रोके खड़ी है, उधर 'मधुबाला' है और बाकी दिशाओं में 'निशा-निमंत्रण' और 'एकांत संगीत'। और तुम क्या 'हुंकार,' 'कुरुक्षेत्र' और 'रसवंती' की सीमाओं को लांघ सकते हो? (तब तक 'उर्वशी' नहीं लिखी गयी थी।) एक उम्र में आकर कवि अपनी ही पूर्व कृतियों के वृत्त में घिर जाता है और वह अपनी ही परिधि का उल्लंघन नहीं कर सकता।"

कुंती ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा था कि प्रभो, मुझे हमेशा विपत्ति में रखो, जिससे मैं तुम्हें भूल नहीं जाऊं। मेरी विपत्ति सन १९६३ ई० में आरंभ हुई और जिस क्षण मेरी विपत्ति जन्म ले रही थी, ठीक उसी

समय बच्चनजी पटने में मेरे घर पर विद्यमान थे। मुझ पर आयी विपत्ति के झोंके ने मुझे साधुओं, संतों और भगवान की ओर झुका दिया।

तब से बच्चनजी के साथ मेरी अधिकांश चर्चा अध्यात्म को लेकर चलती रही है। बच्चनजी खुद अध्यात्म की ओर मुड़ गये हैं। उन्होंने गीता के दो-दो अनुवाद प्रकाशित करवाये हैं। किंतु, चर्चा के दौरान वे अक्सर यही कहते हैं, "दिनकर, मुझे तो बुद्धि कहीं बंधने नहीं देती। तुम्हें यदि अमृत मिल जाये, तो मुझे भी चखाना।"

मैं जिस अमृत की तलाश में हूं, वह इस जीवन में मुझे प्राप्त होगा या नहीं, यह मैं नहीं जानता। किंतु, यदि वह प्राप्त हो गया, तो भगवान से मेरी प्रार्थना होगी कि उसका स्वाद बच्चन को भी प्राप्त हो।

इलाहाबाद के साहित्यकार-संसद् ने जब 'कुरुक्षेत्र' काव्य के लिए मुझे सम्मानित किया था और एक हजार रुपये का पुरस्कार दिया था, उस समय गंगा की रेत पर महादेवीजी ने एक अद्भुत समारोह आयोजित किया था—ऐसा समारोह, जिसका जोड़ मैंने तब से आज तक नहीं देखा है। उस समय हिन्दी के अनेक श्रेष्ठ कवियों और लेखकों ने मेरे लिए आशीर्वाद और प्रोत्साहन के बड़े ही मार्मिक उद्गार प्रकट किये थे। जब बच्चनजी की बारी आयी, तो उन्होंने कहा—"दिनकर और मैं जोड़ीदार हैं। जो चीज मुझे मिलती है, उस में आधा हिस्सा उसका है; इसलिए मैं दिनकर से कहता हूं, भाई, अद्धो।"

मगर सभा में मैं कृतसंकल्प होकर गया था। मुझे जो भी पुरस्कार मिला, उसे मैंने भारत कला भवन को दान कर दिया। लेकिन अमृत की प्राप्ति अगर मुझे हुई, तो उसका आधा हिस्सा बच्चनजी को मिल जाये, यह मेरी एकांत कामना है। मैं जिस शक्ति की आराधना में हूं, वही हम दोनों की तृषा मिटा सकती है। अथवा यह भी संभव है कि अमृत की प्राप्ति पहले बच्चन को ही हो और मैं उसका हिस्सेदार बनूं।

मास-भविष्य

भविष्यवाणियां करने में खतरा यह है कि कई बार वे गलत हो जाती हैं। श्रीमती एम० एस० सुब्बुलक्ष्मी विषयक लेख अप्रैल के 'नवनीत' में नहीं छप पाया, मगर मई अंक में आप उसे अवश्य पायेंगे। मई अंक में ही आप ताइवान के प्रसिद्ध कथाकार सुमा संगतुन की दीर्घकथा **'कानशान विला की मालकिन'** पढ़िये और ब्रिटिश सेनानी सर विलियम स्लिम का एक बेजोड़ संस्मरण **'बीता युद्ध, जीता एक सैनिक'** भी।

इनके अतिरिक्त : आंशिक आत्मनिवेदन—डा० एस० राधाकृष्णन्; जीवन एक घर है—जनरल आइजनहावर; वायुयान के डैनों पर हनीमून; रिहर्सल (तमिल कहानी); पुरुषों के लिए गर्भनिरोधक गोली; धरती कितनी बूढ़ी है।

सन २०००

तीस वर्ष बाद बीसवीं सदी समाप्त हो जायेगी। उस समय दुनिया की शक्ल कैसी होगी ? इसका उत्तर अमरीका के विख्यात भविष्यशास्त्री तथा न्यूयार्क के हडसन इंस्टिटचूट के अध्यक्ष हरमन काह्न से सुनिये।

सन २००० में बड़ी सैनिक तथा आर्थिक शक्तियां कौन-सी होंगी ?

क्रमानुसार अमरीका, रूस, जापान, पश्चिम जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड और कम्युनिस्ट चीन। इनमें भी आपस में बहुत अंतर होगा। अमरीका बाकी सबसे बहुत आगे होगा। उसका कुल राष्ट्रीय उत्पादन १०,३८० अरब रुपयों के मूल्य का होगा, जबकि इसकी तुलना में रूस का ४,४५५ अरब रुपयों का, यानी बहुत कम। तथापि ये दोनों देश संसार में सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र होंगे।

आपकी भविष्यवाणियों में सर्वाधिक अनपेक्षित बात कौन-सी है ?

संसार के तीसरे शक्तिशाली देश के रूप में जापान का विकास। जैसे इंग्लैंड सौ वर्षों तक यूरोप पर छाया रहा, वैसे ही बीस वर्ष बाद या इससे भी कम अवधि में, जापान समस्त एशिया पर छा जायेगा। जापान चीन से अधिक जानदार, अनुशासित, उद्यमी तथा तकनीक में कुशल है। आर्थिक रूप से अभी भी वह चीन से ड्योढ़ा आगे है और उसके विकास की गति चीन से दुगुनी रहेगी। चीन के बारे में बहुत-से लोगों को भ्रांति

है कि वह बहुत शक्तिशाली है।

क्या चीन की परमाणु-शक्ति को आप नजरअंदाज नहीं कर रहे हैं ?

अगले दस वर्षों में जापान भी परमाणु-शक्ति-संपन्न हो जायेगा। आज इस विषय में वहां खुलकर बातें की जा सकती हैं,जबकि दो वर्ष पूर्व ऐसा नहीं था। जापान बहुत तेजी से बदल रहा है। १९७० तक वह परमाणु-शक्ति के बारे में निर्णय करने लगेगा। प्रक्षेपास्त्रों का कार्यक्रम उसने तैयार कर ही लिया है।

जापान के पास परमाणु-शस्त्र हो जाने के बाद कौन-से बड़े परिवर्तन होंगे ?

चीन और जापान में युद्ध होने पर जापान जीतेगा। उसकी प्रतिरक्षा-व्यवस्था एंटी-बलिस्टिक प्रक्षेपास्त्रों पर आधारित होगी। चीन ये प्रक्षेपास्त्र नहीं बना सका है और अभी बहुत समय तक नहीं बना सकेगा; क्योंकि उसके लिए आवश्यक तकनीकी आधार चीन के सामर्थ्य से परे है। दूसरा परिवर्तन यह होगा कि जापान के बाद पश्चिम जर्मनी भी पांच वर्षों में परमाणु-अस्त्रों का विकास कर लेगा। और फिर परमाणु-अस्त्रों के प्रसार को रोका नहीं जा सकेगा।

क्या आप जानते हैं कि सन २००० तक विश्व-व्यापी परमाणु-युद्ध होगा ?

नहीं। वास्तव में हम राजनीतिक और आर्थिक दृढ़ता के नये दौर में प्रवेश कर रहे हैं। १९४० से ठीक पूर्ववर्ती वर्षों में हर व्यक्ति यह भविष्यवाणी कर सकता था कि जबर्दस्त युद्ध होकर रहेगा। लेकिन आज कौन-सा देश है, जो दूसरे पर आकस्मिक आक्रमण करके अपने आर्थिक विकास और समृद्धि को खतरे में डालेगा ? कोई बड़ा देश यह खतरा उठाने को तैयार नहीं है। फिर १९४० से पहले इटली, जर्मनी और जापान कुंठाग्रस्त थे। आज कोई बड़ा देश कुंठाग्रस्त नहीं है। चीन भी अपनी विदेश-नीति में काफी विवेक से काम ले रहा है। क्विमाय, मात्सू, हांग-कांग और वियतनाम में उसने हाथ नहीं डाला है। चीन ने तिब्बत पर कब्जा किया और भारत पर आक्रमण किया; लेकिन लंबा युद्ध नहीं छेड़ा। छोटे यानी कम शक्तिशाली देशों, जैसे मिस्र और इजराइल, भारत और पाकिस्तान या ग्रीस और तुर्की के बीच युद्ध छिड़ने की आशंका जरूर है। परंतु बड़ी शक्तियां इनमें नहीं कूदेंगी। बड़े देशों के बीच परमाणु-अस्त्रों के आघात-प्रतिघात हो सकते हैं, लेकिन इसकी भी आशंका कम ही है।

सन २००० तक विश्व की जनसंख्या कितनी होगी ?

परिवार-नियोजन के वर्तमान प्रयत्नों को ध्यान में रखते हुए, ६४० करोड़ के लगभग। इसमें ४७७.७ करोड़ मनुष्य अफ्रीका, एशिया और दक्षिण अमरीका के अविकसित देशों के होंगे। अभी कुल जनसंख्या का ६८ प्रतिशत इन देशों में है। तब यह प्रतिशत बढ़कर ७५ हो जायेगा।

लोगों की परिस्थिति कैसी होगी ?

विकासशील देशों में आमदनी का औसत १००० रु० से बढ़कर लगभग २,५०० रु०

हो जायेगा। लेकिन विकसित तथा विकासशील देशों का अंतर डयौढ़ा बढ़ जायेगा। विश्व के दो भाग हो जायेंगे।

इस जबर्दस्त असमानता के कारण संघर्ष या युद्ध नहीं होगा?

अविकसित देशों में विकसित देशों का मुकाबला करने का सामर्थ्य ही नहीं होगा। उनके रोष का विस्फोट होगा, तो २१ वीं शताब्दी में, सन २००० से पहले नहीं।

सन २००० तक कितने देशों के पास परमाणु-अस्त्र होंगे?

लगभग पंद्रह के पास। आज तो यह संभव नहीं लगता; परंतु सन २००० तक इनके निर्माण का व्यय बहुत कम रह जायेगा। परमाणु-परीक्षणों की आवश्यकता नहीं रहेगी। परमाणु-बम हथगोलों जितने छोटे-छोटे बनाये जायेंगे, जिनसे एक ही आदमी बड़े-बड़े शहरों को तबाह कर सकेगा।

लेकिन आपको तो परमाणु-युद्ध की आशंका नहीं है?

है तो नहीं। फिर भी सरकारों को रोक-थाम के कदम तो उठाने ही होंगे। विशाल और व्यापक अंतर्राष्ट्रीय पुलिस-व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए एक प्रभावशाली पावन–विद्युदणु मस्तिष्क–बन ही गया है। सामूहिक सुरक्षा की खातिर वैयक्तिक स्वतंत्रता का नियंत्रण करना होगा। सरकारी नियंत्रण बढ़ते जायेंगे और मनुष्य के हर कार्य-क्षेत्र में वैयक्तिक स्वतंत्रता घटायी जायेगी–आवागमन में, शिक्षा में, निजी जीवन में।

क्या आपका विचार है कि तकनीक के क्षेत्र में बड़े परिवर्तन विद्युदणु मस्तिष्क के कारण होंगे?

ये परिवर्तन चार क्षेत्रों में हो सकते हैं–कम्प्यूटरों में, आनुवंशिकी में, रासायनिक साधनों में, मस्तिष्क के नियंत्रण में तथा स्वास्थ्य में।

इन परिवर्तनों पर कुछ और प्रकाश डालेंगे?

हर तीन वर्ष बाद कम्प्यूटरों की एक नयी पीढ़ी का विकास होने लगेगा। महत्त्व का प्रश्न यह है कि क्या ये कम्प्यूटर मानवीय भावनाओं से सज्जित होंगे और मनुष्य से श्रेष्ठ हो जायेंगे? मेरे विचार से, हो जायेंगे। न भी हों, तो भी मनुष्य के आध्यात्मिक और बौद्धिक दृष्टिकोण पर इनका बहुत प्रभाव होगा।

आनुवंशिकी के क्षेत्र में हम गर्भ-धारण और गर्भ का नियंत्रण करने लगेंगे। लड़की या लड़का पैदा करना मनुष्य के वश में हो जायेगा। जर्मनी और भारत जैसे देशों में, जहां लड़कों को श्रेष्ठ समझा जाता है, लड़के-ही-लड़के जन्म लेने लगेंगे। अतः लड़कों के जन्म पर रोक लगानी पड़ेगी। यह इसका एक नमूना है कि किस प्रकार हर तकनीकी उन्नति के साथ नया सामाजिक नियंत्रण भी लागू करना पड़ता है।

मस्तिष्क को प्रभावित करने वाली एल० एस० डी० जैसी दवाओं का उपयोग संसार में बढ़ रहा है। इनसे समाज में परिवर्तन होंगे। ये औषध समाज को निष्क्रिय,

या अति प्रसन्न या खतरनाक बना सकते हैं। चिकित्सा-विज्ञान में दिल और गुर्दे बदलने के प्रयोग हो ही रहे हैं। इनकी तकनीक इतनी विकसित हो जायेगी कि ये प्रयोग दैनंदिन की चीज बन जायेंगे।

प्रश्न यह है कि कृत्रिम गुर्दे और मस्तिष्क की जगह कम्प्यूटर से युक्त मनुष्य यंत्र-मानव बन जायेगा या मनुष्य बना रहेगा?

संचार-साधनों में क्या परिवर्तन होंगे?

हवाई यात्रा सस्ती हो जायेगी। सारे संसार की यात्रा कोई डेढ़ हजार रुपयों में की जा सकेगी। संपन्न देशों के लोग दो-दो घर रखेंगे—एक यूरोप में, दूसरा अमरीका में। धनाढ्यों की संख्या बढ़ेगी। वह उद्योगोत्तर समाज होगा। सन २,००० में अमरीका, कनाडा, स्विट्जरलैंड, स्कैंडिनेविया तथा जापान में उद्योगोत्तर समाज स्थापित हो चुका होगा। यूरोप भी फिर इसी समाज में आ जायेगा।

अमरीका तथा जापान तकनीकी क्षेत्र में आगे रहेंगे; क्योंकि यूरोप के लोग महत्त्वाकांक्षी नहीं हैं और मेहनत नहीं करना चाहते। जापान इटली से आगे निकल ही गया है; वह फ्रांस और पश्चिम जर्मनी को भी पीछे छोड़ जायेगा। परंतु सन २००० में यूरोप की आर्थिक महत्ता अधिक रहेगी।

उद्योगोत्तर समाज में जनजीवन कैसा होगा?

औसत आमदनी लगभग डेढ़ लाख रुपये हो जायेगी, जिसके कारण लोगों की मेहनत करने की प्रवृत्ति घटेगी। यह प्रवृत्ति १९२९ से घटनी शुरू हो ही गयी है। परिवार का केवल एक सदस्य धनोपार्जन किया करेगा। लोग मनोरंजन के नये-नये तरीके निकालेंगे। उनमें न महत्त्वाकांक्षाएं रहेंगी, न सार्वजनिक सेवा-भावना।

आपके कहने का तात्पर्य है कि एक ओर लोगों को वैयक्तिक स्वतंत्रता रहेगी और दूसरी ओर उनके निजी जीवन पर सरकारी नियंत्रण बढ़ेगा। ये तो दो विपरीत बातें हैं?

हां, विपरीत हैं और विपरीत ही रहेंगी। हर देश में लोग औद्योगीकरण का परित्याग कर देंगे और व्यक्तिगत मूल्यों को अधिक महत्त्व देंगे। परंतु ऐसा उसी हद तक होगा, जिस हद तक सरकारें अनुमति देंगी। तकनीकी प्रगति से सरकारों की क्षति बढ़ेगी।

हम क्या ईश्वर और धर्म की समाप्ति की ओर अग्रसर हैं?

ईश्वर के प्रति आस्था घटेगी और नैतिकता के प्रति बढ़ेगी। धर्म भी ऐहलौकिक हो जायेगा। संप्रदाय तो अनेक हो जायेंगे, लेकिन उनमें वास्तविक धार्मिकता नहीं रहेगी।

आप मानवीय विकास पर विश्वास करते हैं या नहीं? क्या आप यह नहीं मानते कि समृद्धि तथा ज्ञान की वृद्धि से मानव-समाज प्रगति करेगा, उसकी बौद्धिकता बढ़ेगी और वह अपनी समस्याओं को हल करने में समर्थ होगा?

इस विषय में कुछ भी कहना कठिन है। तथापि प्रगति की अनिवार्यता पर मैं विश्वास नहीं करता।



फूलों की धूल ने उसे मालामाल कर दिया।

"पराग का बादशाह"

स्वीडन का एक मामूली रेल्वे-कर्मचारी था–गोस्टा कार्ल्सन। सन १९५१ में एक दिन उसने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। साथियों ने पूछा–अब क्या करने का इरादा है?......व्यापार।...... किस चीज का? ....पराग का।...... पराग का?......... हां, फूलों का पराग जमा करके बेचूंगा। लोगों ने मन-ही-मन कहा–लगता है, इसका दिमाग फिर गया है।

लेकिन आज वही सिरफिरा कार्ल्सन "पराग का बादशाह" कहलाता है। ए० बी० सेर्नेल नाम की दवा-निर्माता कंपनी का वह मालिक है। दक्षिण स्वीडन के वेजहोम कस्बे में इस कंपनी के गोदाम में आज ९० हजार पौंड पराग जमा है, जिसकी कीमत वर्तमान बाजार-भाव के अनुसार ६० करोड़ रुपया कूती जाती है।

यह न सोचिये कि पराग को कौन खरीदता होगा। नवजात मधुमक्खियां पराग पर पलती हैं; अतः मधुमक्खी-पालकों को अपनी पालतू मक्खियों को खिलाने के लिए उसकी जरूरत पड़ती है। वैज्ञानिक अनुसंधान में पराग का बड़ा महत्त्व है। पराग पौधे की पुरुष सेक्स कोशिका है। इसका एक सख्त बाहरी आवरण या छिलका होता है, जो खुर्दबीन से देखने से प्रायः बहुत सुंदर लगता है। पराग-कोशिका की नाभि में डी. एन. ए. और आर. एन. ए. स्थित होते हैं, जो कि जीवधारियों के आकार और शारीरिक विकास को ही नहीं, बल्कि समस्त जीवंत कोशिकाओं के कार्य भी निर्धारित करते हैं।

चिकित्सा-विज्ञान आजकल पराग में विशेष दिलचस्पी ले रहा है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि पराग इस सदी के अंत

तक कई चमत्कारी औषधों को जन्म दे चुका होगा।

वस्तुत: स्वीडन के ४,००० डाक्टरों ने पराग के सत्त का उपयोग एन्सिफेलाइटिस, प्रास्टेट ग्रंथि और जिगर की कई शिकायतों, ब्रोन्काइटिस तथा स्लेरोसिस आदि विभिन्न रोगों में भी शुरू कर दिया है। परिणाम संतोषजनक ही नहीं, उत्साहवर्धक हैं।

हाल में एक सनसनीखेज किस्सा अखबारों में छपा था। श्रीमती जाइटी एल्मगार्ड एक असामान्य मस्तिष्क-रोग से पीड़ित थीं। धीरे-धीरे उनकी सुनने, बोलने और देखने की शक्ति क्षीण होती गयी और अंत में वे बहरी, गूंगी और अंधी हो गयीं। एक दिन वह भी आया कि डाक्टरों ने उनके पति से कह दिया कि बीमारी लाइलाज ही नहीं, जानलेवा भी है; आपकी पत्नी अब कुछ ही महीनों की मेहमान है।

ऐसी हालत में कार्ल्सन की कंपनी ए० बी० सेर्नेल ने श्रीमती एल्मगार्ड को परीक्षण के तौर पर एक नयी सर्निटिन बी० ए० ५ दवा के इंजेक्शन देने का प्रस्ताव किया। दवा में शुद्ध पराग का सत्त था। इलाज शुरू हुआ। और श्रीमती एल्मगार्ड मृत्यु-मुख से निकल आयीं और धीरे-धीरे सुनने, बोलने और देखने की शक्ति लगभग पूरी तरह लौट आयी। वे कहती हैं—"पराग ने मेरी जान बचायी।" और अनेक डाक्टर उनके कथन से सहमत हैं।

पराग पेड़-पौधों के प्रजनन का आधार है और मधुमक्खियों का प्रिय भोजन। कार्ल्सन का ध्यान पराग की ओर खींचने का श्रेय मधुमक्खियों को ही है। कार्ल्सन जब पांच साल का बच्चा था, एक दिन उसके पिता की पाली हुई मधुमक्खियों में से किसी ने उसे डंक मार दिया। वह रोने लगा। पिता उसे मिठाई देकर चुप कराने के बजाय शहद के छत्ते के पास ले जाकर मधुमक्खियों की अद्‌भुत दुनिया की कहानी सुनाने लगा। बच्चे का मन ऐसा रमा कि उसे रोने की भी याद न रही।

उस दिन इन नन्हे जीवों के लिए कार्ल्सन के नन्हे दिल में जो प्रेम जागा, वह बढ़ता ही चला गया। तनिक बड़ा होने पर उसने स्वयं मधुमक्खियां पालनी शुरू कीं। यहां तक कि अठारह साल का होते-होते, वह २० लाख से भी ज्यादा मक्खियों का मालिक बन गया। स्वीडिश भाषा में मधुमक्खियों के संबंध में जितनी भी पुस्तकें मिल सकीं, वे सब उसने पढ़ डालीं।

स्कूल में रहते हुए ही उसने किसी पुस्तक में पढ़ा था कि प्राचीन नार्वे के अप्रतिम वीर नाविक वाइकिंग 'अमृत' कहकर जिस दवा का सेवन किया करते थे, उसमें पराग मिला रहता था। किसी लेख में उसे यह जानकारी भी मिली थी कि रूसी जीवशास्त्री ए० डब्ल्यू० त्सिनिन ने सौ से ऊपर की उम्र में दो सौ आदमियों के खान-पान की जांच की और पाया कि वे सबके-सब नियमित रूप से पराग खाया करते थे। सो पराग का पागलपन कार्ल्सन पर किशोरावस्था में ही सवार हो गया था।

आगे

रेल्वे की नौकरी छोड़ने के बाद कार्ल्सन हाथ में कागज का थैला लिये खेतों में घूमा करता और कण-कण करके पराग इकट्ठा किया करता। इतना ही नहीं, वह कागज और पेंसिल लेकर घंटों अजीबो-गरीब मशीनों के चित्र बनाया करता।

पांच साल की मेहनत के बाद उसने अपनी मनचाही मशीन बना ली—पराग इकट्ठा करने की मशीन। उसे आजमाने के लिए वह बड़े उत्साह से खेतों पर पहुंचा। उत्साह को निराशा में परिवर्तित होने में देर नहीं लगी। मशीन बिलकुल असफल रही। मगर कार्ल्सन ने हार न मानी। वह फिर यांत्रिक नक्शे बनाने में जुट गया।

आखिर मशीन बनी और सितंबर १९५२ में कार्ल्सन ने उसे खेत में चलाया, और १,३०० पौंड पराग एकत्र कर लिया, जिसकी कीमत १५ लाख रुपये थी। लाखों मक्खियों का पालक लाखों रुपये का मालिक बन गया।

मगर शायद किस्मत उसे अभी और परखना चाहती थी। उसके गोदाम में आग लग गयी। १,३०० पौंड पराग के साथ, पराग संचय करने की मशीन भी नष्ट हो गयी। और सबसे बड़ी विडंबना यह थी कि कोई यह मानने को तैयार नहीं था कि गोदाम में सचमुच १,३०० पौंड पराग जमा था।

कार्ल्सन एक बार फिर मशीन बनाने में जुट गया। वह सारी सर्दियों में इसी काम में व्यस्त रहा। १९५३ की वसंत ऋतु तक मशीन बन गयी और जुलाई के अंत तक उसके पास १,८०० पौंड पराग जमा हो गया। उसने देश के कई प्रमुख शोधकर्त्ताओं और प्राध्यापकों को निमंत्रित किया और उन्हें अपना पराग-संचय दिखाकर दंग कर दिया। इस बार वह लोगों को अविश्वास करने का मौका नहीं देना चाहता था।

शुरू में कार्ल्सन से पराग खरीदने वाले या तो मधुमक्खी-पालक होते थे, या एलर्जी पर शोधकार्य करने वाले चिकित्सा-विज्ञानी। लेकिन कार्ल्सन अपनी कंपनी ए० बी० सेर्नेल का कारोबार धीरे-धीरे बढ़ाता गया। फिर एक गुप्त विधि से वह पराग के ऊपर का सख्त खोल (या छिलका) हटाकर उसमें से पराग प्राप्त करने और उसका सत्त निकालने में सफल हो गया। अब तो जैसे अभ्युदय का राजमार्ग उसके लिए खुल गया, या उसने स्वयं खोल लिया। इस प्रकार निकाले गये पराग के सत्त का नाम उसने 'सेर्निटिन' रखा।

इस सेर्निटिन में २१ एमीनो एसिड, कई स्टेरोल, वृद्धिकारी हार्मोन, जल में घुल सकने वाले विटामिन होते हैं। ये सभी जीवन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। फिर उसने सत्त निकालने की विधि में ऐसा सुधार किया कि उससे तैयार किया हुआ पराग-सत्त एलर्जी नहीं पैदा करता था। उसने परीक्षण के लिए चिकित्सकों को सेर्निटिन के विविध सत्त मुहैया किये। जल्दी ही गोली और टानिक के रूप में सेर्निटिन के सत्त बिकने लगे। आज कार्ल्सन की कंपनी के व्यापार का यह हाल है कि वह १० लाख टिकियां तो अकेले पराग की ही बेच लेती है। ['रोटेरियन']



हमारा विज्ञान हमारे वैज्ञानिक

चंदन

देश की वैज्ञानिक गतिविधियों का परिचय

मानव-शरीर की कोशिका के संबंध में इस समय गहरी छानबीन चल रही है। कोशिका-अध्ययन के क्षेत्र में हाल में एक युवा भारतीय वैज्ञानिक विशेष रूप से सामने आये हैं। नाम है—डा० तुषार कुमार चौधरी।

इकत्तीस वर्षीय डा० तुषार कुमार चौधरी आजकल वाशिंग्टन (डी० सी०) के जार्ज वाशिंग्टन विश्वविद्यालय में शरीर-क्रिया-विज्ञान (फिजियोलाजी) के सहायक प्रोफेसर हैं।

इन्होंने एक नया वैज्ञानिक सिद्धांत प्रस्तुत किया है—'थ्योरी फार द ट्रान्स-सेल्युलर ट्रान्सपोर्ट आफ साल्ट्स।' उतनी ही कठिन तकनीकी हिन्दी में कहें तो यह हो जायेगा—'अंतरकोशीय लवण-अभिगमन।'

आखिर यह सिद्धांत है क्या? रसायन-शास्त्र की भाषा में 'लवण' का अर्थ केवल उस नमक से ही नहीं है, जिसे दाल और सब्जी में डालते हैं। लवण के अंतर्गत नमक जैसे ही हजारों दूसरे पदार्थ (यौगिक) भी सम्मिलित हैं।

भोजन में खाये जाने वाले नमक को रसायनशास्त्र में 'सोडियम क्लोराइड' कहते हैं। इस दृष्टि से नीला थोथा (कापर सल्फेट), तूतिया (फेरस सल्फेट) तथा शोरा (पोटासियम नाइट्रेट) भी 'लवण' ही है।

लवण, अम्ल और क्षारों से मिलकर बनते हैं। इनकी एक विशेषता यह है कि पानी या अम्ल में घोले जाने पर लवण दो भागों में विभाजित हो जाते हैं। और विभाजित होने पर जो हिस्से बनते हैं, वे उदासीन नहीं होते। उनमें से एक भाग पर धनात्मक चार्ज और दूसरे पर ऋणात्मक चार्ज रहता है।

कोशिका के भीतर और विभिन्न कोशिकाओं के बीच जो अनेक जैवरसायन क्रियाएं चलती रहती हैं, उनमें से एक यह है कि

अप्रैल

विभिन्न कोशिकाएं आपस में लवणों का आदान-प्रदान करती हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि जब लवणों का यह आदान-प्रदान गड़बड़ाता है या उसमें कोई अव्यवस्था उत्पन्न होती है, तो उसका परिणाम ज्वर के रूप में प्रकट होता है।

प्रश्न यह था कि लवण एक कोशिका से दूसरी कोशिका तक अभिगमन (ट्रांसपोर्ट) कैसे करता है ? डा० चौधरी के नये सिद्धांत के अनुसार, जब लवण दो परस्पर विपरीत विद्युत् चार्जों से युक्त भागों में विभाजित हो जाता है, तो वहां विद्युत-वोल्टता उत्पन्न हो जाती है, और वही लवणों के अभिगमन के लिए जिम्मेदार है।

विद्युत-वोल्टता कैसे उत्पन्न होती है, यह समझने के लिए, डा० चौधरी का कहना है कि शरीर के विभिन्न स्थानों पर एक अकेली कोशिका में जो विद्युत-वोल्टता उत्पन्न हुई हो, उसे नाप लिया जाना चाहिये। मगर कोशिका जैसी छोटी आकार की किसी वस्तु में विद्युत को नापना भी एक समस्या थी। इसके लिए अलग-अलग रास्ते सुझाये और आजमाये गये। मगर कोई कारगर नहीं हुआ। इस गुत्थी को सुलझाने का श्रेय भी डा० चौधरी को ही प्राप्त है।

उन्होंने इसके लिए जो अतिसूक्ष्मग्राही यंत्र बनाया है, वह 'चौधरी पिपेट-पुलर' के नाम से जाना जाता है। इस यंत्र में कांच के बने दो अल्ट्रामाइक्रो-इलेक्ट्रोड होते हैं, जिनकी नोकें अत्यधिक छोटी होती हैं। बाल से भी कई हजार गुना अधिक बारीक इन नोकों को केवल इलेक्ट्रोन-माइक्रोस्कोप द्वारा देखा जा सकता है। अपने यंत्र के लिए अतिसूक्ष्म इलेक्ट्रोड भी उन्होंने स्वयं बनाये थे।

इस यंत्र का निर्माण विश्व भर में एक ही कंपनी करती है और वह है, कलकत्ता की दि इंडियन सायन्टिफिक एंड इंजीनियरिंग वर्क्स। अमरीका में इस यंत्र का वितरण एक अमरीकी फर्म द्वारा किया जाता है। अमरीका में रोग-निदान के लिए 'चौधरी पिपेट-पुलर' का इस्तेमाल करने में बड़ी उत्सुकता दिखायी जा रही है। रोगग्रसित और सामान्य कोशिकाओं में वोल्टता-अंतर नाप कर रोग का निदान किया जा सकता है।

डा० तुषार कुमार चौधरी अनुसंधान-प्रिय तो हैं ही, पढ़ाने का काम भी उन्हें बेहद पसंद है। जार्ज वाशिंग्टन विश्वविद्यालय में डा० चौधरी के अधीन गत वर्ष लगभग सौ

डा० चौधरी और 'पिपेट पुलर'



विद्यार्थी शरीर-क्रिया-विज्ञान पढ़ रहे थे। वे एक क्लास इलेक्ट्रिकल इंजीनियरी की भी लिया करते थे; क्योंकि इस विषय में भी उनकी तीव्र रुचि है।

कलकत्ता विश्वविद्यालय से भौतिकी और गणित में बी०एस-सी० पास करने के पश्चात् चौधरी ने कलकत्ते के ही एक फर्म में इलेक्ट्रोप्लेटिंग-अनुसंधान के रूप में काम आरंभ किया। वे एक हाई स्कूल में विज्ञानाध्यापक तथा बाद में प्रसिद्ध बोस संस्थान के भौतिक रसायन विभाग में अनुसंधान सहायक भी रहे। १९५९ में चौधरी अमरीका चले गये, जहां मोंटाना राज्य विश्वविद्यालय में उन्होंने सहायक अध्यापक रहते हुए नाभिकीय भौतिकी में मास्टर की उपाधि प्राप्त की।

१९६४ में बफेलो के स्टेट यूनिवर्सिटी आफ न्यूयार्क से उन्होंने जैवभौतिकी पर डाक्ट्रेट प्राप्त की। और १९६६ तक वे जैवभौतिकी विभाग में विभिन्न पदों पर काम करने के बाद अब वे जार्ज वाशिंग्टन विश्वविद्यालय में जैवभौतिक अनुसंधान के निदेशक तथा 'मेडिकल इंजीनियर प्रोग्राम' के सलाहकार के रूप में काम कर रहे हैं।

डा० चौधरी का विचार उन लोगों से जरा हट कर है, जो समझते हैं कि भारत में अनुसंधान के योग्य वातावरण नहीं है अथवा वहां व्यवस्था का अभाव है। वे शीघ्र स्वदेश आकर एक ऐसा अनुसंधान-कार्यक्रम शुरू करना चाहते हैं, जिसमें चिकित्सा-वैज्ञानिक तथा भौतिकविज्ञानी साथ-साथ कार्य कर सकेंगे।

आप सोते हुए सफर कर सकते हैं

...... बशर्ते आपके पास श्री सुलतान सिंह जैन की सुरक्षा-पेटिका हो। इस संदूक पर श्री जैन को 'इन्वेन्शन प्रमोशन बोर्ड' ने एक हजार रुपये का पुरस्कार देकर उन्हें सम्मानित किया है। यह संदूक सफर में सुरक्षा की दृष्टि से इतना लोकप्रिय सिद्ध हुआ है कि कानपुर की सायंस एंड टेक्नोलाजी सोसायटी, शाहपुर इंजीनियरिंग वर्क्स तथा हैदराबाद में आयोजित अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शनी के संचालकों ने भी श्री जैन को सम्मानित किया है।

रुड़की विश्वविद्यालय के स्ट्रकचरल इंजीनियरिंग विभाग के श्री सुलतान सिंह जैन एक बार कुछ जरूरी शोध-संबंधी कागजात लेकर बस में यात्रा कर रहे थे। उनका बक्स बस की छत पर रखा था, और उन्हें फिक्र सवार थी कि कहीं किसी ने बक्स उड़ा दिया, तो सारी की-करायी मेहनत बेकार हो जायेगी। इसी उधेड़बुन से प्रेरित होकर उन्होंने एक ऐसा संदूक बनाने का फैसला किया कि अगर कोई उसे अपनी जगह से जरा भी हिलाये, तो उसमें से तुरंत घंटी बजने लगे।

इस सुरक्षा-पेटिका के अंदर एक स्विच तथा एक ड्राई बैटरी इस प्रकार फिट की गयी है कि स्विच को 'आन' करके छोड़ देने पर यदि कोई भी संदूक को उठाता है, तो घंटी खुद-बखुद बजने लगती है। ड्राई बैटरी

अशोक

केवल तभी खर्च होगी, जब घंटी बजेगी। महज स्विच को आन करने से भी ड्राई बैटरी की खपत पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

संदूक के मालिक को ताला खोलकर यह स्विच 'आफ' करना होगा, वरना उसके उठाने पर भी घंटी अपना काम बदस्तूर करेगी। अब एक और स्विच लगाकर संदूक में ऐसी व्यवस्था कर दी है कि ऊपर से एक ताली द्वारा ही, स्विच को 'आफ' किया जा सकता है। निश्चय ही इस संदूक के प्रचलित हो जाने पर उठाईगीरों के पेशे को बहुत बड़ा धक्का लगेगा।



सफर में लंबी तानकर सोइये



खुराना का शोधकार्य

[जनवरी १९६९ के नवनीत में प्रकाशित लेख 'डा० हरगोविंद खुराना' के संबंध में हमें डा० अनिल सद्गोपाल (अणु-जैविकी घटक, टाटा आधारभूत अनुसंधान संस्थान, बंबई) से यह टिप्पणी प्राप्त हुई है। —संपादक]

डा० खुराना पर जनवरी मास के नवनीत में छपे लेख में कई भारी वैज्ञानिक भूलें हैं। निम्नलिखित वाक्यों में मैं उन्हें स्पष्ट करने का प्रयत्न करूंगा।

१. पृष्ठ ३० पर लिखा है—"जीन का निर्माण जिन रसायनों से मिलकर होता है, उनमें डी. एन. ए. भी एक है।" यह कथन बिलकुल गलत है, चूंकि रासायनिक दृष्टि से जीन और कुछ नहीं, बल्कि केवल डी. एन. ए. है—जीन में डी. एन. ए. के सिवा और कुछ नहीं है।

२. पृष्ठ ३० पर ही लिखा है—"न्यूक्लियोटाइड......रसायन-वर्गीकरण की दृष्टि से प्रोटीनों के अंतर्गत आते हैं। जिन अमीनों अम्लों के मेल से मानव-जीन के चारों न्यूक्लियोटाइड बनते हैं, उनकी संख्या बीस है।" इन वाक्यों में हुई भूल आधुनिक वैज्ञानिक युग में अत्यंत हास्यास्पद जान पड़ती है। न्यूक्लियोटाइड रासायनिक दृष्टि से प्रोटीनों से बिलकुल भिन्न पदार्थ हैं और डी. एन. ए. के चार न्यूक्लियोटाइड अमीनो अम्लों के मेल से नहीं बनते। अमीनो अम्लों के मेल से प्रोटीनें बनती हैं।

३. नाइरेनबर्ग द्वारा १९६१ में किये गये सुप्रसिद्ध प्रयोग में डी. एन. ए. (पृष्ठ ३०) का नहीं, वरन डी. एन. ए. से संबंधित एक अन्य पदार्थ का प्रयोग हुआ था। इस पदार्थ का नाम आर. एन. ए. (राइबोन्यूक्लियक

एसिड) है।

४. पृष्ठ २८ पर लेखक ने डा० खुराना को नोबेल पुरस्कार दिये जाने के सिलसिले में शिकायत की है–"लेकिन चर्चा व्यक्ति को लेकर ज्यादा हुई, उनके शोधकार्य के बारे में कम।" मजे की बात तो यह है कि लेखक ने स्वयं उनके कार्य की तनिक भी चर्चा नहीं की; पर उनके व्यक्तित्व व बाल्यकाल आदि को लेकर तो पृष्ठ भर डाले हैं। पृष्ठ ३० पर उन्होंने आधे स्तंभ में डा० खुराना के कार्य पर नाटकीय ढंग से अपने जो विचार प्रकट किये हैं, वे बेसिर-पैर हैं। लेखक ने कहीं इस बात की चर्चा तक नहीं की कि डा० खुराना ने कार्बनिक रसायन की विधियों द्वारा न्यूक्लियोटाइडों को पूर्व-निर्धारित क्रमों में जोड़कर तरह-तरह के डी. एन. ए. बनाये। यह उनकी अभूतपूर्व सफलता थी। लेखक ने यह भी नहीं लिखा कि इन ज्ञात क्रमों के डी. एन. ए. से डा० खुराना ने ज्ञात क्रमों के आर. एन. ए. परख-नली में बनाये। किस प्रकार डा० खुराना ने इस विधि से संश्लेषित निश्चित न्यूक्लियो-टाइड-क्रमों वाले आर. एन. ए. के उपयोग से अमीनों अम्लों को ज्ञात क्रमों में संलग्न करके नाना प्रकार की प्रोटीनों का परख-नली में निर्माण किया, इस सनसनीपूर्ण कार्य को समझाने की लेखक ने चेष्टा ही नहीं की।

वास्तव में इस लेख से पता तक नहीं चलता कि डा० खुराना ने किस प्रकार आनु-वंशिक संकेत समस्या के आधारभूत प्रश्नों का समाधान किया। डा० खुराना के इस महत्त्वपूर्ण योगदान को ठोस रूप से पाठकों के सामने पेश करने के स्थान पर लेखक ने निरर्थक वाक्यों (जैसे "भावी संभावनाओं का राजमार्ग स्पष्ट दीखने लगा है" और "धुंधलापन दूर हो चुका है") से पृष्ठ ३० पर आधा स्तंभ भरने का व्यर्थ प्रयत्न किया है। इस प्रकार के त्रुटिपूर्ण लेखों से जनता में गलत धारणाएं फैलती हैं।

संप्रति प्रतिवर्ष लगभग १,५०० विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश जाते हैं और ३०० के लगभग प्रतिवर्ष वापस आते हैं। विदेशों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाने वालों में अनुमानतः ४६% इंजीनियर, ३३% शुद्ध वैज्ञानिक व १६% डाक्टर होते हैं।

उच्च शिक्षा के लिए अमरीका जाने वालों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। आजकल लगभग एक हजार भारतीय विशेषज्ञ अमरीका की विज्ञान-शिक्षण-संस्थाओं में काम कर रहे हैं। उनमें से ७५% पी-एच० डी० जैसे उच्च डिग्रीधारी हैं। डेढ़ सौ के लगभग प्राध्यापक हैं। शेष अन्य प्रसिद्ध संस्थाओं में काम कर रहे हैं।

('मराठी विज्ञान पत्रिका')

यह मोह छोड़िये

बहुत बार सोचा करता हूं कि देश के प्रत्येक घर में दवाओं की अलमारी या पेटी पर मजबूत ताला लगाकर उसके पास खोपड़ी और दो हड्डी वाला विष का निशान बना दिया जाना चाहिये।

यह खयाल मेरे मन में उठे बिना नहीं रहता, जब लोग कोई तकलीफ होने पर अपने आप ही कोई दवा खा लेते हैं और जब मामला विगड़ जाता है, तब मेरे पास चले आते हैं।

झेंपते-झिझकते हुए वे कहते हैं– "डाक्टर साहब, पिछली बार आपने जो दवा दी थी, उसकी दो खूराक बाकी बच गयी थीं। इस बार दर्द उठने पर मैंने वही ले ली थी......।" और यही लोग सवेरे की बनी दाल शाम को बासी कहकर फेंक देते हैं, मगर दवाइयां सालों तक जमा किये रखने में उन्हें कुछ भी अनौचित्य नहीं दिखाई देता।

मैं नहीं कहता कि सिर दुखने पर एस्पिरीन लेने से पहले भी रोगी दौड़ा-दौड़ा मेरे पास आये अनुमति मांगने के लिए। लेकिन मैं यह आशा जरूर करता हूं कि अपनी चिकित्सा आप करने वाले लोग दवा लेने से पहले इस बात की जांच तो कर लें कि दवा उपयोग करने योग्य हालत में तो है। मगर ऐसा न करने वालों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से बड़ी है।

दवाइयां पड़ी-पड़ी न केवल अपना प्रभाव खो बैठती हैं, बल्कि कई बार बहुत देर तक अलमारी या पेटी में पड़ी रहने से उनमें



होने वाले रासायनिक परिवर्तनों के कारण खतरनाक भी बन सकती हैं।

आयोडीन का ही उदाहरण लीजिये; जो कि आम तौर पर घरों में रखी रहती है, उस पर 'टिंचर आयोडीन' की चिट चिपकी रहती है, जिसका अर्थ यह है कि आयोडीन अल्कोहोल के साथ मिलायी गयी है और इसलिए मनुष्य के उपयोग के लिए उपयुक्त है।

मगर अल्कोहल अत्यंत बाष्पशील द्रव है, जिसका अर्थ यह हुआ कि टिंचर आयोडीन जितने दीर्घ काल तक रखा जायेगा, उसमें आयोडीन के उतना ही तेज होने का खतरा रहेगा। दरअसल वर्षों तक रखे हुए टिंचर आयोडीन के लगाने से घाव के जल जाने के किस्से भी देखे गये हैं।

और तो और, बहुत दिन तक दवा के संदूक में बंद रखने पर सीधे-सादे एस्पिरीन में भी आमूल परिवर्तन हो सकता है। उसका दो एसिडों में विभाजन हो जाता है, जिससे उसकी प्रभावकारिता बहुत घट जाती है।

जब एस्पिरीन में सिरके (एसेटिक एसिड) की हलकी-सी भी गंध आये, तो उसे फेंक देना चाहिये।

देखा गया है कि लोहे (आयरन) से युक्त टानिक भी बहुत समय रखे रहने पर खराब हो सकते हैं। रक्तहीनता से पीड़ित रोगियों को प्रायः आयरन-युक्त टानिकों का सेवन कराया जाता है।

अगर इन टानिकों को बहुत समय तक गर्म स्थान पर रखा जाये, तो उनमें से द्रव अंश भाप बनकर उड़ता जाता है और शेष दवा बहुत गाढ़ी (सांद्र) हो जाती है। ऐसी दवा के सेवन से फेरस-सल्फेट का विष हो जाने का खतरा भी रहता है।

यही नहीं, तथाकथित 'चमत्कारी औषध' एंटीबायोटिक दवाएं (पेनिसिलीन आदि) भी अपनी उपयोगिता की अवधि बीत जाने के पश्चात् सेवन करने पर गड़बड़ पैदा कर सकती हैं। अगर आपके घर बहुत पहले कभी डाक्टर के कहने पर खरीदी हुई पेनिसिलीन की टिकियां पड़ी हों, तो उन्हें आज ही कूड़ेदान में डाल दीजिये।

मैंने तो यहां तक देखा है कि लोग पुरानी बची-खुची दवाएं वैसी ही शिकायत होने पर मित्रों और पड़ोसियों को दे देते हैं।

यह बहुत ही खतरनाक आदत है। पेनिसिलीन जैसी दवाएं जो ठीक ढंग से दी जाने पर बहुत लाभकारी और प्रभावशाली होती हैं, अनाड़ी द्वारा दी जाने पर बहुत बड़ा खतरा पैदा कर सकती हैं।

इसलिए अपनी दवा की पेटी में रखी दवाओं को संदेह की नजर से ही देखिये।

काडलिवर आइल जैसी सीधी-सादी दवा पर भी नजर रखना आवश्यक है। ढक्कन जरा खुला रह गया तो संभव है, तेल भुसा जाये...... पेराक्साइड पुराना पड़कर अपना आक्सिजन अंश खोकर निरा पानी बन जाता है।

कई बार देखा गया है कि सीलन-भरे और बहुत गर्म स्थानों पर पड़े रहने पर फिनाल के मरहम में से फिनाल पृथक् हो जाता है और मरहम खतरनाक बन जाता है।

अप्रैल

पुराने बचे हुए मिल्क आफ मैग्नेशिया की तलछट गाढ़ी हो जाने के कारण तेज दस्त का कारण बन सकता है।

इसी तरह वर्षों से पड़ी हुई खांसी की दवाएं कफ दूर करने की ताकत ही नहीं गंवा बैठतीं, बल्कि कफ पैदा करने वाली बन जाती हैं।

इन सब खतरों से बचने का सबसे सरल और अचूक उपाय यह है कि बीमारी दूर होते ही बची हुई दवा फेंक दी जाये।

बोतल देखने में ठीक लगती है, यह इसका सबूत नहीं है कि उसके अंदर की दवा भी ठीक है। सामान्यत: दवाएं कुछ ही सप्ताह तक पूरी तरह प्रभावशाली रहती हैं; फिर अपना प्रभाव खोने लगती हैं।

कुछ दवाएं तो रोशनी, गर्मी और नर्मी के प्रभाव से दवा के बजाय जान का बवाल बन जाती हैं। लेकिन कब दवा विष बन गयी, यह तो विशेषज्ञ ही बता सकते हैं।

['हिन्दुस्तान टाइम्स' से साभार]

प्रिय बंधु

नवनीत के इस अंक में हम एक परीक्षण कर रहे हैं। पृष्ठ ११३ से १२८ तक चलनेवाले पुस्तक-संक्षेप 'न्याय के लिए' में हमने एक नये टाइप का उपयोग किया है, जो शेष अंक में प्रयुक्त टाइप से कुछ छोटा है।

नये टाइप में पुराने टाइप की अपेक्षा २५ प्रतिशत अधिक सामग्री एक पृष्ठ पर आती है। यदि संपूर्ण अंक नये टाइप में छापा जाये, तो अब की अपेक्षा २५ प्रतिशत अधिक सामग्री हर अंक में दी जा सकेगी। इसका अर्थ यह होगा कि वर्तमान मूल्य पर ही आप २५ प्रतिशत अधिक लेख और २५ प्रतिशत अधिक वैविध्य नवनीत में प्राप्त कर सकेंगे।

किंतु अंतिम निर्णय आपका होगा; क्योंकि हमारे लिए सबसे बड़ी चीज है आपकी पसंद और सुविधा। हम जानना चाहते हैं कि क्या आपको यह टाइप सुंदर और सुविधाजनक लगता है? कृपया अपनी राय लिख भेजें। इसी उद्देश्य से कुछ प्रतियों में जवाबी कार्ड भी लगाया गया है।

यदि अधिक पाठक नये टाइप को पसंद करेंगे, तो संपूर्ण अंक को इसी टाइप में छापने की व्यवस्था की जायेगी।

—संचालक तथा संपादक



पत्र-परामर्श

साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान से संबंधित भारतीय पत्रिकाओं में 'नवनीत' मेरे लिए सबसे अधिक प्रिय रहा है। इसलिए मैं १९६६ से इसके सभी अंक पढ़ता आ रहा हूं। 'नवनीत' में मुझे जो कुछ रचनाएं मिली हैं, वे सब समस्त मानव-मस्तिष्क और चिंतन को प्रबुद्ध तथा गरिमामय बनाने में मेरे खयाल से बेहद उपयोगी हैं। इसके लिए आपका संपादक-मंडल धन्यवाद का पात्र है। मुझे विश्वास है कि 'नवनीत' अगले अंकों में और अधिक रोचक, खोजपूर्ण तथा आकर्षक होने के अलावा मानवीय आकांक्षाओं का भी प्रतिनिधित्व कर सभी प्रिय पाठकों के सामने प्रस्तुत होगा। मैं इसकी सफलता चाहता हू।

—ज्ञानीप्रसाद सिंह के० सी०, मिरचैया (सिरहा), नेपाल

०००

'नवनीत' में पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई का प्रयोग जारी रखकर आपने अपनी परंपरा को कायम रखा है। समझ में नहीं आता कि हिन्दी की सुप्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाएं, जो अंग्रेजी भाषा का विरोध भी करती हैं, पूर्ण विराम के स्थान पर बिंदु के प्रयोग की अंग्रेजी-परंपरा को क्यों अपना रही हैं।

फरवरी अंक में श्री विनायक म. दांडेकर का लेख 'पराधीनता का नया आविष्कार' वास्तव में अमरीकी राजनीति की कुटिलता एवं हमारी सरकार की पराधीनता का स्पष्ट चित्र खींचने में सफल हुआ है।

—आशीष शुक्ल, रायबरेली

०००

'नवनीत' विविध ज्ञान-स्रोतों का वह निर्मल सरोवर है, जिसमें अवगाहन कर ज्ञान-पिपासु तृप्ति का अनुभव करता है। वैसे तो मार्च १९६९ का पूरा अंक ही संग्रहणीय है, पर 'मास्को विश्वविद्यालय' तथा 'कितनी भाषाएं सीखें' जैसे लेख आज देश की जटिल समस्याएं—भाषा-विवाद एवं विद्यार्थी-हलचल के संदर्भ में विशेष प्रेरणाप्रद सिद्ध होंगे। राष्ट्र को संवारने की सामग्री ही 'नवनीत' से अपेक्षित है। —शोभनाथ पाठक, मेघनगर, झाबुआ

संगीत पैगंबरों की कला है, आत्मा के उद्वेगों को शांत करने वाली एकमात्र कला है; वह भगवान के सबसे भव्य और आह्लाद-दायक वरदानों में से एक है। —मार्टिन लूथर



संगीत का बागबान

फ्रैंक एस. फायसाउक्स

विश्व-प्रसिद्ध चेलो-वादक पाब्लो कासाल्स का कहना है—"शायद संगीत ही दुनिया को बचा सकेगा।" यही वाक्य एक जापानी संगीत-शिक्षक का जीवन-दर्शन बन गया है। इस दुबले-पतले संगीत-शिक्षक का नाम है—शिनिची सुजुकी। पिछले तीस वर्षों से भी अधिक समय से, वह एक ऐसी शिक्षा-पद्धति का विकास कर रहा है, जिससे हजारों शिशुओं की प्रतिभा को पोषण मिला है और अभिभावकों को अपनी संतान पर अभिमान करने का अवसर प्राप्त हुआ है।

सुजुकी की शिक्षा-पद्धति प्रचलित संगीत-शिक्षा-परंपरा से बिलकुल कटी हुई है,पर है अत्यंत प्रभावशाली। जब बच्चा अभी तीन साल का होता है, तभी शिक्षा आरंभ हो जाती है। मगर प्रारंभ में शिनिची शिशु के बदले उसकी मां को संगीत-शिक्षा देता है। मां वायलिन बजाती है और बच्चा उसे बजाते हुए देखा करता है। मां सप्ताह में एक दिन अपने बच्चे के साथ आती है। तीन महीने तक यही क्रम चलता रहता है और इस अवधि में

मां 'टिंव्कल टिंव्कल लिटिल स्टार' जैसी लोचहीन गत तो बजाना सीख ही जाती हैं।

सुजुकी का कहना है कि अब तक बच्चा अपनी मां को वायलिन बजाते हुए गौर से देख चुका होता है और उसमें मां की नकल करने की इच्छा जाग चुकी होती है। ठीक इसी समय नन्हे शिशु के हाथ में एक नन्हा-सा वायलिन पकड़ा दिया जाता है। अब उसके सामने शास्त्रीय गतें बजायी जाती हैं, उनकी बार-बार आवृत्ति की जाती है। और एक वर्ष होते-न-होते बच्चा महान यूरोपीय स्वरस्रष्टा बाख की आसान गतें अच्छी तरह बजाने लग जाता है।

शिनिची की इस निराली शिक्षा-पद्धति के पीछे एक सहज सिद्धांत है। उसकी व्याख्या शिनिची के ही मुख से सुनिये—"लगभग पैंतीस साल पहले एक दिन हठात् एक बात मेरे ध्यान में आयी और वह यह थी कि दुनिया के तमाम बच्चों को अपनी-अपनी मातृभाषा धारा-प्रवाह बोलने की बाकायदा शिक्षा दी जाती है और मातृभाषा की यह शिक्षा उनकी भाषा-क्षमता को बहुत ऊंचे स्तर तक विकसित कर देती है।

"इस विचार से मुझे पूरी तरह विश्वास हो गया कि कोई भी बच्चा बहुत ऊंची संगीत-क्षमता प्रदर्शित कर सकता है, बशर्ते उसकी क्षमता को सही तरीके से प्रशिक्षित और विकसित किया जाये। मैंने वही पद्धति अपनायी है, जिसके सहारे बच्चा अपनी मातृभाषा सीखता है। संगीत के लिए मुझे उसमें कोई परिवर्तन नहीं करना पड़ा।"

पहले तो बच्चे सुनी हुई धुन को दोहराने का अभ्यास करते हैं। फिर १० और ११ वर्ष की उम्र तक आते-आते लिखित या मुद्रित स्वर-लिपि देखकर गतें बजाना सीख जाते हैं। अब उन्हें मोजार्ट की कृतियां सिखायी जा सकती हैं।

बच्चों की संगीत-चेतना को विकसित करने का विचार सुजुकी के मन में पहले-पहल अमे-



संगीत सृष्टि की श्रुतिबद्ध वाणी है, अदृश्य जगत् की प्रतिध्वनि है; समन्वय का वह दिव्य स्वर है, जिसे एक दिन समस्त ब्रह्मांड को बजाना है। —मैंजिनी

पहल तब उठा, जब वह निर्दोष बच्चों को युद्धाक्रांत देखकर दर्द से भर उठा था। किसी संगीतज्ञ के पास इन अभागे बच्चों के जीवन को समृद्ध बनाने का और क्या साधन हो सकता था, सिवा संगीत के?

सुजुकी १८९८ में जापान के नागोया नगर में एक ऐसे परिवार में जनमा, जिसका वायलिन से घनिष्ठ संबंध था। पिता मासाकिची सुजुकी दुनिया की सबसे बड़ी वायलिन-फैक्टरी के संस्थापक थे।

आगे चलकर बेटा फैक्टरी के कामों में हाथ बंटा सके, इस दृष्टि से पिता ने उसे एक व्यापारिक स्कूल में भेजा। लेकिन बेटे की आत्मा में तो संगीत समाया हुआ था; उसने उसे वायलिन बनाने के बजाय वायलिन बजाने के लिए प्रेरित किया। शीघ्र ही वह 'क्लिग्लर स्ट्रिंग क्वार्टेट' के संस्थापक एवं शिक्षक प्रोफेसर कार्ल क्लिग्लर से संगीत-शिक्षा प्राप्त करने के लिए जर्मनी चला गया।

शिनिची सुजुकी आठ वर्षों तक बर्लिन में प्रोफेसर क्लिग्लर से शिक्षा प्राप्त करता रहा। उन्हीं दिनों उसकी मुलाकात तरुणी पियानो-छात्रा वाल्ट्राउड प्रांज से हुई। चंद दिनों में ही उनका परिचय घनिष्ठता में बदल गया और शिनिची ने उससे विवाह कर लिया। वाल्ट्राउड उसके साथ जापान चली आयी, जहां सुजुकी ने अपनी अद्वितीय शिक्षा-पद्धति के प्रचार-प्रसार के लिए 'टैलेंट एजुकेशन इन्स्टिटयूट' की स्थापना की।

सुजुकी दंपति टोकियो के उत्तर में 'जापानी आल्प्स' में बसे मात्सुमोतो नगर में रहते हैं। उनकी देखरेख में जापान म इन्स्टिटयूट की ७० शाखाएं चलती हैं। श्रीमती सुजुकी बताती हैं—"मेरे पति यह मानते हैं कि कोई भी शिशु प्रतिभाहीन नहीं होता।" और इसका प्रमाण हर वर्ष टोकियो के वार्षिक 'तंतुवाद्य समारोह' में मिल जाता है, जहां सुजुकी-पद्धति से शिक्षा पाये हुए डेढ़ हजार से भी अधिक नन्हे-मुन्ने एक साथ वायलिन-वादन प्रस्तुत करते हैं।

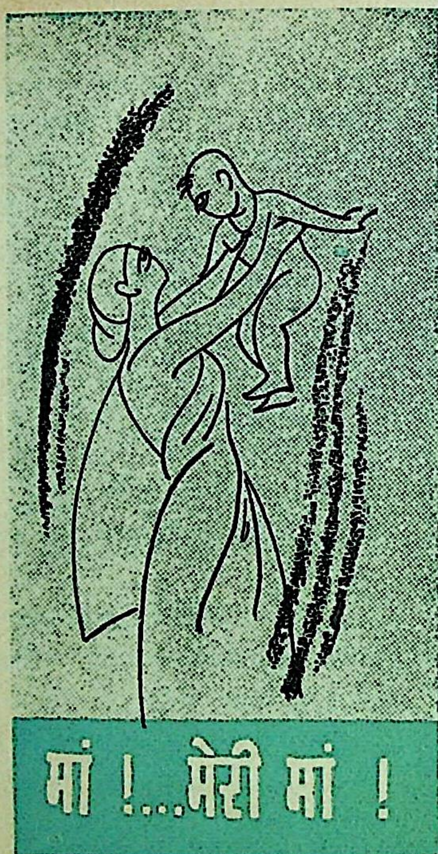
सुजुकी का कहना है कि विशिष्ट क्षमता के विकास के लिए ये पांच बातें अनिवार्य हैं:

१. जल्दी-से-जल्दी शिक्षा प्रारंभ कर देना;
२. अधिक-से-अधिक प्रशिक्षण देना;
३. अधिक-से-अधिक अनुकूल वातावरण तैयार करना;
४. अच्छे-से-अच्छे शिक्षक रखना;
५. अच्छी-से-अच्छी शिक्षा-विधियां अपनाना।

उसकी पत्नी का कहना है—"धन या प्रसिद्धि की उन्हें परवाह नहीं है। वे दुनिया के हर बच्चे को संगीत-सृजन का आनंद देना चाहते हैं और उसके हृदय में जीवन-भर के लिए कविता भर देना चाहते हैं।"

पर शिनिची इतना ही कहता है—"मैं तो बस बच्चों को अच्छा नागरिक बनाना चाहता हूं। अगर बच्चा जन्म के साथ ही अच्छा संगीत सुनने लगे और उसे स्वयं बजाना सीख ले, तो उसमें भावनाप्रवणता, अनुशासन और सहिष्णुता आती है। उसका हृदय सुंदर बन जाता है।"





जगन्माता

—भगवानदास वर्मा

जब मेरी माता के ग्यारह बच्चे होकर मर गये, तो किसी ने सुझाया कि उनके दूध में ही दोष है। फलत: मेरे पैदा होने के ३-४ मास पूर्व ही मेरे पिता ने दूध पिलाने के लिए तलाश करके बच्चीजी मिश्राणी नामक एक ग्रामीण ब्राह्मणी को ठीक कर लिया। वे मेरे घर में आकर रहने लगीं। उनका लगभग एक साल का बच्चा था। मेरे जन्म लेते ही मुझे उनकी गोद में डाल दिया गया और मेरी मां ने उनसे कहा कि अब यह तुम्हारा हुआ। उन्होंने भी मुझे कलेजे से लगा लिया।

उनका अपना बच्चा भी उनकी गोद में रहने और दूध पीने के लिए जिद करता था। दो छोटे बच्चों को संभालने और उनका मन रखने में बच्चीजी को विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ता था। जब उनके बच्चे के दांत निकलने के समय वह बीमार हो गया और उसे दस्त आने लगे, तो कठिनाई बहुत बढ़ गयी। एक सहेली के सुझाव पर बच्चीजी ने इस विश्वास से उसे किंचित् अफीम देना आरंभ किया कि इससे उसे लाभ होगा तथा वह कुछ देर के लिए सो जायेगा।

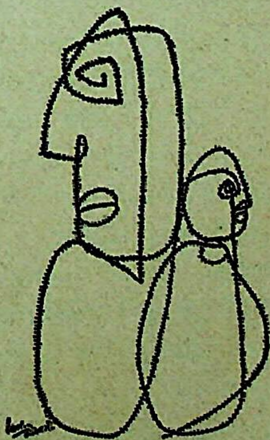
संयोग की बात, एक दिन बच्चे को थोड़ी अफीम देकर, अफीम की पुड़िया जमीन पर ही छोड़कर वे नीचे के कमरे में मेरी देख-रेख के लिए चली गयीं। लगभग आध घंटे के बाद जब वे ऊपर के कमरे में आयीं, तो उन्होंने अपने बालक को विचित्र अवस्था में पाया। उसका चेहरा मुरझाया हुआ था तथा वह अचेतावस्था में था। गोद में लेने और पुकारने पर भी जब उसने आंखें न खोलीं, तो उन्हें संदेह हुआ और खोजने पर पास ही अफीम की पुड़िया का कागज खाली पड़ा दिखाई दिया। स्पष्ट हो गया कि बालक ने पुड़िया की अफीम

सब अफीम खा ली थी और अब उसी के प्रभाव में था।

मेरे पिता उस समय घर पर नहीं थे। बालक को उलटी आदि कराने के उपाय जब विफल हुए और मेरे पिता घर वापस आये, तो बालक को हकीम आदि को दिखाया गया, पर कुछ न हो सका और उसकी मृत्यु हो गयी! अपने बच्चे को गंगा की गोद में विसर्जित कर बच्चीजी ने मुझे छाती से लगा लिया।

कुछ मास पश्चात् हैजे की महामारी में मेरे पिता की मृत्यु हो गयी। साथ ही अनेक अन्य विपत्तियां घहरा पड़ीं। पिता की मृत्यु के ५-६ मास बाद मेरे छोटे भाई का जन्म हुआ। घर में कोई पुरुष रक्षक न होने के कारण मेरी माता हम सबको लेकर मेरे मामा के यहां चली आयीं, और लगभग एक वर्ष बाद स्वयं भी चल बसीं। माता का स्थान पहले से ही बच्चीजी ने, केवल मेरे लिए ही नहीं, वरन् मेरे छोटे भाई के लिए भी ले रखा था। वह संबंध अब और भी गहरा हो उठा। पिता की छोड़ी हुई संपत्ति मेरे मामा के न चाहते हुए भी धीरे-धीरे उनके व्यापार और परिवार की भेंट हो गयी। मामी को हम दोनों भाई फूटी आंखों न सुहाते थे। मामा की आर्थिक स्थिति डावांडोल थी। हम बिना माता-पिता के अनाथ थे। मामा भी व्यापार के सिलसिले में दक्षिण हैदराबाद रहने लगे थे। अब हमारा एक ही संबल था—बच्चीजी मिश्राणी।

हमने मां के न रहने का दुःख कभी न जाना। बच्चीजी का वेतन था कुल तीन रुपया महीना, पर वह भी महीनों न मिलता था। हमें अपनी मां की कोई याद नहीं रह गयी थी। हम उन्हीं को मां समझते थे। हर चीज के लिए उन्हीं से मांग करते थे, उन्हीं से रूठते और उन्हीं से झगड़ते। नहीं मालूम, वे कैसे अपना पेट पालतीं और हमारी मांगें पूरी करती थीं। ब्राह्मणी होने पर भी उन्होंने कभी किसी के आगे हाथ न पसारा। उनके शांत, सौम्य स्वभाव और निर्मल चरित्र से प्रभावित होकर यदि कोई दान की, अथवा देवता को चढ़ायी मिठाई या अन्य स्वादिष्ट वस्तु, ब्राह्मणी होने के नाते उन्हें अपने आप दे जाता, तो उसे वे अपने उपयोग में न लाकर, इस विचार से संभलकर रख देतीं कि बच्चे जब मांगेंगे तो उन्हें दूंगी; और ऐसा अवसर आते देर न लगती, क्योंकि हम नासमझ उन्हें अपनी मांगों से तंग करते ही रहते। किंतु हमें जिस प्रेम और आनंद से वे ये चीजें देतीं, उससे तो यही जान पड़ता था कि वे खीजने के बदले, हमारी मांग और बालहठ की राह ही देखती रहती थीं।



चित्रकार: पंकज गोस्वामी

माता की मृत्यु

इस चित्र में—और अपने सभी चित्रों में—मेरा मुख्य उद्देश्य मानवता की भावना को हृदयंगम करना है। मैंने अल्बर्ट श्वाइत्जर के "जीवन के प्रति सम्मान" के सिद्धांत को अपने अनेक चित्रों की विषय-वस्तु बनाया है। जब तक दुनिया में युद्ध का अस्तित्व बना रहेगा और मनुष्य पीड़ादायक मौत मरते रहेंगे, तब तक यह अपील निकलती ही रहनी चाहिये और हर कलाकार को विश्वशांति के लिए लड़ना अपना सर्वोपरि कर्तव्य मानना चाहिये। —हेलेन शिगेला

ooooooooooooooooooo-ooooooooooooooooooooooooooooooo

कुछ वर्ष बाद मामा की भी मृत्यु हो गयी। उनके पुत्र घर के मालिक बने। उन्हें और मामी को हम ऐसी आपदा जान पड़ते थे, जिससे छुटकारा पाना वांछित था। बात-बात में मारने-पीटने की उनकी आदत थी। मेरे चंचल स्वभाव के कारण उसका अवसर बहुधा मिल जाता। बच्चीजी बराबर इसका प्रतिरोध करतीं और स्वयं गालियां बर्दाश्त करते हुए उन्हें फटकारतीं। हमारे ममेरे भाई से अनबन रहने पर भी, उनकी स्त्री की मृत्यु हो जाने पर, उन्होंने उनके दो बच्चों को भी पाल-पोसकर बड़ा किया। आगे चलकर जब हमारे बच्चे हुए, तब उन्हें भी उन्होंने ही पाला और जब तक वे जीवित रहीं, ये बच्चे अपनी मां से भी बढ़कर उनसे स्नेह करते रहे।

छियालीस वर्ष वे हमारे परिवार में रहीं और इस दीर्घ काल में हमने मातृत्व की एक सजीव प्रतिमा के रूप में उन्हें पाया। स्वयं दरिद्रता और अभाव के दारुण कष्ट भोगते हुए, आश्रय में आये हुए बालकों को सरल और सहज रीति से स्नेह देने वाली और उनका पालन तथा रक्षा करने वाली बच्चीजी को अपनी मां तथा जगन्माता का प्रतिरूप जान मैं प्रणाम करता हूं।

ooo

कल्याणी

—कुणाल सिंह

मैं पेशे से एक डाक्टर हूं। मैंने जिस परिवार में जन्म लिया, उस पर एक साथ दो संस्कृतियां हावी थीं। मेरे पिताजी का परिवार बिहार के ग्रामीण भोजपुरी इलाके से आया था और मेरी मां का परिवार कलकत्ता के आधुनिक मध्यम वित्तवर्ग से। पिताजी एक जाने-माने पत्रकार थे। मेरी माता और मेरे पिता दोनों ही एक ऐसे राजनीतिक दल से संबंधित थे, जिसकी कट्टरता और हठधर्मिता मशहूर है। दो भिन्नधर्मी रीति-रिवाज आचार-व्यवहार के संघर्ष के बीच में पलता-बढ़ता रहा। मां हर तरह से एक संतुलन बनाये रखने की कोशिश कर रही थी।

कभी-कभी मेरी मां के साथ चाचा, चाची, दादी, बुआ सब मिलकर बड़ा अपमानजनक व्यवहार करते। मगर मां कभी अपने पढ़े-लिखे होने का या परिवार में एकमात्र कमाऊ व्यक्ति की पत्नी होने का बड़प्पन नहीं दिखातीं और सब कुछ चुपचाप सह लेती। अचानक एक दिन रात को लगभग २ बजे हमारे घर के दरवाजे पर जोर-जोर की दस्तकें हुईं और जब पिताजी ने दरवाजा खोला, तो उन्हें गिरफ्तार करने के लिए सामने सशस्त्र पुलिस का एक पूरा दस्ता खड़ा था।

पिताजी पूरे तीन साल तक जेल में रहे। घर-खर्चे के लिए सरकार की ओर से कुछ रकम मिलती थी, मगर उससे घर नहीं चलता था। मेरी मां ने इन तीन वर्षों में छोटा-बड़ा काम करके परिवार की पूरी सुख-सुविधा का ध्यान रखा। पिताजी के मित्रों-परिचितों के परिवार में मां को काफी सम्मान मिलता था, मगर अपने परिवार में उसे गालियां मिलती थीं। मां के सिर पर जो कुत्सा मढ़ी जाती, वह मैं बर्दाश्त नहीं कर पाता और मैं चाचा-चाची-बुआ से भिड़ जाता; और जब लात-घूंसों से मेरी पिटाई होती रहती, तो मां मुझे बचाने की कोशिश नहीं करती और पत्थर बनी अपने काम में लगी रहती। जिस दिन पिताजी जेल से छूटे, उन्हें लेने परिवार का हर सदस्य गया। मां नहीं गयी। वह सुबह से ही बेहद गुमसुम थी।

पिताजी फूल-मालाओं से सजे जब घर के दरवाजे पर पहुंचे, तो सामने अस्त-व्यस्त-सी खड़ी मां ने बेतहाशा हंसना शुरू किया। उस बेमानी ठहाके से घर की दीवारें कांप उठीं। पिताजी ने फूल-मालाएं फेंक दीं और मां को पकड़ने दौड़े। मगर मां आपे में नहीं थी। तीन साल तक लगातार इस घर को समेटने की बेपनाह कोशिश में वह स्वयं बिखर गयी थी।

पिछले दस साल से मां मेंटल अस्पताल में है। पिताजी गुजर चुके हैं। मैं सफल डाक्टर हूं। मेरे साथ ही सारा परिवार है। अब मैं क्या बताऊं कि मैंने मां से क्या पाया?



दो पहाड़
एक बूढ़ा, एक जवान

डा० खड्ग सिंह वल्दिया

भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के रंगस्थल गंगा-यमुना के रेतीले मैदान के उत्तर में खड़ा है हिमालय का उत्तुंग-पर्वत-प्राचीर और दक्षिण में फैली हुई हैं विंध्याचल की छोटी-छोटी श्रेणियां। यौवन की पीड़ा और तनावों से रह-रहकर छटपटाता गर्वोन्नत हिमालय अब भी उभर रहा है, ऊंचा उठ रहा है; परंतु कल्प-कल्पांतरों से अचल, स्थिर एवं शांत विंध्याचल का धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है। इन दो पर्वतों के बीच में फैला रेतीला मैदान स्वयं भी बेचैन है और जब-तब तड़प उठता है।

हिमालय की बेचैनी, उसकी छटपटाहट उस आंतरिक वेदना अथवा तनाव तथा आंतरिक दबावों की परिचायक है, जो उसके जन्म की घटना से संबंधित हैं। अर्थात् यह प्रसवोत्तर पीड़ा है।

प्रत्येक पर्वत के जीवन के दो परिच्छेद होते हैं। पहला जल के भीतर का जीवन, जब सागर या द्रोणी (बेसिन) के गर्भ में कंकड़-पत्थर, रेत और मिट्टी एकत्र होती है। इसे पर्वत के जीवन की भ्रूणावस्था कह सकते हैं। और दूसरा, जल के बाहर का जीवन, जब द्रोणी में संचित परतीली रेत-मिट्टी (जिसे भूविज्ञानी स्तरित अवसाद कहते हैं) जल से बाहर निकलकर पर्वत के रूप में आंधी-पानी के थपेड़ों को झेलती है।

हिमालय तथा विंध्याचल दोनों के जीवन में ये घटनाएं हुई हैं। किंतु दोनों का जीवन-वृत्त भिन्न-भिन्न है। नयी खोजों से पता चलता है कि दोनों का परस्पर जातीय संबंध है। यह संबंध, यह नाता, कैसा है, इसे समझने के लिए इन पर्वतों के इतिहास को समझना होगा।

विंध्याचल की जीवनी

केंद्रीय भारत में बुंदेलखंड के पठार को अपनी बांहों में बांधे विंध्याचल की नौ सौ मील लंबी श्रेणियां पूर्व में सहसराम (बिहार) से लेकर पश्चिम में चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) होती हुई पूर्वोत्तर दिशा में आगरा तक फैली हुई हैं। इन छोटी-छोटी श्रेणियों की ऊंचाई तीन हजार फुट से अधिक

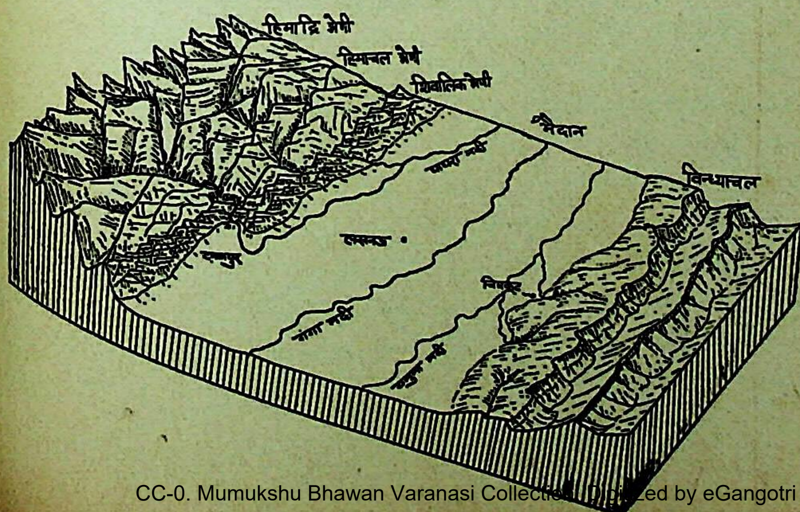
नहीं है। श्रेणियों के शीर्ष प्रायः समतल-सपाट हैं, अथवा उनका उत्तरी ढाल अत्यंत मंद है। संक्षेप में विंध्याचल मुख्यतः पठारी प्रदेश है। इसकी सरिताएं तथा नदियां घूमती, बल खाती, अलसायी बहती हैं। जल की प्रचुरता होते हुए भी निर्जीव-सी, निष्क्रिय एवं शक्तिहीन ये नदियां चट्टानों को अधिक घिस-काट नहीं सकती हैं। यदि कभी कटाव-घिसाव (अपरदन) होता है, तो वह बाढ़ के समय, अल्पकाल के लिए, जब उफनती नदियां उन्मत्त हो उठती हैं।

जल का प्राचुर्य होते हुए भी नदियों के आलस्यपूर्ण बहाव और कटाव-घिसाव की मंदता का एक ही अर्थ हो सकता है—नदियों द्वारा पर्वत-श्रेणियों का कटाव-घिसाव लगभग चरम सीमा तक हो चुका है, अर्थात् लगभग समुद्र-तल की सीमा तक नदियों का तल उतर चुका है तथा पर्वत का उन्नयन-उत्थान पूर्णतः थम चुका है।

ऐसा ज्ञात होता है कि युग-युगांतरों से विंध्याचल अचल-स्थिर खड़ा रहा है। इसके जीवन में सबसे बड़ी हलचल संभवतः तब हुई थी, जब उसने सागर के जल से अपना सिर उठाया था। यह घटना लगभग ८०-८५ करोड़ वर्ष पूर्व की हुई होगी। विंध्य की संरचना (बनावट) को देखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसके जन्म के समय कोई भयंकर विप्लव नहीं हुआ था, न वह असहनीय तनावों या आंतरिक दबावों का शिकार बना था। लगता है कि पचास करोड़ वर्षों से संचित हो रही रेत-मिट्टी की विपुल राशि धीरे-धीरे जल के बाहर ऊपर उठ आयी और इस प्रकार विंध्याचल प्रकट हुआ। संभव है कि दक्षिणी भाग में कुछ अधिक उथल-पुथल हुई हो।

शुरू में बाल-विंध्याचल में नव-विकसित सरिताओं के कटाव-घिसाव की क्रिया तीव्र रही होगी। ८०-९० करोड़ वर्षों से नदी-नाले विंध्याचल को काट रहे हैं, तराश रहे हैं, मिटाने पर तुले हैं।

चित्र १– दो पहाड़ : वृद्ध विंध्याचल और तरुण हिमालय



अनेक करोड़ वर्ष बाद विंध्य के जीवन में एक विक्षोभकारी हलचल हुई। विंध्याचल पर दक्षिण अथवा दक्षिण-पश्चिम दिशा से प्रायद्वीपी भारत का प्रचंड दबाव पड़ा था। भूविज्ञानी श्री अंबरप्रसाद तिवारी के मतानुसार वर्तमान सोन-नर्मदा घाटी तथा पूर्वी राजस्थान में गहरी, क्षैतिज-तल की ओर झुकी हुई दरारों की एक अखंडित माला खिल उठी और दक्षिण का सतपुड़ा पर्वत तथा पश्चिम का अरावली पर्वत विंध्याचल को विदीर्ण करते और उसके सीमांत को कुचलते हुए, उस पर चढ़ बैठे। उसके बाद जब हिमालय का जन्म हुआ, तब विंध्याचल के उत्तरी पार्श्व पर भयंकर हलचल हुई थी।

हिमालय के आविर्भाव का इतिहास

गंगा-यमुना के मैदान के उत्तर में सिंधु तथा ब्रह्मपुत्र की बांहों में हिमालय की पंद्रह सौ मील लंबी श्रेणियों के गगनचुंबी शिखरों की औसत ऊंचाई बीस हजार फुट से अधिक है। सर्वोच्च शिखर एवरेस्ट तो उनतीस हजार फुट से भी अधिक ऊंचा है। इन उत्तुंग शिखरों की ऊंचाई अब भी बढ़ रही है।

भीषण वेग से बहनेवाली नदियां उद्दाम गति से इन उत्तुंग श्रेणियों को काट रही हैं। फलतः खड़ी दीवारों वाली महागंभीर घाटियां बन रही हैं और कराल कगार विकसित हो गये हैं। इससे हिमालय का अंचल अतिशय दुर्गम प्रदेश बन गया है। वह बार-बार भूचालों से छटपटाने लगता है। ये हैं नगाधिराज की तरुणाई के चिह्न, उसके अंतर के तनावों एवं दबावों की अभिव्यक्तियां। आखिर उसे पैदा हुए अभी दो-ढाई करोड़ वर्ष ही तो हुए हैं।

गिरिराज हिमालय का आविर्भाव चार चरणों में संपन्न हुआ था। लगभग छः-सात करोड़ वर्ष पूर्व प्रसव-संबंधी प्रथम महत्त्वपूर्ण हलचल हुई थी। सुदूर उत्तर में कराकोरम पर्वत ऊपर उठ आया और उसके दक्षिण में हिमालय-सागर अकस्मात् गहरा हो गया और समुद्र के गहरे नितल में बड़े पैमाने पर ज्वालामुखी लावा उगलने लगे।

साथ ही हिमालय के दक्षिणी भाग में-आज की शिवालिक-श्रेणियों के उत्तर में-एक लंबा व संकरा गर्त विकसित हुआ, जिसमें आगामी डेढ़-दो करोड़ वर्षों तक रेत-मिट्टी एकत्र होती रही। इसी रेत-मिट्टी से निर्मित शैल-समूहों में से एक है 'सुबाथू शैलसमूह,' जिसमें आजकल पेट्रोलियम के भंडारों की खोज के भगीरथ प्रयत्न हो रहे हैं।

दूसरी भारी हलचल लगभग साढ़े चार करोड़ वर्ष पूर्व हुई थी। इस भौतिक हलचल के फलस्वरूप तिब्बत का वर्तमान पठारी प्रदेश जल के बाहर उठ आया और हिमालय के उत्तरी सीमांत की सद्यःविकसित चट्टानें दक्षिण को सरकने लगीं।

तीसरी क्रांतिक हलचल अत्यंत प्रलयंकर थी। यह उथल-पुथल लगभग दो करोड़ वर्ष पूर्व हुई थी। अति उग्र दबावों से सागर में संचित रेत-मिट्टी की हजारों फुट मोटी लाखों तहें मुड़कर फटकर हिमालय पर्वत के रूप में उभर उठीं और उभ-

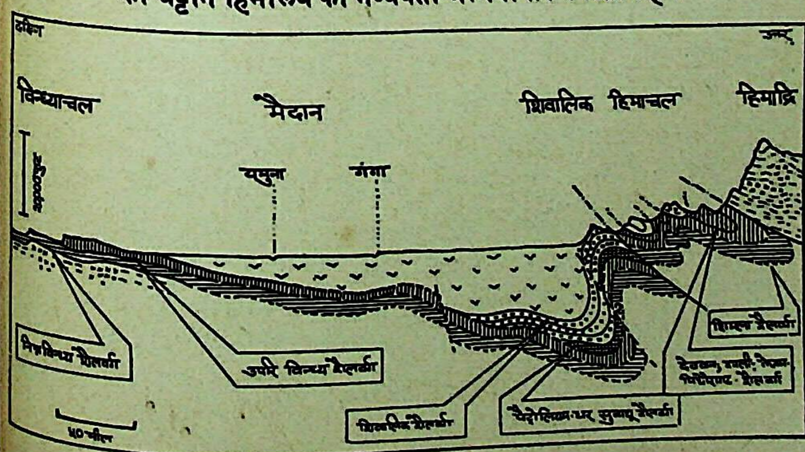
रती रहीं। गहरी तथा क्षैतिज-तल की ओर झुकी हुई सुदीर्घ दरारें (जिन्हें भूविज्ञानी क्षेपभ्रंश कहते हैं) फट पड़ीं। नवजात पर्वत अपने मूल से उखड़कर रास्ते की चट्टानों को रौंदते-कुचलते हुए मीलों दक्षिण को सरक आये। उत्तर की ओर झुके हुए एक सुदीर्घ क्षेपभ्रंश ने हिमालय को तिब्बत तथा कराकोरम से विच्छेदित कर दिया।

संभवतः इसी काल में पृथ्वी के भीतर बड़ी गहराई से पिघले पाषाणों की अपार राशि पथरीली चट्टानों का सीना फाड़कर उनमें जम गयी और इस प्रकार हिमालय के कठोर ग्रेनाइटी मेरुदंड की सृष्टि हुई। सागर-जल को हिमालय का अंचल छोड़ना पड़ा और दक्षिण में नवजात शिवालिक द्रोणी (गर्त) में सिमट आया। बढ़ते हुए हिमालय के भीषण कटाव से उत्पन्न मलवा इस द्रोणी में बड़ी तेजी से एकत्र होने लगा।

चौथी हलचल बीस-तीस लाख वर्ष पूर्व हुई थी। शिवालिक द्रोणी में संचित पचास हजार फुट मोटे शैल-संस्तर मुड़कर शिवालिक पर्वत में परिणत हो गये। एक दीर्घ दरार-माला निर्मित हुई, जिसने शिवालिक का हिमालय से संबंध-विच्छेद कर दिया। हिमालय के पर्वत-पिंड दक्षिण की ओर खिसक आये और कहीं-कहीं तो शिवालिक पर चढ़ गये। एक और महत्त्वपूर्ण घटना यह थी कि शिवालिक के दक्षिण का भाग धंस गया और धंसता गया। इस नव-निर्मित गर्त में नदियां बड़ी तेजी से रेत और मिट्टी भरने लगीं। यह भराव अब प्रायः पूर्ण हो चुका है। उसी का सुफल है उत्तर भारत का विशाल मुस्कराता-लहलहाता मैदान।

हिमालय की हलचल अभी थमी नहीं है। पिछले दस-एक लाख वर्षों से हिमालय दक्षिण की ओर सरक रहा है। उत्तर बंगाल, पूर्व नेपाल और पंजाब के होशियारपुर जिले में हिमालय प्रायाधुनिक रेतीले मैदान

चित्र २–यदि हिमालय, गंगा के मैदान और विंध्याचल को सीधे चीरकर देखा जाये तो भीतर चट्टानों की ऐसी व्यवस्था तथा संचरना दिखेगी। लक्ष्य करें, विंध्याचल की चट्टानें हिमालय की मध्यवर्ती श्रेणियों तक विस्तीर्ण हैं।





चित्र ३ – डेढ़ सौ करोड़ वर्ष पूर्व उत्तरी भारत का भूगोल (लेखक के निजी, अभी तक अप्रकाशित अनुसंधान के अनुसार ।)

पर चढ़ आया है । यह क्रिया अमंद गति से अभी जारी है, मानो हिमालय अपने संबंधी विंध्याचल से भेंट करने चला आ रहा हो ।

विंध्याचल हिमालय का नाता

प्रश्न उठता है कि वयोवृद्ध विंध्याचल तथा किशोर हिमालय का आपस में क्या नाता है । विंध्याचल की चट्टानों को देखिये, तो स्थान-स्थान पर पुरातन जलधाराओं के चिह्न मिलेंगे । इनके अध्ययन से पता चलता है कि विंध्य सागर के पूर्वी अंचल में जलधाराएं पश्चिमोत्तर दिशा को बहती थीं और पश्चिमी अंचल में पूर्व तथा पूर्वोत्तर दिशा को । ये धाराएं इन दिशाओं में विंध्याचल के वर्तमान उत्तरी सीमांत तक लगातार बहती थीं । इससे प्रकट होता है कि विंध्य सागर का गहरा केंद्रीय भाग कहीं उत्तर में था—हिमालय की दिशा में।

तो क्या रेतीले मैदान के नीचे विंध्य की चट्टानें फैली हुई हैं? भूभौतिक सर्वेक्षणों से तथा बदायूं के निकट किये गये भू-वेधन से पता चला है कि विंध्याचल का उत्तरी पार्श्व गंगा की रेत के नीचे दबा हुआ है और अंदर-ही-अंदर उसकी कई श्रेणियां और घाटियां हिमालय के लगभग समानांतर फैली हुई हैं । इस ढंके हुए विंध्याचल के शीर्ष की गहराई उत्तर दिशा में उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है । तराई के कटिबंध में तो वह धरातल से पच्चीस से चालीस हजार फुट गहरा धंस गया है।

हिमालय में हिमाचल प्रदेश तथा गढ़वाल में विस्तीर्ण 'शिमला शैलवर्ग' की चट्टानों में जलधाराओं के चिह्नों के अध्ययन से इन पंक्तियों के लेखक ने पता लगाया है कि समुद्र के नितल में बहनेवाली धाराएं पंजाब की ओर से बहकर शिमला, चकरौता, देवप्रयाग होती हुई दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़कर आज के केंद्रीय उत्तरप्रदेश की ओर अर्थात् विंध्य सागर की ओर बहती थीं । ('शिमला शैलवर्ग' निम्न 'विंध्य शैलवर्ग' का समकालीन माना जाता है।)

लेखक के अनुसंधान से ज्ञात होता है कि 'शिमला शैलवर्ग' के निर्माण में लगी रेत-मिट्टी अरावली पर्वत के उस भाग से उपलब्ध हुई थी, जो सौ-डेढ़ सौ करोड़ वर्ष अर्थात्

पूर्व हरियाणा होते हुए पूर्वोत्तर दिशा में हिमालय की सीमा तक विस्तीर्ण था। आज तो वहां रेत का सपाट मैदान फैला हुआ है; परंतु भूभौतिक सर्वेक्षण से पता चलता है कि गहराई में अरावली की श्रेणियां दबी पड़ी हैं। स्पष्टतः सुदूर अतीत में ये ऊंची पर्वत-श्रेणियां थीं, जो कट-घिसकर मिट गयी हैं।

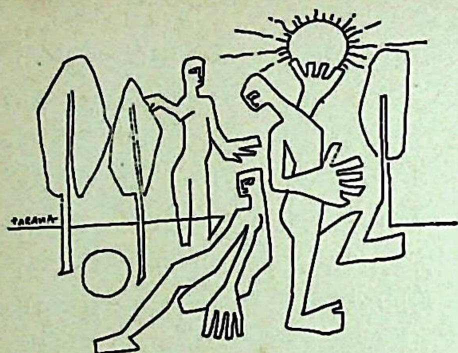
जिस प्रकार हरियाणी अरावली ने हिमालय के शिमला शैलवर्ग को रेत-मिट्टी की अपरिमित मात्रा प्रदान की थी, उसी प्रकार राजस्थानी अरावली से पश्चिमी विंध्याचल को रेत-मिट्टी की विपुल राशि प्राप्त हुई थी। इस प्रकार हिमालय और विंध्याचल दोनों की सृष्टि में पुरातन अरावली का बहुत बड़ा योगदान रहा है। उसने इन दोनों पर्वतों का पोषण किया है।

विराट हिमाद्रि के दक्षिण में हिमालय की मध्यवर्ती श्रेणियों, अर्थात् हिमाचल के अनेक शैलवर्गों का, विंध्य के शैलवर्गों से इतना निकट सादृश्य है कि उन्हें समकालीन माना जा सकता है। चूने के पत्थरों में विद्यमान पुरातन समुद्री शैवाल (काई) द्वारा निर्मित विशिष्ट रचनाओं के आधार पर इन पंक्तियों के लेखक ने प्रदर्शित किया है कि विंध्याचल तथा हिमालय के अनेक शैलवर्ग समसामयिक हैं। विंध्य के निचले भाग के शैलवर्ग को भूविज्ञानी सेमरी कहते हैं। उसकी रेत-मिट्टी उथले समुद्री जल में संचित हुई थी, जबकि प्रायः उसी अवधि में कश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा गढ़वाल में शिमला शैलवर्ग की रेत-मिट्टी गहरे समुद्र में एकत्र हुई। उत्तर-विंध्य युग में दोनों प्रदेशों में द्रोणी काफी भर चुकी थी और जल उथला हो चुका था। अतः विंध्याचल में जब उपरि विंध्य शैलवर्ग—'कैमर,' 'रींवा' तथा 'भांडेर'—अत्यंत उथले तटवर्ती ज्वारीय मैदानों, डेल्टाओं तथा बाढ़-आक्रांत मैदानों में संचित हो रहे थे, तब हिमालय में उथले समुद्री जल में ऐसे चूने के पत्थरों का निर्माण हो रहा था, जिनमें बड़े पैमाने पर काई पनप रही थी। हिमाचल प्रदेश का 'शाली', गढ़वाल का 'देववन' और कुमाऊं का 'तेजम' व 'पिथौरागढ़' इसके उदाहरण हैं।

प्रश्न उठता है कि हिमालय तथा विंध्याचल का संबंध-विच्छेद कैसे हो गया? इसका कारण वह भौतिक उथल-पुथल है, जिसमें हिमालय की सृष्टि हुई थी। सुदूर हिमालय तक विस्तीर्ण विंध्य शैलवर्ग प्रचंड दबाव से बड़े जटिल रूप में वलित, विदीर्ण एवं खंडित और विस्थापित हो गये। सुदीर्घ दरार-माला ने दोनों को सदा के लिए पृथक् कर दिया। इस घटना के साथ-साथ हिमालय के सामने बने विशाल गर्त में रेत और मिट्टी एकत्र होने लगी। संचय के साथ-साथ गर्त का तल भी बैठता गया, धंसता गया।

यह गर्त अब लगभग भरकर विशाल मैदान में बदल गया है। परंतु कभी-कभी मैदान बेचैनी से छटपटाने लगता है और कहीं-कहीं धंस भी रहा है। हिमालय की बेचैनी और तड़पन तो और भी गहरी है। परंतु वृद्ध विंध्याचल मौन, अचल, गर्वोन्नत खड़ा है।





एमिल कू

शक्ति का अंतःस्रोत

जब इच्छा-शक्ति और कल्पना-शक्ति में संघर्ष होता है,तो बहुधा कल्पना-शक्ति की ही विजय होती है। जैसे, हम जितना अधिक सोने का प्रयत्न करते हैं, उतनी ही तेजी से हमारी कल्पना किसी की स्मृति में उलझती रहती है। इसलिए मनुष्य के जीवन में कल्पना का महत्त्व इच्छा से कहीं अधिक है। तुम भी अपनी कल्पना-शक्ति से जीवन में महत् उपलब्धियों को प्राप्त कर सकते हो। शर्त यह है कि तुम कल्पना को सत्कर्मों में लगाने का अभ्यास करो।

तुम अपनी गतिविधियों के नियामक स्वयं हो। और इस नियामक शक्ति को प्राप्त करने का सहज तरीका बस इतना ही है कि तुम सोचना शुरू कर दो। तुम कल्पना करना शुरू कर दो कि तुम स्वयं अपनी नियति के नियामक हो। तुम्हारे हाथ कांपते हैं, तुम्हारे कदम डगमगाते हैं, तो तुम अपने-आपसे सिर्फ इतना कहो कि यह दुर्बलता अभी चली जायेगी; और तुम देखोगे कि तुम्हारे हाथों का कंपन कम हो रहा है, तुम्हारे कदमों में मजबूती आ रही है।

तुम जिसे प्राप्त करने की सोचते हो, वह तुम्हें अवश्य मिलेगा; क्योंकि मनुष्य का हर विचार, चाहे वह सत् हो या असत्, कालक्रम से यथार्थ का रूप अवश्य लेता है। हम वही हैं, जो कि हमने अपने-आपको बनाया है। परिस्थितियां हमें नहीं बनातीं।

"मैं सफल बनूंगा," ऐसा संकल्प लेकर जो जीवन शुरू करता है, वह सर्वदा सफल होता है। क्योंकि वह जीवन में आने वाले हर अवसर का लाभ उठाने का प्रयत्न करता

है। हमेशा यही सोचो कि जो तुम्हें करना है, वह सहज है, आसान है । ऐसी मनःस्थिति में तुम अपनी शक्ति का अपव्यय नहीं करोगे। सफलता के प्रति संशय का भाव तुम्हें असफल ही बनायेगा ।

कल्पित या आशंकित रोगों की चिंता में समय मत गंवाओ; क्योंकि उससे संभव है, तुम बनावटी रोगों के शिकार हो जाओ। अगर तुम्हें सचमुच कोई रोग है, तो कल्पना करो कि तुम बिलकुल नीरोग हो । और तुम देखोगे कि तुम्हारे स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक सुधार हो रहा है । दरअसल डाक्टर तुम्हें स्वस्थ नहीं करता; स्वस्थ करने की शक्ति स्वयं तुम्हारे अंदर है । थकावट का महज खयाल ही आदमी को थका देता है।

अपने अंदर अडिग आस्था पैदा करने के लिए तुम्हें निश्छलता और भरोसे का जीवन अपनाना होगा । यह निश्छलता, शुद्धचित्तता पाने के लिए परहित-चिंता आवश्यक है।

कल्पना करो कि तुम दिनों-दिन अधिक स्वस्थ और अधिक सुरुचि-संपन्न होते जा रहे हो। इसका फल तुम्हें हाथों-हाथ मिलेगा।

सारांश यह है कि हमारे अंदर अपरिमित शक्ति का रेला फैलने-बिखरने को तैयार रहता है। जरूरत इस बात की है कि हम उस अपरिमित शक्ति को पहचानें और उसके प्रचंड वेग को अपनी चेतन मनःस्थितियों में संभालें और उसे सत्कर्मों में लगायें। इससे न सिर्फ हमें सुख मिलेगा, बल्कि दूसरों को भी हम सुख दे सकेंगे ।



बंबई म्युनिसिपैलिटी में एक इंजीनियर थे । उनकी इच्छा थी कि महामना गोखले की सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी में शरीक होकर देशसेवा करें । लेकिन स्वभाव से संकोचशील होने के कारण उन्होंने गोखलेजी को इस आशय का पत्र स्वयं न लिखकर डा० देव से लिखवाया ।

इंजीनियर महोदय को शंका थी कि गोखलेजी उन्हें सोसायटी में भरती करेंगे या नहीं। इसलिए उन्होंने डा० देव से कहा था कि पहले मैं सोसायटी को प्रार्थना-पत्र दूंगा और यदि वह स्वीकार हो गया, तो बंबई म्युनिसिपैलिटी की नौकरी से त्यागपत्र दे दूंगा। यों प्रार्थना-पत्र स्वीकार न हुआ, तो नये सिरे से नौकरी ढूंढ़ने कहां जाऊंगा ।

परंतु गोखलेजी तो सोसायटी में भरती करने के पहले एक-एक सेवक को ठोंक-बजाकर उसकी पूरी परीक्षा कर लेते थे । उन्होंने कहा—यदि भरती होने की इच्छा है, तो प्रार्थना-पत्र भेजने से पहले ही म्युनिसिपैलिटी से इस्तीफा देना होगा। उसके बाद ही प्रार्थना-पत्र पर कारंवाई होगी । उन्होंने बात मंजूर कर ली और प्रार्थना-पत्र स्वीकार होने से पहले ही म्युनिसिपैलिटी से त्यागपत्र दे दिया। बाद में उनके प्रार्थना-पत्र पर विचार हुआ और वे सोसायटी के सदस्य बना लिये गये। ये इंजीनियर थे—अमृतलाल वी० ठक्कर, जिन्हें सारा भारत ठक्कर बापा के नाम से याद करता है ।



मरुभूमि में विज्ञान की गंगोत्री

युद्धरत इजरायल का यह शोध-संस्थान निर्माण निरत है

गोविंद रत्नाकर

वर्षों पहले एक बार इन पंक्तियों के लेखक को डा० सी० वी० रामन् के साथ बंबई के धनाढ्यों के पास चंदे के लिए घूमना पड़ा था। उसी भिक्षायात्रा में व्यवसायी समाज के एक प्रमुख सज्जन से पूरे दो घंटे हुज्जत करने के बाद पांच हजार के दान का वादा मिला। वहां से उठकर हम जब बाहर सड़क पर आये, तो डा० रामन् ने बड़े खिन्न मन से कहा—"मन करता है, लौटकर इन सज्जन को अपनी दान-प्रतिज्ञा से मुक्त कर आऊं। हमने उनसे यह दान ऐंठा है, उन्होंने राजी मन से नहीं दिया।"

विज्ञानवेत्ता दिन-रात भौतिक तत्त्वों से जूझते रहते हैं, परंतु उनका अंतःकरण अभौतिकता से आप्लावित रहता है। इजरायल की संसार-प्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्था वीजमैन इन्स्टिटयूट के संचालक श्री वीज्गल की भी यही बात है। वे अपने देश की एक बहुत ही सफल और उपादेय प्रयोगशाला का संचालन कर रहे हैं, जिसे देखने के लिए देश-विदेश के बहुत-से धनाढ्य आते हैं।

एक दिन न्यूयार्क का एक करोड़पति वीजमैन इन्स्टिटयूट देखने आया। वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने तुरंत दो लाख रुपये का चेक लिख दिया। वीज्गल ने चेक स्वीकार नहीं किया और विनम्रता-पूर्वक कहा—"भावुकता के आवेश में दान मत दीजिये। यहां के काम का पहले पूर्णतः अवलोकन कीजिये, फिर विचार करके दान दीजियेगा।"

छः महीने बाद वीज्गल को उसी धनिक से न्यूयार्क में दस लाख का चेक स्वीकार करते हुए संकोच नहीं हुआ। कारण, उस धनपति को वीज्गल की संस्था के बारे में सोचने का पूरा समय मिल चुका था और अब वह भावुकता के वश में नहीं था।

अपनी अनुसंधानशाला के लिए धन एकत्र करने का वीज्गल का एक नया ही दृष्टिकोण है। वे कहते हैं—"मैं मांगता नहीं हूं, मैं तो अमरत्व बेचता हूं। प्रत्येक मनुष्य की अंश

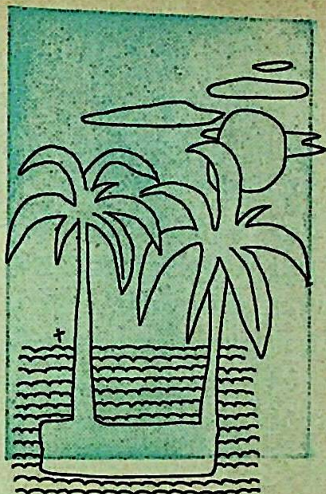
आकांक्षा होती है कि वह अपना कोई स्मारक पृथ्वी पर छोड़ जाये। धनियों से संस्था के लिए धन लेकर मैं उनकी इस आकांक्षा की पूर्ति में सहायक होता हूं।"

वीज्गल महत्त्वपूर्ण शोधकार्यों और उपकरणों के लिए धन उधार लेने में भी नहीं हिचकिचाते। वे कहा करते हैं, धन तो मिल ही जायेगा, पर उसकी प्रतीक्षा में काम को रोककर जो समय खो दिया जायेगा, वह तो फिर नहीं मिलेगा।"

अरब देशों से सफलतापूर्वक जूझकर इजरायल दुनिया के चित्रपट पर उभर आया है। सैनिक और आर्थिक दोनों क्षेत्रों में उसकी विजय और प्रगति का आधार रहा है, देश की बागडोर चोटी के विद्वानों व वैज्ञानिकों के हाथ में होना। आबादी के अनुपात से विश्व में सबसे अधिक पी-एच० डी० और नोबेल पुरस्कार विजेता इस छोटे-से देश में हैं। इजरायली तो दावा किया करते हैं कि हमारे देश की विविध कमियों की पूर्ति उनके ज्ञान द्वारा हो जाती है।

वीज्गल डंके की चोट कहा करते हैं कि इजरायल, नाइजीरिया, पेरू और थाइलैंड सरीखे देश रूस और अमरीका की तरह बलशाली और ऐश्वर्यशाली होकर प्रतिष्ठा नहीं पा सकते; वे प्रसिद्धि और मान प्राप्त कर सकते हैं बुद्धिबल के द्वारा, वैज्ञानिक वैभव के द्वारा।

इजरायल का नेगेव रेगिस्तान सूखेपन के लिए प्रसिद्ध है। उसी के प्रवेशद्वार रेहेवोथ पर वीज्गल संचालित वीजमैन-अनुसंधान-



शाला की दर्शनीय कुलभूमि (कैम्पस) है। २०० एकड़ भूमि, २६ नयनाभिराम आधुनिक भवन। २० वर्ष पहले जहां रेत-ही-रेत थी, वहां आज हरियाली है। जो स्थान निर्जन-निष्प्राण था, वह आज ज्ञान के स्पंदन से जीवंत है। कहीं परमाणु-विखंडन हो रहा है, तो कहीं विद्युद्-गति वाला कम्प्यूटर विज्ञान की गुत्थियां सुलझा रहा है, और कहीं औषध-शास्त्र एवं अन्य वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए विशुद्ध आक्सिजन का उत्पादन हो रहा है।

इन्स्टिटयूट में विशाल पुस्तकालय है, सभागृह है, निवासगृह हैं—सुविधापूर्ण जीवन, प्रयोग-परीक्षण और अध्ययन-अध्यापन के समस्त साधन हैं। आज वहां ४०० से अधिक वैज्ञानिक अनुसंधान-योजनाएं एक साथ चल रही हैं। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के ५० विज्ञानी वहां अनुसंधान-निरत हैं; इनमें २० तो अपने विषय में चोटी के

विद्वान हैं।

इसका सब श्रेय है अकेले मेयर वीज्गल को, जो बाइबल में कथित तीन बीसी और दस वर्ष की आयु पार करके भी जवानों से अधिक जवान हैं। अकेले उन्होंने ४० करोड़ रुपया एकत्र कर इस विशाल वटवृक्ष का रोपण और सिंचन किया है, जिसकी शाखा-प्रशाखाओं का फैलाव उसकी छाया में आनेवाले दर्शक को चकित किये बिना नहीं रहेगा।

हमारे देश में स्वर्गीय महामना मालवीयजी 'आदर्श भिखारी' कहे जाते थे। महात्मा गांधी ने उन्हें 'याचकों का राजा' कहा था। उन्होंने जिस प्रकार और जितना धन हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए एकत्र किया, वह निष्ठा और लगन की एक अनोखी कहानी है। वीज्गल भी याचना-कला में प्रवीण हैं, और इस पर उन्हें बड़ा अभिमान है। यिड्डिश में, जो इजरायल की भाषा है, भीख के लिए 'स्नोर' शब्द है। मजाक में वीज्गल अपने आपको 'स्नोरोलाजी' का आचार्य बताते हैं।

वीजमैन अनुसंधानशाला में प्रतिवर्ष ७-८ करोड़ रुपया खर्च होता है। उसका केवल २० प्रतिशत वहां की सरकार दे पाती है; शेष सारा धन नाना देशों के व्यक्तियों, सरकारों एवं फाउंडेशनों से प्राप्त होता है। संस्थान में आज १,२०० वैज्ञानिक काम कर रहे हैं, जिनमें से २०० अनुसंधान-कार्यों में संलग्न हैं, उनके अधीन ७५० तकनीकी सहायक और २५० स्नातक-विद्यार्थी हैं।

यहां तनख्वाहें ऊंची नहीं हैं। सबसे बड़ी तनख्वाह है ५० हजार रुपया सालाना, जो इजरायल की दृष्टि से बहुत ऊंची नहीं है। लेकिन यहां के विज्ञानी इससे तिगुनी-चौगुनी तनख्वाह के लोभ को भी ठुकराते रहते हैं। कारण, वे इसे अपनी अनुसंधानशाला समझते हैं, इसके काम को अपना काम मानते हैं और इसके द्वारा देश की सेवा करना चाहते हैं। विज्ञाननिष्ठा के साथ देशसेवा की इस वृत्ति ने ही वीजमैन संस्थान को इतना ऊंचा उठाया है।

डा० कैम वीजमैन, जिनके नाम पर इस संस्थान का नाम रखा गया है, इजरायल के प्रथम राष्ट्रपति थे। वे स्वयं नामी वैज्ञानिक थे। उन्हीं के ईजाद नकली रबर एवं पेट्रोल ने दो महायुद्धों में अमरीका और ग्रेट ब्रिटेन को विजयी बनाया था। उसी महापुरुष के प्रताप से यहूदियों के इस नये देश की स्थापना हुई। वीजमैन के मन में यह बात बैठी हुई थी कि इस नये देश का भाग्योदय ज्ञान-विज्ञान के बल पर ही होगा।

संयोग की बात है, सन १९४४ में वीजमैन और वीज्गल का सम्मिलन हुआ। इससे दस वर्ष पहले तेल अवीव से १५ मील दक्षिण रेहेवोथ में डा० वीजमैन एक छोटी विज्ञानशाला स्थापित कर चुके थे। वीजमैन और वीज्गल का मिलन वीजमैन के ७० वें जन्मदिन के अवसर पर हुआ। वीज्गल ने उस महान देशभक्त वैज्ञानिक को जन्म-दिवस का उपहार देना चाहा, तो वीजमैन ने कहा—"मैं तो आपको ही उपहार के रूप में पाना

चाहता हूं—रेहेवोथ की विज्ञानशाला का नेतृत्व करने के लिए।" उस समय की उस छोटी-सी संस्था ने इजरायल की स्थापना के एक वर्ष बाद विशाल रूप एवं 'वीजमैन अनुसंधान संस्थान' का नाम धारण किया।

वीज्गल की जीवन-कहानी भी अनोखी रही है। वे पोलैंड में जनमे और ११ वर्ष की आयु में न्यूयार्क पहुंचे। अखबार बेच-बेचकर पढ़े। पहले महायुद्ध में वे एक साधारण सैनिक के तौर पर लड़े। अखबारनवीस बने, यहूदी प्रकाशनों का संपादन-संचालन किया। सन ३० में विशाल खुली झांकी (आउट-डोर पेजेंट) का प्रदर्शन कर उन्होंने ख्याति प्राप्त की। सन ४१ में डा० वीजमैन ने उन्हें अमरीका में अपना निजी प्रतिनिधि नियुक्त किया। वीज्गल ने उनके कई काम साधे। जिसे अंग्रेजी में 'ट्रबल शूटर' (विघ्न-विदारक) और 'गो-गेटर' (कर-गुजर) कहा जाता है, वह हैं वीज्गल।

वीज्गल स्वयं वैज्ञानिक नहीं हैं, अनुसंधानकर्ता नहीं हैं; पर वे वैज्ञानिकों के जन्मदाता, पारखी और पोषक हैं। एक ही नजर में वे होनहार वैज्ञानिक बिरवे को पहचान लेते हैं और बड़े जतन से उसे लाकर रेहेवोथ में रोपते हैं। वे निरंतर घूमते रहते हैं, वैज्ञानिकों और धन के आखेट के लिए। सफलता उनकी चेरी है।

आज वीजमैन अनुसंधानशाला को न वैज्ञानिकों की कमी है, न दाता संरक्षकों की। इसका कारण है, वीज्गल का अनवरत प्रयास और दाता तथा बुद्धिजीवी दोनों के मानस को समझने और उन दोनों के साथ कुशलता के साथ व्यवहार करने की उनकी प्रबल शक्ति।

संस्थान का संचालन वीज्गल बड़ी दृढ़ता से करते हैं। परंतु वैज्ञानिकों के संबंध में वे डा० वीजमैन के इस आदेश का पूर्णतः पालन करते हैं—"वैज्ञानिक को पूर्ण स्वातंत्र्य दो। कौन जानता है, वह जो वैज्ञानिक बाग में निठल्ला-सा घूम रहा है, शायद किसी परमोत्पादक विचार में डूबा हुआ हो!"

वीजमैन संस्थान में हो रहे अनुसंधानों में से ९० प्रतिशत के संबंध में वीज्गल स्वयं कुछ नहीं जानते। परंतु वहां जो हो रहा है, उसके प्रति उनके मन में अगाध आस्था है। अपनी संस्था में वे शुद्ध वैज्ञानिक अन्वेषण को ही बढ़ावा देते हैं। उनका मानना है, व्यावहारिक विज्ञान स्थानीय और तात्कालिक समस्याओं का हल सुझाता है, जबकि विशुद्ध विज्ञान स्वास्थ्य, कृषि और उद्योग-तंत्र के उन अद्भुत रहस्यों का उद्घाटन करता है, जो सदा के लिए समस्त संसार का हित-साधन करने में समर्थ होते हैं।

यही कारण है कि वीजमैन संस्थान में जहां फलों को समुद्री-यात्रा में सुरक्षित रखने के लिए औषध-फुहार का आविष्कार होता है, खुले जलाशयों से पानी के बाष्पीभवन में कमी करने के प्रयोग होते हैं, वहीं विशेष ध्यान ऐसे विषयों पर दिया जाता है :

० जीवन क्या है ?— इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए प्रजनन के शरीरशास्त्र का शोध।

• ज्वार-भाटे का गणितीय अध्ययन, जिसका भूकंप की संभावनाओं से निकट संबंध है। (इसी अध्ययन से गाजा भूखंड में तेल की उपस्थिति का पता लगा था।)

• वार्धक्य संबंधी शोध। (रक्त की लाल कोशिकाओं की आपेक्षिक भंगुरता नापने में समर्थ 'फ्रेजिलोग्राफ' का निर्माण इसी अनुसंधान का परिणाम है।)

• कोशिका-विभाजन का मूलभूत अध्ययन—कैन्सर के कारण जानने का एक साधन।

रबर, सेल्युलोस, पेक्सीग्लास जैसे पदार्थों का निर्माण करने वाले पोलिमर नामक तंतु-सदृश व्यूहाणुओं पर शोध-कार्य। (इस शोध-कार्य के दरमियान उस मशीन का निर्माण हुआ है, जो मानवीय तंत्रिका की भांति रासायनिक शक्ति को यांत्रिक शक्ति में परिवर्तित करती है।)

इस प्रकार के अनुसंधानों की सफलता के बल पर ही तो आज का वैज्ञानिक युग इतना आगे बढ़ रहा है। वीजमैन संस्थान ऐसी खोजों के लिए प्रसिद्ध है। वीज्गल ने इस संस्था की आत्मा को जैसा उपादेय और पुष्ट बनाया है, उसी तरह उसकी काया को भी सुंदर बनाया है। आज वह स्थान पश्चिम एशिया का एक दर्शनीय स्थान है। वहां दूब के कालीन बिछे हैं, और फूलों से लदे पेड़ सर्वत्र शोभायमान हैं।

वीज्गल प्रायः कहा करते हैं—"हमारे पुरखे कहते थे कि साहित्य, संगीत एवं कला का सृजन शांत-पवित्र वातावरण में ही संभव है। मैं कहता हूं, वैज्ञानिक शोधकार्य के लिए उससे भी अधिक मनोरम और पावन स्थल की आवश्यकता है।"

वीज्गल पोलैंड में जनमे, अमरीका में पले और जीवन की ध्येयसिद्धि कर रहे हैं इजरायल में। वह कहा करते हैं—"आज के इस युग में हम सब एक संसार के नागरिक हैं। विज्ञान और शिक्षा का समत्वसाधक प्रभाव ही संसार में सर्वत्र शांति और संपन्नता स्थापित करने में समर्थ होगा।"

एक सवाल संसार को झकझोरे हुए है—चांद पर कौन पहले उतरेगा, अमरीका या रूस ? और जो देश पहले उतरेगा, क्या चांद उसी का उपनिवेश बन जायेगा ? मामला अंतर्राष्ट्रीय कानून का है। भारत के प्रधान न्यायाधीश श्री हिदायतुल्ला के अनुसार जो भी देश किसी स्थान की खोज करते-करते वहां पहले पहुंच जाये, उसे ही वहां उपनिवेश बसाने का अधिकार भी प्राप्त होता है। उनका यह भी विचार है कि विज्ञान और प्रविधि, विशेषतः अंतरिक्ष-प्रविधि के विकास के बाद अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनेक सिद्धांत अब बेमानी हो गये हैं और इस बात की सख्त आवश्यकता है कि उन्हें नये संदर्भों के अनुकूल बदला जाये। 'इंडियन एकेडमी आफ इंटरनेशनल ला एंड डिप्लोमेसी' ने वायु और अंतरिक्ष कानून पर एक विशेष पाठ्यक्रम की शुरूआत की है। उसी से संबंधित एक समारोह में श्री हिदायतुल्ला ने ये विचार व्यक्त किये हैं।

—बंधु





अमिट रेखाएं

'हम दोनों'

बहुत दिनों बाद उस दंपति के बारे में फिर सुनने को मिला। और जो सुना, उसकी याद सदा बनी रहेगी। श्री......मेरे परिचित बुजुर्ग थे और सैकड़ों लोगों के बुजुर्ग मित्र थे। मुझे याद है, एक संस्था में मुझे काम दिलवाने के लिए उन्होंने काफी प्रयत्न किया था, जिसका फल भी निकला। पढ़े-लिखे युवकों को काम दिलवाने में उन्हें बड़ा परितोष मिलता था। वे स्वयं अच्छी अर्ध-सरकारी नौकरी पर थे। सेवा-निवृत्त होकर उन्होंने विश्वयात्रा की। उनके सुपुत्र भी अच्छे पद पर हैं। उन्होंने कहा—"पिताजी, मैंने आज तक आपकी कोई सेवा नहीं की। मेरे व्यय पर माताजी के साथ भारत की तीर्थयात्रा कर आइये।" दंपति सहर्ष तीर्थयात्रा कर आये। उसके बाद से श्री...... अक्सर मित्रों से कहा करते थे—"अब हम दोनों किसी क्षण भी संसार से चल पड़ने को तैयार हैं।" दोनों को दिल की बीमारी थी ही। फिर एक दिन उनकी पत्नी को अचानक तेज दौरा पड़ा और वे चल बसीं। अपने बेटे को इसकी खबर देने के लिए उन्होंने ट्रंककाल किया......फोन पर बात करते-करते ही उन्हें भी दिल का दौरा पड़ा और वे भी अपनी पत्नी से जा मिले।

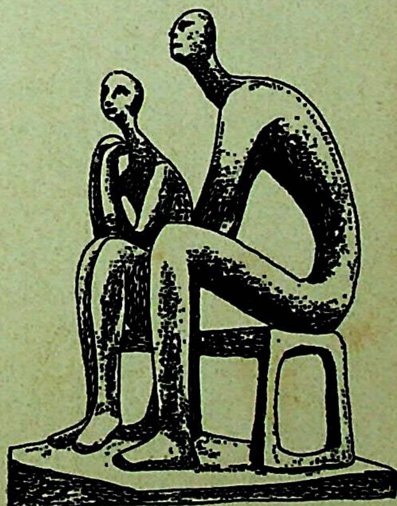
जीवन में उस दंपति का सामंजस्य और साहचर्य हम सबकी श्रद्धा का विषय था। मृत्यु ने भी उन्हें साथ निमंत्रित करके जैसे उनके दांपत्य को श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

—नारायण दत्त

०००

आस्था की जड़ें

बात सन १९६४ की है। मैं उस समय म्युनिसिपल हिन्दी शाला, कालीना



हम दोनों : हेनरी मूर की मूर्ति

(बम्बई) में चौथी कक्षा का शिक्षक था। मेरी कक्षा में एक मुसलमान लड़की आमना बी० शेख पढ़ती थी। रमजान का महीना था। आमना भी रोजा रखती थी। एक दिन भूल से अन्य छात्रों के साथ उसने भी म्युनिसिपैलिटी की ओर से छात्रों को दिया जाने वाला दूध पी लिया। दूध पीने के तुरंत बाद ही उसे अपनी भूल का पता चल गया और वह जोर-जोर से रोते हुए अपने गले में उंगली डालकर कै करने लगी।

मैं कुछ समझ नहीं पा रहा था कि बात क्या है? अंत में कै कर चुकने के बाद उसने रोते हुए मुझसे कहा—"गुरुजी, मैं रोजा रखती हूं, फिर भी आज दूध पी लिया। अल्लाताला मेरे मां-बाप को इस गुनाह की सजा देंगे!" फिर उसने आकाश की ओर अपनी ओढ़नी पसारते हुए कहा—"या खुदा! मेरे मां-बाप को कुछ मत करना, गुनाह मैंने किया है। चाहे मेरी दोनों आंखें फोड़ देना, चाहे मुझे अंधी बना देना; पर मेरे मां-बाप को कुछ मत करना।" मैं मूर्तिवत् उस बच्ची की भगवान के प्रति आस्था एवं धर्मनिष्ठा को देखता रहा। पश्चात्ताप का ऐसा दृश्य मैंने कभी नहीं देखा था।

धर्म को मैं आडंबर मात्र समझता था। लेकिन उस रोज मेरी शिष्या ने मुझे अनुभव कराया कि धर्म की जड़ें कितनी गहरी हो सकती हैं। आज भी जब कभी मुझे वह घटना याद आती है, अपनी शिष्या के प्रति मेरे मन में ठीक वैसी ही भावना भर जाती है, जैसी शिष्य के मन में अपने गुरु के प्रति होती है।

—तेजबहादुर सिंह



चित्र : पंकज गोस्वामी

०००

सुख के बिरवे

मां को बागबानी का बहुत शौक था, जिसे वह अपने गृहस्थी के व्यस्त जीवन में से समय निकालकर किया करती थीं। पिताजी के सरकारी कर्मचारी होने के नाते हम सरकारी कोठी में रहते थे। मां ने उस कोठी के लान में अपने हाथ से लगभग पचास फलों के पौधे लगाये थे। जब पिताजी के रिटायर होने का समय समीप था, उन सभी वृक्षों में फल आने लगे थे। फलों को देखकर प्रसन्न होने की अपेक्षा हम मां से कहते—"व्यर्थ में इतने फल लगा दिये हैं। सोच-सोचकर हमें अफसोस ही तो होगा। अपने को इसमें से कौन-सा लाभ होगा?" मां सुनकर हंस दिया करतीं।

एक दिन क्या देखती हूं, ज्वर की हालत में वे एक छोटे-से अनार के बिरवे को लेकर

दुःखी हो रही हैं, जो कुछ दिन पहले लगाया गया था और किसी की असावधानी से थोड़ा-सा कुचल गया था। उन्हें इतने ज्वर में अनार के लिए दुःखी होते देख मुझे बुरा लगा और मैंने कह दिया— "हमें दो-चार महीने यहां और रहना है। जो कोठी में आयेगा, मजे से इसके फल खायेगा। दूसरे के लिए अपनी जान खपाने से फायदा?"

मां ने शांति से उत्तर दिया—"बेटी अपने लिए तो किया ही जाता है। जो काम अपने से हो सके दूसरों के लिए कर दे, वही श्रेष्ठ है। जो लोग इतने फल खायेंगे, वे मुंह से भले न कहें, उनकी आत्मा तो आशीर्वाद देगी। यह तो पुण्य का काम है।"

वर्षों बाद की बात। पति का स्थानांतरण होने पर सरकारी कोठी छोड़ते समय दुःख हो रहा था। अपने रोपे हुए इतने तरह के गुलाब, कई किस्म के फलों के पेड़ याद आये। मन में आया बेकार ही ..... तभी स्वर्गीया मां की वाणी याद हो आयी और दुःख का स्थान सुख ने ले लिया। —कुसुम

०००

अलोकमयी बचत

मेरे एक मित्र का अधिकांश समय रचनात्मक कार्यों में व्यतीत होता है। दीवाली के एक दिन पूर्व शाम को मैं उनके घर गया, तो बैठे कुछ फुटकर पैसे और नोट गिन रहे थे। मैंने कहा—"आप बड़े भाग्यशाली हैं, जो इस महंगाई में भी बचत कर लेते हैं। शायद दीवाली की खरीदी करने जा रहे हैं?"

"भाई,मेरा तो एक ही ध्येय है—भिखारी बालकों को भिक्षावृत्ति से छुटकारा दिलाना। मैं हर साल दीवाली के समय ही इस 'बचत-डब्बे' को खोलता हूं। इसमें साल-भर में जितने पैसे जमा हुए होते हैं, उनसे ब्रश और बूटपालिश की डिबियां खरीदता हूं। फिर भीख मांगने वाले किशोर-वय के तंदुरुस्त लड़कों को ढूंढ़कर उन्हें एक डिबिया और एक ब्रश देकर काम करने की सलाह देता हूं और भीख मांगना छोड़ने के लिए समझाता हूं। उनके लिए उपयुक्त जगह भी ढूंढ़कर बताता हूं, जहां बैठकर वे काम कर सकें। और इसके बाद जब उन्हें स्वावलंबी बना देखता हूं, तो कृतार्थता का अनुभव करता हूं। इन बालकों में कई तो बड़े मेहनती और उद्यमी निकलते हैं। इस प्रकार काम से लगाये बच्चों में आज एक हाकर का काम करता है और एक फूलों के गजरे बनाकर बेचता है।"

दीपावली के पावन प्रकाश में भूले-बिसरे बालकों को राह दिखाने वाली बचत की महिमा की कहानी सुनकर मैं आत्मविभोर हो उठा। —चंद्रकांत रावल



जीवन मेरे लिए छोटी-सी मोमबत्ती नहीं है। वह मेरे हाथों में प्रज्वलित ऐसी भव्य मशाल है, जिसे मैं भावी पीढ़ियों के हाथों सौंपने के पहले, तेज-से-तेज जलाना चाहता हूं। — बर्नार्ड शा



मेरा नाम —जगदीश त्रिवेदी

गरजते समुद्र में डाला
पिघलने के लिए
तो लहरों ने उसे उठाकर
किनारे पर रख दिया।
बीहड़ जंगल में जाकर
दफनाया
तो भहराती किन्हीं काली जुल्फों में
खिलखिलाकर मुस्कराने लगा।
पंखड़ियों के बंधन में
बांध दिया
तो भौंरों ने
लय-लहर में खुला छोड़ दिया।
आसमान में गहरा डुबो दिया
तो सूरज-चांद और सितारों में
धीरे-धीरे खुलने लगा।

गुजराती से अनुवाद : बी० जे० कापडी

०००

एक शाम

सन्नाटे की परतों को सहलाती,
बोझिल डैनों वाली शाम विहंगिनी—
चुपचाप,
खामोश झील के किनारे
मुंह लटकाकर बैठ गयी।
...... और मैं ......
तुम्हारे गीत की अनुगूंज-सा;
अपने आप में सिमट गया।
लगता है, आज
तुम्हारे मन का दरपन भी,
दरक गया।

—शंकरलाल मिश्र

तब —कुसुमाग्रज

विदा हुई जब
मस्तक धर
मेरे चरणों पर
चरणों के मन में
इच्छा जागी
एक प्रखर—
काश कहीं वे
बन सकते
मात्र अधर!

मराठी से अनुवाद : दिनकर सोनवलकर

०००

ढलानें

ढलानों पर भी
उगते हैं
लंबे बांस के पौधे
फुनगियां उनकी
सफेद छायाओं-सी होती हैं

—मल्लिका

०००

पूरब और पश्चिम

सूरज पूरब में जनमता है
पश्चिम में मरता है
कितना अंतर है
इन दो दिशाओं में!
युग, जगत और इतिहास
सब साक्षी हैं
नयी दृष्टियां पश्चिमोन्मुख हैं—
क्या सचमुच मरणोन्मुख हैं?

—कन्हैयालाल सराफ

यों तो शिकार उसने बहुत खेला था, मगर उस दिन का अनुभव बेजोड़ रहा

शेरनी को श्वासदान

अखिल कुमार

मनुष्य दूसरे मनुष्य की पीड़ा देखकर व्याकुल हो जाता है और अपने जीवन को संकट में डालकर भी दूसरे के जीवन की रक्षा करने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। इससे भी महान घड़ी वह होती है, जब मनुष्य किसी पशु या पक्षी के जीवन की रक्षा के लिए अपनी जान जोखिम में डाल देता है। यह महानता उस समय और भी अधिक विस्मयकारी हो जाती है, जब ऐसा व्यक्ति सामान्य जन न होकर एक शिकारी हो, और वनों में शिकार की तलाश करते-करते स्वयं ही अपनी दया-वृत्ति का शिकार हो जाये।

शिकारी खिलाड़ी होता है, निशानेबाज होता है, साहसी और वीर होता है। वह जंगली और हिंस्र पशुओं का सामना करना जानता है तथा वनों की कठिनाइयां उठाना भी। परंतु सच्चा शिकारी कभी भी बर्बर नहीं होता, अंततः वह मानव होता है। उसका हृदय उदार होता है और वह शत्रु की कठिनाई या विवशता का लाभ नहीं उठाता।

इस धारणा की पुष्टि प्रख्यात शिकारी कार्लोस ग्लोरिया ने पिछले वर्ष अपने आचरण से की है।

कार्लोस ने अपने जीवन के अठारह वर्ष वनों में विताये हैं और गिलहरी से लेकर शेर तक का शिकार वह अनेक बार कर चुका है। पिछले वर्ष वह दक्षिणी फ्लोरिडा के एक वन में शिकार करने के लिए गया। वहां किसी समय अफ्रीकी नस्ल के शेर छोड़े गये थे। अब चूंकि इस वन में उस नस्ल के शेरों की संख्या बहुत अधिक हो गयी है, प्रतिवर्ष सरकार की ओर से शिकारियों को वहां शिकार करने की अनुमति दी जाती है।

वन-विभाग की चौकी पर ढाई डालर का शुल्क चुकाकर कार्लोस वन में घुसा। उसके बायें हाथ में बंदूक थी और दायां हाथ उसके कुंदे पर था। शेरों से भरे उस वन में वह उल्लसित मन से शेर की भांति विचरने लगा।

अचानक कार्लोस ने देखा कि उसके सामने की नहर के किनारे एक शेरनी आ गयी, उसका पांव फिसला और वह तेजी से

पानी में जा गिरी। कार्लोस ने देखा कि शेरनी अपने आपको संभाल नहीं पायी और डूब गयी। कार्लोस की मानवता जाग उठी। वह बेतहाशा भागा। जिस शेरनी के प्राण लेना उसे बहुत अच्छा लगता, उसके प्राण बचाने के लिए वह विह्वल हो गया। उसने अपनी बंदूक किनारे पर रखी और बूट पहने ही नहर में उतर गया।

प्रत्येक क्षण बहुमूल्य था, कार्लोस विलंब नहीं कर सकता था। उसके हाथ में शेरनी की टांग आ गयी। उसे पकड़कर उसने शेरनी को पानी से बाहर निकाल लिया। किनारे पर उसे पटकर वह एक बार शेरनी के चारों ओर असहाय-सा घूम गया। उसका मन उदास हो गया—बेचारी शेरनी डूबकर मर गयी थी।

फिर कार्लोस एका-एक उत्फुल्ल हो उठा, उसकी आंखों में चमक आ गयी। उसे एक विचार सूझ गया था। वह झट शेरनी की पिछली टांगों को पकड़कर उन्हें उसके पेट पर दबाने और खोलने लगा। इस क्रिया से शेरनी के मुंह से ढेर सारा पानी निकला; फिर भी उसकी सांस नहीं लौटी।

कार्लोस ने धीरज नहीं खोया। वह कुछ सोचने लगा। पल-भर को रुका और फिर उसने टांगें छोड़ दीं। उसने एक हाथ से शेरनी का जबड़ा खोला, दूसरे हाथ से उसके नथुने दबा लिये और उसके खुले हुए मुंह पर अपना मुंह रखकर वह शेरनी के फेफड़ों में श्वास भरने लगा, मानो कोई बच्चा हठ करके गुब्बारा फुला रहा हो।

शेरनी की सांस नहीं लौटी; परंतु कार्लोस ने उसे न छोड़ा और वह मुंह से सांस देने की चेष्टा में लगा रहा। आखिरकार कार्लोस विजयी हुआ। प्रकृति पर मानव की विजय हुई। शेरनी की सांस लौट आयी और उसने पलकें खोलकर कार्लोस की ओर देखा।

अचकचायी-सी शेरनी पास खड़े एक आदमजाद को देखती रही। शिकारी कार्लोस की आंखों में करुणा और संतोष का मिश्रित भाव झलक रहा था और शेरनी की गीली आंखों में पल-भर के लिए कातरता और कृतज्ञता का भाव झलक उठा। सामान्य स्थिति में वे दोनों एक-दूसरे के शत्रु होते, परंतु इस घड़ी वे मित्र थे।

अंततः शेरनी धीरे-से उठी। थकी हुई-सी वह जरा इधर-उधर टहली, एक बार गर्दन घुमाकर उसने कार्लोस की ओर देखा और फिर आपे में आ गयी। मगर गुर्रायी नहीं और चौकन्नी होकर शेरनी की शान से जंगल में एक ओर को चली गयी।

कार्लोस ने उसे चलते देखा, तो वह प्रसन्न हुआ। परंतु ज्यों ही वह तेजी से चलने लगी,

सबसे बड़ी शक्ति

मनुष्य को मृत्यु से नहीं डरना चाहिये; हां, इस बात से जरूर डरना चाहिये कि कहीं वह अपनी सबसे बड़ी शक्ति—दूसरों के लिए प्राण देने की स्वतंत्र इच्छाशक्ति को पहचाने बिना न मर जाये।

—डा० श्वाइत्जर

उसका शिकारी आपे में आ गया। सामने झाड़ियों में गुम होती हुई शेरनी को देखकर सहसा उसका दायां हाथ बंदूक के ट्रिगर को टटोलने लगा। पर नहीं, कार्लोस के मन ने उसके हाथों को ट्रिगर दबाने और गोली दागने की अनुमति न दी।

उस दिन पहली बार कार्लोस को यह महसूस हुआ कि जीवन लेने की अपेक्षा जीवन देना बहुत कठिन होता है। कार्लोस का शिकारी मन उस समय दार्शनिक बन गया। उसे लगा, जैसे जीवन लेने की नहीं, देने की ही वस्तु है। और वह सिर झुकाये वन से बाहर निकल गया। उस दिन कार्लोस ने दूसरा कोई शिकार नहीं किया। उसकी शिकारी-वृत्ति स्वयं ही जीवदया की शिकार हो चुकी थी।



कई बार दुर्घटनाएं भी वरदानस्वरूप सिद्ध होती हैं। ये ऐसी ही कुछ घटनाएं हैं :

एक मछुवे के पैर एक दुर्घटना में कट गये। उसे लकड़ी के पैर लगवाने पड़े। कुछ समय बाद वह एक दिन नाव पर बैठा नदी में मछली पकड़ रहा था कि नाव भंवर में फंसकर उलट गयी और वह पानी में गिर पड़ा। परंतु लकड़ी के पैर होने के कारण वह डूबा नहीं और लोगों ने उसे बचा लिया।

एक आदमी लंबे समय से अपनी स्मरण-शक्ति खो बैठा था। विश्वयुद्ध के दिनों उसके मकान पर बम गिरा और उसके भयानक धड़ाके से वह बेहोश गया। जब वह होश में आया, तो उसकी स्मरण-शक्ति पुन: लौट आयी थी।

एक बच्चे के गले में छोटा-सा खिलौना अटक गया और उसकी सांस रुकने लगी। भयंकर पीड़ा से बच्चा कराहने लगा। जब उसे गाड़ी में बैठाकर अस्पताल ले जाया जा रहा था, तब सामने से आ रही लारी से गाड़ी की टक्कर हो गयी और बच्चा उछलकर कई फुट दूर सड़क पर जा गिरा। संयोग की बात कि उसके गले में अटका हुआ खिलौना बाहर निकल आया और बच्चे ने राहत की सांस ली।



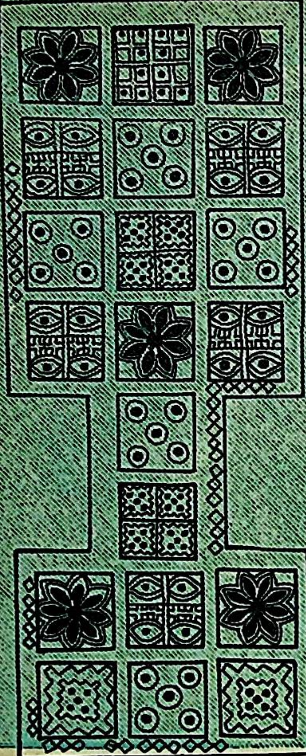
तीन बूढ़े आदमी दुनिया छोड़ने के आदर्श तरीकों पर बहस कर रहे थे। ७५ वर्ष की उम्र वाले बूढ़े ने कहा—"मैं तो जल्दी जाना पसंद करता हूं। मैं चाहता हूं कि मेरी मोटर तेज दौड़ रही हो और मैं अकस्मात् खत्म हो जाऊं।"

८५ वर्ष वाले ने कहा —"अकस्मात् मृत्यु के विचार से मैं भी सहमत हूं। लेकिन मुझे हवाई जहाज पर मृत्यु अधिक पसंद है।"

उन दोनों की बातें सुनते हुए तीसरे ने, जो ९५ वर्ष का था, अपनी पसंद बताते हुए कहा—"मेरा उपाय तुम दोनों से बेहतर है। मैं चाहता हूं कि कोई ईर्ष्यालु पति मुझे गोली मार दे।"

—डा० गोपालप्रसाद 'वंशी'









आवश्यकता है खेलने वालों की

अश्विनीकुमार

साथ के चित्र को यदि किसी विश्वप्रसिद्ध कलाकार की कृति कहा जाये, तो आप शायद अविश्वास नहीं करेंगे। परंतु वास्तव में यह संसार का सबसे पुराना क्रीड़ा-फलक है और लंदन के ब्रिटिश म्यूजियम में रखा हुआ है। आखिरी बार खेल के लिए इसका उपयोग ईसा से ढाई हजार वर्ष पूर्व सुमेर लोगों की महानगरी उर में हुआ था।

आज कोई नहीं जानता कि इस खेल का नाम क्या था और उसके नियम क्या थे। और तो और, हजारों वर्षों तक दुनिया को सुमेर और उर के नाम भी स्मरण नहीं रहे, और चार सहस्राब्दियों तक यह क्रीड़ा-फलक आधुनिक इराक में फरात नदी के किनारे उर के खंडहरों में दबा रहा। फिर अंग्रेज पुरातत्त्वविद् सर लियोनार्ड वूली ने इसे मलबे की कैद से मुक्त किया।

वूली ने १९२०-३० के बीच इराक (तत्कालीन मेसोपोटामिया) में अनेक रहस्यपूर्ण कब्रों की खुदाई की थी। इस खुदाई-अभियान का आयोजन ब्रिटिश म्यूजियम और पेन्सिल्वानिया विश्वविद्यालय (अमरीका) ने मिल-जुलकर की थी।

इन कब्रों में से एक में कई शव बड़ी तरतीब से दो कतारों में दफनाये गये थे। हर एक शव के सिर पर स्वर्ण-मुकुट था और

अप्रैल

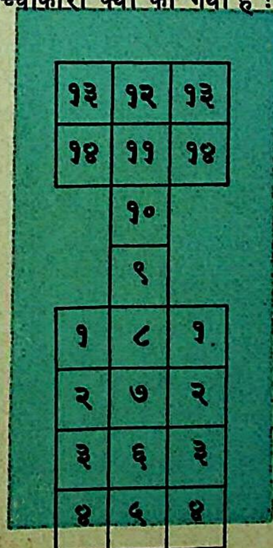
धड़ पर बहुमूल्य आभूषण थे। कतार के अंत में एक हार्प यंत्र पड़ा था और उसके पास ही हार्प-वादक का कंकाल था। कंकाल के सिर पर भी स्वर्ण-मुकुट विराजमान था।

इन कब्रों की खुदाई में सर लियोनार्ड वूली को बहुत बड़ी संख्या में क्रीड़ा-फलक मिले, जिनमें सुंदर पच्चीकारी की हुई है। वूली का अनुमान है कि उच्चवर्ग के सुमेर लोग इस क्रीड़ा-फलक पर चौपड़-जैसा कोई खेल खेलते होंगे। कब्र में पड़े-पड़े शव जब ऊब जायें, तो खेल द्वारा मन बहला सकें, इस उद्देश्य से शवों के साथ ये क्रीड़ा-फलक भी दफ़नाये गये होंगे। मगर सवाल यह है कि यह खेल खेला कैसे जाता था? इसका प्रामाणिक उत्तर आज किसी के पास नहीं है। केवल अंदाज ही लगाया जा सकता है।

हर क्रीड़ा-फलक के साथ बटन के आकार की गोटियां और पिरामिड की शक्ल के पांसे भी मिले हैं। ऐसा लगता है, प्रत्येक खिलाड़ी के पास सात गोटियां और छः पांसे रहते थे। खुदाई में मिली गोटियां या तो सीप की बनी हैं और उनके बीच में लाजवर्द के टुकड़े जड़े हैं, अथवा स्लेटी पत्थर की हैं और उनमें सीप के बिंदु जड़े हैं। पांसे यों तो बहुत थोड़े ही प्राप्त हो सके हैं, लेकिन आकृति में वे सभी समभुज पिरामिड हैं। हर पांसे के चार कोनों में से दो निशानदार और दो सादे हैं।

गोटियों और पांसों से यह खेल कैसे खेला जाता था, इसका कोई संकेत उपलब्ध नहीं हुआ है। पर ब्रिटिश म्यूजियम के पश्चिम एशिया पुरातत्त्व विभाग के विद्वानों ने एक विधि सुझायी है, जो साथ के नक्शे पर आधारित है। इन विद्वानों का अनुमान है कि शायद प्रत्येक खिलाड़ी को चार निजी खानों (१ से ४ तक) में से अपनी गोटियां बीच के साझे गलियारे (खाना नं० ५ से १२ तक) में नीचे से ऊपर की ओर ले जानी पड़ती थीं। अगर एक की गोटी किसी खाने में पड़ी हो और उसी में प्रतिस्पर्धी की गोटी का भी नंबर लग जाये, तो पहली गोटी मारी जाती थी। बीच के गलियारे को पार करके जो गोटी ऊपर के दो निजी खानों (१३ और १४) में पहुंच जाये, वह पक जाती थी।

लेकिन सवाल चट से सिर उठाते हैं। अगर खेल इतना सीधा-सादा था, तो क्रीड़ा-फलक के खानों में इतने सुनिश्चित ढंग की पच्चीकारी क्यों की गयी है? पहली



और तीसरी पंक्तियों में आमने-सामने के खानों के डिजाइन एक-से क्यों हैं ? बीच का कमल-जैसे फूल वाला खाना उसी ढंग के बाकी चार खानों से तीन-तीन खाने की दूरी पर क्यों है ?

क्या यह सब सिर्फ सजावट के लिए किया गया है ?

सुमेर लोगों के बौद्धिक विकास को देखते हुए यह विश्वास नहीं होता कि उनका प्रिय खेल इतना सीधा-सादा और नीरस रहा होगा। सुमेर लोग संख्याओं और संकेतों के उपयोग में बड़े सिद्धहस्त थे। उन्होंने क्यूनिफार्म लिपि का विकास किया था। उनके बनाये २४ घंटे, ६० मिनिट और ६० सैकेंड के काल-गणना क्रम को आज सारी सभ्य दुनिया मानती है। वृत्त को ३६० कोणों में बांटने की कल्पना भी पहले-पहल सुमेर लोगों ने ही की।

जो भी हो, उर का यह सुंदर क्रीड़ा-फलक एक पहेली है, एक चुनौती है। आप भी अपने दिमाग पर जोर डालकर देखिये, शायद कोई अधिक संतोषजनक विधि आप सुझा सकें। मगर अपने सुझाव नवनीत के संपादक के पास भेजने की आवश्यकता नहीं।



सुंदरी की आंखों में चिड़िया के पर

शिकागो-वासी आविष्कारक फ्रेडरिक ई० ग्लेसर का कहना है कि दो औरतें एक-सा वेश भले न बर्दाश्त कर सकें, मगर आंख की बरौनियों के मामले में उन्हें एकरूपता बर्दाश्त करनी ही पड़ती है। प्रचलित कृत्रिम बरौनियां लगाने वाली सभी औरतों की आंखें जरा एक-सी ही लगती है। और उन्हें लगाने वाली औरतें अपना अभीष्ट विशिष्ट आकर्षक रूप नहीं प्राप्त कर पातीं।



इसका समाधान है पक्षियों के परों की बनी बरौनियां, जिनमें इतना ज्यादा वैविध्य होता है कि बनावटी बरौनियां लगाने वाली महिलाओं के किसी झुंड में शायद ही दो औरतों की आंखें एक-सी लगेंगी।

बरौनी के रूप में आंखों में लगाने के लिए पर को तैयार करने की एक विधि ग्लेसर ने पेटेंट करायी है। पंख के रोओं पर बीरोजे या एडेसिव का एक टुकड़ा चिपका दिया जाता है, जिससे रोओं को एक साथ पंख की डंडी से जुदा किया जा सकता है। फिर इसे दूसरी बनावटी बरौनियों की तरह ही आंखों में लगाया जाता है।



हिन्दी की प्रथम अहिन्दीभाषी कवयित्री

उमाम्बा

डा० विलास गुप्ते

शताब्दियों पहले से अहिन्दीभाषी साहित्यकार हिन्दी में लेखन करते रहे हैं। संतों और साधुओं ने हिन्दी के सुदूरवर्ती प्रचार-प्रसार को देखकर मत-प्रचार के लिए उसे उपदेश का माध्यम बनाया था। महाराष्ट्र के निवासी तथा गुजरातीभाषी चक्रधर, जो 'महानुभाव' पंथ के प्रवर्तक थे, शायद हिन्दी के प्रथम हिन्दीतरभाषी पुरुष साहित्यकार थे। उन्होंने हिन्दी में पद-रचना की। महिलाओं में यह श्रेय उनकी परम शिष्या उमाम्वा को है।

उमाम्वा के अन्य नाम हैं—महदंबा, रूपाई या महदाइसा। उनका रचना-काल सन १२५० के लगभग है। यद्यपि इन्होंने अधिकांश लेखन मराठी में किया, किंतु हिन्दी में भी इनकी कतिपय रचनाएं पायी जाती हैं। महाराष्ट्र की संत-परंपरा के अनुसार इनकी कविताओं में भी सगुण-निर्गुण का एकान्वित स्वरूप पाया जाता है।

उमाम्वा बालविधवा थीं और उन्होंने अपना जीवन ईश्वर-भक्ति में लीन कर दिया था। चूंकि 'महानुभाव' पंथ अनेक दृष्टियों से हिन्दू धर्म से असहमति रखता था, अतः उसके अनुयायियों को छद्म मुसलमान कहा जाता था। इसके कारण उमाम्बा को भी काफी सामाजिक कष्ट सहने पड़े। वैसे महानुभाव-पंथी दत्तात्रेय तथा कृष्ण को पूजते थे तथा गीता और वेद में भी श्रद्धा रखते थे। एक तो वे मुसलमानों की तरह काला चोंगा पहनते थे; दूसरे, शासकों ने उन्हें जजिया कर से मुक्त कर दिया था।

हिन्दी में लिखा उमाम्बा का एक पद इस प्रकार है :

> नगर द्वार हो भिच्छा करो हो बापुरे
> मोरी अवस्था लो
> जिहा जाओ तिहा आप सरीखा कोई न
> मोरी चिंता लो
> हाट चौहाटा पड़ रहूं हो मांग पंच घर
> भिच्छा
> बापुड लोक मोरी अवस्था कोउ न करी
> मोरी चिंता लो।

उमाम्बा ने गुरुभक्ति पर बहुत जोर दिया है। अपने गुरु चक्रधर की अपेक्षा उनकी हिन्दी अधिक साफ़-सुथरी तथा प्रवाहमयी है। उमाम्बा की मृत्यु सन १३०८ में हुई।

उमाम्बा के संबंध में विशेष बात यह है कि उन्हें मराठी की भी आद्य कवयित्री माना जाता है। मराठी में उन्होंने 'धवले' तथा 'मातृकी रुक्मिणी स्वयंवर' ग्रंथ लिखे हैं।

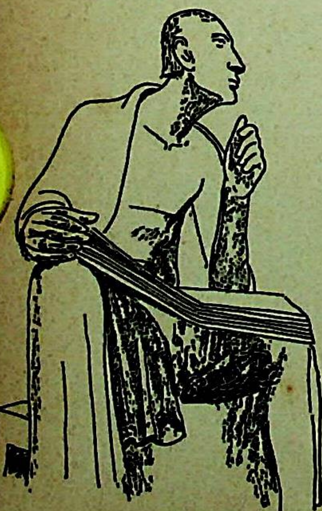


यहां रहिये यहां पढ़िये

हावर्ड्रेन, फ्लीटशायर (ब्रिटेन) के सेंट डेनियल पुस्तकालय की दो खूबियां हैं। एक तो यह कि सारे ब्रिटेन में यह अपनी तरह का अकेला पुस्तकालय है; इसमें पढ़ने वालों के लिए रहने, खाने-पीने व सोने की भी व्यवस्था है। दूसरी खूबी यह है कि इस विचित्र पुस्तकालय की देख-रेख एक जन्मांध विद्वान पादरी करते हैं। ब्रेल-लिपि और आंखों वाले दो सहायकों के सहारे पुस्तकालय के प्रबंधकर्त्ता रेवरेंड डा० स्टीवर्ट लाटन अपने पुस्तकालय की ८० हजार पुस्तकों और उनके पाठकों की देख-माल बड़ी तत्परता से करते हैं।

यह पुस्तकालय पत्थरों की एक इमारत में है और पिछली सदी के प्रसिद्ध राजनेता प्रधानमंत्री डब्ल्यू० ई० ग्लैडस्टन का स्मारक है। पुस्तकालय में ग्लैडस्टन के नाम का एक पत्थर लगा है और उनकी २० हजार पुस्तकें भी रखी हुई हैं।

ग्लैडस्टन ने ही सबसे पहले ऐसे रहाइशी पुस्तकालय की कल्पना की थी, जहां पर लोग रहकर अध्ययन कर सकें और शांत सांस्कृतिक वातावरण में राहत पा सकें। पुस्तकालय की इमारत पूरी होने से एक वर्ष पूर्व ही उनका देहांत हो गया। उसके बाद से यह पुस्तकालय एक प्रकार से उनका राष्ट्रीय स्मारक बन गया है। पुस्तकालय का उद्घाटन जुलाई १९०८ में राजा एडवर्ड सप्तम ने किया। गत वर्ष उसकी हीरक जयंती मनायी गयी है।



संसार के सभी भागों के लोग इस पुस्तकालय में आते हैं और ११ पौंड प्रति सप्ताह देकर वे पुस्तकों के अध्ययन के साथ भोजन और निवास की भी सुविधा प्राप्त करते हैं। पुस्तकालय की विशेषता यही है कि यहां लोगों को एकांत भी मिलता है और सामाजिक जीवन के सब सुख भी प्राप्त होते हैं। रहने के लिए समय का कोई प्रतिबंध नहीं है। जो जितने दिन चाहे रह सकता है—चाहे कुछ दिन, चाहे पूरे साल-भर। अफसोस की बात इतनी ही है कि यहां एक समय में केवल ३० व्यक्तियों के रहने की व्यवस्था है। हर मेहमान को पुस्तकालय से लगा हुआ एक छोटा-सा कमरा दिया जाता है।

डा० लाटन और एक उपनिरीक्षक तथा एक व्यवस्थापक—सब कर्मचारियों की कुल इतनी ही संख्या है। गांव की औरतें आकर साफ-सफाई आदि कर जाती हैं। पुस्तकालय साल में केवल तीन सप्ताह के लिए बंद होता है। ×××

अध्ययन : आल्बर्टस भैग्नस

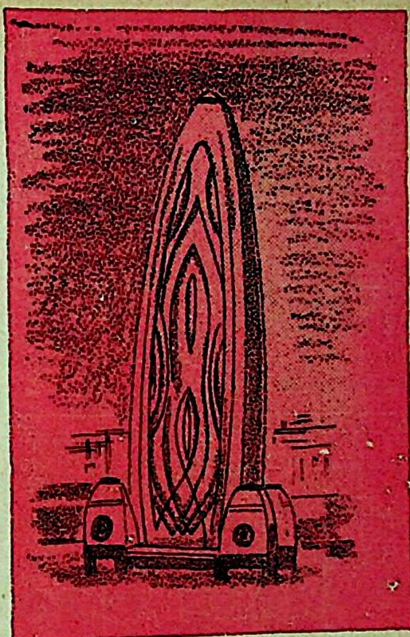


सन १९१९। जलियांवाला बाग-हत्याकांड ने सारे देश को एकबारगी झकझोरकर रख दिया था। ब्रिटिश सरकार के साथ शांतिपूर्ण समझौता करने के इच्छुक नरम नेताओं में भी रोष की भावना प्रज्वलित हो गयी थी। नौजवानों का तो कहना ही क्या! वे इस हत्याकांड के लिए जिम्मेदार पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर माइकेल ओ'डायर की हत्या करके इस नृशंस हत्याकांड का बदला लेने को बेताब थे। कई नौजवानों ने उसे मारने के प्रयास भी किये; पर वे कड़े पहरे में रहने वाले इस क्रूर साम्राज्यवादी का बाल भी बांका न कर पाये।

फिर भी ओ'डायर से बदला लेने की यह आग बुझी नहीं, बराबर सुलगती ही रही। बाद में जो घटनाएं घटीं, उनसे रोष और प्रतिहिंसा की आग और ज्यादा भड़क उठी।

उचित तो यह था कि अंग्रेज जाति इस कांड के लिए ओ'डायर की भर्त्सना करती; पर उसने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से ओ'डायर के कार्य की प्रशंसा कर भारतीयों को और अधिक कुपित कर दिया। ब्रिटेन आने पर ओ'डायर को उसके प्रशंसकों ने एक थैली भेंट की, मानो वे उसे सैकड़ों निरपराध व्यक्तियों की हत्या करने के लिए पुरस्कृत कर रहे हों।

कुछ और घटनाओं ने भी भारतीयों को बहुत अधिक उत्तेजित कर दिया। ओ'डायर ने इंग्लैंड पहुंचकर भी भारत के विरुद्ध विष-वमन करने की अपनी आदत नहीं छोड़ी। जब ब्रिटिश सरकार ने जलियांवाला बाग-हत्याकांड से संबंधित कुछ सैनिक और असैनिक अधिकारियों को सजा दी, तो उसे यह अच्छा न लगा, और उसने समाचारपत्रों के माध्यम से इस कार्य की कड़ी निंदा की। इतना ही नहीं, उसने एक पुस्तक भी लिखी, जिसमें उसने इस जघन्य कांड के औचित्य को सिद्ध करने का प्रयत्न किया



मातृभूमि का ऋण

जलियांवाला बाग-कांड की पचासवीं संवत्सरी के अवसर पर।

हरिमोहन शर्मा

[शीर्षक के साथ का चित्र : जलियांवाला बाग में स्थापित शहीद स्मारक]



माइकल ओ'डायर
अत्याचार की पराकाष्ठा

था। भारत में इस पुस्तक की तीव्र आलोचना हुई और अनेक भारतीयों ने ओ'डायर की दलीलों के मुंहतोड़ उत्तर दिये।

ऐसे भारतीयों में एक थे सर सी॰ शंकरन् नायर, जो इस हत्या-कांड के समय वायसराय की एक्जिक्युटिव कौंसिल के सदस्य थे। पर जलियांवाला वाग-कांड के वाद उन्होंने इस बर्बरता के विरोध में अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। त्यागपत्र दे देने के वाद उन्होंने एक पुस्तक लिखी, जिसका शीर्षक था–'गांधी एंड एनार्की' (गांधी और अराजकता)। इसमें उन्होंने गांधीजी के असहयोग-आंदोलन की कटु आलोचना करते हुए लिखा था कि ऐसे आंदोलन कभी भी देश को आजाद नहीं करा पायेंगे। अपनी पुस्तक में उन्होंने ओ'डायर के जलियांवाला वाग-संबंधी कुकृत्य की भी निंदा की थी और इस शर्मनाक हत्याकांड के लिए ओ'डायर को ही जिम्मेदार ठहराया था।

इस पुस्तक को पढ़कर ओ'डायर का क्रुद्ध हो जाना स्वाभाविक ही था। पर वह क्रुद्ध होकर ही वैठा न रहा, उसने सर शंकरन् नायर पर मानहानि और एक भारी रकम के हर्जाने का मुकद्दमा दायर कर दिया।

ऐसा करके मानो ओ'डायर ने भारत के एक रिसते हुए घाव पर नमक छिड़क दिया। कई नामी और कुशल वकील सर सी॰ शंकरन् नायर की पैरवी के लिए तैयार हो गये। पर जिस जज के सामने यह मुकद्दमा पेश था, उसकी सहानुभूति ओ'डायर के प्रति है, यह आरंभ से ही स्पष्ट था। मुकद्दमा काफी लंबा चला, और वचाव-पक्ष ने जो तर्क प्रस्तुत किये, उनका जवाब ओ'डायर के वकील नहीं दे पाये। फिर भी ओ'डायर के हिमायती जज ने फैसला ओ'डायर के पक्ष में ही दिया और सर सी॰ शंकरन् नायर को ओ'डायर की मानहानि का अपराधी घोषित करते हुए हर्जाने की पूरी रकम और २०,००० पौंड ऊपरी खर्चे का दंड सुना ही दिया।

इस फैसले ने सारे देश को तड़पाकर रख दिया। गांधीजी जैसे बड़े नेताओं ने जनता से सर सी॰ शंकरन् नायर की आर्थिक सहायता करने की अपील की। उधर कई नौजवानों ने, जिनमें पंजाबी नौजवानों की संख्या ही अधिक थी, निश्चय किया कि कुछ भी हो जाये, अब वे ओ'डायर को जिंदा नहीं छोड़ेंगे। और अंत में १३ मार्च १९४० को एक पंजाबी युवक ने ही ओ'डायर की हत्या की। लेकिन उससे पहले के कुछ वर्षों की घटनाएं भी ज्ञातव्य हैं।

इस बीच देश के आठ सूबों में कांग्रेस का शासन हो चुका था। जब उन्होंने वायसराय द्वारा जबर्दस्ती भारत को युद्ध में घसीटे जाने के विरोध में इस्तीफा दे दिया, तो ओ'डायर को वहुत खुशी हुई। कांग्रेसियों ने

अप्रैल

उसे बड़ी नफरत थी। वह चाहता था कि जिस प्रकार क्रांतिकारियों का सफाया हो चुका है, उसी प्रकार कांग्रेसियों को हमेशा के लिए चुप कर दिया जाये और हिन्दुस्तान में अंग्रेजों का शासन अनंत काल तक बना रहे।

पर ओ'डायर का यह खयाल गलत था कि भारतीय क्रांतिकारियों का सफाया हो चुका है। वे अब भी काफी सक्रिय थे और उनमें से कई तो ओ'डायर की घात में भी थे। ओ'डायर के कई मित्रों ने उसे ब्रिटेन-स्थित भारतीय क्रांतिकारियों से सावधान रहने को कहा था; पर वह हमेशा ऐसी चेतावनियों को यह कहकर टाल देता था—"ये भारतीय कुत्ते मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।"

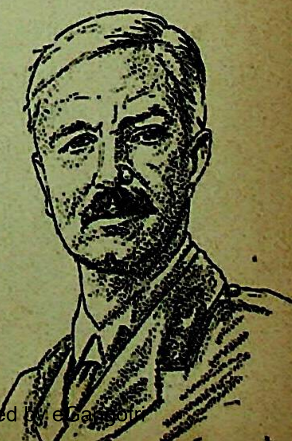
१३ मार्च १९४० को लंदन के कैक्सटन हाल के टयूडर-रूम में एक सभा हुई, जिसका आयोजन रायल सेंट्रल एशियन सोसायटी और ईस्ट इंडिया एसोसिएशन ने मिल-जुलकर किया था। उन दिनों रूस और जर्मनी में दोस्ती थी और इस कारण अंग्रेजों को अफगानिस्तान के साथ अपने संबंध अच्छे रखने की बड़ी चिंता थी। लार्ड जेटलैंड की अध्यक्षता में होने वाली इस सभा में इसी विषय पर विचार-विमर्श होने वाला था कि ब्रिटेन और अफगानिस्तान के संबंधों को कैसे दृढ़तर किया जाये।

ओ'डायर ने भी इस सभा में भाग लिया था। वह अपने कई मित्रों के साथ मंच पर बैठा था। सभा साढ़े चार वजे के करीब खत्म होने वाली थी और ओ'डायर अपने खानसामे को कहकर आया था कि शाम की चाय वह पांच वजे घर लौटकर पियेगा। लेकिन उसे उस दिन की शाम की चाय नसीव न हुई। भरे वदन के एक सांवले रंग के हिन्दुस्तानी युवक ने, जो सभा के आरंभ से ही दीवार का सहारा लिये ओ'डायर के करीब ही बैठा था, सभा समाप्त होते ही ओ'डायर पर लगातार पांच-छः गोलियां चलायीं। ओ' डायर को दो गोलियां लगीं और वह वहीं ढेर हो गया।

गोलियां चलाने के वाद यह युवक "रास्ता छोड़ो, रास्ता छोड़ो" चिल्लाता हुआ भागा। पर उसके दरवाजे तक पहुंचने के पहले ही दो व्यक्तियों ने उसे पकड़ लिया। तभी कुछ व्यक्तियों ने उसे नीचे गिरा दिया और उसके पेट पर चढ़ बैठे। शीघ्र ही पुलिस ने आकर उसे गिरफ्तार कर लिया।

तलाशी लेने पर पुलिस को उस युवक के पास से एक चाकू, एक रिवाल्वर और कुछ गोलियां मिलीं। युवक ने अपना नाम राम मुहम्मद सिंह आजाद बताया। पर पुलिस को थोड़ी-सी ही पूछताछ के बाद मालूम हो गया कि उसका असली नाम ऊधमसिंह है और वह पंजाब में जनमा एक सिक्ख है। वह काफी दिनों से

जनरल डायर
निहत्थों पर पराक्रम



राजनीतिक कार्यकर्त्ता था और ब्रिटेन-विरोधी भाषण देने के अपराध में कुछ महीनों की जेल भी काट चुका था। उसकी डायरी पढ़कर पुलिस को पता चला कि ओ'डायर की हत्या करने का उसका इरादा काफी अर्से से था।

अपने मुकद्दमे के दौरान ऊधमसिंह पुलिस के अधिकारियों और मैजिस्ट्रेट से हमेशा मुस्कराकर बातें करता था। यह पूछे जाने पर कि उसने ओ'डायर की हत्या क्यों की, उसने मुस्कराते हुए उत्तर कहा :

"जब मैंने सुना कि उसने बड़ी बेरहमी से निरपराध पंजाबियों की हत्या करवायी, तभी मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं अवश्य उसकी जान लूंगा। मैं जानता था कि उसे मारकर मैं खुद भी जिंदा नहीं बच पाऊंगा; पर मुझे मौत से डर नहीं है। मरना तो एक दिन सबको है। जो मजा जवानी में मरने में है, वह बुढ़ापे में मरने में कहां! इसलिए मैं ओ'डायर को मारकर जवानी में ही इस दुनिया से विदा ले लेना चाहता था। मुझे खुशी है कि ओ'डायर की हत्या करके मैंने जन्मभूमि का ऋण चुका दिया है। हां, लार्ड जेटलैंड का क्या हुआ? दो गोलियां तो मैंने उसके पेट में भी मारी थीं? मुझे फांसी हो या जन्मकैद, इसकी परवाह मुझे नहीं है।"

मजिस्ट्रेट के सामने जो बयान उसने दिया था, वह देशभक्ति और अदम्य शौर्य-भावना से पूर्ण था। उसने कहा था–"ओ'-डायर की हत्या का मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है। मैंने जो कुछ किया, वह अपने देश और देशवासियों की खातिर किया।"

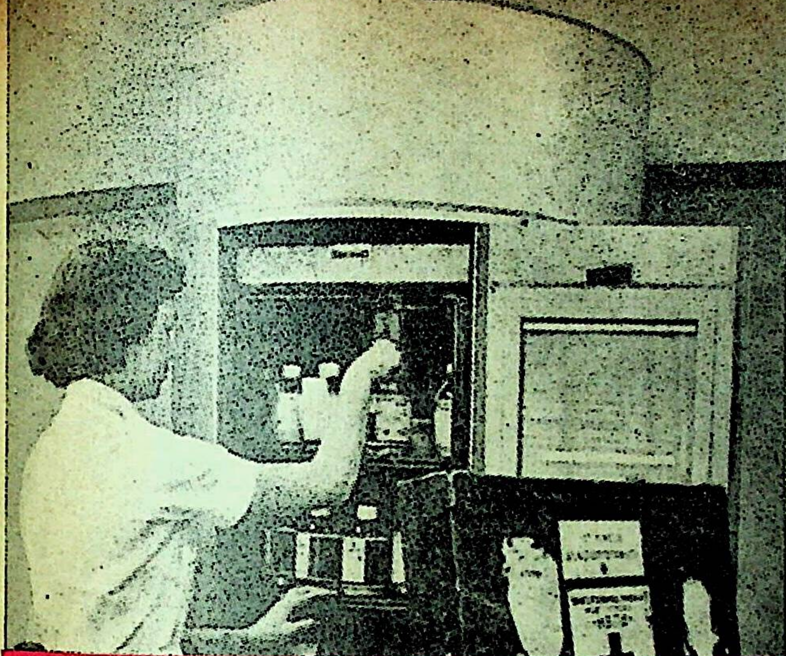
ऊधमसिंह के इस निर्भीक वक्तव्य की प्रशंसा स्वयं अंग्रेजों तक ने की। भारतीयों ने उसे भगतसिंह, खुदीराम बोस आदि उन महान क्रांतिकारियों की श्रेणी में रखकर श्रद्धांजलि अर्पित की, जिन्होंने अपने प्राणों की बलि देकर भारत की स्वाधीनता की आधार-शिला रखी।

मुकद्दमे का नाटक करके ऊधमसिंह को फांसी की सजा सुना दी गयी। १२ जून १९४० को ऊधमसिंह "भारत माता की जय" बोलता हुआ खुशी से फांसी पर चढ़ गया। जिस साम्राज्य के अंत का शाप उसने मरने से पहले दिया, उस ब्रिटिश साम्राज्य का अंत कुछ वर्षों बाद हो गया।



सर कांडेत शंकरन् नायर जलियांवाला बाग-कांड के मामले पर वायसराय की कार्यकारिणी से त्यागपत्र दे चुके थे। वायसराय औपचारिक रूप से उनसे मिलने उनकी कोठी पर आये। बातचीत के दौरान उन्होंने शंकरन् नायर से कहा कि आपके त्यागपत्र से रिक्त स्थान के लिए कोई योग्य उत्तराधिकारी सुझाइये। शंकरन् नायर ने अपने अर्दली की ओर इशारा करते हुए कहा–"रामप्रसाद को ले लीजिये।" वायसराय चौंक पड़े। तब शंकरन् नायर ने स्पष्टीकरण किया –" रामप्रसाद में सारी योग्यताएं हैं। वह देखने में सुंदर है, कद्दावर है, और सबसे बड़ी बात यह है कि वह 'जी हुजूर, जी हुजूर' कहना जानता है।"





रक्त की हर बूंद बची रहे

रक्तदान और रक्त-बैंक आज साधारण चीजें हैं; किंतु इनके पीछे सदियों के वैज्ञानिक अध्ययन और अनुभव छिपे हैं।

सरा आर० रीडमन

आपरेशन चाहे टान्सिल का हो, अथवा मस्तिष्क के ट्यूमर का, आज भी शल्य-चिकित्सक को अत्यधिक रक्तस्राव के खतरे का ध्यान रखना ही पड़ता है। फिर बीते जमाने में क्या स्थिति रही होगी, इसकी जरा कल्पना तो कीजिये।

सदियों तक थाइरायड ग्रंथि का आपरेशन महापातक-सा माना जाता था। इसमें खतरा रहता था, बहुत खून बह जाने और रोगी के मर जाने का।

सन १८८० के आस-पास स्विट्जलैंड के सर्जन थियोडोर कोचर ने थाइरायड की समस्त रक्तवाहिकाओं को वांध देने की विधि निकाली। तब तक थाइरायड ग्रंथि को नश्तर छुआना साक्षात् हत्या करना ही समझा जाता था। थियोडोर कोचर की चर्चा चली ही है, तो यह भी कह दें कि वह नोबेल पुरस्कार प्राप्त करनेवाला एकमात्र शल्य-चिकित्सक था।

रक्त की संरचना क्या है, उसके कार्य क्या हैं और वह बंद रक्तवाहिकाओं में किस प्रकार बहता है--इन सब बातों का ज्ञान मनुष्य को धीरे-धीरे प्राप्त हुआ, और साथ-साथ रक्तस्राव की रोकथाम और शरीर से निकल गये रक्त की भरपाई करने के तरीकों का भी धीरे-धीरे विकास हुआ।

आज आपरेशन के समय किसी रोगी का रक्तस्राव से चल बसना असाधारण घटना मानी जाती है। लेकिन आज से सौ ही साल पहले यह स्थिति थी कि यदि आपरेशन के समय रक्त की रोकथाम हो जाये, तो भी आपरेशन के बाद घाव में रक्तस्राव होने का खतरा बना रहता था।

विख्यात सर्जन एम्ब्रवाज पारे (१५१०-९०) ने आपरेशन के दौरान रक्तस्राव रोकने के लिए रक्तवाहिकाओं को बांधने (लिगेचर) की विधि का प्रचार किया रक्तवाहिकाओं को जलती लोहे की सींक से जलाने की क्रूर और हानिकारी पद्धति कीं रोकथाम के लिए वह अजीवन संघर्ष करता रहा। लिगेचर सर्जरी के विकास में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। लेकिन लिगेचर क्यों फायदेमंद है, इसका सही कारण भी चिकित्सकों की समझ में तभी आया, जब १६२८ में 'आधुनिक शरीर-शास्त्र के जनक' विलियम हार्वे ने रक्त-परिसंचरण का पता लगाया।

सर्जनों को तब यह पता चला कि कटी हुई धमनी में से तेजी से निकलते हुए रक्त-प्रवाह को रोकने के लिए, कटाव के ऊपर की ओर हृदय की दिशा में लिगेचर बांधना चाहिये और कटी हुई शिरा में से बूंद-बूंद रिसनेवाले रक्त को रोकने के लिए कटाव के नीचे हृदय से उलटी दिशा में बांधना चाहिये।

निश्चेतक (एनेस्थेटिक) औषधों का विकास हो जाने पर चटपट चीर-फाड़ करने की विधियां अनावश्यक हो गयीं और तब से आपरेशन में रक्तस्राव की रोकथाम पर पूरा ध्यान देना संभव हो गया।

फिर टेक्नीशियनों ने 'हेमोस्टैट' नामक उपकरण का विकास किया। इस कैंचीनुमा औजार में दांतेदार किनारे होते हैं, जो एक-दूसरे पर जमकर बैठते हैं। कटी रक्त-वाहिकाओं को हेमोस्टैट से दबाकर आपरेशन के दौरान सब तरफ से रक्तस्राव रोक दिया जा सकता है।

आपरेशनों को लगभग 'रक्तहीन' बनाने वाला पहला सूरमा था विलियम हाल्स्टेड। भले ही आपरेशन में चार घंटे लग जायें, इसकी उसे चिंता नहीं थी। उसका धैर्य अटूट था। वह प्रत्येक नन्ही-से-नन्ही रक्तवाहिका को बंद करके रक्त का बहना रोकने में जुटा रहता था।

हाल्स्टेड का पट्ट शिष्य हार्वे कशिंग भी रक्तप्रवाह की रोकथाम के विषय में अपने गुरु जैसा ही सजग था। साथ ही वह कुशल आविष्कारक भी था। उसने तेजी से रक्त की धार छोड़नेवाले ट्यूमरों के लिए 'कशिंग क्लिप' का आविष्कार किया।

रक्त का थक्का क्यों जमता है, इसका रहस्य समझ में आने से भी बहुत पहले ही डाक्टरों ने यह देखा था कि बार-बार स्पंज से रक्त को सोखकर निकाल दिया जाये, तो रक्त के थक्के जमकर रक्तस्राव रुक जाता है। जब रक्त के थक्के जमने की प्रक्रिया का पता लग गया, तब रसायनज्ञों ने रक्त में से उन तत्त्वों को अलग करने का प्रयत्न शुरू कर दिया, जो थक्के जमाते हैं।



विलियम हार्वे
रक्त-परिचरण सिद्धांत का आदि प्रवर्तक

लगभग ढाई दशक पहले हार्वर्ड विश्वविद्यालय (अमरीका) के वैज्ञानिकों के एक दल ने रक्त के प्लाज्मा अर्थात् रक्त के द्रवांश का विभाजन करने की विधि निकाली। इसका एक भाग है—फिब्रिनोजेन। यह प्लाज्मा में स्थित प्रोटीन है और इससे ही वे तार बनते हैं, जो रक्त के थक्के को मजबूत बनाते हैं।

प्लाज्मा का दूसरा भाग है—थ्राम्बिन, जो कि प्लाज्मा में स्थित एंजाइम है। यह फिब्रिनोजेन को फिब्रिन में परिवर्तित कर देता है। फिब्रिन ही रक्त के थक्के के तारों को अ-घुलनशील बनता है।

प्लाज्मा के इन दो भागों और उनके मिश्रण—फिब्रिनोजेन-थ्राम्बिन—से रक्तस्राव रोकने के और प्राणरक्षा के कई साधन सर्जनों के हाथ लग गये। जहां हेमोस्टैट, पट्टी, टूर्निक्वेट, तथा दबाव द्वारा रक्त-प्रवाह रोकने वाले अन्य साधन काम में नहीं लाये जा सकते, वहां पर ये नये साधन विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

फिब्रिन की मजबूत, पारदर्शक प्लास्टिक-नुमा झिल्लियां बनायी गयीं हैं। मस्तिष्क के आपरेशन में चीरा लगाकर उघाड़े हुए मस्तिष्क-भाग पर ऐसी झिल्ली का टुकड़ा चिपका दिया जाता है, ताकि थक्का जमने लगे और रक्तस्राव बंद हो जाये। शुद्ध थ्राम्बिन का चूर्ण या घोल घाव पर या पट्टी पर छिड़कने से भी थक्का जमकर रक्त बहना बंद हो जाता है।

झाग के रूप में भी इन प्राकृतिक रसायनों का उपयोग किया जाता है। इनसे एक स्पंज भी तैयार किया गया है, जिसे आपरेशन के बाद घाव में ही रहने दिया जाता है। शरीर इस स्पंज को 'पचा' लेता है और कुछ समय बाद यह शरीर के ऊतकों में घुल-मिल जाता है।

× × ×

रक्ताधान (ब्लड ट्रान्सफ्यूशन) की

कल्पना कम-से-कम तीन सदी पुरानी है। किंतु रोगी को खतरे में न डालते हुए रक्ताधान करना अभी लगभग पच्चीस वर्ष पहले ही संभव हो पाया।

पहली बार रक्ताधान १६६५ में कुत्ते से कुत्ते में किया गया। रिचार्ड लोवर एक अंग्रेज था। वह कुत्तों की धमनियों में बीयर व मदिरा का प्रवेश इंजेक्शन द्वारा कराने के परीक्षण सफलता-पूर्वक कर चुका था। उसने सोचा कि रक्त इस काम के लिए और भी अधिक उपयुक्त रहेगा।

जिस कुत्ते पर उसने यह प्रयोग किया, वह कुछ क्षण घास में लोटता और घाव को चाटता रहा, फिर अपने मालिक के हाथ चाटने लगा।

कुछ ही समय बाद फ्रांस के सम्राट लुई चौदहवें के चिकित्सक जां बाप्टिस्ट डेनिस ने एक स्वस्थ कुत्ते से एक बीमार मरियल पिल्ले में सीधे रक्ताधान किया। दोनों प्राणी जीवित रहे। डेनिस ने सोचा—"इसी तरह मनुष्यों की भी रक्षा क्यों न की जाये?"

हर नये काम में विघ्न आते ही हैं; डेनिस को भी अनेक विघ्नों का सामना करना पड़ा। चिकित्सकों को यह विश्वास दिलाना बड़ा कठिन था कि रक्ताधान से रोगी की हालत सुधर सकती है। वे इस नयी विधि को संदेह की दृष्टि से देखते थे। रक्ताधान बहुत लुक-छिपकर किया जाता था।

डेनिस से रक्ताधान कराने वाला पहला रोगी सोलह साल का एक लड़का था, जो महीनों से बुखार से पीड़ित था और बहुत दुर्बल हो गया था। उसके शरीर से कई बार रक्त निकाला जा चुका था, जिससे उसकी हालत बदतर हो गयी थी। उसकी बुद्धि कुंद हो गयी थी, याददाश्त कच्ची पड़ गयी थी और खाना खाते हुए वह बीच में ही ऊंघने लग जाता था। डेनिस ने एक मेमने से उसमें रक्ताधान किया। लड़का चहक उठा, ठीक से खाने-पीने और सोने लगा। दूसरे रोगी में भी ऐसा ही सुधार देखने में आया। लेकिन तीसरा रोगी चल बसा।

हमपेशा डाक्टरों में डेनिस के दुश्मनों की संख्या काफी बड़ी थी और इनमें से तीन ने मिलकर मृत रोगी की औरत को डेनिस पर मुकद्दमा दायर करने के लिए उकसाया। अदालत ने डा० डेनिस को हत्या के अभियोग से तो बरी कर दिया; किंतु यह आदेश जारी कर दिया कि भविष्य में पेरिस विश्वविद्यालय के चिकित्सा-विभाग की अनुमति के बिना कोई रक्ताधान न करे।

सन १६७८ में फ्रांस ने कानून बनाकर रक्ताधान पर पाबंदी लगा दी। दूसरे देशों में भी ऐसे कानून बना दिये गये। यह प्रतिबंध लगभग डेढ़ सौ साल तक सारे विश्व में जारी रहा।

फिर १८२९ में इंग्लैंड में जेम्स ब्लंडल ने प्रसव के बाद जच्चा को रक्त देना शुरू किया। वह मनुष्य के ही रक्त का उपयोग करता था। रक्तदानी और रोगी पास-पास बिस्तर पर लेट जाते थे और रक्तदानी की धमनी में से निकलकर रक्त रोगी की शिरा में जाता रहता था। उसने एक सिरिंज और

क्रीप (फनेल) का भी आविष्कार किया, जिसके साथ पंप जुड़ा रहता था। इससे रक्त को रोगी के शरीर में चढ़ने में मदद मिलती थी।

ब्लंडल सौभाग्यशाली था। रक्त के वर्गीकरण के विषय में उसे कुछ भी पता नहीं था, फिर भी जिन पंद्रह मनुष्यों में उसने रक्ताधान किया, उनमें से ग्यारह जीवित रहे। दूसरे चिकित्सकों ने ब्लंडल के बनाये उपकरणों में सुधार किया। एक ने उनमें छलनी लगायी, ताकि रक्त के साथ थक्के रोगी के शरीर में न पहुंचें।

किंतु रक्ताधान के दौरान होने वाली मृत्युओं का मुख्य कारण जब तक पता नहीं चल गया, तब तक रक्ताधान खतरनाक बना ही रहा।

× × ×

सन १९०१ में वियेना के डाक्टर कार्ल लैंडस्टीनर ने पता लगाया कि सबका रक्त एक-सा नहीं होता और मानव-रक्त चार प्रकार का होता है। यदि रक्त देने वाले और उसे ग्रहण करने वाले के रक्तों में मेल न बैठता हो, तो रोगी के शरीर में रक्त के लाल कण गुच्छों में इकट्ठे होने लगते हैं और रोगी चल बसता है। लैंडस्टीनर की इस खोज ने प्रगति के नये द्वार खोल दिये।

रक्ताधान में रक्त-वर्गीकरण नियम का उपयोग करने वाला पहला चिकित्सक था जार्ज डब्ल्यू० क्राइल, जो क्लीवलैंड (अमरीका) का रहने वाला सर्जन था और ऊपर वर्णित डा० कशिंग का मित्र था। वर्षों से डाक्टर क्राइल आपरेशन के दौरान होने वाले 'शाक' और उसके कारणों का अध्ययन कर रहा था। उस जमाने में आपरेशन के सफल होने के बावजूद, 'शाक' के कारण कितने ही रोगी बाद में मर जाते थे।

'शाक' के लक्षण डाक्टरों को अच्छी तरह मालूम थे—चेहरा फक पड़ जाना, त्वचा का चिपचिपापन, आक्सिजन की कमी के कारण ओंठ और नाखूनों का नीलापन; धंसी हुई सूनी आंखें; ठंडे, निश्चल और भारी हाथ-पैर; नब्ज इतनी धीमी और



सत्रहवीं सदी में पशु से मानव में रक्ताधान

रक्तचाप इतना नीचा कि जैसे रक्तवाहिकाओं में से सारा-का-सारा रक्त बाहर निकल गया हो।

कोई नहीं जानता था कि रोगियों को 'शाक' क्यों लगता है और उसका इलाज क्या है ? और चूंकि हमेशा ही रोगी इस अवस्था में ठंडा पड़ जाता था, इसलिए लोग उसे खूब कंबल ओढ़ाते थे और अगर वह बाहोश हो और निगल सकता हो, तो उसे गर्म पेय तथा उत्तेजक द्रव पिलाते थे। लेकिन

बहुत थोड़े रोगी ही बचते थे।

क्राइल ने रक्तचाप के गिरने के कारणों पर ध्यान केंद्रित किया। उसने कुत्तों में 'शाक' की अवस्था उत्पन्न की और उनका रक्तचाप बढ़ाने के लिए उन्हें एड्रेनेलीन का इंजेक्शन दिया। एड्रेनेलीन ने असर किया। रुकी हुई हृदय की धड़कन भी फिर चालू हो गयी; लेकिन सिर्फ थोड़ी देर के लिए।

इसके बाद क्राइल ने हवा भरकर फुलाये जा सकने वाले एक 'सूट' का आविष्कार किया। यह सूट पहनाकर उसमें हवा भरने पर शरीर पर हवा का पर्याप्त दबाव पड़ता था और रक्तचाप का गिरना रुक जाता था। लेकिन यह भी एक अस्थायी उपचार सिद्ध हुआ। रक्तचाप सिर्फ थोड़ी देर के लिए बढ़ पाता था और सो भी बहुत थोड़ा।

फिर क्राइल ने रक्ताधान करके देखा और पाया कि उससे कुत्ते का रक्तचाप न केवल बढ़ा, बल्कि स्वाभाविक (नार्मल) स्थिति पर भी पहुंच गया। तो शायद यही 'शाक' की समस्या का सही समाधान था।

सन १९०५ में क्राइल ने लैंडस्टीनर की इस खोज का उपयोग किया कि मानव-रक्त के चार वर्ग होते हैं। रक्त देने और लेने वाले पास-पास दो आपरेशन-टेबलों पर लेट जाते थे और दाता की धमनी रोगी की शिरा से जोड़ दी जाती थी।

पर रक्तदानी के शरीर से कितना रक्त निकल चुका है, यह जानने का तब कोई साधन नहीं था। अगर रक्तदानी प्रसन्न-वदन हो और मजे से बातचीत कर रहा हो, उसका रंग स्वाभाविक हो, तो समझा जाता था कि सब ठीक है। किंतु यदि उसका शरीर ठंडा पड़ने लग जाये, वह हांफने लगे, उसके गालों का रंग फीका पड़ जाये, तो समझा जाता कि उसके शरीर में से बहुत ज्यादा रक्त निकल गया है। यह खतरा भी था कि नली में रक्त के थक्के जमने लग जायें और वे रोगी की शिरा को बंद कर डालें।

अगले दशक में रक्ताधान का बहुत ही कम उपयोग हुआ। फिर १९१४ में अगली उल्लेखनीय प्रगति हुई और इसका श्रेय ब्रसेल्स के डा० लुई एगोट को था। उसने यह महत्त्वपूर्ण बात पता लगायी कि अगर रक्त में सोडियम सिट्रेट मिला दिया जाये, तो थक्के नहीं जमते।

अब यह संभव हो गया कि रक्तदानी से एक पाइंट रक्त लेकर उसे ऐसी बोतल में जमा कर लिया जाये, जिसमें सोडियम सिट्रेट के कुछ कण पड़े हुए हों और जब रक्त बूंद-बूंद करके रोगी के शरीर में प्रवेश कर रहा हो, तब रक्तदानी उठकर घर चला जाये।

डा० क्राइल ने 'शाक' के कारणों की खोज जारी रखी और जब कभी संभव होता, वह रक्ताधान भी करता था। लेकिन अन्य चिकित्सकों ने उसकी विधि को कम ही अपनाया; क्योंकि उसमें कई खतरे और कठिनाइयां थीं। उस समय तक लैंडस्टीनर के रक्त-वर्गीकरण का बहुत कम ही प्रचार हो पाया था।

सच तो यह है कि जब लैंडस्टीनर को १९३० में अपनी तीस साल पुरानी खोज के

अगले

लिए नोबेल पुरस्कार मिला, तब तक एक प्रकार से उसकी उपेक्षा ही होती रही।

इस बीच प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया और हजारों लोग मोर्चे पर घायल होकर मरने लगे। जितने लोग घाव से मरते, उससे ज्यादा लोग घाव के बाद लगनेवाले 'शाक' से मरते थे। लक्षण वही थे, जो लंबे आपरेशन के बाद के 'शाक' में देखने में आते थे। रक्तस्राव इसका एकमात्र कारण नहीं हो सकता था; क्योंकि कई ऐसे सैनिक भी 'शाक' से मर जाते थे, जिनके शरीर से बहुत कम रक्त बहा होता था।

लेकिन इन भीषण मृत्युओं से एक सुराग मिल गया। डाक्टरों ने 'शाक' से होने वाली सब मृत्युओं में एक चीज देखी—सभी का रक्त गाढ़ा और काला हो जाता है—लगभग काला और इतना गाढ़ा कि वह न सके। रक्त के काले पड़ने की व्याख्या उनके पास थी। ताजा रक्त इसीलिए लाल होता है कि उसमें आक्सिजन उपस्थित होती है। आक्सिजन से वंचित हो जाने पर उसका रंग जामनी-सा हो जाता है।

किंतु रक्त गाढ़ा होकर धीमे-धीमे रेंगने क्यों लगता है? जरूर ही वह किसी कारण अपना द्रवांश गंवा बैठता है और गाढ़ा हो जाता है। पर रक्त का द्रवांश रक्तवाहिकाओं में से क्यों निकल जाता है और कहां चला जाता है? यह कोई नहीं जानता था।

युद्ध समाप्त हो जाने पर डाक्टरों ने इस प्राणहारी समस्या पर अपना ध्यान केंद्रित किया। 'शाक' की प्रक्रिया बहुत जटिल थी और उस पर कई दृष्टियों से विचार करना आवश्यक था। अनेक अटकलें लगायी गयीं और उनके आधार पर काम शुरू किया गया। कुछ का खयाल था कि कुचले हुए ऊतक एक प्रकार का विष छोड़ते हैं; कुछ का विश्वास था कि किसी कारण एड्रीनल ग्रंथि पर्याप्त रसायन उत्पन्न करना बंद कर देती है, जिससे रक्तचाप गिर जाता है। दूसरे यह मानते थे कि सूक्ष्म रक्त-वाहिकाओं के कुचले जाने के कारण रक्त का द्रवांश बाहर निकलकर ऊतकों में चला जाता है।

प्रयोगकर्ताओं ने देखा कि यदि रक्त में सोडियम सिट्रेट मिलाकर उसे जमने से रोकें और सेंट्रिफ्यूज यंत्र में रखकर घुमायें, तो रक्त के ठोस पदार्थ (जो कि मुख्यतया लाल और सफेद रक्तकण होते हैं) तले में बैठ जाते हैं और सेंट्रिफ्यूज नलिका के ऊपर प्लाज्मा तैरने लगता है।

प्लाज्मा का विश्लेषण करने पर पता चला कि उसमें जल के अलावा मुख्यतया लवण और प्रोटीन होते हैं। सामान्य अवस्था में ये प्रोटीन परापसरण दबाव (आस्मोटिक टेन्शन) द्वारा जल को खींचकर रक्तवाहिकाओं में रखते हैं। 'शाक' के समय ये प्रोटीन रक्तवाहिकाओं की क्षतिग्रस्त दीवारों में से होकर बाहर निकल जाते हैं। इस प्रकार रक्त अपना द्रवांश कायम नहीं रख पाता और इतना गाढ़ा हो जाता है कि वह आसानी से बह भी नहीं सकता। (इसे चिकित्साशास्त्र की भाषा में रक्त-घनीभाव (हेमोकन्सेन्ट्रेशन) कहते हैं।



जेम्स ब्लंडल

जिसने १८२९ में रक्ताधान का पुनरारंभ किया

इसका यह अर्थ हुआ कि 'शाक' में प्लाज्मा के वह जाने के कारण रक्त-घनीभाव है। तो क्या संपूर्ण रक्त के वजाय केवल प्लाज्मा अथवा नमक के घोल का रक्त में प्रवेश कराकर उसे फिर से प्रवाहशील नहीं वनाया जा सकता ?

'शाक' पीड़ित पशुओं पर परीक्षण करके देखा गया। नमक के घोल ने रक्तचाप वढ़ा दिया और प्रवाह भी पुन: चालू कर दिया; लेकिन यह स्थिति थोड़ी ही देर रही और द्रवांश फिर रक्त में से निकल भागा। परंतु प्लाज्मा ने काम करके दिखाया।

इसका अर्थ यह था कि रक्तवाहिकाओं में द्रवांश को वनाये रखने के लिए रक्त के प्रोटीन सर्वथा आवश्यक हैं। 'शाक' की अवस्था में इन प्रोटीनों के अणु क्षतिग्रस्त रक्तवाहिकाओं की दीवारों में से होकर वाहर चले जाते हैं और अपने साथ जल को भी लेकर ऊतकों के बीच के खाली स्थानों में घुस जाते हैं। फिर वाकी लक्षण अपने आप प्रकट होने लगते हैं।

लगभग एक दशक के प्रयोगों और परीक्षणों के वाद, शरीर में प्लाज्मा पहुंचाना 'शाक' का सर्वमान्य उपचार वन गया। संपूर्ण रक्त के वजाय प्लाज्मा देने में कई लाभ हैं। रक्त की तरह प्लाज्मा का वर्गीकरण नहीं करना पड़ता। वह किसी को भी दिया जा सकता है और उसे वोतल में भरकर दो-दो वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है। आगजनी, वाढ़, भूकंप और दुर्घटनाओं में वह वहुत उपयोगी है।

× × ×

अगली उल्लेखनीय प्रगति १९३५ में हुई, जव प्लाज्मा को सुरक्षित रखने और एक जगह से दूसरी जगह भेजने का अधिक आसान तरीका निकल आया। प्लाज्मा को जमाकर वैक्युअम चेम्वर में पतली पपड़ियों के रूप में सुखा लिया जाता है। इससे उसके गुण तो वैसे-के-वैसे वने रहते हैं, परंतु आयतन घट जाता है। उसे कांच की वंद शीशियों (एम्प्यूल) में रखकर भभके के पानी और नलिका के साथ भेजा जाता है। एम्प्यूल खोलकर प्लाज्मा को भभके के पानी में घोल लीजिये, इंजेक्शन तैयार।

द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटेन को और पर्ल हार्बर कांड के बाद प्रशांत सागरीय युद्ध

अग्रेत

क्षेत्र को प्लाज्मा इसी रूप में भेजा गया था। अमरीका और कनाडा में बहुत बड़े पैमाने पर रक्त-संग्रह करके उसका प्लाज्मा मोर्चे पर भेजा जाता रहा।

लेकिन प्लाज्मा से भी सारी समस्याएं नहीं सुलझती थीं। 'शाक' के अधिकांश मामलों में तो यह उपयोगी सिद्ध होता था, लेकिन अत्यधिक रक्तस्राव के मामलों में प्लाज्मा देने से भी विनष्ट रक्त की भरपाई नहीं हो पाती थी। ऐसे मामलों में रोगी को आक्सिजनवाही लाल कणों से युक्त रक्त ही देना पड़ता था।

इस बीच द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले रूसी वैज्ञानिकों ने यह पता लगा लिया था कि पूर्ण रक्त में सिट्रेट मिलाकर उसे रेफ्रिजरेटर में महीनों तक बिना बिगड़े रखा जा सकता है। इस तरह रक्त-बैंकों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें रक्त का वर्गीकरण करके लेबल चिपकाकर उसे उपयोग के लिए जमा रखा जाता है।

विश्व का पहला बड़ा रक्त-बैंक कनाडा-वासी डा० नार्मन बेथ्यून नामक डाक्टर ने १९३६ में संघटित किया। रक्त-बैंक में रखे रक्त का पहले-पहल उपयोग स्पेन के गृह-युद्ध में हुआ। तभी यह देखा गया कि रक्त बड़ी आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जा सकता है।

इसके बाद तो अन्य देशों में भी रक्त-बैंक खुल गये। अकेले अमरीका में द्वितीय युद्ध के दौरान में रक्तदानियों ने १.३ करोड़ पाइंट से भी ज्यादा रक्त दान में दिया। प्रायः हर तीन आदमियों में से एक आदमी का रक्त 'ओ' वर्ग का होता है; और किसी भी वर्ग के रक्त वाले व्यक्ति को दिया जा सकता है। इसलिए 'ओ' वर्ग का रक्त संपूर्ण रक्ता-धान के लिए रख लिया जाता था और शेष रक्त का प्लाज्मा तैयार किया जाता था। इस रक्त और प्लाज्मा की ही कृपा से द्वितीय विश्वयुद्ध में घायल सैनिकों की मृत्यु-दर प्रथम विश्वयुद्ध की तुलना में आधी रही।

आज तो प्रायः हर एक बड़े अस्पताल में रक्त-बैंक है और ऐन मौके पर सही वर्ग का रक्त दे सकने वाले रक्तदानी की खोज के लिए दौड़-धूप नहीं करनी पड़ती। आप-रेशन के दौरान यदि रोगी को रक्त देना आवश्यक हो जाये, तो रक्त-बैंक में उसके वर्ग का रक्त मय लेबल के तैयार मिलता है। बैंक में सदा रक्त भरपूर रहे, इससे लिए प्रायः ऐसी व्यवस्था है कि रोगी के परिवार का कोई व्यक्ति एक पाइंट रक्तदान करे। वह रक्त किसी भी वर्ग का हो, कोई हर्ज नहीं; क्योंकि उसका कहीं-न-कहीं उपयोग हो ही जाता है।

× × ×

'शाक' क्यों लगता है, इसका ठीक-ठीक कारण अभी तक अज्ञात है। यदि सचमुच कोशिकाओं में से कोई विषैला द्रव निकलता है, तो उस विष का स्वरूप क्या है, यह अभी तक अज्ञात ही है। परंतु 'शाक' के प्रथम लक्षण दिखाई देने के



यह
कौन हैं?

एक सफल राजदूत



इनके कार्य समाचार बन जाते हैं
इनके कथन के उद्धहरण दिये जाते हैं
इनके पहनावे का अनुकरण होता है

ये **ग्वालियर सूटिंग** ही पहनते हैं

"ग्वालियर सूटिंग" विशिष्ट व्यक्तियों का पहनावा है।

NPS/GR/256

साथ ही चिकित्सक अब लवण-घोल, प्लाज्मा या रक्त देकर रक्त और ऊतकों के बीच द्रव का संतुलन पुनः स्थापित करके रोगी की प्राणरक्षा कर सकते हैं।

'शाक' के कारणों की खोज और उसके अच्छे-से-अच्छे उपचार का पता लगाने का प्रयास आज भी जारी है।

जब क्राइल इस समस्या से जूझ रहा था, उसने देखा कि 'शाक' के दौरान में रोगी के मस्तिष्क और हृदय के ऊतकों में कोई विकृति नहीं आती। उसका हृदय धड़कता ही रहता है; बल्कि रक्तचाप साधारण से नीचा हो जाने से उत्पन्न क्षति की पूर्ति के लिए वह और भी तेजी से धड़कने लगता है। रोगी आखिरी दम तक होश में रहते हैं, जिसका अर्थ यह है कि उनके मस्तिष्क को पर्याप्त आक्सिजन मिलती रही।

प्रकृति ने हृदय और मस्तिष्क, इन दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवयवों को अस्थायी आक्सिजन-अभाव से सुरक्षित रखने की समुचित व्यवस्था कर रखी है। इस महत्त्वपूर्ण जानकारी के आधार पर आधुनिक शल्य-क्रिया में एक उपयोगी टेक्नीक का विकास किया गया है। इसे 'हाइपोथर्मिया' कहते हैं। इसमें देह के ऊतकों को शीत-निद्रा में भेज दिया जाता है। आप जानते हैं, सर्दियों में हिम-प्रदेशों के भालू शीत-निद्रा में चले जाते हैं। उनके शरीर की समस्त प्रक्रियाएं मंद हो जाती हैं और ऊतकों को जीवित रहने के लिए बहुत कम आक्सिजन की आवश्यकता पड़ती है। वसंतागम के साथ ऊतकों में फिर गर्मी आ जाती है और वे तीव्रता से सक्रिय हो उठते हैं और उनकी आक्सिजन की मांग बढ़ जाती है।

यह हाइपोथर्मिया की स्थिति शरीर को ठंडे बर्फीले पानी में डुबाकर, या अवयव पर सीधे बर्फ रखकर, अथवा हृदय-फुफ्फुस यंत्र में से ठंडा किया हुआ रक्त शरीर में प्रवाहित करके उत्पन्न की जाती है। हृदय इससे सुस्त पड़ जाता है, शरीर की आक्सिजन की आवश्यकता कम हो जाती है और आंशिक संज्ञा-शून्यता की अवस्था पैदा हो जाती है।

हाइपोथर्मिया मुख्यतया सर्जरी में उपयोगी है। इससे सारे शरीर को भी ठंडा किया जा सकता है, अथवा हृदय, मस्तिष्क या गुर्दे जैसे किसी विशेष अवयव को भी ठंडा किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, मस्तिष्क को रक्त पहुंचाने वाली मुख्य धमनी कैरोटिड धमनी के रक्त को ठंडा करके मस्तिष्क का तापमान ६० डिग्री पर रखा जा सकता है, जबकि शेष सारा शरीर ८० डिग्री के सुरक्षित तापमान पर बना रहता है। इस तरह मस्तिष्क की लगभग 'रक्तहीन' शल्य-चिकित्सा की जा सकती है।

हाइपोथर्मिया का दूसरा उपयोग होता है 'शाक' की रोकथाम में। जब ऊतकों की सक्रियता मंद कर दी जाती है, तो वे आक्सिजन-अभाव को बिना क्षति के झेल लेते हैं।

हाइपोथर्मिया तथा अन्य नयी टेक्नीकों की कृपा से अब 'शाक' से रोगियों के चल बसने के भय से सर्जन लगभग मुक्त हो गये हैं।





माइकल बुदेक

स्तालिन का बेटा, बेचारा

स्तालिन के बेटे को मैंने सबसे पहले सन १९४२ की एक ठंडी बादलों-भरी सुबह युद्धबंदियों के कैंप 'ओफ्लाग १०-सी' की परेड-चौक में हाजिरी के समय देखा, जिसमें कि मैं स्वयं भी बंदी था।

मझला कद, उलझे-उलझे काले बाल, और लंबोतरा उदास चेहरा। उसने नीली बिरजिस और लंबा रूसी फौजी कोट पहन रखा था। ऐसा लगता था, उसने कई रातें उसी कोट में काटी हैं। उसके बूट उसके पांवों के नाप से काफी बड़े थे।

हम पोलिश अफसर चौक के दायें हिस्से में कतार में खड़े थे। हमारे पीछे बेल्जियम, फ्रांस, युगोस्लाविया के बंदी अफसर थे, और सबके पीछे अलग से खड़े किये गये थे फ्रांसीसी यहूदी। जब हमारा कमांडर कैप्टन शुल्जे हाजिरी लेने लगा, तो चार पहरेदार इस काले बाल वाले अजनबी को लाये। और शुल्जे ने कहा—"कर्नल आंतोनोव, तुम्हारी जगह स्टाफ अफसरों की टुकड़ी में है।"

"मैं कर्नल आंतोनोव नहीं हूं," उसने रूसी में ऊंची आवाज में उत्तर दिया—"मैं लेफ्टिनेंट याकोव द्जुगाश्विली हूं।"

अन्य कैदियों के लिए इस नाम का कोई महत्त्व नहीं था; लेकिन हम पोलैंडवासी जानते थे कि बीमार-सा दिखाई देने वाला यह नौजवान स्तालिन का ज्येष्ठ पुत्र है।

हाजिरी के बाद हम उससे बातें करने लगे। उसने बताया कि जुलाई १९४१ में जब जर्मन फौजें स्मोलेन्स्क से होकर मास्को की ओर बढ़ती चली जा रही थीं, वह लियोज्नो के पास पकड़ा गया था। वह एक तोपखाने का कमांडर था। जर्मनों ने तोपखाना नष्ट कर डाला और वह युद्ध में जख्मी हो गया। जर्मन शायद उसे लगे हाथ वहीं खत्म कर डालते, अगर एक रूसी सैनिक उन्हें न बता देता कि वह स्तालिन का बेटा है। जर्मनों ने उससे काफी सवाल-जवाब किये, फिर युद्धबंदी अस्पताल में भेज दिया। वहां से उसे अब ल्यूबेक के बंदी शिबिर ओफ्लाग १०-सी में भेजा गया, हालांकि वह अभी पूरी तरह स्वस्थ नहीं हुआ था।

ओफ्लाग १०-सी उन दो विशेष युद्धबंदी शिबिरों में से था, जिनमें ऊंचे घरानों के या विशेष खतरनाक उच्च सेनाधिकारी रखे जाते थे। हमारे कैंप के चारों ओर कंटीले तारों की तीस फुट ऊंची दोहरी बाड़ लगी हुई थी। बाड़ के बीच-बीच में बुर्जियां थीं, जिन पर पहरेदार हरदम मशीन-गनें लिये चौकन्ने होकर बैठे रहते थे, और दिन-रात हम पर कड़ी नजर रखते थे।

लगभग छब्बीस सौ कैदी शिबिर में थे। इनमें बेल्जियम के छब्बीस जनरल और उनके प्रधान सेनापति जनरल वांडरबर्ग भी थे। ५० पोलिश अफसर और मुख्य सेनाधिकारी जनरल पिस्कर थे। फ्रांसीसी अफसरों में सबसे मुख्य थे रेने राथ्सशील्ड और फ्रेंच राष्ट्रपति लेबर्न के पुत्र विजी लेबर्न। इनके अलावा कई संसद्-सदस्य और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के महाजन भी इस कैंप में थे। स्वाभाविक ही था कि स्तालिन का बेटा भी यहीं रखा जाये।

सहज ही स्तालिन का बेटा हमारी दिलचस्पी का केंद्र बन गया। पहले हम उसका जिक्र 'द्जुगाश्विली' के बजाय 'स्तालिन का बेटा' के नाम से किया करते थे। फिर हम उसे 'स्तालिन' कहने लगे। हमने उसका परिचय जनरल पिस्कर से कराया। जनरल ने खाद्य पदार्थों के दो बंडल उसे देने चाहे। ये बंडल अमरीकी रेडक्रास की ओर से हम अफसरों को महीने में दो बार मिला करते थे। स्तालिन के बेटे ने उन्हें लेने से इन्कार कर दिया और कहा कि मैं किसी भी हालत में अमरीकी चीजें नहीं खाऊंगा।

हम उसे युद्धबंदियों की पार्टियों में सदा ही बुलाया करते थे। हम जानते थे कि अपने पिता के साथ उसका संबंध बहुत अच्छा नहीं था और इधर कुछ अरसे से तो बिलकुल ही टूट चुका था। विश्व-राजनीति के बारे में वह हमारी अपेक्षा बहुत कम जानता था। फिर भी जब हम कोई प्रश्न पूछते, तो वह उसका उत्तर बड़े सब्र से देता था।

स्तालिन के बेटे को बैरक ११ की कोने की कोठरी में रखा गया था। बगल में फ्रांसीसी प्रधान मंत्री ब्लम के बेटे की कोठरी

थी। यह बैरक बाकी बैरकों से हटकर कंटीले तारों की वाड़ के बहुत निकट थी और उसकी बड़ी-बड़ी खिड़कियों में से जर्मन पहरेदार कैदियों पर निरंतर निगरानी रख सकते थे।

शुरू में उसे कैंप में कहीं भी घूमने-फिरने की छूट थी, हालांकि एक विशेष पहरेदार सदा उसके साथ रहता था। फिर एक घटना घटी। हुआ यों कि एक बार उसे पोलिश बैरक नं० ३ में चाय पीने बुलाया गया था। उसके साथ एक बूढ़ा जर्मन पहरेदार था, जिसे बहुत कम दिखाई देता था और जो बहुत मोटे शीशे का चश्मा पहनता था।

चाय का दौर चल रहा था कि एक पोलिश अफसर उठकर बैरक के बाहर टहलने लगा। थोड़ी देर बाद उसने देखा कि बूढ़ा पहरेदार भी उसके पीछे-पीछे टहल रहा है। पोलिश अफसर ने सोचा कि यह बेचारा स्तालिन के बेटे को छोड़कर चले आने की सजा न पाये। उसने उससे कहा—"मैं स्तालिन का बेटा नहीं हूं। तुम्हें गलतफहमी हो गयी है। बैरक ३ में जाओ। वहां स्तालिन का बेटा बैठा होगा।" पहरेदार की जान में जान तभी आयी, जब उसने अपने कैदी को बैरक नं० ३ में चाय पीते पा लिया। उस दिन के बाद से स्तालिन के बेटे के घूमने-फिरने पर प्रतिबंध लग गया।

कैंप में मेरी ड्यूटी थी, खाने-पीने की चीजों की देखभाल और बंटवारा कराना। मेरी एक और गुप्त ड्यूटी थी—मौका लगने पर जर्मन पहरेदारों से सौदेबाजी करना। अमरीकी या अंग्रेजी सिगरेटों के बदले में मैं उनसे ऐसे दस्तावेज हासिल करता, जिनकी मदद से कोई कैदी वहां से निकलकर भागने की कोशिश कर सकता था।

'इन्स्टैन्ट काफी' विनिमय का सबसे बड़ा सिक्का था। काफी के बदले में हमने तीन रेडियो-सेटों के पुर्जे मंगवाये और रेडियो तैयार कर लिये। इन पर हम बाहर की खबरें सुनते। बार-बार तलाशी लेने पर भी जर्मन इन्हें न पकड़ सके। हमारे बीच कई देशों और जातियों के लोग थे, जो कुल मिलाकर चौंसठ भाषाएं बोलते थे। बेल्जियम का एक मेजर तो अकेला ही तेईस भाषाएं बोल लेता था। सो रेडियो पर किसी भी देश की खबरें आतीं, तो हममें से कोई-न-कोई उसे अवश्य समझ लेता था।

मैं तो सिर्फ पांच भाषाएं जानता था। इसलिए, जब एक दिन सवेरे राशन लेते समय स्तालिन के बेटे ने मुझसे कहा कि मैं आपसे एक विदेशी भाषा सीखना चाहता हूं, तो मुझे अचरज-सा हुआ। बाद में पता चला कि जनरल पिस्कर ने उसे मेरा नाम सुझाया था।

मेरा खयाल था कि वह अंग्रेजी सीखना चाहता होगा, क्योंकि हमारे कैंप में सबसे ज्यादा अंग्रेजी ही बोली और समझी जाती थी। लेकिन उसने बताया कि वह जर्मन सीखना चाहता है। मैंने सोचा कि शायद वह थोड़ी-बहुत जर्मन सीखकर वहां से भाग निकलने की तैयारी कर रहा है। पर जब मैंने यह बात उससे कही, तो उसने जो उत्तर दिया, वह चकित कर देने वाला था। उसने

कहा–"मैं जर्मन इसलिए सीखना चाहता हूं कि जंग खत्म होने के बाद बहुत-से जर्मन कैदी रूस में काम करने के लिए ले जाये जायेंगे और चूंकि मैं इंजीनियर हूं, इसलिए जर्मन सीख लेने से उन जर्मनों के साथ काम करने में मुझे सुविधा होगी।"

मैं उसे जर्मन सिखाने लगा। वह बड़ी मेहनत से पढ़ता था, पर उसे जर्मन भाषा के उच्चारण और व्याकरण को समझने में काफी कठिनाई होती थी। वह कहता था–"जर्मन तो बड़े समझदार होते हैं! फिर उन्होंने अपनी भाषा ऐसी बोझिल क्यों बना रखी है?"

कभी बातचीत के दौरान में वह अपनी मातृभूमि का जिक्र करता और कहता कि संसार का कोई भी देश रूस से बढ़कर सुंदर नहीं है। एक बार वह उन सुंदर और सुखद दिनों की बातें करने लगा, जब वह सूर्यास्त के समय वोल्गा के तट पर बैठकर गेहूं की पकी हुई फसल वाले विशाल खेतों को निहारा करता था।

उसने बताया कि ऐसी ही एक शाम को वह अपने पिता और परिवार के लोगों और मित्रों के साथ बैठा हुआ था। फिर जब वे सब मछलियां पकड़ने लगे, तो उसका पिता बहुत पुराने दिनों की घटनाएं सुनाने लगा। उन दिनों को वह कभी भूल नहीं सकता था।

एक बार उसने मुझसे पूछा–"युद्ध के बाद तुम क्या करोगे?" मैंने बताया कि मैं अपने बच्चों की तलाश करूंगा। दो बेटे और एक बेटी अभी जीवित हैं, परंतु मेरी बीवी आश्वित्स के कैंप में मार डाली गयी। उसने पूछा–"क्या उनके चित्र आपके पास हैं?" मैंने फोटो दिये, तो वह देर तक उन्हें देखता रहा, फिर उदास हो गया। केवल एक ही बार उसने मुझसे अपनी बहन स्वेतलाना का जिक्र किया, सो भी प्रसंगवश। वह उसे 'नन्ही मालेन्किया' कहता था।

तब मैंने उससे साहस करके पूछा–"क्या आपका परिवार है?"

उसने मेरी ओर देखा और कुछ क्षण की झिझक के बाद कहा–"हां, पत्नी और दो बच्चे हैं।"

"क्या, युद्ध खत्म होते ही आप उनके पास जायेंगे?"

"बेशक।"

तब मैंने सवाल किया–"क्या यह सच है, जैसा कि सभी रूसी फौजी कहते हैं, कि रूस लौटने पर हर एक फौजी को इस बात की सजा दी जायेगी कि वह दुश्मन के हाथ में क्यों पड़ा?"

एक क्षण रुककर उसने उत्तर दिया–"हां, यह सच है। लेकिन मैं जख्मी हो जाने पर बेहोशी की हालत में पकड़ा गया था।"

कैंप से भाग निकलने के प्रयत्न चलते ही रहते थे। एक बार कुछ पोलिश, फ्रेंच और बेल्जियन अफसरों ने मिलकर एक सुरंग खोदकर कैंप में से भाग जाने की योजना बनायी। सुरंग उसी बैरक–११ के नीचे से खोदी जाने वाली थी, जिसमें स्तालिन का बेटा रहता था। यह बैरक कैंप की बाड़ के बहुत निकट थी। चूंकि वहां दिन-रात पहरे-

दार रहता था, इसलिए जर्मनों को इस बैरक की विशेष चिंता नहीं थी। स्तालिन के बेटे को इस योजना की बिलकुल जानकारी नहीं थी।

भागने वालों की टोली ने पहले पांच फुट गहरा गड्ढा खोदा। फिर उसमें से बाहर की ओर सुरंग खोदी जाने लगी। एक चुरायी हुई बिजली की मशीन के द्वारा वे मिट्टी बाहर निकालते रहे। काम तेजी से चला। शाम तक सुरंग का दूसरा सिरा बाड़ से दस-पंद्रह गज दूर गेहूं के एक खेत में खुल गया।

बाईस अफसर गैरफौजी कपड़े पहन-कर, कैंप में से निकलने की ताक में बैठ गये। निश्चित समय पर संकेत हुआ और पांच-पांच मिनिट के बाद एक-एक करके वे सुरंग में से बाहर जाने लगे। तीन निकल गये। चौथा फौजी बाहर निकल रहा था कि खेत में से गुजर रहे एक जर्मन सैनिक ने उसे देख लिया और वह पकड़ा गया। खतरे की घंटी बजा दी गयी। बाकी लोग सुरंग में से नहीं निकले।

जर्मनों ने सुरंग का पता लगा लिया। उन्होंने देखा कि सुरंग स्तालिन के बेटे की बैरक के नीचे खोदी गयी है। अगले दिन सवेरे की हाजिरी में पता चला कि तीन कैदी भाग गये हैं। कैंप के जर्मन अफसर के हाथ-पांव फूल गये। उसने अपने बचाव के लिए यह कह दिया कि सुरंग की खुदाई ल्यूबेक के कम्युनिस्टों ने स्तालिन के बेटे को भगाने के लिए की है। इसकी पुष्टि में उसने यह प्रमाण दिया कि सुरंग में बहुत-सी साम्य-वादी पुस्तिकाएं पड़ी मिली हैं। उसने मांग की कि इस खतरनाक कैदी को उसके कैंप से हटा दिया जाये। और उसकी बातें मान ली गयीं।

अगले दिन रात के समय स्तालिन के बेटे को हमारे कैंप से किसी अज्ञात स्थान को ले जाया गया। बाद में पता चला कि उसे ओरा-नियेनबर्ग ले जाया गया था। मैंने उसे फिर कभी नहीं देखा। बेशक एक बार मैंने सुना कि जर्मनों ने प्रस्ताव रखा था कि स्तालिन-ग्राड में बंदी बनाये गये जर्मन कमांडर फील्ड मार्शल पौलस को यदि रूसी छोड़ दें, तो बदले में वे स्तालिन के बेटे को छोड़ देंगे। मगर स्तालिन ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया।

युद्ध समाप्त हो जाने के बाद स्तालिन के बेटे के बारे में कई किस्म की अफवाहें सुनने में आयीं। एक अफवाह के मुताबिक वह कैंप में से भाग खड़ा हुआ और इटा-लियन सैनिकों की टुकड़ी के साथ मिलकर नाजियों से लड़ा, और जब टुकड़ी नाजियों के घेरे में आ गयी, तो उसने अपनी छाती पर हथगोला मारकर आत्महत्या कर ली।

दूसरी अफवाह मैंने उस कैंप के कई कैदियों से सुनी, जिसमें स्तालिन के बेटे को हमारे कैंप से ले जाकर रखा गया था। इसके अनुसार उसे हिटलर की आज्ञा से मार डाला गया। पहरेदारों ने कमरे में उसके तमाम कपड़े उतार डाले, उसके मुंह को टेप चिपकाकर बंद कर दिया, और नंग-धड़ंग घसीटकर उसे आंगन में ले गये और गोली मार दी।





नन्हा नगर, नन्हे नागरिक

परमेश श्रीवास्तव द्वारा प्रस्तुत

नगर के चौराहे पर वहां के मकानों जितना ही ऊंचा एक भीमकाय ट्रैफिक पुलिसमैन खड़ा है। उसके एक हाथ के इशारे से सड़क पर रुकी हुई खिलौनों-जैसी छोटी-छोटी कारें चलने लगती हैं, जबकि दूसरे हाथ के इशारे से सड़क की दूसरी ओर की गाड़ियां रुक जाती हैं। एक ओर सड़क पार करने की सफेद रेखाओं के बीच से होकर नन्हे पदचारियों की भीड़ गुजरने लगती है।

ऐसा भान होता है, जैसे यह बौने नागरिकों का कोई बौना नगर हो—कोई आधुनिक लिलिपुट देश !

लेकिन दरअसल ये विलक्षण दृश्य अमरीका के उस नन्हे 'सुरक्षा-नगर' के हैं, जहां बच्चे सुरक्षा-नियमों की पाबंदी की ट्रेनिंग पाते हैं।

छोटी उम्र के बच्चों में किसी भी चीज की नकल करने की क्षमता बड़ी प्रबल होती है। अगर उस समय उन्हें पढ़ाई के अन्य विषयों की तरह ही सुरक्षा-नियमों की भी शिक्षा दी जाये, तो वह शिक्षा बड़ी प्रभावशाली और आनंददायक होगी।

फ्लोरिडा के टंपा नगर के नागरिकों ने इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर इस 'सुरक्षा-नगर' की योजना बनायी। आज यह नगर टंपा-वासियों का सपना पूरा कर रहा है।

सुरक्षा-नगर चार साल से लेकर नौ साल तक के बच्चों के लिए है। वहां सुरक्षा-नियमों की शिक्षा कुछ इस तरह दी जाती है कि बच्चों को उसमें खेल का-सा आनंद मिलता है। इस नन्हे नगर में उन्नत और सभ्य समाज के सारे सरंजाम मौजूद हैं। यातायात की वे सारी फजीहतें भी यहां देखने को मिलेंगी, जो कि आधुनिक नगर-जीवन की विकट समस्याएं बनी हुई हैं।

छोटे-छोटे आधुनिक शैली के मकान, छोटी-छोटी सड़कें, छोटे-छोटे लैंप-पोस्ट, छोटे-छोटे साइनबोर्ड और लेटरबाक्स देखकर बच्चों को लगता है, जैसे यह उनकी अपनी दुनिया हो। छोटे-छोटे बगीचे, स्कूल, गिरजाघर, अस्पताल, पुस्तकालय, पेट्रोल-पंप, रेल-स्टेशन, पुलिस थाने, दमकल के अड्डे, दुकानें और नगर की चिर-परिचित अन्य इमारतों की इबहू प्रतिकृतियां देखकर बच्चों को ऐसा अनुभव होता है, जैसे वे अपने ही घर में हों।

टंपा के स्कूली बच्चों के लिए इस सुरक्षा-नगर का भ्रमण जरूरी रोजनामचा बन गया है। सुरक्षा-नियमों के पाठ्यक्रम में जिस तरह कक्षा में सुरक्षा-पाठ पढ़ाया जाता है और सुरक्षा-संबंधी फिल्में दिखायी जाती हैं, उसी तरह सुरक्षा-नगर का भ्रमण भी कराया जाता है। यहां बच्चे सड़कों-गलियों में घूमते-चलते हुए व्यावहारिक रूप में सुरक्षा-नियमों की शिक्षा ग्रहण करते हैं।

और यह शिक्षा स्कूल के अध्यापक नहीं देते। बल्कि यह शिक्षा देते हैं टंपा के कुशल पुलिसमैन और फायरमैन। वर्दीधारी सरकारी कर्मचारियों के योगदान से सुरक्षा-शिक्षा में वास्तविकता आती है और बच्चों के मन में इन कर्मचारियों के प्रति आदर और मैत्री की भावना घर कर जाती है।

भावी जीवन में आने वाली हर तरह की सुरक्षा-संबंधी परिस्थिति का सामना करने की शिक्षा विद्यार्थी यहां पर पाते हैं। शिक्षा देते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता है कि बच्चों को किसी किस्म की चोट न आये।

पैदल चलते समय और मोटर-गाड़ी, साइकल आदि चलाते समय सुरक्षा के जिन नियमों का पालन आवश्यक है, वे सभी नियम पाठ्यक्रम में शामिल किये जाते हैं। ट्राफिक सिग्नल, हैंड सिग्नल और सड़क के आम नियमों को इस तरह समझाया जाता है कि बच्चे उन्हें आसानी से समझ लें। सुरक्षा-संबंधी दूसरे पाठ घर पर और खेल के मैदान में दिये जाते हैं।

आग की रोकथाम और आग बुझाने संबंधी कवायद की ट्रेनिंग भी यहां बच्चों को अनिवार्य रूप से दी जाती है। इस ट्रेनिंग के दौरान 'फायर काल बाक्स' और टेलिफोन का इस्तेमाल किया जाता है, ताकि बच्चे ठीक-ठीक सीख सकें कि 'इमर्जेंसी' के मौकों पर क्या करना चाहिये।

वैयक्तिक सुरक्षा से संबंधित पाठ्यक्रम में विशेष रूप से यह बताया जाता है कि अपरिचित व्यक्तियों से बातचीत करने में क्या-क्या खतरे हो सकते हैं।

पहले दर्जे के छोटे बच्चों के पाठ्यक्रम में विशेष रूप से वैयक्तिक सुरक्षा पर जोर दिया जाता है। दूसरे और तीसरे दर्जे के बच्चों को मोटर-चालन-संबंधी सुरक्षा की ट्रेनिंग दी जाती है। उनके लिए छोटी-छोटी विद्युत्चालित मोटरें बनायी गयी हैं, जिनमें बाकायदा ड्राइवर के बैठने की सीट, स्टीयरिंग ह्वील, एक्सेलेरेटर, ब्रेक और हार्न इत्यादि लगे होते हैं।

नन्हे ड्राइवरों के सामने ट्राफिक-संबंधी वे सारी स्थितियां पैदा की जाती हैं, जिनका सामना वे आगे चलकर करेंगे। ट्रेनिंग के दौरान उन्हें सब तरह के रास्तों से गुजरना पड़ता है—आबादी वाले इलाकों से, व्यवसाय-वाणिज्य वाले इलाकों से, रेल-क्रासिंग से, संकरे रास्तों से, चक्करदार हाइ-वे से, और ढलान और चढ़ाई के ऐसे स्थानों से, जहां गति-नियंत्रण-संबंधी साइनबोर्ड लगे होते हैं।

बच्चे इस तरह ठीक-ठीक ट्राफिक के नियम और संकेतों का पालन करना सीखते हैं, साइकल चलाने वालों और पदचारियों पर ठीक-ठीक नजर रखना, दूसरों को हस्त-संकेत देना, सड़कों पर रेखांकित सीमा के अंदर रहना और ऐम्बुलेंस का सायरन बजने पर रास्ता छोड़ना आदि भी वे अच्छी तरह सीख जाते हैं।

बच्चों को इस नन्हे नगर में लाया तो जाता है ट्रेनिंग के लिए, मगर कुछ ऐसा माहौल बनाया जाता है कि उन्हें इसमें सैर-सपाटे का पूरा-पूरा आनंद मिलता है। उनके लिए मैदान में पिकनिक का इंतजाम किया जाता है, ताकि वे इसे केवल सैर-सपाटा ही समझें। जो विषय कक्षा में अरुचिकर और उबाने वाला लग सकता है, बच्चे उसी में आमोद-प्रमोद के माध्यम से अधिक-से-अधिक रुचि लेने लगते हैं।

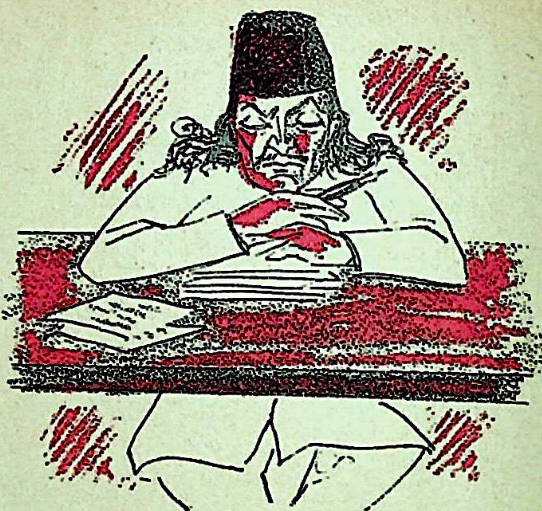
टंपा के इस सुरक्षा-नगर का निर्माण १९६५ में हुआ। तब से टंपा के लगभग चौदह हजार स्कूली बच्चे यहां ट्रेनिंग प्राप्त कर चुके हैं। इसके अलावा स्काउट-दल और अन्य बाल या किशोर संघटनों को भी गर्मी के महीनों में सुरक्षा-नगर का लाभ उठाने की सुविधा दी जाती है।

सुरक्षा-नगर टंपा के लोअरी पार्क की डेढ़ एकड़ जमीन में बसा हुआ है। टंपा नगर और वहां के इंडिपेंडेंट इन्स्योरेंस एजेंट्स नामक संघटन ने मिलकर यह कार्य आरंभ किया। इसके लिए आवश्यक लाखों डालर धन और आवश्यक साजो-सामान की व्यवस्था स्थानीय व्यवसायी वर्ग, सभा-समितियों और आम नगरवासियों ने दान द्वारा की।

इस नगर की देखरेख टंपा का उद्यान-विभाग करता है। ट्रेनिंग के कार्यक्रमों का संचालन हिल्सबरो जिले की सार्वजनिक शिक्षा-समिति; टंपा की पुलिस तथा दमकल विभाग मिलकर करते हैं।

सुरक्षा-नगर का एक मजेदार उपयोग यह भी है कि टंपा शहर में यातायात के नियमों का उल्लंघन करने वाले लोगों को दंडस्वरूप इस सुरक्षा-नगर में कैद रखा जाता है।





चकोर भूपाली

कन्हैयालाल कपूर

चकोर साहब के विचित्र उपनाम का कारण यह है कि पंद्रह बरस की उम्र में उन्हें एक पनवाड़न से, जिसका नाम चांद था, इश्क हो गया। लगातार पांच साल उसका दम भरते रहे, लेकिन जब वहां रसाई न हुई, तो आपने 'चकोर' उपनाम रख लिया और शाइरी करने लगे। चांद के वियोग में असंख्य गजलें कहीं, जो बाद में उनके संग्रहों, 'नगमा-ए-चकोर', 'नाला-ए-चकोर', 'फरियादे-चकोर' और 'फुगाने-चकोर' में शामिल की गयीं।

जब गजलें कहते-कहते तबीयत ऊब गयी, तो कहानी लिखना शुरू कर दिया। लगभग हर कहानी में अपनी महबूबा को जी भरकर रुसवा किया। उसके बाद यह देखते हुए कि जासूसी उपन्यास लोकप्रिय हो रहे हैं, साहित्य की इस विधा पर भी हाथ मारे और दो दर्जन जासूसी उपन्यास लिखे। इनमें 'कत्ले-चकोर' शाहकार (कला की सर्वोत्कृष्ट कृति) का दर्जा रखता है। इसमें उन्होंने चांद के हाथों अपने कत्ल हो जाने की दास्तान को बहुत करुणाजनक और रहस्यमय अंदाज में बयान किया है।

चकोर साहब का खयाल था कि यद्यपि

अप्रैल

वे आशिक के तौर पर असफल रहे हैं, मगर साहित्यकार के रूप में उनकी कद्र जरूर की जायेगी। लेकिन अफसोस, उनकी यह आरजू पूरी न हुई। किसी आलोचक ने उन्हें प्रोत्साहन नहीं दिया। हालांकि वे बराबर आग्रह करते रहे—मैं भी शाइर हूं, खुदा के लिए मुझे स्वीकार करो !

किसी दोस्त ने उन्हें बनाते हुए कहा—"चकोर साहब ! जब तक लेखक अपनी प्रशंसा स्वयं न करे, कोई व्यक्ति उसे लेखक स्वीकार नहीं करता। अगर जार्ज बर्नार्ड शा अपने मुंह मियां मिट्ठू न बनते, तो उन्हें ख्याति के लिए बीस वर्ष और इंतजार करना पड़ता।" उन्हें यह परामर्श पसंद आया। उन्होंने अपने ताजा जासूसी उपन्यास 'जासूस की मौत' में हीरो और हीरोइन के दरम्यान निम्नलिखित संवाद लेखनीबद्ध किया :

"आजकल आप क्या पढ़ रही हैं ?"

"मैं हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध शाइर, कहानीकार और उपन्यासकार जनाब चकोर भूपाली के मशहूर उपन्यास 'कत्ले-चकोर' का अध्ययन कर रही हूं।"

"आपके खयाल में चकोर साहब किस कोटि के लेखक हैं ?"

"मेरी राय में रवींद्रनाथ टैगोर, शरत्-चंद्र चटर्जी और मुंशी प्रेमचंद के बाद वे सबसे बड़े हिन्दुस्तानी उपन्यासकार हैं।"

"अगर यह सही है, तो फिर वह लोकप्रिय क्यों नहीं हुए ?"

"हर महान लेखक का यही हश्र होता है। राबर्ट ब्राउनिंग और गालिब की मिसालें आपके सामने हैं।"

"मगर मौजूदा दौर में तो गालिब और ब्राउनिंग को लोगों ने सिर-आंखों पर उठा रखा है।"

"चकोर साहब की कद्र भी आने वाली पीढ़ियां करेंगी !"

"मुझे आपके चकोर साहब बिलकुल पसंद नहीं !"

"इसकी वजह यह है कि आपकी अपनी रुचि हददर्जा पस्त है !"

"लेकिन आलोचक तो उन्हें पूछते भी नहीं ?"

"आजकल के आलोचक खुद जाहिल हैं। उनसे और क्या उम्मीद की जा सकती है !"

चकोर साहब समझते थे कि इस संवाद को पढ़ने के बाद पाठक उन पर ईमान ले आयेंगे और उनकी गणना उच्चकोटि के लेखकों में होने लगेगी। लेकिन पाठकों ने उलटा उन्हीं का मजाक उड़ाया और इस किस्म की ऐलानिया आत्मप्रशंसा को उनकी रुचिहीनता का प्रमाण माना।

जब यह ढंग कारगर साबित न हुआ, तो चकोर साहब ने नया स्टंट शुरू किया। वे हर लाइब्रेरी और बुकस्टाल पर जाते और चकोर की किताबों की पूछताछ करते। एक बार उन्हें दिल्ली से कलकत्ते का सफर करना पड़ा था। जब गाड़ी किसी बड़े स्टेशन पर रुकी, तो वे भागते हुए रेल्वे बुकस्टाल पर पहुंचे और पूछा—"क्यों साहब ! आपके पास 'फरियादे-चकोर' होगी ?"

"नहीं ।"

"फ़ुगाने-चकोर ?"

"नहीं ।"

"नाला-ए-चकोर ?"

"नहीं ।"

"ताज्जुब है ! मालूम होता है, आपके बुकस्टाल में कोई काम की किताब नहीं !"

"नहीं साहब, यह बात नहीं । हमारे पास टैगोर, गालिब, इकबाल और प्रेमचंद की सभी पुस्तकें हैं ।"

"अजी छोड़िये । ये तो अब पुराने हो चुके । टैगोर का दौर खत्म हुआ । अब तो चकोर का दौर है।"

एक दिन चकोर साहब एक लाइब्रेरियन से उलझ पड़े । उसका कसूर सिर्फ यह था कि उसने चकोर की रचनाओं को सस्ते दर्जे का साहित्य करार दिया था । चकोर साहब ने आपे से बाहर होते हुए जवाब दिया—"मैं समझता हूं, जिस लाइब्रेरी में चकोर की पुस्तकें नहीं, उसे आग की भेंट कर देना चाहिये । किसी भी अच्छी लाइब्रेरी में सबसे बड़ी खूबी यह होनी चाहिये कि उसमें हिन्दुस्तान के महान लेखक चकोर भूपाली की पुस्तकें पायी जायें ।"

चकोर साहब उस दिन बड़े खुश हुए, जिस दिन एक कस्बे में उन्होंने एक पुस्तक-विक्रेता से 'फरियादे-चकोर' की पूछताछ की और उसने बड़ी कोशिश के बाद इस पुस्तक की एक प्रति ढूंढ़ निकाली । चकोर साहब ने उसकी कीमत पूछी । पुस्तक-विक्रेता ने कहा—"वैसे तो इसकी कीमत डेढ़ रुपया है । लेकिन पिछले दस साल से यह किताब मेरी दुकान पर पड़ी सड़ रही है। आप मुफ्त ले जा सकते हैं ।"

चकोर साहब की सारी खुशी काफूर हो गयी और उन्हें बहुत ताज्जुब हुआ कि जो पुस्तक मोतियों में तोलने के काबिल है, उसका इतना अपमान किया जा रहा है।

इस घटना ने चकोर साहब के दिल-दिमाग पर कुछ ऐसा असर डाला कि वे एकदम सनकी बन गये । इंसान और इंसानियत से उनकी आस्था उठ गयी । अब वे उठते-बैठते हर व्यक्ति को कोसते । उन्हें यह वहम सताने लगा कि उन्हें नजर-अंदाज करने के लिए एक सुव्यवस्थित षड्यंत्र रचा गया है, जिसमें सभी लोग शामिल हैं । जब भी उन्हें कोई अवसर मिलता, वे खूब दिल के फफोले फोड़ते ।

एक रोज 'उर्दू साहित्य का इतिहास' पर बहस करते हुए फरमाया—"गजब खुदा का, इस बृहद् ग्रंथ में हर ऐरे-गैरे की तारीफ की गयी है, लेकिन उर्दू के इस गरीबदास का जिक्र तक नहीं किया गया ! यह अदबी खयानत ही नहीं, खबासत भी है । सितम बलाये सितम ! उन लेखकों को आसमान पर चढ़ाया गया है, जो एक-आध फाल्तु किताब के लेखक हैं । लेकिन खाकसार को इसलिए भुला दिया गया है कि वह तीन दर्जन उपन्यासों, गजलों के चार संकलनों और कहानियों के छः संकलनों का रचयिता है ।"

जब उन्हें किसी मुशायरे में आमंत्रित

नहीं किया जाता, तो प्रबंधकों को पानी पी-पीकर कोसते—"साहब! आजकल तो गलेबाजी और तुकबंदी का नाम शाइरी है। हकीकी शाइर को कोई पूछता नहीं। बखुदा मैं वो शेर कहता हूं कि कोई दूसरा कहे, तो खून थूक दे। लोग जानते हैं, श्रोतागण मेरी गजलों पर सिर धुनते हैं और मेरे हर शेर पर 'मुकर्रर-मुकर्रर!' की सदाएं बुलंद होती हैं। लेकिन अब इन अक्ल के अंधों को कौन समझाये कि मुझे मुशाइरे में न बुलाकर मेरे चाहने वालों के साथ कितना बड़ा जुल्म कर रहे हैं!"

पिछले दिनों अखबारों में उन लेखकों की सूची छपी, जिन्हें सरकार ने साहित्य-सेवाओं के लिए पुरस्कार प्रदान किये थे। उसे पढ़कर चकोर साहब बहुत बौखलाये, क्योंकि उनका नाम सूची में नहीं था। अब उनका नियम हो गया कि यह सूची हर परिचित और मित्र को दिखाते और सीने पर दोहत्थड़ मारकर कहते—"अंधेर है साहब, अंधेर! इस युग में सब कुछ है, पर न्याय नहीं है। कल के छोकरों और साहित्यिक भिखारियों को पुरस्कार बांटे जा रहे हैं और इस जाने-पहचाने लेखक की बड़ी बेरहमी से हकतल्फी की जा रही है। अफसोस! कोई खुदा का बंदा इस अन्याय के खिलाफ विरोध की आवाज बुलंद नहीं करता!"

आखिर जब चकोर के शिकवे सुन-सुनकर उनका हर दोस्त तंग आ गया, तो उन्हें किसी मनचले ने मशवरा दिया कि वे सरकार के फैसले के खिलाफ हाईकोर्ट में 'रिट' दायर कर दें।

"रिट दायर कर दूं!" उन्होंने चौंककर कहा—"लेकिन इसके लिए रुपया कहां से आयेगा?"

"बीवी के जेवर बेच दीजिये और जब रिट मंजूर हो जाये, तो बनवा दीजिये।"

चकोर साहब को यह तजवीज पसंद आयी। उन्होंने अल्लाह का नाम लेकर हाईकोर्ट में रिट दायर कर दी। आजकल वे उसके नतीजे का इंतजार कर रहे हैं। आप भी दुआ कीजिये कि फैसला उनके पक्ष में हो।

अनुवादक : सुरजीत



पंजाबी साहित्य केंद्र, बंबई के लेखकों ने देवेंद्र सत्यार्थी के सम्मान में एक सभा की। सभा के अंत में अध्यक्ष ने कहा—"यह बहुत खुशी की बात है कि सत्यार्थीजी इस उम्र में भी इतनी आधुनिक किस्म की रचनाएं लिख रहे हैं कि वे आज की नयी पीढ़ी के लेखकों में गिने जाते हैं।" मैं सत्यार्थी जी के पास बैठा हुआ था। मैंने कहा—"सत्यार्थीजी, बुजुर्ग लेखकों से मुझे आम तौर पर डर लगता है। पर आपके साथ बैठने पर डर नहीं रहता। सचमुच, आप हमारी पीढ़ी के लेखक हैं।"

"आपकी पीढ़ी का क्यों?" सत्यार्थीजी ने कहा—"मैं आपके बच्चों की पीढ़ी का लेखक हूं। आप तो अब मेरे मुकाबले में पिछली पीढ़ी के लेखक बन चुके हैं।" —सुखबीर



को-हसिन की पत्नी

जागई

मा-पा को-हसिन की पत्नी थी और बाजार में सब्जी बेचती थी। वह हर रोज सुबह सब्जियां टोकरे में भरकर मील-भर दूर शहर में ले जाती। अगर सब्जियां जल्दी बिक जातीं, तो वह जल्दी लौट आती, नहीं तो दिन ढले वापस आती। लौटते हुए जब वह गांव के निकटवर्ती बांस के पुल पर से नदी को पार करती, तो उसका मन अपने पति और बच्चों के विचार से भर आता।

मा-पा का कद लंबा और बाल भूरे थे। वैसे उसके दांत जरा आगे को निकले हुए थे, पर यह नहीं कहा जा सकता था कि वह सुंदर नहीं है। उसका पति को-हसिन निकम्मा आदमी था। पर यह कहना ठीक नहीं होगा कि वह कुछ नहीं करता था। वह चावल पकाता और बच्चों को संभालता था। उसने नौ वर्ष तक बौद्ध-मठों में चेलागीरी की थी और कुछ ज्ञान प्राप्त किया था। वह स्वभाव का मीठा, हंसने का शौकीन और विवाह आदि के समय आगे बढ़कर काम करनेवाला आदमी था। वह अपनी पत्नी जितना लंबा नहीं था और उसकी छाती भी बहुत चौड़ी नहीं थी। उसने अपनी जांघों पर तस्वीरें गुदवा रखी थीं।

विवाह और उसके बाद पहला लड़का होने तक भी मा-पा दुकान करती थी और को-हसिन की सेवा भी। जब दूसरा लड़का हुआ, तो वह केवल दुकान ही कर सकती थी। लेकिन जब तीसरी संतान लड़की हुई, तो उसके बाद से मा-पा कई बार बहुत थक जाती। जब दुकान में घाटा लगा, तो उसकी दशा दयनीय हो गयी थी। पर उसने कभी शिकायत नहीं की।

एक बार उसकी एक सहेली ने उसे बताया—"अरी, अगर तू आज उनके विवाह पर अपने पति का व्याख्यान सुनती, तो हैरान रह जाती। हद कर दी उसने। बड़ा ज्ञानी आदमी है!" वह बड़ी खुश हुई। जब कभी उसका चौदह वर्ष का लड़का शाम को उसे बांस के पुल पर मिलता और उससे टोकरा ले लेता, तो वह बड़ी खुश हो जाती और उसका मन पति के प्रति कृतज्ञता से

अगले



भर जाता ।

एक बार वह अपने घर के सामने थान पर बैठी अपने बच्चों से बातें कर रही थी कि एक शराबी सड़क पर आ निकला और कामातुर दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा । बच्चे डरकर अंदर भाग गये । को-हसिन घर से निकला और बगलों में हाथ दबाकर थान पर खड़ा हो गया । उसे देखते ही शराबी की आंखें बदल गयीं और वह लड़खड़ाते पैरों से चल दिया । मा-पा ने सोचा, अगर आज मेरा पति यहां न होता, तो मेरा भयंकर अपमान हो जाता ।

मा-पा सैंतीस वर्ष की थी और को-हसिन उससे छः वर्ष बड़ा था । इतनी उम्र तक को-हसिन ने कोई काम नहीं किया। लोग उसे कहते, तू तो अपनी औरत के सिर पर पलता है । उसे यह सुनकर दुःख होता। इन तानों से चिढ़कर उसने काम करने का निश्चय किया । उसने अपने चाचा के बेटों से पैसे उधार लिये और बांसों का व्यापार शुरू किया । पर उसे घाटा आया । अगली बरसात में उसने काश्तकारी शुरू की, तो पैर में फाल लग गया और पंद्रह दिन जख्म ठीक होने में लग गये ।

मा-पा पहले की तरह बाजार जाती रही। बड़ा लड़का धर्मशाला के स्कूल में पढ़ने चला जाता और छोटे दोनों बच्चे इमली के पेड़ों तले खेलते रहते । दूसरे घरों के आदमी कुछ-न-कुछ काम करते । पर को-हसिन बैठा प्याले-पर-प्याला चाय पीता रहता और बच्चों को खेलते हुए देखता रहता ।

कभी-कभी काम न करने पर उसे खेद



चित्रकार : टी. पु. राणा

और ग्लानि होती, तब वह सोचता कि अगर मैं भिक्खु बन जाऊं, तो यह ग्लानि खत्म हो जायेगी और शरीर भी सुखी हो जायेगा। अभी तो बच्चों को चावल उबाल-कर खिलाने पड़ते हैं......फिर परलोक भी संवर जायेगा ? वह भिक्षापात्र पकड़कर अपने घर आ जाया करेगा और इस तरह मा-पा और बच्चों को मिल जाया करेगा।

मा-पा तो अनपढ़ थी, उसे कुछ ज्ञान नहीं था। वह तो मरकर नरक में ही जायेगी। इस बात से उसे अपनी पत्नी पर तरस आता और उसका जी चाहता कि वह उसे भी धर्म का ज्ञान दे। आखिर उसने दिल मजबूत करके अपनी पत्नी से कह दिया कि मैं भिक्खु बनने जा रहा हूं।

को-हसिन को विहार में प्रवेश किये तीन महीने हो गये थे। मा-पा की मौसी, जो बच्चों का खयाल रखने और उसकी सहा-यता करने के लिए आयी हुई थी, वापस अपने घर जाने के लिए उतावली हो गयी।

"तू यह संन्यास छोड़कर घर कब लौटेगा ?" उसने एक दिन घर आये भिक्खु से पूछा।

भिक्खु ने जवाब में संन्यास के पक्ष में अनेक ग्रंथों के उदाहरण दिये। मौसी को ग्रंथों की कोई बात समझ में न आयी। उसे केवल यह दुःख था कि वह स्वयं बुरी तरह फंस गयी थी। कुछ दिनों में भिक्खु को तीन महीनों के लिए गुफा में चला जाना था। तीन महीने को-हसिन को देखना कठिन हो जायेगा।

मौसी ने मा-पा को अपने पास बुलाया और कोई सलाह की और फिर दोनों एक साथ हंस पड़ीं।

सुनहरी धूप ने प्रातःकालीन आकाश पर अपना रंग चढ़ाया हुआ था। इमली के पेड़ पर पक्षी बोल रहे थे। मा-पा आज बाजार न गयी। वह घर ही में रांधने-पकाने में लगी रही। फिर उसने नहाकर शरीर पर सुगं-धित पाउडर लगाया। मुंह पर भी पाउडर मला। अपने चेहरे को सुंदर लगनेवाले बाल गूंथे। पान खाकर अधरों को लाल किया। उसने सफेद रेशमी चोली पहनी और मोटे लाल फूलों वाला पेटीकोट। बच्चों ने भी धुले हुए कपड़े पहन रखे थे। घर का सारा सामान बंधा हुआ था।

दस बजे भिक्खु महाराज आये। उनके साथ उनका बड़ा लड़का था, जो धर्मशाला में पढ़ता था। वे डरते थे कि उनकी पत्नी

और मौसी उन्हें फिर आज संन्यास छोड़ देने के लिए कहेंगी। जब वे और निकट आये, तो अपने दरवाजे एक बैलगाड़ी खड़ी देखी। अंदर घुसे तो सारा सामान बंधा हुआ पड़ा था। मौसी ने चटाई बिछा दी और वे बैठ गये। पर पत्नी कहीं दिखाई नहीं दे रही थी।

कुर देर के बाद मा-पा थाली में खाना लेकर आ गयी। उदास आंखों से उसने खाना उसके सामने रख दिया। भिक्खु ने नजर भरकर उसकी ओर देखा। उसने बड़े सुंदर कपड़े पहन रखे थे। को-हसिन को बड़ा आश्चर्य हुआ। पर उसके मन का सारा बल अपने-आपको मजबूत करने में लग रहा था, ताकि जब मा-पा उसे संन्यास छोड़ने के लिए कहे, तो वह झट इन्कार कर सके।

खाना खाने के बाद मा-पा थाली उठाकर ले गयी और आदर से जरा दूर होकर बैठ गयी। भिक्खु कथा कहने लगा, तो मा-पा ने मौसी से कहा—"मौसी अभी बैल-गाड़ी वाला नहीं आया।"

साधु कथा आरंभ न कर सका। उसने पूछा—"मा-पा, यहां हो क्या रहा है?"

मा-पा ने बिना आंखें ऊंची किये ही कहा—"भिक्खु महाराज, सारी बात सुनें। मौसी अपने गांव वापस जाना चाहती है। अगर वह चली जायेगी, तो मैं अकेली दोनों काम कैसे करूंगी—बाजार जाकर सौदा भी बेचना और बच्चों को संभालना। इसलिए मैं भिक्खु महाराज से यह आज्ञा मांगती हूं कि वे मुझे और छोटे दो बच्चों को मौसी के साथ उसके गांव जाने दें। बड़ा लड़का भिक्खु महाराज के पास ही रहेगा।"

फिर उसने अपने बड़े लड़के से कहा—"पुत्र, तू यहां भिक्खु महाराज के पास ही रह।" और गालों पर गिरा आंसू पोंछ लिया।

भिक्खु विचारों में डूब गया।

"भिक्खु महाराज की यदि इच्छा हो, तो वे सारी उम्र भिक्खु रह सकते हैं। उनकी दुनियादार बीवी किसी-न-किसी तरह रोटी कमाकर खा लेगी। भिक्खु की दुनिया और उसकी दुनिया अलग-अलग है। दोनों के बीच बहुत बड़ा फासला है। आइंदा उन दोनों के बीच एक भिक्खु और एक गृहस्थ स्त्री का संबंध ही रह सकता है। अगर उसे कोई अपनाने को तैयार हुआ, तो वह दूसरी शादी कर लेगी। इसलिए वह अब सारी बात साफ कर देना चाहती है, ताकि बाद में कोई झंझट न पड़े।"

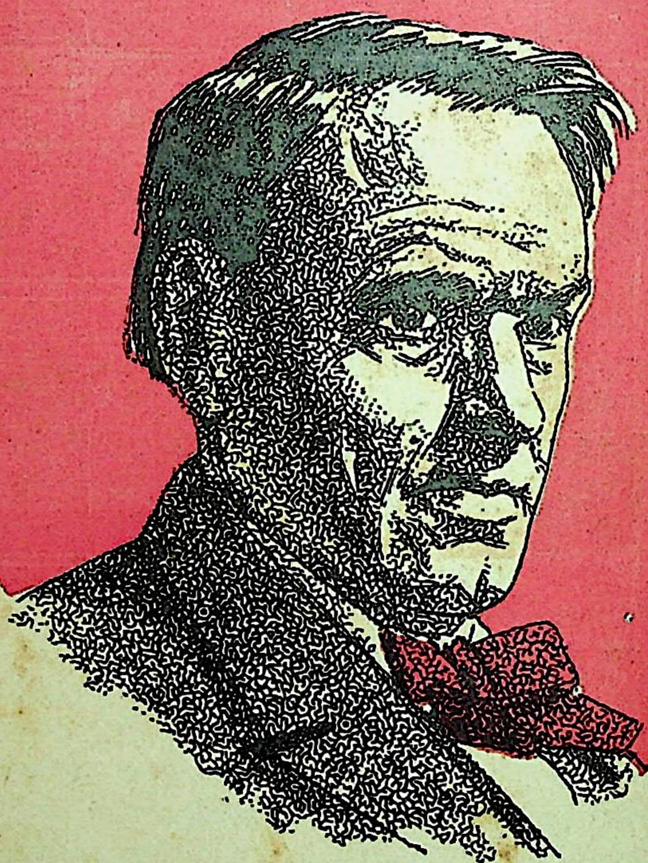
आश्चर्य से भिक्खु की चीख निकल गयी। मा-पा ने थोड़ा-सा ध्यान से ऊपर देखा। भिक्खु कांपते हाथों से अपने कपड़ों को टटोल रहा था। फिर उसने मा-पा की ओर देखा।

मा-पा ने फिर बात बढ़ायी—"यह बात मैं दोनों पक्षों के भले के लिए कह रही हूं। भिक्खु निश्चिंत होकर अपने धर्म की साधना में लगा रह सके और मुझे कोई अपनाने को तैयार हुआ......"

"नहीं-नहीं, तेरी मौसी के गांव में बड़े शराबी रहते हैं। मैं पुनः गृहस्थ में आ जाता हूं!" को-हसिन ने कहा और मा-पा पुनः को-हसिन की पत्नी बन गयी।

अनुवादक—सुरजीत





अर्विंग स्टोन लिखित 'डैरो फार डिफेन्स' का एक अध्याय

न्याय के लिए

मान्यवर,

अप्रैल का नवनीत पढ़ा। इसमें आपने पृष्ठ ११३ से १२८ तक जो नया टाइप परीक्षण के तौर पर उपयोग किया है, उसके बारे में मेरी यह राय है :

हां, टाइप देखने में सुंदर और सुपाठ्य है। इसे पढ़ने में आंखों पर जोर नहीं पड़ता। समूचा अंक इस टाइप में छापना ठीक रहेगा।

नहीं, टाइप बहुत बारीक होने के कारण सुपाठ्य नहीं है। इसे पढ़ने में आंखों पर बहुत जोर पड़ता है। समूचा अंक इस टाइप में छापना ठीक नहीं होगा।

नाम ....

ग्राहक-संख्या M.Y./.5132..........

नोट : 'हां' या 'नहीं' में से आपकी जो भी राय हो, उसके आगे सही का निशान लगा दें।

Postage will
be paid by
addressee

BUSINESS REPLY CARD

No Postage
stamp necessary
posted in India.

BOMBAY GRANT ROAD.
P. O. PERMIT No. 365

NAVANEET PRAKASHAN LIMITED
341, Tardeo,
BOMBAY-34.

अच्छा वकील अपनी पूरी क्षमता लगाकर अपने मुवक्किल के हितों की रक्षा करता है; आदर्श वकील ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को अपना मुवक्किल मानता है, जिसके साथ अन्याय हुआ है, और उसे न्याय दिलाने के लिए आवश्यकता पड़ने पर वह अपने निजी हितों को भी खतरे में डालकर जूझता है। क्लैरेन्स सेवर्ड डैरो अमरीका का ऐसा ही आदर्श वकील था।

प्रस्तुतकर्ता : सुखबीर

वह हाल में से गुजरता हुआ आगे बढ़ा। उसके भारी, सशक्त कंधे आगे की ओर झुके हुए थे। वह सोच रहा था—"यह रेल्वे-कंपनी, जिसके खिलाफ मुझे लड़ना है, बहुत जबर्दस्त है। वह कांग्रेस (अमरीकी संसद्) और अदालतों को अपने काबू में रखने का प्रयत्न कर रही है; वह गवर्नरों और मेयरों का चुनाव करती है, और विधान-सभा और कौंसिल के मेंबरों को खरीदती है। और यह लड़ाई लड़ने के लिए मेरे पास बैंक में कुछ सौ डालर की छोटी-सी रकम ही है। आखिर मैं इस झंझट में क्यों पड़ूं?"

आगे बढ़ने पर उसने एक दफ्तर का दरवाजा खोला। शिकागो और उत्तर-पश्चिमी रेल्वे का अध्यक्ष मार्विन ह्यूइट अपनी मेज पर बैठा हुआ था। उसने गहरे रंग का सूट पहन रखा था। उसकी लंबी दाढ़ी को देखकर लगता था, जैसे वह पुराने जमाने का कोई दरवेश हो।

क्लैरेन्स डैरो उसकी इज्जत करता था; क्योंकि वह न्याय का सम्मान करता था। अभी एक साल पहले उसने अपनी इज्जत और मान-मर्यादा खतरे में डालते हुए, क्लैरेन्स डैरो के साथ मिलकर, गवर्नर आल्टजेल्ड से अपील की थी कि बम फेंकने के अपराध में पकड़े गये चार अराजकतावादी व्यक्तियों को माफ कर दिया जाये।

शिकागो और उत्तर-पश्चिमी रेल्वे का वकील बनने में डैरो के लिए अभी काफी देर थी। उसने ह्यूइट की फर्म में काम करना अभी शुरू ही किया था। वैसे ह्यूइट की फर्म में शामिल होना बहुत बड़ी बात थी। डैरो ने कभी सोचा भी नहीं था कि वह इतने बड़े शहर की इतनी बड़ी फर्म में वकालत करने लगेगा।

गरीबी से जूझते हुए वकालत की शिक्षा पूरी करने तक, उसने यही सोचा था कि अगर किसी छोटे-से शहर में सफलतापूर्वक वकालत करने लगूं तो भी बहुत बड़ी बात होगी। परंतु कुछ ऐसा संयोग हुआ कि वह सीधा शिकागो पहुंच गया और फिर मार्विन ह्यूइट की फर्म में उसे नौकरी मिल गयी। वहां उसका काम था, रेल-मजदूरों और रेल-दुर्घटनाओं में जख्मी हुए मुसाफिरों के खिलाफ रेल्वे-कंपनी की ओर से लड़ना।

ह्यूइट को डैरो का वकालत करने का सीधा-सादा तरीका बहुत पसंद था। दूसरे वकील मामले को उलझा देते; पर डैरो दोनों पक्षों का बड़े अच्छे तरीके से फैसला करा दिया करता था, जिससे दोनों ही पक्षों को तसल्ली हो जाती थी। व्यक्तिगत रूप से ह्यूइट डैरो को बहुत चाहता

था और उससे उसे बहुत बड़ी आशाएं थीं।

"बड़े गर्म दिखाई दे रहे हो आज क्लैरेन्स"? ह्यूइट ने अपने सामने खड़े डैरो की ओर मुंह उठाकर नर्मी से कहा।

"हां", डैरो ने कहा और तनकर खड़ा हो गया। उसका कद पूरे छः फुट था और वजन पौने दो सौ पौंड। जब वह तनकर खड़ा होता, तो कद-काठ में और भी बड़ा लगता। "हां", उसने फिर कहा– "रेल-मजदूरों की हड़ताल के खिलाफ अदालत ने आज ही सुबह जो आदेश दिया है, वह मैंने पढ़ा है। अदालत की नजर में हड़ताल करना अपराध है। यही नहीं, जो आदमी दूसरों को हड़ताल करने के लिए उकसाये, वह भी अदालत की नजर में अपराधी है।"

"अदालत के इस आदेश से दंगा-फसाद और खून-खराबी की वारदातें बंद होंगी। साथ ही, जायदाद नष्ट होने से बचेगी।" ह्यूइट ने गंभीर लहजे में कहा।

"मेरा खयाल है कि अमरीका एक स्वतंत्र देश है। यहां के निवासियों को इस बात का अधिकार है कि जब भी परिस्थितियां उन्हें असंतोषजनक प्रतीत हों, वे काम करना बंद कर दें। अगर उनकी अपनी चुनी हुई सरकार अदालत के जरिये यह कहती है कि हड़ताल करना गैरकानूनी है और उन्हें मजबूर करती है कि वे हर हालत में अपने मालिकों का काम करें, तो समझिये कि सरकार उनसे गुलामों का-सा सलूक कर रही है। अगर हम सचमुच एक प्रजातंत्रवादी देश में रह रहे हैं, तो मैं कहूंगा कि अदालत का यह आदेश गैरकानूनी है।"

"हम एक तकनीकी नुक्ते पर इस आदेश को कानूनी सिद्ध कर सकते हैं। रेल-मजदूरों को कोई अधिकार नहीं कि हड़ताल करके संयुक्त राज्य अमरीका की डाक को रोकें।" ह्यूइट ने वकीलों के अंदाज में कहा।

"अभी तीन दिन पहले शिकागो के डाक-विभाग के अधीक्षक ने केंद्रीय सरकार को तार द्वारा सूचित किया था कि डाक नियमित रूप से आ-जा रही है।" डैरो ने दलील दी और फिर कुछ रुककर कहा–"मिस्टर ह्यूइट, मैंने आपके साथ काम करते हुए उस षड्यंत्र के संबंध में बहुत कुछ जान लिया है, जो रेल-कंपनी ने अपने मजदूरों के खिलाफ रचा है। आपका क्या खयाल है, रेल-मजदूरों के नेता यूजीन डेब्स ने 'अमरीकन रेल्वे यूनियन' क्यों संगठित की है? आपके इस षड्यंत्र के खिलाफ लड़ने के लिए ही। कुछ ही दिनों में डेब्स और उसके दूसरे साथी पकड़कर जेल में ठूंस दिये जायेंगे। पर असल में जेल जाना चाहिये आपके 'जनरल मैनेजर्स एसोसिएशन' के अधिकारियों को।"

कमरे में कुछ क्षणों के लिए स्तब्धता छा गयी। डैरो की सदा मुस्कराती रहने वाली, कोमल, नीली आंखें कठोर हो गयी थीं।

"मैं यहां से अपनी नौकरी छोड़कर जा रहा हूं, मिस्टर ह्यूइट, ताकि मैं यूजीन डेब्स और 'अमरीकन रेल्वे यूनियन' की ओर से लड़ सकूं।"

ह्यूइट ने सख्त नजर से डैरो को देखा। भला यह कैसा वकील है, जो इतनी अच्छी नौकरी छोड़कर इतनी शक्तिशाली रेल्वे-कंपनी के खिलाफ लड़ना चाह रहा है।

"मैं जानती हूं क्लैरेन्स," आखिर ह्यूइट ने कहा–"कि आज तुम्हारी जो सात हजार डालर सालाना तनख्वाह है, वह कोई बड़ी रकम नहीं है–तुम्हारी योग्यता को देखते हुए तो कम ही है। पर अगले साल तुम्हारी तनख्वाह दस हजार हो जायेगी, और अगले तीन-चार बरस में बीस हजार तक पहुंच जायेगी। मजदूरों की यूनियनें तुम्हें कुछ नहीं दे सकेंगी। जब यह मुकद्दमा खत्म हो जायेगा और हम हड़ताल को तोड़ डालेंगे और 'अमरीकन रेल्वे यूनियन' का नामोनिशान तक मिटा देंगे, तो बाद में तुम्हें कोई मुवक्किल नहीं मिलेगा। शिकागो का कोई भी व्यापारी तुम्हारे पास आने से संकोच करेगा। तब तुम

वकील के रूप में कैसे गुजारा करोगे? सो, मैं सलाह दूंगा कि हमारे साथ ही रहो। हम तुम्हें एक दिन वकालत के पेशे की चोटी पर पहुंचा देंगे। इस राज्य का गवर्नर, या संयुक्त राज्य अमरीका का सेनेटर भी बनवा देंगे।"

"नहीं, मैं रेल-मजदूरों की खातिर लड़ूंगा," डैरो ने दृढ़ता से कहा। फिर वह मुस्कराया, उसने ह्यूइट से हाथ मिलाया और त्यागपत्र का कागज देकर चला गया।

× × ×

अगले दिन, ४ जुलाई को डैरो सुबह साढ़े छः बजे उठा। उसने अपनी पत्नी और पुत्र के साथ नाश्ता किया और घर से बाहर निकला।

वह कुछ ही दूर गया था कि अचानक बहुत-से कदमों की आहट उसके कानों में पड़ी। ऐसा लगा, जैसे कोई फौज कवायद करती हुई आ रही हो। हां, वह फौज की टुकड़ी ही थी, उसने कुछ आगे बढ़ने पर देखा। इसे अमरीका के युद्ध-मंत्री ने हड़ताल को रोकने के लिए भेजा था।

उसके एक दिन पहले, 'अमरीकन रेल्वे यूनियन' के अध्यक्ष यूजीन डेब्स ने डैरो से कहा था—"समाजवाद में मेरा विश्वास नहीं है; पर मुझे मजबूर होकर इस नतीजे पर पहुंचना पड़ा है कि देश के लिए यह अधिक हितकारी होगा कि सरकार पर रेल्वे-कंपनी का अधिकार हो, इसके बजाय रेल-कंपनी पर सरकार का अधिकार हो।"

इस सिलसिले में डैरो ने कानून की गहरी छानबीन की। कानूनी नुक्ते से शिकागो में केंद्र-सरकार की ओर से फौज का भेजा जाना विधान के विपरीत था। केंद्र-सरकार तब तक किसी राज्य में अपनी फौज नहीं भेज सकती थी, जब तक कि वहां का गवर्नर उसे भेजने के लिए न कहे। शिकागो के गवर्नर आल्टजेल्ड नें केंद्र से फौज भेजने के लिए कोई प्रार्थना नहीं की थी।

शिकागो में किसी किस्म की कोई गड़बड़ नहीं थी—न लड़ाई-झगड़ा हो रहा था, न लूट-मार हो रही थी। 'अमरीकन रेल्वे यूनियन' ने शांतिपूर्वक हड़ताल करने का वादा किया था और कहा था



अदालत के आंगन में

ओनोरा दोम्येर अपने जीवन-काल में उपेक्षित रहा, लेकिन अब वह पिछली सदी का सबसे निर्भीक और सशक्त व्यंग्यचित्रकार कहलाता है। न्यायालय और वकालत पर उसने अनेक चुभते हुए व्यंग्यचित्र बनाये थे, जिनमें से दो इस लेख के साथ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

कि रेल्वे का किसी किस्म का नुकसान नहीं होने दिया जायेगा। उसने अपना वादा निभाया था।

हड़ताल शुरू होने के दिन से तीन सौ मजदूर पुलमैन के कारखानों की रक्षा कर रहे थे, ताकि वहां के अधिकारियों को किसी खतरे की आशंका न हो। अधिकारियों ने पुलिस तक को खबर नहीं दी थी, कि उन्हें किसी बात का खतरा है और उनकी सुरक्षा का प्रबंध होना चाहिये। पुलिस सुपरिन्टेंडेंट का भी कहना था कि एक रात पहले तक शहर में

अदालती सज्जन : दोम्येर



आपको सारी बात, बिना कुछ भी छिपाये साफ-साफ अपने वकील को बता देनी चाहिये। उसमें आवश्यक घोटाला वकील स्वयं कर लेगा। —मैनजोन

किसी किस्म की कोई गड़बड़ नहीं हुई थी।

फिर भी केंद्र-सरकार की ओर से वहां फौज भेजी गयी थी, ताकि देश को 'खतरे' से बचाया जाये। पर असलियत यह थी कि उसके आने से खतरा पैदा हो गया था और उसने शांतिपूर्ण हड़ताल को तोड़ने का काम शुरू कर दिया था। डैरो ने सोचा, यह कितना बड़ा व्यंग्य है कि अमरीका के स्वतंत्रता-दिवस के दिन फौज हड़ताल तोड़ने के लिए आयी थी। उसका तो वहां आना ही गैरकानूनी था।

× × ×

शहर में कुछ देर घूमने के बाद डैरो पुलमैन-नगर पहुंचा, जहां से सारी गड़बड़ शुरू हुई थी। उसकी नजर में जार्ज पुलमैन इस बात का जीता-जागता सबूत था कि अमरीका में लाखों-करोड़ों डालर कमाने के लिए बस किसी एक बढ़िया मौलिक विचार की जरूरत है।

जब पुलमैन बीस साल का था और अपने भाई के गाड़ियों के डिब्बे बनाने वाले कारखाने में काम करता था, तो उसे पहली बार रात के समय गाड़ी में सफर करना पड़ा था। यद्यपि उसे स्लीपर-कोच में सोने के लिए पूरी सीट मिल गयी थी, पर उसने बहुत बेचैनी महसूस की थी। वह सूट-बूट पहने ही लकड़ी की सीट पर लेट गया था और ठंड से बचने के लिए उसने ओवरकोट ओढ़ लिया था।

एक व्यक्ति उसके ऊपर की सीट पर लेटा हुआ था, और एक व्यक्ति नीचे की सीट पर। उस हालत में उसे बड़ी बेचैनी महसूस हो रही थी। ठंडी हवा को अंदर आने से रोकने के लिए डिब्बे की सभी खिड़कियां बंद थीं। डिब्बा यात्रियों की गर्म-गर्म सांसों से भरा हुआ था और उसमें घुटन महसूस हो रही थी। शोर भी बहुत हो रहा था। ऐसी हालत में सो सकना संभव नहीं था। बीस साल से उस डिब्बे में कोई सुधार नहीं हुआ था। लोग सफर करने से डरते थे।

उस एक रात के सफर में पुलमैन ने एक ऐसे डिब्बे की कल्पना की, जिसमें सफर करते हुए यात्री को ऐसा महसूस हो, जैसे वह अपने घर में अपने विस्तर पर बड़े आराम से सोया हुआ है। डिब्बा सुंदर भी हो और आरामदेह भी। उसने कल्पना के इस डिब्बे को वास्तविक आकार देने की योजना बना डाली। फिर व्यापारिक दृष्टि-कोण के अपने एक मित्र से उसका जिक्र किया।

पुलमैन खुद बहुत कुशल कारीगर था। एक ही साल में उसने वैसा डिब्बा तैयार कर लिया। यह आम डिब्बों से एक फुट ज्यादा चौड़ा था. और ढाई फुट ज्यादा ऊंचा। और उसके अंदर यात्रियों के लिए हर प्रकार की सुविधा का प्रबंध था। उसकी हर चीज आरामदेह ही नहीं, सुंदर भी थी। उसका नाम पुलमैन ने 'पायोनियर' रखा।

वह एक आदर्श डिब्बा था। पर वह इतना बड़ा बन गया था कि उसके लिए प्लैटफार्मों को पीछे हटाना, पुलों को ऊंचा करना जरूरी था। पर पुलमैन हार मानने वाला नहीं था। बजाय डिब्बे का आकार घटाने के उसने कहा—"यह डिब्बा ऐसा ही रहेगा; अगर बदलना होगा, तो अमरीका की पूरी रेल्वे को बदलना होगा।"

उसका कथन सच होकर रहा। कुछही वर्षों में अमरीका में चारों ओर जो नयी रेलें बिछीं और नये स्टेशन व पुल बने, वे उस डिब्बे को नजर में रखकर ही बनाये गये। तब पुलमैन ने वैसे डिब्बों वाली गाड़ियां बनानी शुरू कीं और 'पुलमैन पैलेस कार कंपनी' की स्थापना हुई।

गाड़ी में पुलमैन-नगर की ओर जाते हुए डैरो एक छोटी-सी किताब पढ़ रहा था, जिसका नाम था 'पुलमैन की कहानी'। उसमें एक नये आदर्श शहर की कल्पना का वर्णन था। शहर में बारह हजार आदमी रहेंगे। उसमें हर प्रकार की सुवि-धाओं से सज्जित सुंदर घर होंगे। शहर में बाग होंगे, प्रकृति की सुंदरता होगी, ताजी हवा और खुली रोशनी होगी।

पुलमैन-नगर का स्टेशन आने पर डैरो गाड़ी से उतरा और उस शहर में दाखिल हुआ, जिसे पुलमैन ने अपने मजदूरों के लिए बनाया था। डैरो को वह सचमुच बहुत सुंदर शहर लगा, एक आदर्श शहर। तब उसने सोचा कि भला वैसे शहर में रहने वाले लोग अपने मालिक के खिलाफ हड़ताल क्यों कर रहे हैं?

डैरो वहां के कुछ घरों में जाकर लोगों से मिला। उसने उन्हें बताया कि मैं 'अमरीकन रेल्वे यूनियन' के वकील की हैसियत से यहां आया हूं। कुछ ही देर में उसे पता लग गया कि पुलमैन-नगर तो एक विशाल धोखा था। बहुत ही सस्ते किस्म के मकान बने हुए थे, जिनमें न हवा आती थी, न रोशनी। घरों में पानी का भी विशेष प्रबंध नहीं था। और उन घरों के लिए मजदूरों को साधारण किराये से पच्चीस प्रतिशत अधिक किराया देना पड़ता था।

पड़ोस में कम किराये के वैसे ही मकान मिलते थे; मगर पुलमैन के कारखानों में मजदूरों को इस शर्त पर नौकरी दी जाती थी कि वे उसके मकानों में ही रहेंगे। मकानों का किराया सीधे उनकी तन-ख्वाहों में से काट लिया जाता था। मकानों की मरम्मत मजदूरों को अपने खर्च पर करानी पड़ती थी। मजदूरों को हमेशा यह भी खतरा रहता था कि उन्हें पंद्रह दिन का नोटिस देकर किसी भी समय वहां से निकाला जा सकता है।

डैरो घूमता हुआ शहर के पिछले भाग में गया। वहां घर गैरकानूनी तौर पर बनाये गये थे, जिनमें एक साथ चार-चार, पांच-पांच परिवार रहते थे, और हर परिवार जो किराया देता था, वह आम किराये से पच्चीस-तीस प्रतिशत ज्यादा था। उतने किराये में हर परिवार स्वतंत्र रूप से पड़ोस के इलाकों में बढ़िया घर लेकर रह सकता था। कुछ घरों की उनसे भी बुरी हालत थी और उनमें रहने वाले मजदूर जानवरों की-सी जिंदगी बिता रहे थे। वे जैसे नरक में जी रहे थे।

इससे भी वड़ी मुसीवत यह थी कि पुलमैन ने कुछ जासूस वहां छोड़ रखे थे, जो उसे मजदूरों की हर वात का पता देते थे। छोटी-सी शिकायत होने पर भी मजदूरों को वहां से निकाल दिया जाता था। वहां रहते हुए मजदूर एक तरह से गुलामी की जिंदगी विता रहे थे।

परंतु ११ मई १८९४ की वह हड़ताल इन वातों के कारण नहीं हुई थी। कारण कुछ और ही था। सन १८९३ के वाद जो आर्थिक संकट आया था, उसके कारण सारे देश में व्यापार मंदा पड़ गया था। इसका पुलमैन के व्यापार पर भी असर पड़ा था। उसे पचास हजार डालर का नुक्सान हुआ था। वह नुक्सान पूरा करने के लिए उसने मजदूरों की तनख्वाहों में कटौती की। पर इससे साढ़े तीन करोड़ डालर की उस कंपनी का पचास हजार डालर का घाटा पूरा न हुआ। सो और कटौती हुई।

कई वर्षों से वहां काम करने वाला जो मजदूर रोज के ३.२० डालर कमाता था, उसकी दैनिक मजदूरी पहले २.६० डालर, फिर २.२० डालर, फिर १.२० डालर कर दी गयी। पर काम उनसे पहले से भी ज्यादा लिया जाने लगा। इस १.२० डालर रोजाना मजदूरी में से मकान का किराया काट लिया जाता था, और इस तरह मजदूरी एक डालर से भी कम रह जाती थी। उस मजदूरी में पूरे परिवार का गुजारा होना असंभव था।

खुराक की कमी के कारण मजदूरों की सेहत गिरने लगी। कई मजदूर तो इतने कमजोर हो गये थे कि काम करते हुए ही वेहोश होकर गिर पड़ते थे। इतना होने पर भी जार्ज पुलमैन अपने मकानों का किराया कम करने को तैयार नहीं था।

आखिर मजदूरों ने संघटन किया और उनके प्रतिनिधियों ने अपनी शिकायतें लेकर पुलमैन से मिलना चाहा। अलग-अलग कारखानों से ४३ प्रतिनिधि चुने गये थे। पर पुलमैन उनसे वात तक करने के लिए तैयार नहीं हुआ। अगले दिन उन सभी प्रतिनिधियों को नौकरियों से जवाव मिल गया और उन्हें मकान खाली करने की नोटिस दे दी गयी।

तव मजदूरों ने हड़ताल करने का फैसला किया। वे शांतिपूर्वक कारखानों से वाहर निकल आये। एक वार फिर उन्होंने पुलमैन से वात करने के लिए प्रतिनिधि भेजे। पर पुलमैन ने मिलने से इन्कार कर दिया। उसने कहला भेजा—"मजदूरों का इस वात से कोई संबंध नहीं है कि उनकी तनख्वाह कितनी होनी चाहिये; इसका फैसला करना कंपनी का काम है।"

शिकागो के मेयर ने पुलमैन के मजदूरों के हालात का पता लगाया और हड़तालियों से हमदर्दी जाहिर की। अमरीका के ५६ शहरों के मेयरों ने पुलमैन को लिखा कि वह मजदूरों से वातचीत करके कोई समझौता करे। पर पुलमैन ने किसी की एक न सुनी।

डैरो ने पुलमैन-नगर से लौटते समय सोचा कि अपना केस तैयार करने के लिए काफी मसाला मिल गया है। वह गाड़ी की खिड़की से पुलमैन के उस आदर्श शहर को तव तक देखता रहा, जव तक कि वह उसकी आंखों से ओझल नहीं हो गया। वह सोच रहा था कि अगर कहीं पुलमैन यह शहर वनाने में भी उसी विशालहृदयता, लोगों को आराम पहुंचाने की तत्परता और साहस का सवूत देता, जो उसने रेलगाड़ी का 'पायोनियर' डिव्वा वनाने में दिया था, तो वह अपने युग का महान व्यक्ति माना जाता और मानव-सभ्यता को आगे वढ़ाने में उसका वहुत वड़ा हिस्सा होता।

गाड़ी से उतरकर डैरो ने छः-सात समाचार-पत्र खरीदे। सभी समाचार-पत्रों में पुलमैन की फोटो छपी थी और साथ ही यह समाचार भी था कि हड़ताल करने वाले 'अराजकतावादी' मजदूर उस पर हमला करना चाहते थे। हड़तालियों से हमदर्दी जताने वाले गवर्नर आल्टजेल्ड को सभी अखवारों ने दिल खोलकर गालियां दी थीं।



डैरो के दिल में आल्टजेल्ड के लिए बहुत सम्मान था। वह पहले सुपीरियर कोर्ट का जज था। फिर शिकागो का मेयर चुना गया था और फिर इलिनाय राज्य का गवर्नर। उसका बचपन बेहद गरीबी और कष्ट में बीता था। इसीलिए उसके दिल में गरीबों के लिए प्यार और हमदर्दी थी। वकील के तौर पर डैरो को उससे बड़ी प्रेरणा मिली थी।

× × ×

गाड़ी से उतरकर डैरो सीधा आल्टजेल्ड के यहां गया।

"आओ, क्लैरेन्स," गवर्नर आल्टजेल्ड ने उसका स्वागत करते हुए कहा—"मैंने सुना है कि तुमने डेब्स का मुकद्दमा लड़ने के लिए नौकरी से इस्तीफा दे दिया है। मेरा खयाल है कि यह तुम्हारा अंधा आदर्शवाद नहीं है। पर कुर्बानी के रास्ते पर चलने में दुःख-ही-दुःख है, बेटा!"

"इस बात को आपसे ज्यादा अच्छी तरह और कौन समझ सकता है?" डैरो ने सोचा और उसकी नीली आंखों में चमक आ गयी। फिर उसने कहा—"आप जानते हैं, गवर्नर, कि लोग दर्द से छुटकारा पाने के लिए कई काम करते हैं। एक आदमी सड़क के किनारे बैठे हुए भिखारी को देखकर एकाएक रुक जाता है। उसके दिल में टीस उठती है। उसे अपनी सामाजिक जिम्मेदारी का एहसास होता है। सो वह भिखारी को दस सेंट देकर अपने दिल में उठने वाली टीस से छुटकारा पा लेता है। दस सेंट में वह छुटकारा खरीदता है। इसी तरह, मैं भी जब डेब्स और उस जैसे अन्य लोगों को देखता हूं और सोचता हूं कि उन्हें कई-कई साल जेल में बिताने पड़ेंगे, तो मेरे मन में एक टीस उठती है और मैं भी उनकी मदद करके अपने दिल की टीस से छुटकारा पाना चाहता हूं।"

आल्टजेल्ड मुस्कराया। उसने डैरो के कंधे पर हाथ रखा और फिर पास पड़ी कुर्सी पर इस तरह बैठ गया, जैसे वह बहुत थक गया हो। उसने डैरो को अपने पास बैठने का संकेत किया।

"आज सुबह मैंने केंद्र की ओर से आयी हुई फौज शिकागो में देखी है", डैरो ने कहा।

"हां," आल्टजेल्ड बोला—"मैं इसके विरोध में इसी समय राष्ट्रपति क्लीवलैंड को लिख रहा हूं।"

"रेल्वे-कंपनी की यह बड़ी गंदी राजनीतिक चाल है कि पहले तो वह आपके बारे में कहती है कि आप गवर्नर के तौर पर उसकी जायदाद की रक्षा करने से इन्कार कर रहे हैं, फिर वह अटार्नी जनरल आल्ने की मदद से राष्ट्रपति क्लीवलैंड से कहकर केंद्रीय फौज मंगवाती है। इस प्रकार आपको रास्ते से हटाकर उसने स्थिति को अपने हाथ में ले लिया है।"

"हां, यह तो है। पर और भी बातें हैं। मजदूर शांतिपूर्वक अपनी विजय की ओर बढ़ रहे हैं। उनकी मांगें जायज हैं और आम जनता को उनसे हमदर्दी है। सिर्फ एक ही बात उनकी हड़ताल को असफल बना सकती है, और वह है दंगा-फसाद। रेल्वे-कंपनी जानती है कि केंद्र की फौज के यहां आने से मजदूर भड़क सकते हैं, और दंगे हो सकते हैं। अगर मजदूर दंगे नहीं करेंगे, तो खुद कंपनी दंगे करवा देगी। ज्यों ही कोई फौजी मारा गया या कोई गाड़ी तोड़ी गयी, हड़तालियों की हार हो जायेगी। तब सभी समाचार-पत्र और देश के आम नागरिक उनके खिलाफ हो जायेंगे। इस समय भी समाचार-पत्र इस हड़ताल को अराजकता का नाम दे रहे हैं और देश में इन्कलाब आने का खतरा बता रहे हैं।"

डैरो ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

कुछ और बातें करने और सही स्थिति का पता लगाने के बाद जब डैरो जाने के लिए उठा, तो आल्टजेल्ड ने कहा—"सारे हालात पर नजर रखना और मुझे खबर देते रहना। अब तो हम दोनों इस काम में साझेदार हैं, और यह समझ लो कि हमारे बुरे दिन आने वाले हैं।"

डैरो वहां से शिकागो के दक्षिणी भाग में गया और उसने उस इलाके का दौरा किया। रेल्वे-लाइन के दोनों ओर सिपाही देखे जा सकते थे, जो लाइन की रक्षा कर रहे थे। डैरो को वे नये भर्ती किये हुए सिपाही लगे। उसने कुछ ही देर में उनसे बातें करके पता लगा लिया कि वे कौन लोग हैं। उनमें से अधिकांश आवारागर्द, चोर, उचक्के, जेबकतरे, शराबी और मुजरिम किस्म के लोग थे, जिन्हें रेल्वे की रक्षा करने के लिए हाल ही में भर्ती किया गया था। उनमें से हर एक की कमर में रिवाल्वर लटक रहा था और उन्होंने सरकारी वर्दी पहन रखी थी।

डैरो यह सब देखकर आश्चर्यचकित रह गया।

फिर कुछ ही देर के बाद उसने एक मालगाड़ी को रेल्वे-यार्ड से निकलते देखा। और जब उसने देखा कि उसे केंद्रीय फौज के सिपाही चला रहे हैं, उसकी हैरानी की हद न रही। कहां तो वह फौज राष्ट्रपति क्वीवलैंड की ओर से लोगों के जान-माल की रक्षा करने आयी थी और कहां अब वह गाड़ी चला रही थी! एक तरह से वह हड़ताल तोड़ने का यत्न था। उस मालगाड़ी को वहां खड़े हड़तालियों ने कई तरह से रोकने की कोशिश की। जब भी वे रोकते, गाड़ी में से फौज उतरकर उन्हें भगा देती।

चारों ओर तनाव बढ़ता जा रहा था। आखिर रात के समय दंगा हो ही गया। कुछ गाड़ियों में आग लगा दी गयी। मारधाड़ होने लगी। फौज ने गोली चलायी। तीन आदमी गोलियों से मारे गये। बहुत-से संगीनों से जख्मी हुए, जिनमें स्त्रियां भी थीं। शिकागो की सड़कों पर खून बहने लगा। इसी बीच में डेब्स को पकड़कर जेल में डाल दिया गया।

डैरो चार दिन तक अपनी आंखों से सब कुछ देखता रहा था। अब और कुछ देखने की उसे जरूरत नहीं थी। अब वह सिर्फ एक वकील था और उसका मुवक्किल जेल में बंद था।

× × ×

डैरो जेल में डेब्स से मिलने गया। जिस कोठरी में डेब्स कैद था, उसमें पांच कैदी और थे। उनके कपड़े फटे थे और वे लगभग अर्धनग्न अवस्था में थे। मच्छरों और कीड़े-मकोड़ों के काटने से उनके शरीर से खून रिस रहा था। नीचे फर्श पर बड़े-बड़े चूहे इधर-उधर भाग रहे थे।

"बेहतर होगा कि बेंच पर बैठ जाओ और अपने पांव फर्श से ऊपर उठाकर रखो," डेब्स ने डैरो से कहा—"चूहे बड़े खतरनाक हैं। मैं खुश-किस्मत हूं कि मुझे इस कोठरी में रखा गया है। यहां कुछ ऐसी भयानक कोठरियां भी हैं, जहां फांसी की सजा पाने वाले अपराधियों को रखा जाता है।"

कुछ क्षणों के लिए डैरो और डेब्स चुप बैठे रहे और बाहर से आने वाली आवाजें सुनने लगे। अखबार बेचने वाले लड़के चिल्ला रहे थे—"रेल हड़ताल टूट गयी! डेब्स की बगावत के बारे में पढ़ो।"

"डेब्स की बगावत?" डैरो ने कटुता-भरे स्वर में कहा—"देखा, आपने अमरीकी सरकार के खिलाफ बगावत की है और आप सभ्यता को खाक में मिला देना चाहते हैं!"

डेब्स मुस्कराया।

"एक और मजेदार बात आपको बताऊं?

स्वतंत्रता की सीमा

स्वतंत्रता का अर्थ है—कानून-सम्मत काम करने का अधिकार। अगर नागरिक को कानून द्वारा निषिद्ध काम करने का अधिकार हो, तो वह स्वतंत्रता से हाथ धो बैठेगा, क्योंकि तब बाकी सब नागरिकों को भी वैसा ही अधिकार होगा। —मोंतेस्क्यू

कोलगेट से सांस की दुर्गंध रोकिये और दंत-क्षय का दिनभर प्रतिकार कीजिये !



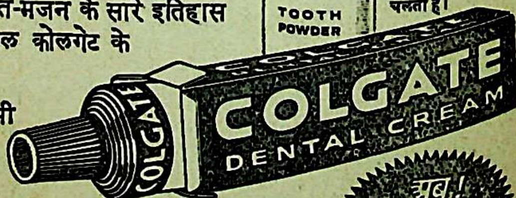
क्यों कि : एक ही बार दांत साफ़ करने पर कोलगेट डेंटल क्रीम मुंह में दुर्गंध और दंत-क्षय पैदा करने वाले ८५ प्रतिशत तक रोगाणुओं को दूर कर देता है।

वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि १० में से ७ लोगों के लिए कोलगेट सांस की दुर्गंध को तत्काल खत्म कर देता है, और कोलगेट-विधि से-खाना खाने के तुरंत बाद दांत साफ़ करने पर अब पहले से अधिक लोगों का... अधिक दंत-क्षय रुक जाता है। दंत-मंजन के सारे इतिहास की यह बेमिसाल घटना है। केवल कोलगेट के पास यह प्रमाण है।



आप को यदि पावडर पसंद हो तो कोलगेट टूथ पावडर से भी ये सभी लाभ मिलेंगे—एक डिब्बा महीनों चलता है।

इसका पिपरमिंट जैसा स्वाद भी कितना अच्छा है—इसलिए बच्चे भी नियमित रूप से कोलगेट डेंटल क्रीम से दांत साफ़ करना पसंद करते हैं।



अब ! सुपर साइज़ खरीदिये पैसा बचाइये !

ज़्यादा साफ़ व तरोताज़ा सांस और ज़्यादा सफ़ेद दांतों के लिए... दुनिया में अधिक लोगों को दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट ही पसंद है।

DC.G.38 HN

न्यूयार्क शहर के एक स्कूल में एक अध्यापिका ने अपनी कक्षा में वाद-विवाद का विषय ही यह रखा है कि डेब्स अमरीका का सबसे खतरनाक आदमी क्यों है?"

सुनकर डेब्स हैरान रह गया।

कोठरी के मद्धिम-से प्रकाश में डैरो ने डेब्स के चेहरे को ध्यान से देखा। सीधा-सादा-सा चेहरा था। दृढ़ता-भरी ठुड्डी, लंबी नाक, स्वच्छ-सरल नीली आंखें। डैरो ने कई बार कहा था—"हो सकता है, यूजीन डेब्स से ज्यादा सहृदय, दयावान और कोमल स्वभाव का व्यक्ति कभी कहीं रहा हो; पर मैंने उसे नहीं देखा है।"

कुछ देर बातें करने के बाद डेब्स ने डैरो से कहा—"जाओ, अच्छी तरह जाकर सोओ, क्लैरेन्स। मेरे बारे में चिंता मत करो। हम लोग छूट जायेंगे।"

डैरो ने डेब्स को जमानत पर छुड़ाने के लिए बहुत दौड़-धूप की। इस संबंध में देश-भर में राजनीतिक वाद-विवाद छिड़ा हुआ था। राष्ट्रपति क्लीवलैंड और गवर्नर आल्टजेल्ड के बीच भी विवाद हुए। गवर्नर होने के नाते आल्टजेल्ड को राष्ट्रपति के सामने हार माननी पड़ी।

डेब्स को जमानत पर छोड़ दिया गया।

अगले दिन 'अमरीकन रेल्वे यूनियन' ने 'जनरल मैनेजर्स एसोसियेशन' को बातचीत द्वारा किसी समझौते पर पहुंचने के लिए लिखा। एसोसियेशन ने साफ इन्कार कर दिया। हड़ताल टूट जाने के बाद रेल-मजदूरों की बहुत बुरी हालत हो गयी थी। देश के सारे अखबार उनके खिलाफ थे। देश की सरकार उनके खिलाफ थी। आर्थिक कठिनाइयों में उनका संघटन टूटने लगा। वे हारे हुए व्यक्तियों की तरह फिर पुलमैन के कारखानों में काम के लिए जाने लगे। उन्हें इस शर्त पर रखा जाने लगा कि वे 'अमरीकन रेल्वे यूनियन' के सदस्य नहीं रह सकेंगे।

राष्ट्रपति क्लीवलैंड ने हड़ताल के असली कारणों का पता लगाने के लिए एक समिति नियुक्त की। समिति ने सैकड़ों व्यक्तियों से मिलकर हड़ताल-संबंधी जानकारी प्राप्त की। समिति के सामने पुलमैन के अफसरों ने गवाहियां दीं कि तीन सौ मजदूर पुलमैन के बंद कारखानों के गिर्द घेरा डाले हुए उनकी रक्षा कर रहे थे और ११ मई से लेकर ३ जुलाई तक उन कारखानों को किसी किस्म की कोई हानि नहीं पहुंची थी। पुलिस के अफसरों ने भी यह गवाही दी कि शिकागो में ऐसी कोई गड़बड़ या अराजकता नहीं थी, जिसके लिए केंद्र की फौज को बुलाना आवश्यक हो। संवाददाताओं ने गवाहियां दीं कि उन्होंने कहीं भी हड़तालियों को मार-पीट करते नहीं देखा था, और जो दंगे-फसाद हुए थे, वे नये भर्ती किये गये सिपाहियों ने किये थे।

जब समिति ने पुलमैन से बातचीत की, तो पता लगा कि आर्थिक संकट के जिस एक साल में (अगस्त १८९३ से जुलाई १८९४ तक) उसने मजदूरों की तनख्वाहों में कटौती की थी, उस एक साल में उसकी कंपनी ने ८८ लाख डालर मुनाफा कमाया था। और इधर बेचारे मजदूर पेट-भर खाना नहीं खा सके।

जब ये सारी बातें समिति ने प्रकाशित कीं, तो पढ़कर लोग आश्चर्यचकित रह गये। पूरे अमरीका के उद्योगपति पुलमैन के खिलाफ बातें करने लगे कि उसने खुद को ही नहीं, उन सबको भी बदनाम कर दिया है।

× × ×

मुकद्दमा शुरू होने से पहले डैरो ने एक छोटा-सा दफ्तर किराये पर लिया और कानून, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि विषयों की पुस्तकों का अध्ययन करते हुए वह डेब्स और 'अमरीकन रेल्वे यूनियन' के बचाव के लिए मिसिल तैयार करने लगा। मुकद्दमे की उसने जो योजना बनायी, उसके अनुसार उसे सिर्फ बचाव ही नहीं करना था, बल्कि जिन्होंने निर्दोष मजदूरों पर इतना बड़ा अत्याचार

किया था, उन्हें अपराधी भी सिद्ध करना था, और न्याय की मांग करनी थी।

२६ जनवरी १८९५ को अदालत में मुकद्दमा शुरू हुआ। बचाव-पक्ष की मेज पर डैरो के साथ एस० एस० ग्रेगरी बैठा हुआ था। ग्रेगरी भी हमेशा स्वतंत्रता और गरीबों के हक के लिए लड़ता रहा था। उसकी बहुत इज्जत थी। लोग पहले ही इस बात पर हैरान थे कि रेल्वे-कंपनी के वकील डैरो ने डेब्स का मुकद्दमा लड़ने के लिए नौकरी से क्यों इस्तीफा दे दिया था। अब जब उन्होंने देखा कि 'अमरीकन बार एसोसियेशन' का भूतपूर्व अध्यक्ष ग्रेगरी भी डेब्स का मुकद्दमा लड़ने के लिए डैरो के साथ मिल गया है, तो उनकी हैरानी और भी बढ़ी। साथ ही उन्होंने सोचा कि उस मुकद्दमे की तह में कोई और बात भी है, जो ये दो वकील डेब्स के पक्ष में लड़ने के लिए तैयार हो गये हैं।

सारे देश की आंखें शिकागो की उस अदालत की ओर लगी हुई थीं। अदालत दर्शकों से खचाखच भरी हुई थी। लोग इस खतरनाक व्यक्ति डेब्स को देखने के लिए उत्सुक थे, जिसे समाचार-पत्रों ने अराजकतावादी और गुंडे के रूप में पेश किया था। पर जब उन्होंने डेब्स को देखा, तो उन्हें बड़ी निराशा हुई। वह उन्हें बड़ा ही सभ्य और सीधा-सादा आदमी लगा, जिसकी कोमल नीली आंखों में एक मासूमियत थी और जिसका चेहरा बड़ा प्यारा था।

मुकद्दमा शुरू हुआ, तो डेब्स पर अभियोग लगाया गया कि वह उन सात व्यक्तियों की हत्या का जिम्मेदार है, जो फौज की गोलियों द्वारा मारे गये थे। फिर कहा गया कि उसी के कारण दंगे हुए, रेल्वे की लाखों डालर की जायदाद का नुक्सान हुआ और देश में अराजकता फैली, जिसके कारण उद्योग-धंधे रुक गये और देश का आर्थिक ढांचा टूट गया। अंत में कहा गया कि वह इसलिए भी दोषी है कि उसने रेल्वे के मजदूरों को हड़ताल जारी रखने के लिए उकसाया था।

जब डैरो की सफाई देने की बारी आयी, तो वह जूरी के सामने जा खड़ा हुआ, जिसके हाथ में उस मुकद्दमे का फैसला था। उसने जूरी के उन बारह व्यक्तियों की ओर एक नजर देखा, और फिर अपनी धीमी, संगीतमय आवाज में इस प्रकार बोलना शुरू किया, जैसे अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए सही शब्द ढूंढ़ रहा हो। कुछ ही क्षणों में उसकी आवाज बुलंद हुई और दर्शकों को लगा कि वह डेब्स का बचाव करने के बजाय उन लोगों पर हमला कर रहा था, जिन्होंने डेब्स पर अभियोग लगाये थे। वह कह रहा था :

"यह एक ऐतिहासिक मुकद्दमा है, जो इस बात का फैसला करेगा कि आजादी क्या होती है। इंग्लैंड के राजाओं के अत्याचारों के दिनों से लेकर आज 'जनरल मैनेजर्स एसोसियेशन' के अत्याचारों तक, हमेशा 'षड्यंत्र' रचे जाते रहे हैं और हर अत्याचारी के हाथ में 'षड्यंत्र' एक बढ़िया हथियार साबित हुआ है।"

डैरो पूरे एक महीने तक मजदूरों के संगठनों और उनके विरुद्ध बनाये गये कानूनों के इतिहास के बारे में बोलता रहा। उसने पुलमैन के कारखानों की हालत का वर्णन किया, 'जनरल मैनेजर्स एसोसियेशन' के कारनामों का वर्णन किया, और अंत में यूजीन डेब्स को पेश किया और उसका पूरा जीवन लोगों के सामने रखा। मानो वह डेब्स के जीवन की किताब पढ़कर लोगों को सुना रहा हो, और यह पुस्तक बड़े कलात्मक ढंग से लिखी गयी हो। लोग बड़ी उत्सुकता से सुन रहे थे। जज भी मेज पर आगे की ओर झुका हुआ बड़े ध्यान से सुन रहा था। दर्शक सुन रहे थे और उनकी आंखें कटघरे में खड़े डेब्स को एकटक देख रही थीं।

डेब्स का जन्म १८५५ में हुआ था। चौदह साल की उम्र में वह रोजाना पचास सेंट पर

रेल्वे में मजदूरी करने लगा था। उसने कई किस्म के काम-धंधे किये थे। मजदूरों में काम करते हुए उसने उन्हें संघटित किया था, उनके अधिकारों के लिए आवाज उठायी थी। फिर उसने देश-भर के रेल-मजदूरों के बहुत बड़े संघटन का सपना देखा था। जिस प्रकार पुलमैन के 'पायोनियर' डिब्बे ने रेल-उद्योग में इन्कलाव ला दिया था, उसी प्रकार डेब्स का यह सपना मजदूरों में इन्कलाव लाने वाला था। डेब्स की अथक कोशिशों की बदौलत कुछ ही सालों में 'अमरीकन रेल्वे यूनियन' की बुनियाद पड़ी और डेब्स का सपना साकार हुआ था। फिर उसने सोचा था कि देश-भर के सभी उद्योगों के मजदूरों का भी संगठन बनना चाहिये, ताकि जिस तरह देश-भर के सब उद्योगपति मौका पड़ने पर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार देश-भर के मजदूर भी एक हो सकें और अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें।

जब पुलमैन के कारखानों के मजदूरों ने हड़ताल की थी, तो हमदर्दी में 'अमरीकन रेल्वे यूनियन' ने भी हड़ताल कर दी थी। और अब डेब्स अभियुक्त के रूप में अदालत में खड़ा था।

जब डैरो ने देखा कि वह जूरी के व्यक्तियों पर सही प्रभाव डाल चुका है, तो उसने अगला कदम उठाया। उसने पुलमैन को डेब्स के मुकाबले में खड़ा करना चाहा, ताकि देश-भर के लोग दोनों की तुलना करके खुद नतीजे निकाल सकें।

परंतु पुलमैन लापता हो गया था। उसका कहीं पता न लगाया जा सका।

तब डैरो ने उसकी अनुपस्थिति में ही उसकी असली तस्वीर प्रस्तुत की। उसने उसे भगोड़ा अपराधी साबित किया और बताया कि वह अपने देश का खतरनाक दुश्मन है।

इसके बाद डैरो ने अपना तीसरा कदम उठाया। उसने कहा कि अब मैं 'जनरल मैनेजर्स एसोसियेशन' के हर व्यक्ति को अदालत में बुलाकर कठघरे में खड़ा करूंगा।

पर डैरो की यह योजना पूरी तरह सफल नहीं हो सकी। अगले दिन जूरी के बारह व्यक्तियों में से एक व्यक्ति अदालत में नहीं आया। जज ने बताया कि वह बीमार है और कुछ दिन तक अदालत में हाजिर नहीं हो सकेगा। सो, तब तक के लिए अदालत की कार्रवाई को रोकना जरूरी है।

डैरो ने कहा कि जूरी में एक नया व्यक्ति नियुक्त किया जाये और कार्रवाई आगे बढ़ायी जाये। पर जज नहीं माना। और फिर वह मुकद्दमा मई महीने तक स्थगित कर दिया गया। डैरो सारी असलियत समझ गया था। पर वह लाचार था।

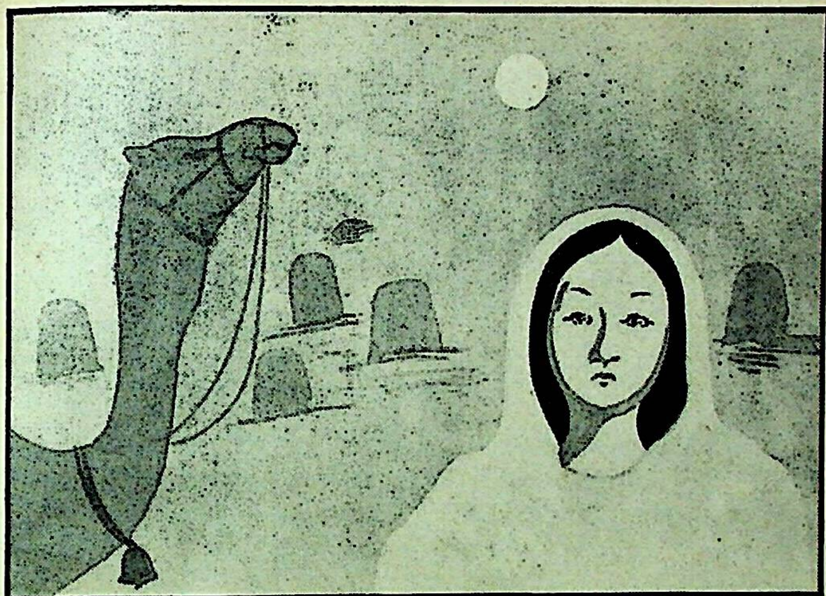
जब अदालत बर्खास्त हुई, तो जूरी के ग्यारह के ग्यारह व्यक्ति निस्संकोच निर्भय होकर डेब्स के पास आये और उन्होंने उससे हाथ मिलाये और डैरो से कहा कि हम सभी डेब्स की रिहाई के पक्ष में हैं। उसके बाद स्थिति इस प्रकार उलझायी गयी कि वह मुकद्दमा लंबे चक्कर में पड़ गया और कई किस्म की कानूनी गुत्थियां सुलझानी पड़ीं। फिर उसकी वह शक्ल ही न रही, जो पहले थी। डैरो को बड़ी निराशा हुई। उसके रास्ते में कई किस्म की अड़चनें डाली गयीं।

आखिर डेब्स बरी न हो पाया।

गवर्नर आल्टजेल्ड को राष्ट्रपति क्लीवलैंड के सामने झुकना पड़ा; डेब्स तथा 'अमरीकन रेल्वे यूनियन' को 'जनरल मैनेजर्स एसोसियशन' के सामने हारना पड़ा; और डैरो को सुप्रीम कोर्ट के सामने हारना पड़ा।

डैरो अपना पहला बड़ा मुकद्दमा हार गया था, पर एक वकील की हैसियत से यह उसके महान जीवन की शुरूआत थी। उस समय शायद उसे यह एहसास नहीं हुआ हो कि वह इससे भी बड़े और जटिल मुकद्दमे लड़ेगा और अपने समय में अमरीका का सर्वश्रेष्ठ वकील माना जायेगा। पर बाद में डैरो की गणना संसार के महान वकीलों में हुई।





सस्सी-पुन्नू

पंजाब की एक अमर प्रेमगाथा गुरबख्श सिंह की रससिक्त लेखनी द्वारा प्रस्तुत

रात का चौथा पहर शुरू होने वाला था। भंबोरे शहर के राजा का धोबी दरिया के किनारे कपड़े धो रहा था। दिन चढ़ा तो उसकी धोबन वहां आयी।

"बच्चा नहीं, तो किसी बच्चे के कपड़े ही मुझे धोने के लिए मिल जायें।" धोबन ने रानी की साड़ी के बल निकालते हुए बड़े अरमान से कहा।

"जैसी हमारी किस्मत, वैसी ही राजा की।" धोबी ने भी आह भरकर कहा।

"सुना था, रानी को कुछ होने वाला है।"......एकाएक धोबन ने नदी की ओर देखा, जिसकी लहरों में कोई संदूक-जैसी चीज बहती हुई आ रही थी।

"देखो-देखो, वह क्या बहता आ रहा है!"

[शीर्षक के साथ का चित्र : कमलाक्ष शेणै; शेष रेखांकन : टी. ए. राणा]

धोबी ने तेजी से बीस-पच्चीस कदम आगे बढ़कर नदी में छलांग लगा दी और उस संदूक को पकड़कर, तैरता हुआ किनारे की ओर ले आया।

बहुत सुंदर था वह संदूक। उसके ऊपर के आधे हिस्से में हवा के आने-जाने के लिए छेद थे। जब धोबी ने संदूक का ढक्कन खोला, तो उसकी आंखें चुंधिया गयीं। संदूक का आधा हिस्सा सोने की मोहरों से भरा हुआ था और वे झिलमिला रही थीं। बाकी आधे हिस्से में एक नवजात बच्चा था, जिसके गले में पड़ी सोने की बारीक-सी जंजीर में एक बहुत सुंदर तावीज था।

"अगर यह कोई राजकुमारी नहीं है, तो किसी बहुत बड़े आदमी की बेटी जरूर है। मगर बेचारी जन्म लेते ही अभागिन हो गयी है। फिर भी, किसी दिन इसकी किस्मत चमककर रहेगी।"

धोबी बड़ा मेहनती और भला आदमी था। राजदरबार से उसे हमेशा इनाम-इकराम मिलता रहता था। उसने घर लौटते ही राजा से कह सुनाया कि उसके यहां बेटी जनमी है।

प्रसन्न होकर राजा ने उसे काफी जमीन दी और उस पर एक सुंदर घर बनवाने और बाग लगवाने का हुक्म दिया।

उस रात जब चांद चढ़ा, तो धोबन को वह अपनी बच्ची-जैसा सुंदर लगा। वह बादलों में से तैरता हुआ जा रहा था। "चांद की तरह ही लहरों पर तैरती हुई मुझे यह बेटी मिली है।" उसने कहा।

"तो फिर इसका नाम भी हम चांद जैसा ही सुंदर-सा रख दें—सस्सी (शशि)।" धोबी ने कहा।

घर बन गया, बाग लग गया, धोबी की मजदूरी भी बढ़ा दी गयी, और धोबियों की बस्ती में सस्सी राजकुमारियों की तरह रहती हुई बड़ी होती गयी।

* * *

सस्सी के मुख पर उषा की आभा थी, कमर में लहरों की लचक, आंखों में आकाश की झलक, चाल में हवा की हिलोर और शब्दों में तारों का ताल था। वह जिधर से भी गुजर जाती, लोग देखते रह जाते।

"महमूद धोबी की बेटी, अपने साथ शहजादियों की किस्मत लेकर आयी है। उसके हुस्न की ताब नहीं झेली जाती। कहते हैं, मुंशी अखुंदलाल सस्सी को पढ़ाता भी है।" लोग कहते।

राजा के महल में कई वर्षों से कोई संतान नहीं जनमी थी। दूसरी शादी की बातें होने लगीं। योग्य लड़कियों की खोज शुरू हुई। एक आदमी ने राजदरबार में आकर बताया कि महमूद धोबी की बेटी सिर्फ हुस्न की शहजादी ही नहीं है, वह जनमी भी किसी रानी की कोख से है, जिसे चालाक धोबी चुराकर अपने यहां ले आया है।

राजा ने हुक्म दिया कि महमूद धोबी अपनी बेटी के साथ दरबार में हाजिर हो। राजा अब सस्सी को उसके पास नहीं रहने देगा। यद्यपि सस्सी ने उसे हौसला दिया, पर उसका दिल बैठता जा रहा था।

सस्सी को न जीवन की ठोस असलियतों का अनुभव था, न राजाओं का। वह समझती थी कि जीवन एक खेल है।

उसने अभी तक कभी डर या किसी खतरे का सामना नहीं किया था। आखिर जब वह राजदरबार में जाकर खड़ी हुई, तो राजा के अंधेरे दिल में कोई किरण चमक उठी।

"इतनी सुंदर! किसकी बेटी हो तुम?" राजा ने चौंककर पूछा।

"महमूद धोबी की।" सस्सी ने बड़े गर्व से कहा।

"तुम धोबन नहीं, तुम तो कोई शहजादी लगती हो।"

"शहजादी तो मैंने कभी कोई देखी भी नहीं है। एक अच्छे धोबी और धोबन की बेटी ही हूं मैं।"

"अच्छा, तुम धोबन ही सही, लेकिन मैं तुम्हें रानी बनाना चाहता हूं।"

"धोबन को आप रानी कैसे बनायेंगे?"

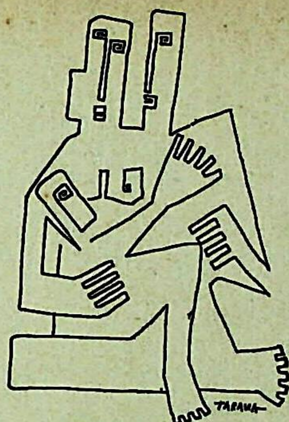
"शादी करके!"

"पर महाराज, शादी के बारे में मैं अभी कुछ जानती नहीं हूं।"

"अब सब कुछ जान जाओगी।"

सस्सी राजा को अतीव सुंदर लगी। वह उठकर उसके पास चला गया। तभी सस्सी के गले में पड़े तावीज पर उसकी नजर पड़ी। उसने अपनी रानी को बुलवा भेजा। वह आयी, तो उसने कहा—"देखो तो, सस्सी के गले में यह तावीज कैसा है?"

"हाय, मैं मर जाऊं, यह तावीज तो मैंने अपनी अभागिन बच्ची के गले में डाला था!"



राजा और रानी दोनों ने अपनी उंगलियां मुंह में डाल लीं।

महमूद धोबी को दरबार में बुलवाया गया। उसकी टांगें कांप रही थीं। उसने सारी बात सच-सच कह सुनायी कि किस तरह उसे दरिया में बहते हुए संदूक में सस्सी मिली थी।

रानी सस्सी से लिपट गयी और रोने लगी—"मेरी राजदुलारी बेटी!"

राजा ने अपने सीने पर हाथ मारकर अपनी शर्मिंदगी की कहानी सुनायी:

"अठारह साल हुए, हमारे घर यह बच्ची आने वाली थी। हमने ज्योतिषी बुलाये। उन्होंने हमारी इस बच्ची को खानदान का कलंक बताया और कहा कि यह किसी मुसलमान से शादी करेगी और दुनिया-भर में इसके इश्क की चर्चा होगी। सो हमने कलेजे पर पत्थर रखकर, इसे पैदा होते ही नदी में बहा दिया। यह तावीज इसकी मां ने इसके गले में डाला था। पांच हजार

मोहरें मैंने इसके साथ संदूक में रखी थीं। तब से कोई दूसरा बच्चा भी हमारे घर नहीं आया है। हमने बहुत बड़ा अपराध किया है, सस्सी बेटी! हम तुम्हें मुंह दिखाने लायक नहीं हैं। लेकिन महमूद अगर हमें सस्सी लौटा दे, तो हमारे कुल का निशान रह जायेगा। और हम हमेशा के लिए उसके ऋणी रहेंगे।"

सस्सी ने कहा कि मुझे राजमहल में रहना है या धोबी के यहां, इसका फैसला मैं खुद करूंगी। और उसने इसके लिए एक दिन की मोहलत मांगी।

अगले दिन राजा और रानी सस्सी के निर्णय की प्रतीक्षा में बैठे थे। सांझ के समय एक धोबी सस्सी का पत्र लेकर उनके पास आया। राजा ने कांपते हुए हाथों से पत्र खोला और रानी को सुनाते हुए पढ़ने लगा :

"रात-भर में खयालों में बहती, गोते खाती तैरती रही। रात-भर रानी-मां का तावीज हाथ में लिये सोचती रही। उनकी आखिरी मांग मेरे कानों में, और उनके आंसू मेरी आंखों में किरकिरी की तरह समाये रहे।

"लेकिन यह कुछ पलों और घड़ियों का ही वक्त था। दूसरी तरफ अठारह वर्षों के लाड़-प्यार, पालन-पोषण और कुर्बानियों ने मुझे चारों तरफ से घेर रखा था।

"पानी में बहा दिये गये कलंक को चांद समझकर जिन्होंने मुझे पाला, उनका हक मैं उनके घर में रहते हुए भी चुका नहीं सकूंगी। और उनके घर से चले जाना...... ओह! मैं जन्म देने वाली मां की मिन्नतों के रूबरू भी सोच नहीं सकती।

"कल आपने मुझसे माफी मांगी थी। आज मैं आपसे माफी मांगती हूं। लेकिन जब भी आप बुलायेंगे, मैं मिलने के लिए आया करूंगी। —सस्सी।"

राजा ने रानी को समझाया कि सस्सी के इस फैसले को बदलवाने की कोशिश करने का कोई फायदा नहीं होगा। हमने अपनी तकदीर नदी में बहा दी थी। अब सस्सी की खुशी और हमारा सुख इसी में है कि सस्सी को उसकी मर्जी के मुताबिक जीने दिया जाये और उसका यह भेद किसी पर न खुले।

* * *

एक बार कच-मकरान से कुछ सौदागर आये। वे कई दिन तक भंबोर में रहे। सस्सी के हुस्न की चर्चा उन्होंने भी सुनी थी; क्योंकि उनका अपना शहजादा भी बड़ा रसीला जवान था। उसके दोनों छोटे भाइयों ने शादी कर ली थी; लेकिन उसकी आंखों को किसी का हुस्न अभी तक रास नहीं आया था।

सौदागरों के काफिले का सरदार बेबियो शहजादे का दोस्त था। बेबियो ने जब भंबोर की सुंदरी को देखा और जाना कि उसका नाम सस्सी है, सहज ही उसके मुंह से निकल गया—"बिस्मिल्लाह, यह नया चांद तो हमारे पूरनचंद (पुन्नू) के लायक है।"

जल्दी से जल्दी काम खत्म करके बेबियो कच-मकरान लौटा और उसने राजकुमार

पुन्नू को सस्सी की बात बतायी। सुनकर पुन्नू के अंदर हलचल मच गयी। वह ऐसी ही किसी सुंदरता का अभिलाषी था।

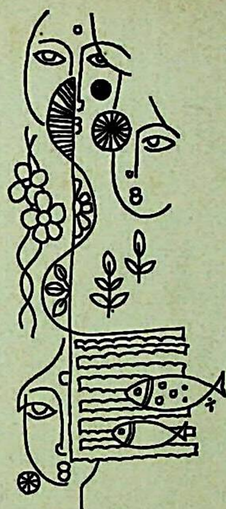
बेबियो की बातें सुनकर पुन्नू ने भी काफिला तैयार किया। पुन्नू को इत्र-फुलेल से बहुत प्यार था। उसके देश के पहाड़ सुगंधित जड़ी-बूटियों से महके हुए थे। कचमकरान इत्र-फुलेल का व्यापार करता था।

काली डाची (ऊंटनी) पर सवार होकर, सुगंधियों का सौदागर सफर करता हुआ भंबोर शहर में आ पहुंचा।

घाट के निकट, सघन वृक्षों के झुंड के नीचे, पुन्नू ने चंपा, केवड़ा, कस्तूरी आदि विभिन्न प्रकार के सुगंधित द्रव्यों की आकर्षक दुकान सजा दी। उसकी अपनी सुंदरता भी हर किसी की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित करती। सफेद ऊन के कालीन पर वह बैठा रहता था। हर कोई उसके चौड़े सीने, मजबूत कंधों, सुशील आंखों और चमकते हुए माथे की प्रशंसा करता था।

उसके इत्र-फुलेल से भी ज्यादा, उसकी दुकान की शोभा की चर्चा थी। हरदम दुकान पर सुंदरियों की भीड़ दिखाई देती। हर लड़की को वह 'रानी' कहकर बुलाता और इत्र का फाहा, उसके कोमल हाथ पर हलका-सा रगड़कर जब उसे पकड़ाता, तो लड़की की नशीली आंखों में कोई मुस्कान दौड़ जाती।

पुन्नू का जिक्र सस्सी तक भी पहुंच चुका था और वह अपनी सुंदरता के प्रति विशेष रूप से सचेत हो उठी थी। दिन में कई-कई



बार वह आईने में अपना चेहरा देखती।

एक दिन सस्सी की सहेलियां बढ़िया कपड़े पहनकर उसके पास पहुंचीं। बोलीं—"चलो, इत्र की दुकान पर चलेंगे आज।" सस्सी की सुंदरता पर यों भी उन्हें गर्व था। और आज तो उनके देश की सुंदरता का एक परदेसी के हुस्न से मुकाबला था। हर किसी ने अपनी मनमर्जी से सस्सी का सिंगार करना चाहा। लेकिन सस्सी अधिक सिंगार करने को तैयार नहीं हुई। कई गहने पहनने से उसने इन्कार कर दिया। सस्सी तैयार हो गयी। वह जहां खड़ी थी, वहां से लपटें उठती हुई प्रतीत हो रही थीं। मां ने उसके मखमल के बटुए में बहुत-सी मोहरें डाल दीं।

सस्सी को देखते ही पुन्नू को लगा, जैसे एकाएक कोई धुंध छंट गयी हो। सभी तोल अनावश्यक हो गये। दिमाग गद्दी पर से उतर

बैठा, दिल ने तख्त संभाल लिया।

पुन्नू ने गुलाब के इत्र का फाहा सस्सी के हाथ पर लगाकर कहा—"रानी, यह हमारे पहाड़ों का अनोखा चंपा है।"

सस्सी ने पलकें उठायीं। पुन्नू की आंखों में पहली मुलाकात की लरजिश उसे दिखाई दी और वह मुस्करा दी।

"तुम्हारे पहाड़ों में चंपा में भी गुलाब के फूल लगते हैं!" सस्सी ने व्यंग्य से कहा।

पुन्नू ने अपनी इत्र की बोतल को ध्यान से देखा।

"मैं भूल गया रानी, कहना तो मैं गुलाब ही चाहता था।"

"इतनी बड़ी भूल का हरजाना देना होगा।" सस्सी ने देख लिया कि पुन्नू के दिल का हर दरवाजा उसके लिए खुल गया है।

"रानी हुक्म करे।"

"मेरी हरएक सहेली के हाथ पर अलग-अलग इत्र के फाहे लगाने पड़ेंगे।"

पुन्नू फाहे बनाकर लगाने लगा। फिर उसने कई प्रकार के इत्रों की बोतलें उसकी पिटारी में डाल दीं।

सस्सी ने अपना बटुआ खोला और सोने की मोहरें निकालकर कीमत देनी चाही।

"कल सही। घर जाकर पहले पसंद कर लो।" पुन्नू इस सौदे को अभी खत्म नहीं करना चाहता था।

दूसरे दिन सस्सी आयी। तीसरे दिन भी आयी। पुन्नू किसी-न-किसी बहाने कीमत चुकाने की बात टालता रहा।

इन तीन मुलाकातों में सस्सी की नजर में, सस्सी की चाल में, सस्सी की बातचीत में एक नयी बात पैदा हो गयी थी। अब उसके पांव धरती पर नहीं पड़ते थे। आखिर उसने मां के गले में बांहें डाल दीं।

"मां, मैंने अपना वर ढूंढ़ लिया है।"

"कौन है बेटी?" मां ने पूछा—"और कहां है?"

"वही इत्र-फुलेल बेचने वाला सौदागर है मां!"

"ना बेटी, सौदागर तुम्हारे अब्बा को अच्छे नहीं लगते।"

"नहीं मां, सौदागर वह बस नाम का ही हैं। असल में वह वही कुछ है, जो मैं हूं।"

चौथे दिन सस्सी मोहरों से बटुआ भर-कर पुन्नू की दुकान पर गयी। साथ ही इत्र की वे सभी बोतलें भी ले गयी। पुन्नू के आगे उन्हें रखकर जरा-सा मुंह बनाकर, उसने कहा—"तुम कीमत नहीं लेते, सो मैं माल वापस करने आयी हूं।"

"पर रानी, किसी माल की कीमत मैं तुमसे दो बार कैसे ले सकता हूं?"

"भला पहले कब मैंने कीमत चुकायी है?" सस्सी ने हैरानी से पूछा।

"तुम पहले दिन ही मेरे सारे माल की असली कीमत से कहीं ज्यादा कीमत चुका गयी थीं।"

"वह कैसे, झूठे सौदागर कहीं के!"

"तुम्हारा हाथ एक बार पकड़ लेने के एवज में मैं यह सारा-का-सारा माल दे देना भी सस्ता सौदा समझता हूं। और यही सोच कर मैं घर से चला था।"

"सच कहते हो, खूबसूरत सौदागर ?"

"रानी, मैं सौदागर नहीं हूं।"

सस्सी खुशी में उछल पड़ी।

"हां, मैंने कहा था मां से कि तुम सौदागर नहीं हो।......अच्छा, पुन्नू, एक बार मेरा हाथ पकड़ने की कीमत तुमने चुका दी। कल इसी वक्त आना मेरे बाग में ? अगर तुम हमेशा के लिए मेरे हाथ को पकड़ने की कीमत भी चुका सके, तो सौदे के बारे में सोच लेंगे। आओगे न ?"

"कदमों से ही नहीं, धड़कते हुए दिल से चलकर आऊंगा कल इसी वक्त, तुम्हारे बाग में।"

और पुन्नू ने सस्सी के दोनों हाथ पकड़कर उन पर खास तौर पर तैयार किये गये इत्र के दो फाहों से रेखाएं खींच दीं।

* * *

बाग में सस्सी और उसकी सहेलियां पुन्नू का रास्ता देख रही थीं। पुन्नू उन सबके लिए सौगातें लाया। उसके गिर्द लड़कियों ने घेरा डाल लिया। पुन्नू उनका भी था, क्योंकि असली सुंदरता अपने मालिक की नहीं होती, जितनी दर्शकों की होती है।

सस्सी के हाथ में उन्होंने पुन्नू का हाथ पकड़ा दिया और उनके कुंआरे अरमानों ने ऐसा नाच नाचा कि टहनियों में से कोयलों ने भी चोंच उठाकर तराने छेड़ दिये।

"पर पुन्नू, मेरा अब्बा कहता है, मैं धोबी के सिवा किसी को अपनी बेटी नहीं दूंगा।" सस्सी ने पुन्नू को चेतावनी दी।

"यह तो सस्सी, बहुत मामूली-सी शर्त है। तुम्हारा पुन्नू तुम्हारे लिए क्या नहीं बन सकता ?"

"पर पुन्नू, तुम तो मुझे कोई शहजादे लगते हो !"

"कल से तुम मुझे धोबी के रूप में देखोगी।"

* * *

पुन्नू धोबी के रूप में सस्सी के पिता के घाट पर काम करने लगा। दिन बीतते गये, और आखिर सस्सी और पुन्नू की शादी हो गयी। राजा और रानी ने सौगातें भेजीं। सभी धोबियों ने जश्न मनाया। वे खुश थे कि सस्सी से शादी करने वाला व्यक्ति उसे उनके पास से ले नहीं जायेगा, बल्कि उन्हीं के शहर का धोबी बनकर उनकी बस्ती की रौनक बढ़ायेगा।

असली सुंदरता और महानता के चारों ओर का वातावरण भी सुंदर और महान बन जाता है।





पुन्नू दिन-भर महमूद के साथ कपड़े धोता। सस्सी कपड़ों की तहें लगाती। परिश्रम ने सुंदरता के सोने पर जैसे सुहागे का काम किया।

उन दोनों की सुंदरता की चर्चा तो चारों ओर फैल ही चुकी थी, अब सफल और रसीले दांपत्य जीवन की चर्चा भी चारों ओर होने लगी। कई अपने जीवन की बुझती हुई लौ को फिर से तेज करने के लिए पुन्नू और सस्सी के जगमगाते हुए चेहरों को देखने के लिए वहां आते।

लेकिन पुन्नू के अपने शहर कच-मकरान में शोक छा गया। उसके माता-पिता दुःखी और लज्जित थे। यों तो भाइयों को पुन्नू की कोई परवाह नहीं थी, फिर भी खानदान के नाम पर जो धब्बा लग गया था, वह उन्हें बेचैन किये हुए था। लोग कहते थे—"बड़ा शहजादा धोबन से शादी करके धोबी बन गया है।"

उन्होंने मां की ओर से संदेश देकर कई व्यक्ति भंबोर भेजे। वे पुन्नू का जवाब लेकर लौटे—"मां, तुम्हारी याद मुझे भूली नहीं। पर पिताजी के तख्त के लायक मैं कभी नहीं था, उसके लिए मेरे सुयोग्य भाई जिंदा रहें। वे अगर मुझे भुलाना चाहें, तो बेशक भूल जायें; लेकिन मैं इतना प्रसन्न हूं कि किसी को भी भुला नहीं सकता। अपने कच-मकरान के हर जर्रे की याद मुझे प्यारी रहेगी, जिसकी पवित्र और प्यार भरी माटी में जन्म लेकर आज मैं फरिश्तों की ईर्ष्या का विषय बन गया हूं।"

बात बनती न देखकर भाइयों ने एक और तरीका सोचा और पुन्नू को कहला भेजा—"तुम्हारी खुशी से हम खुश हैं। पर अपने रूपवान बड़े भाई को हम एक बार भर-आंख देखना जरूर चाहते हैं।"

भंबोर के धोबियों की भी खुशी का ठिकाना नहीं था। शाही मेहमान उनकी बस्ती में आने वाले हैं और शाही मेहमानखाने के बजाय उनकी बस्ती में रहने वाले हैं! बस्ती की हर झोंपड़ी सजकर जैसे दुल्हन बन गयी।

उमर और तुमर, पुन्नू के भाइयों का काफला आया।

साथ आयीं सफेद, भूरी, काली डाचियां। उनकी गर्दनों में लटकी हुई घंटियां टन-टन बज रही थीं। उन पर देशी नमदे पड़े हुए थे, जिनके किनारों पर झालरें लहरा रही थीं।

और साथ में आये सुंदर-सजीले बलोच। उनकी पगड़ियों के नीचे से उनकी महकती हुई काली जुल्फें लहरा रही थीं।

साथ में आये कई किस्म के मेवे, जो ऊंटों पर लदे हुए थे।

चार दिन तक उस बस्ती में जश्न होता रहा। गीत गाये गये, तमाशे हुए, नाच हुए। उमर और तुमर ने पानी की तरह पैसा बहाया। जो आया खुश होकर, कृतार्थ होकर लौटा। कच-मकरान के इत्रों की सुगंधियां सारे भंबोर में फैल गयीं।

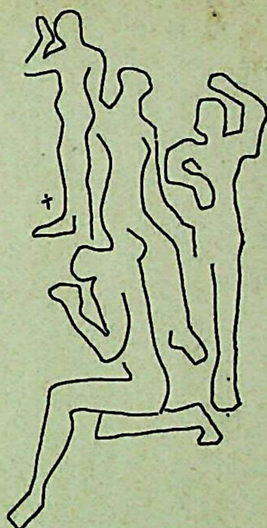
सस्सी ने बेहद चाव और प्यार से देवरों और देवरानियों की आवभगत की। उसने सास के लिए मोहरों का हार बनवाया, ससुर के लिए कपड़े दिये, ननदों के लिए तरह-तरह की सौगातें पेश कीं।

पांचवें दिन, जाने से पहले आतिथ्य की आखिरी रात थी। उमर और तुमर ने तरह-तरह के शरबतों और शराबों का प्रबंध किया था। हर किसी ने दिल खोलकर शराब पी और हर कोई इस तरह नाचा, जैसे पहले कभी नहीं नाचा था।

लगातार चार दिन से खुशियां मनाते-मनाते लोग थक गये थे, या आज रात परोसे गये शरबतों और शराबों में कोई ऐसी चीज थी कि आधी रात के बाद हर कोई जैसे लेटने के लिए जगह ढूंढ़ने लगा। कुछ समय के बाद बलोचों के अलावा सभी सो चुके थे।

तब जल्दी-जल्दी डाचियों को तैयार किया गया, उन पर सारा सामान लादा गया। एक डाची पर उमर ने बेसुध पुन्नू को डाल लिया और तुमर ने पीछे बैठकर उसे थाम लिया।

*   *   *



दिन चढ़ा तो कुछ लोगों की आंखें खुलीं। ऐसा लगा, जैसे कोई सपना था। सस्सी ने आंखें मलकर देखा। वहां न उमर था, न तुमर, और न उसका पुन्नू। उसने उठकर अंदर-बाहर, चारों तरफ देखा। पुन्नू कहीं भी नहीं था।

"हाय मां! मैं लुट गयी! वे लोग पुन्नू से मिलने नहीं, उसे धोखे से उड़ा ले जाने के लिए आये थे।"

मां ने उसे गले से लगाया और समझाया। सहेलियों ने आश्वासन दिलाया। पिता ने धीरज बंधाया। "जब पुन्नू को होश आयेगा, वह तुरंत वापस आ जायेगा, एक पल के लिए भी वहां नहीं ठहरेगा। जो तुम्हारे लिए धोबी तक बन सकता है, वह जरूर लौटकर आयेगा।"

"नहीं मां, वह तो जालिम बलोचों के

जाल में फंस गया है । वे उसे मुझसे दूर ले गये हैं और अब वे उसे अपने चंगुल में से कभी निकलने नहीं देंगे । पुन्नू का धोबी होना उनके लिए असह्य था । जरूरत पड़ने पर वे उसे मार डालने में भी संकोच नहीं करेंगे ।"

"तो फिर सब्र करो बेटी, किस्मत खुद ही पासा पलटेगी ।"

"जो प्रेम मेरी हड्डियों में समा गया है मां, वह सब्र नहीं कर सकता । मैं जानती हूं, यह यात्रा मुझसे पूरी नहीं होगी, पर मेरी आत्मा यहां एक पल के लिए भी टिक नहीं सकेगी । सो मुझे रोकना न मां ! यहां मैं दो दिन भी जी नहीं सकूंगी; पर पुन्नू के पीछे भटकते हुए शायद मेरा बचाव हो जाये ।"

सस्सी जैसे पागल हो गयी । बार-बार कहती–"मैं जाऊंगी और लौटकर नहीं आऊंगी ।"

दिन-भर मां और सहेलियों ने उस पर पहरा रखा । सस्सी के दिल में से आहें उठ रही थीं । उसने अपना सारा सिंगार नोच डाला, बाल खोलकर गले में लपेट लिये, और रह-रहकर कहने लगी–"जालिम बलोचो, मेरा पुन्नू मुझे लौटा दो ।"

सहेलियां उसे पकड़ते-संभालते थक गयी थीं । उन्हें नींद आ गयी । सस्सी चुपचाप घर से बाहर निकली । तारे झिलमिला रहे थे । "ओह, पुन्नू ! पुन्नू !" दो आहें सस्सी के हृदय से उठीं और वह भंबोर छोड़कर चल पड़ी ।

रास्ता पूछती, ऊंटों वालों के हुलिया बताती, वह पागलों की तरह चली जा रही थी । उसके चेहरे पर अथाह वेदना और उदासी थी और आंखों में निराशा । उसे देखकर राहियों के दिल पिघल उठते । पर किसी की बात सुनने का सस्सी में धीरज नहीं था । उसके कानों में पुन्नू की डाची की घंटियां बज रही थीं । और राही जिधर का रास्ता बताते, वह उस ओर भाग पड़ती ।

दोपहर हो गयी, तो सामने रेतीली धरती दिखाई दी । रेत का सागर ! कोई वृक्ष नहीं, पौधा नहीं, घास का तिनका तक नहीं ।

तपती हुई रेत तलुओं को जला रही थी । सस्सी के पांवों की मेंहदी दहक उठी । उसका दिल चाहता था कि कहीं जरा-सी छांव मिले, तो लेटकर दोपहर काट दे । तभी उसे एक छोटा-सा नाला दिखाई दिया, जिसके किनारे एक मुरझाया-सा वृक्ष था । नाले में उतरकर उसने पानी पिया ।

पानी में उसके चेहरे की उजड़ी हुई सुंदरता की परछाईं पड़ी और सस्सी के दिल में से एक आह उठी–" पुन्नू, एक बार मिल जाओ और इस उजड़ी जिंदगी को बसा दो!"

वह वृक्ष की छांव में लेट गयी । उसकी आह जैसे पुन्नू ने सुन ली । सुगंधियों के सौदागर की दुकान लग गयी । सहेलियों के संग सस्सी आयी । पुन्नू ने उसके हाथ पर इत्र का फाहा लगाया । सस्सी ने नींद में ही हाथ उठाकर नाक पर रख दिया । तभी एकाएक उसकी आंख खुल गयी ।

सूरज ढलता जा रहा था । सस्सी उठी और इधर-उधर भटकते हुए उसने ऊंटों के

फैशन का नया आविष्कार!



इस शर्टमें दुहरा व्यक्तित्व छिपा है। ऑफिसमें विचारशील तथा विशिष्ट; कामकाज के बाद शांत और निश्चिंत। फैशनका यह नया आविष्कार कैसे संभव हुआ? मफतलाल ग्रुपके आश्चर्यकारक कपड़े द्वाराही। अत्यत अनुकूलित कपड़ा–जिसे चाहे जब और चाहे जैसा पहनिये। यह हमेशा सर्वोत्तम ही दिखाई देगा

मफतलाल ग्रुप

पॉपलिन्स और शर्टिंग्ज
कॉटनऔर'टेरीन'/कॉटन
२×२ 'टेरीन'/कॉटन
प्रिंटेड, टेविलाइज्ड,
मॅफिनाइज्ड और
स्ट्रेच क्वालिटी

न्यु शॉरक (शॉरक), अहमदाबाद • न्यु शॉरक, नडियाद • स्टांडर्ड, बम्बई • स्टांडर्ड (न्यु चायना), बम्बई • स्टांडर्ड, देवास • सासुन, बम्बई • सासुन (न्यु युनियन), बम्बई • सुरत काटन, सुरत मफतलाल फाइन, नवसारी • मिहिर टेक्सटाइल्स, अहमदाबाद

पैरों के निशान ढूंढ़ लिये। एक ऊंट के पैरों के निशान छोटे-छोटे थे।

"हाय, यह मेरे पुन्नू की डाची के पैरों के निशान हैं!"

चारों पैरों के निशानों को सस्सी ने चूमा।

"जिस रास्ते से तुम गये हो, उस रास्ते पर रात-भर चलकर मैं तुम तक जरूर पहुंच जाऊंगी।"

तारे चमकते रहे। सस्सी की आंखों में से आंसू बहते रहे। आकाश से ओस झरती रही। पैरों के नीचे से रेत के कण उड़ते रहे। हवा में लटें बिखरती रहीं। दिल से आहें उठती रहीं। कल्पना में बजती काली डाची के गले की घंटियों के ताल पर सस्सी चलती चली गयी।

जब दिन चढ़ा, तो सस्सी प्यास से बेताब थी। वह चाहती थी कि कहीं बैठ जाये। पानी के बिना दिल जवाब देता जा रहा था। पर वह चलती गयी। दूर उसे हरियाली का एक छोटा-सा बिंदु दिखाई दिया। पास गयी तो वह मेंहदी की एक झाड़ी थी। पर पानी उसके पास कहीं नहीं था। सस्सी ने सोचा, पानी के बिना इस जलती हुई रेत में यह झाड़ी हरी कैसे है? कहीं नजदीक ही पानी होगा जरूर। पर वह उसे ढूंढ़ न पायी। अब उसके ओंठ ही नहीं, उसका लहू तक सूखता जा रहा था। सस्सी बेसुध होकर गिर पड़ी।

जहां वह गिरी, उसके नीचे से मेंहदी की जड़ों को पानी पहुंचता था। सस्सी के शरीर के बोझ से रेत बैठ गयी और पानी ऊपर उठ आया। उसके सिर को नमी पहुंची, तो उसे होश आया। उसने उठकर दोनों हाथों से रेत खोदी और वहां एक चश्मा बन गया। पानी पिया तो जान में जान आयी। फिर वह मेंहदी की झाड़ी के पास गयी। उसके नीचे उगा हुआ एक छोटा-सा मेंहदी का पौधा उखाड़ लायी और उसे चश्मे के पास रोप दिया। फिर उसकी पत्तियों पर पानी के छींटे मारे।

वह मेंहदी का पौधा, कहते हैं कि आज भी सस्सी की याद में पूजा जाता है। प्रेमी उसकी पत्तियों को चूमते और उससे मुरादें मांगते हैं। सस्सी ने वहां से गुजरने वाले प्यासे राहियों के लिए एक चश्मे को जन्म दे दिया था।

वह फिर चल पड़ी, ताकि दिन चढ़ने और रेत के तपने से पहले-पहले, दोपहर का समय बिताने के लिए कोई ठिकाना ढूंढ़ ले।

ऊंटों के पैरों के निशानों के पीछे-पीछे वह चलती रही। ज्यों-ज्यों धूप तेज होती



गयी, रेत तपने लगी । सस्सी ने दायें, बायें नजर दौड़ायी । एक ओर बस्ती-सी दिखाई दी और उधर जाते हुए रास्ते पर एक चरवाहा मिला ।

"जरा ठहरना, भैया !"

चरवाहा ठिठककर खड़ा हो गया । वह एकटक सस्सी को देख रहा था । उसे लगा, जैसे सस्सी आकाश से उतरकर आयी हो । ऐसे चेहरे इस धरती पर तो नहीं होते ?

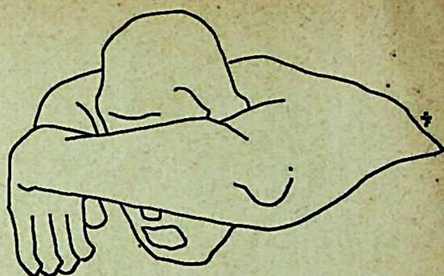
"दुखियारी हूं, विरहिन हूं, मौत के मुंह में जा रही कुछ पलों की मेहमान हूं ।" सस्सी ने उसे अपने वियोग की कहानी सुनायी और उससे कच-मकरान का रास्ता पूछा ।

चरवाहे का दिल पिघल गया । उसने देखा कि सस्सी के लिए खड़ा रह सकना भी बहुत कठिन है । आखिर सस्सी बैठ गयी । चरवाहे ने उसे छांव में ले जाने के लिए उसका हाथ पकड़ा । उसका हाथ तप रहा था ।

उसे छांव में बैठाकर चरवाहे ने कहा – "बहन, अब तुम चल नहीं सकतीं । धूप चढ़ रही है । और फिर आगे ऊंटों के पांव के निशान कहीं-कहीं ही मिलेंगे; क्योंकि कुछ जगहों पर रेत नहीं, ठोस जमीन है ।...... मेरे घर वाले तुम्हारी देखभाल करेंगे । मैं आज ही कच-मकरान जाऊंगा और पुन्नू को तुम्हारी खबर पहुंचाऊंगा ।"

फिर वह चरवाहा सस्सी को अपनी झोंपड़ी में पहुंचाकर पुन्नू के देश की ओर चल पड़ा ।

* * *



सस्सी तड़प रही थी । दो दिन बड़ी ही मुश्किल से बीते । कई बार ऐसा लगा, जैसे वह कुछ ही पलों की मेहमान हो ।

"वह रही डाची.........काली डाची...... भागी चली आ रही है ।" किसी ने कहा ।

सस्सी की आंखें खुलीं । पर सामने कुछ न देखकर फिर बंद हो गयीं ।

आखिर काली डाची झोंपड़ी के बाहर आकर रुकी । उसकी गर्दन में घंटियां बज रही थीं । उनकी ध्वनि सस्सी के कानों में पड़ी । डाची पर से दो सवार उतरे, उनमें से एक चरवाहा था । दूसरे ने उतरते ही चीखकर कहा–"कहां है मेरी सस्सी ?"

पुन्नू को बांह पकड़कर सस्सी के पास ले जाया गया ।

"सस्सी !.........मेरी सस्सी !"

सस्सी ने आंखें खोलीं । उसके ओंठ मुस्कराये । बांहों में हरकत हुई ।

पुन्नू ने उसे बांहों में भर लिया । उसकी आंखों को चूमा । वे आंखें जैसे उस चुंबन की ही प्रतीक्षा कर रही थीं । चुंबन से जो मुंदीं, तो फिर न खुलीं । और पुन्नू की चीख सभी के हृदयों को चीर गयी ।



"हाय, मेरी सस्सी !"

पुन्नू रात-भर रो-रोकर अपने भाइयों के जुल्म की करुण कहानी सस्सी के कानों में ढालता रहा ।

दिन चढ़ा तो सस्सी के लिए कब्र खोदी गयी । कब्र को देखकर पुन्नू ने कहा—"इसे और चौड़ी करो । इसमें मेरी सस्सी अकेली नहीं लेटेगी ।"

कब्र दुगुनी चौड़ी कर दी गयी । सस्सी का जनाजा उसके पास लाकर रखा गया । पुन्नू ने सस्सी के सिर और पैरों को बारी-बारी से चूमा !

जनाजा कब्र में उतारा गया ।

"नहीं, एक तरफ करके रखो । और अभी मिट्टी न डालो । मैं दुआ कर लूं ।"

कब्र के सिरहाने बैठकर पुन्नू ने आंखों पर हाथ कर लिया । आंखें बंद होने की देर थी कि सस्सी कब्र में से निकल आयी । उसने विवाह के समय के कपड़े पहन रखे थे । पुन्नू ने बांह से पकड़कर उसे अपने पास बैठा लिया । उसका खिला हुआ चेहरा देखकर पुन्नू का चेहरा भी खिल उठा । उसने उसकी कमर के गिर्द बांहें डाल दीं । फिर वे नाचने लगे । कुछ देर नाचते रहे । आखिर रुक गये। उन्होंने एक-दूसरे की आंखों में झांका, उनके ओंठ कांपे, दिल धड़के, और बांहें एक-दूसरे के गले में पड़ गयीं । फिर वे एक-दूसरे से अलग होकर खड़े हो गये । सस्सी ने पुन्नू का हाथ चूमा और उसी समय कब्र में दाखिल हो गयी ।

पुन्नू ने आंखों पर से हाथ हटाये और चौंककर उठ खड़ा हुआ। उसने कब्र में झांका। जनाजा उसी तरह पड़ा था । उसने वहां खड़े लोगों के चेहरों की ओर देखा । सब रो रहे थे । उसने कब्र की परिक्रमा की और उसके मुंह से तेज चीख निकली :

"ओ मेरी सस्सी !"

और उसने कब्र में छलांग लगा दी ।

कहते हैं, उसी समय कुछ ऐसी करामात हुई कि कब्र बंद हो गयी ।

* * *

कई आशिक कहते हैं कि उन्होंने चांदनी रातों में सस्सी और पुन्नू को कब्र में से निकलकर नाचते देखा है । यह भी प्रसिद्ध है कि सच्चे प्रेमियों को पुन्नू, और सच्ची प्रेमिकाओं को सस्सी वस्ल का प्याला अपने हाथों से पिलाते हैं ।

रूपांतरकार : सुखबीर



जब मौत घर में आये....

हेलीन एस० आर्नस्टाइन

परिवार में जब कोई मृत्यु होती है, तो अक्सर बच्चों को दूसरे संबंधियों या मित्रों के यहां भेज दिया जाता है। उद्देश्य यह होता है कि उन्हें मृत्यु की भीषणता से बचाया जाये। तथापि वातावरण की घुटन और घर वालों के असामान्य आचरण को वे अनुभव किये बिना नहीं रहते। यह सब उन्हें बड़ा विचित्र लगता है और उनके मन में चिंता व्यापती है। अर्थात् बच्चों को शोक तथा आकुलता से बचाने का प्रयास वास्तव में उन्हें उलझन तथा चिंता में डाल देता है। साथ ही वे जीवन के एक मूलभूत तथ्य को समझने और अनुभव करने के अवसर से वंचित हो जाते हैं।

आज बच्चों को जन्म-संबंधी तथ्यों और प्रक्रियाओं से परिचित कराना तो अनिवार्य माना जाता है; पर वहीं उन्हें जीवन के दूसरे महत्त्वपूर्ण तथ्य, मृत्यु से परिचित कराने से हम हिचकिचाते हैं। कदाचित इसलिए कि हम स्वयं यह नहीं जानते कि उन्हें क्या बतायें? यह सही है कि बच्चे मृत्यु को उसी रूप में नहीं समझ सकते, जिसमें हम समझते हैं। वे मृत्यु को अपने प्रिय जन की जुदाई और अनुपस्थिति के रूप में ही समझेंगे।

स्वजनों की मृत्यु को सहनीय बनाने के लिए हम जिन दार्शनिक और धार्मिक धारणाओं का आसरा लेते हैं, वे बच्चों के लिए कोई अर्थ नहीं रखतीं। उन्हें तो सीधी-सादी भाषा में और संक्षेप में भौतिक तथ्य ही बताये जा सकते हैं। इन भौतिक तथ्यों को भी समझना उनके लिए कठिन अवश्य होता है। थोड़ा-थोड़ा करके ही, हमारी सहायता से और काफी लंबे समय में वे मृत्यु को समझने में समर्थ हो सकते हैं।

देहात में प्रकृति के संपर्क में पलने वाले बच्चे तो स्वतः ही जन्म और मृत्यु के स्वरूप का कुछ आभास पाने लगते हैं। जानवरों की प्रजनन-प्रक्रिया को वे आंखों देखते हैं। पालतू पशुओं की मृत्यु को भी उन्हें निकट से देखने का अवसर मिलता है। पर शहरी सभ्यता में पलने वाले बच्चों को ये अनुभव नहीं मिल पाते। इसलिए आवश्यक है कि मृत्यु के रहस्य उन्हें धीरे-धीरे बताये और समझाये जायें।

कई अवसर ऐसे आते हैं, जब बच्चों का मृत्यु से बहुत सामान्य रूप में साक्षात्कार होता है। जैसे कि घर में कोई चिड़िया मर जाये। ऐसी मृत्यु से बालकों के मन में

जिज्ञासा पैदा होती है। और यही वह अवसर है, जब उन्हें जीवन के इस अनिवार्य पहलू की जानकारी बिना किसी डर के दी जा सकती है।

बच्चे डाकू और पुलिस के खेल अक्सर खेलते हैं। धांय-धांय करके खयाली गोलियां चलाते हैं, एक दूसरे को मौत के घाट उतारते हैं और फिर से जिंदा हो जाते हैं। वे टूटे और बिगड़े हुए खिलौनों को माता-पिता आदि से सुधरवाते हैं। इन चीजों से उनके अंदर अपनी तथा माता-पिता की शक्तियों के प्रति गहरा विश्वास पैदा हो जाता है। परंतु जब मरी हुई चिड़िया को "सुधारने" में माता-पिता भी असमर्थता प्रकट कर देते हैं, तो मृत्यु की वास्तविकता उनकी समझ में आने लगती है।

जिन घरों में पालतू पशु-पक्षी रखे जाते हैं, उनमें बालकों को इन जीवों की मृत्यु का सामना करना ही पड़ता है। इन प्राणियों से उन्हें लगाव होना सहज और अवश्यंभावी है; इसलिए इनकी मृत्यु पर बच्चों का कम या ज्यादा शोकाकुल होना भी स्वाभाविक है। यदि घर का कुत्ता सड़क पर मोटर के नीचे आकर मर जाये, या तोते को बिल्ली मारकर खा ले, तो मृत्यु की ये असाधारण परिस्थितियां बच्चों के लिए असाधारण शोक का कारण बन जाती हैं। इन हालतों में बच्चों से सहानुभूति ही प्रकट करनी चाहिये—उन्हें दुःखी होने से रोकने का उपाय करना उचित नहीं होता। धीरे-धीरे बच्चे स्वयं ही अपने शोक को भूल जाते हैं।

कभी-कभी बच्चे अपने प्रिय पशु-पक्षियों का अंतिम संस्कार करने की इच्छा करते हैं। हम चाहे यह समझें कि इससे अंतिम संस्कारों की पवित्रता भंग होती है, लेकिन बालकों को रोकना नहीं चाहिये। कारण, बच्चों के लिए ये चीजें महत्त्व की होती हैं। इनसे उन्हें अपनी भावनाओं को प्रकट करने और उनसे मुक्ति पाने में सहायता मिलती है।

अपने किसी साथी अथवा उसकी माता या पिता आदि की मृत्यु होने पर बच्चे से यह कहना कि "भगवान उसे प्यार करते थे, इसलिए उन्होंने उसे अपने पास बुला लिया," नितांत अवांछनीय है। कारण, इस कथन की पहली प्रक्रिया बालक पर यह होगी कि भगवान मुझे भी प्यार करते हैं और मुझे भी बुला लेंगे। यही विचार उनके मन में अपने माता-पिता के संबंध में भी उठेगा। बच्चे को हर तरह से समझाना चाहिये कि आम तौर से लोग बहुत दिनों तक जीते हैं और बूढ़े होकर मरते हैं। उसका साथी जो इतनी कम उम्र में मर गया, ऐसा तो कभी-कभार और किसी रोग से हो जाता है। रोग भी ऐसा बताना चाहिये, जो अपने घर में न हुआ हो। खांसी, जुकाम, या बुखार आदि छोटी-मोटी बीमारियों के नाम हर्गिज नहीं लेने चाहिये।

माता-पिता की मृत्यु पर भी यही समझाना चाहिये कि तुम्हारे माता, पिता, दादा, दादी (वे सभी लोग, जो बच्चे को प्रिय हों) आदि बहुत दिन जियेंगे और तुम्हारी व तुम्हारे भाई-बहनों की देखभाल

करते रहेंगे। ऐसा कहना इसलिए आवश्यक है कि अपने साथी के माता-पिता की मृत्यु पर बच्चा भयभीत हो जाता है कि मेरे माता-पिता यदि चल बसे, तो फिर मेरी देखभाल कौन करेगा?



कुछ बड़े होने पर बच्चों को मृत्यु की कुछ समझ आने लगती है। उस समय उन्हें मौत से दूर रखना उचित नहीं। यदि घर में किसी वृद्ध व्यक्ति की मृत्यु हो जाये, जो उन्हें प्यारा भी हो, तो भी उन्हें साफ-साफ बताया जा सकता है कि अब दादाजी सब कष्टों से छूट गये। वे वापस तो नहीं आयेंगे, लेकिन उनकी याद हमारे दिल में बनी रहेगी। और यह भी बताना चाहिये कि बूढ़े होने पर मृत्यु सभी को आती है।

मां-बाप को रोते देखकर बच्चे भी रो लेंगे; लेकिन कुछ ही देर में आंसू पोंछकर हमेशा की तरह खेलने चले जायेंगे। उनका यही तरीका होता है शोक प्रकट करने का। वे हमारी तरह शोक में डूबे नहीं रह सकते। इस कारण वे खेलने-कूदने लगें, तो उन्हें डांटना नहीं चाहिये; क्योंकि इससे उनके मन में उलझनें ही पैदा होंगी। इस परिस्थिति में वे जो कुछ पूछें, उसका सीधा-सादा उत्तर देना उचित होता है, ताकि वे समझ सकें कि जीवन में मृत्यु का भी एक नियत स्थान है।

किसी बच्चे के भाई या बहन की मृत्यु होने पर उसे यह आश्वासन देना आवश्यक है कि वह सुरक्षित है। मां-बाप ऐसे समय अपने ही शोक में डूबे होते हैं, तथापि कितनी भी तकलीफ उठाकर उन्हें अपने जीवित बच्चे को यह आश्वासन देना ही चाहिये।

भाई या बहन की मृत्यु पर बच्चे उनके साथ के अपने लड़ाई-झगड़ों को स्मरण करके बहुधा अपराध की भावना से त्रस्त हो जाते हैं। उन्हें उस समय, उन घड़ियों की याद दिलाकर मुक्ति दिलानी चाहिये, जब वे साथ-साथ खेलते-गाते और आनंद मनाते थे, एक-दूसरे के साथ मिल-बांटकर खाते थे। इससे वे अपराध के भ्रम से मुक्त होंगे। परंतु यदि बच्चा अपने मृत भाई या बहन की बात न करना चाहता हो, तो दबाव डालकर बातें नहीं करनी चाहिये।

माता-पिता को दिवंगत बच्चे के शोक और स्मृति में खोकर कभी दूसरे बच्चों की अवहेलना नहीं करनी चाहिये और न ही उन पर जरूरत से ज्यादा प्यार–दुलार बरसाना चाहिये।

मां या पिता की मृत्यु होने पर बच्चे को ईमानदारी से यह समझाना आवश्यक है कि मृत्यु तो हो गयी है, परंतु तुम किसी भी प्रकार उनकी मृत्यु के लिए दोषी नहीं हो; और जिनकी मृत्यु हो गयी है, वे कभी वापस नहीं आयेंगे, पर जो लोग जिंदा हैं, वे हमेशा तुम्हें प्यार करते रहेंगे। यह समझाना अत्यंत आवश्यक है। अन्यथा उनके मानस में ऐसी गुत्थियां पड़ सकती हैं, जिनसे वे वयस्क होकर सामान्य जीवन बिताने में असमर्थ हो जायें।

माता या पिता की मृत्यु पर भी बच्चे ऐसा आचरण कर सकते हैं, जो उन परिस्थितियों में उचित नहीं लगता। जैसे, वे उदासीनता दिखायें, हो-हल्ला करने लगें, या क्रोध से उबल पड़ें। ये सभी व्यवहार वास्तव में शोक-प्रकाशन के उनके अपने तरीके हैं। कभी-कभी ऐसी हालत में बच्चा किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति अपनापा प्रकट करने लगता है। यह भी उसका एक तरीका ही होता है मृत्यु से उत्पन्न रिक्तता को भरने का।

हर माता-पिता को यह प्रयत्न अवश्य करना चाहिये कि बच्चा अपनी भावनाओं को मन में बंद करके न रखे। भावनाओं के फूट निकलने से शोक हलका हो जाता है, और उसे भुलाना आसान हो जाता है। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि हर हालत में भावनाओं पर नियंत्रण रखना चाहिये। परंतु बच्चों पर ऐसा नियंत्रण कभी लादना नहीं चाहिये। उन्हें जन्मजात अधिकार है कि वे हर्ष-शोक की भावनाओं को प्रकट करें।

दूसरी ओर, बच्चों को ऐसे व्यक्तियों की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए मजबूर भी नहीं करना चाहिये, जिनसे उन्हें लगाव और प्रेम न रहा हो। कारण, इस तरह के ढोंग को बच्चे पचा नहीं सकते। ऐसी मृत्यु पर बच्चों को जीवन के प्रति आदर प्रकट करना सिखाना चाहिये और समझाना चाहिये कि मृत व्यक्ति के संबंधियों आदि को कितना दुःख हो रहा होगा।

जब किसी किशोर वय के बच्चे के माता-पिता में से एक की मृत्यु हो जाती है, तब दूसरे जीवित व्यक्ति पर बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। इस व्यक्ति को किशोर के साथ अधिक आत्मीय संबंध बनाना चाहिये, ताकि वह दूसरे व्यक्ति के अभाव को कम-से-कम महसूस करे। वास्तव में इस तरह की आत्मीयता दोनों के लिए लाभकर होती है—दोनों एक-दूसरे का सहारा बन जाते हैं।

एक बात बहुत ध्यान रखने की यह है कि माता-पिता में से जो भी जीवित बचा हो, वह अपने बच्चे पर यह बोझ न डाले कि तुम्हें मृत व्यक्ति का स्थान लेना है। क्योंकि परिवार में उसका स्थान अब भी बच्चे का ही है और उसे बच्चे की तरह ही बढ़ना चाहिये, न कि किसी वयस्क के रिक्त स्थान की पूर्ति करने के विचार का भार उठाकर।



वह भीषण रेल-यात्रा

सत्यवती शर्मा

इतवार का दिन था, और जनवरी १९५२ की १३ तारीख। कैलिफोर्निया रेलवे लाइन की बिजली-सी रफ्तार वाली रेल 'सिटी आफ सानफ्रांसिस्को' क्राडोनर की ऊंचाइयों पर बर्फ के बड़े-बड़े खंडों को अपने रास्ते से हटाती हुई हाईसीरा के पश्चिमी ढलाव की ओर चली जा रही थी। रेल का रास्ता पहाड़ों के एक विशाल झुरमुट के बीच से था। पिछले एक हफ्ते से बर्फ के तूफान की तेजी का यह आलम था कि सफेद-सफेद, लेकिन लोहे की तरह ठोस बर्फ ने टेलिफोन के उन खंभों को, जो रेलवे लाइन के साथ-साथ चल रहे थे, पूरी तरह से ढंक लिया था। मौसम-विभाग ने घोषणा कर दी थी कि एक भीषण तूफान आने वाला है।

लेकिन किसी को क्या खबर थी कि आने वाला यह तूफान, कैलिफोर्निया के इतिहास में एक भयंकर 'ट्रेन तूफान' के नाम से याद किया जायेगा। रेल जिस इलाके से गुजर रही थी, वहां बहुत बार दुर्घटनाएं हो चुकी थीं। १८४६-४७ में वहां बर्फ का एक भयंकर तूफान आया था और बहुत-से आदमी दबकर मर गये थे। और अब उस तूफान से भी भयानक तूफान 'सिटी आफ सानफ्रांसिस्को' का स्वागत करने आ रहा था। लेकिन गाड़ी इस आने वाले घातक खतरे से बेखबर होकर एक नागिन की तरह बल खाती हुई आगे बढ़ रही थी, और बढ़ते-बढ़ते वह यूबागैप के दक्षिणी ढलान तक आ पहुंची थी।

रेल के शक्तिशाली डीजल इंजन के आगे बर्फ खोदने का एक फौलादी हल अभी तक थका नहीं था। लेकिन बर्फ के लोंदे ज्यादा वजनी और सख्त होते जा रहे थे। रेल की पटरी बर्फ में धंस चुकी थी। इंजन ने बहुत जोर लगाया, लेकिन पहियों ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। ड्राइवर ने विवश होकर रेल को पीछे हटाने की कोशिश की, पर रेल एक जबर्दस्त झटके के साथ बर्फ में ऐसी जमकर खड़ी हो गयी, जैसे उसने न हिलने-डुलने की कसम खा ली हो।

"अब बताइये मैं क्या करूं?" ड्राइवर ने

रेल-विभाग के अधिकारी से प्रश्न किया— "रेल तो न आगे सरकती है, न पीछे की ओर हटती है।"

रेल में कुल २२६ यात्री थे। लेकिन किसी को पता नहीं था कि बंद खिड़कियों के बाहर क्या हो रहा है, अथवा क्या होने वाला है! वे सब आनंद के साथ गर्म कोटों और कंबलों में दुबके आपस में गप्पें हांक रहे थे। गाड़ी के रुकते ही डाइनिंग कार के बैरे ने इस बेवक्त पड़ाव के लिए क्षमा-याचना करते हुए दोपहर का खाना बांटना शुरू कर दिया।

इस बीच बर्फ का भयंकर तूफान गाड़ी को अपनी लपेट में ले चुका था। जिस जगह रेल बर्फ में धंसी हुई थी, पहाड़ की चोटी उसके पास ही थी। रेल को यहां से ७०० फुट नीची घाटी में पहुंचना था। अगर इसे कोई बाहर से देखता, तो डर के मारे जरूर बेहोश हो जाता। अंग्रेजी के अक्षर 'एस' की तरह रेल पहाड़ी की ढलान पर फंसी हुई थी। उसके बीच के डिब्बे एक ओर इस प्रकार झुक गये थे, जैसे गिरने ही वाले हों। अगर ऊपर से कोई भारी हिमखंड गिर पड़े, तो क्या हो?

गाड़ी को रुके हुए जब बहुत देर हो गयी, तो मुसाफिरों में घबराहट पैदा होने लगी। फिर भी उन्हें यह संतोष था कि सानफ्रांसिस्को सिर्फ १८० मील दूर है। एक रेलवे-कंडक्टर ने यात्रियों को विश्वास दिलाया कि घबराने की कोई बात नहीं है। रेल की पटरियों की बर्फ साफ की जा रही है और थोड़ी ही देर में गाड़ी अपने सफर पर रवाना हो जायेगी।

रेलवे-विभाग के कर्मचारियों के लिए बर्फ के तूफानों में गाड़ियों का लाना-ले जाना कोई नयी बात नहीं थी। तूफान तो प्रायः आते ही रहते थे। इंजन के आगे लगे हुए नोंकदार फौलादी फाले की शक्ति पर उन्हें बड़ा भरोसा था, जो बर्फ को चीरता हुआ आगे बढ़ता चला जाता था। मगर इस तूफान ने तो उसे भी हराने की ठान ली थी।

दोपहर ढली, तो रेल की मदद के लिए एक बड़ा इंजन आया। उसने रेल के पीछे लोहे का एक कांटा फंसाकर उसे पीछे घसीटने की कोशिश की; लेकिन उसके पहिये टस-से-मस न हुए।

अब क्या किया जाये? तूफानी रात सिर पर थी। तीर-सी ठंडी हवाओं के तेज झोंकों ने रेल को एक खिलौने की तरह झटके देने शुरू कर दिये। शाम के सात बजे जब यात्रियों की आंखों के सामने उस भयावनी परिस्थिति का वास्तविक स्वरूप आया, तो रेल में एक सिरे से दूसरे सिरे तक भय की लहर दौड़ गयी। हरएक के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं।

रेल के अधिकारी यात्रियों को सांत्वना दे रहे थे और माइक्रोफोन पर लगातार घोषणा कर रहे थे कि रास्ते से बर्फ को हटाया जा रहा है। रेल जल्दी ही रवाना होगी। लेकिन इसके बावजूद यात्रियों को आशंका थी कि गाड़ी को रात-भर यहीं ठहरना पड़ेगा। तूफान का वेग पल-प्रतिपल

तेज होता जा रहा था और गाड़ी के चारों ओर बर्फ तेजी से जमती जा रही थी। ऐसा लग रहा था कि अगर बर्फ इसी रफ्तार से जमती रही, तो गाड़ी को वहां से हटाना असंभव हो जायेगा।

आधी रात के लगभग गाड़ी की बत्तियां बुझ गयीं और डिब्बों में अंधेरा छा गया। मालूम हुआ कि जनरेटर खराब हो गये हैं। सुबह होने तक बायलरों का पानी भी खत्म हो गया। इंजन बर्फ की तरह ठंडा पड़ गया। यात्रियों ने जैसे-तैसे बर्फ की यह तेज ठंडी रात गुजारी। ऐसी स्थिति में भला नींद किसको आती?

दिन निकलने पर भी बर्फ का तूफान उसी तेजी से जारी था। भूख के मारे मुसाफिरों का बुरा हाल हो गया। लेकिन भोजन-सामग्री बहुत कम बची थी। इसलिए बचा हुआ दूध बच्चों के लिए संभालकर रख दिया गया। गाड़ी में ताजा पानी भी करीब-करीब खत्म हो चुका था। जो पानी-टंकियों की तली में बच गया था, वह भी धीरे-धीरे जम रहा था।

इन मुसीबतों के साथ-साथ मुसाफिरों को एक और नयी परेशानी ने घेर लिया। बर्फ ने रेल को इस तरह ढंक लिया कि बाहर की ताजी हवा का कोई झोंका न अंदर आ सकता था और न अंदर की गंदी हवा ही बाहर निकल सकती थी। भीतर की हवा में आक्सिजन की मात्रा घटती जा रही थी।

रेल के कार्यकर्ताओं ने इस समय हौसला दिखाया और बेलचे संभालकर तेजी से बर्फ हटाने में लग गये, ताकि ताजी हवा गाड़ी में पहुंच सके।

भाग-दौड़ और परेशानी की इन घड़ियों में मुसाफिरों का व्यवहार एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति-भरा रहा। किसी ने खाने पर झपटने की कोशिश नहीं की। बल्कि कितने ही यात्रियों ने उदारता से अपना भाग दूसरे यात्रियों को दे दिया। पूरी रेल में सिर्फ एक डाक्टर था। उसके पास सौभाग्य से पेनिसिलीन, मार्फिया और एस्पिरीन का बक्सा था। उसने बीमार यात्रियों का इलाज शुरू कर दिया। पर दवाओं का सीमित भंडार कब तक चलता?

इस बीच ड्राइवर ने वायरलेस के द्वारा उन स्टेशनों को सूचना दी, जहां से सहायता की आशा थी। तूफान की तेजी के कारण बड़ी कठिनाई से वे स्टेशन उसका संदेश प्राप्त कर सके।

थोड़ी देर के बाद 'क्लब काज रेडियो' पर एक ऐलान मुसाफिरों ने सुना—"अभी-अभी खबर मिली है कि 'सिटी आफ सानफ्रांसिस्को' हाईसीरा के किसी इलाके में बर्फ के तूफान की लपेट में आ गयी है।"

इन शब्दों के साथ ही रेडियो एकदम बंद हो गया। यात्री भय और आशंका से चिल्ला उठे—"हे भगवान! क्या हमें इसका भी पता नहीं कि हम कहां हैं?" फिर सहायता किस प्रकार पहुंचेगी? यह सवाल रह-रहकर सबके मन को कंपा रहा था।

उनमें से एक आदमी, जो इस क्षेत्र में कई बार आ चुका था, यात्रियों को समझाता

नियमित उपयोग से फ़ोरहन्स टुथपेस्ट मसूढ़ों के कष्ट और दंत-क्षय को रोकता है

जवानों और बूढ़ों द्वारा अपनेआप भेजे गये प्रमाणपत्रों में मसूढ़ों की तकलीफ़ और दांतों की खराबी को रोकने के लिए फ़ोरहन्स टुथपेस्ट के गुणों की समान रूप से प्रशंसा की गयी है। ये प्रमाणपत्र जेफ़्री मैनर्स ऍण्ड कंपनी लि. के किसी भी कार्यालय में देखे जा सकते हैं।

"मैं दांतों के रोगों से पीड़ित था... मैंने आपका फ़ारहैन्स इस्तेमाल किया। ...अब मैं उनमें से किसी भी रोग से पीड़ित नहीं हूँ। लगभग २०–२५ आदमी फ़ारहैन्स इस्तेमाल करने लगे हैं। और मेरे परिवार में तो फ़ारहैन्स सभी को बेहद प्रिय है

—उदयशंकर तिवारी, पटना

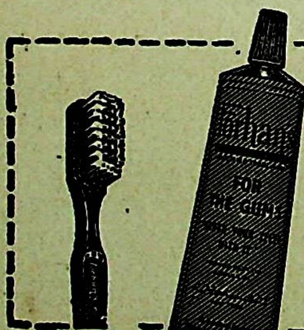
आपके वैज्ञानिक ढंग से तैयार किये गये फ़ारहैन्स टुथपेस्ट ने, जिसे मैं पिछले दस साल से इस्तेमाल कर रहा हूँ, मेरे मसूढ़ों की सारी तकलीफ़ों को दूर कर दिया। अब हमारे परिवार के सभी लोग नियमित रूप से फ़ारहैन्स टुथपेस्ट से ही दाँत साफ़ करते हैं।

—एस. एम. लाल, नयी दिल्ली।

फ़ोरहन्स

—एक दाँतों के डाक्टर द्वारा निर्मित टुथपेस्ट

दांतों की समुचित देखभाल के लिए फ़ोरहन्स टुथपेस्ट और दोहरे असरवाला फ़ोरहन्स टुथब्रश हर रोज़ रात में और सबेरे इस्तेमाल कीजिए ... और अपने दाँत के डाक्टर से नियमित मिलते रहिए।



मुफ़्त "दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा" संबंधी रंगीन पुस्तिका
यह पुस्तिका हिन्दी और अंग्रेज़ी में मिलती है। इसे मँगवाने के लिये इस कूपन के साथ १५ पैसे के टिकट (डाक-खर्च के वास्ते) इस पते पर भेजिए:
मेनर्स डेण्टल एडवाइज़री ब्यूरो, पोस्ट बैग नं. १००३१, बम्बई-१

नाम ____________ आयु ______

पता ____________

भाषा: ____________

CS

54 F-152 HN

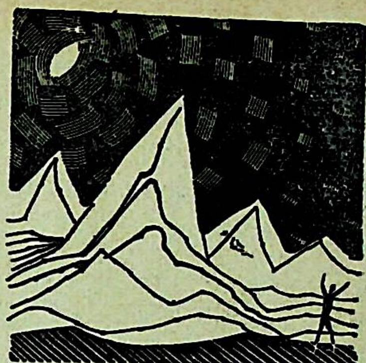
हुआ कह रहा था—"साथियो, आप धीरज से काम लें। जब तक तूफान नहीं रुकता, बाहर से हमारी सहायता के लिए कोई नहीं आ सकता। आइये, हम बिस्तरों पर लेट-कर सोने की कोशिश करें।"

लेकिन इन मौत की घड़ियों में नींद किसे आती? दिन निकला हुआ था, लेकिन गाड़ी में घुप अंधेरा था। रेल के कुछ कर्मचारियों के पास टार्चें थीं, जिनकी सहायता से वे बड़ी कठिनाई से गाड़ी के अंदर चलने-फिरने का प्रयत्न कर रहे थे। शाम हुई तो पता चला कि स्कीइंग करते हुए कुछ नौजवान गाड़ी तक पहुंचने में सफल हो गये हैं। वे अपने साथ थैलियों में खाने की सामग्री भी लाये थे। आते ही उन्होंने रेल-कर्मचारियों के साथ बेलचों से बर्फ हटाना शुरू कर दिया।

इतने में किसी ने चिल्लाकर कहा—"जल्दी से कोई यहां आये, मेरी पत्नी बेहोश हो गयी है।" रेलवे के डाक्टर ऱूबेल के साथ एक नर्स भी थी। आवाज सुनते ही वे कुछ आदमियों के साथ गाड़ी के अंदर के बड़े बरामदे से गिरते-पड़ते उस डिब्बे तक पहुंचे, जहां से आवाज आयी थी। टार्च की रोशनी में डिब्बे में झांककर देखा, तो अजीब ही दृश्य था। जितने भी आदमी थे, सबके-सब बेहोश पड़े थे।

डाक्टर ने ऊंची आवाज में कहा—"भग-वान रक्षा करे। यहां कार्बन डाइ-आक्साइड भर गयी है ......अगर इसे जल्दी नहीं निकाला गया, तो ये सबके-सब मर जायेंगे।"

जनरेटर के इंजन में लगे कार्बन खारिज



करने के पाइप में बर्फ जम जाने से गैस डिब्बे में भर गयी थी। पूरी-की-पूरी जनरेटर यूनिट फौरन बंद कर दी गयी। खिड़कियों के शीशे भी तोड़ डाले गये और बेहोश मुसा-फिरों को घसीट-घसीटकर बाहर कारि-डार में लाया गया।

इसी बीच सर्विस-मैन और सहायता-पार्टी के नौजवान लगातार बर्फ हटाने में लगे हुए थे। मुसीबत यह थी कि जिस रफ्तार से वे बर्फ हटा रहे थे, उससे दुगुनी रफ्तार से बर्फ गिर रही थी।

आखिर, यह रात भी गुजर गयी और मंगल का दिन अपने साथ पहले से भी ज्यादा भयानक तूफान लेकर आया। यात्रियों को आधा ही नाश्ता दिया गया—आधा कप काफी और आधा कप शोरबा। डाइनिंग कार में तेल से जलने वाले चूल्हे ठंडे पड़े थे; क्योंकि तेल खत्म हो चुका था। लकड़ी के फर्श को तोड़कर किसी तरह शोरबा और काफी तैयार की गयी। दो दिन के भूखे यात्री चेतना खो चुके थे। वे

निराश हो मौत की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

पर दोपहर तक उनकी निराशा आशा-भरी मुस्कान में बदल गयी । आखिरकार सहायता आ पहुंची थी । अमरीकी स्थल और जल-सेना के जवान, टेलिफोन कंपनियों और कैलिफोर्निया हाईवे के सहायता और सुरक्षा के दस्ते कील-कांटे से लैस होकर 'सिटी आफ सानफ्रांसिस्को' को बचाने के लिए पहुंच गये थे ।

उनके पीछे-पीछे एक सहायता-रेल भी चल पड़ी थी । इसे मुसाफिरों को उनके गंतव्य स्थान तक पहुंचाने का काम पूरा करना था । लेकिन इसकी रफ्तार बेहद सुस्त थी—एक मील प्रति घंटा । सिटी आफ सानफ्रांसिस्को के रास्ते में बड़े-बड़े हिम-खंड सिर उठाये खड़े थे । कई जगह तो इनकी ऊंचाई ४० फुट तक पहुंच गयी थी । इन्हें हटाना आसान नहीं था । सभी मुसाफिरों को गाड़ी से उतारकर ३५ मील पीछे ले जाकर सहायता-रेल में चढ़ाया गया । यह गाड़ी एक दूसरे रास्ते से उन्हें सानफ्रांसिस्को ले गयी ।

इस तरह कैलिफोर्निया के इतिहास की यह भयंकरतम रेल यात्रा पूरी हो पायी, जिसे याद करके आज भी लोगों के कलेजे कांप उठते हैं ।



सामूहिक मृत्यु का आनंद

सन १९२३ की बरसात में साबरमती में बाढ़ आयी । नदी का पानी तेजी से चढ़ता आ रहा था । आश्रमवासियों की जान खतरे में थी । अहमदाबाद से सरदार पटेल ने खबर भेजी कि आश्रम तुरंत खाली करके सभी लोग शहर में आ जायें, सवारियां भेजी जा रही हैं ।

बापू विचार में पड़ गये । घंटा बजाकर आश्रमवासियों को प्रार्थना-स्थल पर इकट्ठे होने की सूचना दी गयी । पानी आश्रम की सीढ़ियों पर चढ़ने लग गया । काल का रौद्र रूप सामने था ।

सभी इकट्ठे हुए । बापू ने कहा—"भगवान के कालरूप का हम सभी दर्शन कर रहे हैं । उनकी लपलपाती जीभ शायद थोड़ी ही देर में हम सभी को समेट लेगी । आश्रम खाली करने की सूचना भी आ गयी है । जो शहर जाना चाहें, जा सकते हैं । पर मैं तो आश्रम के पशु-पक्षियों और जानवरों को छोड़कर यहां से नहीं जाऊंगा ।"

सभी आश्रमवासी उनके साथ ही रहे । नदी के पानी का चढ़ाव देखकर सब आनंद-विभोर हो रहे थे । इस पर एक भाई ने पूछा—"बापू, मौत सामने खड़ी है, पर ये आश्रम-वासी तो आनंदमग्न हैं । ऐसा क्यों ?"

बापू ने तुरंत उत्तर दिया—"भाई, यह तो सामूहिक मृत्यु का आनंद है ।

—विनुभाई शाह





मलय

खोज-खबर

हम भूले नहीं हैं, न कभी भूल सकेंगे कि लगभग तीन वर्ष पूर्व मांट बलाक की बर्फीली कब्र में एक पूरा-का-पूरा हवाई जहाज दफन हो गया था और हमारे महान परमाणु-वैज्ञानिक डा० भाभा वहीं कहीं हमेशा-हमेशा के लिए सोये हुए हैं। आज तक उस स्थान का पता नहीं लग सका, जहां वह जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के बाद गिर गया था।

अर्थात् अब तक कोई ऐसा तरीका नहीं मालूम था, जिसके जरिये उस जगह का पता लगाया जा सके, जहां जहाज दुर्घटना-ग्रस्त हो जाने के बाद गिर जाता है। जो तरीका इस काम के लिए अपनाया जाता है, वह वही पुराना घिसा-पिटा-सा है। दूसरे जहाज या हेलिकाप्टर हवा में उड़ान भरते हैं और ऊपर से झांकते हैं कि कहीं कुछ दिखाई पड़ जाये। मैदानों में इस तरीके से काम चल जाता है; मगर पहाड़ वगैरह पर यह तरीका हमेशा कामयाब नहीं हो पाता। यह ऐसी कमी थी, जो सभी को खलती थी।

अब एक रास्ता ढूंढ़ निकाला है कनाडा की राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद् के श्री एच० स्टीवेन्स ने। सी० पी० आई० (क्रैश पोजिशन इंडिकेटर) नामक इस नयी विधि से आसानी से उस जगह का पता लगाया जा सकता है, जहां दुर्घटनाग्रस्त जहाज गिर गया हो। इसमें जहाज के ढांचे में एक यंत्र लगा दिया जाता है, जो जहाज के जमीन या अन्य किसी पिंड से टकराते ही एक खास तरह के संकेत भेजना शुरू कर देता है। यह संकेत ८० मील के दायरे में एकदम 'पिक अप' किये जा सकते हैं। इन संकेतों के सहारे सीधे दुर्घटना-स्थल पर पहुंचा जा सकता है।

बहुत मुमकिन है, इसके जरिये अब ऐसे दुर्घटनाग्रस्त लोगों को मरने से बचाया जा सके, जो ठीक वक्त पर सहायता न पहुंचने के कारण मर जाया करते थे। और यह न सही, तो कम-से-कम अब लाश तो घर वालों को मिल ही सकती है।

कोयले की खान

घड़घड़ाती रेल-गाड़ियां कोयले के बल से दौड़ती हैं। मगर रसायन-उद्योग के लिए भी कोयला एक महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। अंतर इतना ही है कि वहां कोयला ईंधन के रूप में नहीं, कच्ची सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। हवा की गैरहाजिरी में खूब गर्म किये जाने पर कोयले का भंजन हो जाता है और इससे कई दूसरे पदार्थों की प्राप्ति होती है, जो रसायन-उद्योग के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

कोयले को गर्म करके कोयले का भंजन करने में समय लगता है, ईंधन खर्च होता है और इस प्रकार यह प्रक्रम महंगा पड़ता है। अब अमरीका के 'ब्यूरो आफ माइन्स' के कोयला अनुसंधान केंद्र ने कोयले के भंजन के लिए ध्वनि की तरंगों का सफलता के साथ प्रयोग किया है। अधिक आवृत्ति वाली परा-श्रव्य (सुपरसानिक) ध्वनि-तरंगें जब कोयले पर छोड़ी जाती हैं, तो जटिल रसायनों के रसायन-बंध टूट जाते हैं और वे सरल पदार्थों में बदल जाते हैं। इस नये प्रक्रम को अब 'सोनोलिसिस' (ध्वनि-विश्लेषण) नाम से जाना जाता है। पिछले दिनों ध्वनि-तरंगों के अनेकानेक नये उपयोग सामने आये हैं, उन सबमें यह औद्योगिक दृष्टि से सर्वाधिक क्रांतिकारी है।

अकेली लड़की

आनुवंशिकता, जीन और गुणसूत्र ये शब्द अब आम पाठक के लिए नहीं रह गये हैं।

प्रत्येक सामान्य आदमी की कोशिकाओं में गुणसूत्रों के तेईस जोड़े रहते हैं। हरएक जोड़े का एक गुणसूत्र पिता से और दूसरा माता से मिलता है। यह भी मालूम है कि इन तेईस जोड़ों में से बाईस जोड़े अलिंगी (आटोसपल क्रामोसोम) गुणसूत्र का और एक जोड़ा सेक्स गुणसूत्रों का होता है। ऐसे मामले भी सामने आये हैं कि किसी-किसी आदमी में एक ही सेक्स गुणसूत्र होता है, यानी दूसरा नदारत रहता है। इस प्रकार के व्यक्तियों के सेक्स-अंगों का विकास सामान्य न होकर, असामान्य होते देखा गया है। पिछले दिनों एक शोध से ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि आदमी में एक सेक्स गुणसूत्र फालतू हो, तो यह संभावना है कि वह व्यक्ति बहुत अधिक लंपट और खूंखार बने।

कुछ लोगों में एक फालतू अलिंगी गुणसूत्र भी पाया जाता है। ऐसे लोग 'मांगोलायड' कहलाते हैं। इनका शारीरिक और मानसिक विकास ठीक ढंग से नहीं हो पाता। लेकिन चिकित्साशास्त्र के इतिहास में अभी तक कोई ऐसा मामला दर्ज नहीं था, जिससे अलिंगी गुणसूत्र के अभाव का पता चलता हो। परंतु हाल ही में मेरीलैंड (अमरीका) के नेशनल इंस्टिटयूट आफ चाइल्ड हेल्थ एंड ह्यूमन डेवलेपमेंट में एक ऐसी ही लड़की को खोज निकाला गया है।

अनेक डाक्टरों और वैज्ञानिकों का खयाल है कि यह बच्चा अपने किस्म का अकेला ज्ञात बच्चा है, जिसमें अलिंगी गुणसूत्रों का पूरा एक जोड़ा नदारत है। इस विशेष गुणसूत्रयुगल के अभाव के कारण बच्चे के

विकास में क्या-क्या कमियां रहती हैं, इसका विशद अध्ययन किया जा रहा है। अध्ययन पूरा होने पर यह तय किया जा सकेगा कि अमुक गुणसूत्र मनुष्य के विकास में किन लक्षणों से लिए उत्तरदायी है।

पत्ती से प्रोटीन

भोजन पेट भर मिल जाये, इतना ही काफी नहीं होता। जरूरी यह भी है कि उसमें शरीर के लिए आवश्यक समस्त पोषण-तत्त्व भी पर्याप्त मात्रा में उपस्थित रहें। भारत जैसे उन्नति के लिए प्रयत्नशील देशों के सामने दोनों प्रकार की समस्याएं हैं—खाद्य पदार्थों का अभाव और कुपोषण।

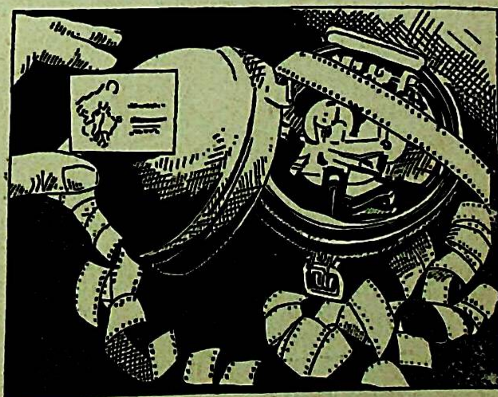
कुपोषण का सामना करने के लिए अनेक प्रयत्न हो रहे हैं। हाल ही में इंग्लैंड के एक कृषि शोध-संस्थान ने एक ऐसा यंत्र तैयार किया है, जिसकी सहायता से गेहूं की पत्तियों में से प्रोटीन निकाला जा सकता है। एक टन पत्तियों में से लगभग ४० पौंड प्रोटीन इस यंत्र की सहायता से निकाला गया है। एक दिन में यह यंत्र लगभग पांच हजार मनुष्यों की प्रोटीन संबंधी दैनिक जरूरतें पूरी कर सकता है।

इस यंत्र से निर्मित प्रोटीन को हाल में मद्रास के स्कूली बच्चों के भोजन में मिलाकर परोसा गया था। परिणाम संतोषजनक रहा।

हमारे गांवों के लिए यह यंत्र काफी सहायक सिद्ध हो सकता है। अब तक गेहूं की पत्ती केवल चारे के काम आती रही है, इसके अतिरिक्त इसका और कोई उपयोग नहीं किया जा रहा है। अब वह भी कुपोषण-जैसी भयंकर स्थिति का सामना करने के लिए उपयोग में आयेगी। लेकिन हमारे गाय-बैल इस समाचार से विशेष प्रसन्न नहीं होंगे; क्योंकि वे भी तो कुपोषण के शिकार हैं।

डाक के डाकू पर डांट

डाकिया वक्त से आ जाये, तो कितनी तसल्ली होती है। डाक के समय से न मिलने के पीछे डाकिया ही नहीं, सार्टर, रेलगाड़ी अथवा डाक-वैन भी जिम्मेदार हो सकते हैं। गलती कहां हुई है, इसका पता लगाने के लिए पश्चिमी जर्मनी का डाक-विभाग एक ऐसे 'मिनि-स्पाई' की सहायता ले रहा है, जो देखने में बिलकुल एक पैकेट जैसा लगता



डाक के विलंब को पकड़ने का यंत्र

है। इसे साधारण डाक के साथ मिलाकर इस बात का पूरा ब्योरा प्राप्त किया जा सकता है कि डाकघर से डाक कब रवाना हुई, कहां कितनी देर अटकी रही और कब अपने गंतव्य स्थान पर पहुंची।

फ्रैंकफर्ट की एक फर्म द्वारा तैयार किये गये इस यंत्र में एक दोलन-लेखी (आसिलोग्राफ) रहता है। यंत्र की सुई निरंतर घूमते हुए एक कागज के फीते पर रिकार्डिंग करती रहती है कि यंत्र इस समय रेल, मोटर आदि किसी वाहन में सवारी कर रहा है, या कहीं स्थिर पड़ा हुआ है। और विविध वाहनों की रफ्तार भी अलग-अलग ढंग से अंकित होगी। इस तरह यह यंत्र बता सकता है, कहां देर हुई, किसने देर की, रास्ते में कितना समय लगा, और कितनी देर तक वह पैकेट डाकखाने में यों ही पड़ा रहा।

यह गोल यंत्र 'फोम प्लास्टिक' के एक बक्स में बंद रहता है। शाक प्रूफ होने के कारण रास्ते में इसके टूटने-फूटने का भी कोई डर नहीं।

एक सेन्टिमीटर प्रतिघंटे की रफ्तार से घूमने वाले कागज का एक फीता एक महीने तक काम दे सकता है।

पश्चिम जर्मनी की डाक कर्मचारी यूनियन ने इस शर्त पर इस यंत्र को स्वीकार कर लिया है कि इसका उपयोग किसी डाक कर्मचारी को सजा देने के लिए नहीं, केवल डाक-व्यवस्था की दक्षता बढ़ाने के लिए ही किया जाये।



वे बातें, जो आज सपना हो गयीं

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के वे दिन सोने के थे और रातें चांदी की, जब आचार्य नरेंद्रदेवजी वहां के उपकुलपति थे और देश-विदेश के अनेक विद्वान, राजनेता तथा जनसेवक प्रायः उनके पास आकर ठहरते थे। आचार्यजी का उन्मुक्त हास्य अक्सर ठहाका बनकर गूंजा करता था और उपकुलपति-निवास के पास से बाहर से गुजरने वाले हर व्यक्ति को उनकी उपस्थिति का सहज ही भान हो जाता था।

एक रविवार को भारत-सरकार के तत्कालीन गृहमंत्री पं० गोविंदवल्लभ पंत आचार्यजी के निवास पर दोपहर का खाना खाने आये। खाने के बाद दोनों बाहर के बरामदे पर सर्दी की धूप का आनंद ले रहे थे कि उपकुलपति-निवास के अहाते में तीन-चार गधे कहीं से घुस आये और रेंकने लगे।

पंतजी को इस पर मजाक सूझा और उन्होंने एक तीर छोड़ा—"नरेंद्रदेवजी, यहां गधे भी रहते हैं?"

"नहीं, कभी-कभी आ जाते हैं।" छूटते ही आचार्यजी ने जवाब दिया। फिर दोनों महापुरुष कुछ मिनिटों के लिए ठहाके की दुनिया में खो गये। —शंकरदयाल सिंह



अब !

सिर्फ़ १२ ही दिनों में अधिक सफ़ेद दाँत !

शक्तिशाली नये फ़ॉर्मूले से बने

पेप्सोडेण्ट से

सिर्फ़ १२ ही दिनों में दाँत
अधिक स्वस्थ, अधिक सफ़ेद
हो जाते हैं

पेप्सोडेण्ट में अब तीन नयी ख़ूबियाँ हैं :
नया फ़ॉर्मूला, नया ज़ायक़ा, नया पैक !

बरसों की खोज के परिणाम,
नये फ़ॉर्मूले के अनुसार पेप्सोडेण्ट में
अब इरियम प्लस एल्डी ३ मिला
होता है। यह शक्तिशाली तत्व दाँतों के ऊपर की
धुँधली परत को हटाता है और दाँतों की स्वाभाविक चमक
और सुन्दरता निखारता है; साथ ही भोजन के कीटाणुवाले
छुपे हुए टुकड़ों को निकाल कर दाँतों को सड़ने से बचाता है।
इसका शीघ्र असर करनेवाला ढेर-सा झाग दाँतों के बीच की
छोटी से छोटी दरार को पूरी तरह साफ़ करता है।
पेप्सोडेण्ट का पहले से अधिक तेज़ मिण्ट ज़ायक़ा आपको
बहुत पसन्द आएगा। नया पेप्सोडेण्ट आज ही ख़रीदिए।
फिर देखिए, १२ ही दिनों में इसका आश्चर्यकारक असर!



नया फ़ॉर्मूला	नया ज़ायक़ा	नया पैक

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन   रजिस्टर्ड यूज़र्स

पाप और प्रायश्चित्त

वि० ल० मुजुमदार

मानो अपनी बदसूरती के एहसास से सदा उदास-सा रहने वाला जीव ऊंट कितना उग्र और भावुक हो सकता है, इसका अंदाज बहुत कम लोगों को होगा।

कच्छ और पाकिस्तान की सीमा पर दिनारा नाम का एक गांव है। वहां के सुरुभा नामक किसान ने दो ऊंट पाल रखे थे। उनमें से एक जरा जिद्दी और चिड़चिड़े स्वभाव का था; पर था खूब तगड़ा और मेहनती। इसलिए सुरुभा उसकी बदमिजाजी को भी निभा लेता था।

लेकिन ऊंट का चिड़चिड़ापन दिनों-दिन बढ़ता जा रहा था। साथ ही उसमें एक और असाधारण परिवर्तन होता जा रहा था। जब क्रोध में न हो, तब वह अपने मालिक के पीछे-पीछे घूमता रहता था। उसकी आंखों में प्रेम और स्वामिभक्ति की एक अनोखी झलक दिखाई देने लगी। यह परिवर्तन देखकर सुरुभा बहुत चकित था।

एक दिन सुरुभा को रेगिस्तान से माल ढोकर बाहर ले जाने का ठेका मिला। पैसा कमाने का अच्छा अवसर था। दोनों ऊंटों को उसने काम में लगा दिया, ताकि अधिक-से-अधिक खेपें ढोयी जा सकें और ज्यादा-से-ज्यादा पैसा बने।

लेकिन आमदनी बढ़ने के साथ सुरुभा को शराब का चस्का लग गया। एक दिन नशे की झोंक में उसने जिद्दी ऊंट के थूथन पर जोर से लाठी मार दी। ऊंट बौखला उठा और मारे क्रोध के अपना सिर पटकने लगा। लेकिन सुरुभा ने उसे कसकर बांध दिया। सुरुभा की पत्नी ऊंट के क्रोधावेश को देखकर घबरा उठी। उस रात खेत में कुछ काम था। सुरुभा उसे पटाकर वहीं खेत पर ही सो गया।

इधर जिद्दी ऊंट दोपहर के अपमान से छटपटा रहा था। उसकी आंखों में प्रतिशोध की आग धधक रही थी। आधी रात के बाद तो वह एकदम बावला हो उठा। उसने गले में बंधी रस्सी को चबा-चबाकर काट डाला और खेत की ओर सरपट दौड़ चला। वह सीधा वहां जा पहुंचा, जहां थका-हारा सुरुभा गहरी नींद में सो रहा था।

सुरुभा को देखते ही ऊंट बलबलाया। फिर अपने अगले पैरों के घुटने सुरुभा की छाती पर टिकाकर अपने सीने से सुरुभा के गले पर धक्के मारने शुरू कर दिये। उन धक्कों की मार और छाती पर टिके घुटनों के दबाव से सुरुभा का पसलियों का पंजर टूट गया। उसकी आंतें बाहर निकल आयीं

और जीवन-लीला समाप्त हो गयी। थोड़ी देर तक ऊंट उस निर्जीव काया को उसी तरह मसलता-रौंदता रहा।

धीरे-धीरे जब ऊंट का आवेश उतरा। सुरुमा के क्षत-विक्षत शव को देखकर उसे अपनी करनी की भीषणता का भान हुआ और वह शोकाकुल हो गया। उसकी आंखें डबडबा आयीं और उनमें से अश्रुधारा बह चली। उसने सुरुमा की नाक और मुंह को सूंघा, फिर पैरों को, जैसे अपने स्वामी का अंतिम चरण-स्पर्श कर रहा हो। थोड़ी देर तक वह उस निश्चेष्ट शरीर को घूरता रहा। उसका हृदय एक विचित्र भावना से भर उठा और वह गांव की ओर दौड़ पड़ा।

भागता-भागता वह घर पहुंचा और मालकिन को जगाने के लिए दरवाजे पर थूथन से प्रहार करने लगा। बेचारी औरत भरी नींद में घबराकर उठ बैठी। उसे चोर-डाकुओं की आशंका हुई। उसने धीरे-से उठकर दिया जलाया। दरवाजे की दराज से झांककर देखा, तो और कोई नहीं, घर का ही ऊंट था। ऊंट ने भी मानो मालकिन को डाकुओं की आशंका से मुक्त करने के लिए ही जोर की फुंकार लगायी।

परंतु ऊंट को देखते ही सुरुमा की पत्नी को दोपहर का कांड याद आ गया। उसका कलेजा कांप उठा। वह समझ नहीं पा रही थी कि इतनी मजबूत रस्सी ऊंट ने कैसे तोड़ डाली। अंत में उसने हिम्मत करके दर-वाजा खोला।

दरवाजा खुलना था कि ऊंट अपनी माल-किन के पैरों में सिर रखकर बैठ गया और आंसुओं से उन्हें भिगोने लगा। इस विचित्र व्यवहार से चकित मालकिन ने दिये की रोशनी में ऊंट को गौर से देखा, तो पाया कि उसके घुटने और मुंह खून से लथपथ हैं। उसे असलियत का आभास-सा हो गया। रात के अंधेरे में ही वह चीखती-चिल्लाती हुई खेत की ओर भागी। उसकी पुकार सुनकर पड़ोसी भी जग गये और पीछे-पीछे खेत पर पहुंचे।

सुरुमा की क्षत-विक्षत काया को देखकर लोगों को सारी बात समझते देर न लगी। उन्होंने मुड़कर देखा, तो ऊंट कुछ ही दूर पर जमीन पर लोट रहा था, मानो कह रहा हो—"मैं खूनी हूं, मुझे दंड दो।" एक पड़ोसी ने चोरों के भय से साथ लायी हुई अपनी बंदूक से तीन गोलियां दागकर ऊंट की जीवन-लीला भी समाप्त कर दी।

एक बार गर्दन उठाकर ऊंट ने मालकिन को इस तरह देखा, जैसे क्षमा-भिक्षा मांग रहा हो, फिर ठंडा हो गया।



मोटर-कंपनी के एजेंट ने धनी किसान से कहा—"आप एक कार जरूर खरीदें।"

"कार के बजाय मैं यदि गाय खरीदूं तो अधिक अच्छा है।"

एजेंट ने कहा—"आपको गाय पर बैठा देखकर तो लोग हंसेंगे।"

किसान ने तुरंत उत्तर दिया—"और कार से दूध दुहते देखकर तो शायद लोग मेरी प्रशंसा करेंगे।"

—अनुराग शर्मा

सुबह की तरोताज़गी दिनभर महसूस कीजिए

नहाने के बाद बदन पर पोंड्स ड्रीमफ़्लावर टाल्क छिड़क लेने से सुबह की तरोताज़गी का मज़ा दिनभर मिलता रहता है।

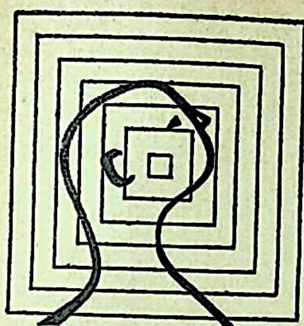
पोंड्स ड्रीमफ़्लावर टाल्क पसीने को फ़ौरन सोख लेता है...कड़ी गर्मी में भी निरन्तर ठंडक और आराम पहुँचाता है। इसकी भीनी-भीनी महक घण्टों बदन पर छायी रहती है। यह एक ऐसा टाल्कम पाउडर है जो बारहों महीने इस्तेमाल किया जा सकता है।



पोंड्स
ड्रीमफ़्लावर टाल्क
आज़ का सबसे महीन टाल्कम पाउडर!

चीज़ब्रो-पोंड्स इन्कॉर्पोरेटेड
(सीमित दायित्व सहित यू.एस.ए. में संस्थापित)

P-6986



आगे बढ़कर मिलिये

१. यह अपेक्षा मत कीजिये कि लोग खुद चलकर आपसे मिलने के लिए आयें।

२. यह गांठ बांध लीजिये कि मेल-जोल और मैत्री का सही तरीका यह है कि आप खुद नियमित रूप से जाकर लोगों से मिला-जुला करें। बेशक शुरू में इसमें कठिनाई महसूस होगी; पर बाद में सहज होता जायेगा।

३. यह मत सोचिये कि परिचय का दायरा तभी बढ़ सकता है, जब कोई परिचय कराने वाला हो।

४. आप स्वयं प्रयत्न करेंगे, तो ही काम बनेगा। याद रखिये, लोगों में आपकी दिलचस्पी होनी चाहिये (अरुचि नहीं), और आपको यह स्पष्ट रूप से दूसरों पर प्रकट करना चाहिये कि उनमें आपकी दिलचस्पी है, उनसे आपको सहानुभूति है, और आपको उनकी संगति में सुख मिलता है।

५. यह न सोचिये कि लोगों का यह फर्ज है कि उन्हें आप अच्छे-बुरे जैसे भी लगें, आपको सीने से लगायें।

६. केवल आपके स्वजन ही आपको बहुत निकट से और बहुत समय तक देख पाते हैं और यह समझने का अवसर हासिल कर पाते हैं कि आप अंदर से कितने कोमल और भले हैं। यह मत भूलिये कि सामाजिक रूप से आप जिन लोगों से मिलते हैं, वे तो आपको आपके हुलिये, बोल-चाल और व्यवहार से ही परखेंगे।

७. यह मत समझिये कि जो दिख जाये, उसके साथ हो लेना ही मिलना-जुलना है।

८. याद रखिये मित्रता समान अभिरुचि के आधार पर पनपती है। ऐसा कोई कार्य-कलाप शुरू कीजिये, जिसमें वस्तुतः आपकी रुचि हो, और ऐसे लोगों की तलाश में रहिये, जिनकी रुचि उस कार्य-कलाप में हो।

९. लोगों को अकेलेपन की ऊब से बचने का साधन समझें।

१०. यह बात गांठ बांध लीजिये कि जब आपकी मानसिक सुख-शांति इस बात पर निर्भर नहीं रहेगी कि दूसरे आपको कैसे अपनाते हैं, आपके साथ कैसा व्यवहार करते हैं, तब एकाकीपन से छुटकारा पाना, मित्र बनाना, मिलना-जुलना आपके लिए आसान हो जायेगा। यदि आप स्वयं प्रसन्न रह सकते हैं, स्वयं अपना मनोविनोद कर सकते हैं, तो लोगों से मेल-जोल बढ़ाने में आपको आसानी होगी।



सार सरोवर

स्नेह-समृद्ध पीढ़ी के प्रतिनिधि

दद्दा भी नहीं रहे और वृंदावनलाल भी अब नहीं रहे, दोनों सरस्वती के वरद पुत्र थे और सगे भाइयों की तरह थे। इस प्रकार लगता था कि एक परिवार के हैं, एक हैं। इस तरह वे एक दूसरे को चाहते थे। वह पीढ़ी संभवत: अपने स्नेह में बड़ी समृद्ध थी और मैं समझती हूं कि आज की पीढ़ी अपने स्नेह में उतनी ही कृपण हो गयी है।

वह युग स्नेह-समृद्ध था। वृंदावनलालजी भी इतने स्नेही थे और उनके स्नेह के कारण झांसी ऐसी लगती थी, जैसे मेरे पिता का ही घर है। आज वे हमारे बीच में नहीं हैं। उनमें भारत का इतिहास जागता है। धरती बोलती है।

वे दंड-बैठक इतनी लगाते थे कि हम लोगों की सारी सभाएं भंग हो जाती थीं। मैंने कहा कि आप यह रात-दिन क्या करते हैं ? आधे दिन तक उठते-बैठते रहते हैं, तो उन्होंने कहा कि बहन, बात यह है कि मैं विश्वास करता हूं कि दुर्बल शरीर मन को दुर्बल करता है। और यदि मन और शरीर दोनों दुर्बल हों, तो बुद्धि को दुर्बल करते हैं। और तीनों मिलकर शरीर का सर्वनाश करते हैं। हृदय की शक्ति को इस तरह बांध देना चाहिये कि उड़ान अपनी एक दिशा में हो। जहां हम चाहते हैं, वहां शक्ति का प्रयोग करें, वहीं मनो-विचार सुंदर हो जाते हैं।

कहां क्या मिल सकता है, उसके संबंध में जितना ज्ञातव्य है, उसे लेकर ज्यों-का-त्यों रख दें, तब तो इतिहास की बात हो गयी, उतनी ही नीरस बात हो गयी। उसको फिर अपनी मानवीय संवेदना में, किस पात्र को कितनी संवेदना से चित्रित करना चाहिय वे जानते थे। उनके पात्र, जो उपन्यास आप पढ़ेंगे, उसमें साधारण समझ लीजिये, साधारण व्यक्ति हो तो, साधारण घटना हो तो, साधारण परिवेश हो तो, वही गर्द, वही झाड़ियां, वही करौंदे, वे सब जो वहां हैं, वही टेसू-पलाश, जो कुछ भी वहां के पर्वत, वहां की नदी, इतनी तन्मयता से लिखते थे कि लगता था कि उनका आराध्य

वहीं उपस्थित था। और सचमुच इस धरती को, और बुंदेलखंड की धरती को उन्होंने आश्चर्य जनक रूप से समझा था। उसके साथ उनके हृदय का स्पंदन मिला हुआ था। कुछ ऐसा नहीं था कि जो वे उसके संबंध में न जानते हों। सब कुछ जानते थे। सामान्य जन उनके पास आकर बैठते थे, जिनसे हम संभवत: बात भी न करें। उन सबसे भी वे उस समय को निकाल लेते थे।

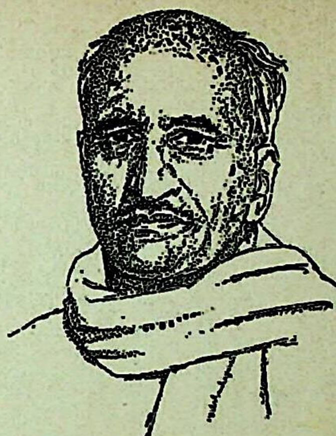
—महादेवी वर्मा [धर्मयुग]

०००

दंगे और पुलिस

सरकार और सरकारी अफसरों का बार-बार यह दोहराना उचित नहीं है कि दंगों का दमन करते हुए पुलिस इस बात की पूरी सावधानी बरतेगी कि यथासंभव हता-हतों की संख्या बहुत कम हो। इन घोषणाओं से उपद्रवियों को बढ़ावा मिलता है। पुलिस की उपस्थिति भी उन्हें उपद्रव से रोकती नहीं। उपद्रवियों को शांत रहने की प्रेरणा तभी मिलती है, जब उन्हें मालूम हो कि उपद्रव का परिणाम भयंकर होगा—पुलिस की गोली से प्राणों से शायद वंचित भी होना पड़ जाये।

मंत्री या शासक जनता को पुलिस-कार्रवाई में नरमी रखने का आश्वासन देकर चाहे कितने ही वोट पा लें, लेकिन उन्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि पुलिस का मुख्य कार्य उपद्रवों से जनता के जान-माल की रक्षा करना ही है। दंगाइयों के दिल में पुलिस की



श्री वृंदावनलालजी वर्मा

गोली से मृत्यु पाने का आतंक बना ही रहना चाहिये। पुराने समय में इसी नीति का कठोरता से पालन किया जाता था। इसमें ढील देना व्यवस्था एवं शांति-रक्षा के लिए खतरनाक साबित होगा। राज्य के शासन में सत्ता का अर्थ अराजकता नहीं है। हम कई ढंग से रूस का अनुकरण करने की कोशिश करते हैं। अराजकता का दमन कितनी कठोरता से करना चाहिये, यह भी हम रूस से सीख लें, तो देश का कल्याण होगा। उप-द्रवकारियों से पराजित हो जाने का लांछन पुलिस पर लगेगा, तो जनता के जान-माल की रक्षा कैसे होगी ? उपद्रवों को काबू में कैसे रखा जायेगा और नागरिकों को सामान्य जीवन बिताने का आश्वासन कौन देगा ?

—च० राजगोपालाचारी ['स्वराज्य']

०००

विकास, चींटी की चाल

देश के समस्त राष्ट्रीय उत्पादन और देशवासियों के प्रति व्यक्ति वार्षिक आय के

आंकड़े जानना आवश्यक होता है; लेकिन देशवासियों की आर्थिक दशा की असली तस्वीर को समझने के लिए केवल वही काफी नहीं है। असली पैमाना यह है कि जो सबसे निर्धन थे, उनकी हालत कहां तक सुधरी। राष्ट्रीय सैंपल सर्वे का हाल में जो समाचार अखबारों में छपा है, वह चौंका देने वाला है। यू० एन० आई० द्वारा प्रचारित यह समाचार हम 'टाइम्स आफ इंडिया' से उद्धृत कर रहे हैं :

"राष्ट्रीय सैंपल सर्वे से पता चलता है कि पिछले बीस वर्षों में खासा आर्थिक विस्तार होने के बावजूद देश की एक तिहाई आबादी निपट गरीबी में जी रही है और गांवों में १५ रुपये मासिक और शहरों में २४ रुपये मासिक से कम व्यय पर गुजारा कर रही है।

"राष्ट्रीय सैंपल सर्वे से प्रकट हुआ है कि जो लोग दिन में एक रुपये से भी कम खर्च कर पाते हैं, उनका अनुपात १९५२ में जितना था, लगभग उतना ही अब भी है—अर्थात् ८० प्रतिशत।

"सन १९६३-६४ के राष्ट्रीय सैंपल सर्वे के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि देश की ४६.७ करोड़ आबादी में से १६.२ करोड़ के ३४.६ प्रतिशत का मासिक निर्वाह-व्यय गांवों में १५ रु० और शहरों में २४ रु० से कम है।

"निर्धनता में केरल का स्थान सबसे आगे है; उसकी ४४.४ प्रतिशत आबादी इस वर्ग में आती है। फिर स्थान आता है मैसूर (४४ प्र० श०) और आंध्र प्रदेश (४१.८ प्र० श०) का।

"अन्य राज्यों का प्रतिशत इस प्रकार है—उत्तर प्रदेश ३९.१, मध्यप्रदेश ३७.१, महाराष्ट्र ३५.९, बिहार ३५.३ और राजस्थान ३४.२।

"अगर गरीबी की इस सीमा के भीतर आने वालों का 'अकिंचन' और 'निपट अकिंचन' में वर्गीकरण किया जाये, तो और भी दयनीय तस्वीर सामने आती है। देहात में ११ रु० और शहरों में १५ रु० मासिक से कम कमाने वालों को 'निपट अकिंचन' माना जाये, तो वे १३.२ प्रतिशत अर्थात् ६.१७ करोड़ हैं। और 'अकिंचन' अर्थात् गांवों में १३ रु० और शहरों में २४ रु० मासिक खर्च करने वाले १०.४४ करोड़ हैं, अर्थात् देश की आबादी का २२.४ प्रतिशत।

"दोनों ही वर्गों की दृष्टि से केरल-सर्वोपरि है—क्रमशः १८.४ और ३०.४ प्रतिशत।

"राष्ट्रीय सैंपल सर्वे के आंकड़ों के अनुसार १९६४ तक देश की आबादी का ६० प्रतिशत हिस्से के हाथों राष्ट्र के समस्त उपभोग-व्यय का केवल एक तिहाई भाग खर्च होता था, जबकि आबादी का सबसे उच्चवर्गीय पांचवां हिस्सा ४२ प्रतिशत खर्च करता था।

"खेतिहर मजदूरों की वार्षिक प्रतिव्यक्ति आय १९५०-५१ में १०४ रुपये थी और १९६३-६४ तक उसमें कुल ४.८८ रुपये की वृद्धि हुई, अर्थात् १३ वर्षों में वह ८.६७ रु० मासिक से बढ़कर ९.७० रु० मासिक हुई।

"यद्यपि शहरों व कस्बों के औद्योगिक

मजदूरों की वार्षिक आय १२७ प्रतिशत वढ़ी है और सन १९५१ के १,०३६ रु० के मुकावले १९६७ में २,३५५ रु० हो गयी है; लेकिन यह भी याद रखना चाहिये कि श्रमिक वर्ग का जीवन-यापन-व्यय-अंक भी १९५७ की १०५ की तुलना में १९६७ में २०९ पर पहुंच गया है।

"इन इंडेक्स अंकों के अनुसार कटौती करने पर प्रकट होता है कि औद्योगिक श्रमिक की आय १९५१ के १,०३६ रु० के मुकावले १९६७ में १,१८३ रु० रही। अर्थात् १६ वर्षों में उस में केवल १४ प्रतिशत वृद्धि हुई।"

०००

इस युग के आराध्य

"हमारे युग के हीरो कौन हैं? कौन हैं वे नर-नारी, जिन्होंने हमारे युग पर सबसे शुभ प्रभाव छोड़ा है?" अमरीका के ओवरसीज प्रेस क्लव ने अपने ३,५०० सदस्यों से यह प्रश्न पूछा था और उनके उत्तरों के आधार पर विल योलेन और केथ जिनिगर ने 'हीरोज आफ आवर टाइम' नामक पुस्तक संपादित की है। प्रेस क्लव के सदस्यों ने जिन ३०२ व्यक्तियों को इस युग का हीरो नामजद किया, उनमें से लोकप्रियता के हिसाव से प्रथम ग्यारह ये थे :

१. सर विंस्टन चर्चिल,
२. फ्रेंकलिन डी० रूजवेल्ट,
३. जान एफ० केनेडी,
४. डा० जोनास साल्क (पोलियो के टीके के आविष्कारक),
५. महात्मा गांधी,
६. श्रीमती एलीनर रूजवेल्ट,
७. अल्बर्ट आइंस्टाइन,
८. पोप जान २३ वें,
९. अल्बर्ट श्वाइत्जर,
१०. हैरी एस० ट्रूमन,
११. मार्टिन लूथर किंग।

—सैटर्डे रेव्यू

०००

विषम विवाह : सफल दांपत्य

अमरीका में एक वार फिर वृद्ध पुरुषों का युवतियों को जीवन-संगिनी वनाना चर्चा का विषय वन गया है। अभी हाल में अमरीकी सुप्रीम कोर्ट के ७० वर्षीय न्यायाधीश विलियम डगलस ने २६ वर्ष की एक युवती से शादी की है। इस पर न्यूयार्क के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'टाइम' (२१ फरवरी ६९) में ऐसे विषम-वय के वर-वधू के विवाह पर रोचक लेख छपा है। उसमें मनुष्य की काम-प्रवृत्ति और सक्षमता का भी विवेचन है। लेख में ऐसे विषम विवाहों को अमरीकी परंपरा के अनुकूल ही वतलाया गया है। उसके निम्न उदाहरण दिये गये हैं :

* ५३ वर्षीय बिंग क्रासवी का विवाह २३ वर्षीया लड़की से।
* ८७ वर्षीय पाब्लो कासाल्स का विवाह ४३ वर्षीया जेकलीन से।
* ५४ वर्ष के चार्ली चैपलिन का विवाह १८ वर्षीया उना ओ नील से।

किस आयु में पहुंचकर पुरुष का हृदय स्त्री-सहवास से विरक्त हो जाता है? इस प्रश्न का उत्तर देना बड़ा कठिन है। सन १५८३

की एक कथा मशहूर है कि १०० वर्षीय टामसपार नामक अंग्रेज पर परस्त्री-गमन का अभियोग लगाया गया था और उसने अपराध स्वीकार करके प्रायश्चित्त भी किया था।

* विक्टर ह्यूगो ने ८२ वर्ष की अवस्था में भी तीव्र कामोत्तेजन एवं सक्षमता की गवाही दी थी।

* ६८ वर्षीय टी० एस० इलियट ने ३८ वर्ष की युवती से शादी करके सावित कर दिया था कि वे उस आयु में भी यौनसुख से विमुख नहीं हुए थे। उनका भी विश्वास था कि कामात्तेजन के लिए आयु की सीमा नहीं वांधी जा सकती।

विषमता का एक और रूप भी है। अनेक विवाह बड़ी आयु की स्त्रियों और छोटी आयु के पुरुषों में भी हुए हैं। बालजक ने २२ वर्ष की वय में ४४ वर्ष की महिला से प्रेम-संवंध रखा था। हेनरी द्वितीय ने १७ वर्ष की आयु में अपने पिता की २६ वर्षीया सेविका से विवाह रचाया था।

जो आधुनिक अल्पवयस्क लड़कियां प्रौढ़ पुरुषों को जीवनसंगी बनाती हैं, उनका स्वानुभूत वक्तव्य है—"वृद्ध पुरुष की प्रेयसी बनना युवा पुरुष की दासी बनने की अपेक्षा अधिक सुखकर होता है।"

वय की विषमता विवाह की सफलता में सहायक है या बाधक? इस प्रश्न का कोई निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया जा सकता।

०००

बुद्धि का विश्लेषण

डेन्वर विश्वविद्यालय, अमरीका के मानसशास्त्री जान एल० हार्न की मान्यता है कि बुद्धिशक्ति दो प्रकार की होती है और संभव है कि जो परीक्षण इनमें से एक प्रकार की बुद्धिशक्ति को नापता है, वह दूसरे प्रकार की बुद्धिशक्ति के विषय में कुछ भी जानकारी न दे पाये।

हार्न ने इन बुद्धिशक्तियों का नाम 'तरल' और 'स्फटिकाकार' रखा है। उनके सिद्धांत के अनुसार, तरल बुद्धिशक्ति का शिक्षा और जीवन के अनुभवों से कोई संवंध नहीं है, पर उसका आनुवंशिकता से संबंध है। स्फटिकाकार बुद्धिशक्ति अनुभव से उपजती है।

तरल बुद्धिशक्ति स्वास्थ्य पर ज्यादा आधारित होती है, जबकि स्फटिकाकार बुद्धिशक्ति का दारोमदार है विधिवत् दी गयी शिक्षा पर। जो बुद्धिपरीक्षा इनमें से किसी एक पर ज्यादा जोर देती है, वह दूसरे के बारे में पूरी जानकारी नहीं दे सकती।

और हार्न का कहना है—"तरल और स्फटिकाकार दोनों बुद्धिशक्तियां उम्र के साथ विकसित होती हैं। लेकिन २०-३० के बीच में मनुष्य की तरल बुद्धिशक्ति का ह्रास शुरू हो जाता है। लेकिन स्फटिकाकार बुद्धिशक्ति सामान्यतया जीवन-भर बढ़ती रहती है।

इस मानसशास्त्री का कहना है कि प्रौढ़ या वृद्ध पुरुष प्रतिभा के बजाय संचित अनुभव से काम लेते हैं, जबकि युवकों में इससे उलटी प्रवृत्ति होती है। —टु डेज हेल्थ

०००

एंग्लो-इंडियनों का सर्वेक्षण

१९५१ की जनगणना में भारत में एंग्लो-इंडियनों की संख्या १,११,६३७ थी। इन में से ३,००० बंबई नगर में रहते हैं। इनका निवास मुख्यत: भायखला में है। इनमें अधिक संख्या ऐसों की है, जिनकी औसत आय २०० रुपये मासिक है। कोलावा और फोर्ट क्षेत्र में रहने वाले एंग्लो-इंडियनों की आय औसतन ६०० रुपये मासिक है।

इनके रहन-सहन का अध्ययन करके यह परिणाम निकाला गया कि ये घरों में कोई-न-कोई पालतू जानवर या पक्षी अवश्य रखते हैं। इनके घर में फूल के गमले अवश्य होते हैं और कोई वाद्य--पियानो या वायलिन--रखना भी लाजिमी है। इनके घरों में ७० प्रतिशत ऐसे हैं, जहां पत्नी का कोई रिश्तेदार साथ में रहता है और अपना खर्च स्वयं देता है। इनके विवाह २५ से २९ वर्ष की आयु तक में होते हैं।

इनके २५ प्रतिशत परिवार स्थायी रूप से विदेश जाकर बस गये हैं। ३४ प्रतिशत ऐसे हैं, जिनके ३-४ सदस्य विदेश जाकर वसे हैं। ४२ प्रतिशत परिवारों का कोई संबंध विदेश से नहीं है।

इनमें से ७२ प्रतिशत व्यक्ति मराठी और हिन्दी में बात कर लेते हैं और २८ प्रतिशत इन भाषाओं की लिपि भी जानते हैं।

एक सौ एंग्लो-इंडियन परिवारों से पूछने पर मालूम हुआ कि उनमें से केवल १९ परिवारों का हिन्दू परिवारों से मेल-जोल-है, जबकि ५३ घर अहिन्दू परिवारों से मेल जोल रखते हैं। उनका कहना है कि हिन्दू परिवारों से मेल-जोल करना उनके लिए उतना आसान नहीं है, जितना मुस्लिम, पारसी या ईसाइयों से।

—डी० के० भट्टाचार्य [रेस]



★

गालिब की मृत्यु शताब्दी के सिलसिले में गत फरवरी में देश-भर में साहित्यिक समारोह हुए। बंबई के एक मुशायरे में प्रसिद्ध कवि साहिर लुधियानवी ने यह कविता पढ़ी थी :

> इक्कीस बरस गुज़रे आज़ादी-ए-कामिल[1] को
> तब जाके कहीं हमको ग़ालिब का ख़याल आया
> तुर्बत[2] है कहां उसकी मसकन[3] था कहां उसका
> अब अपने सुख़न-परवर[4] जहनों में सवाल आया
>
> सौ साल से जो तुर्बत चादर को तरसती थी
> अब उसपे अक़ीदत[5] के फूलों की नुमाइश है
> उर्दू के ताल्लुक़ से कुछ भेद नहीं खुलता
> ये जश्न ये हंगामे, खिदमत है कि साजिश है


चाँदनी
साबुन
का प्रयोग कर
समय बचाइये
—कपड़े जल्दी साफ़ होते हैं !
BOI
CHANDNI
BERAR OIL INDUSTRIES AKOLA
BOI
BOIAKOLA
CHANDNI
SOAP
अधिक स्वच्छ
अधिक सफेद
अधिक उजले
बेरार ऑइल इन्डस्ट्रीज़, अकोला

जिस शहर में गूंजी थी ग़ालिब की नवा[6] बरसों
उस शहर में अब उर्दू बेनामोनिशां ठहरी
आज़ादी-ए-कामिल का ऐलान हुआ जिस दिन
इस मुल्क की नज़रों में ग़द्दार ज़बां ठहरी

जिस अहदे-सियासत[7] ने यह ज़िंदा ज़बां कुचली
उस अहदे-सियासत को मरहूमों का ग़म क्यों है
ग़ालिब जिसे कहते हैं उर्दू का ही शाइर है
उर्दू पे सितम ढाकर ग़ालिब पे करम क्यों है

ये जश्न ये हंगामे दिलचस्प खिलौने हैं
कुछ लोगों की साज़िश है कुछ लोग बहल जायें
जो वादए-फ़र्दा[8] थे अब टल नहीं सकते हैं
मुम्किन है कि कुछ अरसा इस 'जश्न' से टल जायें

यह जश्न मुबारक हो लेकिन यह सदाक़त[9] है
हम लोग हक़ीक़त के एहसास से आरी[10] हैं
गांधी हो कि ग़ालिब हो इंसाफ़ की नज़रों में
हम दोनों के क़ातिल हैं दोनों के पुजारी हैं।

---

१. संपूर्ण आज़ादी, २. क़ब्र, ३. घर, ४. साहित्य-प्रेमी, ५. श्रद्धा, ६. आवाज़, ७. राजनैतिक युग, ८. कल का वादा, ९. सच्चाई, १०. वंचित

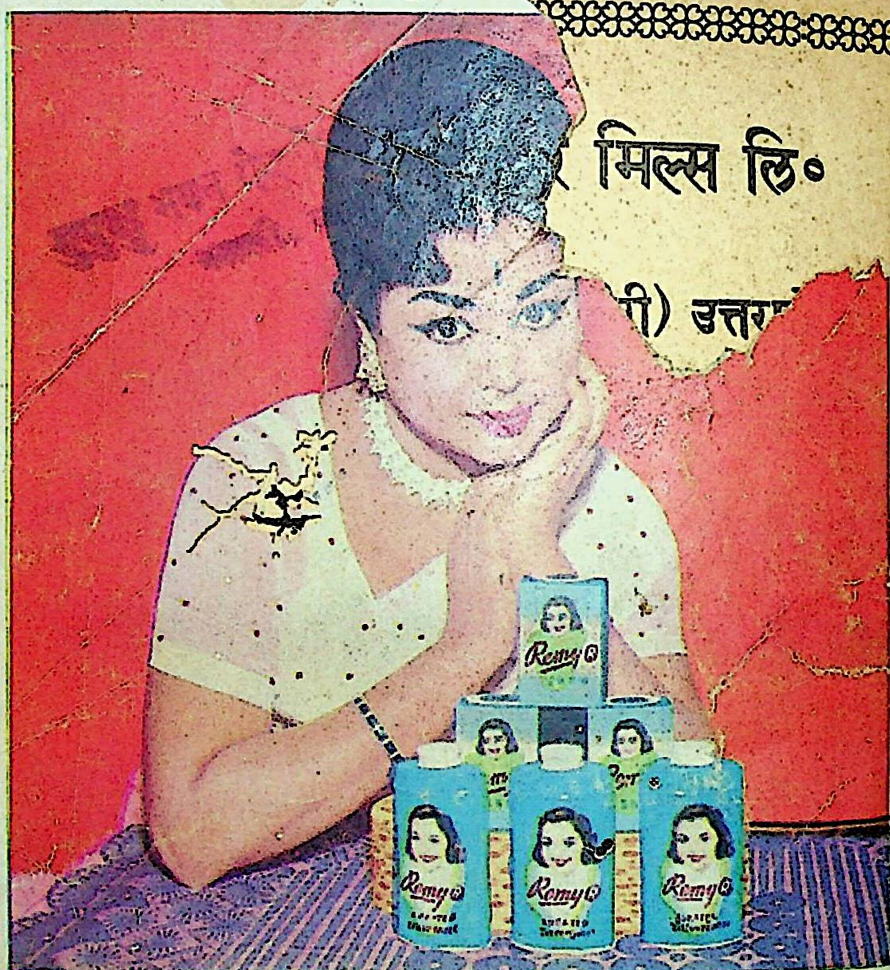


बंबई आये हुए एक पाकिस्तानी लेखक ने साहिर लुधियानवी से कहा—"पाकिस्तान में अदीबों को बेहद सहूलियतें दी जा रही हैं। मसलन वहां रेल में सफर करने के लिए आधा टिकट लेना पड़ता है।"

"हां, ठीक भी तो है!" साहिर ने तत्काल मुस्कराकर कहा—"पाकिस्तानी अदीब अभी बालिग कहां हुए हैं?"

—रमेश खुराना 'स्वप्न'




र मिल्स लि०
ी) उत्तर
Remy
Remy
Remy
Remy